- प्रकाशक एवं ©

श्री हूमड़ जैन इतिहास शोध समिति

ऋषभ चैत्यालय

१, सुदर्शन सोसायटी वि. १,

नारणपुरा, अहमदाबाद-३८००१३

फोन : ७४९२०७२

- प्रथम संस्करण : अगस्त २०००

- प्रतियाँ : १०००

- मूल्य : १५१ रुपये

- मुद्रक :

सर्वोदय ओफसेट,

१३, गजानंद अेस्टेट, इदगा पोलीस चोकी के पास,

प्रेम दरवाजा बहार, अहमदाबाद

फोन : २१७४५१९

हूमड़ जैन समाज का सांस्कृतिक इतिहास

भाग - २

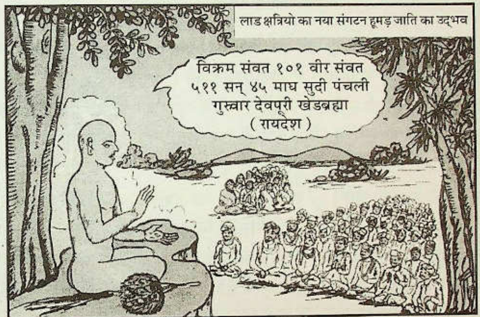

विक्रम १०१ माधसुदी पंचमी गुरूवार, पूजा प्रतिष्ठा दान विधि वर्तो जय जय कार 'हूमड़ पुराण'

मूलसंघ विभाजन के बाद नंदीसंघ के आचार्य की प्रेरणा से लाड क्षत्रियों के समूह ने नये संगठन जाति की स्थापना करके नंदीसंघ का सानिध्य स्वीकार किया जो आगे जाकर नन्दीसंघ, बलात्कार गण सरस्वती गच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुआ । हूमड़ वंशावली ग्रन्थ से

● संपादक मंडल ●

१. श्री शान्तिलाल दोशी इन्दौर - अध्यक्ष
२. श्री हीरालाल जैन सालगिया - अहमदाबाद
३. श्री सूरजमल बोबरा - इन्दौर
४. श्रीमती कोशल्या पंतगिया - इन्दौर
५. श्री हीरालाल सी. जैन कलिंजरा
६. श्री बाबूभाई सी. गांधी - इडर
७. श्रीमती संगीता मेहता इन्दौर
८. श्री पं. बसंतलाल जैन ज्योतिषाचार्य कशरियाजी

इतिहास शोधसमिति पदाधिकारी

१. श्री शान्तिलाल दोशी - ईन्दोर - अध्यक्ष
२, श्री के. एम. शाह - उपाध्यक्ष - बम्बई
३. श्री हीरालाल जैन सालगिया - संयोजक
४. श्री चिरजीलालजी वक्षी - बम्बई
५. श्री जीवराम गांधी सहसंयोजक - (परम संरक्षक)
६. श्री ज्ञानचंद शेठ - (परम संरक्षक) बम्बई,
७. श्री हीरालाल माणेकलाल गांधी - अकलूग परम संरक्षक)
८. श्री हेमन्तकुमार शेठ - पूना - परम संरक्षक

प्रशस्त मार्गदर्शक स्व. श्री गणेशलालजी छापिया - उदयपूर

श्री हूमड़ इतिहास शोध समिति केन्द्रिय कार्यालय ऋषभ चौचालय

१, सुदर्शन सोसायटी वि-१, नारणपुरा, अहमदाबाद-३८००१३ फोन : ७४९२०७२

समर्पण

जब मैंने इतिहासकी कड़ियों को संग्रहित कर लिखना प्रारम्भ किया तो मनमें एक ललक थी, इतिहास के महासागर में गोते लगाने की।

गोते लगाने की चुनौती स्वीकार तो की, पर एक आशंका भी थी कि क्या वह सफलता पूर्वक इतिहास के गर्भ से मोती प्राप्त हो सकेंगे या नहीं ? कहा भी है कि

''मांही पड्या ते महासुख पामे, देखणहारा दाझे जोने''

पर यहाँ गोते लगाते समय - सबका स्नेह मार्गदर्शन एवं सम्बल मिला। साधनामें रत होते हुए तो आनन्द आया - अपरम्पार रत्नगर्भा से जो इतिहास खोजके मोती प्राप्त हुए, उसका लेखनी से वर्णन करना कठिन है। इस आनन्दको देनेवाले हमारे महान आचार्य हूमड़ समाज के उद्भवकर्ता, आचार्य माधनन्दि के शिष्य हेम्माचार्य और नंदिसंघ बलात्कारगण सरस्वती गच्छ के पूज्यपाद गुणनन्दि बसंतकीर्ति सकलकीर्ति ओर उनकी अक्षुण परम्परा को समर्पित है, मेरा यह अकिंचन प्रयास -

- हीरालाल जैन सालगिया

संयोजक

४-ऋषि मंडल यंत्र

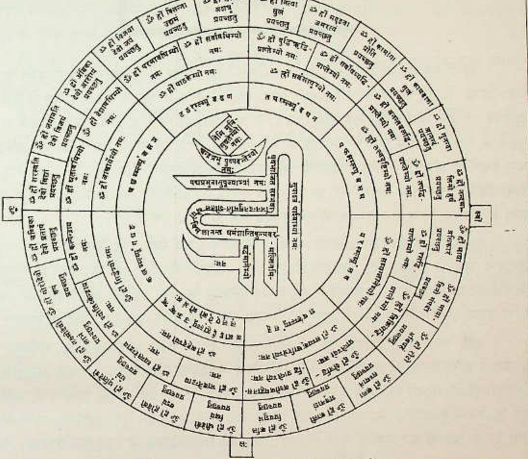

हूमड़ों का परम्परागत परम आराध्य यंत्र

यह आराध्ययंत्र साधक और उपासक के लिए अमोध फलदाता है । विक्रम संवत ४९३ में आचार्य गुणनन्दि द्वारा निमित हुआ । यह मंत्र, तंत्र, जप, तप, ध्यान, आराधना, पूजा, भक्ति का प्रतीक बना हुआ है । इस यंत्र की साधना से विदेशी आक्रमण, स्थलांतर के कष्ट आदि का हमारे पूर्वजों ने प्रतिकार किया । इस यंत्र की आराधना के बल पर, हमारे भट्टारकोंने, जैन धर्म, जिनालय, जिनवाणी और हमारी जाति की मुगलों से रक्षा की ।

ऐसा समर्थ आराध्यमय यंत्र, हूमड़ समाज की ऋद्धि, समृद्धि, सिद्धि एवं सुख शांति दे और धर्म, अर्थ, काम मोक्ष के मार्ग में प्रयाण करने में सुख सहायक बना रहें ।

इसी मंगलकामना के साथ......

प्रारम्भ से वर्तमान तक सभी हूमड़ो द्वारा निर्माण किये जिनालय एवं उनके गृह चैतालयों में यह यंत्र उपासना के लिये रखे जाते है ।

आमूख

किसी भी देश या राष्ट्र का इतिहास लिखना इतना कठिन ही है जितना किसी जाति या समाज का। किसी भी राष्ट्र में हुई घटनाएँ उसकी उत्पत्ति एवं अभ्युदय के बारे में क्रमबद्ध रूप से शिलालेख, ताम्रपत्र या अन्य रूपसे उल्लिखित सामग्री कहीं न कहीं अवश्य मिल जाती है, परन्तु समाज या किसी जाति के विषय में ऐसा नहीं है। समाज की व्युत्पत्ति अभ्युदय एव उसके घटनाचक्र का उल्लेख बहुत कम देखने में आता है। भारतीय जातियों और समाजों पर अब तक अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं, जो प्राय: किंवदन्तियों और अनुश्रुतियों पर आधारित हैं। जैन समाज की अब तक ८४ जातियों का पता लगा है, जिसमें हूमड़ जैन समाज भी प्रमुख जैन समाजों में से एक है।

हूमड़ जैन समाज का इतिहास आज से करीब ७० वर्ष पूर्व हमारे पितामह शेठ माणिकचन्द हिराचन्द जवेरीने लिखने का सत्प्रयत्न किया था। आपने 'जैनमित्र' के संपादक श्री मूलचन्दजी किसनदासजी कापडिया के सहयोग से हूमड़ जैन इतिहास का एक संक्षिप्त रूप तैयार करवाया था। परन्तु उसमें अभी और कुछ खोज अनुसंधान करना बाकी था, अत: प्रकाशित नहीं हो सका।

मुझे आज बड़ी प्रशन्नता हो रही है कि उस अपूर्ण कार्य को समाज के वयोवृद्ध प्रबुद्ध कार्यकर्ता श्री हीरालालजी सालनिया ने उठा लिया एवं अत्यधिक परिश्रम कर न केवल अनुश्रुतियों एवं किंवदंतियों के आधार पर, अपि तु अनेक आगमग्रंथी पट्टावालियों, अभिलेखों, प्रशस्तियों, मूर्तिलिखों एवं प्राचीन पांडुलिपियों का अध्ययन कर, हूमड़ जैन इतिहास के इस दूसरे पुष्प का संकलन किया गया है, जो आपके कर कमलों में समर्पित है। यह ग्रंथ गहन साधना के साथ प्रमाणित बन गया है।

इतिहास के इस द्वितीय पुष्प में हूमड़ समाज के इतिहास और पुरातत्त्व, साहित्य, कला, धर्म और दर्शन, संस्कृति और समाजशास्त्र की बिखरी संस्कृति का कण कण जोडकर टूटी कडियों का सार्थक संगम और समन्वय करने का प्रयास किया गया है।

हूमड़ समाज की विशिष्ट सांस्कृतिक, धार्मिकपरंपरा, साहित्यिक, गतिविधियाँ लोक साहित्य, ललित कला, एवं सामाजिक रीतिरिवाजों का विशद रूप से वर्णन किया गया है। साथ ही वास्तुकला की दृष्टि से उत्कृष्ट भव्य जिनालयों का निर्माण हूमड़ समाज की एक विशेषता रही है।

हूमड़ समाज द्वारा निर्मित ऐसे विशाल जिनालयो के साथ साथ, उनके द्वारा निर्मित धार्मिक सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं की गतिविधियों के बारे में भी जानकारी देनेका प्रयास किया गया है। जिनालयों के भित्तिलेख, मूर्तिलेख एवं महत्त्वपूर्ण शिलालेख जो मूकवाणी से अपने समय की हूमड़ समाज की गौरव गाथा को प्रस्तुत करते हैं यथा संभव समावेश किये गये है।

इस प्रकार यह ग्रंथ न केवल मध्यकालीन जैन इतिहास अपि तु भारतीय इतिहास के लिए भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा। जातियों के इतिहास संबंधी विपुल सामग्री विखरी पडी है। देश के राजनैतिक इतिहास के साथ उसके सामाजिक इतिहास का भी अपना महत्त्व है।

मेरे पितामह श्री माणकचन्दजी द्वारा प्रारंभ किये गये इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण कार्य को पूर्ण होते हुए देखकर आज मेरे आनन्द की सीमा न रही।

मैं भी हीरालालजी सालगिया एवं इतिहास शोध समिति के उन सभी सदस्यों का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने तन, मन, एवं धन से इस भगीरथ कार्य को पूर्ण करने में अपना अमूल्य सहयोग दिया।

समाज, इतिहास के द्वितीय पुष्प को पाकर अवश्य गौरवान्वित होगा।

मुम्बई — **धनकुमार ठाकोरदास झवेरी**

दिनांक — रत्नाकर पेलेस, सी-फेस, चोपाटी

श्रेष्ठीवर्य श्री धनकुमार ठाकुरदास झवेरी - एक सफल, कर्मठ उद्योगपति

महादानी, समाज सेवक, कर्मठ व सफल जवाहरातों के पारखी श्री माणिकचन्दजी व श्री पानाचन्दजी झवेरी के पौत्र श्री धनकुमार स्वयं भी कर्मठ एवं सफल उद्योगपति है।

आप श्री ठाकुरदास पानाचंद झवेरी एवं श्रीमती नवलबाई झवेरी के सुपुत्र है। आपका जन्म १४ सितम्बर १९२१ को बम्बई में हुआ। सन् १९४१ में आपने रसायनशास्त्र में बी. एस. सी. की परीक्षा पास की। आपका विवाह प्रसिद्ध उद्योगपति शेठ हीराचन्द वालचन्द दोशी के घराने की सुकन्या मरुदेवी से सन् १९४१ में सम्पन्न हुआ। आपको ३ संतानो का सुख प्राप्त हुआ है। प्रथम पुत्र रत्न श्री असितकुमार है तथा दो कन्यारत्न है साधना एवं चंद्रिका।

सन् १९५८ में आपने अपने वंशानुगत व्यापार से हट कर उद्योग क्षेत्र में प्रवेश किया और साधना निट्रो केमिकल लिमि. की स्थापना की तथा १९७३ से अद्यावधि आप उस कंपनी के चेरमेन बने हुये हैं. इसके अतिरिक्त आप कई कम्पनियों एवं पब्लिक लिमिटेड कम्पनियों के डायरेक्टर हैं।

आप सन् १९६४ से सेठ हीराचन्द गुमानजी चेरिटेबल संस्था के अध्यक्ष के पद पर रहकर उसकी गतिविधियों की देखभाल कर रहे हैं। निर्धनों की शिक्षा से सम्बन्धित, चिकित्सा से सम्बन्धित सहायता करते रहते हैं।

आप पिछले ३२ वर्षों से जैन सहकारी बैंक लिमिटेड से जुडे हुए हैं व पिछले ६ वर्षों से आप इस बैंक के डायरेक्टर एवं चेरमेन के पद पर आसीन हैं।

धार्मिक क्षेत्र में भी आप पीछे नहीं हैं। अखिल भारतीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के आप कई वर्षों से कोषाध्यक्ष हैं।

श्री धनकुमार झवेरी सहृदय, बुद्धिजीवी, सरल व्यक्तित्व के साथ प्रखर उद्योगपति हैं। आपकी व्यवहार कुशलता एवं दूरदर्शिता के कारण ही, सफलता आपके चरण चूमती है। आपकी प्रवृत्ति धार्मिक है और सदैव जरूरतमन्दों की सहायता के लिए तत्पर रहते हैं।

पता : शेठ धनकुमार ठाकुरदास झवेरी
३७, चौपाटी, सी-फेस, मुम्बई - ४००००७

हूमड़ इतिहास भाग-२

अध्यक्ष निवेदन

– शान्तिलाल दोसी, इन्दौर - अध्यक्ष

भारतीय संस्कृति में, जैन संस्कृति का सम्यक् प्रदान किसी से छिपा नहीं है। जैन संस्कृति को पल्लवित एवं पुष्पित करने में, हूमड़ समाज का महत्त्पूर्ण योगदान रहा है।

हूमड़ो' द्वारा निर्मित जिनालय, प्रतिष्ठित मूर्तिलेख, हमारे लोकगीत, लोककला, रीतिरिवाज, अभिनय एवं परम्परागत उदार भावनायें ऐसी धरोहर है, जिन पर कोई भी समाज गर्व कर सकता है।

हमारा अपना प्राचीन इतिहास रहा, पर खेद इस बातका था कि प्रमाण सहित इसको लिपिबद्ध करने का सुनियोजित प्रयास कभी नहीं हुआ। १६वी' १७वीं शताब्दी एवं १९वीं व २०वीं शताब्दी में कुछ प्रयास जरूर हुये, पर उसे कार्यरूपमें परिणीत नहीं कर सके।

६-७ वर्ष पहले जब सारे भारत के हूमड़ों के प्रतिनिधि परमपूज्य १०८ श्री सुबाहुसागजी के आशीर्वाद से विजयनगर में मिले तो, महाराज श्री के मंगल सांनिध्य में एक संकल्प पारित किया कि हमारे समाजका क्रमबद्ध इतिहास होना आवश्यक है, जो वर्तमान एवं भावि पीढ़ीको अपनी गौरवमयी परम्परासे रोशनी प्रदान करता रहे।

श्री हीरालालजी सालगिया जैन कर्मनिष्ठ व्यक्तित्व ने, इसके संयोजन का भार ग्रहण किया। द्रुतगतिसे ऐतिहासिक कडियों को एकसूत्र में पिरोया गया एवं हूमड़ जैन समाजका सांस्कृतिक इतिहास भाग-१ का पावागढ़ महाअधिवेशन में ऐतिहासिक विमोचन किया गया।

पर जैसा कि उतना प्राचीन इतिहास केवल प्रथम भागमें ही समाहित नहीं हो सका, अत: इतिहासके ऐसे कई पहलू छूट गये, जिन्हें प्रकाश में लाना अनिवार्य था। संयोजक महोदयने कठिन परिश्रम से साही सामग्री जुटाई - विद्धदमंडली श्रीमती कौशल्या पतंग्या इन्दौर, श्री हीरालालजी सी. जैन कलिंजरा आदिने इन सामग्री का गहन अध्ययन किया। अध्ययन के पश्चात् प्रमाणिकता की कसौटी पर कसकर उसे प्रकाशमें लाने का बीडा उठाया।

इस सामग्रीको प्रकाशनमें लानेके लिये, आर्थिक सम्बलकी आवश्यकता थी। समाजके प्रबुद्ध व्यक्तियोंने श्रेष्ठियों ने, इस भारको सहर्ष वहन किया, जिनके योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता।

इस अवसर पर, मैं हूमड़ समाज, जाने अनजाने इतिहासकारों, लेखकों, मार्गदर्शकों एवं आर्थिक सहयोग प्रदान करनोवाले श्रीमन्तों का हार्दिक आभार प्रकट करना चाहूँगा एवं उनसे अनुरोध करूंगा कि हमारी संस्कृति एवं सभ्यता को अक्षुण्ण रखने के लिए, भविष्यमें भी इस प्रकार का सहयोग देते रहेंगे। पुनः सभीका आभार!

आपका

शान्तिलाल दोसी (इन्दौर)

श्री अखिल भारतीय जैन हूमड़ इतिहास शोध समिति

वात्सल्य मूर्ति, वालयोगी, मासो उपवासी
परमपूज्य आचार्य श्री १०८
सुबाहुसावारजी महाराज
(श्री दिगम्बर जैन मुनि संघ)

श्री देव शास्त्र गुरु के परमभक्त धर्म परायण धर्मानुरागी श्री हीरालालजी, सौ. कान्तादेवी समस्त परिवार एवं श्री जिवराजगांधी को श्री मुनिसंघ की और से धर्मवृद्धि शुभ आशिष। हमारे आशीर्वाद के विजयनगर में इतिहास शोध समिति की स्थापना की गई और हूमड़ समाज का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। अब उसका दूसरा भाग प्रकाशित होने जा रहा है। आपने और जीवराज गांधी ने अपने जीवन को समाज सेवामें परत कर रहे हैं। अत: एव आप सबको एवं समस्त हूमड़ समाज को हमारा धर्मवृद्धि लाभ एवं शुभ आशीर्वाद है। दूसरा भाग शीध्र प्रकाशित हो, ऐसी शुभकामना

आचार्य सुबाहुसागर महाराज
तीन मूर्ति बोरीबली
बम्बई

ओजस्वी वक्ता, मृदु-कोमल स्वभावी, धर्मालंकार
परम-हंस दिगंबराचार्य श्री १०८
रयणसागरजी मुनिराज
गृहस्थ नाम : श्री आनंदलालजी छगनलालजी गांधी
सागवाड़ा (राजस्थान)
हमें गौरव है आप जैसे हूमड़ संतों पर

आशीर्वाद

धर्मालंकार पूज्यश्री दिगम्बर जैनाचार्यश्री रयणसागरजी के द्वारा

श्री हीरालालजी जैन सालगिया
संयोजक श्री अखिल भारतीय हूमड़ इतिहास शोध समिति, नारणपुरा (अहमदाबाद)

श्री बाबूलाल सी. गांधी ईडर के द्वारा अवगत हुआ कि श्री हूमड़ इतिहास के दूसरे भागका प्रकाशन अगले दिनोंमें होने जा रहा है। जानकर अतीव प्रसन्नता हुई।

श्री गांधीने बताया कि इसमें हुमड़ उद्भव स्थल देरोल-देवपुरी-खेडब्रह्माके बारेमें विशद विवरण-परिचय दिया गया है। इसमें उद्भवका वर्णन है तो साथ ही बिखराव एवं हूमड़ समृद्धि का भी उल्लेख है। इसमें हूमड़ निर्मित जिनालयों एवं उनके कलापूर्ण वैभव पर भी प्रकाश डालनेका भरसक प्रयत्न किया गया है। इसमें समाजके जिन जिन संतो के नाम उपलब्ध हुए हैं, उनके शुभ नामोल्लेखोंके साथ, उनके प्रति भी श्रद्धासुमन अर्पित किये गये हैं।

दूसरे भागमें हूमड़ जाति के रिवाजों (धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिकादि) पर भी, सारस्वतों ने अपनी लेखनी चलायी हैं, तो हूमड़ गोत्रों के बारेमें भी।

इसमें अपूर्व योगदान देनेवाले श्रेष्ठिवर्यों के रेखाचित्र भी हैं, तो तन-मन से अपनी ताकात (इसके सहयोगमें लगा देनेवालों के प्रति, संयोजकश्री की ओर से भावपूर्ण के शब्द भी अंकित हैं।

किं बहुना ?

इसमें भट्टारकश्रीओं का स्वर्णकालीन इतिहास भी है (जैसे कि भट्टारकश्री सकलकीर्ति जिनकी साहित्य साधना, उनके जीवनमें चार-चांद लगाये बिना रह न पाये) तो समाज से प्रकाशित साप्ताहिक, त्रैमासिक पत्र-पत्रिकाओंका उल्लेख है, तो समाजके जानीमानी ग्रंथमालाओं का भी।

अखिल हूमड़ समाज - जैन समाज का अविभाग्य अंग है। समाज से ऐसी अपेक्षा है कि यह धर्म की प्रति अपने को जागृत बनाये रखे, सच्चे-देव गुरु-शास्त्र के प्रति, अपनी आस्थाको कभी न छोडे, विश्वकल्याण के लिए अपना योगदान देनेमें उदारचित्त बने - ऐसी भावना के साथ आशीर्वाद भाग -२ के लिए तो सही, लेकिन अगले वर्षों में होनेवाली सात्त्विक प्रवृत्तियों के लिए भी।

संघस्थ सभी साधुओंके आशीर्वाद भी आप, संपादक मंडल और इसमें सहयोग देनेवाले नामी-अनामी-सबके लिए भी दि. २१-०५-२०००, ईडर

- आचार्य १०८ रयणसागरजी

जीवराज खुशालचन्द गाँधी
अध्यक्ष
अखिल भारतीय हूमड़ महासंघ
निवास-मुम्बई

संदेश

इतिहास भविष्य के लिये मार्गदर्शक दीपस्तम्भ का कार्य करता है।

हूमड़ जैन समाजका पीछले २००० वर्षका इतिहास उत्कर्ष, अपकर्ष, संघर्ष एवम् विकास का रहा है। काल के थपेड़ों एवम् झंझावत के बीच भी हूमड़ समाज प्रगतिशील रहा है।

श्री हीरालालजी सालगिया ने पीछले ८-१० वर्षो से अथक परिश्रमसे ताम्रपत्र, शिलालेख, मूर्तिलेख, शास्त्रभंडार, भट्टारक पट्टावली, साहित्य, किंवदंतियाँ आदिका अवलोकन कर, खोजकर हूमड़ इतिहास को संजोने का कार्य किया है।

श्री सालगियाजी का यह प्रयास हम सबके लिये अनुकरणीय है। इतिहास को संजोकर समाज पर उन्होंने भारी उपकार किया है। श्री सालगियाजी को किन शब्दोंमें धन्यवाद अर्पित किये जाये ? जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है कि समाजको उनका अविरल मार्गदर्शन मिलता रहे।

श्री सालगियाजी द्वारा संयोजित हूमड़ जैन समाजका सांस्कृतिक इतिहास (प्रथम भाग) पूर्वमें प्रकाशित हो चुका है। द्वितिय भाग भी प्रकाशित किया जा रहा है।

इतिहास प्रकाशन में श्री सालगियाजी के साथ हूमड़ जैन इतिहास शोध समिति के माननीय पदाधिकारियों, सदस्यों, समाज के गणमान्य महानुभावों एवं लेखकोंने जो तन, मन, धन से सहयोग दिया, उदार अन्तःकरण से योगदान दिया वह भी इतिहासकी अमूल्य धरोहर के रूपमें अविस्मरणीय रहेगा। मैं उन सभी जाने अनजाने व्यक्तित्वोंको नमन करता हूँ - धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

हूमड़ समाज की एकता बनी रहे, हमारी शानमें दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो, हम एक साथ मिलकर हमारे पूर्वजोंकी अमूल्य धरोहर की रक्षाकर समाज को विकास के पथ पर ले जायें। इसी आशा एवं विश्वास के साथ शुभ कामनायें अर्पित करता हूँ।

- जीवराज खुशालचंद्र गाँधी

माननीय श्री शान्तिलालजी दोशी

अध्यक्ष

श्री हूमड़-जैन इतिहास शौध समिति

किसी देश या समाज का इतिहास उतके भूतकाल का दर्पण है तथा भविष्य की प्रेरणा का स्त्रोत है । जिस समाज का इतिहास नहीं जिसकी भूतकाल की गौरवगाथा नहीं -भविष्य के स्वर्णिम सपने नहीं, वह समाज मृतप्राय होता है । आपकी अध्यक्षता में, श्रद्धेय श्री हीरालालजी जैन (सालगिया) ने अनेक प्राचीन ग्रंथों, शिलालेखों, पट्टावलियों आदि का गहन अध्ययन कर, अत्यंत परिश्रम के साथ हमारे हूमड़ समाज का इतिहास दो भागों में प्रकाशित कर हमारे सामने रखा है, इससे समाज अत्यंत गौरवान्वित हुआ है । श्री हीरालालजी सालगिया को, इस श्रमसाध्य सत्यप्रयास के लिए श्रद्धावनत वंदन एवं आपको अभिनंदन ।

भवदीय

ज्ञानचन्द सेठ

श्री हूमड़ जैन समाज ट्रस्ट

(श्री हूमड़ जैन समाज इन्दौर की प्रतिनिधि संस्था)

५/५, गुलाब पार्क, महेशनगर, इन्दौर-४५२ ००२.

शुभ-संदेश

संयोजक महोदय

श्री हूमड़ इतिहास शोध समिति,

सादर जय जिनेन्द्र ।

हूमड़ इतिहास शोध समिति एवं संपादक मंडल के सभी सदस्यों के भगीरथ प्रयास से हूमड़ जैन इतिहास सांस्कृतिक भाग दो का प्रकाशन होने जा रहा है । इस निमित्त संयोजक महोदय एवं संपादक मण्डल के सभी सदस्य बधाई के पात्र है ।

यह इतिहास हूमड़ समाज की अमूल्य धरोहर सिद्ध होगा और आने वाली पीढी को अपने समाज से परिचित कराएगा ऐसी मेरी आशा है ।

इन्हीं भावनाओं के साथ ।

भवदीय,
रतनलाल बंडी
अध्यक्ष
श्री हूमड़ जैन समाज ट्रस्ट

शुभकामना संदेश

द्वारा

प्रमोदकुमार बंडी

१०२, श्रैयाँसनाथ एपार्टमेन्ट, ३/२, डॉ. रोशन सिंह भन्डारी मार्ग,

इन्दौर (म.प्र.) दूरभाष : ५४२९७१ (निवास)

दिनांक ३०-६-२०००

सेवामें,
संयोजकश्री
हूमड़ इतिहास शोध समिति
महोदयजी,
सादर जय जिनेन्द्र

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि हूमड़ इतिहास शोध समिति, अपने प्रकाशन का दूसरा विशेषांक प्रकाशित कर रही है। वस्तुतः हूमड़ जन की पूँजी उसका आत्म विश्वास, मेहनत, व्यवहारु कुशलता, मितव्ययिता, धैर्य, ईमानदारी एवं समर्पण की भावना है। मेरी अल्प बुद्धि के अनुसार हूमड़ो की प्रगति का यही मूल मंत्र भी है। मेरा विश्वास है कि ये सभी विवरण शोध समिति के इतिहास में भी परिलक्षित होंगे। यह आनेवाले समय में, वर्तमान एवं भावि पीढी के लिए एक सांस्कृतिक धरोहर सिद्ध होगा।

आपने इस शुभ प्रसंग पर मुझे याद किया, आपका बहुत धन्यवाद एवं आभार इसी शुभ कामना के साथ

आपका ही

प्रमोदकुमार बंडी

समंपादक, हूमड़ संदेश-इन्दौर (म.प्र.)

संयोजकश्री,

हूमड़ इतिहास शोध समिति

महोदय,

हूमड़ जैन समाज का सांस्कृतिक इतिहास भाग-२ के सपने को साकार करने के लिये, आपने और आपके संपादक मंडल ने अथक प्रयास किये हैं वे सराहनीय हैं। आनेवाली पीढी को यह इतिहास अपनी धरोहर से परिचित कराएगा एवं मार्गदर्शन देगा। अपनों का अपने से परिचय कराना हमारी सामाजिक जिम्मेदारी है, जिसका निवेघ्न आपके संपादक-मंडल के सभी सदस्यों ने किया है अतःसभी साधुवाद के पात्र हैं। हूमडं का उद्‌गम प्रत्यावर्तनसे रीति-रिवाज, रहन सहन, भट्टारक परम्परा एवं जनगणना की अन्तकथा हमारे समाज का आयना है, जो हमें प्रेरित करता है कि हम अतीत का अवलोकन कर वर्तमान को साक्षी मानकर प्रगति की राहों का निर्माण करें।

पुनश्च बधाई एवं शुभकामनाएँ।

भवदीय

कौशल्या-पतंग्या

संयोजक (हूमड़ जैन समाज ट्रस्ट इन्दौर)

(महिला-संगठन)

शुभ सन्देश

हूमड़ इतिहास समिति द्वारा हूमड़ों में उदभवस्थ पूर्वजों के विवरण, हूमड़ जैन समाज की २००० वर्ष पूर्वकी अवस्थिति के प्रमाण खोज निकालना हूमड़ जैनों द्वारा निर्मापित जैन मन्दिरों का विवरण, मूर्तिलेख, शिलालेख, गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग से प्रचुर सामग्री एवं चित्रों का जुटाना आदि, दुष्कर कार्य जिम्मेदारी पूर्वक सम्पन्न कराया जाना श्री हीरालालजी सालगिया के कुशल संयोजकत्व में, समिति के सदस्यों में तालमेल बढाकर सभी सहभागियों को साथ लेकर, इस चिरस्मरणीय कार्यका इतिहास के बृहद् दो भागों में प्रकाशन होना, स्वयमेव ही सफलता का सूचक है।

यह समाज के लिये बहुत ही गौरवकी बात है तथा श्रद्धेयश्री हीरालालजी सालगिया सहित समिति के सभी सदस्य, उसके लिये बधाई के पात्र हैं। उनके प्रति मेरी हार्दिक शुभ कामनाएँ हैं।

नई-दिल्ली-११००४९
दिनांक : २५ जून, २०००

द्वारा
सौभाग्यमलजी अमृतलालजी जैन
कियावत
(दियामळ वाले)

मणिभद्र जैन
सी-१४६ सम्मति निकेतन
शास्त्री कोलोनी, डूंगरपुर

दिनांक :....................

शुभ सन्देश

हम सभी हूमड़ हैं। कालके प्रभाव से बिखर कर एक ही माला के ये मणके पूरे भारतवर्ष में कहाँ कहाँ बिखर गये इसका एहसास एक लम्बे अरसे से हमें नहीं था।

अखिल भारतीय हूमड़ जैन इतिहास शोध समिति की स्थापना निश्चित तौर पर एक ऐतिहासिक घटना थी, जिसने मालाके इन बिखरे मोतियों को संजोकर, एक दूसरे से परिचित कराकर अद्वितीय कार्य किया है।

हमारे खडक क्षेत्र की पहचान इस प्रयास के फलस्वरूप सम्पूर्ण भारत में हुई है इसका श्रेय निश्चित रूपसे आपके कुशल नेतृत्व में सम्पादित इतिहास प्रथम भाग में बढ़ी है। मैं इस बृहत्तरकार्य के लिये आपको मुबारकबाद देता हूँ।

हमारा यह संगठन दिन दूना, रात चौगुना प्रगति करे तथा आपका कुशल मार्गदर्शन इसे इतनी ऊँचाई तक पहुँचाये, ऐसी मंगल कामना के साथ।

आपका
मणिभद्र जैन
महामंत्री, खडग देश समाज

कांतिलाल सी. जैन

(भूतपूर्व अध्यक्ष अठारह हजार दशा हूमड़ जैन समाज)
सदस्य - अध्यक्ष क्लब
भारतीय जीवन बीमा निगम
निवास-पोस्ट-कलिंजरा-जिला बांसवाड़ा (राज.) • फोन : ३४६२२

• संदेश •

'हूमड़ जैन समाज का सांस्कृतिक इतिहास' दूसरे भाग का प्रकाशन हो रहा है, यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्रीयुत् शान्तिलालजी दोसी, इन्दौरकी अध्यक्षता एवं श्रीयुत हीरालालजी सालगिया के संयोजन में इतिहास प्रकाशन का कार्य, दीप स्तम्भका कार्य करेगा। मैं इस अवसर पर दोसी साहब, सालगिया साहब, शोध समिति के समस्त पदाधिकारियों, सदस्यों तथा इसमें सहयोग करने वाले सभी महानुभावो को, हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

वर्तमान युग प्रचार एवं प्रसारका है। इस प्रकाशन के माध्यम से, हूमड़ समाज को अपनी गौरवशाली धरोहर की जानकारी तो मिलेगी ही, साथमें अखिल भारतीय स्तर पर भी, हूमड़ों की एकता एवं संगठनका नया आयाम विकसित होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

शुभ कामनाओं सहित।

कांतिलाल सी. जैन
कलिंजरा

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री रायदेश दशा हूमड़ दिगम्बर जैन समाज

• मंत्री •

श्री रा. द्व. हु. दि. जैन समाज,
शाह भोगीलाल जीवराज,
मु.पो. टाकाटुका, ता. भिलोडा, जिला - साबरकांठा : ३८३२४६

टाकाटुका
दि. १९-६-२०००

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि हुमड़ जैन समाज का प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास दूसरा भाग प्रकाशित भी किया जा रहा है। वास्तव में ये हुमड़ जैन समाज का प्राचीन इतिहास सत्प्रयत्न सफल होते जा रहे हैं। जो महान आत्मा, दृढ- प्रतिज्ञा पूर्ण पुरुषार्थ से और सच्चे हृदय से किसी कार्य में संलग्न होते हैं उस कार्य की प्रयोजन सिद्धि होकर ही रहती है।

हुम्मड जैन समाज का प्राचीन इतिहास का प्रचार एवं जन-जन में प्रसार हो। मैं उन सभी को धन्यवाद देता हूँ, जिनकी प्रेरणा, सहयोग और श्रम के फलस्वरूप प्राप्त सफलता के लिए, अपनी शुभ कामनाएँ भेजता हूँ।

आपका
मंत्री
श्री रा. द. हु. दि. जैन समाज

भाणादा दे. खेरवाड़ा
जि. उदयपुर (राज.)
२२ मई, २०००

शुभ सन्देश

अतीव प्रसन्नता है कि हूमड़ समाज के इतिहास के द्वितीय भाग का प्रकाशन अतिशीघ्र किया जा रहा है।

इतिहास लेखन परिश्रमसाध्य कार्य है। बिखरे सूत्रों को खोज कर निश्चयात्मक निर्णय हेतु गहन अध्ययन, वैज्ञानिक चिन्तन एवं पैनीदृष्टि की आवश्यकता होती है। ऐसे कठिन कार्य करनेके संकल्प की क्रियान्विति दृढ़ निश्चय की प्रतीक है।

अनेकों जातियाँ है, परन्तु बहुत कम जातियों के इतिहास उपलब्ध है। जातीय इतिहास जाति के गौरव का परिचायक होता है। अत: आशा है प्रस्तुत इतिहास हूमड़ जाति के लिए गौरव गाथा सिद्ध होगा।

हूमड़ समाज इतिहास, लेखनन के संकल्पकर्ताओं, शोधनकर्ताओं एवं सम्पादकों के प्रति ऋणी रहेगा। साथ ही समाज हीरालालजी सालगिया, महामंत्री, श्री अखिल भारतीय हूमड़ जैन समाज के प्रति सदैव आभारी रहेगा, जिन्होंने अपनी वृद्धावस्था एवं अस्वस्थता के होते हुए भी समाज के स्वप्न को साकार करने हेतु अथक प्रयास किया।

(नाथूलाल शाह)
से. नि. जिला शिक्षा अधिकारी
एवं
अध्यक्ष खडक क्षेत्रीय दि. जैन दशा हूमड़ महासभा

॥ अहिंसा परमो धर्मः ॥

भैयालाल बंडी
सेवा निवृत्त प्रधानाचार्य
भट्टारक यशकीर्ति सोनियर
हायर सैंकड्री स्कूल

निवास-लुहार गली
प्रतापगढ़ (राजस्थान)
जिला-चितौड़गढ़
पीन : ३१२६०५

ट्रस्टी
भट्टारक यशकीर्ति
शिक्षण संस्थान

सचिव
हूमड़ सहायक फंड
हूमड़ धर्मशाला
महावीर जैन विद्यालय

उपाध्यक्ष
भट्टारक यशकीर्ति
उच्चमाध्यमिक विद्यालय
गांधी विद्या विहार

अध्यक्ष
प्रतापगढ़ विकास संघ
प्रतापगढ़ (राजस्थान)
फोन : ३१२६०५

श्रीमान आदरणीय हीरालालजी साहब सालगीया, महामंत्री, श्री अखिल भारतीय हूमड़ जैन इतिहास शोध समिति

"शुभ संदेश"

आपके अथाह प्रयास से हूमड़ जैन समाज का सांस्कृतिक इतिहास (भाग-१) आजसे ५ वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है।

हूमड़ समाजकी उत्पति, संस्कृति, विकास, प्रसार तथा धार्मिक, नैतिक, शैक्षणिक, चारित्रिक, निर्माणकार्य व सामाजिक परिचय आदि के विवरणने हूमड़ समाज को आच्छादित परदेसे मुक्त कर दिया है। समाजके विविध चित्रण में इतिहास का प्रथम भाग कुछ अपूर्णा सा लग रहा था, जिसकी पूर्ति दूसरे भाग द्वारा करने की आपकी ललक व लगन, अत्यंत सराहनीत रही है। अस्वस्थ वृद्धावस्था में भी आपने अपनी साधना को विराम न देकर समाजकी शेष गतिविधियों एवं विस्मृत स्मृतियों को, इतिहास के द्वितीय भागमें समाहित करनेके स्वप्न को साकार किया है।

समाजकी विशिष्ट इकाइयों को अपने साथ लेकर आपने बिखरे मोतियों की एक माला गूंथी है, यह मात्र आपके कार्यक्षमता की ही प्रतीति है।

प्रारंभ में मात्र समाजकी उत्पति की खोज का बीडा़ उठाया गया था, परंतु आपके वृद्धिगत उत्साह एवं प्रयास से, समाजकी बृहत् रूपरेखा सामने आकर, उसने अमौलिक ऐतिहासिक रूप ग्रहण किया है।

यह नहीं कहा जा सकता कि इस दुष्कर कार्य में समाज से आपको सहयोग सुलभ हुआ अथवा आपने अपने स्वविवेक से उसे प्राप्त कर ही लिया।

जो कुछ भी हो, हूमड़ जैन समाज का सांस्कृतिक इतिहास समाज की भावि पीढी को झकझोरेगा एवं निरंतर विकास को गति देता रहेगा।

यद्यपि इतिहास रचना के लिये, आपके समस्त सहभागीदार साथी कम बधाई के पात्र नहीं हैं तथापि आपकी यह श्रम साधना, समाज के लिये चिर स्मरणीय रहेगी। मंगल कामना के साथ :-

आपका
भैयालाल बंडी
प्रतापगढ़ (राज.)

श्री अखिल भारतीय हूमड़ जैन इतिहास शोध समिति

सम्पादक मंडल

(१) श्री शान्तिलाल दोशी इन्दौर अध्यक्ष
(२) श्री हीरालाल जैन सालगिया संयोजक अहमदाबाद
(३) श्री सूरजनलजी बोबरा इन्दौर
(४) श्रीमती कौशल्या पतंगिया
(५) श्री हीरालालजी सी. जैन कलिजरा
(६) श्री बाबूभाई सी. गांधी ईडर
(७) श्रीमती संगीता मेहता इन्दौर
(८) श्री पं. वसंतीलालजी ज्योतिपाचार्य इन्दौर केशरियाजी (उदयपुर)

इतिहास एवं के प्रशस्त मार्गदर्शक जिन्हें हम कभी भूल नही सकते

स्व. श्री गणेशलालजी छापिया उदयपुर

ओ मुंगो होतो नहीं
धन होतो मन पास
लिखतो सुवरण आखरा
हूमड़ जाति इतिहास

पदाधिकारी-सदस्यगण

क्रम	नाम	गाँव/शाह
१.	श्री शान्तिलालजी दोशी (अध्यक्ष)	इन्दौर
२.	श्री के. एम. शाह (उपाध्यक्ष)	बम्बई
३.	श्री हीरालाल जैन सालगिया (संयोजक)	अहमदाबाद
४.	श्री चिरंजीलालजी बक्षी (सहसंयोजक)	बम्बई
५.	श्री जीवराज गांधी (सहसंयोजक) (परमसंरक्षण)	बम्बई
६.	श्री ज्ञानचंद नंदलालजी सेठ (परम संरक्षण)	बम्बई
७.	श्री हेमन्तकुमार भुरालाल सेठ (परम संरक्षण)	पूना
८.	श्री हीरालाल माणेकलाल गांधी (परम संरक्षण)	अकलूज

सौजन्य : कान्तिलाल मगनलाल पतंगिया
B/k, जैन वृन्दावन १, रानीसती मार्ग,
मलाड (ई) -४०००९७

९.	श्री महावीर प्रसादजी मिंडा	उदयपुर
१०.	श्री केसरीमलजी दोशी	प्रतापगढ़
११.	श्री पवनकुमार बागडिया	इन्दौर
१२.	श्री रतनलालजी बण्डी	इन्दौर
१३.	श्री कन्हैयालालजी सालगिया	इन्दौर
१४.	श्री डॉ. जे. सी. शाह	इडर
१५.	श्री प्रकाशचन्दजी दोशी	इडर

प्रशस्त मार्गदर्शक

श्री गणेशीलालजी छापिया उदयपुर (परार्मशन्दाता)

१६.	श्री धनराजजी गुवाडिया	सागवाडा
१७.	श्री भैयालालजी बंडी	प्रतापगढ़
१८.	श्री आनन्दलालजी दोशी	फल्टन
१९.	श्री बाबुलाल सी. शाह	अहमदाबाद
२०.	श्री कान्तीलालजी जैन	कलिंजरा
२१.	श्री नाथूलालजी जैन	डूंगरपूर
२२.	श्री मणीभद्रजी जैन	डूंगरपूर
२३.	श्रीमती रेखा पतंगिया	इन्दौर
२४.	श्रीमती सुशीला सालगिया	इन्दौर
२५.	श्रीमती निर्मला पंचोली	झावआ
२६.	श्री सूरजमलजी बोवरा	इन्दौर
२७.	श्री श्रीमती कौशल्या पंतगिया	
२८.	श्री हीरालाल जैन	कलिंजरा
२९.	श्री बाबूभाई गांधी	इडर
३०.	श्रीमती संगीता मेहता	इन्दौर
३१.	श्री कान्तीलाल सी जैन	कलिंजरा
३२.	श्री बाबुभाई कोठारी	इडर
३३.	श्री डॉ. जन्बुकुमार हूमड़	उदयपुर

सौजन्य : कान्तिलाल मगनलाल पतंगिया
B/k, जैन वृन्दावन १, रानीसती मार्ग,
मलाड (ई) -४०००९७

३४.	श्री सनतकुमार तलाटी	प्रतापगढ़
३५.	श्री सोहनलाल गांधी	कलिंजरा
३६.	श्री हसमुख गांधी	इन्दौर
३७.	श्री नलिनीकान्त मेहता	अहमदाबाद
३८.	श्री अभयकुमार साह	गुलबर्गा
३९.	श्री सुमतिलाल गांधी	मुम्बई
४०.	श्री कान्तिलाल टेकचंद दोशी	विजयनगर

आर्थिक सहयोगी

हम इतिहास शोध समिति को प्रकाशन तथा आर्थिक सहयोग और हूमड़ समाज के सम्मेलनों में सहयोग देने के लिये निम्न महानुभावो एवं संस्थाओं को धन्यवाद के साथ आभारी है।

(१) केन्द्रीय तथा प्रांतिय नगर इतिहास समितियों

(२) विजयनगर, पावागढ़, इन्दौर, गजपंथा, फल्टन सम्मेलन के सभी मुख्य अतिथि, अथिति विशेष, स्वागत मंडल, स्वागत समिति के सदस्यो, सम्मेलनों के आयोजन में सहभागी

(३) सम्पादक, सम्पादक मंडल के सभ्यों

(४) इतिहास के प्रथम एवं द्वितीय भाग में विशेष आर्थिक सहयोग देने वाले महानुभावो

- (१) माननीय श्रेष्ठी श्री चिरजीलालजी वक्षी, बम्बई
- (२) श्रीमती अरुणा निर्मलकुमार बंडी, बम्बई
- (३) श्री जीवराज खुशालचंद गांधी
- (४) डॉ. शशीबहन कैलाशचन्द्र बागड़िया
- (५) श्रीमती प्रसन्ना सूरजमल शाह, बम्बई
- (६) श्रीमती नीलम के एम, साह बम्बई
- (७) श्री धनसुखलालजी पालविया, इन्दौर
- (८) हूमड़ जैन समाज ट्रस्ट, इन्दौर
- (९) श्री रोशनलाल पूनमचंद संघवी, अहमदाबाद
- (१०) श्री मोहनलाल किशनलाल पाडलिया
- (११) श्री हीरालाल माणेकलाल गांधी, अकलुज
- (१२) श्रेष्ठी श्री धनकुमार जवेरी, बम्बई

सौजन्य : कान्तिलाल मगनलाल पतंगिया
B/k, जैन वृन्दावन १, रानीसती मार्ग,
मलाड (ई) -४०००९७

(१३) श्री अनिलकुमार महेता, फल्टन

(१४) श्री विमलकुमार गांधी, इन्दौर

(१५) श्री विजयकुमार रामावत, इन्दौर

(१६) श्री कान्तिलाल कोटडिया, बम्बई

(१७) श्रीमती मथुराबाई खुशालचन्द्र गाधी, फल्टन

(१८) श्री दिलिप सोभागमल कियावत, पूना

(१९) श्री केशरीमलजी मथुरालालजी प्रतापगढ़

निम्न संस्थाओं का विशेष सहयोग

१. श्री हूमड़ जैन समाज - इन्दौर

२. श्री हूमड़ युवा मंच - इन्दौर

३. श्री जैन युवा संघ - बम्बई

४. श्री प्रतापगढ़ जैन महिलामंडल - बम्बई

५. श्री हूमड़ संस्कार ट्रस्ट - इन्दौर

जिन सज्जनो ने परिवारीक विवरण एवं इतिहास के पृष्ठों में सौजन्य से देकर सहयोग दिया उन सबको धन्यवाद

विशेष : अचानक अधिक बरसाद से केन्द्रिय कार्यालय का रेकार्ड जो सेलरमें था उस रेकार्ड को नुक्शान होने, एवं सभी संस्थाओं एवं जिनालय का अपूर्ण विवरण प्राप्त होने व अन्य सोसियल सर्वे का कार्य अपूर्ण होने से इनका विवरण इतिहास भाग-२ में प्रकाशित नहीं हो सका है उनके लिये अलग विशेष ग्रन्थ की व्यवस्था का प्रयत्न कीया जा रहा है।

अ. भा. हूमड़ इतिहास शोध समिति द्वारा स्थापित हूमड़ इतिहास नगर समितियों के पदाधिकारियों की जिनके कठिन परिक्षम एवं सहयोग से सर्वे होसका है यादी :-

अखिल भारतीय स्तर पर हम समस्त हूमड़ समाज की जनगणना का अभूतपूर्व कार्य करण के एवं उन समितियों से हूमड़ो के जिनालयो का विवरण, शिलालेख प्रशस्ति एवं अन्य सामग्री प्राप्त करने के लिए उन सभी समितियों के सदस्यों को इतिहास समिति और महासंघ से धन्यवाद।

नगर समिति के सदस्यों की यादी खुब बडी होते से सीर्फ पदाधिकारीयों के नाम प्रकाशित किये जा रहे हैं। इसके लिए क्षमा।

सौजन्य : नरेन्द्रकुमार नेमीचन्द कोडिया
7/अ/२६ नवजीवन सोसायटी, नेमीचन्द रोड,
बम्बई-४०००0८

महाराष्ट्र

क्रम	नाम	गाँव/शहर
१.	श्री महेन्द्र शाह	बम्बई
२.	श्रीमती अरुमा बंडी	बम्बई
३.	श्रीमती मीरा गांधी	बम्बई
४.	श्री शरदकुमार गंगाराम दोशी	फलटन
५.	श्री विलासचन्द्र हीराचन्द्र दोशी	फलटन
६.	श्री जवाहरलाल हीराचन्द्र फडे	फलटन
७.	श्री हीराचन्द्र मोतीचन्द्र गांधी	सोलापुर
८.	श्री डॉ. कुलभूषण लोखड़े	सोलापुर
९.	श्री जम्बुकुमार चन्दुलाल शाह	बारामती
१०.	श्री माणेकचंद तुलजाराम शाह	बारामती
११.	श्री मिलिन्द्र रत्नकांत फड़े	बारामती
१२.	श्री अरविन्द माणेकलाल गांधी	पुना
१३.	श्री कान्तिलाल डी. चोपरा	पुना
१४.	श्री प्रोफेसर नटवरलाल जैन	धुलिया
१५.	श्री आमोद रतनचंद महेता	नासिक
१६.	श्री रमणीकलाल नन्दलाल दोशी	मालेगाँव
१७.	श्री डॉ. हूकमचंद आर फड़े	पंढरपुर

राजस्थान

१.	श्री कान्तिलाल शाह	तलवाडा
२.	श्री नरेन्द्रकुमारजी खोडनिया	सागवाडा
३.	श्री शांतिलाल चुनीलाल	साबला
४.	श्री विजेन्द्रकुमार वसंतलाल बेड़ा	पारसोला
५.	श्री केसरीमलजी चूनीलाल गांधी	नौगावा
६.	श्री चेतनलाल मंगलजी भरडा	भीलूडा
७.	श्री शांतिलाल दोशी	धरियावाद

सौजन्य : नरेन्द्रकुमार नेमीचन्द कोडिया
7/अ/२६ नवजीवन सोसायटी, नेमीचन्द रोड,
बम्बई-४००००८

८.	श्री केशवलाल धुलजी शाह	बाँसवाड़ा
९.	श्रीमती निर्मला गांधी	डूँगरपुर
१०.	श्री वदानीलालजी गांधी	सलूम्बर
११.	श्री शांतिलालजी पाड़लिया	सलूम्बर

मध्यप्रदेश

क्रम	नाम	गाँव/शहर
१.	श्री शेठ जयन्तिलाल नथमलजी	कुशलगढ़
२.	श्री सज्जनलालजी शाह	झाबुआ
३.	श्री सुरेन्द्रचन्द्र जैन बागड़िया	उज्जैन
४.	श्रीमती जया सालगिया	इन्दौर
५.	श्री मनसुखलालजी भाचावत	मन्दसौर
	गुजरात	
१.	श्री सुगनचन्द्र चिमनलाल आंजनिया	सुरत
२.	श्री शैलेषकुमार कापड़िया	सुरत
३.	श्री महेन्द्रभाई वृन्दावन शाह	सुरत
४.	श्री करणमलजी जैन (भाचावत)	अहमदाबाद
५.	श्री बाबुभाई सागरमल तलाटी	दाहोद
६.	श्री रश्मिकान्त गांधी	दाहोद
७.	श्री बिपिन कोटडिया	हिंमतनगर
८.	श्री प्रविण सागरमल तलाटी	बड़ोदरा
९.	श्री सनतकुमार आशालाल शाह	बड़ोदरा
१०.	श्री मनुभाई पोपटलाल धामी	भावनगर

सौजन्य : नरेन्द्रकुमार नेमीचन्द कोडिया
7/अ/२६ नवजीवन सोसायटी, नेमीचन्द रोड,
बम्बई-४०००0८

वर्तमान में दक्षिण भारत में भट्टारक गद्दी (मढ)

१. मूडबद्री (कर्नाटक)

२. श्रवणबेलगोल (कर्णाटक)

३. हेम्बुज (हूमंच) श्री देवेन्द्रकीर्तीजी

४. कार्कल (कारकल) श्री ललित किर्तीजी

५. वस्तिमठ (नरसींहराजपुर) या मगथीशंची श्री लक्ष्मीसेनजी

तामीलनाडू

तामीलाडू के भट्टारक श्री लक्ष्मीसेन द्वारा चार मठ (गद्दी) स्थापित की गई (१) दिल्ली (२) कोल्हापुर (३) जिनकांची मठ

दिल्ली शाखा नष्ट होकर कोल्हापुर मठ

कोल्हापुर से पेनगोडा (कर्नाटक)

महाराष्ट्र (वलात्कारगण)

मलखेड - कारंज - लातूर - कोल्हापुर - लक्ष्मीसेन - (जिनसेन - सेनगण)

इनकी शाखा रिद्धिपूर, वालापूर रामटेक अमरावती आसगाँव, एलिचपूर, नागपूर जितूर नादंडे, देवगिरी, पैंटन, शिरजी

हूमड़ों के प्राचीन नाम

हमको शिलालेखो से तथा लाणियोकी लीस्ट से यह पाया गयाकि पुराने जमाने में जाति के व्यक्तियों के नाम रजपूतो जैसे थे : रामावत्, वसावत्, वागजी, समादिया, जादवजी, शाह चेद्रभाषा, पाडलिया तेजीधजी पाडलिया, सदमयती, चन्द्रपती, वाधजी, राधवजी कपटी संदधती गोदी वीरजी, वेठामेधजी, वोरा, मदनजी, मोदी, हरिसिंघ, संघवी राघवजी, कोठारी, खीमजी, जयासो हंदीग, राजसींग, साबल्यो सींधजी मलासा, बदबण, मेता राजसींध, कोड़िया केशादिसिह - हलीचंद, दावडा रतनसिंघ, सुराणो, वजेसिंघ, दोसी हरीघजी दावडी तेजसींध, महासींध दोसी खजबसिंध, गुगदी गजीसिंध, मेता हरिसिंध खमरसिंघ जादवजी डूंगरसिंह आदि सबही अडका वालेके नाम इस प्रकार पाये जाते है।

(माननीय श्री जवाहरलाल वैद्य द्वारा संग्रहसे)

नाम : ओम जनरल एन्ड स्टील मेटल्स कापड़णा
पोस्ट कापड़णा, ता. जिला धुले
महाराष्ट्र

प्रस्तावना

जैन समाज भव्य भारतवर्ष का एक ऐसा समाज है, जिसकी शानदार विरासत, अनेकान्त, स्याद्वाद अहिंसा, सत्य जो कि शाश्वत मूल्य हैं, हमेशा प्राणीमात्र को शान्ति का रास्ता बता रहे हैं ।

ऐसे जैन समाज का अंग है ''हूमड़ समाज'' । शान्ति और व्यवस्था के लिये एक देश होने पर भी परिवार, समूह, गाँव, शहर, जनपद, राष्ट्र एवम् उन सभीकी विस्तृत सीमा विश्व । इसी प्रकार सामाजिक एवम् धार्मिक सामान्जस्य के लिये एक होने पर भी समाज सुख एवम् शान्ति के लिये अपने दायरे का निर्माण करता है । हूमड़ जैन समाज भी इसी का प्रतिरूप है । हूमड़ जैन समाज, अन्य जैन समाज, राष्ट्र, आगे चलकर विश्व एक ऐसी कडी है जो अनेकता में दर्शन कराती है । समाज, राष्ट्र एवं विश्व का इतिहास इन्हीं कडियोंकी गुंथी हुई अस्मिताओं की कहानी है ।

जिस समाज का इतिहास प्रकाश में नहीं, वह समाज अपने अतीत के बारे में अनेक प्रकार की कल्पनायें किया करता है । कुछ वर्ष पूर्व सुनते आ रहे थे कि हूमड़ शब्द के तीनों अक्षर गांठ लिये हुये, टेढ़े । क्षत्रियोंकी आन बान लिये हुये हूमड़ । खेडब्रह्मा की जन्मभूमि छोडकर अलग अलग बिखरते-बसते हूमड़ । अठारह हजार हूमड़, १८ गौत्र, नौ हजार खेडवा पुरोहित एवम् हूमड़ों की जाजम में विशिष्ट गुण यह है कि जा और जमजा, समाज और धर्म की बात कर पर मूंछ नीची न होने पावे, चाहे निर्णय करने में कितनी हो देर क्यों न हो ।''

ये बाते सुनते अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ उठतीं कि आखिर हूमड़ो का इतिहास क्या हैं ? क्या हैं हूमड़ ? क्या हैं गौत्र ? क्या है खेडब्रह्मा ? केवल किंवदन्तियों एवम् टुकडों-टुकडों में इधर-उधर की बातें जरूर मिलतीं पर पूर्ण चित्र साकार नहीं हो सकता था । अक्सर विभिन्न पत्र पत्रिकाओं, धार्मिक व साहित्य पुस्तकों में कहीं कहीं हूमडो का उल्लेख होता तो, जिज्ञासा प्रबल हो जाती एवम् इतिहास के अनछूये पहलुओं की ओर जाने छटपटाहट होती ।

यह जिज्ञासा केवल मेरी अपनी नहीं, समस्त हूमड़ समाज के प्रबुद्धों की भी थी ।

हमारे सद्भाग्य से अगस्त'१३ में श्रीयुत् हीरालालजी सालगिया अहमदाबाद के सद्प्रयास से विजयनगर (गुजरात)में परमपूज्य आचार्य सुबाहुसागरजी महाराज के मंगल आशीर्वाद, श्रीयुत् शान्तिलालजी दोसी इन्दौर की अध्यक्षता एवम् श्री दिगम्बर जैन हूमड़ समाज विजयनगर के सौजन्य से बैठक आयोजित हुई । इसी बैठक में बम्बई, दिल्ली, ईन्दौर, इडर, कलिंजरा, प्रतापगढ़, अहमदाबाद एवं भारत के अन्य स्थानों से आये हुये इतिहास में रुचि रखने वाले हूमड़ श्रेष्ठियोंसे विचार विमर्श के बाद ''अखिल भारतीय हूमड़ इतिहास शोध समिति'' की स्थापना की गयी ।

सौजन्य से : अशोककुमार चन्दनलाल बण्ठी
इ. एस. आई. नन्दानगर,
९/१, नार्थ राज महोल्ला, ९ तिलक नगर रोड, इन्दौर

स्थापना के दिन शोध समिति के प्रमुख संयोजकके रूपमें श्री हीरालालजी सालगिया नियुक्त किये गये तथा इतिहास प्रकाशन का भार इनके कन्धों पर डाला गया।

श्री सालगियाजी जो आयु की हीरक जयन्ती (७६ वर्ष) के समीप थे उन्होंने जिस उत्साह एवम् मेहनत से कार्य हाथमें लिया वह इतिहास की एक मिसाल बन गया। आपने अथक प्रवास कर, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश एवम् राजस्थान के अनेक क्षेत्रों का दौरा किया। हमारी आदिभूमि खेडब्रह्मा एवम् देरोल भी गये। पुरातत्त्व के महासागर में अनेक गोते लगाये। हूमड़ पुराण, गोत्रों की प्राचीन चित्रावली, वैध जवाहरलालजी प्रतापगढवाले कों का इतिहास सम्बन्धी करीब ८०-८६ वर्ष पूर्व का संकलन, भट्टारक परम्परा सम्बन्धी साहित्य, गुजरात के पुरातत्त्व विभाग द्वारा प्रकाशित साहित्य आदि का गहन अध्ययन किया, उसका संकलन भी किया। साथ में जैन समाज के विभिन्न पंथों एवं समाजों द्वारा प्रकाशित इतिहास के ग्रन्थोंका अवलोकन भी किया। इन सारी सामग्री को मूल रूपसे छाया प्रतियों द्वारा संकलन किया। संकलन के साथ इतिहास प्रदर्शनी के रूपमें चित्रों, चार्टस् एवम् विवरण के साथ हूमड़ इतिहास का सम्पूर्ण चित्र समाज के सामने रखा।

इतिहास की प्रदशर्नी के बाद में एक अहम् प्रश्न था हूमड़ जैन समाज का सांस्कृतिक इतिहास प्रथम भाग का प्रकाशन। शोध समिति तथा समाज में इतनी व्यग्रता थी कि शीघ्र ही प्रकाशन होना चाहिये, पर इतिहास शोध करना बडा कठिन होता है। समय सीमा में बाँधना एवम् प्रकाशित करना कितना दुःसाध्य है वह किसी से छीपा नहीं। साथमें समाजमें इतिहासविज्ञों की कमी अहमदाबाद जैसे गुजराती प्रदेशमें भाषाको कम समय में परिष्कृत कर प्रकाश में लाना बडा कठिन। समाज का प्रबुद्ध वर्ग दूर दूर तक बिखरा हुआ तथा अपने व्यवसाय में व्यस्त ऐसे कठिन समय में सालगिया साहब ने इसके त्वरित प्रकाशन का बीडा उठाया। संजोई हुई सामग्रीको डॉ. रामकुमार गुप्ता को संपादक एवं श्रीमती मंजु भटनागर को उप संपादिका को रूपमें नियुक्त कर (प्रथम भाग) के प्रकाशन के लिये आप संजोई हुई सामग्रीको इतिहासकी कसौटी पर कस परखकर निष्कर्ष निकालते गये। अनेक विद्वानों ने इसमें ने इसमें पूर्णरूप से सहयोग दिया।

सबसे गहन प्रश्न था हूमड़ समाज का उद्भव कार्यकाल। विद्वानों में गहन मतभेद थे। कतिपय विद्वान इसे ४ से ११ वीं सदी का उद्भव समय मानते थे, पर आपने भगवान महावीर की परम्परा एवम् मूलसंघ के उद्भव का अध्ययन कर लाड़ वंशीय क्षत्रिय जातिको हूमड़ों की पूर्वज सिद्ध कर हमारी इस गौरवशाली जातिकी २००० दो हजार वर्ष प्राचीन सिद्ध कर सबको आश्चर्य चकित कर दिया। साथमें उत्पत्ति से लेकर वर्तमान तक "अमरबेल" के रूपमें इतिहास को कालक्रमानुसार प्रस्तुत कर हूमड़ इतिहास के प्रति गहरी रूचि समाजमें पैदा की।

हमारी मूलभूमि खेडब्रह्मा के बारे में भी पुरातत्त्व सामग्री का अध्ययन किया। जिनालय एवम् खेडब्रह्मामें अवस्थित, गोत्रकुण्ड इसके १८ गोख एवम् १८ कुल देवियों की मूर्तियाँ नष्ट होने की बातको सप्रमाण स्पष्टकर, हमारी मूल भूमिको प्रकाशमें लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

सौजन्य से : अशोककुमार चन्दनलाल बण्ठी

इ. एस. आई. नन्दानगर,

९/१, नार्थ राज महोल्ला, ९ तिलक नगर रोड, इन्दौर

१८ गोत्रों के बारे में समाजमें प्रचलित तथा विभिन्न स्थानों से प्राप्त गोत्रों की सूचियों की तुलनात्मक सारिणी विद्वानों से तैयार करवाई । सभी गोत्रों का विश्लेषण किया गया । अपभ्रंश होते हुये गोत्रों की नामावलियोंका मूल शब्द से मिलान करते गये । हूमड़ पुराण के गोत्र चित्रावली को भी प्रकाश में लाकर समाजके सामने लाने का प्रयास किया ।

गोत्रों के सम्बन्ध में एक मूल बात प्रस्तावना में उचित समझाता हूँ कि कई हूमड़ परिवार ऐसे हैं जिन्हें अपना गोत्र मालूम नहीं । शादी ब्याह के सम्बन्ध में कठिनाई का अनुभव होता है, अत: इस सम्बन्ध में कोई ठोस निर्णय लिया जाना उचित होगा । मेरा ऐसा मानना है कि हमारी मूल जन्मभूमि खेड़ब्रह्मा, कुल पुरोहित खेड़वा, एवम् प्रथम गोत्र खेरजा, (जैसा कि गोत्र सूचियों में प्राय: खेरजा को प्रथम स्थान दिया है) अत: समीचीन यही होगा कि अनाम गोत्रवाले शान्ति विधान आदि करके प्रथम गोत्र धारण कर लेवें जिससे आनेवाले समय में गोत्र शुद्धि बनी रहे । यह केवल प्रस्ताव है, आनेवाले समय में इस पर विचार किया जाकर निर्णय तो लेना ही पडेगा ।

भट्टारक परम्परा का हूमड़ जाति से धनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । इस पर भी विशद सामग्री संकलन कर इतिहास के दोनों भागों में समाहित की है । साथमें भट्टारक परम्पराका साहित्य, भट्टारकों द्वारा प्रतिष्ठा, मूर्तिलेख, शिलालेखों का भी यथा स्थान हूमड़ जाति के परिपेक्ष्य में रखा है, वह भी हमारे गौरवमयी इतिहासकी झलक प्रस्तुत करता है ।

हूमड़ों द्वारा निर्मित एवम् प्रतिष्ठित जिनालयों तथा मूर्तियों के चित्रों का दोनों भागों में प्रकाशन भी इन ग्रंथों का विशेष आकर्षण है । इसे देखकर कौन रोमांचित नहीं होगा ? इस सचित्र प्रकाशन से हूमड़ गौरव का अतीत एवम् वर्तमान, पाठक के समक्ष चलचित्र भांति साक्षात हो उठता है । हमारे तीर्थ को तीर्थ जिनका हूमड़ों से निकट सम्बन्ध रहा है मांगीतुंगी, पावागढ़, गिरनार, अंकलेश्वर, गजपन्था, कुन्थलगीरी, दहीगाँव, आदिका ऐतिहासिक एवम् धार्मिक परिपेक्ष्यमें सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है ।

दूसरे खण्ड में हूमड़ों की जनगणना का क्षेत्र एवम् गाँव अनुसार परिवार तथा कुल जनसंख्या का विवरण दिया है । जनगणना स्त्रोतमें कही कहीं विसंगति भी है, पर यह जल्दी में किया गया प्रयास है, एक बार सामान्य आँकडे आ जान पर प्रकाशनके बाद जो क्षेत्र रह गये हैं उनकी जनसंख्या का प्रकाशन भी उपादेय होगा । जहाँ विसंगति है, स्थानीय प्रबंधक यदि उसको भी ध्यानमें लायेंगे तो निश्चित इसमें आनेवाले समयमें संशोधन किया जा सकेगा । १८ गोत्रोंकी जनसंख्या का विश्लेषण भी स्तुत्य है । साथमें दानवीर माणिकचंदजी द्वारा सन् १९९४ में कराई गई हूमड़ जनगणना से तुलनात्मक विवरण भी अनूठा है ।

हूमड़ परम्परा, संस्कार, रीति रिवाज जैसे अध्यायों की खोजपूर्ण प्रस्तुति बेमिसाल है । वाग्वर, प्रतापगढ़, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रदेशों में बसने वाले हूमड़ों की परम्परा, संस्कार एवं रीति रिवाज का विभिन्न लेखकों द्वारा सजीव वर्णन वास्तवमें सराहनीय तो है ही साथमें हमारी उच्च परम्परा एवं गौरवशाली

सौजन्य से : अशोककुमार चन्दनलाल बण्ठी
इ. एस. आई. नन्दानगर,
९/१, नार्थ राज महोल्ला, ९ तिलक नगर रोड, इन्दौर

भूतकाल की याद भी ताजी कर देता है। श्रीमती कौशल्या पतंग्या का हूमड़ संस्कार लेख, रीति रिवाज, विवाह आदिके लेख वास्तवमें उनकी अन्वेषक जिज्ञासा को प्रदर्शित करते हैं। इन अध्यायों के अन्य लेखक श्री मणिभद्रजी जैन (खडगक्षेत्र) श्री धनराजजी गोवाडिया (१८ हजार हूमड़ समाज), आनन्दीलाल जीवराजजी दोसी (महाराष्ट्र समाज) भी साधुवादके पात्र हैं जिन्होंने अपने क्षेत्रकी परम्परा, संस्कार, रीतिरिवाज पर बृहत् प्रकाश डाला है। जैन विवाह संस्कार का एक पूर्ण अध्याय भी अपने आपमें महत्त्वपूर्ण है, जिसके द्वारा आनेवाले समयमें जैन विवाह विधिसे विवाह संस्कार करानेकी ओर समाज उन्मुख हो सके। गौत्र का विस्तृत वर्णन तथा हमारे प्राचीन, अर्वाचीन रीति रिवाज प्रकाशित किया जा रहे हैं। उन पर गम्भीरता से विचार करके हमारी दो हजार वर्षकी संस्कृति है उसमें आवश्यक्तानुसार परिवर्तन किया जा सकता है, परन्तु मूल संस्कृति की भावना को बचाये रखने का सामूहिक प्रयास आवश्यक है।

हूमड़ समाज का सांस्कृतिक जीवन श्रीमती कौशल्याजी पतंग्या द्वारा लिखित अध्याय हमारे सांस्कृतिक जीवनकी झलक प्रस्तुत करता है, जिसमें आभूषण, रंगबिरंगे वस्त्र केश सज्जा, प्रसाधन, दैनिक उपभोग के पात्र आदि का शोधपूर्ण लेख प्रस्तुत कर न केवल हमारे भूतकाल वरन् वर्तमानकाल के सांस्कृतिक जीवन का जीता जागता परिदृश्य प्रस्तुत किया है। लेख पढ़ते ऐसा लगता है मानव जीवन कितना वैविध्यपूर्ण एवम् विचित्रताओंसे भरा है जहाँ हमारे ये परिधान, आभूषण, केशसज्जा आदि सत्यम्, शिवम् सुन्दरम् के दर्शन कराते हैं।

शगुन सुरभि में सगाई गीत, शादी गीत, पापडगीत, बन्नाबन्नी गीत, समझोड़, पीठी का गीत, वणाक वदावरो गीत, माण्डवा गीत, वाना का गीत, आलवणा गीत, मामेरे का गीत, घोडीका गीत, फेरे का गीत, वदावा का गीत, जापे का गीत, ढूंढ का गीत, लोकगीत एवं पारसी (पहेलियाँ) जैसे विविध प्रसंगो पर गाये जाने वाले गीत हूमड़ समाजकी आनन्दमयी लाक्षणिकता के प्रतीक तो हैं ही, साथमें इन भूले बिसरे को जीवित रखने का अनूठा प्रयास कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

हूमड़ों के धार्मिक एवम् सामाजिक पर्वो का अध्याय भी हमारी धरोहर को अक्षुण्ण रखने में सहायक सिद्ध होगा। हमारे रथोत्सव का सचित्र सजीव वर्णन साथमें राजस्थानके वाग्वर, प्रतापगढ, डूंगरपुर, झाबुआ, संतरामपुर, दाहोद आदि स्थानों के रथोत्सव मेलोंका आयोजन हमारे सर्व धर्म समभाव का जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत करता है।

भारतीय ज्योतिष एवम् पंचाग का लेख भी महत्त्वपूर्ण है। हूमड़ समाज की मान्यताओं के विभजनको भी तेरह पंथ एवम् बीस पंथ मान्यता के परिपेक्ष्य में तटस्थ निरुपति किया है। साथमें हूमड़ समाज ही एक ऐसा समाज है जो विभिन्न मान्यताओं के विभाजन में भी एकता को संजोये हुये है।

इतिहास के झरोखे के रूपमें विभिन्न मूर्तिलेखों, शिलालेखों, कतिपय जैन ग्रन्थों के अवतरणों आदिका इस इतिहास के पृष्ठों पर उल्लेख कर भविष्य में भी हूमड़ इतिहास के खोज की अविरल धारा को निरन्तरता प्रदान करने का सप्रयास है ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

सौजन्य से : अशोककुमार चन्दनलाल बण्ठी

इ. एस. आई. नन्दानगर,

९/१, नार्थ राज महोल्ला, ९ तिलक नगर रोड, इन्दौर

माननीय बाबूभाई सी. गांधी ईडर द्वारा दानवीर माणिकचन्दजी एवम् महिलारत्न मगनबाई का जीवन चरित्र हूमड़ समाज की ८६ वर्ष पूर्व की सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थिति का अवलोकन कराती है।

इतिहास के इन दो भागों में २००० साल के इतिहास को संजोकर लिपिबद्ध करनेका प्रयास किया है। पर इतिहास को इन दो खण्डों तक सीमित नहीं किया जा सकता। अभी भी संयोजक ने इतनी सामग्री इतिहास के परिपेक्ष्य में एकत्रित कर रखी है कि आने वाले समयमें इसका भी उपयोग कर नवीन तथ्य प्रकाशमें लाये जा सकते हैं।

समय सीमा एवम् ग्रन्थ पृष्ठों की सीमा को देखते हुये तथा कई क्षेत्रों से पूर्ण सूचनायें प्राप्त नहीं होने से हूमड़ इतिहास के सम्बन्ध में निम्न तथ्यों के कसौटी पर कसकर समावेश नहीं हुआ है, जिसे प्रबुद्ध समाज के समक्ष लाना समीचीन समझता हूँ।

(१) हूमड़ समाज के प्रमुख ऐतिहासिक पुरुष एवम् महिलायें जिन्होंने धार्मिक क्षेत्रके साथ सामाजिक व राजनैतिक रूपमें अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, खासकर रियासतों के जमाने में मन्त्री, दीवान, सेनापति के रूपमें। स्वतंत्रता संग्राम में भी अनेक हूमड़ो ने त्याग एवं बलिदान की अनूठी मिसाल कायम की है। इन सभी का क्षेत्र अनुसार जानकारी प्राप्त कर प्रकाशमें लाना हमारा सबका कर्तव्य है।

(२) आचार्य शान्तिसागरजी (छाणी) एवं आचार्य समन्तभद्र महाराज एवं अन्य संत हूमड़ समाज में हुये हैं उनका चरित्रचित्रण भी प्रकाशमें लाना आवश्यक है।

(३) हूमड़ समाजमें वाग्वर, महाराष्ट्र, गुजरात में अनेक सामाजिक एवम् धार्मिक भक्ति काव्य, लावाणियाँ प्रचलित है जो विलुप्त होती जा रही हैं, उनका संकलन एवं प्रकाशन भी उपादेय होगा।

(४) भारतीय संस्कृति एवम् जैन समाज के परिपेक्ष्य में हूमड़ों के सम्यक् अवदान पर भी प्रकाश डालना समीचीन होगा।

(५) हूमड़ आज देश देशान्तर में बस गये है, खासकर विदेशोंमें बसनेवाले हूमड़ों का भी परिचय भविष्य के लिये दिशा निर्देशन का कार्य करेगा।

(६) हूमड़ों द्वारा स्थापित सामाजिक, धार्मिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं का भी परिचय एवम् विवरण का प्रकाशन भी आवश्यक है।

(७) साबरकांठा में हमारी मूलभूमि खेडब्रह्मा के आसपास के क्षेत्रोंमें जैन पुरातत्त्व का अनमोल भंडार छिपा हुआ है। वहाँ हूमड़ों में एक कहावत प्रचलित है कि देरोल की पाँच शेरी विजयनगर तक जाती थी अर्थ स्पष्ट है देरोल से विजयनगर तक्का ३० की.मी. का यह क्षेत्र नगर के रूपमें वैभवशाली एवं जैन संस्कृति-हूमड़ संस्कृतिका केन्द्र रहा होगा। गुजरात समाचार के अर्ध साप्ताहिक पूर्ति शतदल में प्रकाशित निम्न मुख्य पंक्तियों की ओर मैं ध्यान दिलाना चाहूँगा।

सौजन्य से : अशोककुमार चन्दनलाल बण्ठी
इ. एस. आई. नन्दानगर,
९/१, नार्थ राज महोल्ला, ९ तिलक नगर रोड, इन्दौर

"સાબરકાંઠામાં ખેડબ્રહ્મા પાસેના જંગલોમાં ૧૦૦૦ એક હજાર વર્ષ જૂનાં શિવ અને જૈન મંદિરોનાં અવશેષો ધૂળ ખાઈ રહ્યાં છે. માનવ જાતની વસ્તી વગરનું દસ કી.મી.નું પોળો ગ્રામ ભવ્ય ભૂતકાળની સાક્ષી લઈને સૂમસામ ઊભું છે."

उपरोक्त लेखकी मुख्य पंक्तियों से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र के पुरातत्त्व के अवशेषों का संरक्षण एवं खोज आवश्यक है। हूमड़ समाज एवं शोध समिति को भी इस ओर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये तथा आगामी प्रकाशनमें इस ऐतिहासिक अवशेषों की पूर्ण खोजकर प्रकाशित करना चाहिये।

एक बातमें प्रबुद्ध पाठकों से भी निवेदन करूँगा कि बहुत ही कम समयमें तथा अहमदाबाद-गुजरातमें गुजराती परिवेशमें प्रकाशन आदि से वाक्य रचनायें तथा शब्द चयनमें त्रुटियाँ हो सकती हैं जिसे अन्यथा नहीं लेंगे एवं इन त्रुटियों से शोध समिति एवम् संयोजक महोदय को अवगत करायेंगे। भविष्यमें यदि आवृत्ति प्रकाशन हो या संशोधन निकालना पड़े तो आपके सुझाव प्रकाश स्तम्भका कार्य करेंगे।

इतिहास के दोनों भागों में अलग अलग सूत्रों से अनेक जानकारियों प्राप्त हुई है इन सभी जानकारियों के समन्वय से ही यह दुष्कर काम सम्पन्न हो सका है ऐसा मेरा मानना है। संयोजक महोदय, संपादक मण्डल, निर्देशक महानुभाव, लेखकोंने एवं अन्य जाने अनजाने महानुभावों ने इस कठिन कार्य को पूर्ण करने में जो कगातार श्रम किया है उनके सहयोग को भूलाया नहीं जा सकता।

अंतमें इन दोनों भागों में इतिहास एवं पुरातत्त्व, साहित्य और कला, धर्म एवं दर्शन, संस्कृति एवं समाज शास्त्र इन सबका सार्थक संगम तथा समन्वय प्रस्तुत किया है। इस प्रकाशन एवं प्रचार से यदि समाज की सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक अमूल्य धरोहर की रक्षा की प्रेरणा मिले तो इतिहास प्रकाशन का यह प्रयास सफल माना जायेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

अखिल भारतीय हूमड़ इतिहास शोध समिति के अध्यक्ष महोदय, संयोजक एवं पदाधिकारियोंने मुझे इस ग्रन्थकी प्रस्तावना के लिये अवसर दिया उसके लिये मैं इन सभी का आभार प्रदर्शित करता हूँ।

हीरालाल सी. जैन
कलिंजरा
जिला - बांसवाड़ा (राजस्थान)

संयोजक की कलम से

भारत के इतिहास के परिपेक्ष्य में हम देखें तो एकबात स्पष्ट है कि मध्यकाल तक भारत ने क्रमबद्ध इतिहास की ओर ध्यान नहीं दिया। इतिहासमें वास्तविक बातों के अलावा कल्पना का पूर भी समाहित होता था। भावुक्ता इतिहास लेखनमें यहाँ तक हावी थी कि व्यक्ति की प्रशंसा या निंदामें अतिरेक से काम लिया जाता था, पर इन सभी बातों के बीच हमारे मूर्तिलेख, शिलालेख और कलाने इतिहासके मर्मको समझकर मील पत्थर रूपमें इतिहासको निर्देशित किया।

ठीक यही बात जैन इतिहास एवम् हूमड़ इतिहास के बारेमें कही जा सकती है। हूमड़ संस्कृति जनपदोंके अंतस्तल में पल्लवित, पुष्पित होती रही है। जनपद के लोकगीत, लोककथाएँ, लोककला, लोकभाषामें एवं रीतिरिवाज हूमड़ों की सांस्कृतिक सौंदर्यवृत्ति एवं उदार भावनाओं को प्रतिबिम्बत करते हैं।

तीर्थंकरों की मूर्तियाँ, मूर्तलेख, शिलालेख आदि विभिन्न वस्तुएँ, जो हूमड़ों के प्राचीन जिनालयों तीर्थों व अन्य स्थानों से प्राप्त हुई हैं, वे मूकवाणीमें अपने समयकी झाँकी प्रस्तुत करती हैं। युगका इतिहास इसका साक्षी है।

हूमड़ समाज का इतिहास लानेका विचार बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हूमड़ समाजके देदीप्यमान नक्षत्र सेठ श्री माणिकचंदजी, श्री मूलचंदजी कापडिया, वैद्य जवाहरलालजी आदि के प्रयास भी, पर तात्कालिक परिस्थिति से यह दुष्कर कार्य विचार तक ही सीमित रहा। आधुनिक समयमें संचार एवं आवागमन के साधनों की सुविधाओंके कारण, बिखरे हुये हूमड़ समाज को एक मंच पर आनेका सुअवसर मिला।

ता. १८-३-१९९३ में विजयनगर सम्मेलन में इतिहा, शोध समिति की स्थापना करके मुझे संयोजक एवं श्री शान्तिलालजी दोशीको अध्यक्ष का कार्यभार सौंपकर हूमड़ों के पूर्वज, उनका मूल निवास स्थान, हूमड़ोंके उद्भव का समय, स्थान आदि का संशोधन करके इतिहास प्रकाशन करने का निर्णय लिया गया।

हमारे सामने सबसे बडी चुनौती हूमड़ों के पूर्वजों, उद्भव समय, स्थान विषय में थी, क्योंकि समाजमें इस विषय पर अनेक मतमतान्तर थे। सबसे अधिक समस्या माननीय श्री जवाहरलालजी वैद्य प्रतापगढ़ द्वारा एक निबन्ध जिसमें अनुमान करके वि. सं. ८०० में बागड़ के किसी स्थान उद्भव काष्ठा संघ के आचार्य कुमार सेन द्वारा आदि के उल्लेख और उसके "**दानवीर माणिकचंद**" ग्रन्थ में प्रकाशित होने और उसे अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं एवं विद्वानों द्वारा मान्यता देने से समस्या अधिक जटिल थी। उस निबन्ध के मुख्य अंश निम्न हैं :- "इस जाति की स्थापना का क्या इतिहास है उसका कोई प्रमाणित पता नहीं चलता है।" तो भी इस विषयमें भाई जवाहरलालजी गुमानजी वैद्य प्रतापगढ़ राज्य ने जो छानबीन करके पता लगाया है और हमें एक निबन्ध दिया है उसके आधार पर यह प्रकाशित किया जाता है कि यह जैनियों की ८४ जातियों में ६६वीं जाति है। इसको स्थापित करनेवाले विनयसेन

सौजन्य से : सुरेन्द्रकुमार कस्तूरचन्द तलाटी
१२०४, चन्दनवाला अपार्टमेन्ट
रतिलाल ठक्कर मार्ग, बम्बई - ४०० ००६

आचार्य के शिष्य कुमारसेन हुए हैं। इन्होंने संवत ८०० के अनुमान बागड़ देशमें इस जातिको स्थापित किया है।

"दानवीर माणिकचंद" ग्रन्थसे पृष्ठ ६४ इस निबन्ध में न तो कोई, ऐतिहासिक प्रमाण स्थल, न पूर्वजों के सम्बन्धी तथ्य थे। समाज का एक वर्ग और हस्तलिखित हूमड़ पुराण आदि ग्रन्थ इसे मान्य नहीं करते थे।

उपरोक्त मान्यता ८वीं सदी में बागड़ के किसी विभाग से काष्टासंघ के आचार्य की प्रेरणासे हूमड़ जातिका उद्भव, प्रचलित दूसरी मान्यताओं से मेल नहीं खाता था। अत: एव हमारे सामने हूमड़ों के पूर्वज, उनका निवासस्थान, हूमड़ जाति का उद्भव आदि के ऐतिहासिक प्रमाण की शोध करने की चुनौती थी।

सबसे प्रथम हमने ईड़र, सागवाड़ा, डूँगरपूर आदि के प्राचीन शास्त्र भंडारों, भारतीय ज्ञानपीठ के संशोधन विभाग से प्रकाशित ऐतिहासिक सामग्री से, गुजरात और भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग से उपलब्ध अन्य मुख्य जातियों के इतिहास से प्राप्त मूर्तिलेख, शिलालेख, आगम ग्रन्थों, गुजरात राजस्थान के तीर्थों के इतिहाससे उपलब्ध साहित्य संग्रह करके अध्ययन किया और हम निम्न निष्कर्ष पर पहुँचे कि हूमड़ों के पूर्वज लाड क्षत्रिय जैन अनुयायी गुजरात के रायदेश (लाड़प्रदेश) हिरण्य नदी के तट पर बसे हुए खेड़ब्रह्मा के आसपास निवास करते थे।

यह निश्चय हो जाने पर कि धर्म परम्परा की दृष्टि से हूमड़ जाति सदैव जैन धर्म को मानने वाली रही है।

उस जाति के पूर्वजों के विशेष समुदाय को नये संगठन के निर्माण की किन विशेष परिस्थितियों में आवश्यक्ता पडी। वर्ण व्यवस्था के परिपेक्ष्य में हूमड़ जाति के पूर्वज मूलत: लाड क्षत्रिय थे। भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं मूलसंघ के विभाजन के धार्मिक कारणों से हमारे पूर्वजों के विशेष लाडवंश के (कूलों) संगठन ने सामूहिक रूप सम्मलित होकर एक नये सीमान्त पर एक सूत्र में बंधे रहने और एक नई जाति का गठन अनिवार्य लगने से आचार्य माधनन्दि जिन्हेंआचार्य अर्हतबलीने मूल संघ के विभाजनमें नन्दिसंघ का आचार्य भार दिया था उनके संघ की प्रेरणा से नन्दिसंघ का सांनिध्य स्वीकार किया जो नन्दिसंघ विभाजित होकर आगे जाकर बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिसे हूमड़ समाजने जहाँतक भट्टारकों का अस्तित्व रहा वहाँतक १९वीं सदी के अन्त तक स्वीकार किया।

आंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय वाणिज्य के क्रम में हमारे पूर्वज क्षत्रियों ने, नई संभावनाओं को देखते हुअे नये व्यवसाय चुने और वे तिजारती कासकिलो के क्रम के सरदार और संरक्षक बने। संभव है कि हमारे क्षत्रिय पूर्वजों के लिये आर्थिक सम्पन्नता के स्त्रोत सूखने लगे हो और वाणिज्य की संभावनाओं ने एक नया मोड दिया हो।

इस विशाल अत्यन्त कठिन संशोधन कार्य में अधिक परिश्रम समय की आवश्यरक्ता थी, परन्तु समाजकी अत्यन्त उत्कंठा से इसे संग्रह करके सन १९९४ नवम्बर में पावागठ तीर्थ पर हूमड़ इतिहास का पहला भाग प्रकाशित किया।

प्रथम खण्ड के प्रकाशनमें यह महसूस हुआ कि २००० सालका हूमड़ इतिहास केवल कुछ खंडोंमें ही समाहित नहीं किया जा सकता। संशोधन के दौरान ही यह बात स्पष्ट हो गई थी कि हमें अनेक खण्डों द्वारा विषय जैसेकि ऐतिहासिक, पुरातत्त्व, गुजरात राज्य के इतिहास, अनेक उपलब्ध शोध साहित्यों, शिलालेखों, मूर्तिलेखों से

सौजन्य से : सुरेन्द्रकुमार कस्तूरचन्द तलाटी
१२०४, चन्दनवाला अपार्टमेन्ट
रतिलाल ठक्कर मार्ग, बम्बई - ४०० ००६

एवं हूमड़ समाज के सोश्यल सर्वे हूमड़ों द्वारा निर्माण किये गये जिनालयों का विवरण, गोत्र आदिका समावेश करके दूसरा भाग तैयार करके प्रकाशित करना होगा।

इतिहास की सामग्री प्राप्त करना दु:साध्य कार्य है पर लगातार हमारे निवेदनके उत्तरमें भारत के कोने कोनमें बसने वाले हूमड़ों ने इतिहास की सामग्री, समाजकी जनगणना, जिनालयों का विवरण, मूर्तिलेख एवं शिलालेखों की जानकारी भेजी है।

हूमड़ समाज के विभिन्न क्षेत्र, अपनी स्थिति एवं विशेषताओं के कारण सदैव एक सांस्कृतिक केन्द्र रहे हैं।

प्रत्येक जनपथ का जो योगदान रहा है वह अविस्मरणीय है। प्रत्येक विभाग से प्राप्त शिलालेखों, प्राचीन साहित्य, जिनालयों के अवशेषों का विशेष महत्त्व इन लेखो में दर्शाया है।

इन क्षेत्रों के जो शिलालेख मूर्तिलेख, मूर्तियाँ, जिनालय, प्राचीन हस्तलिखित साहित्य स्थापत्य कला आदि का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद इस जनपथ के लिये एक स्थायी निधि होसके इस वस्तु विषय की दृष्टि से ऐसी सामग्री का संचयन करने का प्रयास किया गया है जो शोधकार्य में सहायक और प्रेरणास्पद हो सके।

यह सामग्री इतनी विशाल है कि लेखन के दो कबाट भी संग्रह के लिये कम है। हमने इसमें से अधिकांश सामग्री को कम्प्युटर पर व्यवस्थित करने का प्रयास किया है, परन्तु इस हूमड़ों की अमूल्य, ऐतिहासिक धरोहर के लिये बहुत कुछ करना आवश्यक है। यद्यपि इतिहासके पृष्ठों की सीमा होने से उसमें अनेक विवरण हम प्रकाशित नहीं कर सके हैं, परन्तु वे केन्द्रीय कार्यालय के रिकार्डमें हैं इन्हें भी व्यवस्थित एवं सुरक्षित करना आवश्यक है जिससे भविष्य में इस हूमड़ समाजकी महत्तवपूर्ण धरोहर को प्रकाशित किया जा सके।

इतिहास की अत्यन्त जटिल गुत्थियों को सुलझाने में अनेक विद्वत् जनों का सहयोग मार्गदर्शन मिला है, हूमड़ समाज के वरिष्ठ वयोवृद्ध सम्माननीय गणेशलालजी छापिया जो नब्बे के ऊपर की आयु पार कर चुके है।

वे प्राचीन इतिहास के जानकार है। एवं गत ६०-६५ वर्षों से समाज को दिशाबोध दे रहे हैं। उनकी प्रेरणा एवम् मार्गदर्शन को भूलाया नहीं जा सकता। इतिहास की प्राथमिक सूत्र सामग्री तक पहुँचने में एवं जटिल गुत्थियों सुलझाने सदैव संपादक मण्डल को एवं मुझे वे सम्बल प्रदान करते रहे। इतिहास के पृष्ठों को सँवारने के मूल तक पहुँचने में श्रीमती कौशल्याजी पतंग्या इन्दौर, श्री धनराजजी गोवाडिया सागवाडा, श्री कान्तिलालजी सी. जैन कलिंजरा, शिक्षाविद् प्राचार्य श्री हीरालालजी सी. जैन, श्री भैयालालजी बंडी प्रतापगढ, श्री बसंतीलालजी ज्योतिषाचार्य केशरियाजी, श्री बाबूभाई सी. गांधी ईड़र, श्री सूरजमलजी बोबरा, श्रीमती संगीता महेता जिन्होंने इतिहास संयोजन के लिए सदैव मार्गदर्शन दिया उन्हें भूलाया नहीं जा सकता। मार्गदर्शन एवं आर्थिक कडीको मजबूत करनेमें श्री प्रकाशचंद्रजी दोशी ईड़र, डा. जे. सी. शाह, ईडर बम्बई के श्रेष्ठी श्री जीवराजजी गाँधी, के. एम. शाह साहब, श्री ज्ञानचन्दजी सेठ, श्री जम्बूकुमारजी हूमड़ उदयपुर, एवं सनतकुमारजी बन्डी, इन्दौर के श्री हसमुखलालजी गांधी, श्री सोहनलालजी गाँधी कलिंजरा, इन्दौर के श्री पवनकुमारजी बागडिया, पलटन के श्री आनन्दीलालजी दोसी, डुंगरपुर

सौजन्य से : सुरेन्द्रकुमार कस्तूरचन्द तलाटी
१२०४, चन्दनवाला अपार्टमेन्ट
रतिलाल ठक्कर मार्ग, बम्बई - ४०० ००६

के श्री मणिभद्रजी एवं श्री नाथूलालजी शाह, सागवाड़ा के श्री धनराजजी गुवाडिया, अकलूंज के श्री हीरालालजी गांधी आदि ने सहयोग दिया जो इतिहास के पृष्ठों पर अंकित रहेगा। इस प्रकाशनन को आर्थिक सम्बल प्रदान करनेमें अनेक महानुभावों ने सहयोग प्रदान किया। खासकर हूमड़ समाज जिनका हमेशा ऋणी रहेगा वैसे सेठ माणिकचन्दजी पानाचन्दजी के वंशज माननीय श्री धनकुमारजी ठाकोरदास झवेरी एवम् उनके परिवार के लिए शोध समिति की ओर से आभार प्रदर्शित करना चाहूंगा कि जिनके महत आर्थिक सहयोग से इस प्रकाशन को आपके समक्ष लाना संभव हो सका। इसके सिवाय इन्दौर के हूमड़ समाज के श्री रतनलालजी बंडी एवं श्री कन्हैयालालजी सालगिया एवं हूमड़ युवामंच इन्दौर, बम्बई युवा मंच, बम्बई समाज, प्रतापगढ़ महिलामंडल व अन्य अनेक संस्थाओं, पत्र पत्रिकाओं म हूमड़ संदेश, हूमड़ मित्र आदि के सम्पादक मंडल का आभारी हूँ।

इतिहास तो स्वयं एक सतत प्रवाहमान धारा है जो निरन्तर बहती रहती है कभी पूर्ण नहीं होती। हमारी इच्छा इसके मूल सूत्र एवं तत्त्व समेट कर उन्हें शब्द निबद्ध कर देनेकी है, परन्तु हमारी सीमाएँ है ऐसे बृहत कार्यो में वर्षों लग जाते हैं। भारत के कोने कोने में बिखरे पडे ऐतिहासिक तथ्यों के संग्रह के हेतु सभी जगह पहुँचना भी दुष्कर कार्य है।

तथ्य से धिरे अगोचर अतीत में विहरते मुझे कठिनाई तब हुई जब कुछ माननीय विद्वानों में विहरते मुझे साथियों के विचारों को इतिहासकी कसौटी पर कसा। ऐसी परिस्थितिमें संकोच भी हुआ, परन्तु उन्हीं सत्य समीक्षकों की ही उत्प्रेरणा से ऐतिहासिक तथ्योंको बारीकी से विश्लेषण करके इस खण्डको प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है।

हो सकता है हमारे इस प्रयासमें त्रुटियाँ भी हों, पर प्रकाशमें आनेके बाद विद्वत्जन इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे तो निश्चित रूपसे इसमें संशोधन एवं परिमार्जन भी किया जा सकता है। विद्वत्जन एवं सहृदयी पाठक मेरी इस अभिलाषाको दृष्टिमें रख कर ग्रन्थ अवलोकन करेंगे।

मध्यकाल एवं वर्तमान समयके हूमडों का जैन संस्कृति को अक्षुण्ण रखने एवं धर्म के महत्त्व को बढाने में भारी योगदान रहा है। साथमें राजनीति एवं सामाजिक कार्यों में भी हूमड़ श्रेष्ठियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है प्रतापगढ़, बांसवाडा, झाबुआ, संतरामपुर, फलटन, बारामती, ईडर एवं अन्य रियासतों में हूमड़ श्रेष्ठियोंके सलाहकार,वित्तप्रमारी एवं उँचे पद पर आसीन होना भी गौरव की बात रही है। स्वतंत्रता संग्राम में भी हूमड़ समाजका भारी योगदान रहा है। इतिहासके इस भागमें इन महापुरुषों का उल्लेख आवश्यक था पर समयकी सीमा एवं उनके बारेमें पूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध न होने से यह काम सम्भव नहीं हो सका। आनेवाले प्रकाशनमें इसकी भी खोज कर प्रकाश में लाना आवश्यक है, ऐसा मानना है।

मैं न तो इतिहासकार हूँ, न साहित्यकार, परन्तु मेरी रुचि हमेशा साहित्य एवं इतिहास में रही है। टेक्सटाइल इंजिनियर और गुजरातमें वर्षों से रहने से, हिन्दी भाषा पर पूर्ण अधिकार भी नहीं है। हो सकता है इन्हीं के कारण, इतिहास संयोजन में त्रुटि भी हुई हो, व्याकरण सम्बन्धी दोष भी हों। मेरा प्रयत्न यह रहा है कि विद्वानोंसे सामग्री चेक करवा कर ही प्रकाशन हो। समयकी सीमा में यही सभी कार्य पूर्ण न हो सका हो तो, इसे अन्यथा नहीं लेकर अपने

सौजन्य से : सुरेन्दकुमार कस्तूरचन्द तलाटी
१२०४, चन्दनवाला अपार्टमेन्ट
रतिलाल ठक्कर मार्ग, बम्बई - ४०० ००६

अमूल्य सुझावों से लाभान्वित करेंगे, ऐसा विश्वास है। अत्यन्त प्राचीन और देश विख्यात हूमड़ समाज का इतिहास प्रस्तुत करना दुःस्साहस है। इस ग्रन्थ में एक प्रस्तुति है। इतिहास संशोधन अखिल धारा है जो कभी पूर्ण नहीं होता, इसलिए यह स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ से ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि को समझना और सर्वेक्षित सांस्कृतिक परिपेक्ष व्याख्यातित करना, इस लेखन का उद्श्य है।

महान इतिहासकार पंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने अपनी जीवन गाथा में विभिन्न जातियों तथा क्षेत्रों के इतिहास का विवरण प्रस्तुत किया है। उन्हों ने यह कहा है कि इन जातियों के स्थापना और विकास का सम्बन्ध मूलतः सामाजिक स्तरीकरण से नहीं है। यह तो किसी कुटुम्ब या वंश के श्रेष्ठ महापुरुषों या उनके विशेष समूह से है, और कालान्तर में उस समूह को गोत्रों में विभाजित किया गया है। यह विवरण अत्यन्त प्राचीन हूमड़ समाज के उद्भव को लागू पडता है कि लाड़ वंश के विशेष कुटुम्बने विशेष परिस्थितियों में नन्दिसंघ को स्वीकार करके हूमड़ जाति की स्थापना की।

इस ग्रन्थ में इतिहास और पुरातत्त्व, साहित्य और कला, धर्म और दर्शन, संस्कृति और समाज शास्त्र इन सब का सार्थक संगम और समन्वय किया गया है।

दुष्कर अनुसंधान की यात्रा में, एक लम्बे खण्ड के पठारों और पडावों का सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत किया गया है
।

एक पुरातत्त्व जाति की जीवन्त गाथा को, तथ्य और अनुमान से जोड़ने और आँकने का यह उल्लेखनीय प्रयास है।

गत् ८-१० महिनों से मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा है, इसलिये लगभग ४ महिनों के लिये प्रकाशनका काम बन्द रहा। अब माननीय श्री जीवराजजी गांधी, श्री ज्ञानचंदजी सेठ, श्री शान्तिलालजी दोशी, श्री प्रकाशचंदजी दोशी, डॉ. जे. सी. शाह ईड़र के विशेष सहयोग और लेखन, प्रूफरीडिंग आदि सभी व्यवस्थाओं में माननीय श्री हीरालालजी जैन कलिंजरा एवं श्री बाबूभाई, गांधी ईड़र के सहयोग से यह प्रकाशन पूर्ण होसका है। इन सबका विशेष आभार। प्रकाशन के बाद निम्न विषयों पर समाज को गम्भीरता से विचार करना है :-

(१) पावागढ़ तीर्थ क्षेत्र पर महासंघ की स्थापना के समय समस्त भारत के ११०० से अधिक प्रतिनिधियों की उपस्थिति में निम्न प्रस्ताव पारित किया गया।

प्रस्ताव नं. ३ - **''हूमड़ उद्भव स्थल खेडब्रह्मा में स्मारक निर्माण**
जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी।''

हूमड़ समाज की स्थापना के वर्ष अंतराल के पश्चात् आयोजित अखिल भारतीय हूमड़ समाज सम्मेलन सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित करते हुए हर्ष अनुभव कर रहा है कि ''हूमड़ समाज का उद्भव स्थल अतिशय क्षेत्र खेडब्रह्मा-देवपुरी में समाजकी अस्मिता एवं गौरवशाली परम्परा के अनुरूप हूमड़ उद्भव स्थल स्मारक'' निर्मित किया जाय। अखिल भारत एवं विशेषमें बसने वाले हूमड़ स्मारक के निर्माण में तन-मन-धन से सहयोग देने का संकल्प करते हैं।

सौजन्य से : सुरेन्द्रकुमार कस्तूरचन्द तलाटी
१२०४, चन्दनवाला अपार्टमेन्ट
रतिलाल ठक्कर मार्ग, बम्बई - ४०० ००६

प्रस्तावक : श्री, गणेशलालदी छापिया (उदयपुर) समर्थक : श्री हीरालालजी जैन कंलिंजरा
श्री, रतनलालजी गोराणिया (उदयपुर) अनुमोदक : अध्यक्ष अठारह हजार हूमड़ समाज बागाड़ क्षेत्र
अध्यक्ष - खडग क्षेत्र अध्यक्ष-मेवाड़ क्षेत्र

प्रस्ताव सर्वानुमतिसे पारित किया गया ।

उपरोक्त प्रस्ताव के अनुसंधान में परम पूज्य गणिनी आर्यिका १०५ श्री ज्ञानमती माताजी हस्तिनपुर के संघ के गुजरात में विहार के समय महासंघ के पदाधिकारी देरोल, ईड़र, गुजरात के महानुभावों तथा श्री नलिकांत वाडीलाल मेहता एवं श्री सुनील कुमार वाडीलाल मेहता (श्रेष्ठी देरोल के वर्तमान अहमदाबाद में) विशेष रूपसे हूमड़ों के उद्‌भाव स्थल देरोल (देवपुरी-खेडब्रह्मा) में आमंत्रित किये गये और निवेदन किया गया कि इस हूमड़ों के उद्‌भव स्थल पर स्मारक (कीर्ति स्तम्भ) के लिए स्थल चयन करके उसकी रचना करने की प्रेरणा प्रदान करें।

उसके फल स्वरूप हूमड़ समाज के विशाल समुदाय विशेष करके ईडर के नगर शेठ माननीय श्री पोपटलाल कालीदास कोठारी (मुख्य ट्रस्टी श्री बावन जिनालय देरोल), श्री प्रकाशचंदजी दोशी, श्री बाबूलाल कोठारी (ईडर) तथा श्री नलीनीकांत महेता, श्री सुनीलकुमार महेता, श्री सुभाषभाई मेसाणीया देरोल आदि की उपस्थिति में पूज्य आर्यिका गणिनी ज्ञानमती माताजीने जो हूमड़ों के प्रथम जिनालय श्री १००८ आदिनाथ दिग्मबर जैन बावन जिनालय अतिशय क्षेत्र देरोल "देवपुरी नगरी" (जो आतंक वादियों और मुगलों द्वारा तीनबार तोड़ा गया उसी मूल स्थल पर) के प्रांगण में मूल नायक के बिलकुल सामने १०X१० जगह कीर्ति स्तम्भ के लिए चयन करके उसकी रचना की प्रेरणा प्रदान की । समस्त हूमड़ समाज उनका आभारी है । ऊपरोक्त रचना को कार्यान्वित बनाने का प्रस्ताव है। ऊपरोक्त स्थल के लिए देरोल बावन जिनालय के ट्रस्टी मंडल की सम्मति प्राप्त कर ली गई है। मेरी बहुत समय से इस योजना (स्मारक-कीर्ति-स्तम्भ) रचना में सक्रिय योगदान देने की थी, परन्तु अब स्वास्थ्य के कारण लाचारी है ।

(१) वर्तमान में गोत्र कुण्ड गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग के आधीन है, जो अत्यन्त जीर्ण अवस्था में है। वहाँ शिलालेख लगाना और उसका जीर्णोद्धार अत्यन्त आवश्यक है।

(२) हिरण्य नदी के तट पर १० की.मी. लम्बा पोलो नगर जो १५०० वर्षों प्राचीन था जो १३ वी सदीमें मुगलोंके द्वारा नष्ट किया गया उस जंगल में हमारे १४ जिन मन्दिरों के अवशेष हैं जो गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग के आधीन हैं, वे हमारे पूर्वजों की धरोहर हमारे तीर्थ हैं, वहाँ स्मारक आलेख की व्यवस्था आवश्यक है।

अत: एव इसे योग्य संग्रह करके सुरक्षित रखना चाहिये, जिससे भविष्य में आगे संशोधन में उपयोगमें लिया जा सके । अन्त में सभी संपादक मण्डल इतिहास शोध समिति के सदस्य, समाज के सैंकडों कार्यकर्ताओंका एवं आर्थिक सहायता देनेवाले श्रेष्ठीगणों को आभार के साथ धन्यवाद ।

(३) हूमड़ इतिहास शोध समिति के केन्द्रीय कार्यालय में गत् ८ वर्षों में संग्रह किये गये १०० से अधिक

सौजन्य से : सुरेन्द्कुमार कस्तूरचन्द तलाटी
१२०४, चन्दनवाला अपार्टमेन्ट
रतिलाल ठक्कर मार्ग, बम्बई - ४०० ००६

प्रकाशित ऐतिहासिक ग्रन्थ (जो वर्तमान में उपलब्ध नहीं है) हस्त लिखित हूमड़ पुराण, हूमड़ वंशावली, माननीय जवाहरलालजी वैद्य द्वारा लिखित विस्तृत जानकारी, अनेक चार्ट नक्शे, सारे भारत के हूमड़ समाज से प्राप्त हूमड़ों के जिनालय विवरण, मूर्तिलेख, मूलनायक एवं मंदिर के फोटो के साथ प्रशस्ति, हूमड़ों के ऐतिहासिक स्त्री और पुरुष जो श्रीमती मेहता इन्दौर ने बडे परिश्रम से तैयार किया है परन्तु प्रकाशन नहीं हो सका है) हूमड़ों के भट्टारकों का विवरण जिसमें उनके द्वारा तैयार किये ग्रन्थों की समालोचनाएँ एवं उनके समय की विस्तृत घटनाओं का विवरण (लगभग ५०० पृष्ठोंमें) है उपलब्ध है। सबसे महत्त्व के जिनालयों, मूर्तियों, स्मारकों, ऐतिहासिक पुरुषों के बडी संख्या में 'मूल फोटो हैं। मैं मेरे स्वास्थ्य के कारण ऊपरोक्त विशाल संग्रह का संशोधन, प्रकाशन नहीं कर पाऊँगा, परन्तु समाज से मेरा विनम्र अनुरोध है कि यह संग्रह हूमड़ समाजकी बहुमूल्य धरोहर है, जिसे समाजने खूब परिश्रम, प्रकाशन की आशा एवं उत्साह के साथ भेजा है।

नोट : प्रस्ताव पारित किया गया में कुछ और

(१) समाजने खूब परिश्रम के साथ प्रकाशनार्थ सामग्री भेजी है - इसके लिए धन्यवाद समाज के प्रति।

(२) इस ग्रंथके प्रकाशन कार्यके लिए समाजकी ओरसे बहुत बडी धन राशि प्राप्त हुई है - धन्यवाद है समाजके प्रति।

(३) हूमड़ समाजसे नम्र बिनती है कि जौ संग्रह केन्द्रीय कार्यालयमें है, उसकी उचित व्यवस्था करे - संग्रह एवं प्रकाशनके लिए, ताकि यह सफल हो सके।

(४) इस ग्रंथमें हूमड़ जातिके उद्‌भव एवं विकासकी गाथा है। उसका विश्लेषण करें : बिखरे हुए तथ्योंको एक सूत्रमें पिरोनेके लिए कटिबद्ध हों- ऐसा प्रयास है संयजोकश्री का एवं संपादक मंडलका।

हीरालाल जैन सालगिया
संयोजक, इतिहास शोध समिति

सौजन्य से : सुरेन्द्रकुमार कस्तूरचन्द तलाटी
१२०४, चन्दनवाला अपार्टमेन्ट
रतिलाल ठक्कर मार्ग, बम्बई - ४०० ००६

भूमिका

एक विहंगावलोकन हूमड़ समाजके उत्थान, बिखराव एवं उपलब्धियोंका

(अतीत से वर्तमान तक का)

- श्री हीरलालजी जैन सालगिया अहमदाबाद

संयोजकश्री अखिल भारतीय जैन हूमड़ इतिहास शोध समिति

- श्री बाबूलाल चूनीलाल गांधी, ईडर

हूमड़ समाज जैन समान का एक अभिन्न अंग है।

मंगलाचरण

श्री (शोभा) से युक्त हिरण्य नदी से उत्तर दिशा में पुष्पों से आच्छादित भू भाग (सुमनु धरा) में हूमड़ जाति निवास करती है। यह भूमि चतुर एवं मृदुभाषी हूमड़ों के अठारह गोत्रकी जननी है।

आदि पुरुष ब्रह्मा अथवा आदिनाथ गुरुदेवसे उत्पन्न पुत्र (हूमड़) जो अठारह गोत्रों में विभक्त हैं वे जिनेन्द्र देव द्वारा प्रशस्त आत्म-दर्शनके साधना पथ पर चलते हुए बंधु बांधवों सहित सुख-शांतिकी वृद्धि करें।

हूमड़ पुराण से उपलब्ध

संबोधित हूमड़ नामसे

पढ़िये हूमड़ नाम के रसप्रद इतिहासको : बात है हिरण्य नदीके तट पर बसी हुई नगरी खेडब्रह्माकी। एक समय था बड़ी संख्या थी वहाँ क्षत्रियोंकी - जैन धर्ममें आस्था-श्रद्धा रखनेवालों की। विक्रमकी प्रथम शताब्दीके अंत तक एवं द्वितीय शताब्दी के प्रारंभमें मौजूद थे महाराजा रायचंद। उनके उस वक्तके समयमें मौजूद थे एक दिगम्बर जैन तत्त्वज्ञ हूम्माचार्य। बडा प्रभाव था आपका: आपके प्रति उन लाट-लाड़ क्षत्रियोंकी बड़ी आस्था थी : सिर्फ आस्था हीं नहीं, उनकी बड़ी भक्ति थी आप के प्रति। आपने खेडब्रह्मा नगरीके उस १८००० क्षत्रियों के संगठनको संबोधित किया हूमड़ नामसे। इसे-इस घटनाको बल मिलता है निम्न पंक्तियों से :

विक्रम १०१ माध सुधी पंचमी गुरुवार।
पूजा प्रतिष्ठा दानविध वर्ती जय-जयकार।

दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो,

विक्रम संवत् १०१, वीर संवत् ५७१ सन् ४५ (यानी आजसे १९५५ वर्षों के पूर्व) हमारे ये पूर्वज हूमड़ कहलाये।

नोंध : हिरण्य नदी के तट पर स्थित खेडब्रह्मा का संदर्भ मिलता है महाभारत, विष्णुपुराण, हरिवंशपुराण जैसे सर्वमान्य ग्रंथोमें। इससे स्पष्ट होता है कि, नगरी खेडब्रह्मा ५००० या उससे भी अधिक वर्ष पुरानी प्राचीन है।

सौजन्य : नरेन्द्रकुमार नेमीचन्द कोडिया
7/अ/२६ नवजीवन सोसायटी, नेमीचन्द रोड,
बम्बई-४०००0८

समृद्धिके शिखर परकी नगरी खेडब्रह्माने अपनी आँखों से सावन-भादो वरसाया

बात है सन् १३१९ की । १४ वीं शताब्दी में हुए बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजीने आक्रमण किया हिन्दुस्तान की सस्य श्यामल संस्कार-भूमि गुजरात (लाट-लाट) प्रदेश पर । गुजरात को तहस नहस करनेमें कोई कमी का नहीं छोड़ी उसने । गुजरात अंतर्गत नगरी खेडब्रह्मा उससे अछूती नहीं रह पायी । बादशाहके सेनापति अलफखाँने खेडब्रह्माके हिन्दु शैव देवालय एवं जैन देवालय मिट्टीमें मिला दिये । उन मंदिरों एवं जिनालयों की मूर्तियों के टुकडे टुकडे कर दिये : उनके कला वैभवको नष्ट करने में, हिचकिचाहट का अनुभव तक नहीं किया उसने ।

अदितिकी बावड़ी के एक शिलालेखसे स्पष्ट होता है कि १३वीं सदीके अंत तक खेडब्रह्मा समृद्धि की ऊँचाई पर था । प्राचीन कालमें वहाँ पर मंदिरों एवं बावडियों की संख्या सैंकड़ों में थी ।

हूमड़ गोत्र के संबंध

हूमड़ पुराण में उल्लेख है - भूमि खेडब्रह्मा चतुर एवं मृदुभाषी हूमड़ों के अठारह गोत्रकी जननी है । अठारह गोत्रों के बारेमें विशद प्रकाश डाला गया है हूमड़ जैन समाजका सांस्कृतिक इतिहास भाग-१ के पृष्ठोंमें ।

हूमड़ अपने गोत्रके अलावा, दूसरे गोत्रके साथ अपने पुत्रों या पुत्रियों का विवाह सम्पन्न करते हैं / करातें हैं ।

भाग-१ के प्रगट होनेके बाद, भारतके लब्ध प्रतिष्ठित अखबार 'टाइम्स आफ इन्डिया' की अहमदाबाद से मंगल, दिसम्बर ३०, १९९७ के दिन प्रगट होनेवाली आवृत्तिमें गोत्रके बारेमें भी प्रकाश ड़ाला गया हैं । लेखिका है लीना मिश्रा : लेखका शीर्षक है :

(देखिये पेज-७५ पर संपूर्ण लेख मित्र के साथ गोत्र कुंड के बारे में)

रत्ने वैभवसे युक्त जिनालय हूमड़ों के

जैन पुराणों में देरोल की पहचान है देवपुरी के नामसे । प्राचीन समयमें देरोल खेडब्रह्मा का एक भाग था । देरोल में अनेक जैन, विष्णु, शैव मंदिर थे / हैं । प्राचीन कालमें जो स्थिति खेडब्रह्मा की हुई थी आक्रमणों के द्वारा, उस स्थितिसे गुजरना पडा था देवपुरी को ।

यहाँ पर हूमड़ोंको प्रथम बावन जिनालय निर्मित हुआ था । अनुमान है कि यह विशाल एवं कलावैभवसे युक्त जिनालय विक्रमकी द्वितीय-तृतीय सदीमें निर्मित हुआ था । इस जिनालय पर पहला आक्रमण ७१५ में हुआ खलीफाउमर द्वितीय के सेनापति मोहमम्द बीन कासिम के द्वारा । मूल नायक की प्रतिमाके साथ अन्य प्रतिमाएँ भी नष्ट की गयीं । दूसरा आक्रमण हुआ ८३३ में खलीफा आलमामून के द्वारा और तीसरा आक्रमण हुआ सन् ९७७ में गजनवी के सेनाओंके द्वारा । यहीं स्थिति रायदेश के अनेक जिनालयों की भी हुई ।

सौजन्य : दोशी विनोदकुमार वालचन्द
A/603, रत्नपुरी शोशाला लेव
मलाड पूर्व, बम्बई - ४०००१७

वर्तमान में देरोल के बावन जिनालयों के जीर्णोद्धारमें अनूठा योगदान देनेवाले हैं / थे स्व. सात प्रतिमाधारी श्री वाडीभाई चूनीलाल मेहता देरोल के एवं छह प्रतिमाधारी श्री पोपटभाई कालीदास कोठारी ईडर के । १९९१ में पंचकल्याणक महोत्सव के समय इस जिनालयमें भ. आदिनाथजी मूलनायक जिनबिंबकी प्रतिष्ठा (स्थापना) की गयी उल्लासपूर्ण वातावरणमें ।

(देखिये अपनी अनूठी कला लिए हुए अपने प्रथम बावन जिनालयकी तस्वीर पृष्ठ दो पर एवं प्राचीन श्री १००८ पार्श्वनाथ जिनालय की मूलनायक प्रतिमाजी की तस्वीर को पृष्ठ ४ पर : इस जिनालयके निकट कई जिनालयों के खंडहर भी हैं ।)

नोट : ईड़र से देरोल देवपुरी ३० कि.मी. की दूरी पर है, जबकि खेडब्रह्मा से ८ कि.मी. की दूरी पर है ।

वैभवसे युक्त जिनालय हूमड़ों के

भिलोडा : (साबरकांठा-गुजरात स्थित) बावन जिनालय का निर्माण हुआ भट्टारक श्री सुमतिकीर्तिजी (वि.सं. १६१३-१६३० पट्ट पर आसीन समय) के प्रशस्त मार्गदर्शनमें एवं प्रतिष्ठाचार्य भी आप थे । इसी जिनालयमें कलापूर्ण वैभवसे युक्त है कीर्तिस्तम्भ जो चितौड के स्तम्भकी याद दिलाता है ।

ईड़र की अरावली की पहाडी पर स्थित भ. सुमतिनाथजी जिनालय का कलावैभव भी देखते ही बनता है, जिसे राव रणमलकी चौकी भी कहते हैं । ईडरगढ़ (इल्व दुर्ग) के श्री १००८ संभवनाथ दि. जैन जिनालय ट्रस्टके अंतगर्त है भ. आदिनाथजी दि. जैन जिनालय, जिसका जीर्णोद्धार हो रहा है । इस जिनालयके मुख्य शिखर के साथ दो शिखर और भी हैं, जो कला वैभव से भरे पूरे हैं । इसके जीर्णोद्धार के लिए सतत परिश्रम उठा रहे हैं प्रो. नरेन्द्रभाई शाह ।

भ. १००८ संभवनाथजी के दि. जिनालय (ईडर) में अष्ट प्रातिहार्यसे युक्त है भ. शान्तिनाथजीकी प्रतिमाजी । इस अलौकिक प्रतिमाजी के निर्माणमें जिस अनामी कलाकारने, अपनी सारी शक्ति लगा दी है, धन्य हो गया है वह ।

ऋषभदेव (धूलेवा-केसरियाजी) के बावन जिनालय के निर्माण कार्यमें, हूमड़ों का योगदान भी कम नहीं है । इस जिनालयकी नक्काशी बेनमून है अप्रतिम है ।

पोलो गाँव बसा हुआ था हिरण्य नदी के तट पर। बात है एक हजार वर्ष पहलेकी । नैसर्गिक अनुपम छटा लिए हुए पहाड़ोंकी गोदमें हैं चार जिनालय, एक शिवमंदिर, एक शक्तिमंदिर और एव शिव पंचायत मंदिर । वे मंदिर आतरसुबा गाँवके विस्तारमें हैं । अभापुर विस्तारमें शिवशक्ति मंदिर, सारणेश्वर मंदिर, कुंड और तीन जिनालय हैं । शिल्पकलासे युक्त ये मंदिर, हाल तो खंडहर हैं । यह नगरी १० की.मी. विस्तारमें फैली हुई थी । आज वहाँ कोई बस्ती नहीं है । इतिहास कहता है कि बादशाह अकबरसे लोहा लेनेवाले वीर महाराणा प्रताप गुप्त वेशमें रहे थे पोलो नगरीमें । आलाफखान खीलजी के द्वारा इस भव्य नगरीके मंदिर तोड़ दिये गये

सौजन्य : दोशी विनोदकुमार बालचन्द
A/603, रत्नपुरी शोशाला लेव
मलाड पूर्व, बम्बई - ४०००१७

थे। ईडरसे विजयनगर जानेके रास्तेमें लगभग विजयनगरके पास ही पोलो नगरी है। इसके कई फोटोग्राफ्स छपे हुए है इतिहास के दूसरे भागमें।

(विशेष के लिए पढ़िये गुजरात समाचार दि. ३०-६-१९९९ की शतदल अर्ध साप्ताहिक पूर्ति को। इसका लेखनकार्य और प्रस्तुतीकरण किया है श्री झवेरीलाल मेहताने।)

विस्तार भयसे इतनी ही जानकारी काफी हैं : आप देखिए प्रथम और द्वितीय भागके / द्वितीय भागमें छपे हुए, उपलब्ध, हूमड़ों के जिनालयों के फोटोग्राफ्स।

हूमड़ समाज क्यों बिखरा ?

श्री हूमड़ समाज का प्रभुत्व पहले गुजरात स्थित खेड एवं ईडर के आसपास था। सातवीं शताब्दी के लगभग हूमड़ जैन समाज ईडर नरेशके साथ धार्मिक मतभेद के कारण अथवा कोई और कारणवश मतभेद हो जानेसे हूमड़ समाजने वहाँ रहना उचित नहीं माना। अठारह हजार हूमड़ नौ हजार खेड़ूवा ब्राह्मणों के साथ गुजरात छोड़कर वागड़ क्षेत्रकी ओर गये। वे सागवाड़ा स्थिर हुए : वहाँ पर उन्होंने सात जिनालय बनवाये। कालांतरमें आजीविका के लिए यहाँ से कई प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा, इंदौर आदि नगरों में जाकर बसे।

आज भी सागवाड़ा की जाजम अठारह हजार हूमड़ समाजकी जाजम कहलाती है। यहाँ का संगठन श्री अठारह हजार दशा हूमड़ जैन समाज श्री साड़े बारह मंदिरजी बंदीजी एवं चोखला संबंधी जैन समाजके नामसे जाना जाता है।

नोट : महाराष्ट्र के कई प्रमुख नगरों एवं गाँवोंमें भी हूमड़ समाजसे पहुँचे हुए हूमड़ हैं। एम.पी. में भी हूमड़ रहनेवाले है।

आध्यात्मिक क्षेत्रकी चरम सीमा पर / हूमड़ समाज की यशकलगी

दक्षिण भारतमें / दक्षिणमें आध्यात्मिक चेतनाका शंखनाद फूँकनेवाले थे १९-२०वीं शताब्दी के प्रथम आचार्य रत्न चा. च. श्री शांतिसागरजी (बेलगाँव-कर्णाटक) : उत्तर भारत में आध्यात्मिक चेतनाका शंखनाद फूँका आचार्य रत्न शांतिसागरजी छाणीने। आप बीसवी सदी के प्रथम आचार्य रत्न है हूमड़ समाजके : हमें गौरव है आपके लिए।

आपने ब्र. व्रत एवं सात प्रतिमा अंगीकार की पर्वताधिराज सम्मेदशिखरजी के स्वर्णभद्र कूटपर जहाँ से हमारे इष्ट देव विघ्नहर पार्श्वनाथजीने मोक्ष रूपी लक्ष्मीका वरण किया। आपने क्षुल्लक दीक्षा ली गढ़ीमें भ. आदिनाथजीके समक्ष। आप मुनिदीक्षासे विभूषित हुए सागवाड़ा में भ. आदिनाथजी के समक्ष-उनके शीतल पावन सांनिध्यमें - भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी के दिन सं. १९८० में।

आपके प्रशस्त कार्य : छाणीमें सरस्वती भंडार का निर्माण
सागवाड़ा एवं इंदौरमें श्राविकाश्रमों का निर्माण

सौजन्य : दोशी विनोदकुमार बालचन्द
A/603, रत्नपुरी शोशाला लेव
मलाड पूर्व, बम्बई - ४०००९७

आपका साहित्य-सृजन : श्री शिखरजीकी लावरी

दो शास्त्र संग्रह

आपका स्वर्गारोहण हुआ वि.सं. २००० में सागवाड़ा में ।

अज्ञान अंधेरेमें भटकनेवाली जनताको प्रशस्त राह दिखानेवाले आपके चरणोंमें कोटि कोटि नमस्कार । (विशेष के लिए पढिये : ० प्रशांतमूर्ति आचार्य १०९ श्री शांतिसागर महाराज (छाणी) स्मारिका १९९१ : प्रकाशक : स्मारिका समिति, शाहपुर (मुजफ्फरनगर) (यु.पी.)

प्रशांतमूर्ति आचार्यश्री शांतिसागर महाराज छाणी एक परिचय प्रकाशक : दि. जैन समाज गया (विहार) १९९२

उज्जवल व्यक्तित्वके धनी हूमड़ भट्टारक श्री सकलकीर्तिजी

भट्टारक पद्मनंदी के तीन शिष्ये थे : १ सकलकीर्ति २. देवेन्द्रकीर्ति ३. शुभचंद्र ।

भट्टारक सकलकीर्तिजी (वि.सं. १४६३-१४९९) : आपके आदेश दिया गया, ईडरकी गद्दी स्थापित करनेका । आप नग्न रहते थे । आप चारों अनुयोगों के ज्ञाता थे एवं संस्कृत भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार था । असाधारण उज्जवल व्यक्तित्वके धनी थे आप ।

आपकी संस्कृत भाषा की रचनाएँ कुल मिलाकर २४ हैं । मूलाचार सिद्धांतसार दीपक, कर्म विपाक जैसी रचनाएँ आपके अगाध ज्ञानकी परिचायक है । आपके द्वारा कई नये मंदिरों का निर्माण कार्य हुआ एवं आपने प्रतिष्ठाएँ करवायीं १४ जिन पंचकल्याणिक प्रतिष्ठाएँ आपके प्रशस्त मार्गदर्शनमें हुई । आपके परंपराके पट्टाचार्योंने आपका सर्वत्र स्मरण किया है ।

हूमड़ योगदान - प्रकाशनों के बारेमें

बात है ७० साल पहलेकी । उस समय क्षु. आदिसागरजी (भिलोड़ा-गुजरात) ने लघु जिनवाणी संग्रह (जिसके संग्राहक आप ही थे) अपनी ओरसे छपवाकर सूरतमें प्रगट होनेवाले दि. जैन मासिक पत्रिका के ग्राहकों को भेट दी थी । आज वह इतनी लोकप्रिय हो चुकी है कि इसकी चौदहवीं आवृत्ति वीर सं. २५२५ में प्रगट हो चुकी है । इसके प्रेरणामूर्ति थे जैनजातिसेवक स्व. मूलचंद कसनदास कापडिया एवं प्रकाशक हैं उनके पौत्र श्री शैलेषभाई डाह्याभाई कापडिया, सूरत । महान उपकार रहा है आपका पूज्यश्री क्षु. आदिसागरजी का, हम गुजराती भाषियों के लिए । क्षु. आदिसागरजी स्वयं हूमड़ थे ।

बात है साप्ताहिक जैनमित्र की । १०१ वाँ वर्ष चल रहा है उसका । सारे भारतवर्ष में / उसके कोने-कोने तक पहुँच कर वह दे रहा है अपना अमूल्य योगदान । वर्षोतक मानव संपादक एवं प्रकाशक रहे हूमड़ शिरोमणि स्व. मूलचंद कसनदास कापडिया, स्व. डाह्याभाई मूलचंद कापडिया और आज अपनी अनूठी

सौजन्य : सुशील भुरालालजी
सी. एम.पी. ५, गीतांजली नगर, 4th Floor,
बोरीवल्ली पश्चिम, बम्बई - ४०००९२

सेवाएँ दे रहे है श्री शैलेषभाई डी. कापडिया। इसका प्रकाशन हो रहा है, सूरतसे।

इंदौर से प्रगट होनेवाले हूमड़ संदेश 'एवं' हूमड़ मित्रने इनके द्वारा हूमड़ समाजमें अभूतपूर्व जागृति लानेमें कोई कसरको नहीं छोडा है।

श्री गुजरात दि. जैन सिद्धांत संरक्षिणी सभा के द्वारा जो जो प्रकाशन हुए हैं उनके लिए ठास कदम उठानेवाले है हूमड़ समाजके कर्मठ कार्यकर्ता श्री बिपिनभाई के कोटडिया (हिंमतनगर के)।

ग्रंथालय

भ. १००८ पार्श्वनाथजी दि. जिनालय ईडरमें एक विशाल ग्रंथालय है, जिसमें हस्तलिखित एवं छपे हुए ग्रंथ हैं। इसकी विशेषता यह है कि, इसमें कन्नड भाषामें ताडपत्रों पर लिखे हुए ग्रंथ हैं एवं स्वर्णाक्षरों में लिखे हुए ग्रंथ भी।

इस युगके शतावधानी–और राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी जिन्हें अपने गुरुओंमें से एक श्रीमद् राजचंदजीको गुरु मानते थे –ऐसे महान तत्त्वज्ञ श्री राजचंदजीने द्रव्यानुयोगका ग्रंथ 'द्रव्य संग्रह' इसी ही ग्रंथालयसे लेकर पढ़ा था, जिसके फल स्वरूप, उनके विचारों में एक नये मोड़ने जन्म लिया था।

इस ग्रंथालयका सुचारु संचालन यहाँ के मूकसेवक श्री पूनमचंद गांधी (हूमड़) कर रहे हैं।

फलटनमें भी श्री श्रुतभंडार व ग्रंथ प्रकाशन समिति के द्वारा 'जिनवाणी' प्रकाशन का कार्य हो रहा है हूमड़ समाजके द्वारा। फलटण नगरी दक्षिण भारतकी काशी के रूप में मानी जाती है।

श्रेष्ठीवर्ग / कार्यकर्तावर्ग

जहाँ जहाँ हूमड़ों के जिनालय हैं, वहाँ हूमड़ श्रेष्ठीवर्योंने दान देनेमें कोई कसर नहीं छोड़ा है। इतना ही नहीं उनके द्वारा अन्य जिनालयों और संस्थाओंमें (जो भी हमारे ही है) उदार हाथों से दान दिया है और समय समय पर देते रहे हैं।

आजतक के श्रेष्ठी वर्यों में, उनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा जिनके द्वारा समाजसेवाका एक भी क्षेत्र अछूता नहीं रह पाया है-ऐसे हैं १९-२०वीं शताब्दी के महान नर पुंगव दानवीर माणिकचंदजी।

(पढिये : जिन्हें पाकर धन्य हो उठी / हो गयी धरा भारतवर्षकी लेखको)

सेठ पूनमचंद घासीलाल जौहरी, मुंबई जिन्होंने आचार्यश्री १०८ शांतिसागरजी (दक्षिण) एवं उनके संघको साथमें लेकर, पूज्यश्री के सम्मेदशिखरजीकी वंदना करवानेके अपने उत्तरदायित्वको निभाया। आप हूमड़ थे।

(पढिये : आपके परिचय को दूसरे भागमें)

औरभी बहुतसे श्रेष्ठीवर्य एवं कर्मठ कार्यकर्ता हैं हूमड़ समाजमें, जिन्होंने समाज और धर्मके प्रति अपनोंको समर्पित करनेमें सात्त्विक आनंदका अनुभव किया है।

सौजन्य : सुशील भुरालालजी
सी. एम.पी. ५, गीतांजली नगर, 4th Floor,
बोरीवल्ली पश्चिम, बम्बई - ४०००९२

ये है : उद्योगपति श्री मोतीलालजी झवेरी बम्बई के, उद्योगपति श्री वाचचंदजी हीराचंदजी शेठ, श्री ज्ञानचंदजी शेठ बम्बई के, श्री जीवराजजी गांधी बम्बई के, श्री धनकुमारजी झवेरी बम्बई के स्व. श्री माणिकभाई गांधी फलटनके, श्री आनंदीलालजी गांधी फलटनके, श्री शान्तिलालजी दोशी इन्दौरके, श्री के.एम.शाह बम्बईके, श्री बाबूभाई (हीरालालजी) गांधी आकलूंजके, श्री पोपटभाई कोठारी ईडरके, श्री प्रकाशभाई दोशी ईडरके, डॉ. जयंतभाई शाह ईडरके, श्री शैलेशभाई कापडिया सूरतके, श्री बिपिनभाई कोटडिया हिंमतनगरके, श्री हीरालालजी जैन कलिंजराके, श्री हीरालालजी जैन (सालगिया) अहमदाबाद के श्री बाबूलाल सी. गांधी ईडरके -और ऐसे कई नामी-अनामी हूमड़ श्रेष्ठीवर्य और कार्यकर्ता हैं, जिनके योगदान को कभी भूलाया नहीं जा सकता।

हूमड़ समाजमें ऐसी महिलाएँ भी हुई हैं, जिन्होंने समाज और स्त्रियोंमें, स्त्रियों के विकासके लिए बहुत बड़ा भारी योगदान दिया है तन-मन-धन से।

महिला रत्न मगनबाईजी (जे.पी.)ने।

(पढ़िये : 'सृष्टि बागका एक अनमोल रत्न' - महिला रत्न मगनबाईजी (जे.पी.) लेखको।

- महिला रत्न कंकुबहन एवं महिला रत्न ललिता बहन।

(इनके बारेमें पढिये 'महिलारत्न मगनबाई' कृतिको - रचयिता लेखक हैं ब्रह्मचारीश्री सीतलप्रसादजी)

- 'महिलारत्न कांताबहन (समाज भूषणश्री हीरालालजी जैन सालगिया की सहधर्मचारिणी, अहमदाबाद

श्री माणिकबाई दि. जैन पाठशाला (स्थापना संवत् १९४९) ईडर जिसमें अपना बहुमूल्य धन दिया है, धर्मके प्रति अतूट श्रद्धा रखनेवाली माणिकबाई, मुंबईने। शताब्दी वर्षकी ओर बढ़ रही है यह पाठशाला जो हूमड़ समाजके लिए गौरवकी बात है। श्री माणिकबाई हूमड़ थी।

उपसंहार

इसमें हूमड़ समाज के उद्भव से लेकर आजतक के हूमड़ समाज के उत्थान, हूमड़ समाज क्यों बिखरा एवं हूमड़ समाजकी उपलब्धियों पर प्रकाश डालनेका यथासंभव प्रयास किया गया है।

संक्षेपमें कहना है :

हूमड़ समाज अपने उत्कर्ष की एक ऊँचाईकी सीमा पर है। उसने त्यागवीर दिये हैं तो बड़े बड़े श्रेष्ठीवर्य भी, उसने अध्यापक दिये हैं तो डोक्टर्स एवं इंजीनियर्स भी, उसने समाजसेवक दिये हैं तो समाज सेविकाएँ भी, उसने कर्तव्यनिष्ठ नेता भी दिये हैं राजकारण के साथ जुडे हुए।

आज विदेशोंमे भी हूमड़ रहते हैं और वहाँ अपने अनूठे संस्कारों से प्रभावित करते हैं वहाँके निवासियोंको। हूमड़ों के रीतिरिवाज भी संस्कारों की अमीट छाप छोडे हुए हैं।

हूमड़ समाज एक सूत्रमें पिरोये रहकर अपना विकास करता रहे ऐसी मंगल कामनाओं के साथ लेखनी विराम लेती है। हूमड़ पुराण के मंगलाचरणकी इस पंक्तिके साथ।

ते सर्वे सौख्यक्ता धन स्वजनयुता मंगलं विस्तरन्तु।

जयजिनेन्द्र।

सौजन्य : सुशील भुरालालजी
सी. एम.पी. ५, गीतांजली नगर, 4th Floor,
बोरीवली पश्चिम, बम्बई - ४०००९२

श्री अखिल भारतीय हूमड़ जैन महासंघ

ज्ञानचन्द्र नन्दलाल सेठ, परम संरक्षक सदस्य एवं कार्याध्यक्ष

संगठन एक महान शक्ति है, यह एक निर्विवाद सत्य है। आज के युग में विशेषकर जहाँ समस्त उपलब्धियाँ, या अधिकार केवल संगठनात्मक परिबल से ही प्राप्त होती देखी जाती हैं, इसका महत्त्व और अधिक बढ़ गया है। छोटी से छोटी ईकाई परिवार से लेकर समाज, दल, देश या राष्ट्र को उसके अस्तित्व के लिये, उसके अधिकारों की सुरक्षा के लिये, सुसंगठित होना अति आवश्यक है। जो देश, राष्ट्र या समाज, अपने संगठन को या उसके घटक को मजबूत नहीं कर पायी उसको मृतप्राय होते देखा गया है।

अपना समाज हूमड़ समाज एक महत्त्वपूर्ण समाज है, जिसके घटक परिवार पूरे भारतवर्ष के कोने कोने में बिखरें पड़े हैं, यहाँ तक की प्रचूर मात्रा में विदेशों में भी जाकर बस गये हैं। हम में से कई व्यक्ति अच्छे प्रबुद्ध शिक्षाविद्, राजनैतिक, धार्मिक रूप से समृद्ध होते हुओ भी एक दृढ़ केंद्रिय सुसगंठन के अभाव में, अपने हूमड़ समाज की अन्य समाजों की तुलना में अपनी अलग पहचान नहीं बना पायी।

सद्भाग्य से हम में से कुछ व्यक्तियों के मनमें यह जानने की जिज्ञासा हुई। आखिर हम हूमड़ हैं कौन ? हम कहाँ सें आये, हमारा अस्तित्व क्या है, हमारे इतिहास क्या है, हमारा भूतकाल की गौरवगाथा क्या है ? यह जिज्ञासा प्रबल होती गयी और एक व्यक्ति जिनका श्रद्धा से नाम लेते हुए हमें गौरव का अनुभव होता है, समाज के वयोवृद्ध विद्वान इतिहास लेखक श्रद्धेय श्री हीरालालजी सालगिया अहमदाबाद के मन में इतनी प्रबल हुई कि समाज के कतिपय प्रबुद्ध विद्वानों से विचार विमर्श के पश्चात् उनके सत्प्रयासों से विजयनगर, गुजरात में १०८ आचार्य सुबाहूसागरजी महाराज के सांनिध्य में उनके आशीर्वादपूर्वक श्री हूमड़ जैन इतिहास शोध समिति की स्थापना हुई। यह घटना, समाज के लिये उसके अखिल भारतीय स्तर पर संगठन के लिये एक आशीर्वाद रूप साबित हुई।

शुभ दिन था नवम्बर १९-२० वर्ष १९९४ तीर्थक्षेत्र पावागढ़ का पवित्रधाम-इतिहास शोध समिति का तृतीय अधिवेशन पूरे भारत के विभिन्न भागों से समाज के श्रीमंत प्रबुद्ध महानुभाव एकत्रित हुए थे। इतिहास के प्रथम भाग का विमोचन के लिए सभी आतुर थे। भूतकाल की अपनी गौरवगाथा के विषय में जानने को सभी आनंद-उत्साह में थे। सभीने अर्न्तभाव से अनुभव किया। समाज के समुचित, सर्वांगी, सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक विकास के लिए समाज का एक अखिल भारतीय स्तर पर सुदृढ संगठन की आवश्यकता है। प्रसन्नता का विषय है कि वह शुभ मुहूर्त शीध्र ही आ गया। २० नवंबर के मंगल प्रभात की तेजस्वी सूर्य किरणों के प्रकाश में पूरे भारत से पधारे हुए ८०० से भी अधिक प्रतिनिधियों की करतल ध्वनी के बीच बड़े हर्षोल्लास से समाज के दानवीर हितचिंतक श्रेष्ठीवर्य श्री धनकुमार ठाकोरदास झवेरी के कर कमलों द्वारा, दीप प्रज्वलित कर अखिल भारतीय हूमड़ जैन महासंघ की स्थापना की धोषणा की गई। धवल आकाश एवं संपूर्ण वातावरण हूमड़ समाज के जय घोष से गुंज उठा। उपस्थित सभी महानुभावों ने कटिबद्ध होकर समाज के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयत्नशील होने की प्रतिज्ञा की। इसी सम्मेलन में अखिल भारतीय हूमड़ जैन महासंघ का विधान बनाने का निश्चय किया गया, जिस हेतु तत्काल एक विधान समिति बनाई गई।

सौजन्य : कान्तिलाल मगनलाल पतंगिया
B/k, जैन वृन्दावन १, रानीसती मार्ग,
मलाड (ई) -४०००९७

गहन विचार विमर्श एवं समाज के प्रबुद्ध महानुभावों के सुझावों को ध्यान में रखकर महासंघ का विधान तैयार किया गया जो दि. १६-१७ दिसंबर १९९५ शनि-रविवार को समाज के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में सर्वसंमति से तीर्थक्षेत्र गजपथ अधिवेशन में पारित किया गया। जिसका प्रमुख उद्देश है-बिना किसी जाति जाति एवं धार्मिक भेदभाव के समग्र मानव समाज की स्वास्थ्य सेवा, सामाजिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, व्यावसायिक एवं नैतिक उन्नति का प्रयत्न करना तथा पर्यावरण संरक्षण, शाकाहार एवं अहिंसा का प्रचार प्रसार करना तथा उद्देशों की पूर्ति हेतु समाज की संस्कृति, कला, इतिहास और पुरातत्व से संबंधित दुर्लभ साहित्य की खोज, संरक्षण, संशोधन तथा प्रकाशन करना समाज के सर्वांगीण विकास हेतु-सांस्कृतिक शिबिरों का आयोजन करना, सम्मेलन बुलाना, विद्यार्थियों के उच्च शिक्षा हेतु आर्थिक सहयोग करना, संगठन को सुदृढ़ बनाने हेतु विविध योजनाएं बनाना।

इसी संदर्भ में ५ व ६ जून १९९९ को दक्षिण भारत की हूमड़ों की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नगरी फलटल में महासंध का द्वितीय महाअधिवेशन, धर्मनिष्ठ, समाजसेवी अकलुज निवासी श्रीमान सेठ हीरालालजी (बाबुभाई) माणकलालजी गांधी की अध्यक्षता में बड़ी सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। जिसमें चर्चोपरांत कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये। इस अवसर पर महिलाओं का अधिवेशन विशेष आकर्षक रहा। सामाजिक चेतना की जागृति एवं संगठनात्मक सुदृढता हो इस हेतु निम्नांकित योजनाएं बनाई गई।

१. समय समय पर छोटे रूप में अलग स्थानों पर स्थानिय समाज के सहयोग से सांस्कृतिक शिबिरों का आयोजन करना समाज की अपनी संस्कृति की रक्षा हेतु चर्चा विचार करना एवं उपाय करना।

२. समाज की महिला संगठनों को सुदृढ करना एवं अधिकाधिक विस्तार करना।

३. हूमड़ समाज के व्यक्ति जिन जिन गांवों या शहरों में रहते हो, वहाँ के सामाजिक प्रतिनिधियों की एक संपर्क निर्देशिका का (पोकेट साइज) प्रकाशन करना, जो किसी भी समय किसी भी कार्य के लिये उपयोगी हो सके।

४. हूमड़ समाज के विवाह योग्य युवक युवतियों का प्रतिवर्ष परिचय पत्र प्रकाशित करना।

५. विद्यार्थियों के उच्च शिक्षार्थ आर्थिक व्यवस्था करना।

६. आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग को आर्थिक सहायता पहुंचाना एवं उनकी आजीविका उपार्जन हेतु विशेष प्रयत्न करना।

अंत: में ये सभी कार्य केवल आपके सहयोग से ही पूर्ण हो सकते हैं। अत: आपसे विनम्र निवेदन है कि आपका तन, मन एवं धन से सहयोग कर अपने समाज के सर्वांगीण विकास में सहभागी बने।

स्मरण रहें अपने समाज हूमड़ समाज का विकास ही हमारा विकास, इसकी गौरवगाथा ही हमारी गौरवगाथा है।

हम हूमड़ है। इसका हमें गौरव है।

शान्तिलाल दोषी उपाध्यक्ष
हीरालाल माणेकलाल गांधी
हीरालाल जैन प्रचारमंत्री
(कलिगरा)

जीवराज गांधी
अध्यक्ष
ज्ञानचन्द्र सेठ कार्यकारी अध्यक्ष
हीरालाल जैन सालगिया महामंत्री

हूमड़ इतिहास की अमर बेल कालसारणी

युग प्रवर्तन से लेकर वर्तमान तक जैन संस्कृति एवं हूमड़ संस्कृति का गौरवशाली इतिहास रहा है। प्रारम्भ से लेकर अब तक के विभिन्न घटनाओं एवं स्थानों को, समय क्रम में अमर बेल के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

कालक्रम	विवरण एवं स्त्रोत
युग प्रवर्तक गणना से वि.सं. ५००० से ६००० वर्ष पूर्व	युग प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का अवतरण (परम्परा) सिन्धु घाटी सभ्यता (मोहे जोदड़ो की संस्कृति) में प्राप्त जैन अवशेष
वि.सं. ५००० वर्ष पूर्व लगभग	भगवान मुनिसुव्रतनाथ के समय भगवान रामके पुत्र लव एवं कुश का पावागढ़ में निर्वाण हूमड़ के पूर्वज लाडवंशीय क्षत्रियों एवं लाड़ प्रदेश (गुजरात) का उल्लेख। (विशेष विवरण हूमड़ इतिहास भाग-१ पृष्ठ १२)
वि.सं. ३००० वर्ष लगभग वंशीय क्षत्रियों का उल्लेख गुजरात उनका व्यापारिक सम्बन्ध विदेशों से था।	भगवान नेमिनाथ (श्री कृष्ण के चचेरे भाई) का गिरनार से निर्वाण-लाड़ के लोधन के उत्खनन से विदित होता है इ. पू. ३००० (हूमड़ इतिहास भाग-१ पृष्ठ-१५)
आज से ३५०० वर्ष पूर्व	ईडरके राजा वेणीवत्स के समय, लाड़ क्षत्रीय महामन्त्री जिसने ब्राह्मण पुरोहित को आश्रय देनेका वचन दिया था। (हूमड़ इतिहास भाग-१ पृष्ठ १३)
वि.सं. ८२०--७२० पूर्व लगभग	भगवान पार्श्वनाथ का काल
वि.सं. ५४२-४७० पूर्व लगभग	भगवान महावीर
वि.सं. ३०० वर्ष पूर्व	भद्रबाहु मगध से श्रवण बेलगोल जाते गिरनार पर (सम्राट चन्द्रगुप्त जिन्होने दीक्षा ली थी) दर्शन करने विहार करके आये थे। - सिंह हरिहर जैन टेम्पुल्स ओफ वेस्टर्न इण्डिया पे-१९
वि.सं. ३१० से ३०० पूर्व	उत्तर भारतमें भयंकर दुष्काल, भद्रबाहु स्वामी (प्रथम) का संघ का साथ दक्षिण प्रस्थान सम्राट चन्द्रगुप्त का भी दक्षिण प्रस्थान के समय, दीक्षा लेना एवं संघ में सम्मलित होना। दुष्काल समाप्ति पर संघ का वापस लौटना-जैन संघका विभाजन और श्वेताम्बर संघका उद्‌भव। यवनों के आक्रमण के कारण, अशोकने गुजरात सौराष्ट्र में तुषारक (यवन) को सूबेदार नियुक्त किया - मगध इतिहास पे-१२
इ. पूर्व २५५	तापि नदी के तट पर रांदेर नगर बसा था उसका लाड वंशी राज संपत्ति वहाँ अनेक जैन वणिक, अरब और फारस से जहाजों के द्वारा व्यापार करते थे। (१९०८ गैजेटियर बम्बई राज्य)

कालक्रम	विवरण एवं स्त्रोत
वि.सं. २०० वर्ष पूर्व	मौर्य सम्राट सम्पति जो जैन था उसका सम्बन्ध सौराष्ट्र-गिरनार से इंगित है - टेम्पुल् इण्डिया पे-१९
इ.पूर्व २१० से इ.सन् २०० तक	सातवाहन वंश इ. प्रथम सदी भरोच बन्दरगाह आय+निर्यात का व्यापार - परीप्लस ओफ इन्डियन
इ.सं.४१	नहपाल ने गुजरात सौराष्ट्र जीता और भरूच को अपनी राजधानी बनाई ।
इ.सन् ६१	गोमतीपुत्र सातकर्णीने भृगकच्छ पर आक्रमण कर नहपाल को हराया । नहपाल ने राज श्रेष्ठी सुबुद्धि के साथ जैन दीक्षा आचार्य अर्हत् बली से ली नहपाल का भूतबली और सुबुद्धि का नाम पुष्पदंत रक्खा ।
वि.सं. २२-४५	आचार्य भद्रबाहु द्वितीय
वि.सं. ३५-५५	आचार्य लोहाचार्य द्वितीय
वि.सं. ५५-१२३	जिन शासन शिरोमणि आचार्य अर्हतबली
वि.सं. ८०-१४४	युग प्रहरी आचार्य माधनन्दि
वि.सं. ९५	मूल संघ विभाजन आचार्य अर्हतबली ने सतारा (महाराष्ट्र) में पंचवर्षीय प्रतिक्रमण के साथ मूल संघ का विभाजन करके वृषभ संघ, देवसंध, नन्दिसंध, सिंहसंध, पुन्नातसंध आ. नन्दिसंघ का नेतत्व माध नचि को दिया । श्रुतावार : इन्दनन्दि इ. प्र मात्री ३७,५१-५८ अनेक जातियों का उद्‌भव इ. सन के प्रारम्भ में भाग-२ पृष्ठ
विक्रम संवत १०१ माधसुदी पंचमी गुरुवार वीर संवत ५७१ इ.सन् ४५	हूमड़ जाति का उद्‌भव इसवी सन् के पारम्भ के पूर्व गुजरात में दुष्काल के कारण लाड़ क्षत्रियों का एक समूह पश्चिम बंगाल जो उस समय सुह्यदेश के नाम से जाना जाता था परिस्थिति सुधरने याहूम्माचार्य आ. माधनन्दि के शिष्य (जिन्हें हेमाचार्य के नाम से जाना जाता था) के साथ खेडब्रह्मा रायदेश में लौटकर आये जहाँ उन्हें मूलसंथ के नन्दिसंध में दीक्षित किया गया क्योंकि, वे सुह देश से आये थे अप्रभ्रंश हुमल्य हूमड़ हूमंत और हूमड़ के नाम से व्यवहार में जाने लगे । प्रारम्भ से १९वीं सदी के अंत तक हूमड़ो की यह परम्परा रही सभी मूर्तिलेख, शिलालेख उनके आचार्यों भट्टारकों आदिने मूलसंध-नन्दिसंघ बलात्कारगण-सरस्वती गच्छ परम्परा को कायम रक्खा । (१) उद्‌भव व समय-हूमड़ पुराण, हूमड़ वंशावली आदि से (२) कर्नल टोड के राजस्थान के इतिहास के इतिहास अनुसार गुहादित्य का मूल पुरुष कनकसेन ने इ. सन् १४४ में वूर नगर बसाया लाड क्षत्रियों का उल्लेख है । (३) हूमड़ नामकरण पुरातन ब्रह्मक्षेत्रनो अर्वाचीन इतिहास गणपति शास्त्री ।

कालक्रम	विवरण एवं स्त्रोत
वि.सं. ८०-१२३	धरसेन आचार्य गिरनार पर्वत पर तपस्या करते थे उन्हें आगम के विलोपनके भय से सतारा से आ. अर्हतबली से दो शिष्य पुष्पदंत और भूतबलि को बुलाकर, श्रुत ज्ञान देकर जैन आगम को कालदोष से बचाने ताड़ पत्र पर अंकित करनेका आदेश दिया।
संवत १२३-१६३	पुष्पदंत
संवत १२३-२१३	भूतबली
	दोनो आचार्यो ने धरसेन आचार्य की आज्ञा से संजोत अंकलेश्वर में प्रथम चातुर्मास करके जिनागमका प्रथम ग्रन्थ ताड पत्र पर षट खण्डागम (धवला जयधवला) की रचना प्रारम्भ की।
वि.सं. १२३-२१३	हूमड़ों के गोंत्रो का आगम ग्रन्थ में प्रथम उल्लेख धवला जयधवला में गोत्रों का उल्लेख पृ-६५७७, पृ-७५१५ कर्म अनुयोगद्वार सन् १३६ पृ-१३ धवला श्रुतावतार में हमारे गोत्रों का उल्लेख नाम के साथ अगस्ति, खेरजा, विज्जाणु, परवाणु, पुष्कर, अत्रस्थय, गणेयगोत्र हमारे आचार्यों ने नामकरण संस्कार गुफा, वृक्ष के नाम से किया (ये नाम किसी अन्य जाति के गोत्र नाम में नहीं पाये जाते हैं। (इतिहास भाग-२ १९३-१९४) कर्नल टोड साहेब तेमना राजस्थानना इतिहास मां जणावे छे के गुहादित्यना मूल पुरुष महाराजा कनक सेन ईस्वी सन्नी पहेली शताब्दीमां हयात हता. ई. सं. १४४ मां तेमणे वीरनगर नामे भारे नगर वसाव्युं हतुं.
सन् १५०	यूनानी लेखक पेरीपल्स ने वडाली जिनालय का वर्णन किया। यहाँ से वर्तमान में लगभग ६५ मूर्तियाँ प्राप्त हुई जिनमें से २७ ईडर में वीर सं. २५६५ वि.सं. २०५६ सन् २००० में बिराजमान की गयी : प्रतिष्ठा की गई।
सन् २४०	लाट प्रांत मही नदी प्रदेश से तापी नदी तक लाडवणिक और नग्न यतियों के विहार का उल्लेख चीनी ह्युएन सांग से
वि.सं. ३००	भारत / गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग से लाड़ (लाटकर) पाल (रायदेश) का उल्लेख वात्सायन रचित कामसूत्र से
इ. सन् ३००	आनन्दपुर (वर्तमान वडनगर) लाडवंशीय राजा सुरेन्द्रसेन ने बसाया
इ. सन् ४००	सुरेन्द्रसेन के पुत्र वीरसेन की राणी चन्द्रमती ने पावागढ़ जैन मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया।
इ. सन्	खेड़ब्रह्मा और रायदेश
४०० से ५००	ईडर पर मांडलिक भील और उसके उत्तराधिकारियों का रायदेश का राज्य
५०० से ६५०	ईडर पर सूर्यवंशी वल्लभपुर के गुहादित्य और उसके गहिलवंशी राजाओं का राज्य इस समाय पोलो नगर और उनके जैन मंदिरों का निर्माण

कालक्रम	विवरण एवं स्रोत
इ सन् ५०० से १२२०	प्राप्त सूचना एवं गुजरात के प्राचीन इतिहास अनुसार निम्न प्राचीन मंदिर मुगलों द्वारा नष्ट किये गये वे वि. संवत् १३०० से १६०० तक भट्टारकोंके द्वारा जीर्णोद्धार करके फिर से निर्माण क किये उनके मूल नायक, मन्दिर के चित्र भाग-२ में भिलोडा कीर्तिस्तम्भ एवं बाचन जिनालय पृ-३२ अन्तनाथ दि. जैन मंदिरचित्र पृ-३२ आदिनाथ दि. जैन मंदिर भेटाली पृ-२९ पद्मप्रभु - पराडा नेमिनाथ दि. जैनमंदिर पाल २९ आदिनाथ टाकाटूका ३१ बांकानेर ३१ इसमें से अधिकतर जिनालयों का जीर्णोद्धार वर्तमान में किया जा चुका हैं। गोप्रकुण्ड
दूसरी री सदी के प्रारम्भ	विद्का स्ति महारम्या तन्मध्ये कुलदेवताः यासां पूजन मालंण चेप्सित फलं लभते ब्राह्मणो स्वति मार्तण्ड ऊपरोक्त ग्रन्थ में बावन जिनालय, धनलक्ष्मी क्षीरत बुज का मन्दिर, ब्रह्मा मन्दिर का विवरण
इ. सन् १०२७	पुरातत्त्व विभाग के अनुसार इसवी सन् १०२७ में महम्मद गजनवी ने बाचनजिनालय, धनलक्ष्मी का मन्दिर, ब्रह्मा मंदिर को सम्पूर्ण नष्ट किया। ऊपरोक्त ब्रह्मामंदिर जीर्णोद्धार कराकर वर्तमान में हिन्दू ट्रस्ट के आधीन है। परन्तु विक्रम के द्वितीय सदीका बना गोत्र कुण्ड जिसमेंङ्ग १८ हूमड़ों के गोत्र की कुलदेवियाँ एवं ९ खेडवा ब्राह्मणों (पुरोहितो) की गोत्र की कुलदेवियोङ्ग की कूलिकाएँ और मूर्तियाँ थीं वह गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग के आधीन है गत कुछ वर्षो से सभी मूर्तियाँ चोरी गई हैं और अत्यन्त जीर्ण अवस्था में कूरिकाएँ विद्यमान हैं इतिहास भाग पृष्ठ के अनुसार यह हूमड़ समाज के इतिहास संस्कृति और अस्तित्व की अमूल्य धरोहर है इसका जीर्णोद्धार और इस पर योग्य शिलालेख का निर्माण आवश्यक है। संयोजक विशेष वर्णन इ. भाग-२ चित्र पृष्ठ इ. भाग-१
नन्दिसंध क्रम ११ (संवत् ४७८-५३८)	लब्ध प्रतिष्ठित साहित्य प्रकाशन मान सूर्य श्रुत शदिल देवनन्दी पूज्यपाद संस्कृत में प्रथम पंचामृत अभिषेक शांतिधारा पूजा पद्धति के सर्जन हार जिसे १५०० वर्षों में वर्तमान में परम्परा से हूमड़ों ने अपनाये रक्खा है।
वि.सं. ४९३-४९९ (नन्दिसंघ क्रम १२)	युग प्रहरी महा विद्या सिद्धाचार्य गुणनन्दि संस्कृत भाषा में मंत्र तंत्र यंत्र एवं ध्यान के रचियता, ऋषिमंडल यंत्र मंत्र, तंत्र के सर्जनहार वर्तमान में भी परम्परा से प्रचलित
७०५ से ७१५	अरब के खलीफाओं का इसवीं ७०० के प्रारम्भ में उत्तर भारत और सिंध पर आक्रमण प्रारम्भ हुआ। खेडब्रह्मा में जिनालय नष्ट किये गये।

कालक्रम	विवरण एवं स्त्रोत
	हूमड़ों का प्रथम सामूहिक स्थानांतर रायदेश खेडब्रह्मा से राजस्थान सागवाडा
इ. सन. ७००	खलीफा अमर द्वितीय के सेनापति मोहम्मदबीन कासिम ने राजस्थान पर आक्रमण करते वक्त रायदेश को तहस नहस किया और भीलों ओर वणिकों को लूटना प्रारम्भ किया। इसी समय में जो हूमड़ श्रेष्ठियों का व्यापार भरूच, गंधार बन्दरगाहों में था ७१८ में मुसलमानों ने आक्रमण किया इ.सन् ८१३ ८४३ खलीफा अलसापनने खेडब्रह्मा पर आक्रमण किया। इन ६वीं से ८वीं सदी की परिस्थितियों से हूमड़ जाति के रायदेश में रहना कठिन होने से सामूहिक स्थानांतर (१) आक्रमण गुजरात राज्य के इतिहास से इतिहास भाग-२ पृष्ठ ६०
इ. सन् ७२०	हूमड़ों के लगभग ३५० कुटुम्ब अपने वाहन (बैलगाड़ी, घोडे आदि) लेकर सामूहिक रूप से राजस्थान के सागवाड़ा (जे प्राचीन समय में सागो का जंगल था) प्रस्थान किया वह गलियाकोट का विभाग था जो उस समय पसार राजा उसकी राजधानी अर्थूना के आधीन था उनसे आश्रय पाकर वहाँ स्थायी रूप से रहने का निर्णय किया भाग-२ पृ-६५
वि.सं. ७२०-७३२	स्थानांतर का विस्तृत वर्णन इतिहास भाग पृष्ठ २५१४ इतिहास भाग-२ पृष्ठ ६४-६६
वि.सं. ७३२	हूमड़ों के प्रथम बावन जिनालय का शिलान्यास और जिनालय की रचना सामूहिक श्रम यज्ञ हूमड़ श्रेष्ठियों पुरुषों-महिलाओं द्वारा करके प्रारम्भ प्रथम बावन जिनालय चित्र ६९ (भाग-२) प्रथम बावन आदिनाथ मूलनायक चित्र गणपति मंदिर में शिलालेख चित्र पृष्ठ ६८ (भाग-२) शिलान्यास का शिलालेख भाग-२ पृष्ठ ६९ भाग-१ पृष्ठ २२१ हूमड़ श्रेष्ठी श्रेष्ठियों के साथ लाई देवी पद्मावती मूर्ति खेड़ब्रह्मा से चित्र २२१ (सागवाडा शास्त्र भंडार एवं डूँगरपुर शास्त्र भंडार हूमड़ वंशावलीसे) स्थानांतर शिलालेख सागवाड़ा के मध्यचित्र भाग-१ पृष्ठ ७१
	अर्थूना
वि.सं. ८वीं ९वीं सदी वि.सं. ११५१-११६६	बागड़ के परमार राजा की राजधानी वर्तमान अर्थूना नगर (मूलनाम उत्थूनक) संस्कृत शिलालेख अजमेर म्युजियम के अनुसार परमार राजा मदनदेव चामुंडराव-निजराय-कनकसेन ने सन् १०८० में पिता की स्मृति में मदोश्वर मंदिर बनवाया उसके शिलालेख में जिनमन्दिर का वर्णन है। (अर्थूना वाग्वर का वैभव)
	आंतरी
संवत ७३८	आंतरी बावन जिनालय निर्माण प्रारम्भ

कालक्रम	विवरण एवं स्त्रोत
७१८ से ७२१	इसवी ७१८ से ७२१ में खलीफा अमर द्वितीय के सेनापति मोहम्मद बिन कासम ने चितोड़ पर आक्रमण करके तहल् नहस किया उसी समय खेडब्रह्मा और पोलो नगर के उनके जिनालय एवं देवपुरी (देरोल) बावन जिनालय को नष्ट किया
८३३	दूसरे खलिफा असमामून ने देवपुरी जिनालय को फिर से नष्ट किया वि.सं. ६५० से ८३३ तक स्थानिक श्रावकों ने अनेक प्रतिमा हिरण्य नदी के रेती तट में छिपाई जिसे १२ से १३ सदीमें निकालकर ईडर तारंगा में स्थापित की गयी । (नोट : इ. सन् ३०० से इ. स. ८३३ सभी घटनाएँ गुजरात राज्यनो प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास भाग-१ से १० से)
७२१ से ७५०	नष्ट किये गये तक सामूहिक रूप से हूमड़ो का राजस्थान के बागड देशमें
७६९	फाल्गुन सुदी १० अष्टाह्निका महोत्सव के समय आचार्य जिनसेनाचार्य ने अपने गुरु वीरसेनाचार्य से प्रारम्भ की गाई धवला-जयधवला ६०००० श्लोक की टीका गुर्जर देश श्री अमोधवर्ष राजा के समय वाट ग्राम में पूर्ण की
८१३ से ८३३	खलीफा जल मामूनने चितौड़ जीता उस समय भी रायदेश पर आक्रमण
९४७	होते रहे । में महमूद गजनवी के पितामह उल्फतजी ने मेवाड की राजधानी आदित्य पुट पर आक्रमण किया । उस समय रायदेश पर भी आक्रमण हुआ ।
९७७ से १०००	अल्फतगीन के पुत्र सुबुल गीन समीर महमूद के आक्रमण २३ वर्षो तक आक्रमण होते रहे उसी समय महमूद ने सिंध के राजा परमार दामाजी को हराकर मार डाला । उसके छोडेभाई हरब्रह्मने भीलों की सहायता से रायदेश पौरा नगर पर आक्रमण किया और उसे पूरी तरह लूट पाट करके जिनालयों को नष्ट कर डाले परिणाम स्वरूप बचे हूमड़ों को भी नगर छोड़ना पडा ।
वि.सं. १०७१-१०९४ (नन्दिसंघ क्रम ४४)	ध्यान योगी लब्ध गौरव आचार्य शुभचन्द्र, ज्ञानार्णव ग्रन्थ के रचयिता
१०२७	महमूद गजनवीने बावन जिनालय, धनलक्ष्मी के क्षीराम्बुज के मन्दिर, ब्रह्मा मन्दिर इत्यादि नष्ट कर दिये । सम्पूर्ण नगर खंड़हरों में परिवर्तित ।
११०० से १२००	सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के समय शान्ति स्थापित हुई आसपास से कुछ हूमड़ आकर फिरसे बसे ।
१३३१	में अलाउदीनखीलजी के सेनापति सूबेदार अलफखाँ ने पोलो नगर को सम्पूर्ण तहस नहस कर दिया ।

कालक्रम	विवरण एवं स्रोत
संवत ८०९	भारतमें कोई भी स्थल पर एक पत्थर पर उत्तीर्ण ११.५ फीट व्यासका विशाल त्रश्नीमंडल यंत्र वि. संवत ८०९ यह हूमड़ों की अमूल्य ऐतिहासिक धरोहर
सं. ८वीं से ११वीं सदी	भाग-२ चित्र ७४-७५ विवरण भाग-१ पृष्ठ १७०
तक के	चित्र १ २२३ भाग-२ में (ऐतिहासिक दुर्लभ मूर्ति चित्र) नंदीश्वर चित्र पृ-७२ ८वीं सदी का बावन जिनालय पृ ७३
	बीस तीर्थंकर - पृ - ७६
	शासन देवियाँ - पृ - ७७
	सलाकार पुरुष - पृ - ७८
	एक पाषाण में १००८ प्रतिमा - पृ - ७९
सन् ८१६	चितौड़ चन्द्रप्रभु मन्दिर (जैन इन्कीपालन आरकी सोमारी)
संवत् ९५२	चितौड़ कीर्ति स्तम्भ साहूनानक द्वारा प्रारम्भ करके उसके पुत्र साहू जीजाने पूर्ण किया ।
इ. सन् ९४७	बारा कोटा में आचार्य पदम नन्दि ने जम्बूद्वीप प्रगति ग्रन्थ लिखा
वि. ११०५ से १०४६	झालरा पाटन शान्तिनाथ दि. जैन मन्दिर प्रतिष्ठा श्रेष्ठी पीपासा हूमड़ द्वारा जिसमें २८ लाख रुपयों का खर्च हुआ ।
वि.सं. १२६१-१२६६	हूमड़ों के नन्दिसंध बलात्कारगण सरस्वती गच्छ के प्रथम जैन संस्कृति रक्षक आचार्य बसंतकीर्ति : भट्टारक संप्रदाय के प्रवर्तक विशेष परिस्थितियों में जैन धर्म, जैन संस्कृति, जिनागम, जिनालयों की रक्षा हेतु भट्टारक संप्रदाय प्रवर्तमान किया मोहम्मदगोरी ने अपनी बेगम के आग्रह पर राजदरबार में सन्मान किया ।
वि.सं. १३१०-१३८६	दिव्य विभूति भट्टारक प्रभाचन्द : दिल्ली में भट्टारक पद ग्रहणकिया । वि. संवत् १३७५ में बादशाह फिरोजशाह के अमात्य चाँदशहर के आमंत्रण पर संघों और चेतन विद्वानों से शास्त्रार्थ और मंत्र परीक्षा करवाया और उसमें भट्टारक विजयी हुए । बादशाह फिरोजशाह की माँ बेगम के आग्रह से राज महल में भट्टारक को आमंत्रित किया गया, जहाँ उन्होंने लंगोट धारण कर महल में प्रवेश किया ।
वि.सं. १३८५-१४६२	वाङ्मय वारिधि वरिष्ट विद्वान भट्टारक पद्मनन्दिः अनेक प्रतिष्ठाओं एवं ग्रन्थों के रचयिता उनका उल्लेख बिजोलिया के मानस्तम्भ के शिलालेखमें हैं । इनके अनेक शिष्यो में प्रमुख शुभचन्द्र-पट्टधर शिष्य, देवेन्द्रकीर्ति सूरत गदी पर स्थापित, सकलकीर्ति ईडर गदी पर स्थापित । सरस्वती कंठाभरण संस्कृत सरोज सरोवर गुजरात एवं राजस्थान में जैनधर्म के पुनः जीवित कर्ता एवं हूमड़ समाज और संस्कृति के जीवन दाता

कालक्रम	विवरण एवं स्रोत
इ. स. १२२०	साबरकांठा विजयनगर के पास हरणाव नदी के तट पर १० की.मी. विशालनगर उसमें आतरसुंबा विस्तार में ४ जिनमंदिर व अनेक हिन्दु मन्दिर, अमापुर में ३ जैन मन्दिर एवं शिवशक्ति आदि हिन्दु मंदिर इस विस्तार में १४ जैन मंदिर खण्डित, जीर्ण अवस्था में एवं अनेक खण्डित प्रतिमाएँ वर्तमानमें हैं इन्हें १२२० में धर्म जनूनी बादशाह खिलजी ने तोडफोड नष्ट किया था । गुजरात पुरातत्त्व विभाग से वर्तमान में यह पुरातत्त्व विभाग के आधीन है । चित्र विषय प्रवेश भाग - २
संवत् १७०० से २०००	तक प्रतापगढ़ राज्य के मुख्य कामदार हूमड़ समाज के पाडलियाकुटुम्ब से हुए । प्रधान कामदार श्री जीवराज, वर्दुवानगी, सूरजीलोनजी, कपूरजी, खिवजी, गोधकरणजी, गोधराम के पुत्र कानजू राज्य तरफ से जयपुर में वकील और स्वयं महाराजा के सेक्रेटरी एवं कामदार जडोवचंदजी ।
	देवगढ प्रतापगढ़ (राज) से ८ मील पर
	बीकाजी महाराज ने देवगढ़ बनाया
संवत् १६१०	जिनालय प्रतिष्ठा, हूमड़ों के ८० घर, मूलनायक मल्लिनाथ प्रतिष्ठा कार
संवत् १७७४	वरआवत रिषभदास के पुत्र बद्ध मानगी मंत्रेश्वर गोत्र प्रतिष्ठा चार्य भट्टारक रत्नचंद्रजी
	वेदीमें आदिनाथ विराजमान हूमड़ अगतस्य गोत्र पाडलिया दारीशाहजी
१८३८	रघुनाथजी राना सामंतसिंहजी के समय सहस्त्रकूट चैत्यालय पाडलिया फौज के कामदार राधोजी वक्षी ने बनवाया ।
	गलियाकोट नया मन्दिर भट्टारक गुणकीर्ति प्रतिष्ठाकारक संतोष दोशी
संवत् १६३२	वासुपूज्य मंदिर भट्टारक सुमतकीर्ति विरमा पुत्र कीका हूमड़
संवत् १६३७	जीर्णोद्धार
संवत् २००८	**ऋषभदेव (केशरियाजी)**
सं. १७४६	शान्तिनाथमूर्ति सूरत निवासी विमलदास माणकजी
	ऋषभदेव श्यामवर्ण प्रतिमा सेठ कानजी द्वारा भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति
सं. १७५४	वासुपूज्य मूर्ति महुआ निवासी शाह दादा नानजी भ. नरेन्द्रकीर्ति
सं. १७६८	धनजी कानजी सागवाड़ा निवासी द्वारा मन्दिर के चारों और एक बड़े ऊँचे
सं. १८६३	कँगूरे के द्वार कोट की रचना मागसर कृष्णा दक्षिण कुंभोज बाहुबली से
सं. १९८४	संधपति सेठ धासीलाल पूनमचंद द्वारा आचार्य शान्ति सागरजी का संध रवाना होकर उत्तर भारतमें प्रवेश फाल्गुन शुक्ला ३ सम्मेद शिखर पहुँचकर पंचमी से नवमी बीस पंथी कोठी जिनालय प्रतिष्ठा संधपति धासीलालजी को भक्त शिरोमणि उपाधि

कालक्रम	विवरण एवं स्त्रोत
वि.सं. १४६२-१४९९	भट्टारक सकलकीर्ति : ईड़र के हूमड़ों के प्रथम भट्टारक अनेक संस्कृत प्राकृत राजस्थानी के रचयिता (संस्कृत भाषा के २८ ग्रन्थ राजस्थानी भाषा के ८ एवं प्रसिद्ध ३४७५ पद का शान्तिनाथ चरित्र वर्धमान चरित्र मल्लिनाथ चरित्र आदिनाथपुराण जिसमें ४६२८ पद आदि) एवं १४ विम्ब प्रतिष्ठाओं का संचालन जिसमें मुख्य गलियाकोट, आबू सागवाड़ा / गुजरात-राजस्थान में मुगलों के आक्रमण से समस्त जैन समाज विशेषकर हूमड़ समाज छिन्न भिन्न धर्म में शिथिल प्राय: अधिकर मन्दिर नष्ट हो गये थे । जिन्हें फिर से प्रतिष्ठित करने के एवं धर्म प्रर्वतन के काम किये ।
सन् १४२५	ईड़र भट्टारक गादी : पट्टावली क्रमांक ८० से १०० भट्टारक सकलकीर्ति वि.सं. १४६२ से भट्टारक कनककीर्ति क्रमांक १०० वि.सं. १९५५ - १८९८ तक
	सागवाड़ा गादी : प. भट्टारक सकलकीर्ति ईड़र ने वि. संवत १४७१ सन् १४९५ में सागवाड़ा में गादी स्थापित की क्रमांक २ धर्मकीर्ति से भट्टारक राजेन्द्र भूषण वि.संवत १९१० तक
इ. सन् १५०३	ऐतिहासिक घटना (हूमड़ों का स्थानांतर) : संवत १६४६ भट्टारक यशकीर्तिके समय सागवाड़ा से कारंज (महाराष्ट्र) गादी स्थापित अमरकीर्ति को भट्टारक बनाकर और साथ में ६३ हूमड़ कुटुम्ब कारंज जाकर बसे ।
	भानपुर शाखा : भट्टारक सकलकीर्ति ने ईडर से एक शाखा भानपुरमें भट्टारक भुवनकीर्ति कें शिष्य ज्ञानकीर्ति द्वारा स्थापित की ज्ञानकीर्ति क्रमांक-२ संवत् १५३८ से क्रमांक १३ देवचंद्र संवत १८०५ तक

कालक्रम	विवरण एवं स्रोत
सं. १९९०	प्रतापगढ़ (राज) में शान्तिनाथ जिनालय जीर्णोद्धार एवं आचार्य शान्तिनाथजी ६४ प्रतिमाजी की विताधल में प्रतिष्ठा
संवत् २०२५	सेठ मोतीलालजी कीक्षुल्लक दीक्षा और मुनिदिक्षा डूंगरपुर समाधि : मुनिदीक्षा नाम श्री १०८ सुबुद्धिसागरजी ।
सं. २०३७	सेठ गेंदमलजी क्षुल्लक दीक्षा-गजेन्द्रकुमार समाधिमरण मुनि अवस्था समाधि सागरनाम
सं. १६५५	छत्रपति शिवाजी द्वारा ईड़र निवासी प्रवासी सूरत श्री श्रेष्ठी जयचंद्र गांधी को फल्टन में जागीर देकर रायदेश के कुटुम्बों के साथ बसाया । श्री श्रेष्ठी जयचंद्र गांधीने शिवाजी को युद्ध के समय बड़े पैमाने पर आर्थिक सहायता दी थी महाराज छत्रपति शिवाजी मराठी इतिहास से
वि.संवत् १९४३	सेठ नानचन्द्र उतमचंद्र सोलापुर ने धर्मशाला और मन्दिर का निर्माण करवाया
वि.संवत् १९९४	पर्वत पर जीवराज गौतमचन्द सोलापुर ने मन्दिर का निर्माण करावया ।
	कारंज शाखा : सागवाडा के भट्टारक यशकीर्ति ने अमरकीर्ति को भट्टाकर बनाकर कारंजमें स्थापित की क्रमांक-१ संवत् से क्रमांक (१९) संवत् १९७३ तक
	लातूर शाखा - कारंज शाखा के भट्टारक विशालकीर्ति ने अपने शिष्य भट्टारक अजितकीर्ति द्वारा लातूर में संवत् १७०८ क्रमांक-१ से क्रमांक माणककीर्ति संवत् १८३२ दूसरी शाखा पद्मनन्दि (दिल्ली) ने संवत् १४९३ में भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिको भट्टारक बनाकर सूरत में गादी स्थापित की देवेन्द्रकीर्ति क्रमांक-२ संवत १४९३ से क्रमांक-१९ भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति संवत् १९१९ तक जेरहट शाखा : भ. देवेन्द्रकीर्ति ने जेरहट में त्रिभिवनकीर्ति को भेजकर संवत् १५५२ श्रुतकीर्ति क्रमांक-३ से क्रमांक-१० सुरेन्द्रकीर्ति १७५६ तक को भट्टारक स्थापित किया ।
	बारडोली शाखा : सूरत के भट्टारक ज्ञानभूषण ने भट्टारक लक्ष्मीचन्द को वि.सं. १५५६ में बारडोली का भट्टारक स्थापित किया क्रमांक-१ से क्रमांक-८ रतनचंद संवत् १७४५ तक ।
	डूंगरपुर
११३८	डूंगरपुर की स्थापना पूर्व नाम गिरिवर
१३८०	५ जैन मंदिर ९०० जैन कुटुम्ब
१४०७	राज्य के मुख्य मंत्री प्रहलाज ने रावल प्रतापसिंह के समय जैनमंदिर बनवाया

कालक्रम	विवरण एवं स्त्रोत
१४२३	राज्य के मुख्य मंत्री सहाने रावल मजबालसिंह के समय आंतरी में जैन मंदिर बनवाया
१४६१	रावल सोमपाल के समय अचलगढ़ आबू की विशाल धातु की प्रतिमा डूंगरपुर में तैयार की गई
१४६४	यहाँ हूमड़ सल्हा जो मुख्य मंत्री थे दुष्काल के समय रोज दो हजार व्यक्तियों को भोजन करवाते थे।
१४१८	सल्हाने आंतरी पाश्वनारथ मंदिर का जीर्णोद्धार करवाकर हाथीपर मरुदेवी की प्रतिमा बिराजमान करवाई।
१५४१	श्रीमती चंदाने नौगामा में शान्तिनाथजी मंदिर बनवाया।
	प्रतापगढ़
९९९	प्रतापगढ़ का मूल नाम ड़ोड़रिया का खेडा था। लोग राजा महेन्द्र पाल द्वितीय था (शिलालेख से)
१७५५	(इ. १६९८) महारावल प्रतापसिंह ने ड़ोडरिया के स्थान पर प्रतापगढ़ शहर बसाया।
१८१५	(इ. १७५८) महारावल मालिमसिंह ने नया कोट बनवाया। उन्होंने सूरजपोल, मादपूरा आदि ६ दरवाजे बनवाये।
इ. सन् १८६७	से देवगढ़ प्रतापगढ़ या देवलिया प्रतापगढ़ देशी रियासत के नाम से जाने लगा।
संवत् १८३२	जूनामंदिर महारावल सामन्तसिंह के समय भट्टारक धर्मचन्द्र जीसे निर्मित विस्तार १८५३ संवत् इसमें १२वीं शताब्दी से २०वीं शताब्दी की प्राचीन मूर्तियाँ हैं और विशाल ग्रन्थ भंडार
संवत् १८४१	नये मंदिरके ईड़रके भट्टारक चन्द्रकीर्ति की प्रेरणासे बीसा हूमड़ समाजने बनवाया भट्टारक कनक कीर्ति।
	यह ऐतिहासिक नगर है। यहाँ से स्थांतर करके बम्बई, इन्दौर एवं अन्य जगहों पर स्थाइस्म से निवास किया। यह हूमड़ समाज की धर्म नगरी है।

गजपंथा सिद्धक्षेत्र समय क्रम

कालक्रम	विवरण एवं स्त्रोत
	हूमड़ समाज का तीर्थों के जीर्णोद्धार में योगदान मांगीतुंगी सिद्ध क्षेत्र समय क्रम
वि.सं. १८२४	भट्टारक चन्द्रकीर्ति के उपदेश से. सा. श्री बेलजी दशाहूमड़ गंगेश्वर गोत्र अमलनेर निकट मांडलगाम जिनालय चौवीसी चरण चौकी का मूर्ति लेख
वि.सं. १८७०	भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति ने प. रिखबदास को भेजकर धर्मशाला बनवाई ओर लकडी के सिंहासन पर जिनप्रतिमा विराजमान करवाइ।
वि.सं. १९०४	कारंजा के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के उपदेश से उत्तरेश्वर गोत्री गाँधी देवकरण ने भगवान पार्श्वनाथ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाई।
वि.सं. १९७६	भट्टारक विजयकीर्ति ने भगवान चन्द्रप्रभु और भगवान विमलनाथ की प्रतिष्ठा
संवत् १२९२	चाँदवड गुफा मन्दिर भ. देवकीर्ति के शिष्य विशाल कीर्ति के द्वारा प्रतिष्ठा
	महिगाँव
सन् १८९३	ब्रह्मचारी महतीसागर की प्रेरणा से फलटन निवासी सेठ जयचंद गांधीने मन्दिर बनवाया।
सन् १९३२	कुन्थलगिरी सेठ हरीभाई देवकरण ईडर भट्टारक कनककीर्ति
	शिरडशहापुर
संवत् १६३१	भट्टाकर सुरेन्द्रकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठा
संवत् १८५०	कारंज भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ने मुनिदीक्षा ली एवं समाधिकरण भी हुआ।

१. कारंज : तीन भट्टारक बलात्कारगम के
२. भ. वीरसेन सेनगण के
३. भ. विशालकीर्ति लातूर बलात्कारगणा के

सोलापुरके सेठोंने सन् १८९५ के १९९५ तक कहाँ र' प्रतिष्ठाएँ करवायीं उसका वर्णन

	सिद्धक्षेत्र	साल	प्रतिष्ठा करानेवालों के नाम
(१)	मांगीतुंगी	१९१६	पानाचंद जोतीचंद तथा हरीभाई देवकरण।
(२)	तारंगा	१९२३	हरिचंद, मोतीचंद, अमेचंद, जोतीचंद, परमचंद।
(३)	गिरनार	१९२६	खेमचंद उगरचंद, पदमसी निहालचंद तथा नेमचंद निहालचंद
(४)	चंपापुरी	१९३३	मोतीचंद प्रेमचंद तथा जोतीचंद नेमचंद।
(५)	सम्मेदशिखर	१९३८	पदमसी निहालचंद तथा नानचंद खेमचंद
(६)	पावागढ़	१९४३	गोतमचंद नेमचंद।
(७)	गंजपंथा	१९४४	वस्ता खुशाल।
(८)	कुंथलगिरी	१९४७	हरिभाई देवकरण, पदमसी निहालचंद।
(९)	पावापुरी	१९५०	रामचंद सांकला।
(१०)	पालीताना	१९५१	हिराभाई देवकरण तथा मोतीचंद परमचंद।
(११)	सिद्धवरकूट	१९५१	मलुकचंद गणेश।

सोलापुर के श्रेष्ठी श्री हरिभाई देवकरण के वंशज बालचंद, हीराचंद, फूलचंद ने मांगीतुंगी, सम्मेदशिखर, पालीताणा में जीर्णोद्धार करवाया। सेठ रावजी नानचंद, सेठ हीराचंद, अमीचंद, नाथारंगजी गांधी ने गजपंथा तारंगामें जीर्णोद्धार करवाया।

हूमड़ इतिहास भाग-२

सन्दर्भ चयनिका

पुराण विभाग

आदिनाथ पुराण भाग १-२ आ. जिनेसेन भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

धवला षट खंडागाम जिवराज जैन ग्रन्थ माला

त्रिलोक सार

ब्राह्मणोत्पति मार्तण्ड

दर्शनसार - देवसेन

ब्रह्मक्षेत्र महात्म

अर्थववेद

पुरातन ब्रह्मक्षेत्र

वेणी वत्स प्रसस्ति

प्राकृत निर्वाण कांड - संस्कृति निवार्णाणंजलि पूज्यवाद

भूवलय ग्रन्थ

श्रुतावतार इन्द्रनन्दि

जैनेन्द्र सिद्धांत कोष भाग १ से ५ ज्ञानपीठ प्रकाशन

रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाग १-२ आचार्य कुन्थुसागर

प्राचीन पूजनसंग्रह पं. रामचन्द्र

वसुनन्दी श्रावकाचार

उमास्वामी आवकाचार

आचार्य दामनन्दि पुराण भाग १-२

समाधितंत्र - पूज्यपाद

पुराण - हरीवंश पुराण, विष्णु पुराण, स्कन्दपुराण - नागरखण्ड, इन्द्रनंदि श्रुतवतार, दर्शनसार

इतिहास

जैन धर्म का प्राचीन इतिहास भाग १-२ परमानन्द शास्त्री दिल्ली प्रकाशन

जैन समाज का वहद् इतिहास भाग १-२ ड्रा. कस्तूचंद कासलीवास

खण्डेलवाल जैन समाज का इतिहास

पोरवाड समाज का इतिहास मनोहरलाल

प्राचीन जैन इतिहास कामता प्रसाद

नरसींगपुरा जातिका इतिहास प. रामचन्द्र

गुजरात राज्यनो प्राचीन सांस्कृति इतिहास भाग १ से १० गुजरात सरकार

कवि दलपतराम की नोंध (गुजराती)

राजपूताने का इतिहास म. से. हीराचंद ओजा

हूमड़ इतिहास भाग-२

आर्कियोलनिकल सर्वे ओफ इण्डिया डा. आर भंडाकर
ईडियन इन्वेनवेरी
जैन इतिहास प्रो. बनारसीदास
जैन परम्परा का इतिहास मुनिनथमलजी
भारतीय इतिहास ड्रा. ज्योतिप्रसाद
आसेवाल जातिका इतिहास मांगीलाल मुनोडिया
गलियाकोट दर्शन ड्रा. नरेन्द्रसींग
राजस्थान का प्राचीन इतिहास गोरीशंकर ओजा
वाग्वर का वैभव श्री कान्तीलाल कोठारी
दशपुर जनपथ संस्कृति - रघुवीरसींग
जैन साहित्य का इतिहास
केशरीयाजी इतिहास प. फतहसागर, इतिहास प्राचीन भारत का राजनेतिक सांस्कृतिक इतिहास भारतीय इतिहास की रुप रेखा - जयचन्द्र विद्यालंकार, जैन साहित्य और इतिहास - नाथूलाल प्रेमी मन्दसौर के अभिलेख - बंधुवर्मा, पेरीप्लस ओफ हरिथियम - परीपल्स, जैन कला एवं स्थापत्य - ड्रा. शान्त रामलाल, जैन धर्म के प्रभावक आचार्य - साध्वी संधमित्रा। अगरवालो की उत्पति - भारतेन्दु हरिशचन्द्र अग्रवाल इतिहास परिचय वालचन्द्र मोदी अर्हत् पार्श्व और उनकी परम्परा - सागरमल जैन जैन साहित्यनुं साक्षिप्त इतिहास (गु) मोहनलाल देसाई जैन बीरो का इतिहास - अयोध्य प्रमाद वीस साशन के प्रभावक आचार्य

ड्रा. विद्याकर जोहरपुरा

शिलालेख

श्रवण बेल गोल के शिलालेख
ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह के भूजबलीशास्त्री, आरा
जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह भाग १-२ वीर सेवा मंदिर
जैनिज्म इन साउथ इंन्डिया (सोलापुर) पो.बी. देशाई
दक्षिण भारत के जैन धर्म प. कैलाशचंद्र शास्त्री
प्राचीन भारत का राजनेतीक तथा सांस्कृतिक इतिहास
जैन संस्कृति और राजस्थान नरेन्द्र भाचावत
जैन शिलालेख संग्रह ड्रा. हीरालाल जैन
राजस्थान के जैन सन्त - ड्रा. कस्तूरचंद
मध्यकालीन धर्म साधना - ड्रा. हजारीप्रसाद त्रिवेदी
वीर विनोद जैन संस्कृति परिचय सुभाष मुनि
प्राचीन जैन स्मारक मद्रास मैसूर सूरत प्रकाशन
जैन शिला संग्रह-ड्रा. विद्याधर जोहिरापुराशिला लेख जैन मूर्तिलेख संग्रह (गु) सूरत प्रकाशन
अन्य साहित्य

जैन साहित्य और इतिहास पर विषद प्रकाश जुगलकिशोर मुख्तार
चारित्र चक्रवती शान्तिसागर महाराज
चारित्र चक्रवती शान्तिसागर महाराज पं. सुमेरुचन्द दिवाकर
हूमड़ समाज प्रगति के पथ पर हूमड़ समाज ट्रस्ट इन्दौर
श्रमण संस्कृति में संघ भेद ब. चुनीलाल देसाई
मान्यवर महान मुनि श्रुतसागर गुलबगी
डॉ. कस्तूरचंद आचार्य सोमकीर्ति एवं ब्रह्म यशोधर
जैन शोध और समीक्षा डॉ. प्रेम सागर जैन
सूरत भट्टारक गद्दी पट्टावली
भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ती
महावीर संदेश - हीरालाल जैन कलिजंरा
अतीत से वर्तमान सोहनलाल गांधी हीरालाल जैन (कलिंजरा)
महाकवि राव मल्ल एवं भट्टारक त्रिमुककिर्ती
गिरनार गौरव - डॉ. कामनाप्रसाद
जैन शब्दवर्णव जैन मित्र
रामसेनाचार्य - भट्टारक यशकीर्ति
ऋषीमंडल यंत्रपूजा सं. पं. वर्धमान शास्त्री
कविवर बूचराज - डॉ. कस्तूरचंद
शताब्दि स्मातीका - मन्दसौर
जैन ये हिन्द नहीं है - बाहूबली सेना अकजूब
जैन कानून बेरीस्टर चम्पतराय
इन्द्रनन्दि निर्तिसार
भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र डॉ. कस्तूरचंद
डॉ. कामनप्रसाद व्यक्तित्व
पंगयुग जैन कवि
तीर्थंकर का वर्धमान महावीर संदेश - हीरालाल कलिजरा पं. पदचन्द शास्त्री गलियाकोट दर्शन रविन्द्र पंड्य
संस्कृत काव्यमें जैन कवियों का योगदान
भगवान महावीर - वद्धमान चंदुलाल शाह
महाकवि विजिनदास डॉ. प्रेमचन्द्र रांवका
जीनतीर्थ पूजा
जैनतीर्थ दर्शन
ज्ञानमति अभिनन्दन ग्रन्थ
साहित्य की मीमां सा. ड्रा. विष्णु प्रसाद

आगम के आलोकमें - ब. कपुलभाई
भारतके दिगम्बर जैन तीर्थ भाग १ से ४
तीर्थ बंदना - (अप्र भ्रंश) भट्टारक उदयगिरी
तीर्थ बंदना मराठी भट्टारक गुणकीर्ती
तीर्थ बंदना गुजराती भट्टारक मेघराज
सर्व तीर्थ बंदना भट्टारक ज्ञान सागर
पावागढ़ तीर्थ क्षेत्रका इतिहास
दक्षिण भारत में जैनधम पं. कैलाशचन्द
जैन तीर्थ दर्शन - जैन परिषद
जैन डायरी - जयपूर
तीर्थ बंदना - भट्टारक जिनसागर
तीर्थ बंदना - भट्टारक गुणकीर्ति
बोध प्रस्टत - श्रुतसागर
चितौड चैत्य परिपाटी - जयहेमकृत
मध्यकालिन भक्तकवि - ड्रा. मदनकुमार जानी
राजस्थानी भाषा ड्रा. सुनीतिकुमार
महाराणा कुम्भ - राज वल्लभ सोमाणी
कान्ती कथाअे - श्रीकुष्ण सरल
वर्ण जाति धर्म - वर्ण व्यवस्था - फूलचंद शास्त्री
भट्टारक सम्प्रदाय - श्री विद्याधर जो हरापुरा
चौरासी जातिमाला / जैन गोत्र संग्रह प. हीरालाल हंसराज
सन्दर्भ ग्रन्थ

ज्योतिष विभाग :-

भारतीय ज्योतिष - ड्रा. नेमीचन्द्र
भाग्यफक - ड्रा. नेमीचन्द्र
रिष्ट सुमूच्यय - ड्रा, नेमीचन्द्र
करल क्खणा - ड्रा. नेमीचन्द्र
केवल ज्ञान - ड्रा. नेमीचन्द्र
प्रश्न चूडामणी - ड्रा. नेमीचन्द्र
भद्रबाहु संदिता - ड्रा. नेमीचन्द्र
विद्यानुवाद हस्त लिखीत मतिसागर लघु विद्यानुवाद कुन्थुविजय प्रकाशन
जैमिनी सूत्र

ज्योतिष प्रकाशन - नरचंद
अर्थकांड
ज्योतिष पटल - महावीराचार्य
त्रैलोक्यदीपक
आप ज्ञान तिलक भट्टकेशरी
ज्योतिष ज्ञान तिलक भट्टकेशरी
ज्योतिष ज्ञान निधि श्री गछाधराचार्य
आरंभ सिद्धि - मूर्हतशास्त्र हेमहंसमणि
दानवीर माणिकचंद - बं. शीतलप्रसादजी
जैन ड्रायरेक्टरी (१९१४)
Hisrory of Rajhat by Co. games Todd
Early history of India
by Viset Smith.
Jain Incriptions of Rajasthan
by R.V. Smoani
Interpretaton of Sanes Camon
by Vilas Sargame
In Increase in extent of Jainsium Dr. Sargame
Jain Society thanph ages
Recalls against Jain Relision Atharities
by Vilan sangram
In Inonium sonth India - P. B. Desai
(आर्कियो लोगी कल सर्वे)
of India D. R. Bhadarka
(इन्डियन इन्दो क्रेरी)
Jainisum in Rajasthan ड्रा. कैलाश चन्द्र
Annual Report onindian
Ehugraly year 56-57-58-1357
By Aeholosical, Surrey of India.

हस्त लिखित ग्रन्थ

१. हूमड़ पुराण
२. हूमड़ वंशावली
३. वहद आशिका
४. छोटी आशिका
५. हूमड़ो का इतिहास - माननयी श्री जवाहरलालजी वे प्रतापगढ़
६. हूमड़ समाजकी बह्द नोंध
श्री मैयालाल बंडी प्रतापगढ़

रामचन्द्र के सुत दोय वीर, लाडनिरदं आदि गुणधीरा
पाँच कोटि मुनि मुक्ति मंझार, पावागिरी बंदो निरधार ॥
निवाणकांड

लाडवंश पज्जुपण्णो सम्भूकुमारो तहेव अणि रुद्दो ॥
बहत्तर कोडीओ उज्जयन्तो सत्तिया सिद्धा ॥
भूवलय ग्रंथ निर्वाण गाथा से

श्री हूमड़ समाज इतिहास
शोध समिति

केन्द्रीय कार्यालय :
१, ऋषभ चैत्यालय, सुदर्शन
सोसायटी-१, नारणपुरा,
अहमदाबाद-३८० ०१३

विषय प्रवेश

संयोजक श्री हीरालाल जैन सालगागियि

हूमड़ परम्परा

परम्परा सरिता के प्रवाह के समान उसमें हर वर्तमान क्षण अतीत का आभारी होता है। वह प्रत्येक क्षण धर्म, ज्ञान, विज्ञान कला, सभ्यता, संस्कृति, जीवन पद्धति आदि गुणों को अतीत से प्राप्त करता है और स्व स्वीकृत एवं सहजात गुण सत्त्व को भविष्य के चरणों में समर्पित कर अतीत में समाहित हो जाता हैं।

प्रत्येक जाति की अपनी विशेष परम्परा होती है। किसी भी देश जाति तथा संस्कृति का इतिहास उनकी सामाजिक संधटन, धार्मिक विधि विधान एवं पाचीन परम्परा, प्रचलित संस्कारों में परिलक्षित होती है।

उत्तरवर्ती आचार्यों ने महावीर की परम्परा को बनाये रखा। गणधरों ने आगमोंका निर्माण किया। आचार्योंने संरक्षण दिया श्रुत संपदा को काल के क्रूर दुष्काल में विनष्ट होने से बचाया।

हूमड़ समाज जैन धर्म का अभिन्न अंग है और उसका इतिहास जैन धर्म के इतिहास का पृष्ठ है। अत:एव हमारा भगवान महावीर की परम्परा से सीधा सम्बन्ध है।

हूमड़ समाज का सीधा सम्बन्ध जैन धर्म के इतिहास से रहा है। हूमड़ समाज को धर्म परम्परा से अलग नहीं किया जा सकता। हूमड़ समाज का इतिहास हूमड़ों ने अपनाई हुई धर्म परम्परा है। इनके सिवाय कोई इतिहास नहीं है।

इतिहास से तथ्य

(१) हूमड़ों के पूर्वज लाड़ क्षत्रिय थे।

(२) उनका निवास, गुजरात प्रांत के साबरकांठा जिले के खेडब्रह्मा-विजयनगर तालुका के आसपास हिरण्य नदी के दोनों तट पर था।

(३) मूलत: हूमडों के पूर्वज, लाड क्षत्रिय प्रारम्भ से जैन धर्म के अनुयायी थे पावागढ तीर्थक्षेत्र से इनका सबसे पहले उल्लेख

- भगवान मुनि सुव्रत २०वें तीर्थंकर (इ. पूर्व ५००० वर्ष)
- भगवान नेमीनाथ २२ वें तीर्थंकर (श्रीकृष्ण के चचेरेभाई) (इ. पूर्व ३००० वर्ष)

महाभारत काल में राजा युधिष्ठर के समय इडर का राजा सूर्यवंशी वेणीवत्स

(४) मूलसंघ विभाजन के कारण विशेष परिस्थितियों में, लाड़ क्षत्रियों ने नन्दिसंघ का सानिध्य प्राप्त कर हूमड़ समाज का उद्भव किया। और नन्दिसंघ के विमाजन में बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ को अपनाया।

(५) हूमडों की परम्परा : (चार्ट नं. १) क्रम नं. १ से ७२

मूलसंघ प्रारम्भ : भगवान महावीर के निर्वाण से वीर संवत विक्रम संवत ४७० पूर्व इसवी सन ५२७ वर्ष पूर्व उसके १६२ वर्षों बाद आ. भद्रबाहु के समय दुर्भिक्ष के कारण शिथिलाचार को अपनाकर, श्वेताम्बर संघ की स्थापना की।

वीर संवत ५६५ संवत ९५ इ. ४२६८ में मूल संघ का ऐतिहासिक विभाजन हूमड़ समाज का उद्‌भव और हूमडों ने नन्दिसंघ को अपनाया। इसके क्रम नं. ५ आ. कुन्द कुन्द (१५४-२३६) आ. कुन्द कुन्द के समय गिरनार पर्वत पर शास्त्रर्थ में आ. कुन्द कुन्द ने देवी अम्बिका की पाषाण मूर्ति से दिगम्बर आम्नाय प्राचीन है बुलवाने से वलात्कार गण कहलाया।

पद्मनन्दी गुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणी।
पाषाणघटिता येन वादिता श्री सरस्वती ॥ ३६ ॥
उज्जयन्तगिरौ तेन गच्छः सारस्वतो भवेत्।
अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमः श्री पद्मनन्दिने ॥ ३७ ॥
नन्दिसंघ गुर्वावसी

इसी घटनाके सम्बन्धमें कविवर वृन्दावनने भी लिखा है
संघ सहित श्री कुन्दकुन्दगुरु बन्दन हेत गये गिरनार।
वाद पर्यौ तहं संशयमतिसों सारवी वदी अम्बिकाकार।
सत्यपंथ निर्ग्रन्थ दिगम्बर कही सुरी तहं प्रकट पुकार
सो गुरुदेव बसो ३२ मेरे विधन हरण मंगल करत्तार॥
वृन्दावन

इस तरह मूल मूलसंध विभाजन के समय नंदीसंघ आ. कुन्दकुन्द वलात्कारगण और आचार्य कुन्दकुन्द के समय मूल नन्दिसंघ के विभाजन वलाकपिगच्छ देशीगण पुस्तकगच्छ की स्थापना होने से मूल सरस्वतीगच्छ कहलाया।

इस प्रकार संवत् २७७ उसके बाद हूमड़ समाज जिसकी नन्दीसंघ का सानिध्य प्राप्त किया था वह उसके बाद सभी मूर्तिलेख, प्रशस्ति, शिलालेख-गुर्वावली, पट्टावली आदि में इसका उपयोग होता रहा जिसे संव्त १२६१ में भदारक उद्‌भव के बाद से संव्त १९१३ तक हूमड़ो के सभी भदारकों ने इस परम्परा को जारी रक्खा।

क्रम (११) आ. देवनन्दि पूज्यपाद (४७८-५३८) जो पंचामृत अभिषेक पूजा पद्धति १५०० वर्ष पूर्व आ. पूज्यपाद ने संस्कृत में रचना की। वह वर्तमान में भी ८५% टका हूमड़ समाज में प्रतिदिन अपने जिनालयो, गृह चैत्यलयो में प्रचलित हैं।

क्रम (१२) आ. गुणनन्दि (४९३-४९९)

ऋषिमंडल यंत्र, स्त्रोत-पूजा की रचनाकर आराधना, पूजा, अर्चना, के साथ यंत्र, तंत्र, मंत्र ध्यान का समन्वय किया जिसे आज भी १५०० वर्षों से सभी हूमड़ों के जिनालयों, गृह चैत्यालयों में इस यंत्र की पूजा, अर्चना, आराधना की जाती है। समाज के अनेक संकटों, स्थातंरों आक्रमणों के समय इसकी आराधना से शान्ति प्राप्त की।

क्रम (१३) से ७२ तक आचार्यों का क्रम चलता रहा (४९९ से १२६१ तक) (विगत् पट्टावली में)

तेरहवीं सदी में जब भट्टारकों का उद्‌भव हुआ, तब उपरोक्त नन्दिसंघ, बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ की परम्परा में इडर, सूरत और इनके द्वारा अनेक पेटास्थलों में भट्टारकों की गादी स्थापित की गई।

क्रम (७३) आचार्य बंसतकीर्ति ने विशेष परिस्थिति में भटारक सम्प्रदाय की स्थापना की और नन्दिसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ की परम्परा को चालू रक्खा।

क्रम (७७) मदारक रत्नकीर्ति ने दिल्ली में अपनी गद्दी (पीठ) स्थापना की (१२७६-१३१०)

क्रम (७८) भ. प्रभाचन्द्र ने बादशाह फिरोजशाह को प्रभावित करके उसके जनानखाने में बेगमों को दर्शन दिया एवं

क्रम (७८) ने इडर गद्दी स्थापितकर सकलकीर्ति सूरत गद्दी स्थापित कर देवेन्द्रकीर्ति को मदारक बनाया।

बसंतकीर्ति (भटारक संप्रदाय के प्रवर्तक वि. संवत् १२६१-१२६६

भ. प्रद्यनन्दि १३८५-१४६२

दिल्लीलाल किले के सन्मुख

लाल मन्दिर में गद्दी की स्थापना

↓

शुभचन्द्र

↓

जिनचन्द्र

↓ अटेरशाखा

↓ नागोरशाखा

↓ चितौंडशाखा

इडर गद्दी की स्थापना

प्रथम भट्टारक सथलकीर्ति (क्रम ८०)

(१४६२-१४९९)

(क्रम १०० कनककीर्ति १९५५)

(१) सागवाडा शाखा १५३५-१८८६

(२) भानपुरशाखा १४९९-१९७३

(३) कारजंशाखा १५४५-१९७३

लातुरशाखा १७०८-१८३२

नोट सूरत में हूमड़ों के नन्दिसंघ की गद्दी जिनालयमें की उसी समय काष्ठसंघ के भटारको की गद्दी - जिनालय में की जिसका सम्बन्ध नरसींगपूरा जाति से है

सुरत गद्दी की स्थापना

देवेन्द्रकीर्ति (रांदेर सुरत)

१४५०-१४९९

जेरहरशाखा

१५५२-१७५६

(१) बारडोली - १५५६-१७७४

कारंज में नन्दिसंघ के भटारकों की गद्दी जिनालय में और काष्ठसंघ के भटारकों की जिनालय मे थी काष्ठसंघ की इस गद्दी से हूमड़ों का कोई सम्बन्ध नहीं है।

भटारक सम्प्रदाय का उद्भव हूमड़ों के भटारक की गद्दी (पीठ) और उनकी शाखा-लघु शाखा वि. संवत् १२६१ से वि. संवत् १९७३ (५०० वर्ष) का विवरण

मदारक संप्रदाय का उद्‌भव एवं विकास और हूमड़ समाज

वि. संवत १२६१में आ. बंसतकीर्तिने विशेष परिस्थितियों के कारण भटारक संप्रदाय की प्रथा प्रारम्भ की और आगे जाकर जहाँ हूमड़ों का निवास था वहाँ उसकी शाखा - लघुशाखा की स्थापना हुओी । इस प्रकार कारंजशाखा वि. संव्त १९७३ तक चलती रही ।

इस प्रकार ५०० वर्षों तक हूमड़ों पर भटारकों का सानिध्य और अधिपत्य रहा । भटारक धार्मिक गुरु के साथ गृहस्थाचार्य का काम भी करते वे जन्म से मरण तक सुख, दुख, पारिवारिक या जाति की सामूहिक उलझनों में सभी प्रकार उपदेश सलाह सूचन करते हैं । ५वीं सदी से १२ सदी तक विदिशियो, मुगलों द्वारा हूमड़ों के लगभग सभी जिनालय नष्ट हो चुके थे । भटारको ने उनका फिर से जीर्णोद्धार कराया । शास्त्रभंडारों को पुनः व्यवस्थित करके पुनः प्रारम्भ के साथ पूजा-अभिषेक-विधान, धार्मिक उत्सव, पंच कल्याणक प्रतिष्ठा, तीर्थों का उद्धार, सामूहिक यात्रा आदि प्रारम्भ करवाई । यह समय हूमड़ समाज का सुवर्ण युग था ।

हूमड़ समाज और भटारक सम्प्रदाय एक समीक्षा

विक्रम संवत् १२६१ से लगभग ७०० वर्षों का भटारकों का विवरण ही ७०० वर्षों का हूमड़ इतिहास है। अनेक विद्धानों ने उनके ग्रन्थों में मुख्य करके (१) 'भटारक सम्प्रदाय' विद्याधर जोहापुकर (२) जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग १-२ परमानन्द शास्त्री (३) जैन सिद्धांत कोष भारतीय विद्यापीठ (४) खण्डेवास इतिहास ड्रा कस्तूरचंद्र काशलीवाल ने भटारको संबंधी विवरण लिखा है। इसका मूल प्राप्त स्थान इडर, डुंगरपुर, नागौर आदि प्राचीन हूमड़ों के जिनालयों के शास्त्र भंडार से हैं जिसे सभी इतिहासकारोंने स्वीकार किया है परन्तु इसको किसीने भी हूमड़ समाज से जोडने का प्रयत्न नहीं किया। दूसरा सागवाडा, भानपुरा, बारडोली महत्त्वपूर्ण भहारकों की गद्दी का उल्लेख नहीं है। भटारको के शिष्य किसी भी जैन जाति के होते थे जो योग्य होता उसे गद्दी दी जाती थी। इसका उपयोग करके खण्डेलवाला इतिहास में जो उस जाति के थे उनका विवरण से किया गया है। किसी भी जाति के पास प्रारम्भ से वर्तमान तक इस प्रकार की पहावली या गुर्वावली नहीं है। इतिहास के प्रथम भाग में हमने आगम मान्य पहावली मूल प्राकृत, संस्कृत भाषा में प्रकाशित की है केन्द्र के पास भटारक सम्बन्धी ५०० पेज का एक ग्रन्थ लिखा जा सके संग्रह किया गया है। उसे बहुत संपेक्ष में सभी मुख्य विषयों का समावेश दूसरे भाग में लगभग ८४ पेजों में प्रकाशित किया गया है।

हूमड़ समाज को यदि भटारकों का सानिध्य नहीं होता तो उसकी कल्पना नहीं की जा साकती है । इस सुवर्णयुग में हूमड़ों ने मूल स्थान से स्थानंकर पुनः उत्थान करके निर्णायक जगह स्थायी होकर घर और व्यवसाय बसाया साथ में मूगलों द्वारा नष्ट किये जिनालयों का जीर्णोद्धार किया और जहाँ २ नई जगह बसे वहाँ जिनालयों का निर्वाण किया। समाज का एक वर्ग भटारको के महत्व को नहीं स्वीकारता सिर्फ अन्तिम भाग में शीतलता को देखता हैं हमे उनका ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में उचित मूल्यांकन करना चाहिए ।

हूमड़ समाज ने प्रारम्भ से २०वीं सदी के प्रारम्भ तक अपने द्वारा निर्माण किये जिनालयों, समाधि स्थलों, शास्त्रों की प्रशस्ति में शिलालेखो, मूर्तिलेखो सभी में मूलसंघ-नन्दीसंघ-बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ का उल्लेख, उतीर्ण किया है । यहाँ यह स्मरण रखता चाहिये नन्दिसंघ से विभाजित होकर समय २ पर द्रविडसंघ (वि. ५३६) देशीगण पुस्तकगच्छ (विक्रम २७७) इसके सिवाय आ. धरसेन का पंचस्तूप, आ. गुणधर का गुणधरसंघ, आ. समतभ्रदका संघ उनकी शाखा आदि में नन्दीसंघ का उल्लेख आता है परन्तु वह उनका मूल स्थान है और वहाँ से उनका अलग पेटा विभाग है। हूमड़ों का सीधा सम्बन्ध नन्दीसंघ के वलात्कारगण सरस्वतीगच्छ से है।

हूमड़ों का १५०० वर्ष पूर्व ऐतिहासिक नगर पोलो (पाल)

गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग के अनुसार साबरकांठा - खेडब्रह्मा के जंगलों में हरणाव नदी के दोनों तटों पर अत्यन्त प्राचीन १० की. मी. वाला विशाल नगर १५०० वर्ष पूर्व बसा हुआ था । इसवी १२०० के आसपास धर्म झनूनी आलाफरवानं खीलजी बादशाहने इस नगर और मन्दिरों को सम्पूर्ण नष्ट किया । उस ऐतिहासिक नगर के अत्यन्त जीर्ण अवस्था में जैन और शैवं मंदिरों के अवशेष चित्र - यह समस्त जंगल गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग के आधीन है ।

(१) आँतर सुबा विभाग

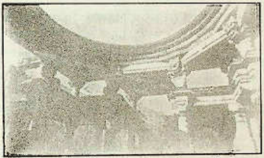

इस विभाग में चार जिनमन्दिर और एक शिवमन्दिर के अवशेष हैं

(२) अभापूर विभाग

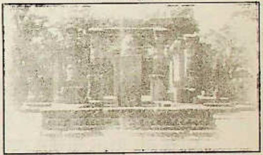

इस विभागमें ३ जैन मन्दिर एव शिवशक्ति मन्दिर 'शरणेश्वरम' के अवशेष है ।

अरवल्ली डुंगरमाला के बीच बहती (हरणाव) नदी के दोनों तट पर

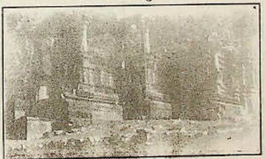

स्थापत्य के बहमूल्य हूमड़ों की सांस्कृतिक धरोहर - भव्य मंदिरों के अति जीर्ण अवशेष

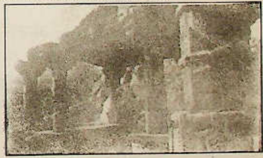

द्वारका सोमनाथ कक्षा की स्थात्य कलावाले जैन मन्दिरों के अवशेष

नोट : क्रम नं. ३-४ में ७ जिन मन्दिर कुल १४ जैन मन्दिरों के अवशेष जंगल - उत्तर गुजरात - साबरकांठा - जिल्ला इडर से ईशान दिशा खेडब्रह्मा - अंबाजी नेशनल हाईवे लगभग ३७ की. मी. हरणाव (प्राचीन नाम हिरण्य) नदी के दोनों तटो पर वर्तमान धने जंगलों में है ।

गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग से विशेष विवरण

इतिहास लेखन के समय हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती हूमड़ों के पूर्वज उनके मूलस्थान हूमड़ समाजके उद्‌भव के स्थल और समय -हमने इतिहास के पहले भागमें और दूसरे भाग में भी हिन्दुपुराणों, जैन आगमग्रंथ, तीर्थों के इतिहास, प्राचीन शास्त्र भंडारों से प्राप्त पट्टावलियों के आधार पर उपरोक्त प्रश्नोंका उत्तर प्राप्त करनेका प्रयत्न किया है।

हमें अत्यंत हर्ष और संतोष है कि उपरोक्त संशोधन् में सबसे महत्त्वपूर्ण इतिहास मान्य प्रमाण हमें प्राप्त हुआ है। **वह है गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग से प्राप्त हूमड़ों के प्रथम प्राचीन नगर पोलो का विवरण**। पुरातत्त्व विभाग के अनुसार (जो गुजरात समाचार दैनिक में प्रकाशित हो चुका है।) अभी तक गुजरात सरकारके पुरातत्त्व विभागने आतरसुबा विस्तार में चार जिन मंदिरों एवं अभापुर विस्तारमें तीन जिन मंदिरोंका पता लगाया है। साथमें अन्य हिन्दू मंदिरोंका भी पता लगाया है।

यह सारा पोलो नगर जो १० की.मी. से भी बडा था। खंडहर अवस्थामें घने जंगल में स्थित है जहाँ हिंसक प्राणी पाये जाते हैं।

पुरातत्त्व विभाग के अनुसार निम्न विवरण प्राप्त हुआ। फोटो पुरातत्त्व विभाग से मिले हैं।

यह सारा वर्तमान जंगल विभाग पुरातत्त्व विभाग के आधीन है

गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग के अनुसार

हूमड़ों का प्रथम प्राचीन नगर पोलो के बारेमें विशेष जानकारी

साबरकांठा विजयनगर तहसील के एक विशाल विराट जंगल में, हरणाव नदी के दोनों तट पर एक अत्यन्त प्राचीन विशाल नगर पोलो लगभग १५०० वर्ष पूर्व बसा हुआ था। इस प्राचीन नगर की निशानी के रूपमें, अत्यत सुन्दर खण्डित किये गये नैसर्गिक स्मारक अत्यन्त जीर्ण अवस्था में पाये जाते हैं। इसका विस्तार १० की.मी. से अधिक था।

आतरसुबा विस्तार

इस विशाल वर्तमान सघन जंगल के आतरसुबा विस्तारमें चार जैन मन्दिर, एक शिव मन्दिर, एक शक्ति मंदिर, एक शिव पंचायत मंदिर अत्यन्त जीर्ण अवस्थामें पाये जाते हैं।

अभापुर विस्तार :-

इस विस्तारमें शिवशक्ति मंदिर, शारणेश्वर मंदिर, एक विशाल कुण्ड और ३ (तीन) जैन मन्दिरों के अवशेष पाये जाते हैं।

शिव शक्ति मंदिर पश्चिम मुख का है। इसके अन्दर गर्भगृह के अंत में मंडप और प्रवेश चौकी इस प्रकार चार अंगों वाला चौरंजी प्रसाद है।

सौजन्य : सुरेशजी सालगिया
सांकेत नगर, ईन्दौर

कुंभव में देव देवियों का खडगासन गणेश, इन्द्र, शिव, दर्पणकन्या, नृत्यगंधा, इन्द्राणी, पार्वती आदि की सुन्दर कृतियाँ हैं ।

यह १५०० वर्ष प्राचीन समूह सारी की सारी नगरी गायब हो गई और बचगये चारों तरफ मुस्लिम आतंक वादियों के द्वारा नष्ट किये गये, तूटे फूटे अत्यन्त जीर्ण मंदिरों, खंडित मूर्तियों, एवं भव्य प्रासादों के स्मारक । ये अव्यवस्थित चारों और बिखरे पडे हैं ।

ये स्मारक कहीं इक्के दुक्के तो कहीं समूह में पाये जाते हैं । उत्तर गुजरात के साबरकांठा जिले के ईडरसे ईशान दिशा में खेडब्रह्मा, अम्बाजी मुख्य मार्ग से विजयनगर जाने वाले मार्ग पर लगाभग ३५ कि.मी. दूरी पर हरणाव नदी (प्राचीन नाम हिरण्यानदी) के दोनों किनारे पर (प्राचीन पोलो नगर) पर्वतों की घाटी तक पाये जाते हैं ।

आज से १५०० वर्ष पूर्व अरावली पर्वत माला से बहती हुई हरणाव नदी के प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर यह किसी समय मंदिरों का यात्राधाम था । वर्तमान में १० की.मी. विस्तार वाला आबादीके बिना पोलो नगर इसकी भव्य भूतकाल के साक्षीरूप सूमसान पडा है । इसमें बहुमूल्य १४ जैन मंदिर, अनेक हिन्दू मन्दिर हैं जिनकी स्थापत्य कला द्वारका सोमनाथ के सदृश हैं ।

सन् १२२० में धर्मजनूनी बादशाह खिलजी ने भव्य प्राचीन नगर के मंदिरों, प्रासादों को तोड फोडकर सारी समृद्धि को लूट लिया । उस समय सारी प्रजा को यहाँ से स्थानांतर करना पडा ।

गुजरात सरकार द्वारा प्रकाशित 'प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास भाग १ से १०' कहता है कि अकबर के सामने लडते महाराणा प्रताप पोलो नगरी में गुप्त वेषमें रहे थे ।

मानव जातकी बस्ती विना का १० की.मी. का पोलो गाँव आज भव्य भूतकाल की साक्षी लेकर सूमसाम खडा है ।

आलाफरवान खिलजी नामक धर्म जनूनी बादशाह के द्वारा इस भव्य नगरी के मंदिरों की तोडफोड और लूटफाट हुई थी ।

साबरकांठा में खेडब्रह्मा के पासके जंगलों में १००० वर्ष पुराने शिव और जैन मंदिरोंके अवशेष धूल खा रहे हैं ।

गोत्रकुंड

अभी तक हिन्दू पुराणों में हूमड़ पुराण आदि में और वृद्ध पूर्वजों से - इसके विषय में खूब मौखिक चर्चा चलती थी । अब प्राप्त विवरण के अनुसार यह कुंड १००० वर्ष से ज्यादा प्राचीन होने से गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग के आधीन हैं । पुरातत्त्व विभाग में हूमड़ों के गोत्र की कुलदेवियों का उल्लेख हैं । इसे दिनांक ३०-६-९९ के टाइम्स ऑफ इण्डिया अंकमें चित्र के साथ प्रकाशित किया है ।

सौजन्य : सुरेशजी सालगिया
सांकेत नगर, ईन्दौर

हूमड़ो का गोत्रकुण्ड - खेडब्रह्मा

विशाल तीन मंजिला कुण्ड जिसके दूसरे भारत में हूमड़ो के १८ गोत्रो की अधिष्ठात्री देवियों की १८ देव कुलिकाए बनी हुई है। गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग के अनुसार चोथी (४) सदी के आसपास निर्माण हूमड़ो का गोत्रकुण्ड वर्तमान में अत्यंत जीर्ण अवस्था में है जो गुजरात सरकार के पुरातत्त्व विभाग के आधीन है।

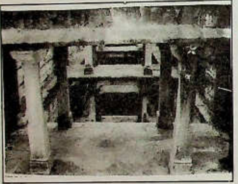

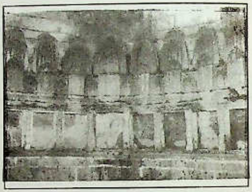

गुर्जर विषये रम्ये, ब्रह्म खेटक संज्ञक।
पुरमस्ति महद्दिव्य, दक्षिणे चार्बुदा चलाता ॥
कुते ब्रह्मपुर नामा, त्रेता या ऋम्बकां
तदैव द्वापरै ख्यांत, कलौवे ब्रह्म खेटकं ॥

अस्ति तत्र महीपुण्या, हिरण्याव्या नदी शुभ ॥
तत्रेव सगम पुण्यौ, नदी द्वितीय संभवः ॥
ग्राम मध्ये निवसति देवो वै पद्म संभवः ।
भार्या द्रेयेन संयुक्तो, तत्प्रासादस्य पूर्वतः ॥ १८ ॥
''वापिकास्ति महारभ्या तन्मध्ये, कुल देवता
या सा पूजन माचेण चेटिस्त फल लभ्यते।''

'ब्राह्मणोत्पत्ति मार्तण्डले'

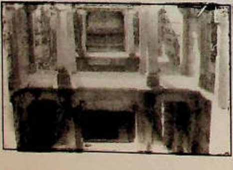

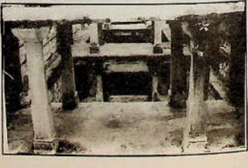

पालक्षेत्र

पुरातत्त्व विभाग के अनुसार यह क्षेत्र १५०० से अधिक वर्ष प्राचीन है। प्राचीन समय में यहाँ विशाल नगर और किला बना हुआ था। उस समय यहाँ ३०० से अधिक हूमड़ों के परिवार बसते थे।

वर्तमान में १००८ नेमिनाथ भगवान की प्राचीन मूर्ति और विशाल प्राचीन मंदिर है, जिसका जीर्णोद्धार चल रहा है।

ऊपरोक्त ऐतिहासिक प्रमाणों से निश्चित होता है कि हूमड़ों के पूर्वज खेडब्रह्मा हिरण्यनदी के दोनों तट पर निवास करते थे और वि.स. १०१ में लाड क्षत्रियों ने हूमड़ जातिकी स्थापना की थी।

समय-समय पर भीलों, हूणों और फिर मुगलों के आक्रमण से हूमड़ों को सामूहिक रूप से स्थानांतर करना पड़ा था।

श्री १००८ नेमिनाथ पाल दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र ट्रस्ट पाल-विजयनगर (साबरकांठा)

पाल मदिर का इतिहास

गुजरात प्रांतके साबरकांठा जिला स्थिति विजयनगर तहसीलके पाल ग्राममें अति प्राचीन अतिशय युक्त श्री १००८ नेमिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर है जो लगभग २००० वर्ष पुराना है। मंदिर निर्माण के समय पाल नगरीमें जैनोंकी ३०० से अधिक घरकी आबादी थी। यह प्राचीन मंदिर अहमदाबाद से वाया भिलोडा रुट पर विजयनगरसे पूर्व १० की.मी. पर स्थित है। इस प्राचीन मंदिरका जीर्णोद्धार कार्य लगभग १ वर्ष से चल रहा है।

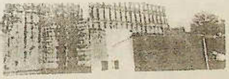

सौजन्य : श्रीमती निशा दीपककुमार शाह
आंध्र एक्सप्रेस सर्विस प्रा. ली., ३५, भांगवाडी शोपींग सेन्टर, आरकेड, कालबादेवी, मुम्बई - ४००००२

हूमड जाति का सामाजिक सर्वे :-

हूमड़ समाज जैन समाज का अति प्राचीन महत्वपूर्ण अभिन्न अंग है। इस समाज / जातिका उद्‌भव २००० वर्ष पूर्व होने पर भी इस जातिने अपनी प्राचीन परम्परा, गोत्र, संस्कृति रीतिरिवाज को नियत रखा है।

मूलसंघ के विभाजन के समय से इस जाति ने नन्दिसंघ को स्वीकार किया और आगे जाकर उसी संघ के बलात्कारगण, सरस्वती गच्छ के आचार्यों, भट्टारकों के सानिध्य को स्वीकार किया।

यद्यपि हूमड़ जनसंख्या की दृष्टिसे एक छोटा समाज है परन्तु उसके आचार्यों, भट्टारकों द्वारा जैन समाज को कला, वास्तु शास्त्र, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, भाषा, साहित्यने प्रमुख और महत्वपूर्ण सहयोग दिया है।

यह सब होते हुऐ भी इस जाति का सामाजिक सर्वे उपलब्ध नहीं था। इसे ध्यान में रखकर अखिल भारतीय हूमड़ जैन महासंघ ने सोशियल सर्वे का संग्रह करने का निश्चय किया और हूमड़ इतिहास के दूसरे भाग में प्रकाशित करने की योजना बनाई।

सोशियल सर्वे का उद्देश्य :-

हमारे सोशियल सर्वे संग्रह प्रकाशन हेतु है कि उसे पढकर, मनन करके हम हमारी सभी संस्थाओ, सारा समाज आत्म निरीक्षण करे कि वर्तमान में खूब तेजी से बदलती परिस्थितियों में हमे हमारे वर्तमान के रीतिरिवाज, खानपान, रहनसहन, शिक्षा, धार्मिक क्रिया कांड में क्या परिवर्तन, संशोधन करना आवश्यक है जिससे हमारी मूल संस्कृति और धार्मिक मान्यताओं का रक्षण हो सके। ऐसे महत्वपूर्ण विषय जैसा कि अन्तर जातिय विवाह जो भविष्य में हमारी संस्कृति, जाति गौत्र व्यवस्था, समाज को कमजोर ही नही परन्तु नष्ट कर सकती है। क्या उसका कोई उपाय है ? क्या हम सामूहिक विवाह से अनेक प्रश्नो का हल कर सकते है ? इसी प्रकार हमारे आर्थिक प्रश्न, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के प्रश्न किस प्रकार हल कर सकते है ? हमारा सामूहिक रुप से सहकारी क्षेत्र में प्रवेश कि लिये क्या किया जा सकता है ? वर्तमान में हमारी सामाजिक, धार्मिक, संस्थाएं क्या हमारी संस्कृति को बचाये, बनाये रखने का प्रयास कर रही है आदि अतएव उससे इतिहास के दूसरे बाग के विमोचन के साथ हमें उपरोक्त विषयों, प्रश्नों और समस्याओं का निदान तो करना ही है परन्तु साथ में सक्रिय ठोस उपाय जिससे हम हमारी अमूल्य संस्कृति को बनाये बचाये रख सके तभी तो इस सांस्कृतिक इतिहास का उद्देश्य पूरा होगा।

जिससे हमारे सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास के पृष्ठ जीवित है।

विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं का ज्ञान इन्हीं कृतियों के आधार पर ही हो सकता है। साहित्यकारो की रचनाओं मूर्तिलेखो, शिलालेखो, चित्रकला, ललितकला की रचनाओं में केवल अन्तर है कि एक मुखरित है और दूसरी मूक है परन्तु दोनों ही महत्वपूर्ण और उपयोगी है।

केन्द्र के पास सारे भारत के कोने कोने से प्राप्त २००० से अधिक मूर्तिलेख, ४०० शिलालेख, ८०० प्रशस्ति और ५०० हूमड के निर्माण किये जिनालयों का विस्तृत वर्णन गत्‌ ३ वर्षो में प्रप्त हुआ है। यदि सभी का समावेश किया जाए तो अलग से ५०० पृष्ठो के तीन चार अलग ग्रन्थ बनाये जा सकते है। (उनसे से तो बडी संख्या में ऐसे स्थल है जहाँ हूमडो के वर्तमान में बहुत काम घर रह गये है परन्तु विशाल वर्तमान एतिहासिक जिनालय है।) हमारा प्रयास रहेगा कि बहुत संक्षेप में प्रत्येक गाँव - शहेर जिनालय का बहुत संक्षेप में नाम प्रकाशित किया जायेगा। यह

एक हमारे सोशियल सर्वे का मुख्य अंग होगा इसी प्रकार हमारे भट्टारको, आचार्यो विद्वानो द्वारा रचित साहित्य की अनुक्रमणिका (मुख्य ग्रंथो की) संक्षेप में प्रकाशित होगी।

हूमड़ो का मूल उद्गम स्थान से देश देशान्तर में प्रयाण

प्रस्तावना :- यह हमारे इतिहास का बहुत महत्वपूर्ण अध्याय है, क्योंकि इस अध्याय में हम हमारे इतिहास के अनेक प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करने जा रहे है। यह एक गम्भीर समाज शास्त्र से संबंधित प्रश्न है मुलत: अपने आपको हूमड़ कहलाता और मानने वाले जाति समुदायों के मूल उद्गम और उन उद्गम स्थानों से देश देशान्तर में प्रवास के प्रयाण पथ (रुट्स ओफ माइग्रेशन) क्या थे, वे प्रयाण कालांतर में उन प्रवासी समुदायों में परस्पर और मूल उद्गम के साथ कितने और कैसे सम्पर्क और सम्बन्ध रहे। कब कहाँ और क्यों ये सम्पर्क सूत्र शिथिल विच्छिन्न हुए। क्षेत्रो को छोडने और देश परिवर्तन या देशान्तर का विकल्प चुनने के क्या कारण थे। क्या ये बल आर्थिक थे और नई सम्भावना के ही प्रेरित थे या उनमें राज नैतिक और समाज शास्त्रीय कारण भी था इतिहास केन्द्रिय कार्यालय में वर्तमान में लगभग २००० मूर्तिलेख, ५०० शिलालेख, ३०० प्रसस्ति, ईडर, सागवाडा, ऋषभदेव, नागौर से प्राप्त पट्टावसीयो, जैन अजैन इतिहास, (जैनो की सभी प्रमुख जातियों के) भारतीय ज्ञान पीठ इतिहास) द्वारा किया गया गत् ३० वर्षों का संशोधन, गुजरात सरकार द्वारा प्रकाशित गुजरात नो प्राचीन इतिहास अने संस्कृति दस भाग के अनेक एतिहासिक प्रमाण आदि हुमडो के अति प्राचीन ग्रन्थ ''हूमड पुराण,'' ''छोटे आशीशा'', ''बडे आशीशा'', ''हूमड वंशावली'', ''महाजन मुक्तावली'', ''दानवीर सेठ माणरुचंदजी का जीवन चरित्र प्राचीन गोरजी के हस्त लिखित संग्रह, जैन आगम और तीर्थक्षेत्र के इतिहास आदि के संग्रह और उनके अभ्यास से निचोड स्वरुप निम्न प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करने का प्रयास इस विभाग में किया जा रहा है :-

(१) हमारा मूल उद्गम स्थान (२) हूमड समाज के उद्भव का समय (३) हमारे पूर्वज कौन ? (४) उनकी संस्कृति क्या थी ? (५) हमे हमारे मूल स्थान या स्थानो से किस समय किस विशेष परिस्थितियों में प्रयाण करना पडा ? (६) हमारा प्रयाण का पथ क्या था ? (७) क्या २००० वर्ष होने पर भी हमने हमारी पहचान, मूल संस्कृति बनाई रखी है ? और अन्त में (८) आज के तेजी से बदलते समय में हमारी संस्कृति को बनाये, बचाये रखने के लिए क्या किया जा सकता है ? और क्या करना चाहिये ?

उपरोक्त प्रश्नों का हल हम

(१) ऐतिहासिक (२) भौगोलिक (३) राजनैतिक, सामाजिक परिपेक्षमें (४) आगम ग्रन्थो (५) पुराणो (६) अन्य धर्म ग्रन्थो से (७) प्राचीन ईतिहास से (८) हमारे शास्त्र भंडारो के अप्रकाशित सामग्री से (९) मूर्तिलेख (१०) प्रशस्तियों का उपयोग करके गत् ३० वर्षो में गुजरात सरकार द्वारा प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों पर चल रहे खनन द्वारा एवं शोध खोज से (११) माननीय स्व. श्री जवाहरलालजी वेद्य (प्रतापगढ़) द्वारा ५०० से अधिक पृष्ठों में तैयार किया गया अप्रकाशित हस्त लिखित इतिहास सम्बन्धी महत्वपूर्ण सामग्री (१२) गुजरात सरकार द्वारा प्रकाशित ''गुजरातनो प्राचीन सांस्कृति इतिहास'' १० भागो में प्रकाशित का उपयोग करके हमारा इतिहास का दूसरा भाग प्रकाशित करने जा रहे है।

हूमड समाज के रीतिरिवाज और सामाजिक धार्मिक पर्व :-

संस्कृति किसी राष्ट्र अथवा जाति के परम्परा संस्कार की वह समाष्टि है, जिससे उसके सामाजिक आचार विचार, रहन सहन, रीति रिवाजों, नैतिकता, कला, धार्मिक एवं आध्यात्मिक विश्वास की अभिव्यक्ति होती है।

वर्तमान परिस्थितियों में हमारे समाज की बडे शहरों में तेजी से दौड और पश्चिमी संस्कृति के बढते जाते प्रभाव से हमारे मूल रीति रिवाजो में अनेक विकृति आ गई है। जहाँ प्राचीन समय में जन्म से मरण तक सभी (१६ संस्कार) रिवाजो में हमारी धार्मिक आस्था, संस्कृति की प्रधानता थी वहाँ आज हमारे रीति रिवाज, नाच गान, आमोद प्रमोद, स्वछन्द दिखावे मात्र रह गये है। हमें उनमें आवश्यकतानुसार योग्य संशोधन हमारी मूल धार्मिक आस्था और संस्कृति का रक्षण करते हुए करना है। इसी हेतु इस विभाग में हमारे प्राचीन तथा वर्तमान में विभन्न प्रांतो में प्रचलित रीति रिवाजो का संग्रह किया गया है

गौत्र :-

गौत्र जाति व्यवस्था की पोषण है। वह समाज को नैतिक और आध्यात्मिक आधार प्रदान करती है। शिष्टता और सदाचार का मूल जाति धर्म है। इसके सुव्यवस्थित रहने पर ही धर्म स्थायी, राज्य, राष्ट्र, देश, समाज, समृद्ध रह सकता है अन्यथा नहीं। जाति व्यवस्था गौत्र पर आधारित है। हूमड़ समाज के उद्‌भव से ही गौत्र का अस्तित्व है। प्रारम्भ में प्राकृत फिर संस्कृत और पीछे हिन्दी व प्रांतीय भाषा के कारण गौत्र के नाम आदि में भिन्नता पाई जाती है। इनका लगभग १० से अधिक ग्रन्थो आदि के आधार पर गौत्र इतिहास एवं संशोधित गौत्र पत्रक तैयार किया गया है। गौत्र हूमड़ समाज का प्राण है, इसके बिना हम हमारी पहचान नहीं बना सकते है। हमारी प्राचीनता, अस्तित्व, संस्कार, सभ्यता गौत्र पर आधारित है। अटक तो परिस्थितियों के अनुसार बदलती भी रहती है परन्तु गौत्र कभी नहीं बदलता। हूमड दुनिया के किसी भी कोने में क्यों नहीं बसता हो, उसका गौत्र निश्चित गौत्रो में से एक गौत्र का ही होगा।

हूमडो के जिनालय तथा महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्मारक, मुर्तिलेख, शिलालेख आदि का विवरण :

देश के जैनियों में हूमड़ समाज ही एक मात्र ऐसा अग्रणी समाज है, जिसने सामाजिकता के साथ धर्म या आम्नाय को कभी नहीं छोडा। हूमड़ इतिहास को हमारे धार्मिक इतिहास से अलग करना असम्भव है क्योंकि हमे जो ऐतिहासिक प्रमाण वर्तमान में उपलब्ध है वह सब अधिकाश धार्मिक स्थलों जैसे मूर्तिलेख शिलालेख, स्मारक, जैन आगम ग्रन्थ साहित्य से ही प्राप्त है। हमारी विशाल सांस्कृतिक धरोहर है मूर्तिलेख, शिलालेख, पट्टावलियों एवं प्रशस्तियो, विशाल और जीते जागते जिनालय, सामाजिक, परम्परा और उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण हमारा इतिहास आगम ग्रन्थ, पुराण, प्राचीन रास हमारे आचार्यो भट्टारको विद्वानों की साहित्य रचनाएँ है।

हूमड़ समाज का सोशियल सर्वे

इतिहासकार डॉ. कामना प्रसाद अपने एक पत्र में लिखते हैं :-

प्रसिद्ध :-

"The Humad Community is one of the very ancient community of jain ....have their own vast sacred literature & philosophy & out look on life.... they have contributed a great deal to the development of art & arrchitecture, logic & philiosophy, language & literature.

Education & learning charitable & public institutes ....Occupies an important place ....but no. systematic study of social & Religious institutions, customs & manners present among them even though there are adeguate information available with them....

इस प्रकार अनेक जैन इतिहासकारो ने हमारे लिये लिखा है। यही कारण है सभी जैन इतिहासों में हमें योग्य स्थान नहीं मिला है। इसमे हमारा ही दोष है। हम हमारे सोशियल सर्वे में निम्न विषयों का समावेश करने जा रहे है।

अखिल भारतीय हूमड़ जैन इतिहास शोध समिति ने निम्न विषयों का सर्वे तैयार किया :-

(१) जनगणना (२) हूमड़ों के प्राचीन और वर्तमान रीति रिवाज (३) गौत्र (४) हूमड़ों के जिनालय एवं हूमड़ो का तीर्थ निर्माण एवं जीर्णोद्धार में सहयोग (५) हूमड़ों की धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक संस्थाओं का विवरण (६) हूमड़ों के ऐतिहासिक पुरुष और महिलाएँ (७) बीसवी सदी के हूमड़ों के संत (८) हूमड़ इतिहास सम्बन्धित शिलालेख एवं मूर्तिलेक (९) हूमड़ों के धार्मिक एवं सामाजिक पर्व (१०) पारिवाहिक विवरण

इतिहास के दूसरे भाग में समावेश किये जा रहे विविध विषयों की एक झलक :

इतिहास विभाग :

(१) हूमड़ों के उद्‌गम स्थान से देशान्तरो का ऐतिहासिक प्रमाणो के साथ विस्तृत विवरण (२) भट्टारक प्रथा का उद्‌गम १२वी सदी से १८ वी सदी तक हूमडो के विविध स्थलो के भट्टारको का विवरण उनके द्वारा जिर्णोद्धार, नये मंदिरो का निर्माण, साहित्य रचना व विविध कार्यों का विस्तृत विवरण (३) हूमडो के तीर्थ और ऐतिहासिक स्थलो का विवरण (४) हूमडो के प्राचीन ऐतिहासिक पुरुष और महिलाएँ (५) हूमडो के वर्तमान प्रमुख प्रतिष्ठित, विद्वान, उद्योगपति, व्यापारी, सामाजिक और राजनेतिक, धार्मिक कार्यकर्ता का विस्तृत विवरण फोटो आदि के साथ

जनगणना :- उद्देश्य :-

किसी भी अ. भा. स्तर पर काम करनेवाली संस्था के लिये सबसे महत्वपूर्ण और आवश्यकता होती है कि वह सुनिश्चित करे कि जिस विशेष समाज का वह नेतृत्व कर रहा है वह समाज देश विदेश में कहाँ निवास करता है

तथा उसकी वर्तमानमें सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक परिस्थिति क्या है और उसकी प्राथमिक आवश्यकता क्या है और महासंघ उनके सामूहिक उत्थान तथा आवश्यकता के लिये क्या कार्यक्रम कर सकता है। उपरोक्त विषयों का विश्लेषण एक मात्र हूमड़ समाज के प्रत्येक कुटुम्बजनों की जनगणना द्वारा ही किया जा सकता है।

जिस संस्कृति के विशाल वट वृक्ष का बीजारोपण और जडों का सिंचन गुजरात ने किया और उसी वृक्ष की थड को राजस्थान ने मजबूत किया और उसी वृक्ष की शाखाओं तथा पत्तों का सिंचन करके महाराष्ट्र ने जीवित रखा जहाँ वृक्ष अब बदलते औद्योगीकरण, शहरीकरण के कारण (हमारी समाज छोटे छोटे गाँवो - नगरो से दौड लगाकार शहरों में तेजी से स्थातर करने के कारण फल फूल बडे शहरो (जैसे मुंबई २००० कुटुम्ब, पूना ६५० कुटुम्ब, इन्दौर ५०० कुटुम्ब आदि) में दे रहा है परन्तु स्मरण रहे जिस संस्कृति की जड, थड, शाखाये, पत्ते आदि कमजोर या सुखने लगे तो क्या वह फल फूल दे सकेगा ? अत एव अब समय है हम एक मंच पर संगठित होकर अपनी अमूल्य संस्कृति को स्थानिक, प्रांतिय, अमूक विभाग, पेटा विभाग की संकुचता को त्याग कर उसकी रक्षा करे।

इतिहास शोध समिति द्वारा यह कार्य लगभग ४ वर्षों में किया गया। हमें हर्ष है और गौरव भी है कि समाज की विभिन्न संस्थाओं, अधिकारियों, सामाजिक कार्यकर्ताओंने अगाध परिश्रम से सर्वे को सफल बनाने में अगाध परिश्रम किया। सबसे अधिक परिश्रम जनगणना के फोर्म घर २ फिर कर बडे शहरों से लगाकर छोटे २ गाँवों तक फोर्म भरवाकार भिजवाए है ऐसे लगभग १३००० फोर्म केन्द्र को प्राप्त हुअे है, जिनमें समाज का आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक सर्वे प्रतिबिम्ब झलकता है। इन्हीं कार्यों के द्वारा, अलग २ टेबल बनाये गये और जनगणना का विश्लेषण का कार्य समाज के जाने माने माननीय विद्वान श्री समूरजमलजी बोबरा - संपादक 'हूमड मित्र' सोंपा गया। जिसे खूब परिश्रम, विद्वता पूर्ण सामाजिक, आर्थिक एवं शीक्षाणिक विश्लेषण जनगणना विभाग में प्रस्तुत है। महासंघ इतिहास शोधसमिति इनको आभार के साथ धन्यवाद देती है।

क्षमायाचना

ग्रन्थ की विशालता, गत् एक वर्ष से संयोजक के स्वास्थ्य के कारण एवं अहमदाबाद में अगस्त माह में अचानक ८ घंटे में २० इंच वर्षो के कारण इतिहास का अधिकाश रेकार्ड जो सेलर (तल घर) में था अव्यवस्थित होगाने के कारण सोशियल सर्वे में निम्न विषय लगभग कम्प्युटर पर तैयार होने के कारण समावेश नहीं किया जा सकता है। (१) हूमडो के जिनालय (२) हूमडो की धार्मिक, सामाजिक शैक्षणिक संस्थाओं का विवरण (३) हूमडो के ऐतिहासिक स्त्री और पुरुष (४) मूर्तिलेख, शीलालेख आदि (५) खूब प्रयात करने पर हो सकता है परिवारिक विवरण में कुछ नाम रह गये होगे। हमारा प्रयत्न रहेगा यदि इतिहास शोध समिति चाहेगी तो एक विशेष ग्रन्थ में उपरोक्त विवरण एवं पारिवाहिक विवरण प्रकाशित किया जा सकता।

अन्त में समाज की विभिन्न संस्थाओं, विद्वानो समाज सेवाओ जिनालय के ट्रस्टियों से हमे सहयोग मिला धन्यवाद ! उनके नाम प्रस्तावना विभाग में प्रकाशित किये जा रहें है।

संयोजक

हूमड़ो का स्थातंर

महासंघ के लिये इतिहास शोध समितिने सारे भारत के हूमड़ो की जनगणना का आयोजन किया इसी अनुसंधान में हूमड परिवारो ने ८वी सदी के प्रारम्भ से वर्तमान तक देश देशान्तर का प्रयाण पथ एवं कुल प्रांतवार जनसंख्या जिसका विस्तृत वर्णन जनगणना अध्याय में इसी इतिहास में विस्तृत रुप से बताया गया है।

१. मूल उद्भव विक्रम की दूसरी सदी के प्रारम्भ में खेडब्रह्मा (गुजरात)

२. विक्रम की ८ वी सदी के प्रारम्भ में सामूहिक रुप से सागवाडा (राज.) में स्थांतर

३. विक्रम संवत १६४६ सागवाडा से कारंज

४. खेडब्रह्मा इडर से फल्टन वि. सं.

५. सागवाडा से राजस्थान के विभन्न नगरो मुख्य उदयपुर, प्रतापगढ और प्रतापगढ से इन्दौर - मुंबई

६. फल्टन से मुंबई - पूना व अन्य महाराष्ट्र के नगरों में

हूमड़ों का सामूहिक स्थांतर खेडब्रह्मा से सागवाडा (राजस्थान)

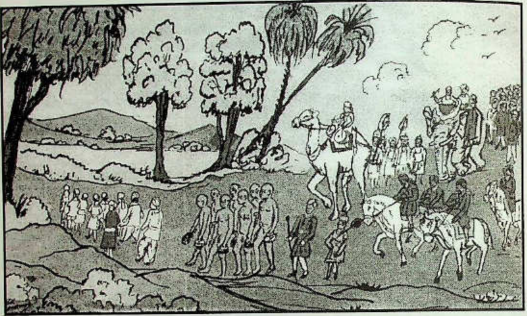

विक्रम श्री आठवी सदी के प्रारम्भ में हूमड़ो का खेडब्रह्मा पालनगर (रायदेश) से सामूहिक स्थांतर का एक दृश्य 'हूमड़ वंशावली' प्राचीन ग्रन्थ से

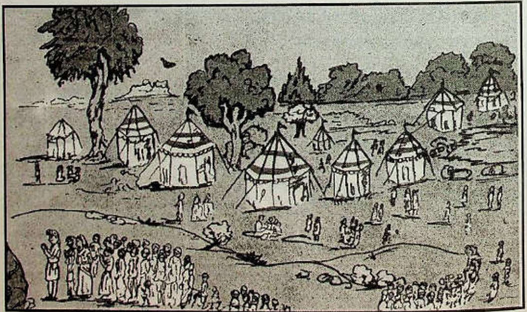

हूमड़ो के सामूहिक स्थांतर करके गलियाकोट के परमार रावल ने साग के जंगलो में हूमड़ो को शरण दी वहाँ प्रारम्भ - में तम्बूओं में निवास का एक दृश्य 'हूमड़ वंशावली' प्राचीन ग्रन्थ से

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना विभाग

क्रम		पेज
१.	सस्नेह भेट	१
२.	प्रकाशन	२
३.	(a) हूमड उद्भव चित्र	३
	(b) सम्पादक मण्डल	
४.	सम्पर्ण	४
५.	ऋषीमंडल यंत्र	५
६.	आमूख, श्रेष्ठी धनकुमार झवेरी	६-७
७.	परिचय "	८
८.	अध्यक्ष निवेदन	९
९.	शुभ आशीष आचार्य सुवाहु सागरजी	१०
१०.	शुभ आशीष आचार्य रयणसागरजी	११
११.	शुभ संदेश श्री ज्ञानचंद शेठ - श्री रतनलालजी बंडी	१२
१२.	शुभ संदेश श्री जीवराज गांधी - श्री भोगीलाल जीवराज	१३
१३.	श्री प्रमोद बंडी - श्रीमती कौशल्या पंतगिया	१४
१४.	श्री सौभाग्य मलजी फियावत - श्री मणीभद्र जैन	१५
१५.	श्री कान्तिलाल जैन - श्री नाथूलालजी जैन	१६
१६.	शुभ संदेश श्री - भाणदा	१७
१७.	श्री भैयालालजी बंडी	१८
१८.	(a) सम्पादक मंडल	१९
	(b) इतिहास समिति पदाधिकारी	१९
	(c) इतिहास समिति सदस्यगण	२०
	(d) आर्थिक सहयोगी	२१
	(e) इतिहास नगर समितिया	२२-२४
	(f) वर्तमान दक्षिण भारत के भटारक	२५
	(g) हूमडो के प्राचीन नाम	२५
१९.	प्रस्तावना श्री हीरालाल जैन कलिजंरा	२६-३१
२०.	संयोजक की कलम से श्री हीरालाल जैन सालगिया	३२-३८
२१.	भूमिका संयोजक एवं श्री बाबूभाई सी. गांधी	३९ - ४५
२२.	हूमड़ महासंघ	४६-४७
२३.	हूमड़ इतिहास अमरबेल कालचक्र	४८-५९
२४.	सन्दर्भ चयनिका	६०-६४
२५.	विषय प्रवेश	६५-७९
	(a) हूमड परम्परा चार्ट नं. १	
	(b) हूमड परम्परा चार्ट नं. २	
	(c) हूमड जनगणना चार्ट नं. ३	
	(d) हूमड गौत्र चार्ट नं. ४	
२६.	अनुक्रमणिका	७९ थी ९६

अनुक्रमणिका इतिहास विभाग

पृष्ठ

मंगलाचरण १

हूमड़ो का प्रथम बावन जिनालय २

(१)हूमड़ो का मूल निवास स्थल

(१) पुराणकार द्विजवृन्द के अनुसार ३

(२) लाट देश क्या वारु - गणपति शंकर शास्त्री

(३) पत्र ९० वेणीवत्स राजा क्यां समयमां थयो ?

(४) प्राचीन ग्रन्थ ब्राह्मणोत्पति से खेडब्रह्मा ४

(५) ब्राह्मोत्पति मार्तण्ड में योत्रकुण्ड ५

(६) खेडब्रह्मा का प्राचीन भौगोलिक उल्लेख ६

(७) खेडब्रह्मा का पौराणिक उल्लेख

(८) गुजरात की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

(९) भौगोलिक रचना

(१०) तथ्य

(११) राय देश - भौगोलिक नकशा ७

(१२) हूमड़ पुराण की मूल प्रति से ८

(२)हूमड़ो के पूर्वज

(१) हूमड़ पुराण से १०

(२) हिन्दुपुराण - ब्रह्मणोत्पति ११

(३) हूमड़ जाति के बारेमें एक तर्क और दिया जाता है वह ११

(४) जैन पुराणों के आधार - पावागढ़ १२

(५) गिरनार सिद्ध क्षेत्र के प्रमाण १३

(६) ईडर के इतिहास से १६

(३)हूमड़ जाति का उद्भव का समय और स्थल

(१) धार्मिक परिस्थितियाँ ३३

(२) **Inter Preation of Jain Canon By Dr. Vilas A. Sangava**

(३) संघ व्यवस्था की समस्या ३४ई

(४) हूमड़ जाति के उद्गम के कारण धार्मिक परिस्थितियाँ

(५) मूलसंघ विभाजन ३५

(६) मूलसंघ विभाजन की विधिवत् घोषणा ३६

(७) **Recolts agaist Jaina Religious Authorities By Dr. Vilas A. Snagava** ३७

(४)हूमड़ो का लाट प्रवेश

(१) लाट प्रवेश - ऐतिहासिक प्रमाण ३८-३९
बन्धु वर्मा मन्दसौर से गुजरात राज्य के प्राचीन इतिहास से

(२) शिलालेखों में हूमड़ समाज ३९-४१

(४) गिरनार, अकलेश्वर, राजोत के स्थल एवं समय से हूमड़ों का उद्भवका समय प्रमाणित होता है-चार्ट ४२

(५)गुजरात के ऐतिहासिक नगर

(१) घोघा ४२

(२) अंकलेश्वर ४३-४६

(३) सजोत - जहाँ धवला - जयधवला का लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ था ५२

(६)राजनीतिक परिस्थितियाँ गुजरात की मूख्य घटना

(१) राजा नहपाल ५३

(२) विक्रम की द्वितीय सदी में हूमड़ समाज के नाम का एतिहासिक प्रमाण ५४

(३) गोत्र कुण्ड ५५

(७)हूमड़ो का खेडब्रह्मा से सागवाडा सामूहिक स्थांतर के समय गुजरात और बागड़ प्रांत

(१) गुजरात राजनैतिक स्थिति ६०

(२) **Histroical Rell of Janisum By. Dr. Kailaeshchandra Jain** ६०

(३) जैन संस्कृति और राजस्थान सांस्कृति सोष्ठन ६१

(७)राजस्थान की भौगोलिक एवं धार्मिक पृष्ठ भूमि

(१) भौगोलिक पृष्ट भूमि ६२
(२) हूमड़ जाति और बागड़ क्षेत्र ६३
(३) बागड़ के लोक साहित्य की एक झाँकी ६४
(४) गलियाकोट - परमार राजा ६५
(५) अर्थूना ६५
(६) डूंगरपुर ६६
(७) स्थांतर का प्राचीन विवरण ६६-६७
(८) बागड़ राजस्थान में संगठन की परम्परा ८०
(९) सागवाडा के महा रावस ८१

(८)हूमड़ो द्वारा निर्माण किये राजस्थान के तीर्थ

(१) आंतरी ८२
Jainsum in Rajasthan
By Dr. Kailaeshchandra Jain
(२) चितोड किला एवं किर्तीस्तम्भ महत्व पूर्ण शिलालेख ९२-९३
(३) अतिशय क्षेत्र विजोलिया शिलालेख ९६
(४) झालरापाटन १०३
(५) चाँदखेडी १०६-१०७

(६)हूमड़ समाज खडगदेश केशरीयाजी

(अ) शिलालेख मूर्तिलेख १०९-१११
(ब) काष्ठासंघ ११२
(क) काष्ठासंघ पटावली ११३
(७) नागफणी पार्श्वनाथ ११४
(८) वर्धमाननगर चित्रौडा ११५
(९) सुरपुर ११६-११७

(९)प्रतापगढ़

(१) (अ) प्रतापगढ़ स्थापना वि.सं. १७५५ ११८
(ब) नया मंदिर ११८
(क) भाईजी का मंदिर १२१
(२) दीपेश्वर महादेव
(३) देवलिया ११८-१२३
(४) जानागढ
(५) घोटरसी

(१०) जैन धर्म का प्रारम्भिक इतिहास

(१) तीर्थकर ऋषभ १४१
(२) तीर्थकर अरिष्टनेम १४२
(३) तीर्थकर पार्श्वनाथ १४२
(४) वर्तमान जैन शासन की परम्परा भगवाम महावीर से है १४२
(५) वर्ण व्यवस्था में हूमड़ जाति १४२
(६) नई जाति - हूमड़ जातिका गठन १४२
(७) इतिहास लेखन का उद्देशय १४२
(८) मूलसंघ विभाजन १४३

(११)महाराष्ट्र

हूमड़ो की दक्षिण भारतकी पवित्र भूमि फल्टन १४४
(अ) आदिनाथ मंदिर १४४
(ब) पाश्वनाथ मंदिर १४४

(१२) महाराष्ट्र के तीर्थ और उनमें हूमड़ो का योगदान

(१) गजपन्था और अंजनेरी १४५
(२) मांगीतुगी १४६
(३) प्राचीन मुल्हेड नगर १४७
(४) मांगी शिखर १४८-१४९
(५) कुन्थलगीरी १५०
(अ) आचार्य शान्तिसागरजी का समाधिकरण १५१
(ब) क्षेत्र दर्शन १५२
(क) तलहटी के मन्दिर १५३
(६) दहीगाँव
(अ) अतिशय क्षेत्र १५४-१५५
(ब) क्षेत्र दर्शन १५६

(१३) हूमड़ो के गोत्र का इतिहास

(१) प्रस्तावना १७७
(२) प्रसिद्ध समाज शास्त्रीयों के मत

(३) गोत्र से सीधे सम्बन्ध रखनेवाले जाति वर्ण कुल की मिमांसा १७९
(१) प्रस्तावना
(२) आर्जिका ज्ञानमतीजी
(३) धवल पुस्तक
(४) जाति भीमासा
(५) जाति वर्ण
(६) जाति भीमासा
(४) आदि पुराण से
(५) दि. जैन समाज में जातियों का प्रादुभाव
(६) जातियों का प्रार्दुभाव १८०
(७) दिग्मबर जैन समाज में ८४ जातियों का वर्णन निम्नग्रन्थों में उपलब्ध है।
(८) दिगम्बर अन्य जातियो का उद्‌गम स्थल एवं विवरण १८१-१८२
(९) सज्जातित्व किया है ? १८३
(१०) आदि पुराण में जिनसेन आचार्य कहते है १८४
(११) कुल भीमांसा १८५-१८६
(१२) गोत्र भीमासा लोक में और आगम में गौत्र और उसका परम्परा सम्बन्ध १८७
(१३) गोत्र शब्द की व्याख्या और लोक में इसके प्रचलन का कारण १८८
(१४) अमल रोष १८९
(१५) वर्तमान परिक्षेप्य में भी गोत्र महत्वपूर्ण है १९०
(१६) गोत्र आगम के आलोक में गोत्र की स्थिति १९१
(१) क्षेत्र सम्बन्धी नीचे गौत्र
(२) कालकी उपेक्षा नीचे गौत्र
(१७) धवला पुस्तक से १९२
(१८) गोम्मटसार टीका
(१९) आदिपुराण से
(२०) श्री कुन्द कुन्दकृत भक्ति से

गौत्र और हूमड़ जाति

(१) मूलसंघ विभाजन
(२) अर्हतबली ने पंच वर्षीय प्रतिक्रमण के समय मुनि सम्मेलन १९३
(३) संघभेद
(४) कर्म अनुयोग द्वार सूत्र द्वारा १९४
(५) श्रुतावतार के अनुसार १९४
(६) हूमड़ समाज के गोत्र नाम द्वितीय सदी से १९५
(७) धवला ग्रन्था का रचना स्थल गिरनार १९६
(८) हूमड़ो के गोत्र जानने के आधार १९७
(९) खेडब्रह्मा का प्राचीन भौगोलिक उल्लेख
(१०) हूमड़ो का गोत्रकुण्ड १९८
(११) प्रांतवार विविध गोत्रो का विवरण १९९
(१२) गुजरात
(१३) महाराष्ट्र
(१४) राजस्थान २००
(१५) अ. भा. गोत्र सिंहावलोकन २०१

(१५) हूमड़ो की परम्परा

(१) परम्परा २०२
(२) राममूर्ति चौधरी से
(३) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन से २०३
(४) अध्यात्म प्रधान
(५) जैन परम्परा और तीर्थंकर
(६) वर्तमान जैन परम्परा और भगवान महावीर २०४
(७) हूमडो की परम्परा २०५
(८) विवाह संस्कार और गोत्र की मान्यता
(९) आचार्य देवनन्दि पूज्यापाद २०६-२०८
(१०) रचनाएँ-पूज्यपाद का वैदुष्य काव्यप्रतिभा समाधितन्त्र-पूज्यपाद का-जैनेन्द्र व्याकरण -सिद्धिप्रियस्तोत्र २०९-२१०
(११) देवनन्दि-पूज्यपाद का वैदुष्य काव्यप्रतिभा २११
(१२) संस्कृति संरक्षक आचार्य गुणनन्दि
(१३) आचार्य शुभचन्द्र और उनका ज्ञानवर्ण २१२-२१३

(१६) भट्टारक उद्‌भव

(१) प्रस्तावना - डॉ. कैलासचन्द्र जैन से २१४
(२) भट्टारक उद्‌भव
(१) स्थल और काल २१५
(२) कार्य मूर्ति प्रतिष्ठा २१६
(३) कार्य शिष्य परम्परा २१७
(४) कार्य जाति संघटना

(५) कार्य तीर्थयात्रा और व्यवस्था २१८
(६) कार्य चमत्कार २१९
(७) कार्य कलाकौशल्य का संरक्षण २२०
(८) उपसंहार २२१
(३) सम-सामायिक परिस्थितियाँ २२२
(४) राजनैतिक परिस्थितियाँ २२२
(५) सामाजिक परिस्थितियाँ २२३
(६) धार्मिक परिस्थितियाँ २२४-२२८

(१७) भट्टारक परम्परा एवं उद्भव

(१) प्रस्तावना
(२) भट्टारक उद्भव २३०
(३) जैन धर्म के धार्मिक और सामाजिक रूप में परिवर्तन २३१-२३२
(४) मध्यकाल पूर्वाध २३३
(५) भट्टारक और डॉ. कैलाशचन्द्र जैन
(६) हूमड़ समाज और भट्टारक २३४
(७) भट्टारक बसंतकीर्ति से पद्मनन्दी २३५
(८) भट्टारक संप्रदाय के प्रवर्तक - भट्टारक बसंतकीर्ति २३६
(९) भट्टारक विशालकीर्ति
(१०) शुभकीर्ति-धर्मचन्द्र-पट्टावली-रत्नकीर्ति-गुर्णावली रत्नकीर्ति
(११) प्रभाचन्द्र, गुणावली २३७-२३८
(१२) आराधना पंजिका २३९
(१३) पद्मनन्दी पट्टावली २३९
(१४) आदिनाथ मूर्ति २४०
(१५) शिलालेख २४१
(१) निषीदिका लेख २४१
(२) शिष्य परम्परा २४१
(१६) रचानाएँ - भवनापद्धति-जारापल्ली पार्श्वनाथ स्तोत्र २४२

(१८) इडर शाखा

(१) बलात्कार गण ईडर शाखा - कालपट २४३-२४४
(२) भट्टारक सकलकीर्ति
(३) स्थितिकाल २४५
(४) रचनाएँ-राजधानी भाषा की रचनाएँ २४५
(५) शान्तिनाथ चरित २४५
(६) वर्धमान चरित २४६
(७) मल्लिनाथ चरित २४६
(८) यशोधर चरित २४६
(९) धन्यकुमार चरित २४६
(१०) सुकुमाल चरित २४६
(११) सदर्शन चरित २४७
(१२) श्रीपालचरित २४७
(१३) मूलाचार प्रदीप २४७
(१४) प्रश्नोतरी पासका चार २४७
(१५) आदिपुराण २४७
(१६) उत्तर पुराण २४८
(१७) सुभाषितावली २४८
(१८) पार्श्वनाथ पुराण २४८
(१९) सिद्धान्तासार सार दीपक २४८
(२०) व्रतथाकोश-पुराणसारसंग्रह-कर्मदिपाक-तत्वार्थसारर दीपक २४८
(२१) परमात्मराजस्तोत्र - आचार्य भुवनकीर्ति २४९
(२२) रचनाएँ - आचार्य ज्ञानभूषण २५०-२५१
(२३) हिन्दी रचनाएँ - आत्मसम्बोधन तत्वज्ञानतरंगिणी २५०-२५२
(२४) आदिस्वरफाग - पोसरहास २५३
(२५) विजयकीर्ति - पद्मनन्दी पंचविंशतिका २५४
(२६) शुभचन्द्र - अद्यात्मरंगिणा टीका करकंडचरित्र २५४
(२७) कार्तिकेयानुपेक्षा टीका संशयिवदनविदारम फड़दर्शनप्रमाण प्रेमयानुप्रवेश अंगप्पती २५५
(२८) नंदीश्वर कथा २५६
पांडव पुराण २५६
(२९) जीवधर रास २५७
(३०) श्रेमिकापृच्छा कर्मविपाक २५७
(३१) अध्यात्मतरंगिणी २५७
(३२) पद्मप्रभ मूर्ति रामकीर्ति २५७
(३३) पार्श्वनाथ मूर्ति २५७
(३४) शांतिनाथ मूर्ति २५७
(३५) गणितसार संग्रह २५८

(३६) शब्दार्मवचंद्रीका २५८
(३७) गणिसार संग्रह २५८
(३८) अष्ट सहस्त्री २५८
(३९) चरणपादुका २५८
(४०) शिलालेख - केसरियाजी २५९

(१९) सागवाडा शाखा

(१) सागवाडा पट्टावली २६०
(२) भट्टारक सकलकीर्तकि-भ. धर्मकीर्ति - विमलेन्दुकीर्ति - बुवनकीर्ति रत्नकीर्ति - भट्टारक जसकीर्ति (यशकीर्ति) भट्टारक गुणचन्द २६१
(३) जिनचन्द - सकलचन्द्र - रत्नचन्द्र - हर्षचन्द - शुभचन्द्र २६२
(४) अमरचंद - रत्नचन्द - देवचन्द २६३
(५) धर्मचन्द - महीचन्द्र - नेमीचन्द्र - गुणचन्द्र - हेमचन्द्र २६४

(२०) भानपुर शाखा

(१) बलात्कारगण - भानपुर शाखा - कालपट २६५
(२) शिलालेख से मिलती हुई भट्टारक यशकीर्ति भानपुर २६६
(३) ज्ञानकीर्ति २६७
(४) रत्नकीर्ति २६७
(५) यशकीर्ति २६७
(६) भट्टारक गुणचन्द २६८
(७) जिनचन्द २६८

(२१) कांरजशाखा

(१) कारंज पट्टावली - रत्नकीर्ति सागवाडा २६९-२७०
कारंज मार्ग और अवस्थिति २६९-२७०
नगर के मन्दिर २६९-२७०
(२) सत्तहवी शताब्दी में कारंजा - बलात्कारण कारंज शाखा २७१
(३) कारंजा भट्टारक गद्दी २७२
(१) अमरकीर्ति २७२
(२) विशालकीर्ति २७२
(३) विद्यानन्दी २७२
(४) देवेन्द्रकीर्ति २७२
(५) धर्मचन्द २७२
(६) (प्रथम) धर्मभूषण २७३
(७) देवेन्द्रकीर्ति २७३
(८) कुमुदचन्द्र २७३
(९) धर्मचन्द्र - धर्मभूषण - विशालकीर्ति - धर्मचन्द - देवेन्द्रकीर्ति पद्मनन्दि - रत्नकीर्ति २७४

(२२) लातूशाखा

(१) बलात्कारगण लातुर शाखा कालपट धर्मभूषण (कारंजशाखा) २७५
(२) लातुरमें मुल्हेडनगर में बिम्ब प्रतिष्ठा का ओजन २७६
(३) सुरत शाखा कालपट २७७

(२३) सूरतशाखा

(१) सुरत भट्टारक गद्दी २७७
(२) मार्ग और अवस्थिति २७७
(३) स्थापना का इतिहास २७८-२७९
(४) भट्टारक पीठ २७९-२७९
(५) विद्यानन्दी क्षेत्र २८०
(६) देवेन्द्रकीर्ति २८१
(७) विद्यानन्दी (सूरत) २८१
(८) मल्लिभूषण २८२
(९) लक्ष्मीचन्द्र २८२
(१०) आचार्य वीरचन्द्र २८३
(११) ज्ञानभूषण २८४
(१२) प्रभचन्द २८५
(१३) वादिचन्द्र (विद्यानन्दी सूरत) २८५
(१४) महीचन्द - मेरुचन्द - जिनचन्द - आदिनाथमूर्ति विद्यानन्दी - देवेन्द्रकीर्ति विद्याभूषण - धर्मचन्द २८६-२८७

(२४) बारडोली शाखा स्थापना मूलसंघ

सरस्वती गच्छ एवं बलात्कारगण २८८
(१) बारडोली भट्टारक गद्दी २८८
(२) भट्टारक रत्नकीर्ति २८८
(३) शिष्य परिवार - भट्टारक कुमुदचन्द्र २८९-२९०

(४) साहित्य सेवा - प्रमुख रचनाओं के नाम निम्न प्रकार है २९२-२९३
(५) अभयचन्द्र की अबतक निम्न रचनाये प्राप्त हो चुकी है २९४-२९५
(६) भट्टारक शुभचन्द्र २९४-२९५
(७) भट्टारक रत्नचन्द्र २९६

(२५) जेरहट शाखा

(१) जेरहत शाखा काल पट २९७
(२) बलात्कारगण जेरहट शाखा २९८
(३) भट्टारक संप्रदाय २९९
(४) कवि परिचय ३००
(५) श्रुतकीर्ति ३००
(६) धर्मकीर्ति ३०१

(२६) हूमड़ संस्कार ३०२

(१) प्रस्तावना ३०२
(२) संस्कार के प्रति जैन पुराणो का दृष्टिकोण ३०३
(३) जैन श्रावको की त्रेपन क्रिया ३०३
(४) गर्भाधान संस्कार ३०४
(५) प्रीतिक्रिया ३०४
(६) सुप्रीती क्रीया ३०४
(७) घुतिया सीमातान्यन संस्कार ३०४
(८) मोद संस्कार ३०४
(९) प्रियाम्द्रव क्रिया ३०५
(१०) नाम कर्म संस्कार - बहिर्यान क्रिया - निषधा क्रिया ३०५
(११) अन्न प्राशन क्रिया - वर्ष वर्धन क्रिया ३०५
(१२) चौल संस्कार - लिपि संस्थान क्रिया - उपनिति संस्कार व्रतचर्या क्रिया - वृतावतरम संस्कार - विवाह क्रिया - गृहत्याग क्रिया ३०६
(१३) कुलचर्या क्रिया - गृहीशिता क्रिया - प्रशान्ति ३०७ क्रिया - गृहत्याग क्रिया दिक्षाधि क्रिया - जिनस्मता क्रिया - गमोपग्रहण क्रिया - स्वगुरु-स्थानावापित क्रिया नि: सद्गत्वात्मभावना - योग निर्माण साधनक्रिया - इन्द्रीपपाद क्रिया - इन्दाभिषेक क्रिया - विधिदान क्रिया - सुखोदय क्रिया - इन्द्रपदत्यागक्रिया - इन्द्रवता हिरम्योत्कृष्ट जन्मता क्रिया - मन्दराभिषेक क्रिया - गुरुपूजन क्रिया - योवराज्य क्रिया - सम्राटपद क्रिया - चक्रलाभक्रिया - दिशांजय क्रिया - चक्राभिषेक क्रिया - साम्राजय क्रिया - निष्कान्ति क्रिया - योग समाह अर्हन्त विहार - योगनिरोध क्रिया - अग्रनिवृति क्रिया ३०८
(१४) हिन्दु संस्कृति के अनुसार मनुसार के सोलह संस्कार ३०९

(२७) हूमड़ रीति रिवाज ३१०

(१) रीति रिवोजो एवं संस्कारो पर उपलब्ध जैन ग्रन्थ ३११-३१२
(२) हूमड़ समाज के प्राचीन और वर्तमान रीति रिवाजो का इतिहास ३१३

(अ) खडग देश के रीति रिवाज (डूंगरपुर)

(१) (१) लग्न निश्चित करना ३१३-३१५
(२) शादी के समय के रिवाज ३१५
(३) मुत्युके समय के रिवाज
(४) प्रथम प्रसुती एवं मानकरण
(५) जैन पर्व मानना
(६) मंदिरो का रख रखाय एवं आर्थिक व्यवस्था

(ब) उदयपुर (राजस्थान) बारहगाम के रिती रिवाज

(१६) होली - राखी - दिवाली - लग्न सही करना ३१६
(१७) विवाह पीठी मुहुर्त - बनियाग बैठाना - माया ३१७ बेठाना - वनेरा - हकडी - सांत पाँच - मुसारा (मायरा) बारात ३१८

(ख) सागवाडा बागड रिती रिवाज ३१९

(क) सागवाडा ५८ हजार हूमड़ समाज ३२०
(१) गर्भधान के संस्कार
(२) नामकरण संस्कार
(३) मुंडन संस्कार
(४) विवाह संस्कार ३२१
(५) मृत्यु उपरांत रिवाज ३२२-३२३
(ख) प्रतापगढ़ हूमड़ समाज की परम्पराओं उनके बदलते रूप ३२४
(१) सगाई ३२५
(२) विवाह

(ग) प्रतापगढ़ रीति रिवाज
(१८) प्रतापगढ़ हूमड़ समाज के मरणोपरान्त रीति रिवाज ३२६
(घ) गुजरात (बैतालीस हूमड़ समाज) ३२७
(२०) सगाई (वैवीसाल)
(२१) शादी सम्बन्धी रिवाज ३२८
(च) महाराष्ट्र हूमड़ समाज में मरण संबंधी रिति रिवाज ३२९
(२३) महाराष्ट्र में प्रचलित रीति - रिवाज ३३०

(२८) विवाह

(१) विवाह व्यवस्था - स्वयंवर व्यवस्था - गन्धर्व विवाह - राक्षस विवाह ३३२-३३३
(२) जैन विवाह संस्कार ३३४
(३) विवाह और उसका उद्देशय ३३४
(४) विवाह की सामग्री ३३५
(५) वाग्दान - बाना (विनायक) बैठाना ३३५
(६) टीका व लग्न
मण्डप निर्माण - विवाह वेदी - तोरण - पाणिग्रहण - संस्कार विधि ३३६
(७) विवाह विधि - मंगल कलश स्थापन मंत्र ३३७
(८) प्रदान और वरण ३३८
(९) आहुति मन्त्र पीठिका मन्त्र ३३९
(१०) जाति मंत्र - निस्तारक मंत्र - ऋषिमंत्र - सुरेन्द्र मंत्र - परमराजादि मंत्र ३४०
(११) परमेष्ठि मंत्र - आहुति मंत्र - शांति मंत्र - ससपदी पूजा ३४१
(१२) ग्राथबन्धन मंत्र - पाणिग्रहण मंत्र - फेरे और सप्तपदी ३४२
(१३) वर की और से कन्या के प्रति ७ वचन ३४३
(१४) कन्या द्वारा वर के प्रति सात वचन
(१५) वरवधु के लिए संशोधित महत्वपूर्ण ७ प्रतिज्ञाये ३४४
(१६) हूमड़ समाज के विवाह रीति रिवाज - सगाई लग्न ढूंठना-माँ का माटला लाना - गोत्राजी भरना ३४५-३४६
(१७) वरोटी - गाडी पर चढ़ना - शादी - नत - विदाई ३४७
(१८) सामूहिक विवाह ३४८
(१९) सामुहिक लग्न की व्यवस्था ३४९-३५०

(२९) हूमड़ समाज का सांस्कृतिक जीवन ३५१

(१) आभूषण निर्माण के उपादान ३५२
(२) शिरोभूषण ३५३
(३) पट्ट - कर्णाभूषण-कुण्डल-अवतंस- कर्णफूल-कण्ठाभूषण-यष्टि ३५४
(४) मणिमध्या यष्टि-शुद्धि यष्टि-इन्द्रच्छन्द हार ३५५-३५६
(५) कटि आभूषण ३५७
(क) मेखला (ख) कांची (ग) रसना
(घ) दाम (ड) कहिसूल ३५८
पादाबूषण-नूपुर-वस्त के विभिन्न प्रकार एवं स्वरुप
(६) सुकच्छायासुक - रत्नांशुक - उज्जवलाशुक - ३५९
सदंशुक पटाशुक - क्षौम - चीनपट्ट - प्रवार - उष्णीव - वीवर - परिधान - कम्बल ३६०-३६१
(७) केस सज्जा
(८) जूडा प्रसाधना
स्नान-तिलक-अजन-भौह का श्रृंगार पत्ररचना ३६२
(९) ओष्ठराग-महावर-कंकुम-अवलेप-तेल- सुग्नधित चूर्ण पुष्प प्रसाधन ३६३
(१०) दैनिक उपयोग से प्राप्त ३६४

(३०) शगुन सुरभि

(१) सगाई का गीत ३६५
शादी के गीत ३६६
पापड बनाते समय के गीत ३६६
(२) पीठी का गीत ३६७
वणाक वङ्गावा री गीत ३६७
(३) रास्ते के बन्नाबन्नी गीत ३६८
माण्डवा गीत
वाना का गीत
बाना का चौबीसी

(४) आलवमा का गीत ३६९

(५) मामेरा का गीत

(६) घोडी का गीत

(७) फेरे का - विदाई का - बदावा का जत्वाका गीत ३७०

(८) जापे का गीत - ढूँड का गीत ३७१

(९) नूतरने का गीत ३७२-३७३

(१०) हूमड़ समाज के कुछ लोक गीत जो विवाह ३७४ अवसर पर महिलाओं द्वारा गाये जाते हैं ३७५

(३१) हूमड़ो के धार्मिक पर्व

(१) हूमड़ों के धार्मिक एवं सामाजिक पर्व ३७६-३७७

(२) हूमड़ों (जैनो) के सामाजिक त्योहार शील सप्तमी - रक्षाबंधन ३७८-३८१

(३) अष्टान्हिका पर्व ३८२-३८३

(४) अष्टान्हिका व्रत एवं नदीश्वर व्रत ३८४-३८५

(५) पर्युषण पर्व ३८६

(६) धूप दशमी

(७) क्षमावाणी पर्व

(८) विशाल रथयात्रा उत्सव - प्रतापगढ़ ३८७

(९) श्रुतपंचमी ३८८

(१०) अक्षय तृतीया ३८९

(११) अनत व्रत ३९०

(१२) अन्नत व्रत विधि ३९१-३९२

(१३) अनंत व्रत के जाप्य ३९३-३९४

(३२) जैन ज्योतिष

(१) भारतीय ज्योतिष एवं पंचाग ३९५

(२) नन्दादि संज्ञा तिथि चक्रम ३९६

(३) वार संज्ञाये

(४) सर्व कार्य सिद्धि के लिये होरा मुहुर्त

(५) होरा सारिगी ३९७

(६) होरा सारिणी

(७) नक्षत्रो के नाम

(८) नैसर्गिक स्थायी योग ३९८

(९) तात्कालिक योग

(१०) तात्कालिक आनन्दायि योग ३९९

(११) करण - स्थिरकरण

(१२) करणबोधक चक्र ४००

(१३) अवहडा चक्र (नक्षत्र, राशि, स्वामी, वर्ण, वस्म, नाडी, योनि, गणबोधक चक्र) ४०१

(१४) वातचक्र ४०२

(१५) नामक्षरो से वैरवर्ग देखने का कोष्ठक

(१६) यात्रा मुहुर्त विचार ४०३

(१७) यात्रामें शुभाशुभ लग्न

(१८) दिशा (वार) शूल

(१९) लाक राहु का वास

(२०) नक्षत्र - शूल

(२१) योगिनी वारा की तिथियाँ

(२२) चौघडिया मूहुर्त ४०४-४०५

(२३) दिनकी चौघडिया ४०६

(२४) रात की चौघडिया

(२५) ज्योतिष का वरदान

(२६) ज्योतिष का वरदान ४०७

(२७) आर्यिका विशुद्धमतीसे ४०८

(ब) कन्यु विजय ग्रन्थमाला ४०९

(क) अन्य ग्रन्थ ४१०

(ख) ड्रा अक्षयकुमार ४११

(२७) प्राचीन ज्योतिष शास्त्र ग्रंथो के नाम से ४०९-४१०

(१) सरस्वती माता ४१३-४१४

(२) भगवान पार्श्वनाथ - यक्ष यक्षणी घरणेन्द्र पद्मावती ४१५

(३) धरणेन्द्र का रूप ४१६

(४) सिद्धियिका देवी ४१७

(५) गुजरात में रचित कतिपय दिगम्बर जैन ग्रन्थ में हूमड़ो का उल्लेख ४१८-४२१

(६) व्रत के आध कर्तव्य ४२२-४२३

(७) आर्यिकाओं का धर्म एवं संस्कृति के विकास में योगदान ४२४-४२५

(८) हूमड़ समाज की मान्यताओं में विभाजन ४२६-४२८

(९) पूजा की विधि और उसका क्रमिक विकास ४२९-४३०

(३४) महाराष्ट्र का मूर्ति लेख

(१) श्री १००८ आदिनाथ दि. जैन मन्दिर ४३१-४३३
(२) श्री १००८ चन्द्रप्रभु दि. जैन मन्दिर ४३४
(३) श्री १००८ पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर
(४) चन्द्रप्रभु दि. जैन मंदिर
(५) श्री १००८ सहस्त्रकूट दि. जैन मंदिर
(६) श्री १००८ पद्मप्रभु दि. जैन मंदिर (मंगलवार पेठ)
(७) माणिक चन्द्र दि. जैन ग्रंथ माला ग्रन्थ ४८
(८) दिगम्बर जैन मंदिर कालवादेवी मुम्बई ४३५

(३५) गुजरात के मूर्तिलेख

(१) पालिताणा ४३७
(२) ज्ञानवर्ण प्रसस्ति ४३९
(३) घोधा के मूर्तिलेख ४४०-४४१
सूरत मूर्तिलेख
(अ) पुराना मंदिर (दाडिया) ४४२-४४३
नवापुरा मंदिर ४४४-४४५
चोपजा मंदिर ४४६-४४८

अ. भा. हूमड़ समाज जनगणना विभाग

१. हूमड समाज १९१४ से १९९९ ४४९
२. हूमड समाज के निवास स्थान ४५०
३. आर्थिक सिंहावलोकन ४५१
(अ) मुबई स्व. उद्योगो संचालन ४५१
(ब) दिगम्बर जैन समाज पूर्णे ४५२
(क) व्यक्ति आधारित विश्लेषण ४५३
(ख) जन संख्या का प्रत्यावर्तन व उसका जन समूह पर प्रभाव ४५३
(ग) राजस्थान में हूमडो के प्रवेश द्वार ४५६
(घ) २० वी सदी भारत में क्रांतिकारी परिवर्तन और हूमड समाज ४५७
(ड) हूमड मूलत: जैन व जैनाचार प्रति समर्पित ४५८
(च) कार्य के प्रति समर्पण ४६०
(छ) हूमड स्त्री शक्ति ४६१
(ज) हूमड जणगणना अंतकथा ४६३
(त्र) भविष्य संकेत ४६६-६७
४. हूमड़ो की जनगणना १९१४ (दि.जैन डाईरेक्टरी से) ४६८-४७४
(अ) बम्बई आहते बीसा हूमड़ ४६९
(ब) राजपूताना मालवा दशा हूमड़ ४७०
(क) बम्बई आहता दशा हूमड़ ४७१-७२-७३
(ख) राजपूताना मालवा दशा हूमड़ ४७४
५. अ. भा. हूमड समाज जनगणना १९९८-९९ ४७५
(अ) महाराष्ट्र पूना बम्बई विभाग ४७५
(ब) महाराष्ट्र सोलापूर ४७६
(क) महाराष्ट्र सतारा ४७७
(ख) महाराष्ट्र धूलेगाँव खानदेश ४७८
६. (अ) राजस्थान उदयपुर विभाग ४७९
(ब) डुंगरपुर विभाग ४८०
(क) राजस्थान बाँसवाडा ४८१
(ख) चितौड आदि ४८२
७. गुजरात ४८३-४८५
८. मध्यप्रदेश ४८६
९. आंध्रप्रदेश एवं अन्य प्रति ४८७
१०. जनगणना विश्लेषण (सामान्य) ४८८
११. जनगणना विश्लेषण शहरों का ४८९
१२. जनगणना १९१४ और १९९९ ४९०
१३. हूमड़ समाज आर्थिक व्यवसायिक विश्लेषण राजस्थान जिल्हा संख्या ४९१
१४. हूमड़ समाज का तुलनात्मक विवरण १९१४-१९९९ ४९२-४९५
१५. बीसवी सदी के संत ४९६-५००
१६. १०८ आचार्य शान्तिसागर (दक्षिण) ५०१
१७. १०८ आचार्य शान्तिसागर (उत्तर) ५०२
१८. बीसवी सदी के संत (फोटो एवं विवरण) ५०३ थी ५०८
१९. ऐतिहासिक पुरुष
(अ) दानवीर माणेकचंद ५०९-५१३
(ब) संघपति घासीलाल जौहरी ५१४-५१६
श्री संघपति घासीलालजी ५१४-५१६
श्री माणेकचंद जीवराज गांधी ५१७
श्री १०५ अर्पिका रत्नमती ५१८

श्री हि. जैन वीसा मेवाडा ज्ञाति कि उत्पति ५१९-५२० (४५२-४५३)
श्री सम्पादक मंडल ५२१
श्री पदाधिकारी ५२२
श्री धनकुमार जवेरी ५२३
श्री हिरालाल सालगिया ५२४
श्री हूमड जैन समाज ट्रस्ट ५२५-५२६(९२-९३)
श्री हूमड युवा परस्पर ट्रस्ट ५२७
श्री हूमड युवा मंच ५२८

पारिवारिक विवरण विभाग

श्रेष्ठ श्री धनकुमार ठाकुरदास झवेरी ६
श्री मोहनलाल किशनलाल पाडलिया ९
श्री कान्तिलाल शाह १०
श्री सूरजमल मोतीलाल शाह ११
श्री जीवराज खुशालचंद गांधी १२
श्री निर्मलकुमार बंडी १३
श्री चिरंजीलाल बक्षी १४
श्री चंदुलाल शह्रा ५१
श्रीमती जयन्त शाह ५१
श्री कान्तिलाल गांधी ५२
श्री रविन्द्रकुमार चापावत ५२
श्री राजेन्द्र दोशी ५३
श्री मिश्रीलाल शाह ५४
श्री हूमड जैन समाज ५५
प्रतापगढ जैन महिला मंडल ५६
श्री जैन युवा संघ ५७
श्री कांतिलाल सालगिया ५८
श्री महेन्द्रकुमार शाह ५९
श्री सुमतीलाल गांधी ६०
श्री चिरंजीलाल शाह ६१
श्री नरेन्द्रकुमार कोडिया ६२
श्री निर्भयकुमार डावडा ६३
श्री सोभाग्यचन्द मोतीचन्द दोशी ६४
श्रेष्ठ श्री सुगनचंद शाह आंजलिया ७८
श्री कान्तिलाल पतंगीया ७८
श्री डॉ. रमणीक बक्षी ७८
श्री कुमुदप्रकाश कन्हैयालाल दोशी ७८
श्री अशोककुमार मिण्डा ७८
श्री बहादुरलालजी अमृतलालजी जैन ७८
श्री चांदमलजी हीरालालजी बंडी ७९
श्री धनपालजी सालगीया ७९
श्रीमती डॉ. निरंजना सालगिया ७९
श्री धनपालजी बन्डी ७९
श्री धनपालजी भुता ७९

उदयपुर

श्री कमलकुमार भेरुलालजी सागोटिया १६
श्री कनैयालालजी दाली १७
श्री गणेशलालजी छाप्या १८
श्री महावीरप्रसाद मिण्डा १९
श्री हजारीलाल कारवा २०
श्री पूनमचन्दजी तलोटिया २१
श्री मोतीलाल जैन (मिण्डा) २१
श्री रतनलाल गोराजिया २२
श्री सुन्दरलालजी कोडिया २२
श्री हीरालालजी गांधी २३
श्री रामलालजी दोशी २४
श्री नाथूलाल शाह २४
श्री विनोदकुमार बोबडा २५
श्री बंसीलालजी जावरिया २५
श्री कुन्दन इलेक्ट्रीकन कोम्पनेन्टसा प्रा. ली. २६
श्री चुनीलाल नाथुलाल डोडीया २६
मे. सी. एन. एन्ड ब्रधर्स २६
दर्शन ज्वेलर्स २७
श्री चांदमलजी मुरावत २८
श्री चन्द्रकुमार जावरिया २८
श्री सुन्दरलालजी जावरिया २९
श्रीमती स्व. सुगन्धबाई सोहनलाल कोरिया २९
श्री दीलीपकुमार खासगीवाला ३०
श्री अमृतलालजी बोहरा ३०
श्री भेरुलालजी गोराजिया ३०
श्री सुन्दरलालजी तलेटिया ८३

श्री चन्दनलालजी शारलचन्दजी छापिया	८३
श्री पुनमचंदजी मंगलजी पंचोली छाणी	८३
श्री महेन्द्रकुमार मेहता	८३
श्री रोशनलालजी शंकरलालजी सालगिया	८३
श्री रमेशचन्द्रजी भीमराजजी तलेटिया	८३
श्री चतुरलालजी हीरालालजी मेहता	८४
श्री गजेन्द्रकुमारजी इन्दरलालजी तलेटिया	८४
श्री रतनलाल गोराजिया	८४
श्री शान्तिलाल हीरालालजी पारडिया	८४
श्री हीरालाल गांधी	८४
श्री हजारीमल कारवा	८४
श्री कमलकुमार भेरूलालजी सागोटिया	८५
श्री चांदमलजी भुरावत	८५
श्रीमती स्व. सुगन्धबाई सोहनलाल कोरिया	८५
श्री कन्हैयालाल टाली	८५
श्री रामलालजी दोशी	८५
श्री बंसीलालजी जावरिया	८५

इन्दौर

श्री शांतिलाल दोशी	६५(९०)
श्री विजयकुमार रामावत	६६(९५)
श्री स्व. डॉ. मोतीलाल बागडीया	६७(७८)
श्री धनसुखलाल जैन पालविया	६८
श्री सूरजमलजी आंजनिया	६८
श्री चांदमलजी बोबरा	६८
श्री कन्हैयालालजी सालगिया	६९
स्व. श्री झमकलालजी गुमानजी बण्डी	६९
श्री सूरजमलजी बंडी	७०
श्री विमलचंदजी गांधी	७०
श्री सौभाग्यमलजी कुनिया	७१
श्री सुमतिलालजी दोशी	७१
श्री महिपाल मोहनलालजी बण्डी	७२
श्री कुन्दजी नगर सेठ	७२
श्री चन्दमलजी शाह	७३
श्री स्व. जवनरचन्दजी बण्डी	७३
श्री चन्दनमलजी बण्डी	७४
श्री डॉ. महेन्द्र रेवालगीवाला	७४
श्री अक्षयकुमार कियावत	७४
श्री जवनकुमारजी इन्दोरिलालजी बागडिया	७५
श्री सोहनलालजी हीरालालजी गांधी	७५
श्री महिपाल मोहनलालजी बक्षी	७६
श्री करजमलजी मेहता	७६
श्री हसमुख गांधी	७६
श्री सुरेश सुरजलालजी मेहता	७६
श्री चन्द्रप्रकाशजी पाडलिया	७७
श्री कन्हैयालाल पालडिया	७७

गुजरात

श्री छह प्रतिमा धारी श्री पोपटभाई के. कोठारी	३१
श्री सुगनचन्द शाह आंजनिया	३२
श्री ताराचंद मणीलाल शाह	३३
श्री सुभाषचंद रावजीभाई मेसाजिया	३४
श्री रोहितकुमार अमृतलाल गांधी	३४
श्री अशोक पीठवा	३५
श्री सनतकुमार	३६
श्री सुरेशभाई जैन	३६
श्री कमलचंद खूमजीभाई	३७
श्री सतीशकुमार शाह	३८
श्री तखतमलजी मेहता	३९
श्री हीरालाल जैन (सालगिया)	४०
श्री हूमड युवा मंच	४२

प्रतापगढ़

श्री शान्तिलाल हीरालालजी पारडिया	१६
श्री लक्ष्मीचंदजी गांधी	८६
श्री सुन्दरलालजी हवालदार	८६
श्री चांदमलजी हीरालालजी बन्डी	८६
श्री इन्दरमलजी शाह	८७
श्री प्रवीणकुमारजी बसंतलालजी बोबडा	८७
श्री गिरधरलालजी रमणीकलालजी मेहता	८७
श्री मनसुखलालजी, झुमकलालजी सेठ	८७
श्री छगनलालजी बन्डी	८८
श्री धनसुखलालजी नंदलालजी बाचावत	८८
श्री सनतकुमार जैन	८८

श्री केसरीमलजी मथुरालालजी दोशी ८९
श्री धनपालजी सौभाग्यमलजी तलाटी ८९
श्री सेठ जुर्वा माणेकलालजी रतनलालजी ८९
श्री भैयालालजी छगनलालजी बंडी ८९
श्री कन्हैयालाल हवालदार यूता ९०
श्री रमणीकलाल मेहता ९०
श्री प्रवीणकुमार बोबडा ९०
श्री लक्ष्मीचंद गांधी ९०
श्री माणेकलाल सालगिया ९१
श्री सुरेन्द्रकुमार मत्तालालजी पाडलिया ९१
श्री चन्दनलालजी कोटिया ९१
श्री चांदमलजी सालगिया ९१
श्री सौभाग्यमलजी डावडा ९१

महाराष्ट्र

श्री रतनचंद खुशालचंद गांधी ४३
श्री आनंदलालजी जीवराज दोशी ४२
श्री विजयकुमार रायचंद दोशी ४४
श्री हिरालाल गांधी ४५
श्री नटवरलाल मगनलाल जैन ४६
श्री कान्तिलाल बोबडा ४७
श्री मुलचंद रावजी दोशी ४९

बासवाडा डूगरपुर (राज.)

स्व. श्री मीठालालजी कपूरचंदजी पींडारमीया ९४
स्व. निधि रविन्द्रकुमारजी गणेशलालजी मुरावत ९४
श्री हीरालालजी गेवीलालजी सीतावत ९४
श्री बालचन्दजी चीमनलालजी शाह ९४
श्री मगनलालजी बदामीलालजी गलालिया ९५
श्री धनराजजी गोवाडिया ९५
श्री नाथूलालजी पूनमचंदजी शाह ९५
श्री मणीभद्रजी चम्पालालजी जैन ९६
स्व. श्री मोतीलालजी चुनीलालजी घोडा ९६
स्व. श्रीमती बसन्तीदेवी चुनीलालजी घोडा ९६
श्री सूरजमलजी मंगलजी धनावत ९७
श्री पन्नालालजी गेबीलालजी दोशी ९७
श्री कान्तिलालजी माणेकलालजी शाह ९७
श्री शान्तिलालजी दलीचन्दजी खडगता ९७
श्री भँवरलाल शाह ९८
स्व. श्री मणीलाल शाह ९८
श्री भँवरलालजी शाह ९८
स्व. श्री मणिलालजी शाह ९८
स्व. श्री गेंदमलजी भूता ९८
श्री कन्हैयालाल पंचोली ९८
श्रीमती रजनीबाला आंजलिया ९८
श्री राजमलजी कोठारी ९८
श्री खुशपाल शाह ९९
श्री राजमल शाह ९९
श्री मोतीलाल छबीलाल ९९
श्री चंपालाल शाह ९९
श्रीमती स्व. सुगन्धीभाई सोहनलाल कोरिया ९९
श्री जयन्तिलाल छगनलाल गांधी ९९

साबला (राज.)

श्री अजबलालजी स. ९२
श्री कान्तिलाल छगनलालजी कोठारी ९२
श्री जयन्तीलाल अमरपान्दजी परीख ९२
श्री शान्तिलाल चुनीलाल पंचोली ९२
श्री बसन्तीलाल झुमकलालजी पंचोली ९२
श्री मोतीलाल झुमकलालजी पंचोली ९२
श्री गणेशलालजी झुमकलालजी पंचोली ९३
श्री कान्तिलाल झुमकलालजी पंचोली ९३
श्री भरतकुमार धूलजी वेडा ९३
श्री देवीलालजी पारीख ९३
श्री मातमलजी दोशी ९३
श्री गौतमलालजी जैन ९३

एतिहासिक चित्रावली

देवपुरी (डेरोल-खेडब्रह्मा)

१. हूमड़ो के प्रथम बावन जिनालय मूलनायक १००८ आदिनाथ भगवान डेरोल १
२. हूमड़ो का प्रथम बावन जिनालय एक दृश्य डेरोल खेडब्रह्मा २

३. प्राचीन १००८ पार्श्वनाथ जिनालय ३
४. प्राचीन चर्तुमुख नन्दीश्वर प्रतिमा ४
५. प्राचीन छत्री २४
६. प्राचीन देवी पद्मावती २८
७. प्राचीन देवी पद्मावती ५८

क्रम नं. १ से ७ हूमड़ो के उद्‌गम स्थान देवपुरी (वर्तमान डेरोल खेडब्रह्मा) हूमड़ो का प्रथम बावन जिनालय पुरातत्व विभाग के अनुसार (इसका तलिया नींव भाग) तीसरी चौथी सदी का है इ. सनं. ७०५, ८३३, १०२७, १२२० में विदिशियो, मुगलो द्वारा आक्रमण किया गया और इसकी प्रतिमाओ को नष्ट किया गया । इसे इडर समाज और श्रेष्ठ पोपटलाल कोठारी एवं श्रेष्ठी वाडीलाल मेहता के विशेष सहयोग से १९९२ में जिर्णोद्धार होकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा संपन्न हुअी ।

रायदेश (खेडब्रह्मा गुजरात)

१. गोत्रकुण्ड ५८
२. गोत्रकुण्ड १७१
३. गोत्रकुण्ड १७२
४. गोत्रकुण्ड टाइम्स ओफ इन्डिया के अनुसार ५७
५. खनन से प्राप्त प्राचीन मूर्तियाँ २६
६. भगवान मल्लीनाथ प्रतिमा तारंगा क्षेत्र पर खेडब्रह्मा से लाइ गई ९
७. पंचमेस पंच धातु प्रतिमा खेडब्रह्मा से पावागढ़ तीर्थ पर १६२
८. सतदेश भोगोलिक नकशा ७
९. कर्ममड क्षेत्रयो के समय गुजरात नकशा इसवी प्रारम्भ ५६
१०. हूमड़ पुराण की मूल प्रति का एक पृष्ठ ८

क्रम १ से ४ गोत्रकुण्ड तीसरी सदी का बना वर्तमान गुजरात सरकार के पुरात्त्व विभाग के आधीन अत्यन्त जीर्ण अवस्था में

क्रम ५-६-७ मुगलों के आक्रमण के कारण नदीकी रेतीमें छिपाया गया उन्हें निकालकर अलग २ जगहे स्थापित की गई है।

क्रम नं. १० प्राचीन हस्त लिखित हूमड़ो के पुरोहितो द्वारा लिका एतिहासिक ग्रन्थ का एक पृष्ठ

हूमड़ो की प्रथम राजधानी इडर

१. श्री १००८ संभवनाथ अतिशययुक्त प्रतिमा ईडर १७
२. श्री १००८ आदिनाथ प्रतिमा ईडर १८
३. श्री १००८ आदिनाथ प्रतिमा ईडर खडगासन १९
४. श्री १००८ आदिनाथ ईडर खडगासन १९
५. समाधि स्थल ईडर २०
६. भगवान पार्श्वनाथ ईडर २१
७. ईडरगढ़ प्राचीनलेख २२
८. ईडरगढ़ प्राचीनलेख २२
९. संभवनाथ मन्दिर अतिप्राचीन जिनबिंब ईडर २५
१०. १००८ श्री संभवनाथ प्रतिमा जिनालय ईडर २६
११. संभवनाथ मंदिर ईडर स्थित एतिहासिक प्राचीन प्रतिमा खडगासन २७
१२. भगवान आदिनाथ प्रतिमा २७

हूमड़ो की प्रथम राजधानी ईडर जिसका वर्णन ३००० वर्ष पूर्व महाभारत के समय मिलता है उसके एतिहासिक जिनालय व शिलालेख का विस्तृत वर्णन अगले ग्रन्थ में

रायवेशमिनालय

१. आदिनाथ मेराली रायदेश २८
२. आदिनाथ मन्दिर मेराली रायदेश २८
३. आदिनाथ मन्दिर मेराली रायदेश २९
४. पद्मप्रभु पराडा रायदेश २९
५. नेमीनाथ दि. जैन मन्दिर (पाल) (तीसरी शताब्दि) २९
६. नेमिनाथ दि. जैन मन्दिर पाल ३०
७. सुमतिनाथ मन्दिर टाकाटुका (रायदेश) ३१
८. आदिनाथ टाटाटुका (रायदेश) ३१
९. श्री आदिनाथ बाकानेर (रायदेश) ३१
१०. बावन जिनालय भिलोडा १६३
११. बावन जिनालय १००८ वासुपुज्य भगवान १६४
१२. कीर्ति स्तम्भ भिलोडा ३२

१३. हरणाव नदी के किनार मूगलो द्वारा नष्ट किये खव्हर जिनालय

(अ) रायदेश के विभन्न जिनालय जो तीसरी सदी से ११ वी सदी तक लगभग सभी मूगलो विदिशियो के आक्रमण से नष्ट किये गये उनका जिर्णोद्धार १३ वीं से १५वीं सदी (कुछ का बादमें) ईडर के भट्टारको की प्रेरणा से किया गया

(ब) पाल-गुजरात राज्य के इतिहास अनुसार ३-४ सदी में पाल एक किले से घिरा नगर था यहाँ कनन से तीसरी चौथी सदी की प्रतिमा प्राप्त हुई है वर्तमान में दि. जैन समाज रायदेश द्वारा जिर्णोद्धार चल रहा है इसी बीच गत् २२ जून ९९ को भारी बरसाद और बिजली से शिखर वेदी आदी को नुक्सान हुआ परन्तु १००८ नोमीनाथ की अतिशय युक्त प्रतिमा आसपास सभी टूट फूट होने पर यह प्रतिमा पूर्ण सुरक्षित रही इसका जिर्णोद्धार चालू है।

(क) हरणाव नदी के खण्डित जिनालय पृष्ठ भूमिका

गुजरात के प्राचीन नगर

१.	प्राचीन मन्दिर घोघा	२३
२.	प्राचीन मन्दिर घोघा लेख	२३
३.	घोघा शान्तिनाथ	४७
४.	घोघा सहस्त्रफुट वीसल धातु	४७
५.	अंकलेश्वर चिंतामणी पार्श्वनाथ	४८
६.	आचार्य धरसेन मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिरमें	४९
७.	आचार्य धरसेन पुष्पदंत भूतबलीी को धवला ग्रन्थ का अभ्यास करा रहे है।	५०
८.	प्रथम शताब्दि की सजोद में पारदर्शी - शीतलनाथकी मूर्ति	५१
९.	पावागढ जैन मन्दिर	२४
१०.	मोदर गाँव नागफणी पार्श्वनाथ धरणेन्द्र सहित के साथ	१२४
११.	नागफणी मंदिर गाँव	३२

जिसका विवरण गुजरात के इतिहास में ३री चोथी सदी में मिलता है इसका विवरण पृ. मूर्तिलेख पृष्ठ अंकलेश्वर :- दूसरी तीसरी सदी का एतिहासिक नगर जहाँ पुष्पदंत और भूतबली ने आगम को ताडपत्र पर लिखना प्रारम्भ किया था सजोत हूमड़ो का अतिशय क्षेत्र यह पारदर्शक मूर्ति मूगलो के आक्रमण के कारण जलाशय में छिपाई गई थी इसे फिर से स्थापित की गई है।

(१) शाशनदेवी सोजीत्रा ५९

इस मूर्ति के लेखके अनुसार बीसा मेवाडा मूल हुमड़ मेवाड से १८ वी सदी में सोजित्रा में बसे थे। वर्तमान गुजरात में विशेष कर खेडा जिला में बसने वाले बीसा मेवाडा मूल बीसा हूमड है मेवाड़ से ६५ कुटुम्ब १८ वीं सदी में स्थांतर करके यहाँ बसे उसी समय ३५ बीसा हूमड़ कुटुम्ब प्रतापगढ़ जाकर बसे यह देवी पद्मावती की मूर्ति अपने साथ लेकर आये थे उपरोक्त लेख इस मूर्ति का है।

हूमड़ोकी राजस्थान की राजधानी सागवाडा

१.	हूमड़ो के स्थानांतर का आठवीं सदी का लेख सागवाड नगर के मध्य	६८
२.	हूमड़ो का प्रथम बावन जिनालय राजस्थान सागवाडा में	६९
३.	स्थानांतर का मूल लेख	६९
४.	आदिनाथ प्रथम बावन जिनालय सागावाडा	७०
५.	शिलालेख आठवीं सदी सागवाडा	७१
६.	शिलालेख आटवीं सदी सागवाडा	७१
७.	नदिश्वर प्रतिमा सागवाडा	७२
८.	जूना मंदिर बाहर सागवाडा	८६
९.	मूलनायक सागवाडा	८६
१०.	नसीयाजी चन्द्रप्रभु सागवाडा	८७
११.	शासनदेवी पद्मावती सागवाडा	८७
१२.	देवी पद्मावती सागवाडा	८९
१३.	सहस्त्रफूट चैत्यालय सागवाडा	८९
१४.	विक्रम संवत ७३२ का प्रथम जिनालय सागवाडा लेख	८९
१५.	सागवाडा जिनालय का बहार का दृश्य	९०
१६.	गणपति मंदिरका शिलालेख	९०
१७.	सागवाडा सवत् ७५०	
१८.	सागवाडा बाहर मन्दिर वंदीनी	१३४

१९. आदिनाथ सागवाडा १३९
राजस्थान में हूमड़ो की राजधानी सागवाडा विस्तृतविवरण पृष्ट एतिहासिक स्थल चाँदकेडी विवरण पृष्ठ

२९ शिखर १९ गुमट, ११ मुगटियाँ का चित्र

१. आठवी सदी का वैभवशाली बाका जिनालय आंतरी ७३
२. बावन जिनालय ७३
३. श्री १००८ कलिकुंड पार्श्वनाथ प्रतिष्ठित मूर्ति विक्रम संवत ८०९ ७४
४-५. काले एक पाषाण पर ११.५ पीट व्यास का ऋषीमंडल विक्रम संवत ८०९ का स्थापित का चित्र ७४
६. बीसतीर्थकर एक पाषाण पर ७५-७६
७. २४ शासनदेवी ७७
८. २४ तीर्थकर ७८
९. एक पाषाम शिला में १००० प्रतिमा ७९
१०. खेडब्रह्मामें लाई देवी पद्मावती आंतरी ८५
११. दुर्लभ प्राचीनमूर्ति पाषाण ८५
१२. कलिकुण्ड पार्श्वनात थम्बेका लेख आंतरी १४०
१३. ऋषी मंडल आंतरी १४०

एतिहासिक विवरण राजस्थान

१. सहस्त्र फणी पार्श्वनाथ देवगढ़ १३०
२. आदिनाथ नयामंदिर प्रतापगढ़ १३१
३. आदिनाथ नयामन्दिर चिंतामणी पार्श्वनाथ १३२
४. आदिनाथ प्रतापगढ नया मन्दिर १३५
५. आदिनाथ प्रतापगढ़ १३६
६. देवी पद्मावती प्रतापगढ १३६
७. रथ शोभायात्रा प्रतापगढ़ १३७

यह प्राचीन नगर जहाँ के हूमड़ बडी संख्या में बम्बई, इन्दौर आदि जाकर बसे है।

१. गलियाकोट शिलालेख १२५
२. दि. जैन मंदिर गलियाकोट १२६
३. दि. जैन मंदिर चन्द्रप्रभु १२७
४. शान्तिनाथ दि. जैन मंदिर १२८
५. आदिनाथ बावन जिनालय कलिंजरा १२८

एतिहासिक नगर जिसका अधिकांश भाग नहर बनने से डूब गया है यहाँ के परमार राजा ने स्थांतर कर आये हूमड़ो को शरण देकर साग के जंगल 'सागवाडा' में बसाया था।

एतिहासिक तीर्थ

१. मानस्तंभ अर्थूना ८८
२. किर्तीस्तम्भ चितौड ९९
३. झालरापाटन मंदिरका बाहरी द्रश्य १००
४. भगवान महावीर चांदखेडी १०१
५. झालरापाटन नसियोंमें पार्श्वनाथ १०२
६. पार्श्वनाथ बडीका बाग मन्दसौर १३३
७. बीस पंथी मन्दिर कुसल गढ १३८

राजस्थान के एतिहासिक तीर्थ जो ८ वीं से ११ वीं सदी के हूमड़ो द्वारा निर्वाण किये गये है।

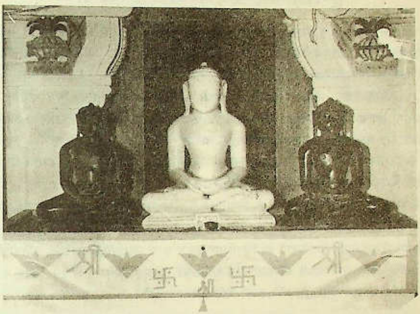

हूमडों के प्रथम बावन जिनालय के मूल नायक
१००८ श्री आदिनाथ भगवान डेरोल (खेडब्रह्मा)

मंगलाचरण

श्रीमद् द्वारिण्य गंगा तट सुमनुधरा उत्तरादिग्विभागे ।
सौमा शागत्य जाया वरमुख चतुरो गौत्र चाष्टा दशं
ते स्त्रोतौ शौ ब्रह्मावाला जिनमत्त निरता स श्री द्रष्टाशक्ष
ते सर्वे शोख्य युक्ता धन स्वजनयुता मंगलं विस्तरन्तु ॥

"हूमड़ पुराण" से

श्री (शोभा) से युक्त हिरण्य नदी के उत्तर दिशामें पुष्पों से आच्छादित भू-भाग (सुमनु धरा) में हूमड़ जाति निवास करती है । यह भूमि चतुर एवं मृदुभाषी हूमड़ों के अठारह गौत्र की जननी है ।

आदिपुरुष ब्रह्मा अथवा आदिनाथ गुरुदेव से उत्पन्न चतु पुत्र (हूमड़) जो कि अठारह गोत्रों में विभक्त है। जिनेन्द्र द्वारा प्रशस्त आत्म दर्शन के साधना पथ पर चलते हुये बंधु बांधवों सहित सुख शान्ति की वृद्ध करें।

यह मंगलाचरण "हूमड़ पुराण" से उद्धत किया गया है । यह मंगलाचरण यह प्रमाणित करता है कि हूमड़ों का मूल स्थान हिरण्य नदी के किनारे बसा गाँव मुख्य रुप से खेडब्रह्मा था । इससे यह भी संकेत मिलता है कि हूमड़ो के पूर्वज जिनेन्द्र द्वारा प्रणीत जीवन पद्धति एवं आत्म-विचार सारणी के संवाहक थे ।

हूमड़ों का प्रथम बावन जिनालय

हूमड़ों का प्रथम बावन जिनालय डेरोल (खेडब्रह्मा) में निर्मित हुआ था। पुरातत्व विभाग का अनुमान है कि यह जिनालय विक्रम की द्वितीय तृतीय सदी में निर्मित हुये थे। इस विशाल जिनालय में प्रतिष्ठित मूर्तियों , शिखर एवं गुमटियों को मुगलों ने तीन बार नष्ट किया। इस मन्दिर पर पहला आक्रमण ७१५ खलीफा उमर द्वितीय के सेनापति मोहम्मद दीन कासिम ने चितौड पर आक्रमण के समय किया। उसने मूल नायक प्रतिमा को व अन्य प्रतिमाओं को नष्ट किया। दूसरा आक्रमण ८३३ में खलिफा आलमामून ने और तीसरा आक्रमण सन् ९७७ में गजनवी के सेनाओं ने किया। इसके अलावा रायदेश के अनेक जिनालयों को जो पाल के जंगल कहे जाते थे उसको मुसलमान राजाओं ने आक्रमण कर नष्ट किया। साथ ही पालव का ऐतिहासिक किला भी नष्ट कर दिया।

यह स्थल अरावली पर्वत श्रेणियों के निकट दिल्ली से मेवाड़ (राजस्थान) जाने का पहाडी राज मार्ग था। इसके मैदानी भागों में मुगलों की युद्ध सामग्री रखी जाती थी।

वर्तमान में इन बावन जिनालयों का जिर्णोद्धार करके उनमें मूलनायक एवं अन्य प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करने का काम धर्मानुरागी श्रेष्ठी श्री वाडीलाल चुन्नीलाल महेता ने किया। आपने १९९१ में पंचकल्याणक महोत्सव आयोजित कर पुनः इस मन्दिर की प्रितिष्ठास्थापन की।

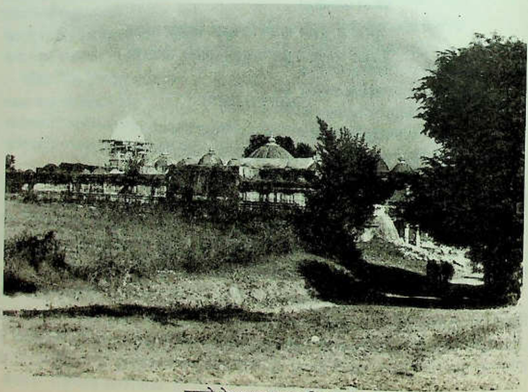

हूमडो के प्रथम बावन जिनालय

हूमड़ों का मूल निवास स्थल

पुराणकार द्विजवृन्द के अनुसार

श्री सोमाविना जाया, ब्रह्मा बली ए तासा अग्निकुंड थी अपना, श्री खेड़ स्थाई स्थापना ॥

"श्री खेड स्थाई स्थापना" से स्पष्ट होता है कि हूमड़ो के पूर्वज क्षत्रिय खेड़ब्रह्मा में निवास करते थे । "पुरातन ब्रह्मक्षेत्र का प्राचीन अर्वाचीन इतिहास" (लेखक - गणपति शंकर, जयशंकर शास्त्री, ईडर) "गुजरात का प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास" जो गुजरात सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया है । इनके आलेख भी सिद्ध करते है कि हूमड़ो का मूल निवास खेड ब्रह्मा था । इसका वर्णन इतिहासों के एक से दस भागों में किया गया है जिसे ऐतिहासिक मान्यता भी प्राप्त हो चुकी है ।

हमारे हूमड़ इतिहास के प्रथम भाग में इसको उद्धत भी किया गया है -

पत्र ७०

लाट देश क्यों वारु!

"पांच हजार वर्ष पूर्व नो"गुजरात ए नामे पुस्तक मां "लाट" देशोनी ओळखाण करावता जणावे छे के लाट देश "उपरांत" नो ज एक विभाग छे. नर्मदा अने तापीना आसपास नो प्रदेश लाट गणातो पण लाटना चालुक्योनी सत्ता वधता मही नदीना छेक प्रदेशो पण लाट तरीके होवाना जाहेरमां आव्या आ उपर थी उत्तर गुजरात ने खूणे आवेलो बहाक्षेत्रना प्रदेशनो भाग पण लाट देश गणातो हशे . अने तेमना क्षत्रिओ लाट तरीके ओळखाता हशे ईडर राज्य ना वेणुवत्स राजा ना मंत्री लाट वैष्य वृति स्वीकारी हशे तेनी साथे ए जाती नो वैष्य वृति नो धंधो थई पडवाथी लाट वैष्यो तरीके ओळखाया हशे .

पत्र ९०

वेणीवत्स राजा क्या समयमां थयो ?

वेणीवत्स राजानो समय क्यो हशे ? ते विशे इडरमांथी के तेना गढ उपरथी जाणवा जेवु कशुं साधन मली आवतुं नथी । पण वेणीवत्स प्रशस्ति परथी तेमज ईडरना इतिहास मांथी एक श्लोक मली आवे छे ते परथी कालनुं अनुमान करी शकाय तेम छे. श्लोक नीचे मुजब छे,

" श्री इल्वदुर्गधिपवंणीवत्स
वभुच भूपाल मणि स एषः
चकोर राज्य मधचेच भूमौ
कलौगते द्रग भूजहा ग्निरिन्दुः

भावार्थ-इल्वदुर्ग (ईडर) नी गादी उपर वेणीवत्स नामे राजा राज्य करतो हतो . राजाओमां एक मणिसमान तेजस्वी हतो । ईन्द्र जेवा ऐश्वर्यथी पृथ्वी पर राज्य चलाव्युं अने तेनो समय गत काल १३२३ नो हतो. अर्थात कलियुगना १३२३ वर्ष थी त्यां हतां ते समये ईडरनुं राज्य वेणीवत्स राजानां ताबामां हतुं हालमां कलियुगना गत वर्ष प्रकट थया छे. तेमांथी १३२३ बाद करीए तो ३७१५ वर्ष थवा जाय छे. युधिष्ठर शकुनी गणत्री नी पद्धति एवी छे वेणीवत्स राजा युधिष्ठर शकमां १३२३ नी सालमां थयो एम उपरोक्त श्लोकथी समजाय छे.

हूमड़ों का प्रथम बावन जिनालय

हूमड़ों का प्रथम बावन जिनालय डेरोल (खेडब्रह्मा) में निर्मित हुआ था । पुरातत्व विभाग का अनुमान है कि यह जिनालय विक्रम की द्वितीय तृतीय सदी में निर्मित हुये थे । इस विशाल जिनालय में प्रतिष्ठित मूर्तियों , शिखर एवं गुमटियों को मुगलों ने तीन बार नष्ट किया । इस मन्दिर पर पहला आक्रमण ७१५ खलीफा उमर द्वितीय के सेनापति मोहम्मद दीन कासिम ने चितौड पर आक्रमण के समय किया । उसने मूल नायक प्रतिमा को व अन्य प्रतिमाओं को नष्ट किया । दूसरा आक्रमण ८३३ में खलिफा आलमामून ने और तीसरा आक्रमण सन् ९७७ में गजनवी के सेनाओं ने किया । इसके अलावा रायदेश के अनेक जिनालयों को जो पाल के जंगल कहे जाते थे उसको मुसलमान राजाओं ने आक्रमण कर नष्ट किया । साथ ही पालव का ऐतिहासिक किला भी नष्ट कर दिया ।

यह स्थल अरावली पर्वत श्रेणियों के निकट दिल्ली से मेवाड़ (राजस्थान) जाने का पहाडी राज मार्ग था। इसके मैदानी भागों में मुगलों की युद्ध सामग्री रखी जाती थी ।

वर्तमान में इन बावन जिनालयों का जिर्णोद्धार करके उनमें मूलनायक एवं अन्य प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करने का काम धर्मानुरागी श्रेष्ठी श्री वाडीलाल चुन्नीलाल महेता ने किया । आपने १९९१ में पंचकल्याणक महोत्सव आयोजित कर पुनः इस मन्दिर की प्रितिष्ठारथापन की ।

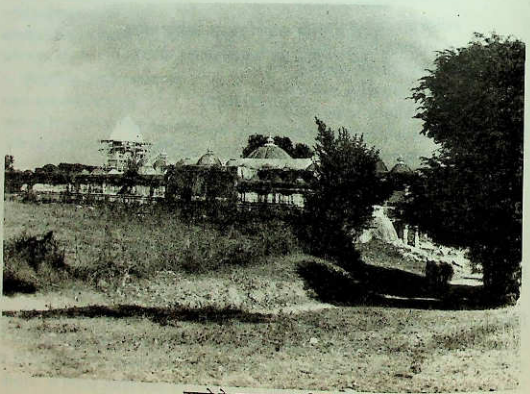

हूमडो के प्रथम बावन जिनालय

हूमड़ों का मूल निवास स्थल

पुराणकार द्विजवृन्द के अनुसार

श्री सोमाविना जाया, ब्रह्मा बली ए तासा अग्निकुंड थी अपना, श्री खेड़ स्थाई स्थापना ॥

"श्री खेड स्थाई स्थापना" से स्पष्ट होता है कि हूमड़ो के पूर्वज क्षत्रिय खेड़ब्रह्मा में निवास करते थे। "पुरातन ब्रह्मक्षेत्र का प्राचीन अर्वाचीन इतिहास" (लेखक - गणपति शंकर, जयशंकर शास्त्री, ईडर) "गुजरात का प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास" जो गुजरात सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया है। इनके आलेख भी सिद्ध करते है कि हूमड़ो का मूल निवास खेड ब्रह्मा था। इसका वर्णन इतिहासों के एक से दस भागों में किया गया है जिसे ऐतिहासिक मान्यता भी प्राप्त हो चुकी है।

हमारे हूमड़ इतिहास के प्रथम भाग में इसको उद्धत भी किया गया है -

पत्र ७०

लाट देश क्यों वारु!

"पांच हजार वर्ष पूर्व नो"गुजरात ए नामे पुस्तक मां "लाट" देशोनी ओळखाण करावता जणावे छे के लाट देश "उपरांत" नो ज एक विभाग छे. नर्मदा अने तापीना आसपास नो प्रदेश लाट गणातो पण लाटना चालुक्योनी सत्ता वधता मही नदीना छेक प्रदेशो पण लाट तरीके होवाना जाहेरमां आव्या आ उपर थी उत्तर गुजरात ने खूणे आवेलो ब्रह्मक्षेत्रना प्रदेशनो भाग पण लाट देश गणातो हशे . अने तेमना क्षत्रिओ लाट तरीके ओळखाता हशे ईडर राज्य ना वेणुवत्स राजा ना मंत्री लाट वैष्य वृति स्वीकारी हशे तेनी साथे ए जाती नो वैष्य वृति नो धंधो थई पडवाथी लाट वैष्यो तरीके ओळखाया हशे .

पत्र ९०

वेणीवत्स राजा क्या समयमां थयो ?

वेणीवत्स राजानो समय क्यो हशे ? ते विशे इडरमांथी के तेना गढ उपरथी जाणवा जेवु कशुं साधन मली आवतुं नथी। पण वेणीवत्स प्रशस्ति परथी तेमज ईडरना इतिहास मांथी एक श्लोक मली आवे छे ते परथी कालनुं अनुमान करी शकाय तेम छे. श्लोक नीचे मुजब छे,

" श्री इल्वदुर्गधिपवंणीवत्स
वभुच भूपाल मणि स एषः
चकोर राज्य मधचेच भूमौ
कलौगते द्रग भूजहा ग्निरिन्दुः

भावार्थ-इल्वदुर्ग (ईडर) नी गादी उपर वेणीवत्स नामे राजा राज्य करतो हतो . राजाओमां एक मणिसमान तेजस्वी हतो। ईन्द्र जेवा ऐश्वर्यथी पृथ्वी पर राज्य चलाव्युं अने तेनो समय गत काल १३२३ नो हतो. अर्थात कलियुगना १३२३ वर्ष थी त्यां हतां ते समये ईडरनुं राज्य वेणीवत्स राजानां ताबामां हतुं हालमां कलियुगना गत वर्ष प्रकट थया छे. तेमांथी १३२३ बाद करीए तो ३७१५ वर्ष थवा जाय छे. युधिष्ठर शकुनी गणत्री नी पद्धति एवी छे वेणीवत्स राजा युधिष्ठर शकमां १३२३ नी सालमां थयो एम उपरोक्त श्लोकथी समजाय छे.

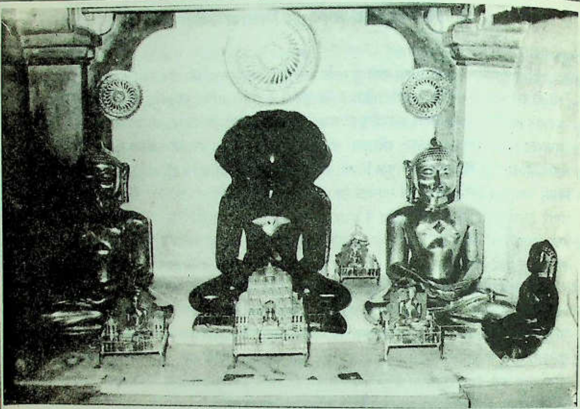

प्राचीन श्री १००८ पार्श्वनाथ जीनालयय की मूलनायक प्रतिमा

इसके निकट खण्डहर जिनालय है।

"गूर्जरे विषय रम्ये, ब्रह्मा खेटक संज्ञकं ।
पुरमास्ति महददिव्यं, दक्षिणे चार्बुदा चलात ॥
कृते ब्रह्मपुर नामां, त्रेता यां त्र्यम्बकं ।
तदैवद्वावरै ख्यातं, कलौवे ब्रह्म खेटक ॥
अस्ति तत्र महीपुण्या, हुरण्याख्या नदी शुभा ।
तत्रैव संगम पुण्यौ, नदी द्वितीय संभवः ॥
ग्राम मध्ये निवसति, देवो वे पद्म संभवः ।
भार्या द्वयेत संयुक्तो, तत्प्रासादस्य पूर्वतः ॥१८॥

अर्थात् रमणिक गुर्जर प्रदेश में ब्रह्मखेड़ नामक नगर है, जो संस्कृत के अति प्राचीन ग्रन्थ ब्राह्मणोत्विति महादिव्य होकर यह अर्बुदाचल (आबूपर्वत) के दक्षिण में स्थित है। सतयुग में इसे ब्रह्मपुर, त्रेता व द्वापर में त्र्यंबक तथा कलियुग में ब्रह्मखेटक नाम से ख्याति प्राप्त है। इस पुण्य भूमि पर हिरण्यनदी बहती है, जिसमें दो अन्य नदियों का संगम हुआ है। नगर के मध्य में देवपद्म संभव (ब्रह्मा) निवास करते है जिनके दोनों ओर उनकी दो पत्नियाँ विराजमान हैं। नगर में इनका भव्य मन्दिर बना हुआ है।

नन्दिश्वर दीप की प्राचीन मूर्ति आदिनाथ जिनालय डेरोल

अथर्ववेद १०-२ में भी इस नगर का "ब्रहापुरी" नाम से उल्लेख प्राप्त होता है।
"पुरयो ब्रह्मणोवेद यस्या पुरुष उच्यते।" यह वर्णन जिन सूक्तों से अवतरित हुए हैं, उनका उद्‌भव स्थान ऋग्वेद संहिता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि खेडब्रह्मा नगर का अस्तित्व पौराणिक युग, ऋग्वेद काल से प्रवृत्तमान है। इस मन्दिर के सम्मुख गोत्रकुण्ड बना हुआ है। जिसमें हूमड़ पूर्वजों की १८ कुल गोत्रों की अदिष्ठात्री अठारह कुल देवियों की मातृ प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। "ब्रह्मणोत्पत्ति मार्तण्ड" में इस संदर्भ में जो श्लोक प्राप्त हैं, वह इस कथन की पुष्टि करता है।

"वापिकास्ति महारम्या तन्मध्ये, कुल देवता
या सां पूजन भाचेण चेप्सितं फल लभ्यते।"

(इस गोत्रकुंड का विस्तृत विवरण देखिए आगामी पृष्ठपर)

खेडब्रह्मा का प्राचीन भौगोलिक उल्लेख

वर्तमान गुजरात राज्य के हिम्मतनगर में खेडब्रह्मा नामक पौराणिक नगर है, जो ईडर से ३५ कि.मी. अहमदाबाद से १५० कि.मी. तथा हिम्मतनगर से ६५ कि.मी. पर स्थित है। इस खेडब्रह्मा के आसपास के ग्राम्य विस्तार के समूह को "रायदेश" के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में भी इसे रायदेश कहते हैं। इसमें उत्तरपूर्व में विजयनगर दक्षिण में ईडर, उत्तर में पोशिना, पूर्व में खड्ग देश, पश्चिम में सत्तर तालुका है। खेडब्रह्मा हिरण्यगंगा नामक नदी के पश्चिम की तरफ है, जो वर्तमान में हरणाव कहलाती है। हरणाव नदी में आगे चलकर कोशाम्बी एवं भीमाशंकरी नदियाँ आकर मिल जाती है। इसी संगम के कारण यह क्षेत्र संगम तीर्थ प्रयाग के समान पवित्र माना जाता है। (इसका नक्शा पृष्ठ ५- पर देखिए)

खेडब्रह्मा का पौराणिक उल्लेख

खेडब्रह्मा अत्यन्त प्राचीन पौराणिक नगर है। इसका उल्लेख अथर्ववेद में ऋचा १०-२ में "ब्रह्मपुर" के नाम से महाभारत पर्व ६७,१०,१४ में एवं विष्णूपुराण एवँ वैष्णव हरिवंश पुराण में मिलता है।
ब्रह्मपुराण में "ब्रह्मक्षेत्र महातम" में ब्रह्मखेटक एक योजन बताया है, उसमें पेटा तीर्थो के वर्णन, हरण्या नदी, दक्षिण टेकरी पर क्षीरजा देवी तीर्थ और अंबिका तीर्थ का उल्लेख मिलता है।

संस्कृत के अति प्राचीन ग्रंथ "ब्राह्मणोत्वति मार्तण्ड" में खेडब्रह्मा के विषय में निम्नांकित वर्णन हैं।

गुजरात की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पृष्टभूमि

भौगोलिक लक्षण

भारत का जो भूमि - प्रदेश गुजरात कहलाता है वह पश्चिम भारत के अन्तर्गत है।

संचालन की दृष्टि से गुजरात राज्य जो कि भारत का संघीय राज्य है, की सीमा उत्तरमें २१.१ और २४.७ उत्तर अक्षांश तथा ६८.४ पूर्व और ७४.४पूर्व रेखांश के बीच स्थित है।
इस राज्य के उत्तर में मारवाड़ (राज.) उत्तर पूर्व में मेवाड़ (राज.) पूर्व में मालवा (मध्यप्रदेश) और खानदेश (महाराष्ट्र), दक्षिण पूर्व में महाराष्ट्र का नासिक जिला, दक्षिण में कोकण (महाराष्ट्र) और पश्चिम में अरब सागर आते है। और उत्तर पश्चिम में सिंध (पश्चिम पाकिस्तान) आता है। १९६१ की जणगणना के समय गुजरात राज्य का विस्तार, सर्वेक्षण के अनुसार १,८७, ११५ वर्ग किलोमीटर (७२,२४५ वर्ग मील) था।

भौगोलिक रचना : मुख्य विभाग

१. कच्छ सौराष्ट्र २. तल गुजरात ३. राय देश

आबु के आगे आरासुर से होकर गुजरात में फैला हुआ अरावली का एक भाग बनासकांठा से महेसाणा और साबरकांठा जिले की ओर मुड़ता है। महेसाणा जिले के उत्तर पूर्व भागमें तारंगा नामक एक छोटा पर्वत स्थित है। और उसके आसपास छोटी छोटी पहाडियाँ है।

साबरकांठा जिले के खेडब्रह्मा, ईडर, विजयनगर और भिलोड़ा की और अरावली का जो भाग है, वही विभाग रायदेश के नाम से प्रसिद्ध है।

तथ्य

हूमड़ के पूर्वज गुजारात राज्य के साबर कांठा जिला के "खेडब्रह्मा" जो किसी समय विशाल नगर था। जो हिरण्य गंगा (वर्तमान गरणाव) नदी के किनारे "कौशाम्बी" एवं भीमा नदियों की त्रिवेणी संगम तक विशाल तट जिसमें देवपुरी (वर्तमान डेरोल गाँव) एवं उसके आसपास के क्षेत्र जो वर्तमान में रायदेश कहलाता है, जिसमें पाल का ऐतिहासिक जिनालय, नगर, किला, एवं पाल का विशाल जंगल प्रदेश सम्मिलित है।

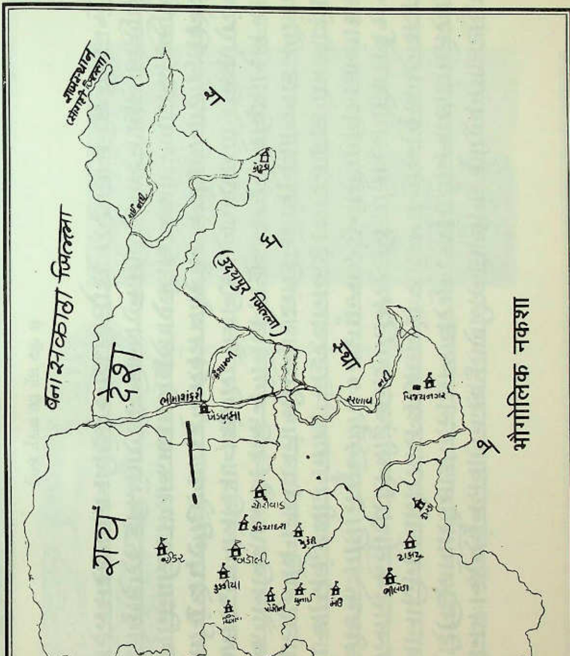
बनासकांठा जिल्ला
राजस्थान (डूंगरपुर जिल्ला)
(उदयपुर जिल्ला)
भौगोलिक नकशा
खेडब्रह्मा
विजयनगर

॥श्रीगुरुभ्योनमः। अथहुंबलवाणकस्यपुराणलिख्यते।श्रीमदहारिएयगंगात्तयसुम
नुहाराउत्तरदिग्विन्नागे।सोमाम्नागस्यजायावरमुखचतुरोगोत्रचाष्टान्नंततेरना
तोत्रोब्रह्मबाला।जिनभक्तनिरतासअअष्टादशोच।तेसर्वेत्रोरव्ययुक्ताधनसजन
युतामंगलोत्साहकर्तु।१।इतिश्रीहुंबलज्ञातिबससविंशति।२७गोत्रासर्वे १८०॥
सर्वेस्यपत्रवीरकप्राप्ति।तमृष्यगोत्र ७ सप्तमाल्याछई।श्रीसोमायिनाजायां।ब्रह्म
बलियैत्तासं।अग्निकुंडथीउत्पना।श्रीखेडस्थानकई।स्थापना।वडगोत्राबीप्रतेह
ना।गोत्रनव।तेहनीविगतलीखतं।श्रीरस्तु।१सांडिलगोत्रेविप्रा।२पाडलगोत्रेवि
प्रा।३कोत्रिकगोत्रेविप्र।४मौचिकियगोत्रेविप्र।५पूरूच्छपगोत्रेविप्रा।६वचस
गोत्रेविप्रा।७।नरद्वाजगोत्रेविप्रा।८अंगिरागोत्रेविप्रा।९पारासगोत्रेविप्र।एवंवि
प्रगोत्रनीवार्तागृंथेघणीछोपणइहांलखिनथी।हवेसर्वगोत्रनिवार्तालखियेछे
पूर्वइंब्रह्म।विष्णुनिना।भिकमल।कमलमध्येब्रह्मा।एतलेत्रीवसृष्टिनोपालकविष्णुकि
धा।अनेसृष्टिनोसंहारकरुद्रकिधो।एतलेश्लोका।एकमूर्तिस्त्रयादेवा।ब्रह्मविष्णुमहे
श्वरः।लिङ्गनेदेनसंस्थाप्य।तत्रविश्वेश्वरवनद्वचितु।२हपरेदेवतासर्वेमळीगोत्र१०८

हूमड़ पूराण की मूल प्रति से

हूमड इतिहास भाग २

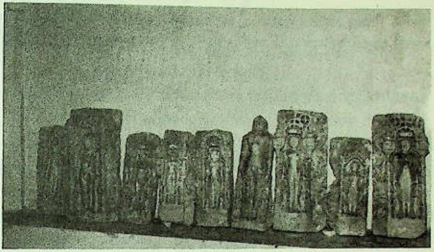

१-२ देरोल - खनन से प्राप्त प्राचीन शिल्प कृतियाँ

खेडब्रह्मा से लाई हुई तारंगा सिद्धक्षेत्र पर्वत पर तीर्थंकर भगवान श्री मल्लीनाथजी की मूर्ति

हूमड़ों के पूर्वज

पावागढ़, गिरनार, सिद्धक्षेत्र, एवं इडर का इतिहास हिन्दूपुराणो एवं गुजरात केप्रसिद्ध इतिहासकार गणपति शंकर के इतिहास से यह प्रमाणित होता है कि हूमडो के पूर्वज लाड (लाठ) क्षत्रिय थे।

हूमड़ों के पूर्वज

समकालीन इतिहास की गतिविधियों का अवलोकन किया जावे और पुराणों के तथ्यों को परखा जावे तो ऐसे अनेक प्रमाण प्राप्त होंगे जो हमारे जातीय गौरव के मान स्तम्भ है।

हूमड़ पुराण :- जैन इतिहास में ६३ श्लोक, पुरुषों के चरित्रों, भाग-भूमि के बाद कर्म भूमि के प्रारम्भ के संक्रमण काल का सविस्तार वर्णन किया गया है। इस संक्रमण काल के समय भगवान ऋषभदेव ने असि, मसि, कृषि, काल की रचना की। शैव वैष्णव पुराणकारों ने भगवान ऋषभ को ब्रह्मा के रुप में वर्णित किया। हूमड़ पुराण के रचियता ब्राह्मण पुरोहित वृन्द (जो वेएण्व, शेव) थे। उन्होने ब्रह्मा, विष्णू, महेश की त्रिपुटी के ब्रह्मा को अपनी हूमड़ पुराण की रचना में अधियेता एवं नायक बनाया है। पुरोहितो की धार्मिक मान्यताओ के साथ ब्रह्मा की परिकल्पना जैन मान्यताओ का एक रुप है।

भगवान ऋषभ ने क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र तीन वर्ण की स्थापना की उनके ही समय में चक्रवर्ती भरत ने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की। इस प्रकार चक्रवर्ती भरत ने प्रभु ऋषभ के वर्ण स्थपना कार्य को उनके जीवन काल में नव आयाम दिये।

हूमड़ पुराणके अनुसार ब्राह्मण वर्ण संयम ब्राह्मण समाज को ब्रह्मा द्वारा रचित मानता है परन्तु साथ में प्रशासन, समाज व्यवस्था का प्रश्न स्वाभाविक है। ब्रह्माने आत्मयज्ञ के अनुकूल केवल ब्राह्मणों के ही नही परन्तु क्षत्रियों के रक्षा धर्म, शुद्रो के सेवाधर्म की साधना में साम अजस्य हेतु तथा जाति वणिक पुत्र के उचित होने का वर्णन किया है जिसका कार्य समाज के तीनो कार्यशील वर्णो में परीश्रम एवं आत्म श्रम का विवेक पूर्वक विनिमय हो सके।

हूमड़ या हूंमड़ या हूबल इस नाम संज्ञा के धारण के पूर्व क्षत्रिय अवस्था में यह हूमड़ जाति खेडब्रह्मा और उसके आसपास रायदेश में निवास करती थी। उसके पूर्व यह जैन धर्म को मानती थी जिसने वैश्य कार्य या वणिक वृत्ति स्वीकार की उसके पूर्व यह जाति 'लाड़' क्षत्रिय या केवल लाड़ के नाम से जानी जाती थी।

हिन्दू पुराण - *'ब्राह्मणोत्पत्ति मार्तण्ड'* के ब्रह्मक्षत्र माहात्म्य खण्ड में इस जाति के निर्माण या स्थापना के सम्बन्ध में जो कथन प्राप्त होता है वह निम्नवत् है । इसमें भी हूमड़ शब्द की व्युत्पत्ति के बीजाक्षर अभिलिखित हैं ।

"प्रत्युत्पन्न मतिः सोड्ज, निमिये अदभुत सकगम् ।
शुभ लक्षणां संयुक्त, विविधोद्यम कांक्षिणाम् ॥४॥
व्यापार करणो ज्येष्ठं, सुतं स्वाङ्क न्यवे शयेत् ।
मूर्धन्या त्राय वेश्यंतं, संतोषं परमं ययौ ॥५॥
नैन वेचाबूधं दृष्टं धृतं स्वेन करेणतन् ।
किमिदं तात ! मेत्र हि श्रोतुमिच्छा मित्वन्मुखान् ॥६॥
रे बाल ! चायूधं ह्य तद गृहितुं नाहे स्वरम् ।
नाम्ना तेना युधे नैतां ख्याति मेण्यसि भूतले ॥७॥

इस श्लोक का भावार्थ यह है कि, जगतपिता ब्रह्मा ने विविध उद्यम करने की आंकांक्षा रखने वाले एवं शुभ लक्षणों से युक्त एक अद्‌भुत बालक का निर्माण किया । व्यापार करने में श्रेष्ठ अथवा सक्षम उक्त बालक को देखकर परमपिता ने उसे अपनी गोंद में बिठा लिया तथा स्नेह पूर्वक उसके ललाट को सूंघ कर उसके श्रेष्ट गुणों लक्षण का अनुभव कर उन्हें परम संतोष प्राप्त हुआ । उस बालक ने पितामह ब्रह्मा के आयुधों को देखा उस ओर आकर्षित हुआ, और पूछने लगा हे पिता ! यह क्या है ? और आपने इन्हें क्यों धारण किया है ? कृपया मुझे बताइये । तब कृपावंत ब्रह्मा ने कहा हे बालक ! ये आयुध (शस्त्र) हैं जिन्हें तू ग्रहण नहीं कर सकेगा क्योंकि जन्मते ही तेरी दृष्टि उनकी ओर गई है । अतः तेरा जाति नाम "आयुव" वाचक रहेगा ।

हूमड़ पूर्वज की जन्मकथा के इस अलंकारिक प्रस्तुतिकरण का अर्थ इस तरह किया जाता है कि समाज व्यवस्था हेतु कुशल व्यापारी वर्ग की आवश्यकता को देखते हुये क्षत्रिय कुटुम्बो में से कुछ निपुण लोगों को चुना गया और उन्हे वैश्य (वणिक) का कार्य सौंप कर वैश्य वर्ण का निर्माण किया गया क्योंकि ये लोग गुजरात जिसका पूर्वनाम लाट प्रदेश था वहां रहने के कारण लाड़ वैश्य कहलाये ऐसी संभावनाएं है । वर्तमान में गुजरात एवं बम्बई में लाड़ वैश्य है जो एणव धर्म का पालन करते है उन्होंने अपना मूल नाम चालू रक्खा परन्तु हमारे पूर्वजो ने नया नाम चालु किया इसी प्रकार दक्षिण महाराष्ट्र में एक छोटी जाति लाड़ कहलाती है । इसका विशेष संशोधन करना आवश्यक है ।

हूमड़, हूवड़ जाति के बारेमें एक तर्क और दिया जाता है वह इस प्रकार है :-

क्षत्रिय वर्ण से मिसृत होने के कारण यह वणिक वर्ग वैश्य वृत्ति सर करने के पूर्व आयुध धारी था अथवा आयुध या शस्त्र जीवी था । संस्कार होम द्वारा आयुध त्याग के महत्व को स्थायी करने की दृष्टि से, होम, आयुध होमायुध नाम इस स्वीकृत वैश्य वर्ग को प्राप्त हुआ, जो कालांतर में होमायुध, होवाउढ, होवाउड्ड, हैवाढ्ढ, हूंवड्ड, हूबड़, हूंमड़ हो गया एवं पूर्व देशवानी वैश्य के स्थान पर अधिक प्रचलित हो गया । इस प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के पुर्व आयुध त्याग कर हूमड़ हुए यह भी एक प्रचलित मान्यता है । पूर्व वर्ग कुछ हूमड़ श्रेष्ठीगण द्वारा निर्मित मूर्तियों के निर्माण लेखो में भी हूमड़ के वर्ग पर आयुध शब्द दिखाई देता है । जो इसकी पुष्टी करता है ।

जैन पुराणों के आधार पर :-

हमारे बीसवें तीर्थकर भगवान मुनिसुव्रत के समय में राम के दो पुत्र लव और कुश हुये जिन्होने दिक्षा धारण की एवं पावागढ़ तीर्थ क्षेत्र पर निर्वाण प्राप्त किया। पावागढ़ से ही अनेक लाड़वंशीय राजाओं ने निर्वाण प्राप्त किया जिसका विशेष उल्लेख "पावागढ़ तीर्थक्षेत्र के इतिहास" से प्राप्त होता है। निर्वाण कांड़ भाषा में भी लिखा है :-

रामचन्द्र के सुत दोय, लाड़ नरिदं आदि गुणधीर ।
पाँच कोटि मुनि मुक्ति मंझार पावागिरि बंदो निरधार ॥

"आचार्य कुन्द कुन्द" द्वारा रचित "प्राकृत निर्वाण कांड" "आचार्य पूज्यपाद" द्वारा रचित "संस्कृतिनिर्वाणंजलि" में भी लाड़ क्षत्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है। "भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ" (चतुर्थभाग)

जोकि भारतवर्षीय दि.जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी द्वारा प्रकाशित है उसके पृष्ठ नं. १७८-१७९ में तीर्थक्षेत्र पावागढ़ के लिये उपरोक्त वर्णन है।

भट्टारक उदयकीर्ति ने तीर्थवंदना अपभ्रंश भाषा में पावागिरि के बारे में लिखा है -

"पावाई लवणंकुस रामसुआ
पंचेव कोड़जिहिं सिद्ध हुआ ॥"

"भट्टारक गुणकीर्ति" ने मराठी में लिखा है -

"पावामहागढि श्री लंवा कुश मुख्य करोनि पांचकोडि सिद्धि पावले त्यां सिद्धक्षेत्रासि नमस्कारु माझा।"

भट्टारक मेघराज :- गुजराती भाषा में लिखा है

"पावागिरि पाँचकोडि लहु अंकुस सिद्धि गयाए।"

भट्टारक जिन सागर :-

"तेहा दोय कुमार राज्य करिता वैराग्यता पावले ।
घेती पंचमहाव्रतासि दखे संबोधता लाघले ॥"
केला भव्यजनासि बोध बहुधा पावापुरी लाघले ।
गले मोक्ष पदासि भव्य कवि ते श्रोत्या जना दाविले ॥

इसी प्रकार श्रुतसागर, ज्ञानसागर, चिमणा पण्डित आदि अनेक लेखकों ने भी इस क्षेत्र को सिद्ध क्षेत्र माना है।

निर्वाण कांड में तीन पावाओं का उल्लेख आया है।

(१) प्रथम पावा के सम्बन्ध में उसमें लिखा है "पावाए णव्वुदो महावीरो" अर्थात एक पावा वह जहाँ से महावीर मुक्त हुये थे।

(२) दूसरी पावा का नाम पावागिरि जहाँ से राम के दो पुत्र और पाँच कोटि नरेश हुये थे।

(३) तीसरी पावा भी पावागीरि कहलाता है जहाँ से सुवर्ण भद्र आदि चार मुनि मुक्ति हुये थे। वह पावागिरि चेलना नदी के तट पर स्थित है।

इन तीनों पावा में वह कौन सा है जहाँ से राम के पुत्र निर्वाण को प्राप्त हुये। इसका उत्तर भट्टारक श्रुतसागर ने "बोध प्रभ्टत" की गाथा नं. २७ की टीका में तीर्थक्षेत्रों के नामोल्लेख करते हुये दिया है कि लाटदेश की पावागिरि राम पुत्रों की निर्वाण भूमि है।

भट्टारक ज्ञानसागर ने "सर्वतीर्थ बंदना" में इस क्षेत्र के लिये वर्तमान नाम पावागढ़ प्रयुक्त किया है, इसका दो बार वर्णन किया है। उन्होंने इस क्षेत्र को गुर्जर (गुजरात) में बताया है।

लाट देश सौराष्ट्र को कहा जाता था और गुर्जर गुजरात को दोनें देश प्रायः सम्मिलित रहे है, अतः दोनों एक माने जाता है। अतः पावागढ़ लाट देशमें था या गुर्जर देश में एक ही बात है।

"पावागढ़ के इतिहास" एवं गुजरात का प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास के अनुसार आनन्दपुर (वर्तमान बडनगर) का राजा जो लाड़ वंशीय सुरेन्द्रसेन। उसके पुत्र वीरसेन जिसकी रानी का नाम चन्द्रवती धर्मकार्यो में प्राचीन रानी ने पावागढ के प्राचीन मन्दिरो का जीर्णोद्धार किया। उस बडनगर (आनन्दपुर) में गुजरात पुरातत्व विभाग की खुदाई में भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति पद्मावती के साथ प्राप्त हुई है। उस आनन्दपुर (बडनगर) का Bombay regetter द्वारा वर्णित है।

उत्तर गुजरात की राजधानी आनंतपुर थी। (स्कन्द पुराण नागरखण्ड अध्याय ६५)
पश्चात् इसका नाम आनन्दपुर हो गया (Bombay gagettees, Vol-I, Part-I, Pasmete 2) वर्तमान में बड़नगर कहालाता है। बड़नगर उत्तर गुजरात में सिद्धपुर से ११२ कि.मी.है लेकिन वर्तमान में आनन्दपुर नामक एक स्थल है जो वल्लभी से उत्तर पश्चिम ८० कि.मी. १ प्राचीन काल में इसे ही आन्नतपुर कहते थे (सन् ६४९ ओ ६५१ के आलिना के दो ताम्रपत्र) इसका हेन्सोंग (चीनी यात्री) ने भी वर्णन किया है आनन्दपुर को बडनगर भी कहते है यह बाह्मणों का मूल भाग था।

गिरनार सिद्ध क्षेत्रके प्रमाण

(२) दूसरा पौराणिक प्रमाण :-

वर्तमान में द्वारिका के खनन के बाद भगवान श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक पुरुष सभी इतिहासकार स्वीकार करते है। उनके चचेरे भाई हमारे २२ वें तीर्थकर भगवान नेमीनाथ है। अतएव इतिहास मान्य है उनका निर्वाण स्थल गिरनार पर्वत है। "भूवलय" प्राकृत भाषा के ग्रन्थ की निर्वाण गाथा से प्रमाणित होता है कि श्रीकृष्ण-भगवान नेमीनाथ व अन्य राजकुमारो के साथ गोकुल मथुरा से प्रस्थान करके गुजरात के द्वारिका नगरी में आकर निवास किया था। उनकी निर्वाण स्थल गिरनार पर्वत (गुजरात) है। उनके साथ लाडवंश के राजाओ के निर्वाण का उल्लेख प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ भूवलय ग्रन्थ की निर्वाण गाथा में निम्न श्लोक है।

लाड़ वंश पजुषणो सम्भूकुमारो नदेव अणिरुद्धो।
बहतर कोडीओ उज्जयन्तो स रिज्नसया सिद्धा।

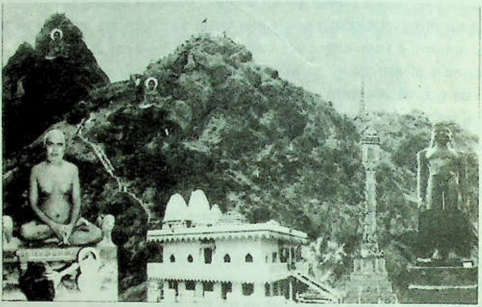

श्री गीरनारजी सिद्ध क्षेत्र

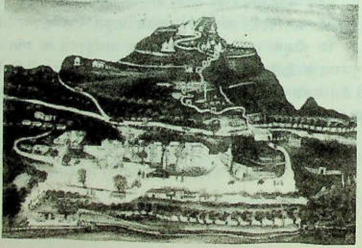

श्री पावागढ़ सिद्ध क्षेत्र

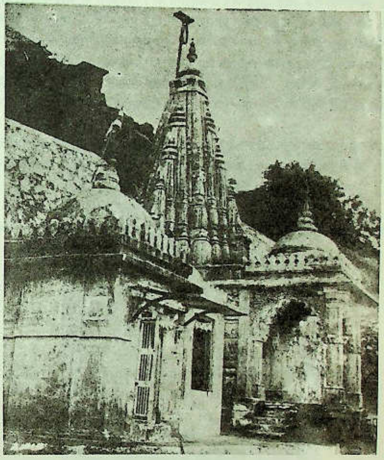

श्री गीरनारजी सिद्ध क्षेत्र प्रथम टोंक पर दि. जैन बडा मन्दिर

ईडर के इतिहास से :- गुजरात राज्य के इतिहास के अनुसार खेड़-ब्रह्मा इडर राज्य के आधीन था। वहाँ सूर्यवंशी राजा वेणीवत्स राज्य करता था । पुराण शास्त्रों में भी इसका वृतांत उपलब्ध है ।

वेणीवत्स राजा शैव या वैष्णव था। उसने प्रजा की सुख शान्ति हेतु महायज्ञ करवाया । उस समय वेणीवत्स का प्रधानमंत्री एक लाड़वंशीय जैन धर्मानुरागी था। खेडब्रह्मा के ब्राह्मण पुरोहित (गोरजी) ने यज्ञ की दक्षिणा के समय राजा से निवेदन किया कि लाड़ क्षत्रिय है वह जैन है, वह अपना क्षत्रिय धर्म त्याग कर वणिक धर्म स्वीकार कर खेती ब्यापार करने लगे है। हम पुरोहितों की जीविका का आधार लाड़ यजमान है, और इनके वणिक धर्म स्वीकार करने से हमारी आजिविका की समस्या उपस्थित हो गई है। उस समय राजा वेणीवत्स के प्राधानमंत्री प्रतिनिधी भी थे। उनकी समस्या के समाधान हेतु लाड़ क्षत्रियों की ओर से उन्हें आस्वासन दिया कि मेरी जाति के लोग यानी लाड़ नाम से प्रख्यात वणिक वृंद तुम्हारी वंश परम्परा का पालन करते रहेंगे ।

पुराणों से इस बात का वृत्तांत उपलब्ध है कि आजसे साढ़े तीन हजार वर्षो पहले खेडब्रह्मा में सूर्यवंशी राजा वेणीवत्स का शासन था। इल्वदुर्ग ईडर के इतिहास में भी उनके बारे में उल्लेख किया गया है :

"श्री दल्वदुर्गाधिय वेणिवत्सः बभूव भूपाल मणिःस एषः ।
चकार राज्य मेघ वेष भूमौ कलौगते द्रग् भुजहय ग्निरिन्दु ।।२४।।

राजा वेणीवत्सका प्रधान मंत्री था। जैन धर्म का धारक एक लाड़ वणिक हूमड़ वणिक।

देखिए श्लोक ३६ से ४०

नृप मंत्री वणिक् जाति लाड़ इत्यभि विश्रुतः
प्रतिज्ञाम् करोत्तत्र सभा मध्ये विशेषतः ।।३६।।
मदीयाः सतिये सर्वे देशेग्रामे पुरे तथा
तेयुष्मान पालयिष्यं नात्र कार्या विचारणा ।।३७।।
वयं सर्वे क्षत्रियाश्च लाट देश समुद्भवा
कालयोगाद्धर्म भ्रष्टाः जाताः सर्वे मुनिश्वर ।।३८।।
ते सर्वे लाड़ वणिजः सच्छूद्रा वर्ण धर्मत
नमस्कारेण मंत्रेण पंच यज्ञा सदैवहि ।।३९।।
आराधना विवाहांताः संस्काराये प्रकीर्तिताः
ते सर्वे च कर्तव्या वेद मंत्रे विना द्विजः ।।४०।।

वेणीवत्स राजा के मंत्री लाड़ वणिक जाति के व्यक्ति ने इस सभा में जो प्रतिज्ञा की वह है हे ब्राह्मण वृंद ! इस प्रदेश एवं प्रत्येक गांव गांव में भी मेरी जाति के लाड़ नाम से प्रख्यात वणिक वृंद तुम्हारी वंश परम्परा का पालन करते रहेंगे यह तथ्य तुम्हें ज्ञात हो इसमें कोई अन्तर नहीं रहेगा ।

हे मुनिवृंद ! हम मूलतः क्षत्रिय हैं। लाट (गुजरात) देश के निवासी से देशवाचक 'लाट' नामसे जाने जाते हैं। समय का अनुकरण करते हमने क्षत्रियों के संस्कारों को त्याग दिया है ।

हम सर्व 'लाड' नाम से प्रख्यात वणिक जन वाणिज्य कर्म करते है। हमारी धर्म क्रियाएँ हम पंच नमस्कार मन्त्र अनुसार पंच यज्ञ के द्वारा करते हैं। गर्भाधान से लगाकर विवाह आदि सभी संस्कार आप यदि हमारे पुराण शास्त्रों के मन्त्रानुसार करवायेंगे तो उसमें हमें कोई बाधा नहीं होगी ।

यह इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि हूमड़ जाति जो आज से चार हजार वर्ष पूर्व में भी जैन धर्म की अनुयायिनी थी एवं अपने सारे संस्कार पंच नमस्कार या णमोकारके पवित्र मन्त्रोच्चार के साथ करती थी। देव गुरु उपासना, स्वाध्याय सामायिक एवं पात्र दान के पंच यज्ञ ही इस पुरातन वणिक जाति की आस्थाओं के आधार थे।

श्री १००८ भगवान संभवनाथजी

(मूलनायक) प्राचीन, अतिशययुक्त, चतुर्थ कालीन प्रतिमाजी
इडर, जि. साबरकांठा

मूल नायक श्री १००८ श्री आदिनाथ भगवान

विशाल प्राचिन जिनालय ईडर मूल नायक श्री १००८ श्री आदिनाथ भगवान

श्री आदिनाथ भगवान ईडर

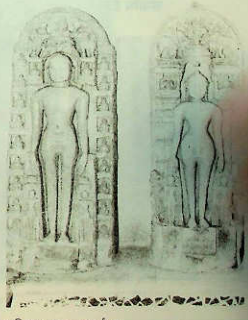

श्री आदिनाथ भगवान ईडर

समाधि ईडर

ईडर गढ़

श्री १००८ भगवान पार्श्वनाथ स्वामी
इडर

ईडर गढ़

ईडर गढ़

घोघा

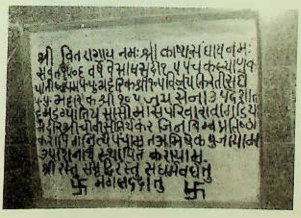

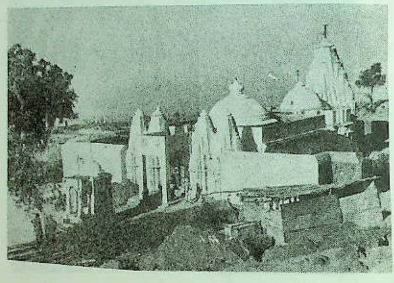

पावागढ़ पहाड पर जैन मंदिरो का दृश्य

डेरोल

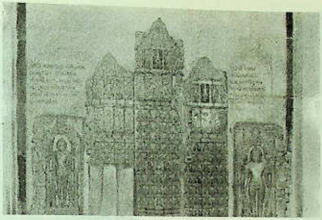

श्री संभवनाथ दि. जै. ट्रस्ट अंतर्गत
श्री १००८ भगवान आदिनाथजी दि. जैन जिनालय स्थित जिन बिंब

हूमड इतिहास भाग २

तारंगा क्षेत्र के सिद्ध शिला पर्वतपर तीर्थंकर
श्री मल्लिनाथजी

श्री पद्मावती देवी डेरोल

श्री संभवनाथ दि. जै. ट्रस्ट अंतर्गत
श्री १००८ भगवान आदिनाथजी दि. जैन जिनालय स्थित जिन बिंब

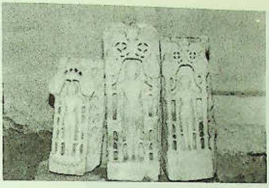

श्री संभवनाथ दि. जै. ट्रस्ट अंतर्गत
श्री १००८ भगवान आदिनाथजी दि. जैन जिनालय स्थित खड्गाशन
प्रतिमाएँ

श्री १००८ भगवान आदिनाथजी

 हूमड इतिहास भाग २

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर मेराली (गुजरात)
रायदेश दि. जैन समाज

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर मेराली (गुजरात)
रायदेश दि. जैन समाज

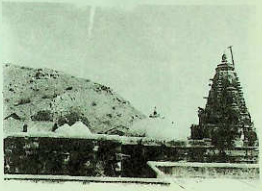

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर मेराली (गुजरात)
रायदेश दि. जैन समाज

श्री १००८ श्री पद्मप्रभु पराडा

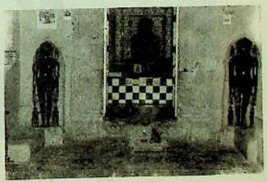

श्री १००८ श्री नेमीनाथ दि. जैन मंदिर अतियश क्षेत्र
पाल (गुजरात)

हूमड इतिहास भाग २

श्री १००८ श्री नेमीनाथ दि. जैन मंदिर अतियश क्षेत्र
पाल (गुजरात)

श्री १००८ श्री नेमीनाथ दि. जैन मंदिर अतियश क्षेत्र
पाल (गुजरात)

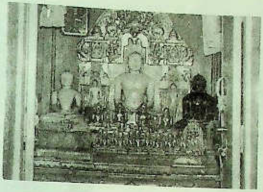

श्री सुमतिनाथ दि. जैन मंदिर टाकाटुका (गुजरात)

श्री अनंतनाथ दि. जैन मंदिर वाकानेर (गुजरात)

श्री आदिनाथ दि. जैन मंदिर टाकाटुका (गुजरात)

कलापूर्ण किर्ति स्तंभ भिलोडा दि. जैन
बावन जैन जिनालय

नागफणी पार्श्वनाथ मौदरगाँव के निकट पहाडपर बने
मन्दिर में धरणेन्द्र की मूर्ति

श्री अनंतनाथ दि. जैन मंदिर वाकानेर (गुजरात)

श्री अनंतनाथ दि. जैन मंदिर वाकानेर (गुजरात)

हूमड़ जाति का उद्भव का समय और स्थल

जो तथ्यात्मक विवरण या अनुश्रुतिया एवं हूमड़ पुराण, हूमड़ वंशावली छोटी आशीका, बडी आशीका और प्राचीन महारकों द्वारा लिखे हस्त लिखित ग्रन्थो आदि के अनुसार हूमड़ जाति का उद्भव - विक्रम १०१ माघ सुदी पंचमी गुरुवार पूजा प्रतिष्ठा दान विधि वर्तोजय जय

हूमड़ पुराण - हूमड़ वंशावली

(उद्भव समय विक्रम संवत् १०१ वीर संवत् ५७१ इसवीसन् ४५
याने आज से १९५३ वर्ष पूर्व)

उपरोक्त समय के विषय में हम अनेक ऐतिहासिक प्रमाणो का अवलोकन करेगे :-

हूमड़ समाज क ***उद्गम के कारणों*** का चार भागो में विभाजित करेंगें :-

(१) धार्मिक परिस्थितियाँ (२) सामाजिक परिस्थितियाँ (३) राजनैतिक परिस्थितियाँ (४) भौगोलिक परिस्थितियाँ

धार्मिक परिस्थितियाँ :-

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात उनका यह मूल संघ ३६२ वर्ष के अन्तराल में होनेवाले गौतम गणधर से लेकर अन्तिम श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी प्रथम तक अविचिछित्र रुपमें चलता रहा । इनके दुर्भाक्ष के कारण यह संघ दो भागोमें विभाजित हो गया । एक आचार्य भद्रबाहु आम्नाय दिगम्बर और दूसरे आचाार्य स्थूलभद्र आम्नाय जो आगे जाकर श्वेताम्बर का एक अखंड संघ दो शाखाओं में विभाजीत हो गया ।

(वीर संवत् १३३ - १६२)

जैन संघ भद्रबाहु प्रथम के समय दो भागो में विभाजित हो गया पहला मूलसंघ के नाम से दि. संप्रदाय के नाम से प्रारंभ हुआ और दूसरा विभाग आगे जा के श्वे. संघ के नाम से प्रचलित हुआ ।

2. Interpretation of Jaina Canons

Secondly, the religious doctrines, principles and tents of Jainism as they were enunciated and taught by Mahavira were not committed to writing during the lifetime of Mahavira or immediately after his Nirvana. The important fact was that the religious teachings of Mahavira were memorised by his immediate successors and they were thus handed down by one generation to another, till they were canonised at the Council of Patalputra in the early part of the 3rd century B. C. By this time much water had flown down the Ganges and what was canonised was not acceptable to all, who vigorously maintained that the canon did not contain the actual teachings of Mahavira.

Again, there was the wuestion of interpreting what had been canonised. As time passed on differences of opinion regarding the interpretation of many doctrines arose and those who differed established a separate school of thought and formed themselves into a sect or sub-sect.

यह मूल संघ भद्रबाहु (द्वितीय) (४९२ - ५१५) तक व्यवस्थित चलता रहा । इस समय धार्मिक परिस्थितियाँ बदलती रही जो मुख्य निम्न से महावीर के निर्वाणोपरांत कुछ प्रारंभिक शताब्दियों में जैन आगमों का ज्ञान जैन साधुओं की स्मृति में ही सुरक्षित रहा और परंपरा में गुरुओ द्वारा शिष्यो को मौलिक रुपसे प्रदान किया जाता रहा । लेकिन दुर्लक्षो और संक्रामक रोगो से जब भी आगम ज्ञानी कालग्रस्त होते तब इन धार्मिक आगमों का ज्ञान भी उन्ही के साथ अनवरत क्षीण होता जाता । कालांतर में जैन आत्मज्ञान की शिक्षा का प्रवाह इतना टूटने लगा कि उसे निरंतर बनाये रखना और उनके मूल पाठ को भ्रष्ट होने से बचाये रखना असंभव हो गया । कालांतर में मौखिक रुपसे जानांतरण की इस पद्धति से उत्पन्न संकट को जैन समुदाय ने चिंता के साथ अनुभव किया और उसे लगा कि यदि इस दिशामें सुधारात्मक अपेक्षित कदम नही उठाये गये तो सदा के लिए विलुप्त हो जायेगी । फलतः जैन समुदाय ने अपनी पवित्र ज्ञान-निधि की सुरक्षा के लिए अनेक प्रकार के प्रयास किये ।

भद्रबाहु द्वितीय के शिष्य से लोहाचार्य (प्रथम) के समय उनके मुख्य तीन शिष्य :

(१) अर्हदबली (जो परंपरा से आचार्य पद पर) आरुढ थे ।

(२) आचार्य गुणधर

(३) आचार्य धरसेन

लोहाचार्य के तीन शिष्यों को आभास हुआ कि अब भगवान महावीर की वाणी सुरक्षित नहीं रह सकेगी अतएव इसे लिपी बद्ध किया जाना आवश्यक है । उस समय के आचार्य गुणधर अपने समय के विशिष्ट ज्ञानी विद्वान थे । वे पाँचवे ज्ञान प्रवाद पूर्व स्थित दशम वस्तु के तीसरे पेज्जदोस पाहुड के पारगामी थे । उन्हे पेज्जदोस पाहुड के अतिरिक्त महा कम्मपयडि पाहुड का भी ज्ञान था । इससे स्पष्ट है कि गुणधर महाकर्म प्रकृति के भी ज्ञाता थे । इन्होने अंगज्ञान का दिन प्रतिदिन लोप होते देखकर श्रुत विच्छेद के भय से और प्रवचन वात्सल्य से प्रेरित होकर "पेज्जदोस पाहुड" की रचना की।

पहला कारण :-

भगवान महावीर के निर्माण के बाद जैन धर्म सारे देशमें फैलने लगा, परिणाम स्वरुप जो महावीर के बार गणधर आचार्यो की परंपरा के लिए संघ का संचालन करना कठिन हो गया और ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया त्यों त्यों विभिन्न परिस्थितियों, रीति - रिवाजो में अंतर बढ़ता गया परिणाम स्वरुप संघको विविध संघो में विभाजीत करना अनिवार्य हो गया ।

संघ व्यवस्था की समस्या :-

विक्रम की प्रथम सदी में जैन धर्म सारे भारत में फैल चुका था उसके अनेक आचार्य संघ भारत के विभन्न गावों में विहार कर रहे थें । ऐसी परिस्थितियों में संघ का संचालन करना अत्यन्त कठिन था अतएव आचार्य अर्हत्‌बली ने संघ विभाजन का निर्णय लिया ।

इसी विषय पर डॉ. विलास ए. संगवा ने अपनी अँग्रेजी पुस्तक " jain Society Throuh the Ages." में निम्न उल्लेख किया है ।

1. Increase in the extent of Jainism By Dr. Vilas Sangva Jain Society thorght Ages :- In the first place it may be mentioned that during the liferime of Mahavira the spread of Jainism was limited, but after the Nirvana of Mahavira his successors and followers succeeded to a large extent in popularising the religion throughout the length and breadth of India, so that it did

not fail to enlist for a long period the support of kings as well as commoners. As the number of adherents to the Jaina religion fast increased and as they were scattered practically in all parts of the country, the Acharyas, that is, the religious leaders, and the religious pontiffs must have found it very different to look after and organise their followers. Naturally, different conditions, customs, manners and ways of life prevailing in different parts of the country in different periods of time might have influenced in giving rise to various religious practices which might have ultimately resulted in creating factions among the followers of Jainism.

हूमड़ जाति के उद्गम के कारण धार्मिक परिस्थितिया :-

मूल संघ विभाजन :

आचार्य इन्द्रनन्दि ने अपने श्रुतावतार ग्रन्थ में अपने कथन की पुष्टि में एक प्रचीन पद्य उद्धृत किया है :

आयातौ नन्दिवीरों प्रकट गिरि गुहा वासतो अशोक वाटा ।
दे वाश्चान्यो अपराविर्जित इति यतयो सेन भद्राहवयोच ।
पंच स्तूप्यातून गुप्तौ गुणधर वृषभ शैल्मती वृक्षमूलात ।
निर्यातौ सिंह चन्द्रौ पथित गुणगणौ केसरा त्खण्डा पूर्वात् ।।१६।।
अर्हद्बली गुरुश्चक्रे सघं संघरत परम ।
सिंह संघो नन्दिसंदो सेन संघस्त यापरः ।
देव सगं इति स्पष्ट स्तान स्तिति विशेषतः ।

भगवान महावीर के निर्माण के बाद मूल संघ वीर संवत १ गौतम स्वामी (क्रम नं.१) के बाद वीर संवत १३३-१६२ भद्रबाहु प्रथम क्रम नं. के समय जैन संघ का श्वेताम्बर दिगम्बर दो सम्प्रदायों में विभाजन हुआ। दिगम्बर सम्प्रदाय भद्रबाहु प्रथम से भद्रबाहु (द्वितीय) वीर संवत् (४९२-५१५) तक चलता रहा ।

भद्रबाहु द्वितीय के अनेक शिष्य आगम अंग के जानने वाले है । उनमें गुणधर, धरसेन और लोहाचार्य द्वितीय मुख्य थे ।

उनमें से आचार्य धरसेन ने गिरनार पर अपनी तपस्या की । आचार्य गुणधरने अपना स्वतंत्र संघ रचा, जो आगे जाकर 'गुणधर संघ' के नामसे प्रसिद्ध हुआ । आचार्य लोहाचार्य सिर्फ १० वर्ष आचार्य पद पर रहे । उनकी जगह अर्हत्बली आचार्य पद पर आये । उनके शिष्य माघनन्दि ने अलग संघ की रचना की जो नन्दिसंघ कहलाया ।

विभाजन का यह समय जैन धर्म का सक्रांति काल था । वीर संवत् ४९२ से वीर संवत ७४७ तक मूलसंघ अनेक भागों में विभक्त हो गया इस संक्रांति काल में अनेक संगठनों की रचनाएँ हुई थीं और ये संगठन आगे जाकर अनेक जातियों के नाम से अस्तित्व में आये ।

२. अर्हद्बली गुरुश्चके संघ संघठन परम् ।
सिंहसंघो नन्दिसंदो सेनसंधस्तयापरः ।
देवसंघ इति स्पष्ट स्थान स्थिति विशेषतः ॥

काष्ठासंघ, माथुर संघ आदि नामों से जाना जाने लगा । "इन्द्रनन्दि श्रुतावतार में लिखा है कि वर्धन पुण्डोपुरवासी आचार्य अर्हत्बली प्रत्येक पांच वर्षो के अन्त में सौ योजन में बसने वाले मुनियों को युगप्रतिक्रमणा के लिये बुलाते थे । एक समय उन्हों ने ऐसे ही प्रतिक्रमणा के अवसर पर समागत मुनियों में से पूछा क्या सब आ गये ? मुनियों ने उत्तर दिया हाँ, हम सब अपने संघ के साथ आ गये हैं । इस उत्तर को सुनकर उन्हें लगा कि जैन धर्म अब संघ पक्षपात के साथ ही रह सकेगा । अतः उन्हों ने संघो की रचना की । जो मुनी गुफा से आये थे उनमें से किसी को नन्दि नाम दिया और वीर किसीको, जो अशोकवाट से आये थे, उनमें से कुछ को अपराजित और कुछ को देव नाम दिया । जो पंचस्तूप निवास से आये थे उनमें से कुछ को सेन नाम दिया और कुछ को भद्र नाम दिया । जो शाल्मली वृक्ष मूल से आये थे उनमें से किन्हीं को गुमाधर और किन्हीं को गुप्त । जो खण्डकेसर वृक्ष के मूल से आये थे उनमें से कुछ को सिंह नाम दिया और किन्ही को चन्द्र । इन्द्रनन्दि ने अपने कथन की पुष्टि में एक प्राचीन पद्य भी उद्धत किया हैं । इससे स्पष्ट है कि मूलसंघ से ही नन्दिसंघ काष्ठासंघ, सेनसंघ, सिंहसंघ और देवसंघ हुये ।

मूलसंघ विभाजन की विधिवत् घोषणा

वीर संवत ५६५ विक्रम ९५ ईसवीसन् ३८ में हुई ।

आचार्य अर्हत्बली वीर सं. ५६५ में वैष्णा नदी तट पर महिमानगर सतारा में महिमागढ में पंचवर्षीय प्रतिक्रमण के समय मुनि सम्मेलन में मूल संघ का विधिवत् विभाजन घोषित किया ।

मूलसंघ के अनेक आचार्य अलग अलग संघो की रचना करने लगे है ऐसा जानकर आचार्य अर्हद्ली ने उन्हें व्यवस्थित करने के लिये पंचवर्षीय यति संमेलन में मूलसंघ का विभाजन विधिवत घोषित किया ।

सवाग्पूर्व देशैक देश वित्पूर्वे देस मध्यगते ।
श्री पुण्ड् वर्दन पुरे मुनि रजनि ततो डर्हबल्यारव्य ॥८५॥
सचतत्प्रसारणा धरणा विशुद्धाति सक्रियो युक्तः ।
अष्टांग निमितज्ञ संधानुग्रह निग्रह समर्थः ॥८६॥

इन्द्रनन्दि श्रुतावतार से

अर्हत्बली ने पंच वर्षीय प्रतिक्रमण के समय मुनि सम्मेलन बुलाया । देखिये -

आस्त संवत्सर पंचकारसाने युग प्रतिक्रमणम्
कुर्वन्योजन रात मात्र वर्ति मुनिजने समाजस्य ॥८७॥
अथ सोड़भदा युगान्ते कुर्वत् भगवान्युग प्रतिक्रमणम्
मुनिजन वृन्द मपच्छक्ति सर्वे त्यागता यतः ॥८८॥ इन्द्रनन्दि श्रुतावतार से

जैसा कि चार्ट में बताया गया है कि मुख्य संघ ७ संघों में विभाजन हुआ जिसमें धरसेन, गुणधर और माघनन्दि के मुख्य समय थे । इस प्रकार अर्हदबली के शिष्य माघनन्दिने वीर संवत् ५५० में नन्दिसंघ की स्थापना की जिसकी विधिवत् घोषणा ५६५ में मुनि सम्मेलन में की गई ।

जैसे कि हम बता चुके है कि वह काल वीर संवत ४९२ से वीर संवत ७९७ तक का समय जैन इतिहास और हूमड़ इतिहास में अत्यन्त महत्व का है । इसकी मुख्य घटनाएँ निम्न प्रकार हैं :

(१) मूलसंघ विभाजन

(२) इस समय तक यानी वीर संवत् ४१२ तक गुरु परम्परा का ज्ञान मौखिक रुपसे शिष्य / शिष्यों को देते थे और आगमज्ञान जो भगवान महावीर द्वारा दिया गया था सुरक्षित रहा, परन्तु इस समय महसूस किया गया कि इसे लिपिवद्ध किया जाना जरुरी है । अतएव इस उपरोक्त काल के प्रथम चरण में आचार्य गुणधरने कषायपाहुड की रचना की ।

उस समय आचार्य धरसेन ने अर्हद्‌बली के दो शिष्यो पुष्पदंत और भूतबली को ज्ञान दिया और उसे लिपिबद्ध करने के लिये आदेश दिया जो धवला जयधवला के नाम से प्रसिद्ध है ।

(३) मूलसंघ के विभाजन में अनेक संघों का जन्म हुआ और इसी समय के अन्तिम चरण में अनेक गम और गच्छों का जन्म हुआ ।

(४) इन्हीं विभाजित संघो के आचार्यो ने अनेक जातियों / उपजातियों / संगठनों की स्थापना की जिनकी चर्चा हम अलग से करेंगे ।

अनेक संघो का जन्म मूलसंघ के आचार्य भद्रबाहु द्वितीय (पट्टावली समय ४१२-५१५ वीर वि. संवत्) के समय हुआ । उनके तीन मुख्य शिष्य (१) लोहाचार्य (द्वितीय) (२) गुणधर (३) धरसेन । ये सभी आगम् के ज्ञाता थे । इनके विद्वान शिष्यो ने अपना अलग अलग संघ स्थापित कर लिया । आचार्य गुणधर ने वीर संवत ५५० में अपने संघ स्थापित कर चुके थे । इस घटना क्रम के फलस्वरुप आचार्य अर्हतबली ने यह मानकर कि जैन धर्म के व्यापक हित में विभाजन आवश्यक है, वीर संवत ५६५ में विधिवत ७ संघो की घोषणा की ।

(१) नन्दिसंघ जिसके प्रथम आचार्य माघनन्दि (२) धरसेन की परम्परा पुष्पदंत भूतबलि

(३) वृषभ संघ जो प्रारम्भ में पंच स्तूप संघ आगे जाकर सेनसंघ और कुमार सेन के वि. संवत् ७५३ से काष्ठ संघ की स्थापना

(४) देवसंघ, वीरसंघ, अपराजितसंघ (५) सिंहसंघ चन्द्रसंघ

(६) पुन्नटसंघ भन्दार्य मित्रवीर (७) गुणधरसंघ आर्य म्क्षु नागहस्ति यतिवृषभ

(इसकी विस्तृत जानकारी के लिए देखिये चार्ट मूल संघ विभाजन ।)

3. Recolts agaist Jaina Religious Authorities

Thirdly, it may be maintained that sects and sub-sects arise as a direct result of the revolts against the actions and policy of ruling priests or religious authorities including the heads of the Church. Thouse who are at the helm of religious affairs are likely to be too strict in maintaining and preserving the religious practices in a manner they think it proper, without taking into account the needs of the changing conditions. In both the cases natural indignation is bound to occur on the part of the thinking population and there should not be any surprise if this accumulated indignation and discontent take a turn in formulating and organising a separate sect. for example, Martin Luther revolted against the high handed policy of Popes and Priests in Christian religion and founded the section of Protestants in that religion. Generally the same thing happened in Jaina religion also.

As a result of these factors the Jaina religion which was one and undivided upto the time of Tirthankara Mahavira and even upto the beginning of the Christian Era got divided frist into the two major sects, viz. Digambara and shvetambara, and later on into many sub-sects in cach sect. This has given rise to a number rise to a number of sections and sub-sections in Jainism and the process, in one form or another is still going on.

हूमड़ों का लाट प्रदेश

लाट (लाड) क्षत्रियों का नवास स्थल भी लाड प्रदेश (लाट प्रदेश) कहलाता था उसके एतिहासिक प्रमाण :-

हमारे इतिहास में सबसे महत्त्व का प्रश्न हमारे पूर्वज, पूर्वजोका मूल स्थल वर्तमान हूमड़ समाज का उद्‌भव और उसका समय, स्थल एवं उस समय की धार्मिक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियाँ आदि प्रश्नों का विस्तार से वर्णन कर चुके है।

लाट (लाड) हमारे पूर्वज लाड क्षत्रिय थ। उनके नाम से उनका निवास स्थान भी लाट प्रदेश (लाड प्रदेश) था । अतएव हम लाट प्रदेश के ऐतिहासिक प्रमाणों का वर्णन भी करेगे।

अब हम उद्‌भव के समय से प्रारम्भ की ७ से ८ सदी के बाद सामूहिक स्थांतर तक के समय का हमारे पूर्वजो के इतिहास का अवलोकन करने के पूर्व पहली इसवी पूर्व :-

लाट प्रदेश

लाट (लाड) क्षत्रियो के निवास स्थल भी लाड प्रदेश (लाट प्रदेश) कहलाना था उसके एतिहासिक प्रमाण :-

लाट :- बन्धु वर्मा के मन्दसौर के अभिलेख में लाटका वर्णन है। लाट मही नदी एवं निचली ताप्ती के मध्य खानदेश सहित दक्षिण गुजरात था।

महापुराण ३०/९७

हरिवंश पुराण ५९/११०

कुछ प्रमाणों में इसे मही और कीम नदीयों के मध्य मानते है इसमें सूरत भडौच, खेडा जिले एवं बडौदा के कुछ भाग सम्मिलित थे।

लोहा नदी पृ ४७९

(१) गुजरात के प्राचीन तीन विभाग थे :-

(अ) आनर्त (ब) सौराष्ट्र (क) लाट

आनर्त आनर्ती की राजधानी आनंदपुर बडनगर (वर्तमान)

(ब) सौराष्ट्र - सप्रालन क्षत्रय के सन् १५० के अनुसार सौराष्ट्र अलग प्रदेश

(क) यूनानी लेखक डेरीप्लस मिश्र के भूगोलवेत्ता (सन् १५०) शेलिनी आदि ने लाट प्रांत को मही नदी से ताप्ती तक बनाया है।

गुजरात राज्य का प्राचीन इतिहास

सन् २४० में चीनी प्रर्दन सांग ने उपरोक्त विदेशियों ने लाड़ -(लाट) प्रांत को मही नदी से ताप्ती नदी तक बनाकर लाड वणीक बतलाये है और नग्न यतियों (मुनियों) के विहार का उल्लेख किया है।

टोलीमीने इसे लादिकी कहा है । तीसरी शताब्दि वानस्थापन रचित काम सूत्र में ज्योतीषी बाह्यमिहिर इसे लाट कर नाम देकर यह लाट वणीको तीसरीसवे का उल्लेख किया है ।

तीसरी शताब्दि में वात्स्थापन रचित काम सूत्र में जोतिषी बाह्य मंदिर मे लाड का नाम लाटकर उल्लेख किया है पाल (रायदेश) प्राचीन नगर वर्तमान में वहाँ कोई वस्ती नही है विशाल नेमीनाथ भगवान की मूर्ति है । वहाँ गुजरात सरकार द्वारा किया खोद काम में यक्ष यक्षिणी के साथ जैन प्रतिमा प्राप्त हुई जो इसवी सन् ५०० के पूर्व की गई खुदाई है ।

गुजरात का संस्कृति इतिहास भा.र.

ईसवी के दूसरी शताब्दी में भडोंच के बन्दरगाह पर जैन वणीक आयात निर्वात का व्यापार करते थे। "पेरीप्लस ओफ हरीथियन सो " के लेखक पेरीप्लस की पुस्तक से गुजरात के लोथन के उत्खनन से विदित होता है के प्रारम्भ में घोघो,खंभात भरोंच के बन्दरगाहों से विदिशियो के साथ व्यापार होता था।

५. विदेशिया के लेखो के आधार पर.

६. सन् ५० में स्टेशनो

७.सन् ७० में नेयरो लिकी मिक्ष भूगोल वेला

८. सन् १५० मे भूतानी लेखक पेरीप्लस ने

९. सन् २४० में चीनी प्रर्टन सांग ने

उपरोक्त विदेशियो ने लाड लाट प्रांत मही नदी से तापी नदी तक बताकर लाड वणीक बतलाये हैं। और नग्न यतियो (मुनियों) के विहार का उल्लेख है।

१०. टोलीमीने इसे लाड को लादिकी कहा है।

११. तीसरी सदी के वात स्थापन रचित काम सूत्र में ज्योतिषी बालमिहि ने लाटकर नाम देकर यह लाट वणीको का उल्लेख किया है।

१. क्षत्रिय शासन जयदामन के पौत्र के जूनागढ के शिलालेख से विदित होता है कि काढियावाड में जैन धर्म का अस्तित्व कम से कम इस्वी सन् की प्राथमिक शताब्दियो से रहा है। डॉ. शान्तरायलाल चन्द्र जैन (जैन कला एवं स्थापत्य) अेप्रोच प्रकिया इन्डिया J.K.plat 30, 16-1921,22,239

२. वर्तमान राजकोट जिला अन्तर्गत गोडंल से प्राप्त तीर्थकर प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। जिसका समय सन् ३०० के लगभग निर्धारित करते हैं । प्रोफेसर सांकलिया J.K.plat 30, सांकलिया पूर्वाध पृ २३३.

३. इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि इस्वी सन् के आरंभ होने तक तथा उसकी प्रारंभिक शताब्दियों में जैन धर्म का कार्यक्षेत्र पश्चिम भारत की और स्थानांतरित J.K.30, हो गया था। गुजरात राज्यनो प्राचीन इतिहास भाग.३ पत्र नं.१७५

४. पेरीप्लस का उल्लेख हूमड़ इतिहास प्रथम भाग page 7 में और गुफालेख ४१,४२,४५,४६ में दिया गया है। कार्योत्सर्ग मुद्रामें पार्श्वनाथ की ऐक अत्यन्त प्राचीन कांस्य प्रतिमा प्रिंस ओफवेल्स संग्राहलय बम्बई EREF शाह (यू.पी.)अर्ला बोन्ज ओफ पार्श्वनाथ "बुलेटिन" ओफ म्युजियम बम्बई । यह पश्चिम भारत के गुजरात से बम्बई संग्रहालय के लिये प्राप्त की गई है। यह प्रतिमा ३ या ४वी सदी की है । J.K. PAGE 91 सदी की है।

आर्नत यह बडनगर के समीप राजधानी कुश स्थली थी । राजशेखर के काव्य मीमांसा में आर्नत की राजधानी आनन्दपुर या आनाईडर बतलाई गई है । जो वर्तमान बडनगर के नाम से प्रसिद्ध है।

५. लाट आनर्त की राजधानी आनंदपुर या वडनगर या आनर्तपुर (जिसे वल्लभी राजाओने सन् ५०० से ७०० तक) आन्दपुर या आनर्तपुर थी ।

सन् ६००-६४० में चीनी यात्री हुयेनसांग ने अपने वृतांत में लाड़-लाट प्रांतको मही नदी में ताप्ती नदी तक बताया है व लाड़ वणीक एवं नग्न यतियों का उल्लेख किया है । सन् १५० में यूनानी लेखक पेरीप्लस ने बडाली ५२ जिनालय का वर्णन किया जहाँ वर्तमान में बडे दो माले पर मूर्तियों प्राप्त हुई वर्तमान वडनगर के उलखनन में यक्ष यक्षिणों के साथ प्राचीन प्रतिमा प्राप्त हुई उसमें पद्मावती की पार्श्वनाथ सहित मूर्ति भी है ।

६. इसवी की छटवी सदी में इडर के राजा मांडलीक भील का अधिकार था । उसे वल्लभीपूर के सूर्यवंशी सराजा राजकुमार गुहाप्रिया ने हराकर अपना राज्य स्थापित कर लिया । उन्होने १००-१५० वर्षो तक ईडर (खेड़ब्रह्मा, रायदेश) पर राज्य किया । पर अन्तिम प्रतिहार शासक निकम्मे थे अतः उनके समय के भील सरदारों ने ईडर की प्रजा को लूटना प्रारम्भ कर दिया । सभी हूमड़ एक समूह में राजस्थान के सागवाड़ा में जा बसे । यह घटना क्रम आठवी सदी के आसपास का है ।

७. मुसलमानो का आगमन ई. ७०५.७१५ में बगदाय के खलीफा वकीद की सेनाओने सिंध सेगंगा के मेदानों तक हमले किये ई.सन् ७१८.७२१ खलीफा उमर द्वितीय के सेनापति मोहम्मद ने चित्तौड पर हूमला कर मौर्य राज्य को नष्ट कर दिया ।

इसन् ७६१ भरूच में गंधार बन्दर पर पहेली मस्जिद का निर्माण किया गया।

इसन् ७२५ दीव में पारसीयों का आगमन् हुआ ।

८. ७वी सदी हेनरांगा की यात्रा विवरण में, गुजरात की समृद्धि, राष्ट्रकूट, प्रतिहार युग का वर्णन, गुजरात की कृषी एवं वाणिज्य की समृद्धि के उपरान्त निग्रन्थ साधुओं के विवरण का उल्लेख है। ७वीं सदी गुर्जर नरेश भद्र प्रथम और जयभद्र द्वितीय ने लाडवणिकों को मन्दिर बनाने के लिये भूमिदान किया ।

गुजरातनो सांस्कृतिक इतिहास भाग २

शिलालेखो में हूमड समाज के प्राचीनत्तम उल्लेख इस प्रकार हैं।

९. वि.सं. ८४० में प्रयास पाटन में बाहुबली की प्रतिमा हूबड जाति के किसी श्रेष्ठी ने प्रतिष्ठित करवाई थी । इस समय वह मूर्ति अत्याधिक खण्डित अवस्था में जूनागढ़ म्यूजियम है।

१० सौराष्ट्र में विलेश्वर के पास मुनिसुव्रतनाथ भगवान की प्रतिमा प्राप्त हुई जो वि.सं. ९७३ की है इस लेख में हूमड़ जाति का नाम हुंबुड पाया जाता है। हर्ष की मत्यु के बाद (६४७.४८ ई) में पाल पतिहार राष्ट्रकूट ये तीनो शक्तियों के आपस के संधर्ष से राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन के अस्थिरता इसे विदेशी शक्तियों ने लाभ उठाया । इस संक्रातिकाल में चीनी दोनों असफल आक्रमण किये इसके परिणाम स्वरूप गुजरात में राजनैतिक और सामाजिक अस्थिरता हुई और वणिकों के व्यापार में बहुत नुकसान हुआ ।

गुजरात का सांस्कृतिक इतिहास भा.३

गुप्तकाल के पतनकाल (७६६.६७ ई) तक सौराष्ट्र पर मैत्रिक नृपतियों की राजधानी गिरिनगर और पीछे वल्लभी हुई ।

३. ई.सन् ८१३ से ८३३ खलिफा अल सामून ने राजस्थान चितौड़ को रोंद डाला।

४. ई सन् ९५७ महमूद गजनी के पितामह अलपतजीत् ने मेवाड की राजधानी अतदिव्य पूर पर आक्रमण कर नष्ट कर डाला। यह आक्रमण खेडब्रह्मा होकर किया गया था। इस समय अनेक मन्दिरो को खंडहर बना दिया गया।

५. ई सन ९४७ में अमीर महमूद ने राजस्थान के अनेक मन्दिरो को नष्ट किया ।महमूद के सिंध प्रवेशके आक्रमण में यहाँ राजा परमार दामाजी युध्ध में मारा गया । इस के छोटे भाई हरबाम्हने लागकर लीलो की सहायता से इडर का राजा हो गया । और उसने खेडब्रह्मा के श्रेष्ठीयों और पुरोहितो पर आक्रमण किया फल स्वरूप जो बचे हुए हुमड़ के उन्होनें खेडबह्मा छोड देना पडा दूसरी तरफ आठवी सदी के प्रारम्भ में गंधार बंदर पर भी विदेशीयों का आक्रमण हुआ और ई. सन्. १७६१ मे गंधार बंदर पर मुसलमानों ने पहली का निर्माण किया ।इसवी सन ७२५ में दीव में पारसीयो का आगमन हुआ। इसवी सन् ८१३ से ८३३ तक खलिफा उक्त राजस्थान चितौड को खेडब्रह्मा के मार्ग से रोद डाला। इस समय खेडब्रह्मा पास आदि सारे रायदेश के अनेक मन्दिरो को खण्डहर बना दिया गया। इन परिस्थितियों को लाल भील सरदारो ने उठाया और खेडब्रह्मा आदि के साहूकारों और वणिक प्रजा की खूब लूंटफाट करके आतंक मचाया, व्यापार और खेती आदि नष्ट होने ऐसी जैसी परिस्थितियों से स्थानांतर अनिवार्य हो गया। जैसे समय में सामूहिक रूप से हूमड़ प्रजा ने राजस्थान के बागड़ प्रांत की तरफ प्रस्थान किया ।

६. मध्यकालीन गुजरात में सन् (७३३.९७५) के और विशेंषकर चौलुक्यों (सन् ९४०.१२९९) के शासन कालो में जैन धर्म का प्रभूण उत्कर्ष प्राप्त हुआ । राष्ट्रकूट कालीन कुछ ताम्रपत्रो में जैन संघ के कई समुदायों के अस्तित्व का उल्लेख है, उदाहरणार्थ कर्क राज सुर्वणवर्य के सन् ८२१ एक ताम्रपत्र लेख में सेनसंघ और नन्दिसंघ का विद्यमान का तथा नागसारिया (वर्तमान नवसारी) में स्थित अेक जैन मन्दिर एवं जैन विहार का उल्लेख है। कि संवत ११४० शिलालेख में वेरावल के पास मिला है इससे हूबड जाति का उल्लेख है । खंभात में चिन्तामणी पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर स्तंभो पर १२वीं सदी का लेख है । जिसमें हूबड़ जाति का उल्लेख है । भट्टारक यशकीर्ति के शिष्य भ. सहस्त्रकिर्ती नो इस जिर्णोद्धार किया इन्हीं के शिष्य हूमड़ जाति के केशरी पुत्र "वीसल" ने गोहुल में " सानावर्ण ग्रन्थ" की प्रतिलिपी कराई थी ।

७. पाटण के खतखसही के ज्ञानभण्डार में ज्ञानार्णव की संवत् १२८४ कू लिखी एक प्राचीन प्रांत प्राप्त हुई हे । इसकी प्रशस्ति में बतलाया गया है कि. सं. १२८४ में भट्टारक सहस्त्रकिर्ति के लिये गोंडल में हूमड़ जाति के श्रावक वीसलेन लिखावाई एवं भोंट की शिलालेखों से यह पता चलता है कि १४ वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक हूमड़ जाति अत्यन्त वैभवशाली एवं धार्मिक वृत्ति की रही । इसकाल में हजारों मूर्तियाँ प्रतिष्ठीत की गई मन्दिर बने, शास्त्रभण्डार बनाये गये । यह समय तुगलकों खिलजियों मुगलों का था जो कि धर्मांध शासक थे । इन्होंने अनेको मन्दिर एवं मृतिया नष्ट की । लेकिन हमारे पूज्य भट्टारकों की प्रेरणा से उतने ही और से नवनिर्माण कार्य हुआ । १७ वी शताब्दी में औरंगजेब तथा मराठों के आक्रमणों से हूमड़ समाज की भारी क्षति हुई । साथ ही साथ अकाल, महामारी ने इन जातियों को अपने मूल निवास स्थान से मेवाड़, मालवा एवं महाराष्ट्र में बसने के लिये विवश कर दिया । जिसमें उनकी उन्नति में रुकावट आने लगी ।

निम्न चार्ट से समय एवं स्थल (गिरनार - अंकलेश्वर - सजोत) से भी हमारे उद्‌भव का समय प्रमाणित होता है :-

हमारा उद्‌भव समय	*नन्दिसंघ स्थापना*	*मूलसंघ विभाजन*	*धरसेन आचार्य*	*पुष्पदंत*	*भूतबली*
विक्रम १०१	८०	९५	८०-१६३	१२३-१६३	१२३-२१३
वीरसंवत ५७१	५५०	५६५	५५०-६३३	५९३-६३३	५९३-६८३
इ. सन. ४५	२३	३८	६६-१८६	६६-१०६	६६-१५६

गुजरात के एतिहासिक नगर घोघा

मार्ग और अवस्थिति

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र घोघा भावनगर (गुजारात) से सड़क मार्ग द्वारा सम्बन्ध है तथा लगभग २३ कि.मी. है । भावनगर से घोघा जानेके लिए बसोंकी सुविधा है । वर्तमान घोघा साधारण नगर है और यह खम्भातकी खाडीके तटपर अवस्तित है । नगरमें बिखरे हुए खण्डहरों में इसके समृद्धिशाली अतीत के दर्शन होते है । अक्सर है, यह अतीतमें पत्तन था और व्यापारीक केन्द्र था । यहाँ से सुदूर अरब देशोंको व्यापारिक मालका निर्यात और आयात होता था

अतिशय-क्षेत्र

यह एक अतिशय क्षेत्र माना जाता है । यहाँ श्वेत पाषाणकी एक पद्मासन प्रतिमा है । इसके पादपीठपर लछ्न और लेख नहीं है । किन्तु भक्त जनताने अपनी कल्पना द्वारा इन दोनों बातोंकी पूरक्ति कर ली है। भक्त लोग इसे चतुर्थ कालकी मानते है तथा लांछन न होते हुए भी इसे भगवान् शान्तिनाथकी प्रतिमा मानते है । यहाँके अतिशयोंकी इस प्रदेशमें विशेष चर्चा सुनी जाती है । कहते है, कभी-कभी मन्दिरमें रात्रिकी रात्रिकी नीरवतामें घण्टोंकी आवाज सुनाई देती है । भक्त लोग यहाँ मानता के लिये आते है ।

पुरातत्व

प्राचीन कालमें यह नगर विशाल और समृद्धशाली रहा होगा, नगर में बिखरे हुए भग्नावशेषोंसे ऐसा प्रतीत होता है । समृद्ध मार्गसे यहाँ सुदूर देशों तक व्यापार होता था । भावनगरसे चले हुए पोत यहाँके पत्तनपर आकर रुकते है और यहाँसे मालका लदान करते थे । इसी प्रकार अरब सागर से आनेवाले पोत इस पत्तनपर माल उतारते थे । विविध प्रकारके आयात-निर्यातके कारण यहाँकी समृद्धि निरन्तर बढ़ती गयी । जब तक चालुक्य वंशके सोलंकी और वाघेला नरेशों का यहाँपर शासन रहा, यहाँका व्यापार फलता-फूलता रहा । किन्तु जब राज्यसत्ता मुसलमानों के हाथमें आयी, उनके निरन्तर आक्रमणों और अत्याचारोंने यहाँ के व्यापार और समृद्धिको गहरा आघात पहुँचाया । धीरे धीरे यहाँ का पत्तन समाप्त हो गया , व्यापार समाप्त हो गया और नगरका वैभव समाप्त हो गया । यहाँ दिगम्बर समाज के दो खण्डेलवाल के दो जिनालय है, दोनों ही आदिनाथ जिनालय हैं ।

नगरके माध्यमें आदिनाथ मन्दिर अवस्तित है । इसमें प्रवेश करते ही सामने पीत्तलके सहस्त्रकूट जिनालय के दर्शन होते है । इसकी उँचाई ३ फुट ६ इंच और चौडाई १ फुट ११ इंच है । इसकी प्रतिष्ठा काल संवत् १६११ है ।

दायी और एक चबुतरानुभा वेदीमें भगवान् आदिनाथ की २ फुट उँची संवत् १६७९ में प्रतिष्ठित श्याम पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। बायी और २ फुट ३ इंच उँची एक पद्मासन प्रतिमा कृष्णवर्णकी है। पीठीसनपर प्रतिष्ठा काल संवत् अंकित नहीं है। इसी प्रकार दायी ओर साढ़े नौ इंच उँचे एक फलकमें श्वेत वर्णकी पद्मासन मूर्ति है। उसके दोनों और खड्गासन मूर्तियाँ है। यहाँ एक शिलापटमें चौबीसी बनी हुई है। आदिनाथ भगवान् की उक्त मूर्ति अत्यन्त अतिशय सम्पन्न है।

इस वेदी पर श्वेतवर्णकी २ फुट ७ इंच उँची एक पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसके पीठासन पर चिन्ह और लेख नहीं है। इसे कुछ लोग चतुर्थ कालकी मानते है। इसकी रचनाशैलीको देखते हुए इसे ११-१२वीं शताब्दीकी माना जा सकता है।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त समवसरणमें २ श्वेत, ३ रक्त और १ कृष्णवर्णकी पाषाण मूर्तियाँ तता ३ धातु मूर्तियाँ है।

बायी ओर एक दीवास्तकमें १ फुट ६ इंच आकारवाले पाषाणमें चौबीसी विराजमान है।

इस मन्दिरके उपरि खण्डमें एक वेदीमें चन्द्रप्रभु भगवानकी २ फुट ६ इंच अवगाहनवाली श्वेत पाषाणकी पद्मासन मूर्ति है। इसके समवसरणमें ४ पाषाणकी तथा ३८ धातुकी मूर्तियाँ है।

पाषाण मूर्तियोंके उपर रमुद्रकी क्षारयुक्त वायुका दृष्प्रभाव पड़ा है। मूर्तियोंपर धब्बे पड़ गये है। तंथा पाषाण या पालिशकी चमक धूँधली पड़ गयी है।

इस मन्दिरके कम्पाउम्डमें एक और दिगम्बर जैन मन्दिर है। हूमड़ इसमें मूलनायक प्रतिमा भगवान् आदिनाथ की है। यह श्वेत पाषाणकी है और पद्मासन मूर्ति है। इसके समवसरणमें धातुकी ३९ और स्फटिककी १ मूर्ति है।

अंकलेश्वर

मार्ग

अंकलेश्वर पश्चिमी रेलवेके सूरत तथा बडौदाके मध्य स्टेशन है। स्टेशनसे अंकलेश्वर ग्राम १ कि. मी. है। यह गुजरातके भड़ोंच जिलेमें स्थित है।

अतिशय क्षेत्र

यह एक अतिशय क्षेत्र है। ग्राममें चार दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। यहाँ भोंयरेमें पार्श्वनाथ स्वामी की एक प्राचीन अतिशयसम्पन्न मूर्ति है। यह चिन्तामणि पार्श्वनाथ के नामसे विख्यात है। लोगोंकी धारणा है कि इस मूर्तिके दर्शन करनेसे समस्त चिन्ताएँ दूर हो जाती है और शुभ मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती है। जनतामें इस मूर्तिके प्रति फैले हुए इस विश्वासके कारण ही जैन और जैनेतर लोग मनौती मनानेके लिए भारी संख्यामें यहाँ आते रहते हैं। इसके कारण ही यह स्थान तीर्थक्षेत्रके रुपमें प्रसिद्ध हो गया है।

अंकलेश्वरका उल्लेख आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलिके प्रसंगमें धवला आदि ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है। षड्खण्डागम-धवला टीका भाग १, पृ. ६७-७१ में जिस कथानक अथवा इतिहासके प्रसंगमें अंकलेश्वरका वर्णन आया है। वह कथानक अथवा इतिहास इस प्रकार है -

हूमड इतिहास भाग २

सौराष्ट्र देशके गिरिनगर नामक नगरकी चन्द्रगुफामें रहनेवाले अष्टांग महानिमित्तिके पारगामी, प्रवचनवत्सल धरसेनाचार्यने आगे अंग श्रुतका विच्छेद हो जानेकी आशंकासे महिमा नगरीमें एकत्रित हुए दक्षिणापथवासी आचार्यों के पास एक लेख (पत्र) भेजा। लेखमें लिखे गये धरसेनाचार्यके वचनोंको अच्छी प्रकार समझकर उन आचार्योने शास्त्रके अर्थके ग्रहण और धारण करनेमें समर्थ,विनयसे विभूषित, उत्तम कुल और उत्तम जातिमें उत्पन्न और समस्त कलाओंमें पारंगत ऐसे दो साधुओंको आन्ध्रदेशमें बहनेवाली वेणा नदीके तटसे भेजा। उनके पहुँचनेपर धरसेनाचार्यने उनकी परीक्षा की और सन्तुष्ट होनेपर उन्होंने शुभ तिथि, शुभनक्षत्र और शुभ वारमें उन्हें पढाना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार धरसेन भट्टारकसे पढ़ते हुए उन्होंने अषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीके पूर्वाह्नकालमें ग्रन्थ समाप्त किया।

धरसेनाचार्यने ग्रन्थ समाप्त होते ही उनेहें उसी दिन वहाँ से विदा कर दिया। इसी सन्दर्भमें धवलाकारने लिखा है - "पुणो तद्दिवसे चेव पेसिदा संतो गुरुवयणमलंघणिज्जं इदि चिंतिऊणादेहि अंकुलेसरे वरिसा कालो कओ।" अर्थात् उसी दिन वहाँसे भेजे गये उन दोनोंने गुरुके वचन अलंघनीय होते हैं ऐसा विचारकर आते हुए अंकलेश्वरमें वर्षाकाल बिताया।

अंकलेश्वरमें वर्षावास करते हुए उन दोनों मुनियोंने श्रुतके प्रचारकी योजना बनायी होगी। उसी योजनाके अनुसार वर्षावास के पश्चात् पुष्पदन्त तो वनवास देशको चले गये और भूतबलि द्रमिल देश को। तदनन्तर पुष्पदन्तन जिनपालितको दीक्षा देकर सत्प्ररुपणा के बीस सूत्र (अधिकार) बनाये और उन्हें जिनपालितको पढ़ाया। पढ़कर उन्हें भूतबलिके पास भेजा। आचार्य भूतबलि ने द्रव्य प्रमाणानुगमसे लेकर शेष पाँच खण्डोंकी रचना की। फिर षट्खण्डागमकी रचनाको पुस्तकारुढ़ करके ज्येष्ठ शुक्ला ५ को चतुर्विधसंघके साथ श्रुत-पूजा की, जिससे श्रुत पंचमी पर्वका प्रचलन हो गया। फिर भूतबलिने उस षट्खण्डागमको जिनपालितके हाथ पुष्पदन्तके पास भेजा। पुष्पदन्त उसे देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए और उन्होंने भी चातुर्वर्ण संघ सहित सिद्धान्तकी पूजा की।

इस प्रकार अंकलेश्वर उन महिमान्वित पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्योकी चरणरजसे पवित्र हुआ था। उपाध्याय धर्मकीर्तिने संवत् १६५७ में चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिरमें यशोधर-चरितकी रचना की थी। यह स्थान काष्ठासंघ और मूलसंघके भट्टारकोंका प्रभाव क्षेत्र था। इनके भट्टारक समय समय पर आकर कुछ समयके लिए यहाँ ठहरा करते थे। यहाँके मन्दिरोंमें उनको गदियाँ बनी हुई हैं।

क्षेत्रदर्शन

अंकलेश्वर एक अच्छा नगर है। नगरमें ४ दिगम्बर जैन मन्दिर है - (१) चिन्तामणी पार्श्वनाथ मन्दिर (२) नेमिनाथ मन्दिर (३) आदिनाथ मन्दिर और (४) महावीर मन्दिर। इनमें पार्श्वनाथ मन्दिरके मूलनायक चिन्तामणि पार्श्वनाथकी प्रतिमा अतिशयसम्पन्न है।

(१) चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर :- मन्दिरके भोयरेमें चिन्तामणि पार्श्वनाथकी कत्थई वर्णकी ४ फुट १० इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। सिरके ऊपर सप्तफणावलि है। प्रतिमाकी मूलवर्ण हलका गुलाबी है। किन्तु प्रतिमाके ऊपर पालिश की हुई है।

इस मूर्तिका भी एक इतिहास है। अंकलेश्वर से लगभग एक मील दूर रासकुण्ड नामक एक कुण्ड है। इस कुण्डमें तीन मूर्तियाँ मिली थी - पार्श्वनाथकी , शीतलनाथकी और नन्दीकी। तीनों मूर्तियों को अलग अलग गाडियोंमें रखकर अंकलेश्वर नगर की और ले जाने लगे। जब पार्श्वनाथवाली गाड़ी अंकलेश्वर नगरके मध्य वर्तमान जैन मन्दिरके स्थानपर पहुँची तो गाड़ी यहाँ मूर्तियोंको अलग अलग गाड़ियों में रखकर अंकलेश्वर नगर की ओर ले जाने लगे। जब पार्श्वनाथवाली गाड़ी अंकलेस्वर नगर के मध्य वर्तमान जैन मन्दिर के स्थानपर पहुँची तो गाडी यहाँ आकर रुक गयी। बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी गाडी आगे नही बढ़ी, तब पार्श्वनाथ प्रतिमाको यहीं उतारकर किसी प्राचीन मन्दिरमें विराजमान कर दिया। इसी प्रकार शीतलनाथवाली गाड़ी अंकलेश्वर से ८ कि.मी. दूर सजोद जाकर अड़ गयी। तब वहींपर शीतलनाथका मन्दिर बनवाया गया। दोनों ही मूर्तियों भोंयरे में हैं। नन्दीवाली गाड़ी उसके वर्तमान स्थानपर रुकी थी। यह आश्चर्यकी बात है कि तीनों ही मूर्तियाँ चमत्कारी हैं। लोग अपनी कामनाएँ लेकर वहाँ जाते हैं। कामनाएँ पूर्ण होनेके कारण ही पार्श्वनाथ मूर्तिको चिन्तामणि पार्श्वनाथ कहा जाने लगा है और अब यह मूर्ति इसी नामसे विख्यात है। इस मूर्तिकी पीठिकाके ऊपर कोई लेख नहीं है। किन्तु रचना शैलीसे यह मूर्ति ७-८वीं शताब्दी अथवा इससे कुछ पूर्वकी प्रतीत होती है।

बायीं और १ फुट २ इंच ऊँची पार्श्वनाथकी श्वेतवर्णकी पद्मासन प्रतिमा है जो संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित हुई थी। इसके प्रतिष्ठाकारक जीवराज पीपडीवाल थे। इसके निकट धातुकी एक चौबीसी है।
दायीं ओर पद्मप्रभ भगवान् की २ फुट ७ एंच अन्नत श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। लेख न होने से प्रतिष्ठाकाल ज्ञात नहीं हो सका।

सामने कृष्ण पाषाणकी साढ़े छह इँच ऊंची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है जो सम्भवतः नेमिनाथ भगवान्की है। इसके अतिरिक्त धातुका एक चैत्य, पार्श्वनाथ और सिद्ध भगवानकी प्रतिमाएँ है।

सीढ़ीके पास एक वेदीमें मूलनायक पार्श्वनाथ की १ फुट २ इंच उँची नौ फलावलीयुक्त श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा है। प्रतिष्ठाकाल संवत् १५४८ है। बायीं और १ फुट ८ इंच उँची पद्मप्रभ भगवानकी श्वेत वर्णवाली पद्मासन प्रतिमा है। लेख नहीं है। इसके बगलमें १ फुट ऊँची पद्मप्रभ भगवानकी एक और प्रतिमा है। दायी और श्वेत पाषाणकी १ फुट ७ इंच उँची पद्मासन प्रतिमा है। किन्तु इसके पादपीठपर लेख और लांछन नही हैं। इसके पार्श्वमें आदिनाथ भगवानकी १० इच अवगाहनावाली श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है।

आगेकी पंक्तिमें १ फुट ८ इंच ऊँचे शिलाफलकमें कायोत्सर्गासनमें मुनि-प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसके दायें हाथमें पीछी है और बायें हाथमें कमण्डुल है। इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा संवत् १४६४ में हुई थी। विश्वास किया जाता है कि यह प्रतिमा महामहिमान्वित धरसेनाचार्यकी है।

दायीं और चलनेपर नेमिनाथ आदिकी ५ तीर्थकर मूर्तियाँ हैं जिनमें २ खड्गासन और ३ पद्मासन हैं। इनसे आगे १ फुट ४ इंच ऊँची श्वेतवर्णकी पद्मासन मुद्रामें आदिनाथ भगवानकी मूर्ति है। तथा इससे आगे तक शिलाफलक में दो स्तम्भोंके मध्य श्वेतवर्णकी एक खड्गासन प्रतिमा है। इसके ऊपर चिन्ह और लेख नही है।

ऊपरकी मंजिलमें एक वेदीमें ४८ धातु प्रतिमाएँ विराजमान हैं । जिनमें चौबीसी, चैतिय, पंचबालयति, पंचमेरु आदि है । वेदीके ऊपर २ पाषाण प्रतिमाएँ भी विराजमान है ।

वेदीके पीछे परिक्रमाकी दीवारमें १ फुट ११ इंच उतुंग श्यामवर्ण खड्गासन प्रतिमा है । इसके ऊपर कोई लेख और लांछन नहीं है । चरणोंके दोनों और गोमेद यक्ष और अम्बिका यक्षीका अंकन है । अतः यह प्रतिमा नेमिनाथ भगवानकी होनी चाहिए । भूकम्पके समय यह प्रतिमा दीवार-ताकमेंसे गिर पडी थी, किन्तु प्रतिमाको कोई हानि नहीं पहुँची ।

२. ***नेमिनाथ मन्दिर*** :- वेदीपर मध्यमें एक गन्धकुटीमें चारों दिशाओंमें पार्श्वनाथकी १ फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमाएँ हैं, जो संवत् १५४८ में प्रतिष्ठित हुई थी । इनमें पूर्वकी ओर संवत् १८६२ में प्रतिष्ठित और २ फुट ३ इंच ऊँची नेमिनाथकी कृष्णवर्णकी पद्मासन प्रतिमा है ।

वेदीकी कटनियोंपर चारों ओर धातु और पाषाणकी प्रतिमाएँ रखी है । एक आलेमें धातुकी १० देवी मूर्तियाँ विराजमान हैं ।

३. ***आदिनाथ मन्दिर*** :- भोंयरेमें एक वेदीपर २ फुट ८ इंच अन्नत श्यामवर्ण आदिनाथकी पद्मासन प्रतिमा है । पादपीठकर कोई लेख अंकित नहीं है किन्तु वृषभ लांछन है ।

बायी ओर पद्मप्रभ भगवानकी २ फुट ४ इंच ऊँची श्याम वर्ण प्रतिमा है तथा दायीं और २ फुट ४ इंच ऊँची सुपार्श्वनाथकी प्रतिमा है । लेख नहीं है । इनके अतिरिक्त धातुकी चौबीसी और पार्श्वनाथकी ३ प्रतिमाएँ और है ।

ऊपर के खण्डमें तीन कटनीवाली वेदीमें मूलनायक चन्द्रप्रभ भगवानकी १ फुट ६ इंच ऊँची श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है । लेख नहीं है । इसके अतिरिक्त वेदीके ऊपर संवत् १५४८ की श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमाएँ, नेमिनाथ की १ पाषाण प्रतिमा तथा धातुकी ३२ प्रतिमाएँ भी है । पाषाण फलकपर एक यन्त्र भी उत्कीर्ण है ।

४. ***महावीर म्मन्दिर*** :- यह यहाँका बड़ा मन्दिर कहलाता है । वेदीके बाहर बायी ओर पाषाणका पंचमेरु बना हुआ है । २० प्रतिमाएँ बनी हुई हैं । दायी ओर शीशेके क्रममें धातुका पावापुरी जल-मन्दिर बना हुआ है । रचना सुन्दर है । इसमें महावीर स्वामी की १ फुट १ इंच ऊँची धातु-प्रतिमा भी विराजमान है ।

मध्यमें गन्धकुटीमें एक चैत्यालय है जिसके चारों कोनोंके स्तम्भों पर २४ तीर्थकर प्रतिमाएँ है तथा चारों दिशाओंमें चार तीर्थकर प्रतिमाएँ है । कटनीपर चारों और धातु और पाषाणकी प्रतिमाएँ विराजमान है ।

बायी ओर की दीवारमें एक वेदी बनी हुई है । इसमें ऊपरके भागमें ६ धातुकी तथा नीचेके भागमें ४ पाषाणकी और २ धातुकी प्रतिमाएँ हैं ।

इस मन्दिरके बाहर बायीं और एक देवरी बनी हुई है । उसमें धातुका एक स्तम्भ बना हुआ है । उसके आगे अम्बिका देवीकी एक पाषाण प्रतिमा विराजमान है ।

घोघा : तीर्थकर शान्तिनाथ की मूर्ति ।

घोघा : पीतलका सहस्त्रकूट जिनालय ।

अंकलेश्वर : श्री १००८ श्री चिन्तामणी पार्श्वनाथ

अंकलेश्वर : चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिरमें बिराजमान
श्री आचार्य धरसेन की मूर्ति

गिरनार में गुरु घरसेनाचार्य से पुष्पन्त, भूतवली, आचार्य विद्याभ्यास कर रहे है ।

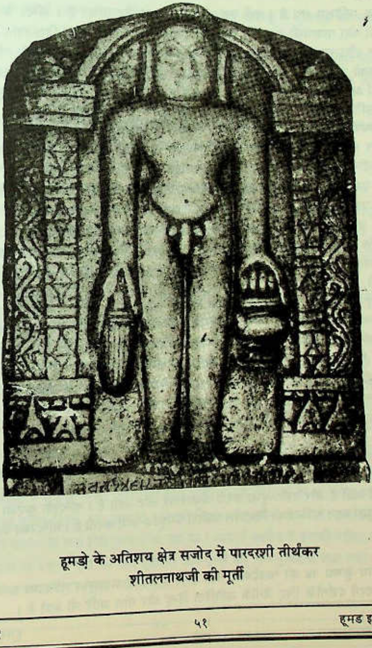

हूमड़े के अतिशय क्षेत्र सजोद में पारदरशी तीर्थंकर
शीतलनाथजी की मूर्ती

हूमड इतिहास भाग २

सजोद

मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सजोद गुजरात प्रान्तके भड़ोच जिलेमें अंकलेश्वरसे पश्चिमकी और ८ कि.मी. दूर स्थित है। अंकलेश्वर स्टेशन पश्चिमी रेलवेके सूरत और बडौदा स्टेशनोंके मध्यमें हैं। अंकलेश्वरसे मोटर द्वारा सजोद जा सकते है।

अतिशय क्षेत्र

यह एक अतिशय क्षेत्र है। यहाँ एक प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। मन्दिर के भोंयरेमें भगवान् शीतलनाथकी श्वेत पाषाणकी ३ फुट २ इंच अवगाहनावाली सातिशय प्रतिमा विराजमान है।

भगवान शीतलनाथकी मूर्तिके अतिशयके सम्बन्धमें एक किवदन्ती प्रचलित है - वि. सं. १७४७ में किसी श्रावकको स्वप्न हुआ, अंकलेश्वरके रामकुण्डमें जैन मूर्तियाँ हैं, उन्हें तुम निकालो। उसने अपने स्वप्नकी चर्चा अन्य श्रावकोंसे की। फलतः सब भाई मिलकर रामकुण्ड पहुँचे। उन्होंने कुण्डमें तलाश की तो तीर्थकर प्रतिमाएँ निकलीं - एक पार्श्वनाथकी और दूसरी शीतलनाथकी।

पार्श्वनाथकी प्रतिमाको गाडी रामकुण्डसे चलकर अंकलेश्वर नगरमें पहुँची और वहीं रुक गयी। जब प्रयल करनेपर भी वह चली तो प्रतिमाको वहीं विराजमान कर दिया। इसी प्रकार शीतलनाथकी मूर्तिको दूसरी बैलगाडीमें रखकर चले। बैलगाड़ी अंकलेश्वरसे ८ कि.मी. सजोद ग्राममें जाकर रुक गयी। वह वहाँसे किसी प्रकार आगे नही बढ़ी। तब शीतलनाथ भगवानकी मूर्तिको वहीं भोंयरेमें विराजमान कर दिया। यह प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें है। पाषाण छीटेदार हैं। प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ है। छीटोंने इसकी शोभाको बिगाडा नहीं, बल्कि सँवारा ही है। भारतकी सुन्दर जैन प्रतिमाओंमें इसकी गणना की जा सकती है। अश्रद्धालुं व्यक्ति भी इसके समक्ष आकर श्रद्धासे नतमस्तक हुए बिना नहीं रह सकता। इसके कर्ण स्कन्ध-चुम्बी हैं। ग्रीवापर तीन वलय पड़े हुये है। छातीपर श्रीवत्स उभरा हुआ नही है, मात्र चिन्ह अंकित है। नासिका लम्बी, होठ पतले और चक्षु अर्धन्मीलित हैं भौहें धनुषाकार हैं तथा सिरके कुन्तल वलायाकार अति सुन्दर बने हुए है। मूर्तिके पीठासन पर वृक्षका अस्पष्ट लांछन बना हुआ है। लेख नहीं है। कुछ विद्वान् इसको २००० वर्ष प्रचीन मानते है किन्तु हमारी विनम्र मान्यता के अनुसार इसकी रचना शैली और इसके शिल्प सौष्ठवको देखते हुए यह प्रतिमा ७-८वीं शताब्दी अथवा उससे कुछ पूर्व गुप्तकालकी होनी चाहिए। अंकलेश्वरकी चिन्तामणी पार्श्वनाथ प्रतिमा भी इसके समकालीन ही लगती है। मूलतः वह प्रतिमा पालिशदार नहीं रही होगी, पालिश बादमें की गयी होगी। उसकी पालिशके कारण उसका रचना-काल निर्धारित करनेमें कठिनाई प्रतीत होती है, किन्तु शीतलनाथ स्वामीकी प्रतिमाका काल निश्चित होनेपर उसके कालका भी सही निर्धारण किया जा सकता है।

धर्मशाला

नगरमें वर्तमानमें किसी जैन बन्धुका निवास हैं, केवल एक वृद्धा महिला अपने पतिगृहकी ममताके कारण रहती है। यहाँ धर्मशाला भी नहीं है। प्रायः यात्री अंकलेस्वरकी जैनधर्मशालामें अपना सामान रखकर बसों द्वारा यहाँ आते हैं और दर्शन-पूजा करके अंकलेश्वर लौट जाते है। मन्दिरके कुऐका जल भी खारा है, किन्तु वह वृद्धा बहन यात्रियोंकी मिष्ठजल आदिसे प्रेमपूर्वक सेवा करती है। मन्दिरका वातावरण अत्यन्त शान्त है।

मेला

गाँवमें माघ कृष्णा १४ को महादेवका मेला होता है। इसी अवसरपर मन्दिरपर ध्वजा रोहण किया जाता है। मन्दिरमें दर्शनोंके लिए जैनोंके अतिरिक्त हिन्दू और भील आदि भी आते है।

राजनीतिक परिस्थितियाँ

गुजरात की मुख्य घटनाएँ

मौर्यकाल (ई. पू. ३२२ से ई. पू. १८५)

इस समय कोटिल्य अर्थशास्त्र में बताया है सुराष्ट्र में क्षत्रिय, कृषि, पशुपालन वाणिज्य तथा शास्त्रों द्वारा आजीविका चलाते थे।

युवनों का उस समय आक्रमण हुआ और अशोक ने गुजरात सौराष्ट्र में तुषारक को सुबेदार नियुक्त किया।

भद्रबाहु प्रथम ने जब सम्राट चन्द्रगुप्त के साथ गिरनार होकर दक्षिण, श्रवण वेलगोल विहार किया। सम्राट चन्द्रगुप्त ने आचार्य भद्रबाहु से दीक्षा ली थी, इसीसे प्रमाणित होता है कि गुजरात सौरष्ट्र में उस समय जैन धर्म था।

भारत का व्यवस्थित इतिहास नंदवंश से प्रारम्भ होता है (३६६-३२५ ई.पू.) इसके पश्चात मौर्यसाम्राज्य (३२५-२६२ ई. पू) चन्द्रगुप्त व चाणक्य बिन्दुसार (२९८-३०२ ई.पू.) आते है।

सातवाहन वंश (२१० ई. पू. से २०० ई.)

इसकी स्थापना दक्षिण में सिगुव ने की। इसी के वंश को नहपाल (नहवाण, नरवाहन, नहपान) ने गुजरात सौराष्ट्र को जीता। नहपाल और उसके दामाद उषवदास के लेख मिलते है। नहपाल का राज्य उत्तरी महाराष्ट्र तक था। उसकी राजधानी मरुकच्छ (भरुँच) थी। वह अपने को महा क्षत्रप कहता था। उसवदास ने पुष्कर के पारा मालवगण को हराया श्री परमानंद शास्त्री ने अपने ग्रंथ में जैनधर्म का प्रचीन इतिह।स भाग-२ में नहपाल के लिए निम्न उल्लेख किया है -

जैन अनुश्रुति में नहवाण, नहपान और नरवाहन आदि नाम मिलते है। नहपान बमिदेश में स्थित वसुन्धरानगरी का क्षहरात वंश का प्रसिद्ध शासक था। इसकी रानी का नाम सरुपा था। नहपान अपने समय का वीर और पराक्रमी शासक था और वह धर्मनिष्ठता प्रजा का संचालक था। नहपान के अपने तथा जामता उषभदत्ता या ऋषभदत्त और मंत्री अयम के अनेक शिलालेख मिलते है जो वर्ष ४१ से ४६ तक के हैं। नहपान के राज्य पर ईस्वी सन ६१ में लगभग गौतमी पुत्र शातकर्णी ने भृगकच्छ पर आक्रमण किया था। घोर युद्ध के बाद नहपान परीजित हो गया और युद्ध में उसका सर्वस्व विनष्ट हो गया। अपने संधि के सिक्को को प्राप्त कर और उन पर अपने नाम की मुहर अंकित कर राज्य चालू किया। वह उस समय वहाँ आया हुआ था। उसमें नहपान ने अपने मित्र मगध नरेश को मुनि रुप में देखकर और उनके उपदेश से प्रेरित हो अपने जामाता ऋषभदत को राज्यभार सौंप कर अपने राज्य श्रेष्ठि सुबुद्धि के साथ मुनि दीक्षा ले ली। इन दोनों साधुऔं ने संघ में रहकर तपस्चरण तथा आवश्यकादि क्रियाओं के अतिरिक्त ध्यान अध्ययन द्वारा ज्ञान का अच्छा अर्जन किया, यह, अत्यन्त : विनयी विद्वान और ग्रहण धारण में समर्थ थे। इन दोनों साधुओं को आचार्य धरसेन के पास गिरि नगर भेजा गया था। आचार्य धरसेन ने इसकी परीक्षा कर महाकर्म प्रकृति प्राभृति पढाया था। इनमें एक का नाम भूतबलि और दूसरे का नाम पुष्पदन्त रखा गया था। उनका दीक्षा नाम क्या था, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

नहवाहन या नहपान राजा भूतबलि हुआ और राजश्रेष्ठ सुबुद्धि शेठ को पुष्पदन्त बतालाया गया है।
नोट : (आचार्य धरसेन का समय और उनके शिष्य भूतबली पुष्पदेत द्वारा धवला जय धवला ग्रन्थो की रचना और नन्दिसंघकी स्थापना का समय ही हूमड़ समाज के उद्‌भव का समय है)

विक्रम की द्वितीय सदी में हूमड़ समाज के नाम का ऐतिहासिक प्रमाण

मूल संघ के विभाजन के बाद नन्दिसंघ का आचार्य पद माघनन्दि को प्राप्त हुआ उनके शिष्य विहार प्रांत से भ्रमण करने विक्रम की प्रथम सदी के अन्त में गुजरात के रायदेश खेडब्रह्मा विहार करते आये और उन्होनें ने लाड क्षत्रियो जो वणिक हो गये थे उन्हें नन्दिसंघ में सम्मलित किया और उसी समय हूमड़ नाम से हूमड़ जाति का उद्‌भव हुआ। निम्नलेख पुरातन ब्रह्मक्षेत्र नो प्रचीन अर्वाचिन इतिहास लेखक गणपतिशंकर जयशंकर शास्त्री जिसे गुजरात सरकार के प्रकाशित "गुजरात नो प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास" भाग १ से १० में भी मान्यता दी है वह निम्न है।राज्यमें जैन धर्मनो प्रचार करवा मांड्यो. ते समय विहार सुद्दा देशना यतियोनां गमन थयां तेमणे प्रचार कार्य सुंदर पार पाडवा मांड्युं गामे गामे तेमना विहार थवा मांडया तेमा पूर्वना लाट वैश्यो के जओ खेडमां अने आस पासना गामोमां वसवाट करी हती तेमणे जैन दीक्षा स्वीकारी अने लाट प्रदेश वाचक नामने स्वीकार्युं अने सुझस्यो पाछलथी हुमड़ नामथी ओलखावा मांड्या .
"सुहास्." शब्दनो अप्रभंश हुमरथ हूमड़ हूमड़ अने दुम्म ऐवुं नाम व्यवहारमां प्रचलित थयुं.अने दिगंबर मतना सिद्धांत कबूल राख्या . छतां असल संस्कृति जालवी लाट क्षत्रिययोनी संस्कृति वैश्योमां पण दीर्धकाल जळवायेली हती, तेवीज जैन दीक्षा लीधा पछी पण जलवायेली अत्यारे पण जणाई आवे छे.
खटके ब्राह्मणोनुं पुरोहित पणु कायम राख्युं मंगल प्रसगोमां धर्मक्रियायो करावता रहे छे. विवाह लग्न जेवा अनेक मंगल प्रसगोमां क्षत्रियने छाजतो रिवाजो जाळव्यो छे .अने घणा खरा रीतिरिवाजो पण असलना क्षत्रिय पणने थोडा घणा रुपातंरे हजु पण प्रत्यक्ष थता रह्या छे.
उपरोक्त कथन से हमारे उदभव स्थान और समय को प्रमाणित करने में बल मिलता है। क्योंकि आचार्य अर्हतबली ने ही नन्दिसंघ की स्थापना की थी और इन्ही के शिष्य माधनन्दिने हूमड़ समाज (ज्ञाति) की स्थापना की थी।

उपरोक्त ऐतिहासिक प्रमाणो से प्रमाणित होता है कि इसवी. प्रथम शताब्दि मे आचार्य धरसेन गिरनार (गुजरात सौराष्ट्र) में तथा नहपाल भी जैन राज गुजरात में पुष्पदंत भूतबली का धवला जयधवला ग्रन्थ का लेखन भी गुजरात के अंकलेश्वर में ताडपत्र पर प्रारम्भ करना हमारे पूर्वजों का पहली सदी में गुजरात मे उपस्थित होना प्रमाणित होता है।

गुजरात का प्राचीन इतिहास

मध्य कालिन गुजरात में राष्ट्रकूटों (सन् ७३३-९७५) के और विशेषकार चौलुक्यों (सन् ९४०-१२९९) के शाशनकालों में जैन धर्म का उत्कर्ष हुआ। राष्ट्रकूट कालीन कुछ ताम्र पत्रों में जैन संघ के कई समुदायों के असित्व का उल्लेख है उदाहरणार्थ कर्क राज सुवर्ण वर्ग के सन् ८२१ के एक ताम्र पत्र लेख में सेनसंघ और नन्दिसंघ का तथा नाग सारिया (वर्तमान नवसारी) में स्थित एक जैन मन्दिर एवं जैन विहार का उल्लेख है।

३. वि. सं. ११४० का एक शिलालेख वेरावल के पास मिला है इसमें हूबड़ जाति का उल्लेख है।

४. खंभात में चिन्तामणी पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर स्तभों पर हूबड़ जाति का उल्लेख मिलता है भट्टारक यश किर्ति के शिष्य भ. सहस्त्रकिर्ति ने इस मन्दिर का जिर्णोद्धार कराया। इनके शिष्य हूमड़ जाति के केसरी पुत्र "वीसल" ने गोंडल में सानार्णव ग्रन्थ की प्रतिलीपी कराई थी।

गोत्र कुण्ड

प्राचीन एतिहासिक स्थल का हमारी सांस्कृतिक इतिहासमें विसेष महत्त्व है जिसमें हमारी पुरातन सांस्कृतिक विरासत का सचित्र लेखा जोखा होगा ।

हमारे गोत्र कुण्ड के अतः भाग में निर्मित हूमड़ जीति के अठारह गोत्रों की अदिष्ठानत्री देवियों की अठारह देव कुलिकाएँ विद्यमान है उन पर उत्कीर्ण लेख सन् संवत विवरण एवं शिलालेखादि हमारे इतिहास निर्माण की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है । तथ्यात्मक सामग्री पुरातात्त्विक ऐतिहासिक तथा प्रामाणिक सामग्री इतिहास के आधार सतम्भ है ।

यह ऐतिहासिक गोत्र कुण्ड गुजरात राज्य के हिम्मतनगर से खेडब्रह्मा नामक पोराणिक नगर में जो इडर से ३५ की. मी. अहमदाबाद से १५० की. मी. हिम्मतनगर से ६५ की.मी. पर स्थित है ।

खेडब्रह्मा हिरण्य गंगा नामक नदी के पश्चिम की तरफ है जो वर्तमान में हरणाव कहलाती है हरणाव नदीमें आगे चलकर कौशाम्बी एवं भीमा शेकरी नदियाँ आकर मिल जाती है ।

इस कारण यह क्षेत्र संगमतीर्थ प्रयाग कहलाता है ।

गौत्र कुण्ड का पोराणिक उल्लेख संस्कृत के अति प्राचीन ग्रन्थ ब्रह्माणोत्पति मार्तण्ड में निम्न श्लोकः-

"गूर्जरे विषय रम्ये, ब्रह्मा खेटक संज्ञकं ।
पुरमास्ति महददिव्यं, दक्षिणे चार्बुदा चलात ॥
कृते ब्रह्मपुर नामां, त्रेता यां त्र्यम्बकं ।
तदैवद्वावरै ख्यातं, कलौवे ब्रह्म खेटक ॥
अस्ति तत्र महीपुण्या, हुरण्याख्या नदी शुभा ।
तत्रैव संगम पुण्यौ, नदी द्वितीय संभवः ॥
ग्राम मध्ये निवसति, देवो वे पद्म संभवः ।
भार्या द्वयेत संयुक्तो, तत्प्रासादस्य पूर्वतः ॥१८॥

यह हमारी अति प्राचीन एतिहासिक विरासत है जिसका सीधा सम्बन्ध हमारे उद्‌भव, अस्तित्व, संस्कृति और गोत्र से है ।

हम हमारे गोत्र हमारे उद्‌भव से २००० वर्षो से आज तक अस्तित्व में रखने आये है ।

वर्तमान में यह कुण्ड भारत सरकार के पुरातत्व विभाग में है जो अत्यन्त जीर्ण अवस्था में है । १८ कुल देवियो की मूर्तियों की चोरी हो चुकी है और उसकी देव कुलिकाएँ भी जीर्ण हो चुकी है । टाइम ओफ इन्डिया अहमदाबाद आवृति नेता में भारत सरकार और गुजरात सरकार का ध्यान इसके जीर्णोद्धार के लिये ध्यान आकर्षित किया था परन्तु पुरातत्व भाग को उत्तर था कि उनके पास उसके लिये कुण्ड नहीं है ।

अ. भा. हूमड़ महासंघ का ध्यान इस पर गया है और पुरातत्व विभाग से बातचीच करके वहाँ हूमड़ो का शिलालेख रखने की शर्त के साथ जिर्णोद्धार करने की कार्यवाही करने का निर्माण लिया जा रहा है ।

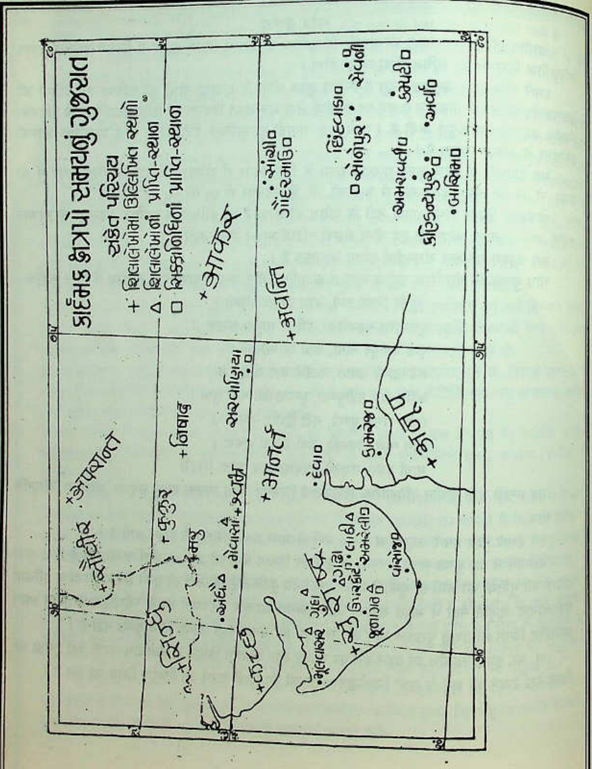

कार्दमक क्षत्रपो समयनुं गुजरात

टाइम्स ओफ इन्डीया का लेख

KHATTA-MITHA MIX
CHANA JORGARAM

THE TIMES OF INDIA

Ahmedabad, Tuesday, December 30, 1997 Late City

Bennett, Coleman & Co., Ltd.

Khedbrahma temple— monument of apathy

By Leena Misra

KHEDBRAHMA (Sabarkantha): Bureaucratic neglect and scant research have reduced the 12th century Khedbrahma temple built by the Solanki rulers to a common temple and the beautiful stepwell beside it into a litter bin.

Little is known about the Khedbrahma temple now managed by a trust, except that it is the second of its kind after the Brahma temple at Pushkar, Rajasthan and the only temple architecturally conforming to the scriptures.

The dense undergrowth covering the stepwell speaks of the apathy of the archaeological department.

[illegible]

A portion of the Khedbrahma temple

[illegible]

place was called Brahmakshetra, what is now Khedbrahma."

The shikhar was destroyed in the Sultanate period (14th century), apparently by Allaudin Khilji.

A striking feature of this step-well is the ornamentation on the wall.

[illegible]

गोत्र कुण्ड

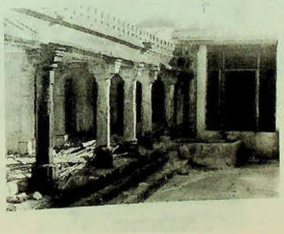

गोत्र कुण्ड

पद्मावती माताजी डेरोल

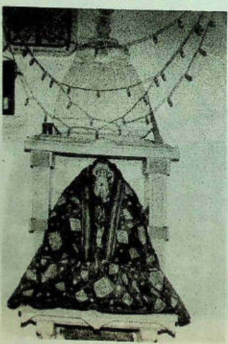

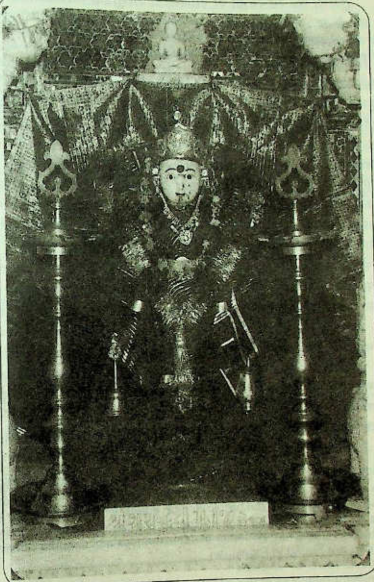

શાશનદેવી માતાજી સોજીત્રા

સૌજન્ય : શ્રી જયચંદભાઈ કાળીદાસ શાહ તથા સ્વ. જેઠાભાઈ કાળીદાસ શાહ

કાણીસાવાળાનો પરિવાર

शासनदेवी मातीजी पद्मावती

हूमड इतिहास भाग २

हूमड़ों का खेडब्रह्मा से सागवाडा सामूहिक स्थानान्तर :-

आठवी सदी के मध्य में सामूहिक रुप से हूमड़ो ने राजस्थान के बागड़ प्रान्त की तरफ स्थानान्तर के समय गुजरात की राजनैतिक स्थिति।

राजनैतिक स्थिति गुजरात की :-

ईसवी की आठवी सदी में इडर का राजा मांडलीक भील था। उसे हराकर सूर्यवंशी वल्लभीपुर के शासक राजकुमार गुइपिया नें अपना राज्य स्थापित किया। उन्होने १००-१५० वर्षो तक इडर रायदेश पर राज्य किया अन्तिम प्रतिहार शासक निकम्मे थे। उसके समय भील सरदारों ने रायदेश खेब्रह्मा की प्रजा को लूटपाट करके संकट ग्रस्त बना दिया।

इसी समय उत्तर भारत में सिंध के मैदानो पर अरब स्वलीफाओं का आक्रमण हुआ। ई.स. ७०० के प्रारम्भ में खलीफा उमर द्वितीय के सेनापति मोहम्मद बीन कासीम ने और चितौड़ के मौर्य राज्य को भी तहस नहस किया। दूसरी तरफ आठवीं सदी के प्रारम्भ में भरुच मै गांधार बन्दरगाह पर भी विदेशियो का आक्रमण हुआ ई. स. ७९८ में गांधार बन्दरगाह पर मुसलमानों ने पहली मस्जिद का निर्माण किया ई.स. वी सन् ७२९ में पारसीयों का आगमन हुआ।

ई.स. ८१३ से ८३३ तक खलीफा अलसामान थे। उसने राजस्थान चितौड़ को खेडब्रह्मा के मार्ग से रौंद डाला। इस समय खेडब्रह्मा के पास के सारे रायदेश के अनेक मन्दिरों को खण्डर बना दिया गया। इन परिस्थितियों का लाभ भील सरदारों ने उठाया और खेडब्रह्मा आर्य के साहुकारों और वणिक प्रजा को खूब लूटपाट करके आतंक मचाया और खेती आदि नष्ट कर दी। ऐसी परिस्थितिओं में स्थांनान्तर अनिवार्य हो गया। ऐसे समय में सामूहिक रुप से हूमड़ प्रजा ने राजस्थान के बागड़ प्रांत की तरफ प्रस्थान किया।

उपरोक्त छठवी से आठवी सदी तक बारम्बार एक तरफ भीलों से दूसरी तरफ अरब खलीफों के आक्रमण से हूमड़ जाति का रायदेश में रहना अत्यन्त कठिन हो गया और उन्हें सामूहिक रुप से राजस्थान की तरफ प्रयाण करना पडा।

उस समय के स्थानान्तर को डॉ केलाशचंद जैन अपने इतिहास "Jainisim in RaJasthan" में लिखते है।

The early traces of Jainisim in Rajasthan are Found from the second century B.C., but From the eight century onwarads, Jainisim became a great cultural and dynamic force under the liberal pai-ronage of the heroic Rajput- eulers, who extended their helping hand to the sravks of the neighbouring regions against the maranding foreign invaders, it is on account of this fact that a large number of Jaina temples and Grantha - bhandaras of the medieval period are Found in Rajasthan -

HISTORICAL RATE OF JAINISM :-

The doniment religiours of this are (Rajsthan) has Hindiam & Jainiam ----------------
Jainism war

यहाँ पर हम एक और विवरण प्रसिद्ध लेखक डॉ. कैलाश चन्द्र जैन के प्रसिद्ध ग्रन्थ "जेनीज्म इन राजस्थान" से देरहे है क्योंकि ये विवरण हूमड़ समाज के इतिहास को बराबर उजागर करता है :

Jainism has played an important role in the history of Rajasthan from the earliest times to the present day. It was not only patronised by the rulers and members of the ruling families, but it received also the warm support and had an appeal to the heart of the massess. The contributions of

Jainism are apparent in all aspects of the cultural heritage of Rajasthan which aboynds in Jaina antiquities. There are anmerous Jaina temples which are fine specimens of art and architecture and have beautiful sculptures. Name orus Jaina inscriptions unfold the history of this land. Jaina Morks tried for the Social uplift of the masses, and they also enriched the local languages by their literary works.

(a) A good many of them throw a flood of light on the religious, Social and political conditions of the periods under review.

(b) These inscriptions are chiefly valuable for the religious history of the period. They give us information about the Jaina church organization which was divided into several branches such as samgha, Gana and Gachchha. A complete and connected history of the Gachchasis impossible without their help. They mention names of the teachers of the various Gachchhas,inauguration ceremonies of the Numerous temples etc,and the inscriptionstell us when the several Jaina castes and their Gotrascame into existence.

(c) Monuments :- The old Jaina temples andimages are another important source of religious history. They show the extent and popularity of Jainism in Rajasthan at different periods and also indicate the stage which the Jaina archiecture and iconography had reached.

(d) Literature

(e) Histrorial writing

(f) Prasastis

(g) Patanalis

(३) जैन संस्कृति और राजस्थान

सांस्कृतिक सौष्ठव :

जीवन के शाश्वत सत्य को पहचानने और उसे काम में, व्यवहार में, वचन में और लक्ष्यों में समावृत्त और सामाहित करते रहने का जो कार्य जैनधर्म में निस्पादित किया है वह किसी भी धर्म के लिए एक आदर्श है। राजस्थान की धरती की गंध लिए यहाँ वहाँ के सांस्कृति सौष्ठव की सभी विशेषताओं के साथ जैनधर्म में राजस्थान में एक ऐसी सांस्कृतिक भूमिका का निर्वाह किया है जो हर युगमें चिरस्मरणीय रहेंगी।

By.

श्री रावत सास्वतक

P. १८४

हूमड इतिहास भाग २

राजस्थान की भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि

डॉ. रामगोपाल शर्मा

राजस्थान भारत वर्ष का एक महत्वपूर्ण राज्य है जहाँ के लोगों ने देश के इतिहास एवं संस्कृति के निर्माण की प्रकिया में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। विदेशी आक्रान्ताओं के विरुद्ध संघर्ष में राजस्थानी वीरों की प्रशंसनीय भूमिका रही है। यही नहीं, यहाँ के लोगो ने संस्कृति के संरक्षण एवं परिवद्धन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। राजस्थान के इस ऐतिहासिक काल को समुचित परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए आवश्यक है कि प्रारंभ में उसकी भौगोलिक स्थिति तथा उसके व्यापक प्रभाव का अध्ययन किया जाय।

भौगोलिक पृष्ठभूमि

आकार में राजस्थान एक विषमकोणीय चतुर्भुज जैसा है। इसके पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम में पाकिस्तान स्थित है और इसका उत्तरी तथा उत्तर पूर्वी सीमान्त पंजाब तथा उत्तर प्रदेश को स्पर्श करता है। चम्बल नदी राजस्थान की दक्षिण पूर्व सीमा बनाती है। इसकी दक्षिणी सीमा वक्राकार रेखा के रुप में मध्य भारत के आरपार जाती है और राजस्थान को मध्य प्रदेश तथा गुजरात से पृथक करती है, जो क्रमशः इसके दक्षिण पूर्व तथा दक्षिणी पश्चिम में स्थित हैं।

राजस्थान की भौगोलिक स्थिति की प्रमुख विशेषता अरावली पर्वत श्रृंखला है जो उत्तर पूर्व तथा दक्षिण पश्चिम में लगभग ४३० मील तक फैली हुई है और जो सारे राज्य को दो भागों में विभाजित करती है। अरावली पर्वत के पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम में राजस्थान का मरुप्रदेश स्थित है जो लगभग ७०,००० वर्ग मील में फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत जैसलमेर, बीकानेर की पुरानी रियासतें तथा जोधपुर का अधिकांश भाग और जयपुर का शेखावटी प्रदेश आता है, किन्तु अरावली पर्वत के पूर्व तथा दक्षिण पूर्व का राजस्थानी प्रदेश इस मरुस्थल से सर्वथा भिन्न है। यह उपजाऊ प्रदेश है और इसमें मेवाड, हाडौती तथा जयपुर के मैदानी तथा पठारी क्षेत्र सम्मिलित है।

राजस्थान के जनजीवन में जलवायु तथा वर्षा का भी अपना महत्व है। यहाँ की जलवायु मुख्यतः शुष्क है और अधिकांश भागों में प्रायः वर्षा का अभाव रहता है। लगभग ९० प्रतिशत वर्षा मानसून के समय होती है। यद्यपि राजस्थान के उत्तरी भाग में वर्षा का अभाव रहता है।

हमारे देश में तीन बागड़ प्रदेश सुने जाते है। पहला गुजरात प्रदेश में कच्छ गुजरात की सरहदो के बीचका, दूसरा राजस्थान में नरभड़ (नरहड़) आदि पिलानी से हासी हिंसार तक का, और तीसरा मेवाड गुजरात की सरहदों के बीच का प्रदेश। हमारा बागड प्रदेश यह तीसरा प्रदेश है जो दक्षिण पूर्वी राजस्थान के डूँगरपुर और बाँसवाडा के जिलों तथा उनके आसपास के विस्तार का क्षेत्र है। यह विभाग २३ १५ से २४.१ उत्तर अक्षांस एवम् ७३-१५ से ७४-२४ पूर्व देशांतर के बीच स्थित है। इसका क्षेत्रफल करीब ५,००० वर्गमील तथा इसकी आबादी लगभग १२ लाख की है। इस क्षेत्र की मूल प्रजा आदिवासी भील जाति है। पालों में रहनेवाले भीलों वा मीणों की बोली भीली है। कटारा विभाग की बोली पलवाड़ी है ! और शेष समग्र बागड़ प्रदेश की बोली बागड़ी बोली है। भीली, पलवाडी तथा कटारी बोलियाँ सिर्फ भील क्षेत्रों तक ही सिमित है।

महीसागर इस प्रदेश को डुँगरपुर और बाँसवाडा के दो मुख्य भागों में विभाजित करती बहती

हुई गुजरात में खंभात की खाड़ी में जा गिरती है। भील, ब्राह्मण, पटेल, गुजराती तथा बागडिया, राजपूत, जैन, बनिये तथा अन्य लगभग सभी वर्णो की पंचरंगी प्रजा का इसमें निवास है। मेवाड़, मालवा तथा गुजरात, तीनों प्रदेशों से प्रजा का आवागमन तथा संघर्ष होने से भाषा का स्वरुप तथा लोक साहित्य का रुप भी मिश्रित है।

हूमड़ समाज जाति के उद्भव से वर्तमान के गत् २००० वर्षो में अनेक उतार चढाव देखे है। राजनैतिक परिस्थियों, आर्थिक कारणों से हमारे पूर्वजो को मूलतः लाड क्षत्रीय से अपना क्षत्रीय धर्म त्याग करके वणिक धर्म स्वीकार करना पडा। विदेशियों और भीलो आदिवासियों के बारम्बार आक्रमण के कारण हमें हमारी मातृभूमि खेडब्रह्मा के रायदेश को अपने घर-बार, सम्पत्ति आदि को छोडकर निर्वासित रुप में साग के जंगलो (सागवाडा) में शरण लेना पडा।

हूमड़ जाति और बागड़ क्षेत्र

बागड़ देश

By. *माननीय स्व. श्री जवाहरलालजी वैद्य प्रतापगढ़ द्वारा*

राजस्थान बागड़ प्रांत :-

राजस्थान एक विशाल मरुस्थलीय प्रदेश है। जिसमें आठवी शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी तक अनेक छोटे मोटे राजपूती राज्यों का उत्थान पतन हुआ था।

इसी क्रम में राजस्थान के दक्षिण में डुंगरपुर राज्य स्थापित हुआ और बाद में भाई बहन में बाँसवाडा राज्य स्थापित हुआ।

इन दोनों राज्यों का प्राचीन और वर्तमान नाम बागड़ प्रांत है। "बागड़ शब्द" गुजराती भाषा बगड़ा से मिलता जुलता है। जिसका अर्थ 'वन' अथवा कम आबादी वाला प्रदेश। संस्कृत विद्वानो ने इसे 'वाग्वर' नामकरण दिया जिसका अर्थ वाणीमें श्रेष्ठ है। प्राकृत भाषा में इसे 'वग्गड़' रुप दिया है। प्राचीन बागड़ प्रदेश डुंगरपुर-बांसवाड़ा एवं उदयपुर जिले के दक्षिणी भाग है।

यह बागड देश तीन हिस्सों में बटा हुआ है। १. एकतो हूमनही नुत्तरीयभागका, २. दूसरा हूमके दक्षिणीय और माही के पश्चिमीयनागका, ३. तीसरा महीनदीके पूर्वीय भागका इसमें से उत्तरीय भाग को तो खत्रकी बागड़ कहतेहै अर्थात् इस बागड़ प्रांतके छप्पन्न गाँव है। हूम और महीनदी के बीच को डुंगरपुरकी बागड़ कहतेहै। मही के पूर्वार्थ भागको बांसवाडेकी बागड़ कहते है। डुंगरपुर राज्यसे बांसवाडा जुदा होनेपर ही हो विभागदुवे। प्राचीन कालमेंभी दो ही विभाग थे जसवक्त की पेलाकाँठा और कलाका ठाके नामसे बोला जाता था। वर्तमानमें भी बागड़ प्रांतीय लोग तो कलाका ठाके और पेलाकाँठा ही कहते है। उलाकांठा और पेला काँठा से यह मतलब है कि महीनदी के इस तरफकी और उस तरफकी बागड़ अर्थात् मही नदीके पूर्वीय भागको नदी कांठीया तथा बाँसवाडेकी बागड़ और मही नदी के पश्चीमीय भाग को पेला काँठा अर्थात् डुँगरपुर बागड़ कहते है।

नौगाम (बाँसवाड़ा) गामके शांतिनाथजी मंदिर के शिलालेख में इस बागड़ देशको वाग्वर देश और नौगाम को नूतन गाम लिखा है। वाग्वर देशका अर्थ यह होता है कि वागकहिये वाणी-वरकहियेश्रेष्ठ।अर्थात् जिस देशकी श्रेष्ठ वाणी है - ऐसा यह वाग्वर देश है। जहां तक हमारा ख्याल है बागड़ प्रांतीय भाषा प्राकृत अपभ्रंश भाषा है, इसको उत्तम मानकर देशकोभी उस नाम से घोषित करना लेखक की

चातुर्यता, विद्वत्ता, गम्भीरता, सुजनता और मेहनत का द्योतक है, अथवा आचार्यवरने वाणीकी खूबीको उत्तम ढंगसे विवेचन किया है, अथवा वाग् शब्दसे बागड़ और वरसे श्रेष्ठ अर्थात् वागड़ मंत्री श्रेष्ठ वागड़ है ऐसा भाव हो तो भी आश्चर्य नहीं।

अर्थूर्णा के शिलालेखमें वागड़ देशको स्थली देश कहा है। अमरकोश में स्थलीका अर्थ अकृत्रिम भूमि बतलाया है। अतः यह भूमि की विशेषता है ख्यास किसी देश वाचक शब्द नही है। इसी प्रकार जिनमंडल अपने कुमारपाल प्रबंधमें लिखते है। राजा कर्ण देवने सौराष्ट्र देशको विजय करनेके बाद वामन स्थली (जूनागढ़से ९ मील पश्चिमकी वनस्थली) में जाकर अर्जुनको वहांका देडनाय का नियत किया, इन उदाहरणो से यह सिद्ध हो की वनमें जो धरती की उत्तम प्राकृतिक भूमि होती है उसको स्थली कहते है। अतः वाग्वर और स्थली यह दोनों ही विश्लेषण रुप है ताकि संज्ञालय।

बागड़ के लोक साहित्य की एक झाँकी

जैन साहित्य की रचना भी बागड़ में ठीक प्रमाण में हुई मानी जाती है। भट्टारक ज्ञानभूषण की तत्वज्ञान तरंगिणी (वि. १५६०) भट्टारक शुभचंद्र के पांडवपुराण की (वि. १६०८), भट्टारक गुणाचंद्र द्वारा अनंतजिनव्रतपूजा (वि. १६३३) आदि की रचना सागवाड़ा में हुई मानी जाती है। भट्टारक जयविजय कृत शकुन दीपिका चौपाई (वि. १६६०) तथा शुभचंद्रक तथा चंदनाचरित का निर्माण डुँगरपुर में हुआ पाया जाता है। भट्टारक रामचंद्र ने सुभौमचक्री चरित्र की रचना (वि. १६८३) सागवाड़ा में बैठकर की थी। इस प्रकार जैन साहित्य की रचना वागड़ में १५ वी. सती विक्रम से हुई मिलती है। संस्कृत भाषा में प्रशस्तियाँ तथा शिलालेख तो वि.सं. १०३० से ही मिलते हैं।

वि. सं. १७८४ में योगीराज मावजी का बागड़ के सावला गांवमें आविर्भाव महत्त्व की बात है। सं. १८१४ में अपनी देहलीला समाप्त करने तक इस महापुरुष ने ४ चोपड़े (महाग्रंथ) तथा अन्य लघुग्रन्थ वाणी लिखित रुपमें बागड़ को प्रदान कर अनुग्रहित किया है। आज बागड़ में भजन तथा संतवाणी प्रचुर रुप में प्रचलित है।

भावजी के बाद वागड़में डूंगरपुर में गवरीबाई (वि. १८१५ से वि. १८६५) का उद्‌भव भी साहित्य दाता के रुप में अविस्मरणीय है। इस भक्त कवित्री ने अपने आराध्य की भक्ति के अनेक पद इस मिश्र वागडी बोली में दिये हैं। गुजरात की वार्नाक्युलर सोसायटी की ओर से कुछ पदों का प्रकाशन भी हुआ सुना जाता है। बागड़ की इस मीरां की प्रेमलक्षणा भक्ति के पदलालित्य का पठन आज भी बागड़ में सुनाई देता है।

इन भक्तो की श्रेणी में अबोभगत (वि. १८७७-१८३८) भी बागड़ में अमर हो गया है। यह वीर भक्त अभेसिंह काफी संख्या में पद दे गया है। इनका प्रकाशन नहीं हुआ है। परन्तु हस्तलिखित रुप में अवश्य प्राप्य है।

इस साहित्य परंपरा में अति समृद्ध ऐसा लोक साहित्य ही आज बागड़ की सच्ची निधि है। बागड़ के वीर गलालेंग (वि. सं. १७३०-१७५१) की वीरगाथा आज भी लोकमानस में अमर है। लगभग पौने तीन सौ वर्षो से यह ऐतिहासिक वीर काव्य जोगियों द्वारा परमपरागत मौखिक रुप से गाया चला आता है।

अरथूना नगर के प्राचीन ध्वसांवशेष एवं यहाँ के १०-११ सदी के बने प्राचीन देवालय इस क्षेत्र की प्राचीनता के साक्षी है।

इसी भाँति गलियाकोट व सोमनाथ महादेव का प्राचीन समकालीन देवालय गलियाकोट की प्राचीनता के फूक साक्षी है ।

डूंगरपुर राज्य के इतिहास में डॉ. गौरीशंकर ओझा के अनुसार वर्तमान डूँगरपुर जिलाके अन्तर्गत प्राचीन गलियाकोट था । जिसके पूर्वमें मही नदी और पश्चिम में महिमा नामक नालेके संगम पर प्राचीनदूर्ग जो वर्तमान में भग्नावशेषोंके रुपमें जो कडाणा बांध के कारण जल समाधि हो चुका है, आठवी सदीमें वहाँ परमार राजाओं का राज्य था । वर्तमान सागवाडा जिसका प्राचीन नाम शाक वाटपूर (साग का जंगल) था।

खेडब्रह्मा - रायदेश से सामूहिक रूप में आगमन के समय गलियाकोट राज्य पर परमार राजाओ का अधिकार था :-

डॉ. नागेन्दसिंह द्वारा लिखित गलिया कोट दर्शन की प्रस्तावना के अनुसार राजस्थान के दक्षिणांचल में स्थित गलिया कोट कस्बा में मही सरिता और महियानाला के संगम पर ई. ८वी सदी के पूर्वका प्राचीन दुर्ग जो तत्कालीन इस क्षेत्र के समृद्धि का प्रतीक था । जिसमें वैभवशाली नगर प्राचीन देवालय भवन आदि ध्वसं शेष साक्षी है । इस दुर्ग के पूर्व मही नदी के लगभग ७ की.मी. स्थित परमार राजाओ की राजधानी अर्थूणा है । यह गलिया कोट विभाग १०वी शताब्दी तक परमार राजाओ के आधीन था ।

अर्थूना के शिला लेखो से तत्थ निकलता है कि गलिया कोट में ७वी सदी से १०वी सदी तक परमार राजाओ का राज्य था ।

उपरोक्त पुस्तक के लेखक श्री रवीन्द्र पण्ड्या अपने प्राक्कुथत में लिखते है,

प्रसिद्ध साहित्यकार व पूरातत्वेत्ता स्व. गौरीशंकर ओझा के बागड़ प्रदेश के खोज के आधार पर "बागड़ के परमार राजाओ की राजधानी वर्तमान अर्थूना गाँव जिसे प्राचीन शिला लेखों में उत्थूनक नामक नगर .... गलिया कोट का प्राचीन दुर्ग परमार राजाओं के आधीन था ।"

आठवी-नवमी सदी में इसकी राजधानी अर्थूना (अरथूना) थी जिसका प्राचीन नाम उन्थूणक्षक । वहाँ से प्राप्त संस्कृत भाषा के दो शिला लेख जो वर्तमान में अजमेर म्युजियम में है जो संवत् ११५९-११६६ का है। जिससे प्रमाणित होता है कि अत्थूणक नगर ११वी सदी में तलपाटक जनपद के नाम से था जो सांस्कृतिक केन्द्र था । यह सम्पूर्ण क्षेत्र तल पाटक पतन के नाम से विख्यात था ।

"अर्थूना - वाग्वर का वैभव" BY. कोठारी कान्तीलाल (कुशलगढ़)

स्थली देश (वाग्वर क्षेत्र) में उन्थूणक (वर्तमान में अरथूना) नगर में दो विस्तृत जैन शिलालेख प्राप्त हुये हैं, जिसमें पहला विक्रम सं. ११५९ का जो बिलकुल ही जीर्ण देश में है और इससे केवल उन्थूणक के शासक विजयराज परमार के पिता श्री मुण्ड राज के बारे में थोडी सी जानकारी प्राप्त होती है पर दूसरा शिलालेख जो संवत् ११६६ का है बिलकुल साफ और स्पष्ट है संस्कृत भाषा में है । इसमें कुल ३० श्लोक है भाषा उच्च कोटि की अलंकारिक है । यह शिलालेख वर्तमान अर्थूना नगर के नसीया क्षेत्रमें स्थित जैन मंदिर ध्वसावशेषों से प्राप्त हुआ था और अब यह अजमेर के म्युजियम में सुरक्षित है ।

उन्थूणक नगर विक्रम की ११ वी १२वीं सदी में स्थली देश (राजस्थान) में तलपाटक जनपद के नाम से विख्यात एवं सांस्कृतिक केन्द्र था । उत्थूणक (अरथूना) बागड़ देशीय परमारों की प्रसिद्ध राजधानी थी । उत्थूणक शब्द काल परिवर्तन के साथ उत्थूणक फिर अत्थूण, अत्थूण से अत्थूर्णक हुआ और अब अर्थुना के नाम से प्रसिद्ध है । बांसवाडा से लगभग ५० कि.मी. दूर है । बांसवाडा के पूर्वोत्तर में प्रतापगढ़ नगर भी है यह सम्पूर्ण क्षेत्र सतपाटक पत्तन के नाम से विख्यात था जैसा कि शिलालेख के श्लोक नं.४ से ज्ञात हुआ है । भावार्थ निम्न है :

हूमड इतिहास भाग २

मदनदेव चामुडराय निजराय कनकदेव

चामुडराय ने सन् १०८० में अपने पिता की स्मृति में मदनेश्वर का मंदिर बनवाया था। इस मन्दिर के लेख में जैन मन्दिर का उल्लेख है।

डूँगरपुर शास्त्र भंडारो से प्राप्त अत्यन्त जीर्ण हूंमड़ वंशावली नामक हस्तलिखित पोथी के अनुसार डूंगरपुर जिले के अर्न्तगत प्राचीन गलिया कोट कस्वा उसके पूर्व में महीनदी और पश्चिम में महिमा नामक नाले के संगम पर प्राचीन दूर्ग (जो . .|मान में भग्नावशेषो के रुप में) हैं जो कडाणा बांध के कारण जल समाधि हो चुका है आठमी सदी में परमार राजाओ की राजधानी थी। उस समय वहाँ के रावल (राजा) स्तय राज ने हूमड़ो के विशाल समूह को जो खेडब्रह्मा से प्रवास करके आये थे उसे, शाक वार पुर (साग के जंगल) वर्तमान सागवाडा में शरण दी।

उपरोक्त कथन की पुष्टि डॉ. नागेन्द्रसिंह द्वारा अजमेर म्युजियम में रक्खा अर्थूना का शिलालेख से प्रमाणित होता है।

हूमड़ समाज जाति के उद्भव से वर्तमान के गत् २००० वर्षो में अनेक उतार चढाव देखे है। राजनैतिक परिस्थियों, आर्थिक कारणो से हमारे पूर्वजो को मूलतः लाड क्षत्रिय हरको अपना क्षत्रिय धर्म त्याग करके वणीक धर्म स्वीकार करना पडा। विदिसियो और भीलो आदि आदिवासियों के बारम्बार आक्रमण के कारण हमें हमारी मात्रभूमि खेडब्रह्मा को (रायदेश को) अपने घरबार, सम्पति आदि को छोडकर निर्वासित रुप में (साग के जंगलो) सागवाडा में शरण लेनी पडी।

स्थातंर का प्रचीन भट्टारको द्वारा हस्त लिखित प्राचीन शास्त्र भंडारो से विवरण :-

स्थलांतर विवरण हमने निम्न प्रचीन ग्रन्थों के आधार से लिया है।

(१) सागवाडा के सास्त्र भंडारो से पूज्य १०५ भट्टारक यशकीर्तिजी कुछ प्राचीन भट्टारको द्वारा हस्त लिखित ग्रंथ लेजाकर उनके सरस्वती भवन ऋषभद्र में सुरक्षित रखे थे।

(२) डुंगरपुर शास्त्र भंडारो से अति जीर्ण हालत में "हूमड़ वंशावली" जो प्रत्येक पृष्ठ के तीन तीन चार चार टुकडे हो गये है। उसके आधार से।

(३) १. सागवाडा के प्रथम बावन जिनालय में वि. स. ७३२ का शिलालेख
२. सागवाडा नगर के मध्य में गणपति मंदिर में हूमड़ो के आगमन का शिलालेख.

जैसा की आप इस अध्याय के प्रस्तावना में देख चुके है कि अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों से प्रमाणित होता है कि राजस्थान में आठमी सदी के प्रारंभ से ही हूमड़ समाज की उपस्थिति में खेडबेरह्मा रायदेश से विशाल समूह में सागवाडा के स्थल पर स्थलातंर किया।

अब हम उपरोक्त प्रचीन शास्त्रो के उल्लेखो के आधार पर हमारे स्थलांतर और सांगवाडा में निवास करने का विवरण प्रस्तुत करेगे।

जब हम निर्वासित होकर बागड प्रान्त के साग के जंगलो में आये तब गलियाकोट के परमार राजाओ ने साग के जंगलो में हमें शरण दी और वही पर हमारे आवास के लिए जमीन उपलब्ध करे

ऐसी असहनीय परिस्थितियों में भी हमारे पूर्वजो में संस्कार जाग उठे और निर्वासित होकर आये हुए सैकडों की संख्या में हमारे पूर्वजों में मुख्य रुप से पुरुषो नें निम्न निर्णय लिया।

'हूमड़ वंशावली' नामक अत्यन्त जीर्ण हस्तलिखित पोथी के अनुसार "सामूहिक स्थांनान्तर में साढे तीनसौ से अधिक सुवर्ण कर्डा, कंठी वाले हूमडो के अगुवा सज्जन थे।" वे अनेक बैलगाडी, घोडे, ऊँट आदि द्वारा प्रवास से आये थे। उन्होने परमार राजा के शाकवाट पुर (वर्तमान सागवाडा) में डेरा डाला। उस समय वहाँ सभी निर्वासितों के सामूहिक रसोडा (भोजनशाला) की व्यवस्था की गई और यह निश्चित किया गया कि जहाँ तक प्रथम जिनालय का निर्माण का कार्य प्रारम्भ नही किया जाय वहाँ तक कोई भी परिवार अपना मकान नही बनायेगा। इस निर्णय के अनुसार प्रथम बावन जिनालय जिसके मुख्य स्तंभ पर वि. संवत् ७३२ लिखा है शिलारोपण किया गया।

शिलारोपण और नीव का कार्य स्थांनान्तर से आये हूमड़ पुरुषो और स्त्रियो ने श्रमदान से किया साथ में आये ब्राह्मण पुरोहितो (खेडा गोरजी) ने गणेशजी के डेरी (मंदिर) की नींव की खूटी गाडी जो वर्तमान में मौजूद है उस पर शिलालेख भी है।

यह बावन जिनालय और उसके पीछे कलिंजरा व अन्य जगहो में बने सभी बावन जिनालय मूल खेडब्रह्मा (डेरोल) के बावन जिनालय के नक्शे के समान ही है। यह हमारे पूर्वजो की जिनालयो के प्रति अटूट श्रद्धा थी कि मंदिरका निर्माण किया जावे। और उसकी नीव 'श्रमदान' से की जावे। जो प्रथा आज भी शिलारोपण में एक-दो ईट प्रत्येक परिवार तरफ से रक्खी जाती है।

आज भी सागवाड़ा की जाजम अट्ठारह हजार हूमड़ समाज की जाजम कही जाती है। यहाँ का संगठन " श्री अट्ठारह हजार दशा हूमड़ जैन समाज श्री साढ़े बारह मंदिर बंदी एवं चोखला सम्बन्धी जैन समाजके नाम से जाना जाता है। यह वर्तमान में भी कार्यरत हैं। इस संगठन में डूंगरपुर जिला बांसवाडा उदयपुर जिले का कुछ भाग एवं मध्यप्रदेश तथा गुजरात का कुछ भाग भी आता है। वर्तमानमें इसके अन्तर्गत लगभग अस्सी गाँव है। सागवाड़ा इस संगठन का पाट गाँव हैं। इसको दो मंदिर बंदी का दर्जा मिला हुआ है। साढ़े बारह मंदिर बंदी निम्नलिखित है।

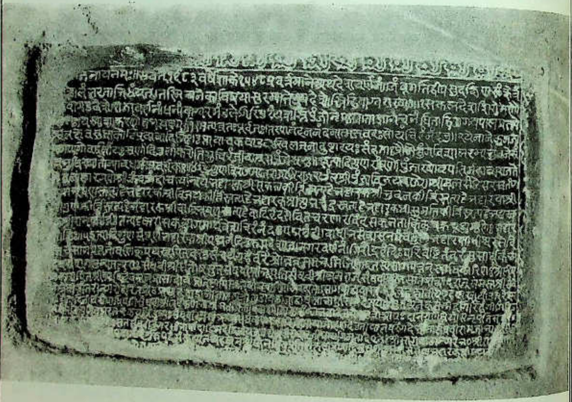

सागवाड़ा के मध्य में हूमड़ो के स्थानांन्तर शिलालेख विक्रम की आठवी सदी प्राचीन शिलालेख (सागवाडा)

श्री १००८ आदिनाथ मूलनायक हूमड़ो का राजस्थान में प्रथम बावन जिनालय

सागवाड़ा के मध्य में हूमड़ो के स्थानांन्तर शिलालेख विक्रम की आठवी सदी प्राचीन शिलालेख (सागवाडा)

हूमड इतिहास भाग २

श्री १००८ आदिनाथ मूलनायक हूमड़ो का राजस्थान में प्रथम बावन जिनालय

सागवाड़ा के मध्य में हूमड़ो के स्थानांन्तर शिलालेख विक्रम की आठवी सदी प्राचीन शिलालेख (सागवाडा)

सागवाड़ा के मध्य में हूमड़ो के स्थानांन्तर शिलालेख विक्रम की आठवी सदी प्राचीन
शिलालेख (सागवाडा)

सागवाड़ा के मध्य में हूमड़ो के स्थानांन्तर शिलालेख विक्रम की आठवी सदी प्राचीन
शिलालेख (सागवाडा)

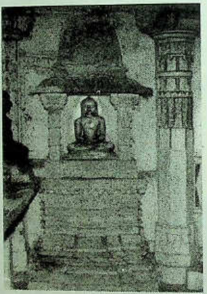

वर द्वीप नंदीश्वर सुअष्टम्, तीन जग में मान्य हैं ।
बावन जिनालय देवगण से, वंघ अतिशयवान हैं ।।
प्रत्येक दिश तेरह सुतेरह, जिनगृहों की वंदना ।
वदू यहाँ जिनबिंब को, नितप्रति करूँजिनअर्चना ।।

आंतरी

विक्रम की ८ वी सदी में खेडब्रह्मा से स्थांतर के बाद हूमड़ो द्वारा निर्माण किया गया अति वैभव शाली एतिहासिक बावन जिनालय

चित्र १ क्ष २ बावन जिनालय
जिसमें २९ शिखर १२ मुघट ११ गुमटियाँ विद्यमान है ।

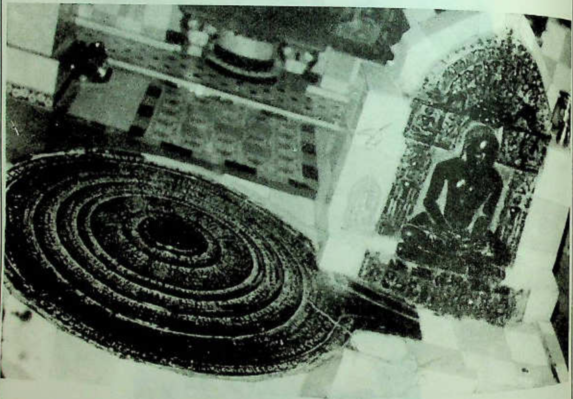

आंतरी
श्री १००८ कलिकुंड पार्स्वनाथ जी अति प्राचीन मूर्ति विक्रम संवत् ८०९
इसके आगे ११ ।। फीट व्यास का ऋषि मंडल यंत्र है जिस पर विक्रम संवत् ८०९ अंकित है।

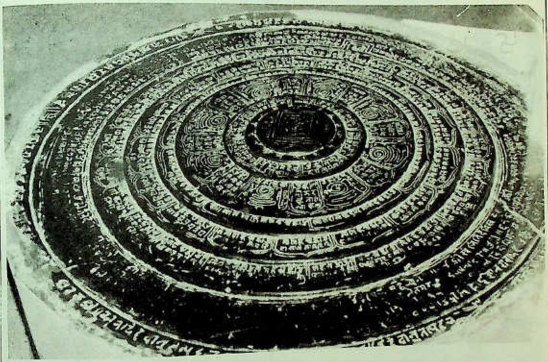

अति प्राचीन एक काले पाषाण का बना हुआ दुर्लभ ऋषिमंडल यंत्र ११ ॥ फिट व्यास का इससे प्रमाणित होता है कि हूमड़ो के पूर्वजो परम्परा से ऋषिमण्डल यंत्र की आराधना करते थे जो वर्तमान में भी हूमड़ समाज इसकी आराधना करता है।

यह ऐतिहासिक ऋषिमंडल है जिसके अभिषेक से डूंगरपुर के महा रावल को पुत्र प्राप्ति हुआ थी इससे पसन्न हो कर महाराज ने इस मंदिर का जिर्णोद्धार करवाया था।

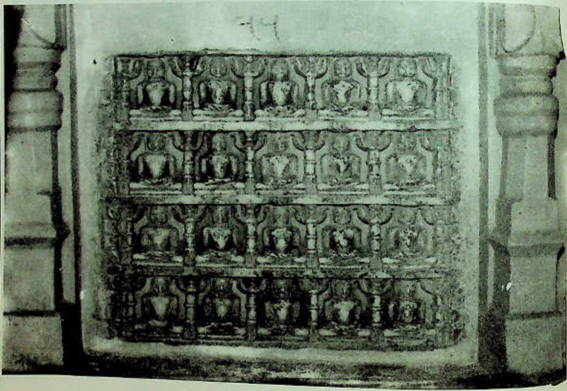

बीस तीर्थंकर के नाम

(१) सीमंधर (२) जुगमंधर (३) बाहु (४) सुबाहु (५) सुजात (६) स्वयंप्रभु (७) ऋषभानन (८) अनंतवीरज (९) सौरीप्रभ (१०) सुगुण विशाल (११) वज्रधार (१२) चंद्रानन (१३) भद्रबाहु (१४) श्री भुजंग (१५) ईश्वर (१६) नेमिप्रभु (१७) वीरसेन (१८) महाभद्र (१९) जसोधर (२०) अजितवीरज

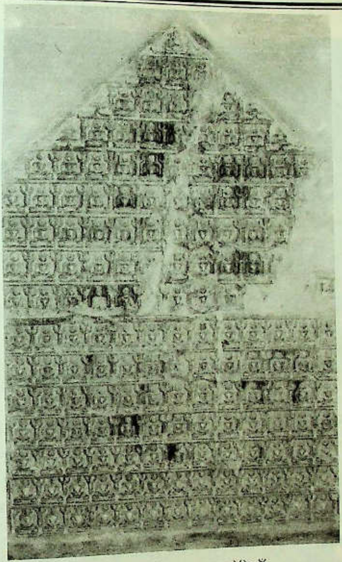

तीर्थंकर की २४ शासन देवियाँ

(१) चक्रेश्वरी (२) रोहिणी (३) प्रज्ञप्ति (४) वज्रश्रखंला (५) पुरुष दत्ता (६) मनोवेगा (७) काली (८) ज्वालामालिनी (९) महाकाली (१०) मानवी (११) गौरी (१२) गांधारी (१३) वैराही (१४) अनंतमती (१५) मानसी (१६) महामानसी (१७) जया (१८) विजया (१९) अपराजिया (२०) बहुरुपिणी (२१) चामुण्डा (२२) कुण्माणिडनी (२३) पद्मावती (२४) सिद्धायनी

हूमड इतिहास भाग २

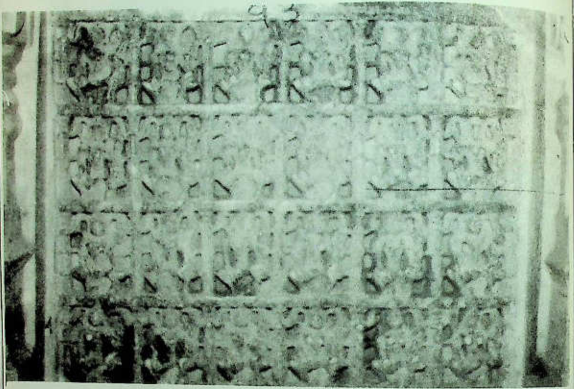

२४ तीर्थंकर के नाम :-(१) आदिनाथ (२) अजितनाथ (३) संभवनाथ (४) अभिनंदन (५) सुमतिनाथ (६) पद्मप्रभ (७) सुपार्श्वनाथ (८) चन्द्रप्रभ (९) पुष्पदंत (१०) शीतलनाथ (११) श्रेयांसनाथ (१२) वासुपूज्य (१३) विमलनाथ (१४) अनंतनाथ (१५) धर्मनाथ (१६) शांतिनाथ (१७) कुंथुनाथ (१८) अरनाथ (१९) मल्लिनाथ (२०) मुनिसुव्रत (२१) नमिनाथ (२२) नेमिनाथ (२३) पार्श्वनाथ (२४) महावीर

द्वादश बाहर चक्रवर्ती :- (१) भरत (२) सगर (३) मघवा (४) सनतकुमार (५) शान्ति (६) कुंथु (७) अर (८) सुभौम (९) पद्म (१०) हरिषेण (११) जयसेन (१२) ब्रह्मदत्त

नौ बलदेव :-(१) विजय (२) अचल (३) धर्म (४) सुप्रभ (५) सुदर्शन (६) नन्दी (७) नन्दिमित्र (८) राम (९) पद्म

नौ नारायण :- (१) त्रिपृष्ठ (२) द्विपृष्ठ (३) स्वयंभू (४) पुरु षोत्तम (५) पुरु षसिंह (६) पुरु षपुण्डरीक (७) दत्त (८) नारायण (९) कृष्ण

नौ प्रतिशत्रु :- (१) अस्वग्रीव (२) तारक (३) मेरक (४) मधुकैटभ (५) निशुम्भ (६) बलि (७) प्रहरण (८) रावण (९) जरासंघ

अति प्राचीन पर जिन प्रतिमा एक पाषाण खेड में

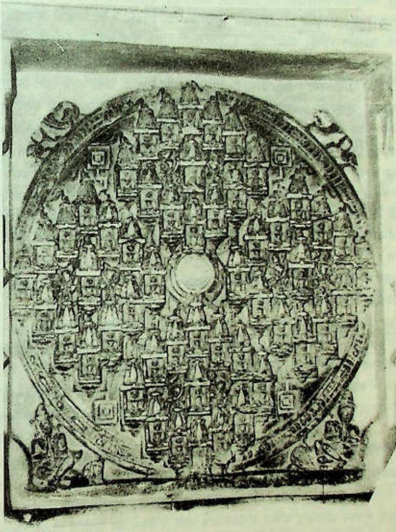

हूमड इतिहास भाग २

संगठन की परम्परा

ऐसा माना जाता है कि हूमड़ समाज ऐतिहासिक रुप से करीब २००० (दो हजार) वर्ष से अस्तित्व में है। इस संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं। हूमड़ समाज के समाजिक इतिहास में इसकी विशद् विवेचना की गयी है।

पर निर्विवाद रुप से तो सत्य ही है कि प्राचीन काल से ही क्षत्रिय जाति, जो के जैन धर्म का परिपालन करती हुई, राष्ट्र की समरसता को संयोजित करती हुई, ऐतिहासिक कारणों से खेडब्रह्मा एवं आसपास रहनेवाली इस जैन संस्कृति के परिपालक जाति ने अपने आपको हूमड़ नाम से सम्बोधित किया।

आगे चलकर किन्ही सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक कारणों को लेकर गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, कर्नाटर, मध्यप्रदेश एवं देश के विविध भागों में हूमड़ समाज बस गया। किन्ही परिस्थितियों में सारा समाज दशा-बीसा के नाम से हूमड़ शब्द के साथ जाना जाने लगा।

बासवाडा -डूंगरपुर, प्रतापगढ़, उदयपुर, कुशलगढ़, झाबुआ एवं गुजारात के संतरामपुर तथा दाहोद तक का एक ऐसा क्षेत्र, जो प्राचीन काल से ही सामाजिक तथा भौगोलिक रुप से एक ही था। यहां बसने वाले दशाहूमड़ दिगम्बर जैन समाज ने शांति - व्यवस्था एवं धार्मिक रुप से संगठित रहने हेतु १८००० दशा हूमड़ो साढ़ा बारह मंदिर बन्दीजी एवं चौखला संबंधी दिगम्बर जैन समाज संगठन की परम्परा लोकतांत्रिक ढंग से प्रारम्भ की। संगठन की स्थापना कब और कहां हुई उसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण तो उपलब्ध नहीं है पर पीढ़ी दर पीढी चली आ रही यह किवदंती कि अठारह हजार हूमड़ो की जाजम पर जो भी फैसले होते हैं वह सर्वमान्य होते है यह चरितार्थ करती है कि बहुत प्राचीन काल एवं मध्यकाल में भी हमारा संगठन मजबूत था।

संगठन के ढांचे का जो रुप वर्तमान में उपलब्ध है वह पुरानी प्राचीन परम्परा से ही चला आ रहा है जिसका दिग्दर्शन निम्न चार्ट से जाना जा सकता है :-

गांव स्तर पर समस्त पंचमहाजन दि. जैन दशाहूमड़ समाज का संगठन

कुछ गांवों के संगठन को मिलाकर मंदिर बन्दीजी चौखला जिसमें एक गांव पाटगांव (प्रमुख) माना जाता है उस मंदिर बन्दीजी में ३-४ गांव से लेकर १० गांव तक भी होते हैं।

अलग - अलग १२ मंदिर बन्दीजी एवं १ आधा मंदिर बन्दीजी हमारी मूल जन्मभूमि मिलाकर पूरा अठारह हजार दशाहूमड़ दिगम्बर जैन समाज जिसको साढा बारह मंदिर बन्दीजी के नाम से ही जाना जाता है।

परम्परा से हमारे इस सांस्कृतिक संगठन की राजधानी सागवाड़ा मानी जाती है। चूँकि ऐसी मान्यता है कि खेडब्रह्मा से चलकर क्षत्रिय हूमड़ दिगम्बर जैन समाज सुरक्षा के आयुधों के साथ चलकर खडगदा में मुकाम लगाकर खडग (तलवार) का दान देकर खडगदा क्षेत्र को नामांकित करता हुआ सागवाड़ा में अपना पहला मुकाम लगाकर वर्णित संगठन क्षेत्र गाँवों में बसने का उपक्रम प्रारम्भ किया। इस प्रकार सागवाड़ा सांस्कृतिक राजधानी के रुप में मान्यता प्राप्त रहा।

इस प्रकार संगठन के साढ़ा बारह मंदिर बन्दीजी का विवरण निम्नानुसार है।

(१) **आधा मंदिर बन्दीजी श्री खेडब्रह्मा** - हूमड़ समाज का उत्पत्ति स्थान।

(२) **दो मंदिर बन्दीजी श्री सागवाड़ा पाटगांव** - जिसके अन्तर्गत निम्न गांव सम्मिलित हैं - सागवाडा दाहोद, ठाकरडा, वरदा, ओबरो,घाटका-गांव, मांडव, आंतरी, कुवा, टामरिया, कोकापुर, पीठ, खडगदा, संतरामपुर, पाडवा।

(३) **एक मंदिर बन्दीजी श्री साबला पाटगाँव के अन्तर्गत** - साबला, मुंगेड़, रीछा, सरोदा, पालोदा, खोडन, गनोडा, मेतवाला, पादरडीबडी, सरेडीबडी, कोटडाबड़ा, गामडी (नटाउवां)।

(४) **एक मंदिर बन्दीजी श्री पारसोला पाटगाँव** - के अन्तर्गत पारसोला, धरियावद, मुंगाणा, खूंता, बोरिया, गामड़ी, नरावली, रींछा।

(५) **एक मंदिर बन्दीजी श्री घाटाले पाटगाँव के अन्तर्गत** - घाटोल, खमेरा, मोटागाँव, नरवाली।

(६) **एक मन्दिर बन्दीजी श्री परतापुर पाटगाँव के अन्तर्गत** - परतापुर, गढ़ी, मोर।

(७) **एक मंदिर बन्दीजी श्री डडूका पाटगाँव के अन्तर्गत** - डडूका, अरथूना, आजन, बोरी, आनन्दपुरी।

(८) **एक मन्दिर बन्दीजी श्री भिलूडा पाटगाँव के अन्तर्गत** - भिलूड़ा, जेठाणा, दीवाड़ाबड़ा।

(९) **एक मंदिर बन्दीजी श्री गलियाकोट पाटगाँव के अन्तर्गत** - गलियाकोट, चितरी।

(१०) **एक मंदिर बन्दीजी श्री तलवाड़ा पाटगाँव के अन्तर्गत** - तलवाड़ा, चन्दूजीका घड़ा, वजवाना, कुवाँला।

(११) **एक मंदिर बन्दीजी श्री झाबुआ पाटगाँव जिसके अन्तर्गत** - झाबुआ, राणापुर, थांदला, कुशलगढ़।

अन्य पंच समाज के गाँव जो स्वतंत्र हैं, परन्तु हमारे संगठन के अभिन्न अंग है उनका विवरण निम्नानुसार है -

श्री बांसवाड़ा श्री समाज पंच, श्री प्रतापगढ़ श्री समाज पंच
श्री जौलाना श्री समाज पंच, श्री खान्दू कालोनी श्री समाज पंच
श्री सलुम्बर श्री समाज पंच

उपरोक्त सभी साढ़ा बारह मंदिर बन्दीजी एवं पंच समाज के गाँव सभी संगठन से जुड़े हुये हैं। कभी कभी समय एवं परिस्थिति के अनुसार क्षेत्राधिकार में परिवर्तन भी हुये हैं, होते रहे हैं, एवं क्षेत्रमें नये बसने वाले गाँव श्री समाज के अंग श्री समाज की स्वीकृति से सम्मिलित भी होंगे जो हमारी समाज की लोकतांत्रिक प्रक्रिया, परम्परा एवं समता एवं सरसता के अनुरुप है।

सागवाड़ा के महारावल

वाग्वर (बागड़) देश का शाकपत्तनपुर (शाकवाट, सागवाड़ा) जैनधर्म का केन्द्र मध्यकाल के प्रायः प्रारम्भ से ही रहता आया है और १३वीं सदी से तो वहाँ मूलसंघी भट्टारको की गद्दी भी चली आ रही है। सागवाड़ा के महारावल जसवन्तसिंह ने १८३६ ई. में सागवाड़ा के नोगामी आटेकचन्द्र सुखचन्द तथा अन्य समस्त जैन महाजनों के आवेदन पर दो आज्ञापत्र (परवाने) जारी किये थे जिनमें से एक के अनुसार राज्य के समस्त घानियों को आदेश दिया गया था कि अपने कोल्हू और घानियाँ प्रत्येक पक्ष की द्वितीय, पंचमी,

हूमड इतिहास भाग २

अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी तिथियों में बन्द रहेंगें क्योंकि उनके चलाये जाने में हिंसा होती है। दूसरे परवाने के अनुसार राज्य के समस्त कलवारों (कलालों) को आदेश दिया गयाा था कि प्रत्येक अष्टमी और राज्य के चतुर्दशी को वे अपनी शराब निकालने की भट्ठियाँ बन्द रखेगे क्योंकि उनके कार्य में जीवहिंसा होती है। आज्ञा का उल्लंघन करने का दण्ड २५० रुपये (जुर्माना) निर्धारित किया गया। महारावल उदयसिंह ने जो सम्भवतया जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारी थे, साह्न माणकदास नोगामी, आदलीचन्द आदि सागवाड़ा के समस्त जैन महाजनों की प्रार्थना पर यह आदेशपत्र अगस्त १८५४ ई. के दिन जारी किया था कि भाद्रपद मास में पर्यूषण के १८ दिनों में अर्थात् भाद्रपद कृष्ण द्वादशी से भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी पर्यन्त राज्य भर में कोई भी व्यक्ति जीवहिंसा नहीं करेगा। बैलों आदि पर बोझ लादना और इन पशुओं को समय पर दाना पानी न देना भी हिंसा में सम्मिलित किये गये।

इस प्रकार के राजकीय परवाने अन्य अनेक राजपूत राज्यों और ठिकानों में यदा कदा प्रचारित होते रहते थे। और इतिहास की महत्वपूर्ण सबसे प्राचीन विरासत है।

आंतरी

श्री कलिकुंड़ पार्श्वनाथ बावन जिनालय दि. जैन मंदिर आंतरी (जिला डूंगरपुर राजस्थान पीन-३१४०३७ आँतरी अरावली पर्वत श्रेण्यों के बीच, वन उपवन, मोरन सरिता (नदी) के तिर पर अति हरियाली जडी बुटियों के क्षेत्र में बसा हुआ है।

हूमड़ समाज का यह गौरवशाली तीर्थ प्राचीन इतिहास के द्रष्टि से अत्यन्त महत्व का है हम हूमड़ इतिहास के प्रथम भाग में प्रमाणित कर चुके है कि वि. संवत् ७५० में हूमड़ सागवाडा आकर बसे इसका दूसरा इतिहास प्रमाण आँतरी में है। यहाँ पत्थर का बना श्री ऋषिमंडल यंत्र जो साडे ग्यारा फीट व्यास में यंत्र तंत्र से सज्जित वर्तमान में विद्नमान है जिस पर वि. संवत् ८०९ (८०९) अंकित है या देवेन्द्रकिर्ती निर्माण और थंबो पर संवत् ८१४-८११ है।

यह स्थल सागवाडा के पास है सागवाडा से फैलकर हूमड़ समाज नवीं सदी के प्रारम्भ यहाँ आकर बसे और उन्होंने यहाँ जिनालय बनाया। इसके साथ एक ऐतिहासिक तत्व यह भी है कि प्राचीन काल से नंदीसंघ के आचार्य गुणनंदी ने ५वी सदी में ऋषिमंडल यंत्र और उसकी पूजा आदि की रचना की तभी से सारा हूमड़ समाज ऋषिमंडल यंत्र पर विशेष श्रद्धा रखता है। खेडब्रह्मा से स्थांतर के समय ऋषिमंडल यंत्र और देवी पद्मावती की मूर्ति साथ में लाये होगें और अपनी अटूट श्रद्धा व्यक्त करके इस विशाल यंत्र की स्थापना की दूसरा हमारे इतिहास के लिये यहाँ प्राप्त संवत ८०९-८१४-८१५ अत्यन्त महत्व के है ये हमारे सागवाडा में संवत ७५० होने को विशेष प्रमाणित करते है।

यहाँ प्राचीन समय में दो तीर्थकर बावन जिनालय बने हुअे थे। १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुगलों द्वारा एक बावन जीनालय संपूर्ण तोड़ फोड़ कर दिया गया। दूसरे जिनालय की तोड फोड के समय एक चमत्कार हुआ जब देवी पद्मावती के सिर पर भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति को तोड़ा गया उस समय देवी पद्मावती के पेट से हजारो की तादाद में छोटे छोटे साँप निकल पड़े। जो देवी पद्मावती की वर्तमान पत्थर की मूर्ति में गोल २ छेद हो गये थे। उसके निशान वर्तमान में भी मौजूद है। जिससे आताताई भाग खडे हुए। मंदिर की कुछ मूर्तियों, हाथी, यक्ष, यक्षणी के सिवाय सारा मंदिर बचगया।

इस मंदिर का जीर्णोद्धार संवत् १५२५ वैशाख वदी १० को हुआ उसका ऐतिहासिक विवरण निम्न है:- डूंगरपुर के महाराणा मानसिंह को बहुत समय से पुत्र प्राप्त नही हो रहा था। उन्हें ऋषिमंडल यंत्र के अभिषेक का उपयोग और यंत्र की आराधना करवाने का कहा गया उसके फलस्वरुप महाराणा मानसिंह ने उपरोक्त मिती पर मंदिर में मूर्तियां, तोरण, यंत्र कलश भेट किया इसका उल्लेख शिलालेख पर है। श्री भट्टारक सोमकीर्ति के शिष्य आनंदकीर्ति द्वारा इस जिनालय की फिर से प्रतिष्ठा की गई। समाज को इस प्राचीन अमूल्य ऐतिहासिक बावन जिनालय का जीर्णोद्धार करके रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ कैलाशचन्द्र जैन ने अपने इतिहास " Jainisam in Rajsthan " में आंतरी डूंगरपुर बासवाडा, प्रतापगढ के विषय में ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित की है जो निम्न है :-

JAINIAM IN THE STATE OF DUNGARAPUR, BANSWARA AND PRATAPGARH :

These there states comprised the Vagada region Jainism enjoyed patronage and prospered under the rules of these dates. In their service, there were several Jaina ministers. They construced a number of temples and celebrated the consecration ceremony of the images with pomp and show which attracted large crowds. Some manuscripts were also prepared under their patronage. So popular was Jainism for some time there that even oilmen and people of similar castes observed the doctrine of abimsa out of respect for the Jaina population The existence of Jainism in this begion as early as the loth century is known ro as from an inscription of 994 A. D. engraved on the Jaina image.

II. HISTORICAL ROLE OF JAINISM

Jayati Sri Vagata Samghah The capital at that time was Vatapadra known at present as Baroda. The faith continued to thrive in this region which is indicated by the various evidence discovered there. On the rock of an ancient temple of Parsvanatha at this place, there are engraved figures of twenty four Tithankaras. The insscription of 1307 A. D. on it tells us that it was installed by Jinachandrasuri of the Kharatara Gachchha. The immage of Kesariyaji at Dhuleva in Mewar was carried from this place.

The ancient name of Dungarpur was Girivara. It was founded in about 1358 A.D. We know from the pravasagikatraya of Jayananda written in 1370 A.D. that in his days, there were five Jaina temples and about nine hundred Jaina families living there. In 1404 A.D. Prahalada, the minister of Ravala Pratapasimha, constructed a Jaina temple. After that, Jainism four manuscrips written in his reign, namely, the Panchaprasthana-visbamapadavyakhya 1423 A.D., Dvyasramabakavya Satika 1428 A.D., Dvitiyakhandagrantbagratriaya-Sakalagrantbe 1429 A.D. and Katbakosa of 1430 A.D. From the inscription of 1469 A.D. on the wall of the Jaina temple of Antri, it is clear that his chief minister Sabha built the temple of Santinatha and established an alms-house at Antri in 1438 A.D. In that temple, he set up brass images of Santinatha After Gajapala, his son Somadasa become the ruler. An inscription of 1461 A.D. engraved on the pedestal of big brass image of Adinatha at Achalagarh on Mt. Abu records that it was made at dungarpur during the reign of Ravala Somadasa and brought to Abu by the Samgha of Tapa Gachchha; and Sabba with wife karanade and their sons, salha and Malha set up the image. The consecration ceremony was performed by Lakshmisagarasuri of Tapagachchha.

After Sabha, his son Salha become the chief minister of king Somadasa. He gave liberal charities and in 1464 A.D. fed two thousand people everyday evidently at the time of famine. He repaired the temple of .

JAINISM RAJASTHAN

Parsvanatha at Giriputa. He erected a mandapa and Devakulikas in the temple built by Sabha at Antri. He also set up there an image of Marudevi seated on an elephant. The consecration ceremoney of this newly built portion was performed by Somavijayasuri in 1469 A.D. He started to construct a big Jaina temple at his native place Thana at a distance of five miles from Dungarpur but it was not completed. From the Prasastis of manuscripts, it is known that Siddba-Hema-bribadvritti VIII, Sri Sukumala-svami-cbaritram and Kavyakalpalatakavisiksbavritti were writtenduring the reign of Ravala Somadasa. There is also the monument of the Jaina saint of his time. The consecration ceremony of the Jaina was performed in 1462 A.D. and 1473 A.D. during his reign.

The son of Ravala Somadasa was Gangadasa who was succeeded by Usayasimha. There is an inscription of 1314 A.D. engraved on the wall of Jaina temple of Santinatha at Naugama (Banswara state) which states that it was built by the sons and grandsons of Dosi Champa of the Humbada caste during the reign of king Udayasimna. That Jáinism continued to thrive even in later times in the Dungarpur and Banswara states is evidenced by the images of the later period discovered here.

.Even in the Pratapagarh state, the Jaina religion was in a flourishing condition. There are several inscriptions of the 14th or 15th century found on the images in the Jaina temples of Deoli, Jhansadi and Pratapagarh. The inscription on the back of a brass image in the Jaina temple at Deoli of 1316 A.D. records Thakura Khetaka, resident of the town Dhandhalesverevataku and of Simala caste had the image of parsvanatha set up for the spiritual welfare of his father Thakura Phampha and mother Hansaladevi. Even afterwards, Jainism continued to make phenomenal progress. An inscription, engraved on a slab built in the wall of a Jaina temple at Deoli of 1715 A.D.

records that the oilmen of the town agreed to stop working their mills for 44 days in a year at the request of Saraiya and Jivaraja of the mahajana community in the reign of Maharavala Prithvismha. Another

II. HISTORICAL RILE OF JAINISM

inscription in the temple of Mallinatha at Deoli of 1717 A.D. records that when Maharajadhiraja Maharavala Prithisimha was ruling at Devagarh and Pahadasimha was his neri-apparent, the temple of Mallinatha was built by Singhavi Vardhamana, son of Singhavi Srrvarsha and his wife Rukmi. In the reign of Maharavala Samantasimha, the temple of Adinatha was built by Dhanarup, Manarupa and Abhayachandra in 1781 A.D. A grand cermony of the consecration of the images was also perfoemed at pratapagarh in 1867 A.D.

देवी पद्मावती की खेडब्रह्मा से लाई गई प्राचीन मूर्ती - आँतरी

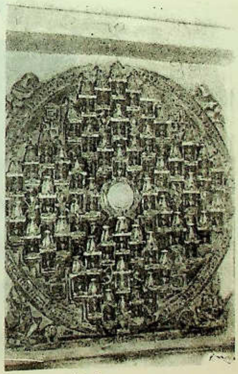

अति प्राचीन दुर्लभ मूर्ति - आँतरी

जूनामंदिर बाहर का दृश्य (सागवाड़ा)

मूलनायक श्री १००८ श्री आदिनाथजी भगवान (सागवाड़ा)

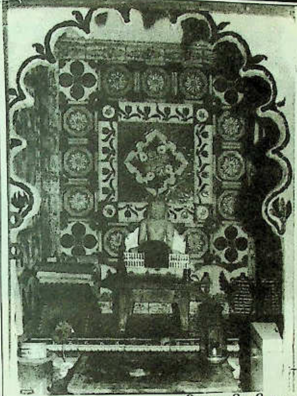

नसियाजी श्री चन्द्रप्रभु भगवान
सागवाड़ा (राजस्थान)

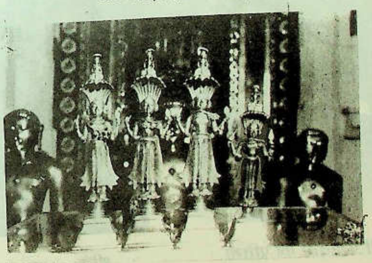

भगवान पार्श्वनाथ सहित देवी पद्मावती सागवाड़ा (राजस्थान)

श्री दि. जैन मंदिरजी
मानस्तम्भ छतरी में अर्थुना

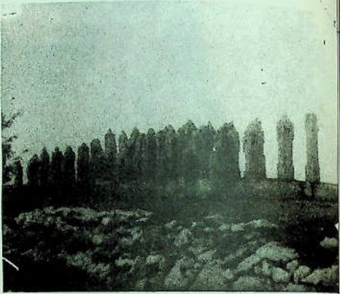

देवी पद्मावती की प्रतिमा
सागवाड़ा (राजस्थान)

श्री १००८ सहस्त्र फूट
चैत्यालय सागवाड़ा

सागवाड़ा में हूमड़ो का प्रथम जिनालय वि. संवत् ७३२

हूमड इतिहास भाग २

जूना मंदिरजी बाहर का दृश्य सागवाड़ा (राजस्थान)

सागवाड़ा नगर के मध्यमें स्थित गणपति मंदिर के पास हूमड़ो के आगमन का प्राचीन लेख

हूमड इतिहास भाग २

चितौड जैन मन्दिर और कीर्ति स्तम्भ

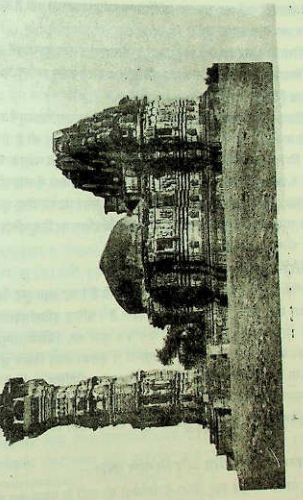

हूमड इतिहास भाग २

स्तम्भ

चितौड का कीर्तिस्तम्भ अपनी अनुपम रचना शैली, सूक्ष्म एवं कलापूर्ण शिल्प और अपनी आपृंगता के कारण भारतीय शिल्प में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है। संसार में किसी स्तम्भ में सूक्ष्म कला की दृष्टि इसकी तुलना एवं स्पर्धा करने की क्षमता नहीं है। भारतीय कर्लविदो की मान्यतानुसार चितौड़ दुर्ग में स्थित जय स्तम्भ के निर्माण की कल्पना के मूल में कीर्तिस्तम्भ ही था। परन्तु कला की दृष्टिसे वह भी इसकी कल्पना नहीं कर सकता। कीर्तिस्तम्भ वस्तुतः एकाकी नहीं है बल्की वह अपने सम्मुख खडे हुए जैन मन्दिर का मान स्तम्भ रुप है।

इसलिये इस परिचय में फैले हुऐ समूचे परिवंश में इसका मूल्यांकन करना होगा। कहना होगा, यह विकसित स्थापत्य और शिल्प कलाका प्रतिनिधित्व करने वाला सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है।

चितौड़का किला

चितौड़का विश्वविख्यात किला ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। मेवाड़के सिसौदियावंशी राजाओंकी राजधानी के रुपमें इसने शताब्दीयों तक ख्याति प्राप्त की है।

यह किला राजस्थानके दक्षिण पूर्वी पठारी भागमें अरावली पर्वतके दक्षिण-पूर्वमें स्थित है। समुद्र-तलसे यह १८१० फुट उँची पहाडीपर स्थित है। यह उत्तर-दक्षिण में साढ़े तीन मील लम्बा और आधा मील चौड़ा है। यह ६९० एकड़ भूमिपर बना हुआ है। इसके ऊपर चढ़नेके लिए घूमती लहराती एक सड़क जाती है। इसपर सात द्वार बने हुए है। दत्तासिंह चबूतरा के दक्षिण पर हिन्दूमन्दिर के निकट विख्यात जैन कीर्ति स्तम्भ गर्व से मस्तक उठाये खड़ा है।

जैन कीर्तिस्तम्भ

स्थानीय जनता इसे छोटा कीर्ति स्तम्भ कहती है। यह ७५॥ फूट उँचा है। नीचे इसका व्यास ३१ फुट है तथा ऊपर जाकर यह १५ फुट रह गया है। प्रसिद्ध इतिहासवक्ता कर्नल टाडको इस स्तम्भके अधोभागमें शिलालेखका एक खण्डित भाग प्राप्त हुआ था, जिसके अनुसार यह प्रथम जैन तीर्थकर आदिनाथको अर्पित किया गया था। शिलालेख में इसका काल विक्रम सं. ९५२ वैशाख सुदी पूर्णमासी गुरुवार दिया है। यह शिलालेख वहाँ जिनमन्दिर होना प्रमाणित करता है।

यह सात मंजिला है एवं शिल्पकलाका अनुपम उदाहरण है। इसके चारों कोनेपर तीर्थकर आदिनाथकी दिगम्बर मूर्तियाँ खडगासन ध्यान मुद्रामें ५ फुट अवगाहनाकी स्थिती हैं। इसके बाह्य भागमें जैन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

कीर्ति स्तम्भ का निर्माता और निर्माण काल :-

साहू नायक के पुत्र साहू जीजा ने तीर्थक्षेत्रो की यादो के पश्चात इस कीर्तिस्तम्भ का निर्माण कराया। उसकी धार्मिक रुचिका प्रमाण इससे अधिक क्या हो सकता है कि इस कीर्तिस्तम्भके अतिरिक्त उसने चित्रकूट (चितौड़) में भगवान चन्द्रप्रभुका विसाल शिखरबद्ध जिनालय बनवाया, तलहटी, खोहर, साचोर, बूढ़ा डोंगर आदि स्थानों पर भी जैन मन्दिर बनवाये। जीजाका पुत्र पुण्यसिंह हुआ। यह महाराणा हमीरका समकालीन था।

शोध-खोजके परिणामस्वरुप कुछ ऐसे प्राचीन लेख और शिलालेख उपलब्ध हुए है, जिनसे इस कीर्ति स्तम्भके निर्माता जीजाके सम्बन्धमें विशेष ज्ञातव्य बातो पर प्रकाश पड़ता है । एक लेख इस प्रकार है-

"स्वस्तिश्री संवत् १५४१ वर्षे शाके १४९१ प्रवर्तमाने कोधीता संवत्सरे उत्तरांगणें मासे शुक्ल पक्षे ६दिने शुक्रवारसे स्वातिनक्षत्रे योगे २ कारण मिथुनलग्ने श्री वराटदेशे कारंजानगरे श्री सुपार्श्वनाथ चैत्यालये श्री मूलसंघे सेनगणे पुष्करगच्छे श्रीमन् वृद्धसेनगणधराचार्य पारंपर्यादगत श्री देववीर महावादवादीश्वर रायवादीर्यकी महासकल विद्वज्जन सार्वभौम साभिमान वादीभसिंहाभिनव त्रैविद्य सोमसेन भट्टारकामामुपदेशात् श्रीबधेरवाल ज्ञाति खमउराडगोत्र अष्टोत्तरशत महोत्तुंग शिखर प्रासाद समृद्धरणे धीरः त्रिलोकश्रीजिनमहाविबोद्धारक अष्टोत्तरशत श्रीजिनमहाप्रतिष्ठाकारक अष्टादशस्थाने अष्टादशकोरिश्रुतमंडारसंस्थापक सपादलक्षवन्दीमोक्षकारक मेदपाटदेशे चित्रकूटनगरे श्रीचन्द्रप्रभुजिनेन्द्रचैत्यालयस्याग्रे निजभुजोपार्जितवित्तवलेन श्रीकीर्तिस्तम्भ्रोपक साह जीजा सुत शाह पूनसिंहस्य शाह देउ तस्य भार्या वूहतुकाइ तयोः पुत्राः चत्वारः तेषु प्रथम पुत्र शाह लखमण भार्या वाई जसमाई सुत संघवी इसराज भार्या हाराई द्वितीय पुत्र सा. भीम तृतीय पुत्र संघवी वीकू भार्या संघविणि गौराई चतुर्थ पुत्र-मदे भार्या पदमाई तयोः सुताः सं. पूनसी सा. धर्मसी सा. देदसी चैत्यालयोद्दरणधीरेण निज भुजोपार्जितवित्तानुसारणे महायात्रा प्रतिष्ठा तीर्थक्षेत्र -

जैनकीर्तिस्तम्भ और जीजासे सम्बन्धित तीन शिलालेखोंकी प्रतिलिपियाँ उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित है । एक शिलालेख, जो सम्भवतः किसी मन्दिरमें लगा हुआ था, वर्तमानमें चितौड़में गुसाईजीके चबूतरेपर स्थित समाधिपर लग रहा है । यह खण्डित है और काफी घिस गया है । यह शिलालेख का कुछ भाग निम्न है :-

"सूनुस्तस्य तु दीनाको वाच्छाभार्यासमन्वितः ।
अधः सू (क) रोति पूजायै पुरंदर स (श) चीरुचमू ॥२१॥
नायाख्यः सुनुरस्यासीत् नायका (को) धर्मकर्मणि ।
अथवा न............ कर्मसु सद्धं(वं) दा ॥२२॥
विशालकच्छ केतुच्छच्छायाछलध्वजव्रजैः ।
निजप्रासादसौधाग्रनृत्यतुंगकरैरिव ॥२३॥
तत्र यः कारयामास ....।
सिद्धांतोदधिवीचिवद्धनस्त्रद्धंद्रोयितंद्रोधुना
विक्यातोस्ति समग्रशुद्धचरितः श्रीधर्मव....यातिः ।
तत्कीर्तिः किल धीरवार्द्धिंनृपतिश्रीनारसिंहादिह
स्वीकृत्य प्रकटीचकार सततं हमीरवीरोप्यसौ ॥४४॥
तच्चरणकमलमधुपे मानस्तंभप्रतिष्ठया मानस् ।
प्रकटीचकार भुवने धनिकः श्रीपूर्णसिहोत्र ॥४५॥
पुण्यसिंहो जयेत्योष दानिनां जनकुंजरः ।
यत्कीर्तिकामिनीनेत्रे कज्जलं भुवनांवरम् ॥३७ ॥
किं मेरुः कनकप्रभुः किमु हरिर्गीर्वाण.......प्रियः
किं सोमः संकलं चकार.........पुण्योदयात् ।
पेयं धर्मधुराधरा (रो) विजयते श्रीपूर्णसिंहः कलै ॥३८॥

किं मेरुः किं नामेरुः किमतु सुरगुरुः किं हरिः किं मुरारिः
किं रुद्रः कि समुद्र किमुत च विलसच्चद्रिका चंद्रः चंद्रः चंद्रः चंद्रः
उन्नत्या स्वेष्टत्या विमलतरधिया सद्धि भूत्या विमल्या
गोनीत्या रत्नभूत्या सकलतनुतया पूर्णसिंहः पृथिव्यामु ॥३९॥
ध्येयस्तस्य विसालकीर्तिमुनिपः सारस्वतश्रीलता-
कंदोद्भेदधनायमामवधनः स्याद्वादविद्यापतिः ।
वर्गत्यासवर्गचोविलोमविलसद्दंभोलिदीर्यत्यरव
क्षोणीच्चत्समयास्तपोनिधिसावासीद्धरित्रीतले ॥४०॥
कतार्काकाछँ (र्क) श्यं कृसित परवादिद्विषमदं
क्रं निः श्रीमत्प्रेमप्रचुररसनिस्यंदिकविता ।
उपन्यासप्राप्ते क्व च विहितवर्गव्यजनिता
मनोगम्यं रम्यं श्रुतमिह यदीयं विलसितम् ॥४१॥
योगानंगक्षिनेत्रस्त्रिभुवनरचनानूतनेपि त्रिनेत्रो
मीमांसावाग्निरोधप्रकटनदिनकृत्, सांख्यमत्तेभसिंहः ।
उद्यद्वोद्वाहिदपंस्फुरदजगरुडः प्रौढ्याधीरुशौल-
श्रेमीसंपातशंपाकलितवस्वचोववर्णिनी वल्लभो यः ॥४२॥
तत्पुत्रः शुभकीर्तिरुर्जिततपोनुष्टाननिष्ठापतिः
श्री संसारविकारकारणगुणस्तृष्यन्मनोदेवतः ।
प्रारब्धाय पदप्रयाणकलसत्पंचाक्षरोच्चारण-
पुत्यत्कीर्ति निर्भवे हिमककृक्षब्धत्समाद्याब्धिकः ॥४३॥

इस लेख के अनुसार पुण्यसिंह (पूर्णसिंह) के धर्मगुरुका नाम भट्टारक विसालकीर्ति था। वे कुन्दकुन्दान्वय और सरस्वतीगच्छको थे। वे स्याद्वादविद्यापति कहलाते थे। वे वादी, उपान्यासके कर्ता और परवादियोंका गर्व दलन करनेवाले थे। वे षड दर्शनोंके पारगामी विद्वान थे। इनके शिष्य भट्टारक शुभकीर्ति हुए। ये प्रकाण्ड विद्वान् थे। हमीर नरेश इनसे बड़े प्रभावित थे। मानस्तम्भ पूर्ण होने पर पुण्यसिंहने भट्टारक धर्मचन्द्रसे प्रतिष्ठा करायी।

इस शिलालेखसे कुछ महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश पड़ता है।

(१) जीजाने मानस्तम्भ (कीर्तिस्तम्भ नाम न देकर लेखमें इसे मानस्तम्भ कहा गया है) को बनवाना प्रारम्भ किया था, किन्तु उसे पूर्ण नहीं करा सका और उसकी मृत्यु हो गयी। स्तम्भका निर्माण -कार्य जीजाके पुत्र पुण्यसिंहने पूर्ण कराया।

(२) इस स्तम्भकी प्रतिष्ठा भट्टारक धर्मचन्द्रने करायी। ये भट्टारक मूलसंघ बलात्कारगण, (जिसका अपर नाम सरस्वतीगच्छ है) परम्पराके थे।

भट्टारक धर्मचन्द्रकी गुरु-परम्पराके सम्बन्धमें कुछ मूर्ति-लेखों जौर शिलालेखोंसे प्रकाश पड़ता है। चितौड़ में प्राप्त एक खण्डित लेखमे, जो विक्रम सं. १३५७ (ई. सं. १३००) का है, इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है।

"मूलसंघ-नन्दिसंघ-बलात्कारगणमें कुन्दकुन्दकी आचार्य परम्परामें केशवचन्द्र (जो तीन विद्याओं में विसारद थे तथा उनके ऐके सौ एक शिष्य थे) देवचन्द्र, अभयकीर्ति, वसन्तकीर्ति, विशालकीर्ति, शुभकीर्ति, और धर्मचन्द्र हुए। इस लेखमें पुण्यसिंहका भी नाम आया है। लेखमें कुल २५ पंक्तियाँ हैं तथा २९ श्लोक है।

देवगढ़के मन्दिर नं. १४ के एक स्तम्भ लेखमें मूलसंघ कुन्दकुन्दाचार्यान्वय के केशवचन्द्र, अभयकीर्ति तथा वसन्तकीर्तिके नाम अंकित है।

चितौड़के उपर्युक्त लेखमें विशालकीर्ति, शुभकीर्ति और धर्मचन्द्रका उल्लेख है।

भट्टारक धर्मचन्द्रकी प्रशंसामें एक लेखमें निम्नलिकित श्लोक उपलब्ध होता है।

" श्री धर्मचन्द्रोडजनि तस्य पट्टे हमीरभूपालसमर्चनीयः।
सैद्धान्तिकः संयमसिन्धुचन्द्रः प्रश्च्यातमाड़ात्म्यकृतावतारः" ॥२४॥

अंजनगाँवके बलात्कारगण मन्दिरमें एक हस्तलिखित पदावली है, जिसमें भट्टारक धर्मचन्द्र की आयु-गणना, उनका समय और जाति आदिका विवरण दिया गया है। इससे न केवल भट्टारक धर्मचन्द्रके काल-निर्णयमें सहायता मिलती है, अपितु चितौड़के कीर्ति-स्तम्भकी प्रतिष्ठा का भी काल-निर्णय किया जा सकता है क्योंकि उसकी प्रतिष्ठा इन्हीं भट्टारकजीने करायी थी। पदावलीका पाठ इस प्रकार है -

" संवत १२७९ श्रावण सुदि १५ धर्मचन्द्रजी गृहस्थ वर्ष १८ दीक्षा वर्ष २४ पट्ट वर्ष २५ दिवस ५ अन्तर दिवस ८ सर्व वर्ष ६५ दिवस १२ जाति हूँबड़ पट्ट अजमेर।"

भट्टारक धर्मचन्द्रके सम्बन्धमें इतना स्पष्ट विवरण अन्यत्र कहीं देखनेमें नहीं आया। विक्रम सं. १२७१ (ई. सं. १२१४) में वे पट्टपर आसीन हुए और २५ वर्ष तक पट्टपर रहे अर्थात् वे सं. १२७१ से १२९६ (ई. सं. १२१४ से १२३९) तक भट्टारकपदपर रहे। कीर्तस्तम्भ की प्रतिष्ठा उन्होने इसी अवधि में करायी थी। अतः कीर्ति-स्तम्भका निर्माणकाल निश्चित तिथि ज्ञात न होनेपर भी ईसाकी तेरहवी शताब्दी निश्चित होता है। श्वेताम्बर लेखकोने इस कीर्ति स्तम्भको दिगम्बर पूना (पुण्यसिंह) द्वारा बनवाया हुआ माना है। संवत् १५६६ के पूर्व रचित जयहेमकृत चितौड़ चैत्यपरिपाटीमें लिखा है -

"हूंबड़ पूना तणी धूआ तेणि ए मति मंडाअ।
कीर्तिस्तम्भ करावि जात मा हरी सूखडीअ।
सात मुँहि सोहामणीइ विव सहस दोई देखि।
पंखी पाछा सचरिआ ए वंदी वीर विशेष ॥१८॥

इसी प्रकार संवत् १५७३ में गयंदि रचित चितौड़ चैत्य परिपाटीमें इस स्तम्भके सम्बन्धमें इस प्रकार उल्लेख है -

"पासइ हूंबड़ पूनानी सुता दे वात कहइ इक तात तात रे।
सूखडी नइ धन वेगि करावीउ के कीरतिथंम विख्यात रे।
चउपरि चोखी चिहु परि कोरणी रे ऊँचउ अति विस्तार रे।
चडता जो भुंइ सात सोह मणी रे विंव सहसदोई सार नर ॥

ढाल - हवइदिगिंवर देहरइ रे तिहां जे नवसइ विंव ।
भामंडल पूठइ भलउ रे छत्रत्रय पडिविंव ।
अवियां पूजइ प्रभु पास एतु पीरइ मनकी आस ।
चर्चो चंदन केवडइ रे गोरी गावइ रास । भावियां पू० ॥"

इन दोनों रचनाओं में से पहली रचनामें बताया है किहूमड़ पूनाने कीर्तिस्तम्भ बनवाया । वह सातों भुवनोंमें विख्यात था और उसमें दो हजार जिनबिम्ब थे । तथा दूसरी रचनामें बताया है हूमड़ पूनाकी पुत्रीने अपने पितासे कहा आप इस विख्यात कीर्तिस्तम्भको पूरा करा दीजिए । इससे धनकी बेल सूखेगी नहीं। इसे अत्यन्त कलात्मक और ऊँचा बनवाइए, जिससे इसकी सातों भुवनोंमें कीर्ति हो । इसमें दो सहस्र बिम्ब विराजमान कराइए ।

वहाँ पार्श्वप्रभुका एक दिगम्बर जिनमन्दिर था, जिसमें ९०० जिनबिम्ब थे। भामण्डल, तून छत्र भगवानके उपर सुशोभित थे । भव्यजन पार्श्वप्रभुकी पूजा करते है । चन्दन, केवड़ा चढाते हैं । ये प्रभु मनकी आशा पूरी करते है ।

इन श्वेताम्बर मुनियों द्वारा विरचित रचनाओंसे भी सिद्ध है कि कीर्तिस्तम्भ दिगम्बर शिल्प है, उसको पुण्यसिंहने अपनी पुत्रीके कहनेसे पूरा कराया था । उस स्तम्भमें २०००जिनबिम्ब थे । वहाँ एक पार्श्वनाथ दिगम्बर मन्दिर था, जिसमें ९०० जिनबिम्ब विराजमान थे ।

From : Jain Inscriptions of Rajstan by R.V. Somani

Date of Constraction of Jain Kritisthambh at Chitod Quite old V-E-918 (816 AD)

Important Piece of art a different of Chandra Prabha Chaityalaya now known as Mahaveer Temple.

76' H-H 30' WIDE at BSE 50' A TO P

In a Annual Report onIndian Ehigraply year 56 - 57 P. 58 - V.E. 1357 (1300 AD) noted by archacological Survey of India. from chitod mention a detail account of Digamber Jain Acharya of Mulchand Bhatarakgan of Tradition of Kund - Kund

It mention (1) Abhaykirti
(2) Vasant kirti
(3) Vishal kirti
(4) Shubh kirti
(5) Dharmachandra.

अतिशय क्षेत्र बिजोलिया

इस पार्श्वनाथ जैनमन्दिरके सम्बन्धमें इतना ही ज्ञात हो सका है कि जिनदास शाहका बनवाया हुआ था । गोम्मटसार टीकाकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि इस टीकाके कर्ता भट्टारक नेमिचन्द्र लाला ब्रह्मचारी के आग्रहवश गुजरात से आक़र चित्रकूटमें इसी पार्श्वनाथ मन्दिरमें ठहरे थे । यह टीका वी. सं. २१७७ (ई. स. १६४१) में समाप्त हुई थी । भट्टारक नेमिचन्द्र उससे पूर्व ही उक्त मन्दिरमें गये होंगे । इससे प्रतीत होता है कि उक्त मन्दिर बहुत विख्यात था और वह १७वीं शताब्दीमें भी विद्यमान था ।

मार्ग और अवस्थिति (बिजोलिया)

राजस्थान प्रदेशके भीलवाड़ा जिलेमें उपरमाल पगरनेके निकट श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बिजोलिया अवस्थित है । इस नगरकी स्थापना हूण जातिके किसी राजाने की थी । स्थानीय अनुश्रुति के अनुसार इस नगरके संस्थापक राजाका नाम औन या हूम था । इन हूणोंको चौहानों या महलातोने पराजित करके यहाँसे उखाड़ फेंका । इनके बाद यहाँका शासन-सूत्र राज या रावल नरेशोंके हाथों में आ गया । ये उज्जैन या धारके परमारवंशो नरेशोंके वंशधर थे । जब दिल्लीके सुल्तान मुहम्मद तुगलकने मालवापर अधिकार कर लिया उस समय ये परमार इधर-उधर चले गये । उनमें से कुछ अजमेर और कुछ दक्षिण भारतकी ओर चले गये । बिजोलियाके शासक राव भी परमार थे और ये मूलतः आगरा-बयानाके मध्यमें सिथित जगनेर के रहनेवाले थे । जगनेरके राव अशोक सीसोदिया शासन कर रहे थे, ये उनके यहाँ आये । राजा अमरसिंहका विवाह राव अशोक की पुत्रीसे हो गया । राणाने प्रसन्न होकर रावको बिजोलियाका प्रदेश दे दिया । तबसे यहाँ पर सन् १९४८ में रियासतोंके एकीकरण तक ये ही परमार राव नरेश शासन करते रहे ।

मूर्ति निर्माण का इतिहास :-

शिलालेखो के लोलर्क को स्वप्न आया । स्वप्न के अनुसार निर्दिष्ट स्थानपर स्वयं ज्योहीं वह जगह खोदी, त्यों ही कुण्डसे अकृत्रिम स्वयंभूत भामण्डल युक्त अत्यन्त शोभनीय पार्श्वप्रभुके दर्शन हुए । लोलर्कके पिता सीयक को जब यह समाचार मिला तो वह तो प्रभुमुदित मनसे यहाँ आया । उसके आने पर कुण्डमें से पदमावती, क्षेत्रपाल, अम्बिका, ज्वालामालिना और धरणेन्द्रकी मूर्तियां निकली ।

तब लोलर्कने अपने गुरु श्री जिनचन्द्र सूरिके परामर्शसे यहाँ पार्श्वनाथ स्वामीका विशाल जिनालय बनवाया और इस तीर्थकी स्थापना की । शिलालेखके अनुसार लोलर्क श्रेष्ठीने यह मन्दिर सप्त आयतनयुक्त बनवाया । इन मन्दिरकी चौहद्दी इस प्रकार थी पूर्वमें रेवती नदी और देवपुर, दक्षिणमें मठस्थान, उत्तरमें कुछ और दक्षिणोत्तरमें नाना वृक्षोंसे भूषित वाटिका ।

·इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १२२६ फाल्गुन कृष्णा ३ गुरुवार, हस्त, नक्षत्र, घृति योग तथा तैतिल करण में हुई । इस मन्दिर के मुख्य शिल्पी का नाम सूत्रधार हरसिंगका पौत्र, पाल्हष्टाका पुत्र आहड़ था ।

दूसरा शिलालेख

दायीं ओर के मानस्तम्भ इत्कीर्ण द्वितीय शिलालेख इस भाँति है श्री गुरुभ्यो नमः । श्रीमत्परमगंभीगं स्याद्वादमोघलांछनं। जीयात्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनाशासनं ॥१॥ श्री बलात्कारगणे । सरस्वतीगच्छे श्री महि (मूल) संघे चुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्रीवसंतकीर्तिदेवस्ततत्पट्टे भट्टारक श्री विशालकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टराक श्रादमनकीर्ति देवारत्तत्पट्टे भट्टारक धर्मचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री रत्नकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रेदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री पद्मनंदिदेवास्ततपट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवाः कस्य तीर्थकरस्येव महिमाभुवना तिगः। रत्नकीर्तियातिस्तुत्यः स न केषाम्.... ॥१॥ अहंकार स्फारो भवदमति वे..... विबुधो लसत्कलांतश्रेणी क्षपण निधनाकि घृतिचुरः। अधीतो जैनेन्द्रे जनि रजनिनाथ प्रतिनिधिः प्रभाचन्द्रः सांद्रोदयशमितताय व्यतिकराः ॥२॥ श्री भत्प्रभाचन्द्र मुनीचन्द्र पट्टे लब्ध प्रतिष्ठा प्रतिभागरिष्ठः विशुद्धसिद्धांतरहस्यरत्न रत्नाकरो नंदतु पद्मनंदि ॥३॥ पद्मनंदि मुने पट्टे शुभचन्द्रो यतीश्वरः । तर्कादिक विद्यासु (पदं) दारोरित साम्प्रतं ॥४॥ पट्टे श्री यति पद्मनंदि विदुषक्ष चारित्रचूडामणिः सप्रास्या..... कैरव कुलं तुष्टि परां नीतिवान् । वाणी लब्ध.....वः प्रसादमहिमा श्री मच्छुमे दुर्गुणी मिथ्याध्वांत विनाशनैक सुकरः स.....च चिन्तामणिः ॥.....॥ आर्या वाई लोकसिरी, विनयसिरि तस्यां शिक्षणो वाई चारित्रसिरि । वाई चारित्रकी शिक्षणी वाई आगमसिरि वाईचरि..... तस्यां इयं निषेधिका आचन्द्र तारकाक्षयं ॥ संवत् १४८३ वर्षे फाल्गुन सुदि ३ गुरौ । निषेधिका जैन आर्या वाई आगम श्री शुभमस्तु ।

तीसरा शिलालेख

बायीं ओरके मानस्तम्भ पर उत्कीर्ण शिलालेख हस भाँति है -

अर्हद्भ्यो नमः । स्वायंभुंव चिन्दानन्दं स्वाभावे शाश्वतोदयम्। धामध्वम्ततमस्तोभ ममेयं महिम स्तुभः ॥१॥ धौव्योपेतामपि व्ययोदययुतं स्वात्म क्रम.....लोक व्यापि परं यदेकमपि चानेकं च सूक्ष्ममूर्हत् । श्री चन्दामृतपूर पूर्णमपि यच्छून्यं स्वसंवेदनमे । ज्ञनादगम्यमगम्यमप्यभि मत प्राप्तयो स्तुवे ब्रह्मतात्॥२॥ त्वमके सोमोवृत (भूत) लेस्मिन् धनान मूर्तिं किमु विश्वरुपः । स्त्रष्टा विशिष्टार्थ विभेद दक्षः स पार्श्वनाथस्तनुतां श्रियं वः ॥३॥ श्री पार्श्वनाथ क्रियता श्रियं वो जगत्स्यो नन्दितपादपद्मः । विलोकिता येन पदार्थ सार्थः निजेद सज्ञानविलोचनेन ॥४॥ सदवृताः खलु यत्र लोकमहिता मुक्ता भवन्ति श्रियोः रत्नानामपि क्षद्रये सुकृतिनो यं सर्वदोपासते। सद्धर्मामृत पूर पुष्टसुमनस्याद्वादचन्द्रोदयाः कांक्षो सोत्रसनातनो विजयते श्री मूलसंघोदधिः ॥५॥ श्री गौतमस्यादि

१. एपिग्राफिका इंडिका भाग २६, पृ. १० २।

गणीश वंशे श्री कुन्दोकुन्दो हि मुनिर्वभव। पदेदीवेनकेषु गतेषु तस्माच्छी धर्मचन्द्रो गणिषु प्रसिद्धः ॥६॥ भवोद्भवपरिश्रम प्रशमकेलि कौतूहली। सुधारस समः सदा जयति यद्वचः प्रकमः स मे मुनिमतल्लिका...... विकच मल्लिकाजित्वर, प्रसृत्वर यशोभरो भवतु रत्नकीर्तिर्मुदे ॥७॥ प्रसर्प्यद्वेद्यन्ति प्रशमन पटुः सौगतशिरः करोटोकुट्टाककषिखरचार्वानकरः। अहंकारः स्मेरः स्मरदमन दीक्षापरिकरः। प्रभाचन्द्रो जीयाज्जिनपमितांभोनिधिविधुः ॥८॥ श्रीपद्मनन्दिविद्वन् विक्याता त्रिभुवनेडरि कीर्तिस्ते । हारति हीरति हसति हरोत्तंस मनुहरित ॥९॥ एकै तर्कवितर्ककर्कशधियः केचित्पंर सादसा अन्ये लक्षण लक्षणा परम्..... घोरेय सारः परे । सर्वग्रन्थरहस्यधौतधिषणो विज्ञानवाचस्पतिः क्षोणीमण्डल मण्डनं भवति ही श्री पद्मन्दिर्गुरुः ॥१०॥ श्री मप्प्रभोन्दुपट्टेस्मनिपद्मनन्दो यतृश्वरः। तत्पट्टाम्बुधि सेवीव शुक्षचन्द्रो विराजते ॥११॥ गम्भीरध्वनि सुन्दरे समकरे चारित्रलक्ष्यष्याकरे कारुण्मृत देवतै गुणगणश्रेणी मणि दुस्तरे। स....तमुल्लसत्....... मविला कुले सागरे, पट्टे श्रीमुनि पद्मनंदि...प्रभुन्दर्गुणी ॥१२॥ महाव्रतैः योडत्र विभूषिटोडपि संसक्तचेताः समितौ गरिष्ठः। तथा हि कीर्त्या समलिंगकश्च श्री हेमकीर्तिरभवद्यतीन्द्रः ॥१३॥ शिष्योडयं शुभचन्द्रस्य हेमकीर्तिमहान्सुधूः येन वाक्यामृते नापि पोषिता भव्यपादपाः ॥१४॥ नि....धिकेय.....सकला........ विश्द्धा श्री हेमकीर्तियतिनः सुसिद्धः अस्तां च तावज्जगती तलेडस्मिन् यावत् स्थरौ......चन्द्रदिवाकरो च ॥१५॥

सं. १४६५ वर्षे फाल्गुन सुदि २ बुधौ

शिलालेखोंमें उल्लिखित भट्टारक

इस क्षेत्रपर उपलब्ध शिलालेखोंमें जो निषेधिका स्तम्भोंमें उतकीर्ण है, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ, मूलसंघ कुन्दकुन्दाचार्यान्वयके, भट्टारकोंकी परम्परा दी गयी है, वह इस प्रकार है :-

१.	वसन्तकीर्ति	(संवस् १२६४)
२.	विसालकीर्ति	(संवत् १२६६)
३.	दमनकीर्ति	
४.	धर्मचन्द्र	(संवत् १२७१-१२९६)
५.	रत्नकीर्ति	(संवत् १२९६ से १३१०)
६.	प्रभाचन्द्र	(संवत १३१० से १३८४)
७.	पद्मनन्दि	(संवत १३८५ से १४५०)
८.	शुभचन्द्र	(संवत् १४५० से १५०७)
९.	हेमकीर्ति	

इनमें प्रथम चर्याके भट्टारक वसन्तकीर्ति ने दिगम्बर मुनियों पर म्लेच्छों आदि द्वारा उपसर्ग होते देखकर समय नग्नताको ढँकने और चर्यासे लौटनेपर आच्छादन छोडकर पुनः दिगम्बरत्व धारण करनेका उपदेश दिया था, और उसे मुनियोंके लिए अपवाद वेष बताया था। जैसा कि षट्प्राभृत टीकामें समुल्लेख है - कलौ किल म्लेच्छादयो नग्नं दृष्ट्वोपद्रवं यतीनां कुर्वन्ति तेन मण्डपदुर्गे श्री वसन्तकीर्तिना चर्यादिवेलायां तट्टीसादरादिकेन शरीरमाच्छाद्य चर्यादिक कृत्वा पुनस्तन्मुंचन्तीत्युपदेशः कृतः संयमिनां इत्यपवादवेषः। बलात्कारदेव मन्दिर अंजनगाँवकी हस्तलिखित पट्टावलीमें इन भट्टारकके सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख मिलता है -

संवत् १२६४ माह सुदि ४ वसन्तकीर्तिजी गृहस्थ वर्ष १२ दीक्षा वर्ष २० पट्ट वर्ष मास ४ दिवस २२ अन्तर दिवस ८ सर्व वर्ष ३३ मास ५ बघेरवाल जाति पट्ट अजमेर।

इस सूचनाके अनुसार भट्टारक वसन्तकीर्ति संवत् १२६४ में पट्टाधिरुढ हुए और वे केवल १ वर्ष ४ माह २२ दिन ही पट्टाधिपति रहे। किन्तु उस कालमें दिगम्बर मुनियोंने उनका उपदेश स्वीकार किया, इससे प्रतीत होता है कि उस युगमें वे अत्यन्त प्रभावशाली थे।

इनकी परम्परामें प्रायः सभी भट्टारक बड़े प्रभावशाली हुए। शुभकीर्ति भट्टारकको किसी मुसलमान बादशाहने नमस्कार किया था। भट्टारक प्राभचन्द्र सं. १३१० पूष शुक्ला १५ को भट्टारक पदपर प्रतिष्ठित हुए। ये जातिसे ब्राह्मण थे। इनसे दिल्लीमें मुहम्द शाह बहुत प्रसन्न था। भट्टारक पद्मनन्दिके तीन शिष्य हुए, जिन्होने तीन भट्टारक परम्पराएँ चलायी भट्टारक शुभचन्द्रने बलात्कार गणकी दिल्ली-जयपुर शाखाकी स्थापना की। इनका पट्टाभिषेक संवत् १४५० माद शुक्ला ५ को हुआ। ईडर शाखाका प्रारम्भ भट्टारक सकलकीर्ति से हुआ। तथा भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिने सूरत शाखा चलायी।

हूमड इतिहास भाग २

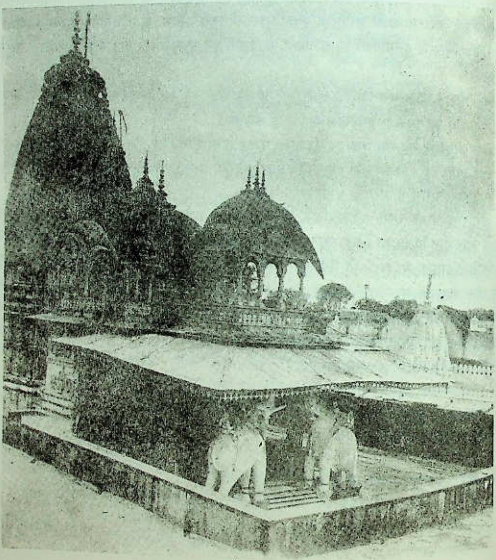

झालरापाटन : मंदिर का बाहरी दृश्य

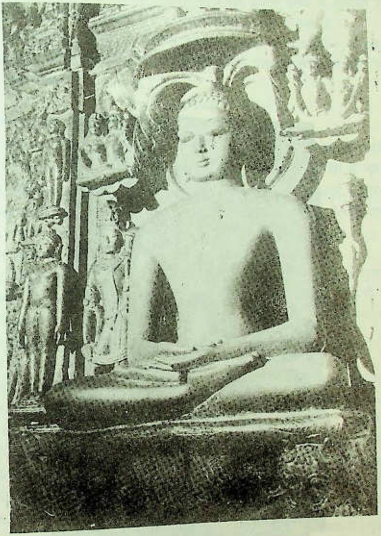

चांदखेडी : भगवान महावीर की मूर्ति

झालरापाटन नसियामें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्राचीन मूर्ति

झालरापाटन का शान्तिनाथ दि.जैन मंदिर

हूमड़ इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण मंदिर है इसे हूमड़ समाज को श्रेष्ठी पीपासा हूमड़ ने वि. संवत् ११०५ में चार लाख रुपया खर्च करके बनावाया था। प्राप्त प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार इसकी प्रतिष्ठा जयदेवस्वामी ने करायी थी इस प्रतिष्ठा में २८ लाख रुपया खर्च किया गया था।

इससे प्रमाणित होता है कि ८ वी शताब्दी में सागवाड़ा आकर हूमड़ समाज १२वी शताब्दी के प्रारम्भ में सारे राजस्थान में फैल चुका था और उसने अपने समाज में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था इसका उदाहरण श्रेष्ठी पीपासा है।

झालरापाटन

मार्ग और अवस्थिति :-

श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र झालरापाटनमें अवस्थित है। झालरापाटन प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र है। यह पश्चिम रेलवे की दिल्ली-बम्बई मेन लाइनपर झालावाड़ रोड़ से २८ कि.मी. दूर है। स्टेशन से नगदर तक पक्की सड़क है और नियमित बस सर्विस है। कोटा, अजमेर, जयपुर, इन्दौर आदि शहरोंके साथ इसका सड़क द्वारा सम्पर्क है। शहरोंमें उपलब्ध सभी आधुनिक सुविधाएँ यहाँ उपलब्ध हैं। यह झालावाड़ जिलेका हेडक्वाटर है।

अतिशय क्षेत्र

यहाँ भगवान शान्तिनाथका एक विशाल मन्दिर बना हुआ है। इस मन्दिर में मूलनायक भगवान् शान्तिनाथकी १२ फूट ऊँची अत्यन्त सौम्य खड्गासन प्रतिमा है। इसके दर्शन मात्र से मनमें शान्तिका उद्वेग होने लगता है। अनेक भक्तजन इनके समक्ष अपनी व्यथाका निवेदन करते हैं और कहा जाता है कि भक्तिभावपूर्वक की गयी उनकी प्रार्थनासे कामना पूर्ण हो जाती है।

इस मन्दिर के बाहर बने हुए तीन और बरामदोंमें १५ वेदियाँ है।

प्राचीन कालमें यहाँ भगवान् शान्तिनाथका एक प्रसिद्ध मन्दिर था, जिसका निर्माण सन् १०४६ में शाह पापा हूमड़ने कराया था और उसकी प्रतिष्ठा भावदेव सूरिने की थी। सात सालसे पहाडीपर स्थित स्तम्भके सन् ११०९ ई. के शिलालेखमें श्रेष्ठी पापाकी मृत्युका वर्णन मिलता है। सम्भवतः ये श्रेष्ठी पापा और शान्तिनाथ मन्दिर के निर्माता पापा एक ही व्यक्ति हैं। सन् १११३ के शिलालेखमें श्रेष्ठी साढिलकी मृत्युका उल्लेख मिलता है। सम्भवतः श्रेष्ठी पापा और श्रेष्ठी साढिलके मध्य पारिवाहिक सम्बन्ध था। प्राचीन कालमें इस मन्दिरकी बहुत ख्याति थी। अनेक श्रावक और मुनिजन इसके दर्शनोंके लिए रहते थे। सन् १०४७ के एक शिलालेखमें एक यात्रीके नामका उल्लेख मिलता है।

उपर्युक्त मन्दिरके स्थानपर ही वर्तमान मन्दिरका निर्माण हुआ है, ऐसा लगता है। मूलनायक भगवान शान्तिनाथ की मूर्ति प्राचीन मन्दिरकी ही मूर्ति है और इसकी प्रतिष्ठा सन् ११०३ में हुई थी, ऐसा विश्वास किया जाता है। इसका मूर्तिलेख पढ़ा नही जा सका है।

मन्दिर के द्वारपर दो विशाल श्वेत वर्ण हाथी बने हुए हैं। इतने विशाल पाषाण-गज अन्यत्र कही देखनेमें नहीं आये। यहाँ हस्तलिखित ग्रन्थोंका एक विशाल शास्त्र भण्डार भी है। इसमें अनेक अप्रकाशित एवं अनुपलब्ध शास्त्र विद्यमान हैं। यहाँ एक प्राचीन जल घड़ी है। उसीके अनुसार यहाँ घण्टे बजाये जाते हैं। पूर्वाह, मध्यान्ह सन्ध्या और अर्धरात्रिको प्राचीन कालकी रीतिकी अनुसार मन्दिरमें नौबत बजती है।

मन्दिर की कुछ प्राचीन प्रतिमाओंके मूर्तिलेख इस प्रकार हैं -

(१) संवत् १४९० वर्षे माघ वदि १२ गुरी भट्टारक श्री सकलकीर्ति हूमड़ दोशी मेघा श्रेष्ठी अर्चति।

(२) संवत् १४९२ व्रषे वैशाख वदी १ सोमे श्री मूलसंघे भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री सकलकीर्ति हूमड़ ज्ञातीय

(३) संवत् १५०४ वर्षे फागुन सुदी ११ श्री मूलसंघे भट्टारक श्री सकलकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री भुवनकीर्ति देव हूमड़ ज्ञातीय श्रेष्ठी खेता लाखू तयोः पुत्रां

(४) संवत् १५३५ वर्षे पुष वदी १३ बुधे श्री मूलसंघे भट्टारक श्री सकलकीर्ति भट्टारक श्री भुवनकीर्ति भट्टारक श्री ज्ञानभूषण गुरुपदेशात् हूमड़ श्रेष्ठी पद्मा भार्या भाऊ सुत आसा भा० कडू सुत कान्हा भार्या कुंदेरी भ्रातृ धना भार्या बइहनूँ एते चतुर्विंशतिकां नित्यं प्रमाणितं।

(५) पार्श्वनाथ प्रतिमा संवत् १६२० वैशाख सुदी ९ बुधे श्री मूलसंघे बलात्कार गणे सरस्वती गच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि देवास्तत्पट्टे सकलकीर्ति देवास्तत्पट्टे श्री भुवनकीर्ति देवास्त्पट्टे श्री ज्ञानभूषण देवास्तत्पट्टे श्री व्जयकीर्ति देवास्तत्पट्टे सुमतिकीर्ति गुरपदेशात् (इसके पश्चात् प्रतिष्ठाकारक के परिवारके नाम दिये गये है) नित्यं प्रणमंति।

उपयुक्त सभी भट्टारक बलात्कारगणकी ईडर शाखाके थे।

नसियाँ-झालवाड़ और झालरापाटनके मध्य सड़कके किनारे नसियाँजी है। इसमें बायीं और की वेदीमें हलके लाल वर्णकी पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमा विराजमान है। इसका आकार र फीट ८ इंच है। यह प्रतिमा एक शिलाफलकमें है। प्रतिमाके ऊपर सप्त फणावलि सुशोभित है। परिकरमें छत्र, गज, मालाधारी देव और चमरेन्द्र हैं। मूर्तिकेदोनों पार्श्वोंमें ७ पद्मासन तथा छत्र के ऊपर ८ खड्गासन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। पद्मासन प्रतिमाओंके नीचे धरणेन्द्र और पद्मावती हैं। मूर्तिका प्रतिष्ठाकाल संवत् १२२६ ज्येष्ठ सुदी १० बुधवार है।

दायी वेदी ३ दरकी है। वेदीके आगे चबुतरा बना हुआ है। यह पूजाके प्रयोजनके लिए है। मूलनायक भगवान पार्श्वनाथको १ फुट ९ इंच अवगाहनाकी और संवत् १५४५ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त इस वेदीमें संवत् १६६५ और १६६९ की ७ मूर्तियाँ है।

नसियाँके चारों और विशाल कम्पाउण्ड और बरामदे बने हुए है। मन्दिरके बाहर तीन निषद्या या छतरियाँ बनी हुई हैं। उनमें से एकपर माघ सुदी ३ संवत् १०६६ अंकित है। उस दिन आचार्यश्री भावदेवके शिष्य श्रीमन्तदेवका निधन हुआ था। आचार्य महोदयका एक चित्र भी मिला है। वह अध्ययन मुद्राका है। सामने थूणीपर शास्त्र रखा है। दूसरी छतरीमें संवत् ११८० में आचार्य देवेन्द्रका उल्लेख है। एक छतरी कुमुदचन्द्राचार्यकी आम्नायके भट्टारक कुमारदेवकी है, जो संवत् १२८९ के मूलनक्षत्रमें गुरुवारको स्वर्गवासी हुए थे। सात-सलाकी पहाड़ीके स्तम्भका १००९ ई. का शिलालेख नेमिदेवाचार्य बलदेवाचार्यका उल्लेख करता है। इसी स्तम्भपर १२४२ ई. के शिलालेखमें मूलसंघ और देवसंघका उल्लेख है।

छतरियोंके निकट एक पक्की बावड़ी बनी हुई है। बावड़ीके चारों ओर पक्के घाट और बरामदे हैं।

स्थापनाका इतिहास :-

झालरापाटनके सम्बन्धमें एक किवदन्ती है कि यहाँ प्राचीन कालमें १०८ मन्दिर थे, जिनकी घंटियाँ बजा करती थी । अतः इस नगरका नाम झालरापाटन पड़ गया । झालरापाटनका अर्थ है घंटियोंकी झालरोंका नगर । कुछ लोग इसका अर्थ करते हैं झालका नगर । शान्तिनाथका मन्दिर इन्हीं १०८ मन्दिरोंमें से था । इस नगरका प्राचीन नाम चन्द्रावती था और इसके बीचमेंसे चन्द्रभागा नदी बहती थी ।

इस नगरके स्थापनाके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी किवदन्तियाँ और लोकगीत प्रचलित हैं । एक लोकगीतमें इस नगरका संस्थापक राजा हूण बताया है । कुछ लोग मालवाके परमारनरेश चन्द्रसेनकी पुत्रीको इस नगरकी संस्थापिका मानते है, यात्रा करते हुए इस स्थानपर आकर जिसके पुत्र उत्पन्न हुआ था । कई लोग इस बारेंमें एक बड़ी रोचक कहानी कहते हैं कि जस्सू नामक एक बढ़ई काम करके अपने घर जा रहा था । उसने रास्तेमें जैसे ही कुल्हाडी रखी, वह सोनेकी हो गयी । इस तरह उसे पारस पत्थर मिल गया । उसकी सहायतासे उसने एक नगरी का निर्माण किया, जिसका नाम चन्द्रावती रखा । एक तालाबका नाम तो अब तक जस्सू का तालाब कहलाता है। एक किंवदन्ती यह भी है कि वनवासके दिनोंमें पाण्डव यहाँ आये थे । शान्तिका स्थान देखकर भीमने यहाँ तपस्या की । शत्रुओंने उसे डिगानेके कई प्रयत्न किये । अन्तमें एक देवता रीछ बनकर उसे डराने आया । किन्तु भीमने कसकर एक तीर मारा । रीछ तो झाड़ियोंमें घुस गया, किन्तु जहाँ तीर गिरा, वहाँसे एक जल-धारा फूट निकली, जिसका नाम चन्द्रभागा पड़ गया ।

नगर का संस्थापक कोई भी क्यों न हो, किन्तु यह निश्चित है कि मालवनरेश उदयादित्य का पौत्र जस्सू वर्मा ही जस्सू बढ़ई हो गया है । वहाँके एक शिलालेखमें उसके नामका उल्लेख भी आया है ।

हिन्दू तीर्थ

चन्द्रभागा नदीके तटपर अनेक हिन्दू मन्दिर अवस्थित हैं । चुछ मन्दिरोंके अवशेष भी बिखरे पड़े है । इनमें सबसे प्रसिद्ध मन्दिर शीतलेश्वर महादेवका है । इस मन्दिरका विध्वंस किसी मुस्लिम आक्रान्ताने कर दिया था, किन्तु बादमें इसकी मरमम्त कर दी गयी । इस मन्दिरके सम्बन्धमें मि. फर्ग्युसननेअपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि यह सबसे प्राचीन और कलापूर्ण मन्दिर है । भारत के प्रसिद्ध कलात्मक निदर्शनोंमें यह एक उत्तम नमूना है । इस मन्दिर के एक स्तम्भपर आठवी शताब्दीका एक लेख भी है, जिसमें इस मन्दिरमें राजा शंकरके दर्शनार्थ आनेका उल्लेख किया गया है । शंकरगण मौर्यनरेश दुर्गगणका सम्भवतः उत्तराधिकारी था ।

नोसुकका पुत्र मंचुक भी नौवीं सदीमें इस स्थानकी पूजाके लिए आया था । शीतलेश्वर महादेव तथा उसके लगभग समकालीन कालिका मन्दिरके स्तम्भोंपर ऐसे शिलालेख मिलते है । जिसमें ७-८वीं शताब्दीसे १२वीं शताब्दी तक यहाँ आये हुए विशिष्ट यात्रियों के उल्लेख हैं । इनसे सिद्ध होता है कि यह स्थान काफी प्राचीन है ।

ये सभी मन्दिर एक अहातेके अन्दर बने हुए हैं और भारत सरकारके पुरातत्व विभागके संरक्षणमें हैं ।

वस्तुतः चन्द्रावती (झालरापाटन) जैनधर्म और वैष्णव धर्मका एक सुप्रसिद्ध केन्द्र था । सभी धर्मवाले इसे अपना तीर्थस्थान मानते आये है ।

हूमड इतिहास भाग २

सरस्वती भवन

नगरमें श्री शान्तिनाथ जैन प्राथमिक विद्यालय, श्री शान्तिनाथ जैन औषधालय, शृंगारबाई जैन प्रसूति गृह आदि कई सार्वजनिक संस्थाएँ हैं। इनमें ,सर्वाधिक उल्लेखनीय श्री एलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन है। इसकी स्थापना ऐलक पन्नालालजीने संवत् १९७२ में की थी। इसके पश्चात् उन्होंने इसकी एक शाखा सुखानन्द जैन धर्मशाला बम्बईमें स्थापित की। बादमें शेठ चम्पालाल रामस्वरुपकी नसियाँ व्यापारमें इसकी एक अन्य शाखा स्थापित की। इस वर्ष ज्येष्ठ वदी ५ संवत् २०३३ में उज्जैनमें इसकी शाका खोली गयी है। यहाँ बम्बई शाखा के शास्त्र लाये गये हैं। तीनों स्थानोंपर हस्तलिखित और मुद्रित शास्त्रोंकी कुल संख्या १५००० है।

चाँदखेड़ी

अवस्थिति और मार्ग

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र चाँदखेडी झालवाड़ा जिलेके खानपुर कस्बेसे तीन फलाँग दूर रुपली नदीके तटपर अवस्थित है। क्षेत्रपर पहुँचने के लिए बम्बई देहली लाइनपर पश्चिमी रेलवेके झालावाड रोड़ फोटासे, बीन-कोटा ब्रांच लाइनपर अटरु व बाराँ तथा इन्दौरसे जयपुर और कोटा जानेवाले मार्गपर स्थित झालावाड़ जा सकते हैं। झालावाड़ से बसें हर समय उपलब्ध होती है। यह क्षेत्र झालावाड़ बारां सड़कपर स्थित खानपुर से केवल तीन फलाँग दूर है। क्षेत्रसे अटरु स्टेशन १५ कि.मी. और झालावाड़ रोड़ स्टेशन ६२ कि. मी. है। सभी ओरसे खानपुर उतरना रहता है।

इस मन्दिरके मुख्य गर्भगृहमें वेदीपर मूलनायक भगवान् ऋषभदेवकी हलके लाल पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाके वक्षपर श्रीवत्स है। हाथों और पैरोंपर पद्म बने हुए है। इसके पादपीठपर लेख उत्कीर्ण है जो ३ फीट १ इंच लम्बा है तथा जिसमें ८ पंक्तियां हैं। इस लेखके अनुसार संवत् १७४६ माघ सुदी ६ सोमवारको मूलसंघके भट्टारक जगत्कीर्ति द्वारा खीचीवाड़ा देशमें चाँदखेडीमें श्री किशोसिंहके राज्यमें बघेरवालवंशी भूपति और जौलादेके पुत्र संगही किशनदासने बिम्ब प्रतिष्ठा करायी।

यह प्रतिमा ६ फीट ३ इंच उँचा और ५ फीट ५ इंच चौडी है। भगवान ऋषभदेवकी इस प्रतिमाके मुखपर शान्ति,विराग और करुणाकी निर्मल भाव-प्रवणता झलकती है। प्रतिमाके दर्शन करते ही मनमें अपूर्व वितरागता और शान्तिके भाव प्रस्फुटित हो उठते है।

यह प्रतिमा ६ फीट ३ इंच उँची और ५ फीट ५ इंच चौडी है। भगवान ऋषभदेवकी इस प्रतिमाके मुखपर शान्ति, विराग और करुणाकी निर्मल भावप्रवणता झलकती है। प्रतिमाके दर्शन करते ही मनमें अपूर्व वीतरागता और शान्तिके भाव प्रस्फुटित हो उठते है।

सामनेकी दीवालपर २ फीट ४इंच उँचे फलकमें चतुर्भुजी अम्बिका की मूर्ति बनी हुई है। दायें हाथोंमें एकमें अंकुश है तथा दुसरा सरद मुद्रामें है। बायें हाथोंमें एक में कमल है तथा दूसरे हाथसे गोदमें पुत्रको लिये हुए है। यह देवी हाथोंमें कंकण, चूडियां, भुजाओंमें भुजबन्द, गलेमें मंगलसूत्र, हार और मौक्तिक माला, कानोंमें कुण्डल और सिर पर पगडीनुमा मुकुट धारण किये हुए हैं। इसके शीर्ष भागपर तीर्थकर मूर्ति नहीं है।

बायीं ओर गर्भगृहमें ८ फीट ४ इंच उँचे और ७ इंच चौडे शिलाफलकमें २ फीट ९ इंच उँची खड्गासन तीर्थकर प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसके अतिरिक्त इस फलकमें ५५ तीर्थकर प्रतिमाएँ दोनों ध्यानासनोंमें बनी हुई है। इसके परिकरमें गज, माला लिये देव, चमरेन्द्र, व्याल और दोनों ओर यक्ष-दम्पती है। इस मूर्तिका प्रतिष्ठा-काल संवत् ११४६ पोष सुदी ६ चरण चौकीपर अंकित है। यह मूर्ति भगवान् महावीरकी कही जाती है। मूर्ति अत्यन्त कलापूर्ण और मनोज्ञ है।

इस मन्दिर के मुख्य गर्भगृहमें वेदीपर मूलनायक भगवान् ऋषभदेवकी हलके लाल पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाके वक्षपर श्रीवत्स है। हाथों पर और पैरोंपर पद्म बने हुए है। इसके पादपीठपर लेख उत्कीर्ण है जो ३ फीट १ इंच लम्बा है तथा जिसमें ८ पंक्तियाँ हैं इस लेखके अनुसार संवत् १७४६ माघ सुदी ६ सोमवारको मूलसंघके भट्टारक जगत्कीर्ति द्वारा खीचीवाड़ा देशमें चाँदखेडीमें श्री किशोरसिंहके राज्यमें बघेरवालवंशी भूपति और जैलादेके पत्र संग्रही किशनदासने बिम्ब प्रतिष्ठा करायी।

तलप्रकोष्ठके सभामण्डपमें एक स्तम्भमें चारों दिशाओंमें ५२-५२ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। यह बावन जिनालय स्तम्भ कहलाता है। ऐसा बावन जिनालय स्तम्भ अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होता जिसमें २०८ मूर्तियाँ हों, किन्तु प्रतीकात्मक रुपमें उसे बावन जिनालय की संज्ञा प्रदान कर दी गयी है।

तल प्रकोष्ठका यह भाग उतना ही बड़ा है, जितना मन्दिरका ऊपरी भाग। इसकी भित्तियाँ ८ फीट बड़ी है। सम्भवतः नदीके कारण मन्दिर इतना सुदृढ़ और मजबूत बनाया गया था।

बारा (कोटा राजस्थान)

यहाँ एक शिलालेख ९७७ A.D. का प्राप्त है जिसमें मालुम होता है कि यहाँ श्रावको के अनके घर थे और अनेक मंदिर भी यहाँ पर आचार्य पद्मनन्दी नें जम्बूद्विप प्रणति की रचना की थी।

JAINSIM IS RAJASTHAN

"Jainism enjoyed special royal patronage in the reign of Maharana Jagatasimha. The image at Nadol and Nadla have been installed by Jayamala and the whole Samgha respectively in 1629 A.D. Hearing the virtues of Acharya Maharaja Devasuri, Maharana Jagatasimha invited him to spend his chaturmasa (four months of rainy season) at Udaipur throught his came to Udaipur where he was welcomed with military honours as known become his firm devotee. He had prohibited the collection of customs revenue from the issued an ordinance for the people held every year at fish or any other living creature from the Pichola and Udayasagara lakes of Udaipur, destruction of animals during the month of birth of Maharana and during the Bhadrapada month every year and destruction of animal life on the coronation day of the Maharana. He also ordered the repair of Jaina temples built by Kumbha Rana on Machinda-durga. Besides this, hewashipped the image of Rishabhadeva in the temple of Udaipur.

The Jaina religion continued to enjoy the royal support even afterwards. The Chief Mainister Dayalasaha of Maharana Rajasimha bulit the beatiful Jaina temple at Rajanagera and performed the consecration ceremony in 1675 A.D. through Vijayasagara during his victorious reign."

हूमड़ समाज - खड़क क्षेत्र में आगमन एवं बस्तियाँ

यह क्षेत्र सदैव भील बाहुल्य रहा है तथा आज भी इस जाति के लोगों की तुलना में अन्य जातियों के लोगों की संख्या बहुत कम है। समय-समय पर अन्य जातियों के लोग यहां आकर बसते रहे। जैन मतावलम्बी भी इस क्षेत्र में आकर बसे। जैनियों में सर्वप्रथम खेड़ब्रह्मा से आकर हूमड़ यहा बसे।

दिगम्बर जैन मन्दिर और उनके अवशेषो और दशा हूमड़ समाज की बस्तियों के आधार पर राजस्थान में हूमड़ो के प्रवेश के दो मार्ग रहे - वागड़ एवं खडग का। एक शाखा खेडब्रह्मा से पार्श्ववाडा, आतरसुम्बा विजयनगर (घोडादर), पाल चीतरिया (सभी गुजरातमें) होती हुई कनबई माण्डवगढ़, साबली, देवल, डूंगरपुर, उपरगांव (खेडा कछवासा के पास), साबला और बांसवाड़ा की तरफ पहुंची। इसी शाखा का एक भाग बीच में विजयनगर या पोला से फलासिया, बिछावाड़ा, औडे, झाडोल होता हुआ उदयपुर पहुंचा।

दूसरा भाग विजयनगर से घाटोल के रास्ते में खुणादरी एवं बावलवाड़ा गया। तीसरा बड़ा भाग कनवई से चतौडा (छणी) जावली, भागीवाव, जवास, बावडीदरा, पादेडी, ऋषभदेव, पीपली, सरु, जावर, सलूम्बर, दरियावद होता हुआ बांसवाड़ा पहुंचा। दूसरी शाखा ईडर, भीलूडा, सांवलाजी, पीठ, कुंआ, सागवाड़ा होती हुई बासवाड़ा पहुँची। इसी शाखा का एक भाग गढ़ी से बागीदौरा, कलिंजरा, थामला होता हुआ दाहोद पहुंचा। बासवाड़ा से हूमड़ प्रतापगढ़, नामच, मंदसौर, रतलाम और इन्दौर पहुंचें। जवास से भी कई परिवार सीधे ही प्रतापगढ़ जाकर बसे हैं।

खडक के गांव जिनमें पहले हूमड़ समाज की बस्ती रही और वर्तमान में हूमड़ समाज के परिवार निवास करते है, की जानकारी कराना भी इस सन्दर्भ में उचित होगा।

क्षेत्र के तीर्थ स्थल

राजस्थान राज्य के सुदूर दक्षिण में उदयपुर जिलें की पर्वतांचल में स्थित खेरवाड़ा तहसील एवं डूंगरपुर जिलें की डूंगरपुर तहसील में जैन समाज के पांच प्रसिद्ध मंदिर है जिन्हें पंच तीर्थ के नाम से जाना जाता है। ये है ऋषभदेव, (केशरीयाजी) नागफणी पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी, खुणादरी, सुरपुर इनमें से प्रथम चार को अतिशय क्षेत्र के रुप में मान्यता प्राप्त है। इन चारों ही तीर्थो की मूर्तियाँ प्राचीन एवं चमत्कारी होने से कई लोग दर्शनार्थ आते है और मनौतियां मानते हैं। ऋषभदेव और नागफणी पार्श्वनाथ मंदिर में जैनों के अलावा वैष्णव, शैव और भील जाति के लोग स्नान आदि के बाद समान रुप से मूर्ति की सेवा पूजा करते हैं। ऋषभदेव को छोड़कर शेष चार अतिशय क्षेत्रमें जैन समाज की बस्ती बिल्कुल नहीं है।

श्री केशरिया जी दि. जैन अतिशय क्षेत्र ऋषभदेव

श्री केशरियाजी दिगम्बर जैन तीर्थ ऋषभदेव धुलेव नगर में स्थित प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव को कई नामों से जाना जाता है :-

भगवान ऋषभदेव की मूर्ति श्याम पाषाण की होने से यहाँ का भील समाज इसे काला जी के नाम से पुकारता है।

ऋषभदेवकी मूर्ति धुलिया नाम के भील को पगल्याजी स्थान पर स्वप्न में प्राप्त निर्देशानुसार मिली। अतः धुल्यो के नाम पर ही इस गाँव का नाम धुलेव हुआ और लोग इन्हें श्रद्धा से धुलेवा धणीभा कहते हैं।

वह स्थान उदयपुर, अहमदाबाद, बम्बई राष्ट्रीय राजमार्ग नं. ८ पर उदयपुर से करीब ६५ कि.मी. दूर स्थित हैं सभी आधुनिक सुविधाओं से युक्त यात्रियों को ठहरने के लिए धर्मशालाएं एवं होटल हैं। धुलवे के पश्चिम में तीन तरफ कोयल (कुंवारिका) नदी बहती है।

केशरीयाजी मंदिर :-

प्राप्त प्रमाणिक जानकारी के अनुसार यह मंदिर विक्रम की दूसरी शताब्दी में कच्ची ईटों से बना था। आठवीं शताब्दी में इसे पारेवा पत्थर का बनाया गया और विक्रम संवत् १४३१ में पुख्ता पत्थर से निर्मित कर जिर्णोद्धार कराया गया। यह जिर्णोद्धार काष्टासंघी भट्टारक श्री धर्मकीर्ति के उपदेश से शाह हरदास और उसके पुत्र पुंजै तथा कोता द्वारा करवाया गया। नौ, चार और जो बावन जिनालय हैं वे विक्रम सं. १६११ से बनने प्रारंभ होकर विक्रम सं. १८८३ तक बने। इन जिनालयों में पश्चिम में सहस्र - कूट चैतालय के पास शान्तिनाथ एवं वासुपूज्य प्रतिमा एवं दक्षिण में आदिनाथ प्रतिमा पर अंकित लेख और दक्षिण में द्वार के समीप दीवार पर के शिलालेख से सिद्ध होता है कि दिगम्बर जैन भट्टारकों ने इस विशाल मंदिर का निर्माण करवाया है और वे ही इसके वास्तविक संरक्षक रहे थे। उत्तर जिनालय के मध्य में जो मंदिर है वह मूलसंघी भट्टारकों की गादी बनी हुई है। ऐसा ज्ञात होता है कि मंदिर का उत्तरी भाग मूल संघी तथा दक्षिणी भाग काष्टासंघी भट्टारकों के अधिकार में था। सभामंडप के दक्षिण भाग में जो आसन है वह मातुर संघी दिगम्बर जैन भट्टारकों के शास्त्र पढ़ने की गद्दी के रुप में था जिसे विक्रम सं. १९६९ में तात्कालीन मंदिर हाकिम श्री तखत सिंह ने मरम्मत के बहाने एक ही रात में परिवर्तन कर "श्रीमद्‌भागवत" लिखवा दिया। मंदिर और समस्त जिनालयों के बाहर दक्षिण की ओर पार्श्वनाथ मंदिर है जिसकी प्रतिष्ठा विक्रम सं. १८०१ में हुई। मंदिर के चारों ओर जो परकोटा बना हुआ है वह दिगम्बर जैन मूलसंघी कमलेश्वर गौत्रीय गाँधी श्री विजयचन्द्र निवासी सागवाड़ा ने विक्रम संवत् १८६३ में बनवाया।

क्षेत्र दर्शन

मन्दिरके चारों ओर पक्का कोट बना हुआ है ।उसका प्रवेश द्वार विशाल है। उसके दोनों ओर छतरियाँ बनी हुई है। उसके ऊपर नक्कारखाना बना है। उस द्वारमें प्रवेश करते ही बाहर परिक्रमाका चौक है। वहाँपर दूसरा द्वार मिलता है। इसके दोनों ओर कृष्ण पाषाणका एक-एक हाथी बना हुआ है। ऊपरकी छत में ८१ कोष्टक का एक यन्त्र बना हुआ है। इन्हें किसी भी ओर से जोड़नेपर योग ३६९ आता है। इस द्वारके दोनों ओर ताखों में ब्रह्मा और शिवकी मूर्तियाँ हैं। ये बादमें रखी गयी है। इस द्वारसे दस सीढियाँ चढ़नेपर मन्दिरके बाहरी चौकमें पहुँचते हैं। वहाँसे तीन सीढ़ियाँ चढ़नेपर एक मण्डप मिलता है। इसमें नौ स्तम्भ हैं। इसलिए इसे नौ-चौकी कहते है। वहाँसे तीसरे द्वारमें प्रवेश करते हैं तब खेला मण्डपमें पहुँचते हैं। इसी मण्डपमें होकर निज मन्दिरमें पहुँचते है इसी गर्भगृहमें भगवान ऋषभदेवकी विश्वविश्रुत प्रतिमा विराजमान है। गर्भगृहके ऊपर ध्वजा दण्ड सहित विशाल शिखर बना हुआ है। इसके द्वारके शिखर पर पार्श्वनाथकी मूर्ति है। खेला मण्डपमें दो शिलालेख है, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। खेला मण्डप और नौचौकीपर गुम्बज बने हुए हैं। खेला मण्डपमें २३ दिगम्बर जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। खेला मण्डपके दोनों शिलालेखों के नीचे सिंहासनपर विराजमान पंच बालतियोंकी श्यामवर्ण प्रतिमाएँ हैं। मध्यकी प्रतिमा पद्मासन है तथा उसके दोनों ओर दो-दो प्रतिमाएँ खड्‌गासन हैं।

नौचौकी मण्डपके मध्यमें डेढ़ फुट ऊँची वेदी बनी हुई है। इसपर प्रतिदिन दिगम्बर जैन नित्य नियम पूजन करते हैं। अष्टाहिका आदि विशेष अवसरोंपर मण्डप बनाकर यहाँ नैमितिक पूजन किया जाता है। वेदीके समीप एक स्तम्भपर क्षेत्रपालकी मूर्ति हैं। उसके निकट दूसरे स्तम्भपर दस दिगपाल बने हुए हैं।

निज मन्दिरके चारों ओर ५२ जिनालय या देवकुलिकाएँ बनी हुई हैं । इनमें प्रत्येकके मध्यमें मण्डप सहित मन्दिर बने हुए हैं । इन मन्दिरोंमें स्कन्धचुम्बी जटायुक्त भगवान् ऋषभदेवकी मुख्य प्रतिमाएँ है । ये मन्दिर शिखरबन्द हैं । इन जिनालयों और निज मन्दिर के बीच भीतरी परिक्रमा है । इससे इन मन्दिरों के दर्शन करनेसे निज मन्दिरकी परिक्रमा स्वतः हो जाती है । इन जिनालयोंमें पश्चिमकी पंक्तिमें एक स्तम्भमें १००८ दिगम्बर जिन प्रतिमाएँ बनी हुई हैं । जिसे सहस्रकूट चैत्यालय कहते है । पूर्वमें जिनालयोंके मध्यमें एक हाथी बना हुआ है । हाथी के दोनों ओर पाषाण-चरण बने हुए हैं । उसके नीचे चैवरवाहक इन्द्र हैं । पूर्वमें पाषाणोंमें एक ओर भरत बाहुबलीका युद्ध प्रदर्शित किया गया है और साथ ही बाहुबलीको मुनिके रुपमें ध्यान करते हुए दिखाया है ।

दक्षिणकी ओरसे बावन जिनालयों का प्रारम्भ होता है । ये जिनालय वि.सं. १६११ से १८६३ तक बने हैं । इनकी रचना क्रमशः हुई है, एक साथ नहीं हुई । दक्षिणके जिनालयोंमें मण्डप सहित जो मन्दिर हैं, उसके पास एक कोठरी हैं । पहले इसमें भट्टारकजी निवास करते थे । किन्तु आजकल मन्दिरके उपकरण रखे जाते हैं । उसके सामने मण्डपमें काष्ठासंघके भट्टारकजीकी गद्दी है । भट्टारकजी तथा उनके शिष्य ब्रह्मचारीगण यहीं पर गद्दी बिछाकर बैठते हैं और शास्त्र पढ़ते हैं । उत्तरकी जिनालय पंक्तिमें बड़े मन्दिर के चौकमें मूलसंघी भट्टारकजीकी गद्दी हैं । इससे आगे जिनालयों में मन्दिरका प्राचीन भण्डार है । ऊपर जिस चैत्यालयका उल्लेख किया गया है, वह काँचकी एक अलमारीमें हैं । उसमें ९ धातु मूर्तियाँ हैं । यह काष्ठासंघी भट्टारकोंका चैत्यालय कहलाता है । जब ये भट्टारक बाहर जाते थे, तब वे इसे प्रवास में अपने साथ ले जाते थे । इसके आगे एक जिनालयमें पाषाणका नन्दीश्वर जिनालय हैं । जिनालयों में कई स्थानों पर चक्रेश्वरी, पद्मावती, अम्बिका आदि देवियोंकी मूर्तियाँ हैं ।

दक्षिणकी ओर स्नानागारके मार्गमें भगवान् पार्श्वनाथका मन्दिर है । मन्दिरकी प्रतिष्ठा संवत् १८०१ में हुई थी । इसमें मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ की श्याम-वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान हैं । प्रतिमा पर सहस्र फणावली सुशोभित है । इसलिए इस प्रतिमाको सहस्रकी पार्श्वनाथ कहा जाता है । इस मन्दिरमें दिगम्बर सप्तर्षियोंकी ध्यानमग्न मुद्राकी प्रतिमाएँ हैं । मन्दिरमें टाइल्स और काँच जड़कर अत्याधुनिक रुप दे दिया गया है ।

मन्दिर से आगे भट्टारकोंका विश्रामस्थल, कूप और स्नानागार बने हुए हैं । उत्तरी भागमें मन्दिरके प्रबन्धक तथा अन्य कर्मचारियों के कार्यालय बने हैं । ये कोट बननेके बाद संवत् १८७३ में बने हैं इससे आगे एक कोठरीमें उत्सवकी सामग्री रहती है ।

मुख्य मन्दिरमें मूलनायकके ऊपर विशाल और भव्य शिखर हैं । इसके अतिरिक्त चारों दिशाओंमें चार शिखर हैं जो काफी विशाल और उत्तुंग हैं । छोटे मोटे ४९ शिखर और हैं । मन्दिरकी बाह्यभित्तियों पर कोष्ठकों में अनेक खड्गासन जिनप्रतिमाएँ बनी हुई है । केशरिया मन्दिरमें कुल ७२ पाषाणकी मूर्तियाँ हैं जिनमें ९-१० श्वेतवर्णकी हैं, शेष श्यामवर्णकी हैं ।

शिलालेख और मूर्ति-लेख : एक अध्ययन

ऋषभदेव (केशरियानाथ) मन्दिरमें जो शिलालेख और मूर्तिलेख उपलब्ध होते है, उनसे अनेक महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश पड़ता हैं । विशेषतया इतिहासकी दृष्टिसे इनका बहुत महत्व हैं । इन लेखोंसे इस क्षेत्रसे

सम्बन्धित भट्टारकों, उनके संघ, आम्नाय, गण, गच्छ, अन्वयके सम्बन्धमें प्रामाणित जानकारी मिलती है । इनके साथ साथ इन जिनालयों के निर्माता तथा मूर्तियोंके प्रतिष्ठाकारकोंके नाम, जाति, गोत्र, निवास तथा इनका निर्माण काल अथवा प्रतिष्ठा कालका ज्ञान होता है । इसलिए इन शिलालेखों और मूर्ति लेखों पर इतिहासके परिप्रेक्ष्यमें विचार करना आवश्यक है ।

यहाँ उपलब्ध शिलालेखोंकी संख्या अधिक नहीं हैं । कुछ मिलाकर ७-८ शिलालेख हैं, किन्तु मूर्तिलेख ५० से भी अधिक हैं । इन दोनों प्रकारके लेखोंके अध्ययनसे निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं ।

मन्दिर और मूर्तियोंका निर्माण एवं प्रतिष्ठा - यहाँके मूल मन्दिर अर्थात् केशरियानाथजीके मन्दिरका जिर्णोद्धार, बावन जिनालयों, नौचौकी, सभामण्डप, पार्श्वनाथ जिनालय, एवं मन्दिरके बाहरी कोट तथा उसके सिहद्वार का निर्माण काष्ठासंघी दिगम्बर जैन भट्टारकोंके उपदेश अथवा प्रेरणासे दिगम्बर जैन धर्मानुयायियोंने कराया है । जिन भट्टारकोंने इनके निरमाणकी प्रेरणाकी, उन्होंने ही इनकी प्रतिष्ठा करायी अर्थात् प्रतिष्ठाचार्य और प्रतिष्ठाकारक दोनों ही दिगम्बर जैन थे ।

मूर्तिलेखोंसे ज्ञात होता है कि इनकी प्रतिष्ठा काष्ठासंघ और मूलसंघ दोनोंही संघोको भट्टारकोंने करायी थी । कुछ मूर्तियाँ मूलसंघके भट्टारकोंने प्रतिष्ठित करायी और कुछ मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा काष्ठासंघी भट्टारकोंने करायी । सहस्र कूट चैत्यालयकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १७४२ में मूलसंघके भट्टारक नेमिचन्द्रजीने करायी । सभी तीर्थकर मूर्तियाँ दिगम्बर जैन आम्नायकी है और सभी प्रतिष्ठाकारक विभिन्न जातियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले दिगम्बर जैन धर्मानुयायी हैं ।

मूल मन्दिरका जीर्णोद्धार वि.सं. १४३१ में भट्टारक धर्मकीर्तिके उपदेश से हुआ था ।

भट्टारक संघ

यहाँ सदासे मूलसंघ और काष्ठासंघके भट्टारकों की गद्दी रही है । इन्हीं दोनों संघोंके भट्टारकोंने यहाँ सारा निर्माण और प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न कराया । मूलसंघके भट्टारकोंके गण, गच्छादिके सम्बन्धमें मूर्तिलेखोंमें इस प्रकार परिचय मिलता है - मूलसंघ कुन्दाकुन्दाचार्यान्वय, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण। इनके पश्चात् भट्टारकका नाम आता है । इस प्रकार काष्ठासंघके भट्टारकोंके सम्बन्धमें दोनों प्रकार के लेखों में गच्छगणादिका विवरण इस प्रकार दिया गया है । काष्ठासंघ, नन्दीतटगच्छ, विद्यागण, समसेनान्वय । किसी मूर्तिलेखमें लोहाचार्यान्वय भी मिलता है । संवत् १७५३ के शिलालेखमें लाडवागड़ गच्छका और भट्टारक प्रतापकीर्ति आम्नायका भी उल्लेख है ।

मूलसंघ बलात्कारगण

ऋषभदेव क्षेत्रकी व्यवस्था पहले मूलसंघकी बलात्कारगण ईडर शाखाके भट्टारकोंके हाथ में थी। अतः उन्होंने अपनी एक गद्दी इस क्षेत्रमें स्थापित कर ली, जिससे व्यवस्था करनेमें सुविधा है ।

बलात्कारगण ईडर शाखाका प्रारम्भ भट्टारक सकलकीर्तिसे हुआ । आप भट्टारक पद्मनन्दि के शिष्य थे । भट्टारक पद्मनन्दिके तीन प्रमुख शिष्यों द्वारा बल्ताकारगणकी तीन भट्टारक परम्पराएँ प्रारम्भ हुई शुभचन्द्रने दिल्ली-जयपुरशाखा, सकलकीर्तिने ईडर शाखा और देवेन्द्रकीर्तिने सूरत शाखा प्रारम्भ की ।

शिलालेखों में बलात्कारगण ईडर शाखाके जिन भट्टारकोंका उल्लेख आया है, उनका कालपट इस प्रकार है ।

हूमड इतिहास भाग २

१. सकलकीर्ति (संवत १४५०-१५१०)
२. भुवनकीर्ति (संवत १५०८-१५२७)
३. ज्ञानभूषण (संवत १५३४-१५६०)
४. विजयकीर्ति (संवत १५५७-१५६८)
५. शुभचन्द्र (संवत १५७३-१६१३)
६. सुमतिकीर्ति (संवत १६२२-१६२५)
७. गुणकीर्ति (संवत् १६३१-१६३९)
८. वादिभूषण (संवत १६५२-१६५६)
९. रामकीर्ति (संवत १६५७-१६८२)
१०. पद्मनन्दि (संवत १६८३-१७०२)
११. देवेन्द्रकीर्ति (संवत १७१३-१७२४)
१२. क्षेमकीर्ति (संवत १७३४-)
१३. नरेन्द्रकीर्ति (संवत १७६२-)
१४. विजयकीर्ति
१५. नेमिचन्द्र
१६. चन्द्रकीर्ति
१७. रामकीर्ति
१८. यशकीर्ति (संवत १८६३-)

उपर्युक्त नामोंके अतिरिक्त भी कुछ नाम मूर्ति लेखोंमें आये हैं। जैसे प्रेमकीर्रि, सुरेन्द्रकीर्ति। इनका भी काल निर्धारण होना है। इनमें भट्टारक प्रेमकीर्तिका नामोल्लेख संवत् १७४६ के मूर्तिलेखमें आया है अर्थात् संवत् १७४६ में इन्होंने पार्श्वनाथ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करायी थी। इसी प्रकार सुरेन्द्रकीर्तिके नामका उल्लेख सकलकीर्ति, पद्मनन्दीके बाद और क्षेमकीर्तिसे पूर्व वि. सं. १७४६ के मूर्तिलेखमें आया है। अर्थात् सुरेन्द्रकीर्तिका काल वि.सं. १७४६ से पूर्वका है। क्योंकि सं. १७४६ में भट्टारक क्षेमकीर्तिने मूर्ति-प्रतिष्टा करायी थी।

मूलसंघ के भट्टारकोंका उल्लेख इन मूर्तिलेखोंमें वि. सं. १६११ से १८६३ तक मिलता है। उन्होंने यहाँ पर वि. सं. १६११, १७११, १७४२, १७४६, १७६७, १७६८, १७६९, १७७३, १८६३ इन संवत्सरों में अनेक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी।

काष्ठासंघ

आचार्य देवसेन ने दर्शनसार में लिखा है कि आचार्य विनयसेन के शिष्य कुमारसेनने वि. सं. ७५३ में नन्दियड (वर्तमान नान्देड़) में काष्ठासंघकी स्थापना की। बादमें काष्ठासंघकी कई शाखाएँ हो गयी। जैसे माथुरगच्छ, बागड़गच्छ, लाडवागड़गच्छ तथा नन्दीतटगच्छ। काष्ठासंघका नाम दिल्लीके निकटवर्ती काष्ठा नामक ग्रामके नामपर रखा गया। बारहवी शताब्दीमें यह टक्कवंश के शासकोंकी राजधानी थी। यहाँके टक्क शासक मदनपालने मदनपाल निघण्टु नामक वैद्यक ग्रन्थकी रचना की थी। फीरोजशाह तुगलककी माता यहाँ के शासककी पुत्री थी।

ऋषभदेवमें काष्टासंघकी शाखा नन्दीतटगच्छके भट्टारकोंका प्रभाव प्रारम्भसे ही रहा है। शताब्दीयों तक इस क्षेत्रकी व्यवस्था भी इनके हाथमें रही है। इस क्षेत्रके ज्ञात इतिहासके प्रारम्भसे ही इस संघके भट्टारकोंकी गद्दी भी इस क्षेत्रपर रही है। यहाँ सबसे प्राचीन शिलालेख वि. संवत् १४३१ का मिलता है। इस समय इस प्राचीन मन्दिरके जीर्णोद्धार का उल्लेख मिलता है जो काष्ठासंघा भट्टारक धर्मकीर्ति के उपदेश से सम्पन्न हुआ था।

इस क्षेत्रपर उपलब्ध शिलालेखों और मूर्तिलेखोंमें काष्ठासंघकी एक शाखा नन्दीतटगच्छ विद्यागणके निम्नलिखित भट्टारकोंका उल्लेख मिलता है -

भट्टारक रामसेन, धर्मकीर्ति, यशकीर्ति, विश्वभूषण, त्रिभुवनकीर्ति, भीमसेन, गोपसेन, राजकीर्ति, लक्ष्मीसेन, इन्द्रभूषण, सुरेन्द्रकीर्ति, प्रतापकीर्ति, श्रीभूषण, शुभचन्द्र, जयकीर्ति, सुमतिकीर्ति, देवेन्द्रकीर्ति, ज्ञानकीर्ति।

यहाँ काष्ठासंघकी एक अन्य शाखा लाडवागड़-गच्छका उल्लेख संवत् १७५३ के एक शिलालेखमें आया है किन्तु इस गच्छका केवल उल्लेख मात्र आया है, भट्टारक परम्परा नन्दीतटगच्छ ही दी है।

इन भट्टारकोंने यहाँ मूल मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया, नवीन जिनालयोंका निर्माण कराया, मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा की तथा अन्य अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। इनके लेख वि. सं. १४३१ से १८४९ तकके उपलब्ध होते है। सर्वप्राचीन नामोल्लेख भट्टारक धर्मकीर्ति का और सबसे अन्तिम नामोल्लेख भट्टारक ज्ञानकीर्ति का मिलता है।

काष्ठासंघ - नन्दीतटगच्छके भट्टारकोंका सुविचारित कालपट इस प्रकार है -

राजस्थानके दिगम्बर जैन तीर्थ

१. रत्नकीर्ति
२. लक्ष्मीसेन

३. भीमसेन
४. सोमकीर्ति (संवत् १५२६-१५४०)
५. विजयसेन
६. यशःकीर्ति
७. उदयसेन
८. त्रिभुवनकीर्ति
९. रत्नभूषण (संवत् १६७४)
१०. जयकीर्ति (संवत् १६८६)
११. केशवसेन
१२. विश्वकीर्ति (संवत् १६९६-१७००)

१. धर्मसेन
२. विमलसेन
३. विशालकीर्ति
४. विश्वसेन (संवत् १५९६)

५. विजयकीर्ति

विद्याविभूषण (सं. १६०४-१६३६)
६. श्री भूषण (सं. १६३४-१६७६)
७. चन्द्रकीर्ति (सं. १६५४-१६८१)
८ राजकीर्ति
९. लक्ष्मीसेन (सं. १६९६-१७०३)
१०. इन्द्रभूषण (सं. १७१५-१७३६)
११. सुरेन्द्रकीर्ति (सं. १७४४-१७७३)

१२. लक्ष्मीसेन
विजयकीर्ति

सकलकीर्ति
(सं. १८१६)

देवेन्द्रकीर्ति
(सं. १८८१-१८८५)

यह तालिका पूरी नहीं है तथा काल-गणना भी अधूरी है। इस तालिकामें कई नाम छूट गये है जो ऋषभदेवमें शिलालेखों और मूर्तिलेखोंमें आये है - जैसे धर्मकीर्ति, विश्वभूषण, गोपसेन, प्रतापकीर्ति, शुभचन्द्र, सुमतिकीर्ति, ज्ञानकीर्ति।

इनमेसे कुछ तालिकामें दिये गये नामोंसे मिलते जुलते हैं किन्तु उनकी कालगणना शिलालेखों और मूर्तिलेखों के समयसे नहीं मिलती। इससे लगता है, कि समान नाम भिन्न व्यक्तियोंके रहे हैं। ऐसे भट्टारक है यशःकीर्ति, त्रिभुवनकीर्ति, भीमसेन, देवेन्द्रकीर्ति। शिलालेखों और मूर्तिलेखोंके अनुसार काष्ठासंघके भट्टारकोंने वि. सं. १५७२, १७०४, १७३४, १७५३, १७५४, १७५६, १७६०, १७६३, १७६४, १७६६, १७६८, १८४९ में मन्दिरों और मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी।

ज्ञाति और गोत्र

शिलालेखों और मूर्तिलेखों से मन्दिरों और मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करानेवाले धार्मिक व्यक्तियोंके परिचयके अतिरिक्त उनकी जाति और गोत्रके बारेमें भी प्रकाश पड़ता है। इन लेखोंके अनुसार हूमड़, दसा हूमड़, नरसिंगपुरा, खण्डेलवाल, बघेरवाल, वाच, वांसिता, लाड जातिके उदार सज्जनोंने मन्दिर निर्माण, जीर्णोद्धार और प्रतिष्ठा कार्य कराये।

श्री नागफणी पार्श्वनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र, मोदर

मार्ग एवं स्थिति :

यह स्थान बिछीवाड़ा (राष्ट्रीय राजमार्ग नम्बर ८ पर) से १० कि.मी. दूर एवं ऋषभदेव से ४० कि.मी. दूर बसा हुआ है। पक्की सड़क बनी हुई है। नियमित बस सेवा है परन्तु अन्तिम कि.मी. की उतराई में तेज मुडाव होने से बसें पहाड़ी तक जाती है। मिनी बसे, जीप और कार मंदिर तक जाती है। मोदर गाँव से पहले ही मैश्वो नदी के किनारे बायीं ओर रुक जाने पर पहाड़ के ठलान पर मंदिर दिखाई देने लगता है। मंदिर के नीचे से ही जहाँ सीढियां प्रारम्भ होती हैं वहाँ जलकुण्ड है। पहाड़ के कई स्त्रोतों से जल निरन्तर प्रवाहित होता हैं और एक गौमुखी से कुण्ड में गिरता रहता हैं। इस कुण्ड का पानी कभी खत्म नहीं होता। जैसे यात्री बढ़ते है जल स्तोत्र में जल का प्रवाह बढ़ता जाता है।

क्षेत्र दर्शन :

पहाड़ के ढलान पर मंदिर बना हुआ है। मंदिर में गर्भगृह और उसके आगे खेला मंडप है। मूलनायक प्रतिमा पार्श्वनाथ की है किन्तु यह पार्श्वनाथ की स्वतंत्र प्रतिमा ही नहीं है। पार्श्वनाथ सेवक धरणेन्द्र के शीश पर पार्श्वनाथ की लघु प्रतिमा विराजमान हैं। यह काफी घिस गयी हैं जिससे प्रतीत होता है कि प्रतिमा काफी प्राचीन हैं। मूर्ति के सिर पर सप्त फण है। इसमें फण खंडित हैं। यही प्रतिमा नागफणी पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध हैं। धरणेन्द्र ललितसेन में बिराजे हुए हैं। उनके दाँये हाथ में पुष्प है तथा बांया हाथ जंघा पर रखा है। उनके दाँये हाथ में भुजबन्द है तथा गले में रत्न हार है। धोती की चुन्नटों का अंकन बडा भव्य हैं। बाँये हाथ के नीचे उत्तरीय लटका हुआ है प्रतिमा का वर्ण श्याम है। अवगाहन २ फूट २ इच हैं। इस प्रतिमा के सम्बन्ध में जन साधारण में भिन्न भिन्न मान्यता है कोई इस पद्मावती कहते है तो कोई इसे पद्मावती पार्श्वनाथ कहते है। जिनकी जिस रुप में श्रद्धा है वे उसे उसी रुप में चलते हैं। प्रतिमा के चरण चौंकी पर कोई लेख नहीं है।

मूलनायक के दाँयी ओर १ फुट ४ इंच ऊँची मल्लिनाथ की और बायीं ओर १ फुट ३ इंच ऊँची पार्श्वनाथ की

कृष्ण वर्ण की पद्मासन स्थित पाषाण मूर्तियां है। मल्लिनाथ प्रतिमा करे पादपीठ पर इस प्रकार लेख अंकित हैं। श्री मूल संघ १६३७ वर्षे वैशाख वदी ८ बुधे भट्टारक श्री गुणकीर्ति गुरुपदेशात्। वेदी पर धातु के पार्श्वनाथ और एक चौबीसी है। गर्भगृह के द्वार पार्श्वनाथ की मूर्ति है। मूर्तिलेख के अनुसार इसकी प्रतिष्ठा विक्रम सं. २००८ ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी लिखा है।

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, खुणादरी

मार्ग एवं स्थिति :

यह स्थल खेरवाडा से फलासिया मार्ग पर है। पक्की सड़क बनी हुई है। खुणादरी बस स्टेन्ड से दो कि.मी. कच्ची सड़क हैं। स्टेण्ड से मंदिर तक पैदल या निजी वाहन से यात्रा करनी पड़ती है।

दरें अर्थात् एक कोनें में (खुणा) अवस्थित होने के कारण इसे खुणादरी कहते है। वर्तमान में एक छोटी सी बस्ती में राजपूत और ब्राह्मण परिवार रहते है। जैनों का एक भी परिवार यहाँ नहीं है। मन्दिर और बस्ती के बीच एक बरसाती नाला है जो मंदिर के पास से होकर गुजरता है। बांयी ओर एक एनिकट बना हुआ है जो वर्तमान में टूट गया है। यह मंदिर शिखर युक्त है।

क्षेत्र दर्शन :

मंदिर के गर्भगृह में मूलनायक के रुप में भगवान आदिनाथ की अष्ट धातु की २१ इंच पद्मासन प्रतिमा विराजमान हैं जिस पर संवत् १५६९ अंकित है। यह प्रतिमा सोने की तरह चमकती है।

भगवान आदिनाथ की प्रतिमा के दोनों तरफ दो पाषाण प्रतिमाएँ रखी हुई है जिनमें से दायीं ओर ९ इंच आदिनाथ की श्वेत पाषाण पर विक्रम सं. १४०१ तथा बायीं ओर ७ इंच पार्श्वनाथ की श्याम पाषाण प्रतिमा पर १४८० अंकित हैं। इन्हीं प्रतिमाओं के बाजू में एक - एक ओर पाषाण है। वेदी पर धातु की एक प्रतिमा हैं। गर्भगृह के बाहर एक खेलामंडप है मंदिर के बाहर चबुतरें पर दाँयें कोने में क्षेत्रपाल की बड़ी प्रतिमा विराजमान हैं।

श्री भगवान महावीर दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, वर्द्धमान नगर (चित्रोड़ा)

मार्ग एवं स्थिति :

यह स्थान खेरवाड़ा से छांणी विजयनगर ईडर मार्ग पर खेरवाड़ा से ११ कि. मी. तथा छांणी से एक कि.मी. दूर मुख्य मार्ग पर स्थित हैं। यह स्थान तीनो ओर पर्वतों से गिरा हुआ हैं। मंदिर के पास से होकर एक कच्चा रास्ता जालवी की तरफ जाता है। यह क्षेत्र तीन ढिघा परिसर में हैं।

क्षेत्र दर्शन :

मंदिर परिसर में एक कोनें में धरातल से १० फिट उँचा शिखर बंदी भगवान का जिनालय हैं। गर्भगृह में भगवान महावीर की दो फिट आठ इंच उँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान हैं। दायी ओर कथ्थई रंग की भगवान वासूपूज्य और बांयी ओर श्वेत रंग की भगवान अजितनाथ की पाषाण प्रतिमाएँ हैं जिनकी उँचाई एक -एक फूट है। इसके अलावा पाषाण की पांच अन्य प्रतिमाएँ एवं एक पीतल की चौबीसी भी है। गर्भगृह के बाहर विस्तृत खेलमंडप है।

इतिहास :

उपलब्ध शिलालेख के अनुसार मंदिर की प्रतिष्ठा विक्रम सं. १५०९ में हुई। मंदिर ईटोंका बना हुआ था

। आसपास के गाँव, कणवई, भाणदां और महीडा में मंदिर नहीं होने की वजह से अष्टानिका एवं पर्यूषणपर्व में सेवा पूजा के लिए यहाँ आते थे। समय के प्रभाव से ईटों का बना यह मन्दिर कई जगह से फट गया था। अतः जिर्णोद्धार के लिए श्रीमती चंदन बाई, भोगी बाई एवं सुन्दर बाई ने अपनी जायदाद .से तीन हजार तीन सौ रुपया दिया परन्तु जीर्णोद्धार प्रारम्भ नहीं हो सका। वीर सं. १९६६ में आचार्य शान्तिसागर जी छांणी यहाँ पधारे। उनसे विचार विमर्श कर चित्रोडा में जैनों की बस्ती नहीं होने से प्रतिमा जी को चित्रोडा से छांणी लाने का सुझाव आया। निर्णय पर पहुंचने के लिए दो बार कागज की गोटियां डाली गई। परन्तु दोनों बार प्रतिमा जी को यश स्थान रखने पर ही गोटियां खुली। अतः प्रतिमा जी को छांणी ले जाने का विचार छोड़कर इसी मंदिर का जिर्णोद्धार का निर्णय लेकर कार्य प्रारम्भ किया गया। जिर्णोद्धार कार्य के दौरान एक चमत्कार हुआ। पंचथला एवं दावडी का आधा कार्य पूर्ण होने पर ईटों से निर्मित पीर्व मंदिर के शिखर को गिराना था . मिस्त्री को किसी अनहोनी का आशंका भा था अतः इस कार्य को कल के लिए छोड़ मिस्त्री ने कारीगरों को छुट्टी दी। दूसरे दिन जब वे योजना बनाकर कार्य के लिए मंदिर पर पहुँचे तो वे बड़े अचंभित रह गये। मंदिर के जिस शिखर को इन्हें गिराना था वह रात में स्वयंमेव पश्चिम दिशा की तरफ पिछे गिर चुका ता और मूर्तियां सुरक्षित थी। इस तरह.मंदिर के जिर्णोद्धार का यह कारण समाज के सहयोग से निर्विवाद पूर्ण हो गया। मंदिर की पुनः प्रतिष्ठा विक्रम सं.२००१ चैत्र शुक्ला पुनम को हुई। जिर्णोद्धार के सम्पूर्ण कार्य में समाज रत्न, विद्योतेजक, परोपकारी, धर्मदिवाकर, स्वजाति, भूषण नररत्न, मोडासीयां फतेचन्द भाई ताराचंद भाई महामंत्री खड़क दिगम्बर जैन शिक्षा प्रसार निवासी विजय नगर एवं आचार्य श्री शान्तिसागरजी छांणी का सहयोग चिरस्मरणीय हैं। मंदिर के वर्तमान विकास में पंचोरी पुनमचंन्द जी मंगल जी निवासी छांणी अपनी वृद्धावस्था में भी अपना सम्पूर्ण समय लगाये हुए हैं।

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र, सुरपुर

मार्ग स्थिति :

यह स्थल डूँगरपुर से खेरवाडा वाया बेरळा, शिशोद मार्ग पर स्थित है। डूँगरपुर से ३ कि.मी. दूर है सड़क मंदिर के पास से गुजरती है एवं मंदिर बस्ती के मध्य में स्थित हैं। बस्ती में जैनियों का एक भी घर नहीं है। करीब १०० घरों की बस्ती हैं जिसमें अधिकांश गुजराती पाटीदार हैं। पास में डूँगरपुर और सुरपुर के बीच में नवा डेरा में दिगम्बर जैन नागदा समाज की बस्ती है।

क्षेत्र दर्शन :

यह मंदिर भव्य एवं विशाल है। मंदिर का प्रवेश द्वारा पश्चिम दिशा की ओर है। गर्भगृह में मूलनायक श्री पार्श्वनाथ की श्याम वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान हैं प्रतिमा पर विक्रम सं. १४६१ अंकित हैं। मूलनायक के अलावा, इसके बाजू में दोनें ओर एक एक पाषाण प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृह के बाहर दायी ओर एक एक पाषाण प्रतिमाएँ है। ये मूर्तियाँ सरीयणजी (उपर गाँव खेडा कछवासा के पास) से लाकर प्रतिष्ठित की गई हैं। इनमें एक मूर्ति ४५ ६० इँच की श्रेयसनाथ की है। पीतल की एक १४ इंच १६ इंच की चौबीसी एवं शांतिनाथ का एक बिम्ब है। गर्भगृह के बाहर खेला मंडप की परिक्रमा मार्ग के दांयी ओर से बांयी ओर लंबी पंक्ति में कोठरियाँ बनी हुई हैं। निज मंदिर के द्वार के ठीक सामने खेला मंडप के पीछे परकोटा है जिसमें एक दरवाजा पीछे की ओर खुलता है जहां खुली भूमि के उत्तर की ओर परकोटा बना हुआ है जिसमें एक द्वार सड़क की ओर है। मंदिर

की बनावट एवं आकार केशरियाजी मंदिर धूलवे जैसा ही है। मंदिर के बाहर खुली भूमि है जिस पर एक श्याम सलेटीया पाषाण का बारह इंच बहत्तर इंच (१२ ७२) गोलाई ४५ इंच का कीर्तिस्तम्भ है जिस पर अठहत्तर भट्टारक की मूर्तियां मच नाम है।

प्राचीन समयमें यहाँ दिगम्बर जैनियों की बड़ी बस्ती थी जिनमें नागदा दिगम्बर जैन प्रमुख थे। म्लेच्छोके आक्रमण के कारण कई जैन लोग नवाडोर डूँगरपुर और अन्य स्थानों पर चले गये। कोठारियों में विराजमान मूर्तियों को म्लेच्छों ने खंडित किया।

(४) ' डूँगरपुर राज्य का ईतिहास में ड्रॉ गैरीशंकर ओझा के इतिहास से :- वर्तमान डूँगरपुर जिलाके अन्तर्गत प्राचीन गलियाकोट था। जिसके पूर्वमें माही नदी और पश्चिम में महिमा नामक नाले के संगम पर प्राचीन पूर्वजो वर्तमान में लग्नावंशो के रुपमें जो कडाणा बांध के कारण जल समाधि हो चुका है, आठवी सदीमें वहाँ परमार राजाओ का राज्य था। वर्तमान सागवाड़ा जिसका प्राचीन नाम शाक वाटपूर.......साग का जंगल था।

(५) आंतरी

सागवाडा से २२ की. मी. दूर आंतरी का एतिहासिक जिनालय स्थित है जिसमें सबसे प्राचीन वि. सं. ८०९ का ११ फीट व्यास का विशाल चन्दषि मंडल यंत्र (भारत में इतना विसाल यंत्र कही भी किसी भी जिनालय में नही है) मारबल पत्थर पर उत्कीर्ण किया हुआ है यह हूमड़ समाज की संस्कृति ।

प्रतापगढ़ (परताबगढ)

प्रतापगढ के महारावत क्षेमसिंह (खेमकर्ण) के वंशज है। क्षेमसिंह मेवाड़ के महाराणा मोकल के पुत्र एवं राणा कुंभाके छोटे भाई थे। जागीर के बटवारे के समय क्षेमसिंह रूष्ट होकर चितौड चल गये व ई.सं. १४२७ में सादड़ी पर अधिकर कर लिया इसके पुत्र सूरजमल ने कांटल प्रदेशमें अपना अधिकार कर लिया। इसका पुत्र वाघसिंह था। वह देशप्रेमी एवं वीर शासक था। बहादुरशाह द्वारा चित्तौड पर आक्रमण होनेपर देशभक्ति से प्रेरित होकर चित्तौड की रक्षा के लिए मेवाड़ गया। मेवाड़ की रक्षा के लिए एवं मेवाड़ के राणा विक्रमसिंह तथा उदयसिंह की रक्षा के लिये टूट पड़ा और लड़ता हुआ शहीद हो गया। वहाँ आज भी उसका स्मारक विद्यमान है और उसकी पूजा होती है।

देवलिया (देवगढ़) की आबोहवा उचित न होने से महारावत प्रतापसिंह ने डोडेरिया का खेडा नामक स्थानं पर वि.सं.१७५५ (ई.सं.१६९८) में प्रतापगढऽ शहर बसा था। डोडेरिया का खेड़ा एक प्राचीन स्थान था यहाँ पर प्राचीन किलेबन्दी थी जो कि टूटी फूटी अवस्था में विद्यमान थी। यहाँ से कन्नौज के प्रतिहार वशी राजा महेन्द्रपाल द्वितीय का वि.स.१९९ का शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमें इस स्थान की प्राचीनता ९वीं शताब्दी तक सिद्ध होती है। वि.सं. १८१५ (ई.सं.१९५८) में महारावत सालिमसिंह ने इसके चारों ओर नया कोट बनवाया जिसमें सूरजपोल, भाटपुरा दरवाजा, बारी दरवाजा, देवलिया दरवाजा और धमोतर दरवाजा आदि ६ दरवाजे हैं। इन दरवाजो के अतिरिक्त दो छोटे दरवाजे हैं जो तालाब बारी और किलाबारी के नाम से जाने जाते हैं। शहर के मध्यमें पुराने महल हैं। शहर से बाहर पश्चिम में किला बना हुआ है जिसमें महारावत उदयसिंह ने उदयविलास महल बनवाया। प्रतापगढ़ शहर से देढ कि. मीटर दूर पूर्व की तरफ खुले मैदान में महारावत उदयसिंह नें बंगला बनवाया और वहाँ पर रहना आरभ किया। फलस्वरूप उस समय से ही प्रतापगढ़ इस राज्य की राजधानी बनी। ई.सं. १८६७ से यह देशी रियासत देवगढ़ प्रतापगढ़ अथवा देवलिया. प्रतापगढ़ कही जाने लगी। सन १९४८ में इस राज्य का भारत में विलीनीकरण हो गया। प्रतापगढ में कई जैन एवं हिन्दू मन्दिर हैं जो कि १८वीं शताब्दी से प्राचीन हैं।

प्रतापगढ़ शहर के माणक चौक सदरबाजार में स्थित जूना मन्दिरजी : दि. जैन मन्दिरों में सबसे पुराना होने से इसे जुना मन्दिर कहते हैं। इस मन्दिर के प्रारम्भमें चैत्यालय रूपमें वि.सं. १८३२ में महारावत सामन्तसिंह के शासन कालमें हूमड़ समाज ने भट्टारक श्री धर्मचन्द्र की प्रेरणा से निर्माण कराया। इस मन्दिर का विस्तार वि.सं.१८५३ में हुआ। आज यह मन्दिर विशाल रूपमें प्रतापगढ़ की शोभा बढ़ा रहा है। इस मन्दिर में १२वीं शताब्दी से २०वीं शताब्दी तक की मूर्तियां है। यहाँ के शास्त्र भण्डार में कई प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ हैं जो कि अभी तक अप्रकाशित हैं।

नया मन्दिरजी : इस मन्दिरजी का निर्माण मूलसंघ बलात्कारगण, ईडर शाखा के भट्टारक श्री चन्द्रकीर्तिजी की प्रेरणासे बीसा हूमड़ समाज ने शुरू किया और सं. १८४१ में पूर्ण किया। इस मन्दिरजी के विस्तार का श्रेय भट्टारक कनककीर्तिजी को जाता है। आज यह मन्दिर प्रतापगढ़ में सुन्दरतम् मन्दिरों में से एक है। नया मन्दिरजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सडक पर खडे होकर व्यक्ति भगवान के दर्शन कर सकता है।

दीपेश्वर महादेव :-प्रतापगढ से १ कि.मी. की दूरीपर तालाब के पास स्थित है। कुंवर दीपसिंह ने कुछ प्रमुख व्यक्तियों की वैचारिक मतभेद होने से उनकी हत्या करवादी। इस घृणित कृत्य के प्रायश्चित रूप में इस स्थान की स्थापना की ओर अपने नाम पर इसे दीपेश्वर महादेव रखा। यह स्थान घनी झाडियों के बीच है। कार्तिक मास की पूर्णिमा को यहाँ पर दीप प्रज्वलित किये जाते हैं व मेला लगता है।

इसके अलावा प्रतापगढ में भ. यशकीर्ति दि जैन बोर्डिंग, ऋषभदेव दि जैन मन्दिर, भाईजी का दि. जैन मन्दिर, गुमानजी का श्वे. जैन मन्दिर, केशवरायशी का मन्दिर, धीयावालों का श्वे. जैन मन्दिर, काकासाहेब की दरगाह, जामामसजीद आदि देखने लायक हैं।

बमोतर : (शांतिनाथजी) प्रतापगढ़ से ५ कि.मी. दूरी पर हैं । यह एक अतिशय क्षेत्र हैं। इस क्षेत्र में सबसे प्राचीन मूर्ति भ. पार्श्वनाथ की संवत १६५९ की है। इस प्रतिमा की कुछ धर्मविरोधियोंने खण्डित कर डाली। दूसरी प्रतिमा १६५९ में प्रतिष्ठित भ.शान्तिनाथजी की है। मूल नायक भ. अजितनाथजी की सं. १७१२ की प्रतिमा है जो कि नरसिंहपुरा बडी शाखा ने भट्टारक यशकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठित करवाई। मूलनायक के बाये तरफ भ. चन्द्रप्रभुजी सं. १८२६ की प्रतिष्ठित मूर्ति है। सं. १९०२ की भ. शान्तिनाथजी की ५ फूट उंची अतिशय युक्त प्रतिमा मन्दिर के मध्य भाग में विराजमान हैं। इस पर निम्नलिखित लेख खुदा है।

सं. १९०२ ना वर्षे साके १७६७ प्रबल श्री में मासोतमासें शुभकारिमासे कृष्ण पक्ष तिथौ ९ दिन शनीश्चरे । श्रीमत् काष्ठासंघ नदीतटगच्छे तीक्गागणे श्रीमत भट्टारक श्री रामसेनजी आम्नादतद अनुक्रमेण भट्टारक भुवनकीर्ति भट्टारक प्रतापसेन अनुक्रमेण विजयसेन जी.त.सा. देवेन्द्रकीर्तिजी ने भ.नेमसेजी मास भट्टारक श्रीमत हेमचन्द्र की शांतिनाथ बिंब मुगलच्छन गांव बमोतरमध्ये श्री शान्तिनाथ मन्दिर ख्यात नरसिंहपुरा बडी शाखा न्याय राजश्री दिवाण दलवतसिंहजी राज्ये श्री शांतिनाथबिंब प्रतिष्ठापित। श्रीरस्तु। श्री कल्याणस्तु। जैनों के अतिरिक्त आसपास की जनता में बी इस क्षेत्र की बहुमान्यता है। यहाँ के ठाकुर एवं राजा भी इस क्षेत्र के भक्त रहे हैं। भक्तगण अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिये यहाँ भेट चढाते हैं।

महारावत रघुनाथसिंहजी के महाराजकुमार मानसिंह ने इस मन्दिर के लिए जागीर दी थी। इसी प्रकार महारावत रामसिंहजी ने पुत्रजन्म की मान्यता पूर्ण होनेपर प्रतापगढ़ रियासत मे वर्ष में दीबार अर्थात फाल्गुन शुक्ला ८ और १४ की जीव की हिंसा नही करने का आदेश जारी किया था।

इस क्षेत्र का जीर्णोद्धार सं. १९६० में हरजी टेकचन्द ने करवाया था। इसके पश्चात सं. १९९० मे संघपति सेठ कोटडिया श्री घासीलालजी पूनमचन्दजी ने जीर्णोद्धार करवाकर प्रतिष्ठा करावाई थी। इस महोत्सव में करीबन १ लाख लोग बाहर से आये थे। इसी प्रतिष्ठा समारोह मे चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज संघ सहित विराजमान थे।

प्रतापगढ़ तहसील के प्राचीन स्थान

देवलिया: प्रतापगढ से करीबन १४ किं.मी. दूरी पर है। यह प्रतापगढ़ राज्य की राजधानी थी। विक्रमसिंह बीका ने ई.सं. १५६१ में देवलिया का कंसबा आवाद किया और वहाँ पर राजधानी स्थित की । यहाँ पर पुराने राजमहल हैं जिनमें चित्रकारी है। देवलिया में अनेक वैष्णव, शैव तथा जैन मन्दिर है। विष्णु के मन्दिरों में गोवर्धननाथ का मन्दिर महारावत ने ई.सं.१६५० में बनवाया। रघुनाथजी का मन्दिर महारावत सामतसिंह ने

बनवाया। जैन मन्दिरों में मल्लिनाथजी का मन्दिर दर्शनीय हैं। इस समय यह कसबा वीरान हो गया है। मन्दिरों की हालत भी दयनीय हैं । यह स्थान पहाडियों से ओर जगलों से घिरा हुआ है। प्राकृतिक सौदर्य देखने लायक है। इसका पर्यटन स्थल रूपमें होना चाहिये। अब मोटामंदिर के सामने एक आधुनिक श्रेष्ठ सुव्यव्यस्थित धर्मशाला का बनचुकी हैं आघे निमार्ण काम चालू हैं।

जानागढ़ : प्रतापगढ से १६ कि.मी. दूरी दक्षिण पश्चिम में है। यहाँ पर पुराना किला है। जिसमें मसजिद बनी है। मन्दिरों के अवशेष पाये जाते है।

घोटारसी: प्रतापगढ से १२ कि.मी. पूर्व में हैं। इसका प्राचीन नाम घोटवर्षिका था। यहाँ पर कई हिन्दु एवं जैन मन्दिरों के अवशेष पाये जाते हैं। यहाँ पर तालाब के किनारे इन्द्राजादित्यादेव नामक प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर था यहाँ पर ९वीं शताब्दी से लेकर १३वीं शताब्दी के अनेक शिलालेख प्राप्त हुई हैं। यहाँ सूर्य मन्दिर था यहाँ के अवशेषो का उपयोग प्रतापगढ के दरवाजे के बाहर बावडी मे हुआ है उसी प्रकार मोखमपुरा की छत्रियों तथा बसाड़ के पास पोह की बावड़ी में भी यहाँ के अवशेषो का उपयोग हुआ है। यहाँ से चौहान वंशी इन्द्रराज, गुहिल वंशी खुम्माण के पुत्र भर्तभट्ट तथा प्रतिहार महेन्द्रपाल के शिलालेख मिले हैं।

वीरपुरः प्रतापगढ़ से १६ कि.मी. दूर दक्षिण पश्चिम में हैं यहाँ पर जैन एवं हिन्दु मन्दिरों के खण्डहर पाये जाते हैं। ई.स. १८८४ मे सुहागपुरा के दि. जैन मन्दिर में वीरपुर के जैन मन्दिर के स्तंभ लगा दिये गये है।

खरोटः प्रतापगढ़ से १६ कि.मी. दक्षिण पूर्व में है। इसका प्राचीन नाम खर्परपद्रक था। यहाँ पर भी कई हिन्दु एवं जैन मन्दिरों के अवशेष पाये जाते हैं।

अरनोदः प्रतापगढ से १८ कि.मी. दूरी पर यह कस्बा है।यहाँ पर भी मन्दिरों के अवशेष पाये जाते है। महारावत रघुनाथसिंह अरनोद से ही गोद जाकर प्रतापगढ के शासक बने थे।

गौतमेश्वर : अरनोद ने ३ कि.मी. दूरी पर है। यह प्रतापगढ़ तहसील का पवित्र तीर्थ स्थान है। यहाँ पर अनेक शिव मन्दिर है। प्रतिवर्ष वैशाख सुदी पूर्णिमा को यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। यह स्थान अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए भी प्रसिद्ध है। गौतमेश्वर शिवालय पहाड़ के नीचे बना है। पहाड़ के उपर तालाब है। जिसका जल गौतमेश्वर के सामने कुण्ड से प्रयात रूप में गिरता है। ऐसी मान्यता है कि इस कुण्ड में नहाने से जीवहत्या के पाप से मुक्ति मिल जाती है।

भचूंडला: प्रतापगढ़ से २६ कि.मी. दूरी पर है। यहाँ पर कई प्राचीन मन्दिर है। जो कि शिवना के प्राचीन अवशेषो को लेकर बने हैं। यहाँ पर दि.जैन मन्दिर में भी प्राचीन अवशेषो का उपयोग हुआ है।

शेवनाः प्रतापगढ़ से ५० कि.मी. दूरी पर है। प्राचीन समयमें यह नगर विशाल रहा होगा। दूरदूर तक खण्डहर दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ पर किले के अतिरिक्त अनेक प्राचीन मन्दिर टूटी फूटी दशा में विद्यमान हैं । यहाँ से अनेक मूर्तियाँ अजमेर म्युझियम में लजाई गई हैं। यहाँ के मन्दिरों के अवशेषों का उपयोग भचूडला,नीनोर के मन्दिरो मे हुआ है। पुरातत्व की दृष्टिसे यह स्थान महत्वपूर्ण है।

अंकलेश्वर: यह एक प्राचीन स्थान हैं। यहां पर एक कीर्ति स्तंभ है जो कि दूसरी शताब्दी का हैं। इसपर लेख भी है। यह भागवत धर्म का केन्द्र रहा है । यहां राज्य पुरातत्त्व विभाग का कार्यालय हैं।

अंकलेश्वर का शिलालेख ब्राह्मी लिपी में है।

तेन उतरर खितेन सारी क.....ली नेन पोण पुतेन सचा भाग बतेन भगवता अपरक आवासिना सवेसु लोकेसु विसुत कीर्ति नन्ज भगवता सेल भुजाकारिता भगवन्ता आपराता पुसे नासम पुतस सभायस।

अभिलेख का सारांश यह है कि उत्तर रक्षित पोण का पुत्र था । वह अपरक निवासी था। उसने अपने पुत्र पुत्रियो सहित अँवलेश्वर में प्रवास किया एवं भागवत के सम्मान मे शैलभुजा (स्तंभ) तथा सभाभवन की स्थापना की । इस समय यहाँ राजा भागवत का राज्य था । उसकी कीर्ति समस्त लोक में व्याप्त थी। उपरोक्त स्थानों के अलावा बोरदिया,धमोतर, बमोत्तर, बसाड वरडिया, ग्यासपुर आदि स्थानों में भी पुराने मन्दिरों के अवशेष पाये जाते हैं। झाँसडी का दि. जैन मन्दिर भी देखने लायक हैं।

प्रतापगढ राज्य के सिक्के

मुगल बादशाह अकबरने मालवा और गुजरात राज्य को दिल्ली के साम्राज्य में मिलाये जाने पर इस संभाग में मुगलिया सिक्को का प्रचलन हुआ। मुगल साम्राज्य के अवनित के दिनों में राजपूतानो के अन्य राज्यों की भांति प्रतापगढ के महारावत सालिमसिंह ने (१७५९.८८) मुगल बादशाह शाहआलम के समय उक्त बादशाह के नाम से चांदी के सिक्के बनाने के लिए प्रतापगढ में टंकसाल खोली। इन सिक्कों के एक तरफ सिक्कह मुबारक बादशाह गाजी शाहआलम और दूसरी तरफ जर्ब २५ जुलुस मैमनेत मानुस फार्सी में खुदा है। शाहआलम के अपभृष्ट रूप में यह सिक्का सालिम शाही कहलाता है। ई.सं. १८१८ में इस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि होने पर शाहआलम का नाम निकलवाकर निम्नलिखित लेख रखा गया। सिक्का मुबारिक शाह लर्दन १२३६ (ई.सं.१८२०)। यह सिक्का नया सालिमशाही कहलाता है। इसी नवीन सिक्केकी अठन्नी, चवन्नी, और दुवन्नी बनने लगी। इनमें पुराने सिक्कों की अपेक्षा चांदी कम रही। ई.सं. १९०४ मे इन सिक्कों का चलन बंद कर दिया गया और अंग्रेज सरकार के कलदार रूपयों का चलन शुरू हुआ। प्रतापगढ में पहले तांबें के सिक्के भी बनते थे। जिनमें एक तरफ श्री के नीचे रियासत देवलिया सं. १९३५ और दूसरी तरफ बिंदीयों से बना अस्पष्ट चिन्ह है।

बाद के तांबे के सिक्कों में एक तरफ रियासत प्रतापगढ तथा मध्य में संवत १९४३ है। और दूसरी तरफ दो तलवारों के बीच में सूर्य का चिन्ह हैं।श्याम पाषाण से बनी हुई विशाल अति मनोज्ञ प्रतिमा है। पर्वाधिराज पर्युषण पर्व की पूर्णाहुति के अवसर पर निकलनेवाली रथयात्रा और रंग बिरंगी पोशाको में साथ चलती हुई मानव टोलीयाँ अपने आपमें एक अनुपम दृश्य उपस्थित करती है जिसे देखने दूर दूर से लोग आते हैं । वैष्णव देवालयों में सदर बाजार के मध्य में स्थित श्री १००८ केशवरायजी का मंदिर अतिप्राचीन,भव्य एवं कलापूर्ण हैं। इसके शिखर के चारों ओर नृत्य मुद्रा में मूर्तियाँ अंकित की गई हैं। देवगढ़का गोवर्धन नाथमंदिर भी कलात्मक एवं दर्शनीय हैं।

श्री भाईजी का मंदिर : यह एक प्राचीन विशाल मंदिर हैं। इस मंदिर में कई पुरानी भव्य मूतियाँ हैं। मंदिर के पीछे साधन संपन्न धर्मशाला बनी हुई हैं।

बड़ी मस्जिद : सालमपुरा में बड़ी मस्जिदग है जो क्षेत्र की सबसे उंची, विशाल मस्जिद है। जिसमें उंची दो मीनारें है जो १० कि.मी. दूर से भी दिखाई देती हैं। इसकी ऐतिहासिक महत्ता है।

दरगाह काकाजी साहेब : दाउदी बोहरा समाज का एक प्रमुख धार्मिक स्थान प्रतापगढ़ (राजस्थान) के अन्य धर्मो की तरह अपना एक विशेष स्थान रखता हैं। एंव दूर दूर तक काकासाहेब के पवित्र नाम से जाना जाता है। यह दरगाह मु.इसाभाई सैयदी काकाजी साहब जो एक बेहतरीन नेक इनसान थे की याद में बनाई गई है। एक बहुत बड़े संगमरमर के आंगन के मध्य में एक चौकोर १५ फीट X १५ फीट का कक्ष है जिसके उपर इसी अनुपात का गोल गुंबज स्वर्ण से सुसज्जित है। पूर्णिमा की रात को इसका दृश्य ताजमहल का दृश्य उपस्थित करता है। वर्षभर में ५००० से भी अधिक बोहरा समाज के लोग दूर दूर से यहाँ काकासाहेब के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने आते हैं।

धार्मिक नगरी होने के कारण वर्षभर यहाँ साधुसंतो, महात्माओंका आवागमन निरंतर होता रहता है। प्रतापगढ़ ने भी ऐसे अनेक साधु संतो एवं महात्माओं को जन्म दिया है जिन्होंने अपने त्याग और तपस्या से आत्मकल्याण किया एवं अन्य को सन्मार्ग में लगाया। इसी प्रकार वीर पुरूषों की भी यहाँ कभी कभी नहीं रही।

प्रतापगढ की सेवा कला: धार्मिक साधना में अग्रसर भला कारीगरी में कैसे पीछे रह सकता था। रंगीन काँच, नीला,लाल अथवा हरे काँच पर एक विशेष प्रकार की प्रक्रिया से सुन्दर चित्र बनाये जाते हैं जिन पर सोने की महीन चद्दर चढ़ाई जाती है, जो इतनी मजबूत होती है कि यदि सावधानी से उपयोग में लाई जाते तो वर्षो तक वैसी की वैसी रहती है। बारीक से बारकी चित्र भी इतना सुरेख, व सुन्दर होता है कि देखनेवालों का मन मोह लेता है। इस प्रकार काँच पर की गई सोने की प्रक्रिया को सेवा काल के नाम से जाना जाता है। इससे कई प्रकार की वस्तुए एवं आभूषण जैसे भगवान के चित्र,सिन्दुर रखने की डिबियां,माला में पहिनने के लिये पेंडल अंगुठियां एवं अन्य कई आभूषणों को सुसज्जित करने में इस कला का उपयोग होता है। ५०० वर्षो से भी अधिक प्राचीन यह कला न केवल भारत में अपीतु विदेशों में भी प्रख्यात है एवं सेवा के बने आभूषण एवं अन्य कृतियाँ की भारी माँग है। भारत सरकार हस्तशिल्पक्ला को प्रोत्साहन देने हेतु प्रतिवर्ष राष्ट्रीय प्रतियोगिताएं आयोजन करती रही है। यह प्रतापगढ़ के लिये अत्यन्त गौरव का विषय है कि प्रतापगढ़ के इस कला के कारीगरों को कई बार भारत सरकार ने राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

गृह उद्योग: यहाँ के उद्योग में वस्तुएं सबसे अधिक प्रसिद्ध है १. जिरालून २ आम के पपाड़ ३ नमकीन सेव जिरालून वास्तव में मसालों का एक मिश्रण है। मसाले अलग अलग कई प्रकार के आते हैं जिनके अलग अलग स्वाद होते हैं। परंतु प्रतापगढ़ के इस जिरालून का स्वाद कुछ और ही अनूठा होता है। जिरालून का तो नाम सुनते ही मुंह मे पानी आ जाता है। इसको आप किसी भी प्रकार उपयोग में ला सकते हैं। चाहे दाल सब्जी में डाले चाहे तले हुए पदार्थ जैसे आलू,रतालू,गराड़ू या फली अथवा ककड़ी,खरबूजा, सेव फल, अमरूद,कच्चे आम आदि फलों पर छिड़काकर खाने से खाद्य पदार्थ का स्वाद कई गुना बढ़ जाता है। जिरालून अपने आप मे एक ऐसा मसाला है जिस हम अंग्रेजी में **All In One** कह सकते हैं। इसकी विदेशो में बहुत मांग है। जो भी प्रवासी यहाँ आता है अपने साथ जिरालून अवश्य ले जाता है। अन्य स्थानों में भी जिरालून बनाये जाते है परन्तु प्रतापगढ़ के जिरालून की शान ही अलग है। इसके मिश्रण में सादे मसाले के अतिरिक्त अन्य कई किमती वस्तुएं भी डाली जाती है। जिससे इसके स्वाद के साथ साथ औषधिय गुण भी संमिश्रित होते हैं। यहाँ की मिठाई व सेव का भी अलग ही स्वाद हैं।

इसी प्रकार प्रतापगढ़ में एवं आसपास के क्षेत्र में अच्छे रसदार स्वादिष्ट मीठे आमों की बहुतायत हैं। अतः इसके रसको थाली में डालकर कडी धूप में सुखाकर आम के पापड़ बनाये जाते हैं। ये पापड़ अन्य पापड़ों की अपेक्षा स्वादिष्ट एवं कड़क होते हैं जो अधिक समय तक टिकाऊ हैं। घरेलू उद्योग के रूप में इसका अच्छा विकास हुआ है एवं इसकी बहुत अधिक मांग है और मांग दिन प्रतिदिन बढती जा रही है । यहाँ की हिंगवाली नमकीन सेव भी अधिक प्रसिद्ध हैं । यह खाने में चटपटी कुरकुरी एवं मुलायम तथा स्वादिष्ट होती है। प्रतापगढ़ की भूमि अत्यन्त उपजाऊ एवं अधिकांश भाग काली मिट्टी से बनी हुई है । अन्य फसलों के साथ अफीम की भी खेती होती है। यहाँ की अफीम उच्च कोटी की मानी जाती हैं।

प्रतापगढ़ का सीतामाता क्षेत्र घने जंगलों से आच्छादित है। जिससे कई प्रकार की वन संपदा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। सीतामाता के जंगलो मे से बांस और अन्य इमारती लकड़ी यहाँ से बाहर भेजी जाती हैं। टीमरू के पत्ते जो बिड़ी बनाने के काम आते हैं बहुत अधिक मात्रा में पैदा होते हैं । चारोली और गोंद भी यहाँ के जंगलो में पैदा होते हैं। राज्य सरकार द्वारा यह आराक्षित वन घोषित हो चुका हैं।

इन्हीं वन संपदा एवं कृषी उपज पर आधारित कुछ लघु उद्योग के रूप में जिनिंग फेक्ट्री, दाल मिल एवं आँयल मिल आदि विकसित हुए हैं। प्रतापगढ़ आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र हैं। जिसकी अधिकतर आबादी गांवो में रहती हैं। छोटे छोटे गाँवो में रहने के कारण आपसी मेल जोल अधिक पाया जाता है। यहाँ की बोली मालवी, मेवाड़ी है ।

हूमड इतिहास भाग २

नागफणी पार्श्वनाथ : मौदर गाँव के निकट पहाड़ पर बने मंदिर में धरणेन्द्र मूर्ति ।

श्री दिगम्बर जैन मंदिर गलियाकोट

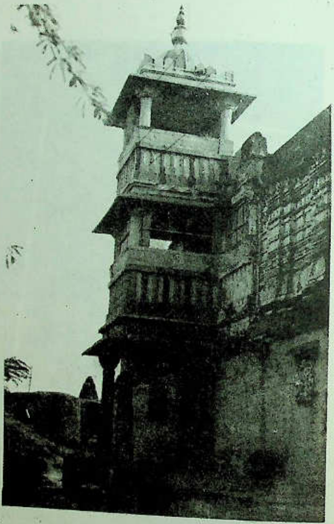

श्री दिगम्बर जैन मंदिर गलियाकोट

श्री १००८ श्री चन्द्रप्रभु दि. जैन मंदिर, गलियाकोट

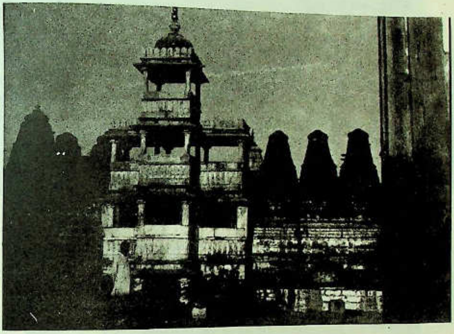

गलियाकोट में दिगम्बर जैन समाज के तीन मंदिर स्थित है। श्री १००८ श्री चन्द्रप्रभुजी दि. जैन मंदिर में मूलनायक प्रभु श्री १००८ श्री चन्द्रप्रभुजी की प्रतिमा बिराजमान है। दूसरे जिनालय श्री १००८ श्री आदिनाथ दि. जैन मंदिर में मूलनायक प्रभु श्री आदिनाथजी की मूर्ति शोभायमान है। एक जिनालय है श्री १००८ श्री संभवनाथजी का। इसमें श्री संभवनाथजी प्रभु बिराजमान है।

चंद्रप्रभु की प्रतिमा का समय सं. १८४१ का रहा है। श्री संभवनाथजी की प्रतिमा का समय सं. १६९३ का रहा है। सभी प्रतिमाएँ प्राचीन रही है।

गाँव में ८० परिवारों के कुल ७०० सदस्य बसे हुए है। यहाँ हूमड़ आठवीं सदी में ईडर प्रान्त से आकर बसे थे।

गलियाकोट
जि. डूंगरपुर (राज) पिन-३१४०२६

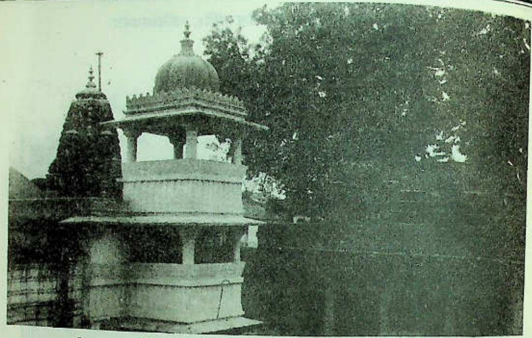

श्री १००८ शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, भीलूड़ा (राजस्थान)

श्री १००८ आदिनाथ दिगम्बर जैन बावन डेरी मंदिर कलिंजरा, (राजस्थान)

श्री १००८ श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर
खुणादरी (बाबलवाड़ा)

श्री महावीर दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र, चित्तोडा (छाणी)
मूलनायक श्री महावीर भगवान

हूमड इतिहास भाग २

श्री १००८ सहस्रफणी पार्श्वनाथ स्वामी, देवगढ़, प्रतापगढ़

श्री १००८ आदिनाथ दि. जैन नया मंदिर प्रतापगढ (राज.)

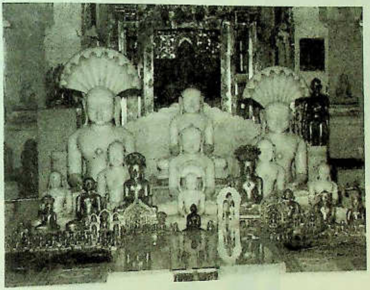

हूमड इतिहास भाग २

श्री १००८ आदिनाथ दि. जैन नया मंदिर प्रतापगढ (राज.)
चिंतामणी पार्श्वनाथ चैत्यालय

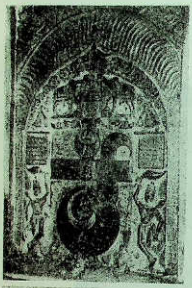

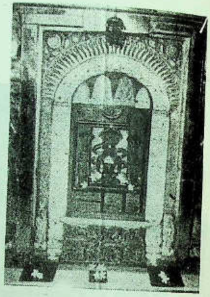

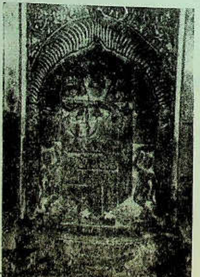

चाँदखेडी : भगवान महावीर की मनोज्ञ मूर्ति

श्री पार्श्वनाथ दि. जिनालय बंडी जी का बाग मन्दसौर

हूमड इतिहास भाग २

हूमडोंकी वर्तमान राजधानी सागवाडा विक्रम सं. ७५० से

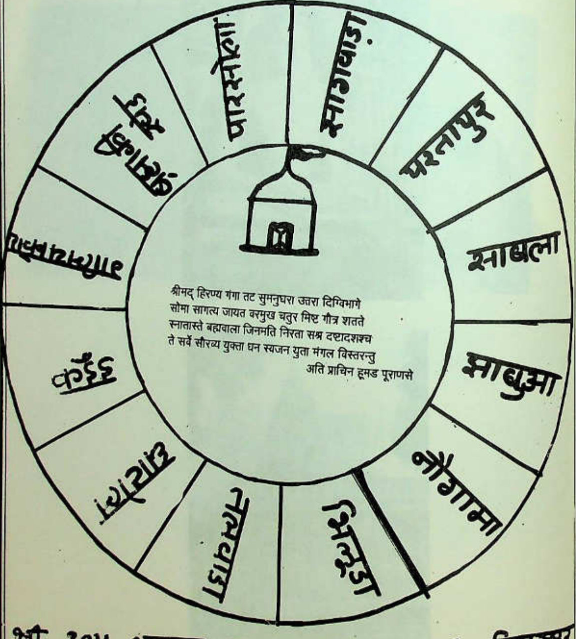

श्री ३०५ अठारह हजार दशाहूम्मडजी दिगम्बर जैन समाज के साडा बारह मन्दिर बन्दीस

हूमड इतिहास भाग २

श्री १००८ आदिनाथ दि. जैन नया मंदिर प्रतापगढ (राज.)

हूमड इतिहास भाग २

श्री १००८ आदिनाथ दि. जैन नया मंदिर प्रतापगढ (राज.)

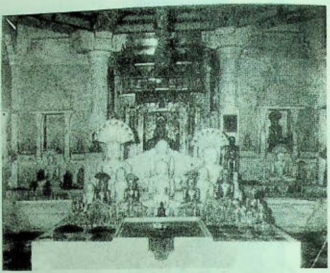

श्री नया मंदीरजी के रथ की शोभा यात्रा (प्रतापगढ) राज.
विशाल रथयात्रा

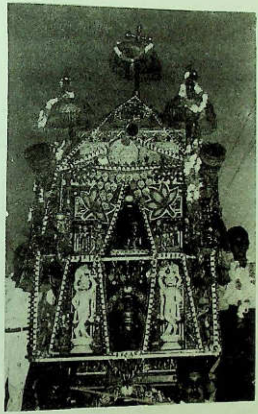

हूमड इतिहास भाग २

श्री दिगम्बर जैन वीस पंथी मंदीर
कुशलगढ. (राज.)

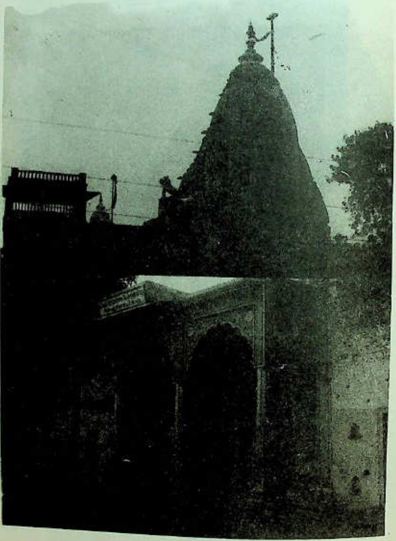

श्री आदीनाथ मूळ नायक प्रतिमाजी सागवाडा

हूमड इतिहास भाग २

आंतरी

श्री कलीकुण्ड पार्श्वनाथमंदीरजी में थंबे पर लेख

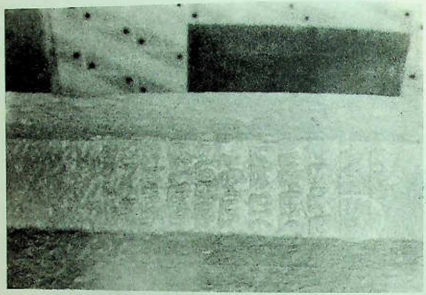

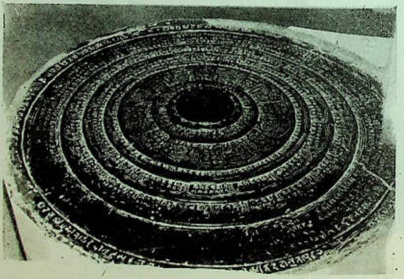

श्री ऋषि मंडल आतँरी डूंगरपुर (राज.)

हूमड इतिहास भाग २

जैन धर्म का प्रारम्भिक इतिहास

हूमड़ जैन समाज के सांस्कृतिक इतिहास में जैन धर्म के इतिहास का विचार करना अत्यन्त आवश्यक है । हूमड़ की पहचान इसलिये हैं कि वह सत प्रतिशत जैन है । श्री हूमड़ जैन समाज की उद्‌गम और महाराष्ट्र में आगमन मानवी जीवनको एक विशेष शैली है । मानवीकी सामाजिक जीवन और संस्कृतिक धर्म के साथ जुडी है । उसमें जीवन चर्या सुचारु रुप से चलन के लिये जातियों में घटीत होता है ।

अध्यात्म प्रधान भारत :

भारत अध्यात्म की उर्वर भूमि है । यहां के कण-कण में आत्मा निर्भरता का मधुर संगीत है, तत्वदर्शन का रस है और धर्म का अंकुरण है । यहां की मिट्टी ने ऐसे नवरत्नों को प्रसव दिया है जो अध्यात्म के मूर्त रुप थे . उनके हृदय की हर धडकन अध्यात्म की धडकन थी । उनके ऊर्ध्व मुखी चिन्तन ने जीवन को समम्काने का विसद दृष्टिकोण दिया । भोग में त्याग की बात कहीं और कमल की भांति निर्लेप जीवन जीने की कला सिखाई ।

तीर्थंकर ऋषभ :

भारत भूमि पर वर्तमान अवसर्पिणी काल में प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ थे । तीर्थंकर ऋषभ अन्तिम कुलकर नाभि के पुत्र थे । वे मानवीय संस्कृति के आद्य सूत्रधार, प्रथम समाज व्यवस्थापक, प्रथम राजा, प्रथम मुनि, प्रथम भिक्षाचर, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम धर्म प्रवर्तक एवं प्रथम धर्म चक्रवर्ती थे ।

समाज स्यवस्थापक के रुप में ऋषभ ने असि, मसि, कृषि का विधान दिया । ब्राह्मी और सुन्दरी अपनी इन दोनों पुत्रियों को लिपि विद्या और अंक विद्या में कुशल बनाया । जैन मान्यता के अनुसार आज की सुप्रसिद्ध ब्राह्मी लिपि का नामकरण ऋषभ पुत्री ब्राह्मी के नाम पर हुआ है । प्रागैतिहासिक काल से अब तक अनेक भाषाएं ब्राह्मी लिपि में लिखी गई है ।

ऋषभ ने अपने पुत्र भरत को भी राजनीति कात्रशिक्षण देकर राज्य संचालन के योग्य बनाया । भरत प्रथम चक्रवर्ती बने । जैन मान्यतानुसार ऋषभ पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ । कई आधुनिक विद्वानों का भी इसमें समर्थन है ।

ऋषभ पुत्र भरत से दुष्यन्त पुत्र भरत बाद में हुए हैं । सुप्राचीनकाल में यहां भारत जाति निवास करती थी । इससे स्पष्ट है इस भूमि का भारत नाम दुष्यन्त पुत्र भरत से पहले ही हो गया था ।

समाज और राज्य की समुचित व्यवस्था करने सके पश्चात् ऋषभ मुनि बने . साधना में प्रवृत्त हुए । सर्वज्ञ बने । उन्होंने धर्म तीर्थ प्रवर्तन किया । उत्तराध्ययन सूत्र में उल्लेख है– "धम्माणं कासवो मुहं" काश्यप (ऋषभ) धर्म के मुख थे अर्थात् ऋषभ धर्म के आद्य प्रवर्तक थे ।

तीर्थंकर ऋषभ का तेजोमय व्यक्तित्व त्याग और तप का पूंजीभूत रुप है ।

प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के पश्चात् द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ, तृतीय तीर्थंकर सम्भव...........रामायण काल में बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ हुए हैं । अनन्त काल को इतिहास एवं बुद्धि की परिधि में नहीं बांधा जा सकता इसलिे ऋषभदेव के अनन्तर बीस तीर्थंकरों का काल इतिहास के शोध विद्वानों द्वारा प्रगैतिहासिक युग मान लिया गया है । जैन ग्रन्थों में प्रत्येक तीर्थंकर का इतिहास विस्तार से उपलब्ध है ।

हूमड इतिहास भाग २

तीर्थकर अरिष्टनेमि

तीर्थकरों के क्रम में बाईसवें तीर्थकर अरिष्टनेमि थे। अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। जैन इतिहास के अनुसार समुद्र विजय और वसुदेव सहोदर थे। समुद्र विजय के पुत्र अरिष्टनेमि और वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण थे। कृष्ण के लधु भ्राता गजसुकुमाल आदि कई प्रिय पारिवारिक जनों की दीक्षा तीर्थकर अरिष्टनेमि द्वारा हुई थी।

अरिष्टनेमी का काल महा भारत काल था।

तीर्थकर पार्श्वनाथ :

तीर्थकरों के क्रम में तेईसवे तीर्थकर पाश्वनाथ आधुनिक इतिहास विदों द्वारा ऐतिहासिक पुरुष प्रमाणित हुऐ है उनका समय तीर्थकर महावीर से लगभग २५० वर्ष पूर्व था। चौबीसवें तीर्थकर महावीर के अभिभावक पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायी थे। उनको धर्म संस्कार पार्श्वनाथ की परम्परा से प्राप्त हुए थे।

वर्तमान जैन परम्परा और तीर्थकर महावीर

वर्तमान जैन शासन की पऱम्परा भगवान् महावीर से सम्बन्धित है।

धर्म परम्परा की द्रष्टि से हूमड़ जाति सदैव धर्म को मानने वाली है।

उस जातिके पूर्वजो के विशेष समुदाय के संगठन या निर्माण के बीच क्या सम्बन्ध है और यह निर्माण और संगठन कितना भौगोलिक, कितना धार्मिक, कितना आर्थिक और सामाजिक, कितना जातिय और कितना आनुवंशिक था इन प्रश्नो का समाधान भारतीय इतिहास नृतत्वशास्त्र (ऐथोपोलाजी) एवं समाजशास्त्र के आधार से करने का प्रयत्न कीया गया है।

वर्ण व्यवस्था के परिपेक्ष में हूमड़ जाति के पूर्वज मूलन लाड क्षत्रिय थे। भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं मूल संघ के विभाजन के धार्मिक कारणों से हमारे पूर्वजो के विशेष लाडवंश के (फूलो)संगठन ने सामूहिक रुप से सम्मलित होकर एक नये सीमान्त पर एक सूत्र में बंधे रहने और एक नई जाति का गठन अनिवार्य लगने से आचार्य माघनन्दि जिन्हे आचार्य अहत्वली ने मूल संघ के विभाजन में नन्दिसंघ का आचार्य भार दिया था उनके संघ की प्रेरणा से नन्दिसंघ का सानिध्य स्वीकार किया। जो न्दिसंघ फिर से विभीजन होकर आगे जाकर वलात्कारगण, सरस्वती गच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुआ उसे हूमड़ समाज ने प्रारम्भ से लेकर १९ वी सदी के अन्त तक (जहाँ तक हूमड़ो के भट्टारक का अस्तित्व रहा) लगातार स्वीकार किया।

अंतराष्ट्रिय और भारतीय वाणिज्य के क्रम में हमारे पूर्वज क्षत्रियों ने नई संभावनाओ के देखते हुए नये व्यवस्थाय चुने और वे तिजारती काफिलों के सरदार और संरक्षक बने। संभव है कि हमारे क्षत्रिय पूर्वजो के लिये आर्थक सम्पन्नता के स्तोत्र सूखने लगे हो और वाणिज्य की संभावनाओ ने एक मये मोड़ को दिया है।

हूमड़ समाज की विशिष्ट सांस्कृतिक, धार्मिक परम्परा, साहित्य गतिविधिओ, लोक साहित्य एवं कलाओ, सामाजिक रीतिरीवाज, हूमडो द्वारा निर्माण किये गये तीर्थ जिनालय, धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणीक, क्षेत्रकी संस्थाओ की गतिविधि एवं जिनालयो की मूर्तिया मूर्तिलेख, शिलालेख, जो मूक वाणी से अपने समय की हूमड़ समाज की झांकी प्रस्तूत करती है उन सम्बन्धित सामग्री का विशेष रुप से संचयन कीया गया है।

हूमड़ समाज के इतिहास का लेखन सम्पूर्ण भारतीय हूमड़ समाज को एक सूत्र में पिरोने, आनेवाली पीढी को हमारी प्राचीन परम्पराओं एवं संस्कृति की जानकारी के साथ इतिहास के अनेक प्रश्नो का समाधान प्रस्तुत करने जा रहा है। यह एक गम्भीर समाज शास्त्र से संबंधित प्रश्न है मूलतःअपने आपको हूमड़ कहलाता और माननेवाले जाति समुदायों के मूल उद्‌गम और उन उद्‌गम स्थानों से देश देशान्तर में प्रवास के प्रयाण पथ

(रुट्स ओफ माइग्रेशन) क्या थे, वे प्रयाण कालांतर में उन प्रवासी समुदायों में परस्पर और मूल उद्गम के साथ कितने और कैसे सम्पर्क और सम्बन्ध रहे। कब कहाँ और क्यों ये सम्पर्क सूत्र शिथिल विच्छुन्न हुए। क्षेत्रों को छोडने और देश परिवर्तन या देशान्तर का विकल्प चुनने के क्या कारण थे। क्या ये बल आर्थिक थे और नई सम्भावना के ही प्रेरित थे या उनमें राजनैतिक और समाज शास्त्रीय कारण भीथा २००० मूर्तिलेख, ५०० शिलालेख, ३०० प्रशस्ति, ईडर, सागवाडा, ऋषभदेव, नागौर से प्राप्त पट्टावासीयो, जैन अजैन इतिहास, (जैनो की सभी प्रमुख जातियोके) भारतीय ज्ञीनपीठ इतिहास) द्वारा किया गया गत् ३० वर्षो का संशोधन, गुजरात सरकार द्वारा प्रकाशित गुजरात नो प्राचीन इतिहास और संस्कृति दस भाग के अनेक एतिहासिक प्रमाण आदि हूमडो के अति प्राचीन ग्रन्थ हूमड़ पुराण छोटे आशीशा बडे आशीशा हूमड़ वंशावली महाजन मुक्तावली, दानवीर शेठ माणलुचंदजी का जीवन चरित्र प्राचीन गोरजी के हस्तलिखित संग्रह जैन आगम और तीर्थक्षेत्र के इतिहास आदि के संग्रह और उनके अभ्यास से निचोड स्वरुप निम्न प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। हमारे मूल उद्गम स्थान : समय पूर्वज कौन? उनकी संस्कृति मूल स्थान से देश देशान्तर में प्रयाण का अलग अलग समय संस्कृति, रीती रिवाजो में विकृतियो से हमारी संस्कृति को बनाये बचाये रखने के लिये क्या किया जा सकता है? और क्या करना चाहिये?

अर्हतबली गुरुश्य के संघ परम् सिंहसंघो,
नन्दिसंघो, सेन संघस्त वापरः।
देवसंघ इति स्पष्टं स्थल स्थिति विशेषतः।

इन्दनन्दि श्रुतावतार

ज से १९६१ वर्ष पूर्व वीर संवत् ५६५ विक्रम संवत ६५ इसवी सन् ३८ में महाराष्ट्र के सतारा के महिमागढ़ के वेठणा नदी तट पर पंचवर्षीय प्रतिक्रमण के समय आचार्य अर्हतबली ने मूलसंघ का विभाग किया और अन्य संघो के साथ नंदिसंघ का आचार्य घोषित क्या उसी नन्दिसंघ के आचार्यो द्वारा विशेष कुलो ने हूंमड़ जातचि की स्थापना करके गत् दो हजार वर्षो से नन्दिसंघ बलात्कार गण सरस्वती गच्छ का सानिध्य प्राप्त किया।

इन नन्दिसंघ की स्थापना सतारा में जहाँ जैनियों की काशी और दक्षिण भारतकी राजधानी फल्टन में महासंघ द्वारा सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

(२) आज से ३४४ वर्ष याने इसवी सन् १६५५ में महाराज छत्रपति शिवाजी ने इडर के श्रेष्ठी जयचंद गांधी को सन्मानित करके और जागीर देकर एवं इडर एवं रायदेश के विभिन्न गाँवों के श्रेष्ठियों के साथ फल्टन में स्थायी निवास करवाया। श्रेष्ठी जयचंद गाँधी जो मूल इडर निवासी थे उस समय सूरत में अफीम का व्यापार करते थे उन्होंने महाराजा शिवाजी को मुगलों के सामने युद्ध हेतु विशाल धन राशी से सहायता की इसी अनुसंधान में महाराजा शिवाजी ने उन्हे फल्टन की जागीर से सन्मानीत किया थी। फल्टन से दक्षिण महाराष्ट्र एवं कर्नाटक में वर्तमान में निवास करते सभी हूमड़ समाज से स्थानान्तर करके बसे है।

(महाराजा शिवाजी मराठी इतिहास में)

(३) आज से ५१० वर्ष पूर्व याने विक्रम संवत् १५४५ में सागवाड़ा जो हूमड़ो का राजस्थान में मुख्य केन्द्र है वहाँ के उस समय के भट्टारक यशकीर्ति के समय ६३ कुटुम्बी के साथ अमरकीर्ति के नेतृत्व में कारंज में भट्टारक गादी स्थापित की और दक्षिण पूर्व महाराष्ट्र में उसी समय से हूमड़ समाज निवास करता है। वर्तमान में कारंजा अमरावती मालेगाँव, आमोला, धुलिया आदी में निवास करने वाले उन्ही पूर्वजो के सन्तान है।

हूमड इतिहास भाग २

"हूमड़ों की दक्षिण भारत में पवित्र भूमि फल्टन "

फल्टन को हूमड़ों की काशी कहा जाता है। यह स्थान स्थापत्य कला का प्रसिद्ध केन्द्र है . फल्टन को प्राचीन समय में "फलेडाण" नाम से जाना जाता ता इसे फलपत्तन भा कहते थे। क्योंकि किसी समय यहां नारियल पोफल असोक आदि की भरपुर पैदावार होती थी अतः फलपत्तन भी कहा जाता था।

बाद में फलेडाम का अपभ्रंस फल्टन हो गया। इतिहासकारों के अनुसार फल्टन दंड कारण्य क्षेद के अन्तर्गत आताथा। भगवान रामचन्द्र सीता सहित इस दंडकारण्य वन में आये थे। ऐसे एतिहासिक प्रमाण है . यही पर ७,८ मील की दूरी पर चन्द्रपति पहाड़ पर "सीता माँ " का मन्दिर बना हुआ है .

प्राचीन काल में शुक्रवार पेट में राजप्रसाद एवं अनेक सुन्दर शिल्प युक्त प्राचीन मन्दिर बने हुये थे। उनमें कुछ प्रसिद्ध जैन मन्दिर, आदिनात, पार्श्वनाथ, चन्द्राप्रभुजी के मन्दिर थे . यहाँ पर जैन समाज का अस्तित्व था पर धीरे धीरे कुच आर्थिक कठिनाईयों एवं मुसीबतों के कारण जैन धर्मावलम्बियों ने साँगली, निरज, कोल्हापुर, पंढरपुर आदि की और स्थानान्तरम किया।

श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर "शुक्रवार पेठ"

फल्टन में शुक्रवार पेठ में संवत १८९५, ई. सन्. १८२५ में श्रीमान नारायणजी आणंदजी उल्क नारुभाई महेता ने दिनाथ भगवान का मन्दिर बनाने का संकल्प किया था परन्तु शासकीय मंजुरी में कठिनी होने से अपन् मकान के एक भागम में ही मन्दिर निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। ११ महिने में निर्माण कार्य पूर्न हुआ एवं इ. सन्. १८९२ माध सुदी पाँचम के दिन पंचकल्याणक उत्सव करके आदिनाथ भगवान की मूर्ति प्रतिष्ठित मन्दिर निर्माण को कार्य सम्पन्न होने तक सेठ नारायणजी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वे केवल दूग्धावन ही करेगें . मन्दिर प्रतिष्टा के बाद ही आपने अन्न ग्रहम किया।

संवत १९८९ में श्रीमान नवलचन्द देवचंद गाँधी ने फल्टन में मानस्तम्भ निर्मित करवाया।

संवत १८९५ में श्रीमान सेठ जयचंद नागराज ने चन्द्रप्रभु दि. जैन मन्दिर ८ मी पेठ शुक्रवार पेठ में महाराज प्रातापसिंह द्वारा शिलान्यास करवाया . इस मन्दिर का निर्माण अनेक चरणों में हुआ . (१) रत्नत्रय मन्दिर (२) सम्मेद शिखर पहाड। इस मन्दिर का पंचकल्याणक वि.सं. १९३६ में वैशाख सुदी १० बुधव ार को सम्पन्न हुआ और चन्दाप्रभुजी की मूर्ति प्रतिष्ठित की गी।

फल्टन सिंगापुर रोड पर पाँच दिगम्बर जैन खण्डित मन्दिर है , जिनमें भगवान पार्श्वनाथ एवं पद्मावती की खम्डित मूर्तियाँ विराजमान है। इ. सन्. १९५२ में पूज्य आचार्य १०८ श्री सान्तिसागरजी महाराज के जन्मजयन्ति महोत्सव के समय धवलाग्रन्थ के ताम्रपर अंकित किया गया एवं आचार्य धरसेनाचार्य की मूर्ति विराजमान की गई।

पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर

श्रीमान अमरचंद वेणीचंद शाहने इ. सन् १९५४ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाकर इस मन्दिर में पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति प्रतिष्ठित की है . इस मन्दिर में मानस्तम्ब का भी निर्माण किया गया है।

श्री चन्द्रप्रभु दि. जैन मन्दिर (शुक्रवार पेठ) श्री सहस्त्रकूट दि. जैन मन्दिर :-

श्रीमान वेमी चन्द गांधी एवं श्रीमान् नाथूराम जयचन्द डुडु ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया। पद्मप्रभु दि. जैन मन्दिर :- इस मन्दिर में विराजीत भगवान पद्मप्रभु की मूर्ति है वह ८०० वर्ष पहले जो हूमड़ यहाँ आये थे वे अपने साथ इस मूर्ति को लाये थे, और उन्होंने भव्य मन्दिर का निर्माण कर इसमें प्रतीष्ठित की।

सिद्धक्षेत्र

श्री गजपन्था सिद्धक्षेत्र या निर्वाणक्षेत्र हैं । यहाँ से सात बलभद्र और आठ कोटि यादव मुक्त हुए थे । तत्सम्बन्धी उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें उपलब्ध होते हैं । प्राकृत निर्वाण-काण्डमें इस सम्बन्धमें निम्नलिखित गाथा मिलती है ।

सत्तेव य बलभद्दा जदुवणरिंदाण अट्ठकोडीओ ।
गजपंथे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥६॥

अर्थात् सात बलभद्र और आठ कोटि यादव राजा गजपन्थ गिरिके शिखरसे मुक्त हुए ।

क्षेत्र दर्शन

म्हासरुल गाँवके उत्तरकी तरफ जैन धर्मशाला बनी हुई हैं । इसके चारों ओर परकोटा हैं । कम्पाउन्डके भीतर ही धर्मशाला, स्नानगृह तथा एक दो-मंजिला भवन है । परकोटाके दक्षिणकी ओर एक कम्पाउण्ड हैं । इसमें दो-मंजिल हवेली बनी हुई है । चौकके मध्यमें क्षेत्र कार्यालय है । दो छोटे बंगले भी बने हुए है -एक ईशानकोणी की और,दूसरा बड़े फाटकके पास । ये सब क्षेत्रकी ही सम्पत्ति हैं । धर्मशाला के अन्तमार्गमें एक भव्य जिनालय हैं । इसमें मूलनायक प्रतिमा महावीर भगवानकी है । इसकी अवगाहना २ फुट १ इंच है । इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९४५ में हुई थी । यह श्वेत वर्णकी है और पद्मासन मुद्रामें हैं । इसके बायीं ओर २ फुट १ इंच ऊँची आदिनाथकी श्वेतवर्णकी पद्मासन प्रतिमा है । समवसरणमें इनके अतिरिक्त धातुकी ३१ मूर्तियाँ है जिनमें ७ बलभद्रों की है और १ गजकुमार की है । शिखर पर ७ मूर्तियाँ है । मन्दिरके आगे मानस्तम्भ है जो वीर सं० २४६० में ब्र. कंकुबाईकी ओर से निमित्त हुआ था । मानस्तम्भकी शीर्षवेदी पर महावीर स्वामी की ४ प्रतिमाएँ है । मन्दिर के निकट एककुआँ हैं । सामने क्षेत्रके खेतमें एक बावड़ी है ।

यहाँ आज जो धर्मशाला, मन्दिर सरस्वती भवन आदि दिखाई पडते हैं, लगभग डेढ सौ वर्ष पहले कुछ भी नहीं था । एक बार नागौरके भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति तीर्थयात्रा करते हुए यहाँ पधारे और क्षेत्रकी गौरव-गरिमासे प्रभावित होकर उन्होंने इसे अधिक प्रकाशमें लानेका विचार किया । अतः उन्हीकी प्रेरणासे प्रेरित होकर शोलापुर निवासी सेठ नानचन्द फतेहचन्दजीने म्हसरुलमें जमीन खरीदकर यात्रियोंकी सुविधाके लिए धर्मशाला और मन्दिरका निर्माण कराया । मन्दिरकी प्रतिष्ठा खरीदकर यात्रियोंकी सुविधाके लिए धर्मशाला और मन्दिरका निर्माण कराया । मन्दिरकी प्रतिष्ठा भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्तिजीके नेतृत्वमें वि. सं. १९४३ में बडे धूमधामके साथ सम्पन्न हुई थी ।

पर्वत की तलहटीमें एक सुन्दर वाटिका है । इसीके पासमें भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्तिकी समाधि बनी हुई है तथा एक जिनालय है । मन्दिरके गर्भगृहमें २ फीट ऊँचा एक चैत्य है, जिसमें चारों दिशाओंमें श्वेतवर्णकी पद्मासन मूर्तियाँ हैं तथा १२-१२ मूर्तियाँ और बनी है । दायी ओर दीवारवेदीमें २ फीट ऊँची पार्श्वनाथकी श्वेतवर्ण पद्मासन मूर्ति हैं । इस मन्दिरके पाससे ही पर्वतपर चढ़नेके लिए सीढ़ियाँ बनी है । पर्वतकी ऊँचाई केवल ४०० फीट है । सीढ़ियाँ प्रायः एक फुट ऊँची और खड़ी है ।

पर्वतपर चढ़नेके पश्चात् सर्वप्रथम एक फाटक मिलता है । इसमें घुसते ही दायी ओर को १३ सीढ़ियाँ

चढ़कर एक लघु शिखरके नीचे तीन श्वेत चरण सुदर्शन, नन्दि और नन्दीमित्र बलभद्रके विराजमान हैं। शिखरके अधोभागमें सुप्रभ, सुधर्म, गजकुमार, अचल और विजय बलभद्रके चरण हैं। फिर एक नवनिर्मित जिनालय और पार्श्वनाथ गुफाके दर्शन होते है। इस गुफा मन्दिरकी प्रतिमाकी पुनः प्रतिष्ठा (लेप चढ़ानेके कारण) पूनाके सेठ शोभाराम भगवानदास द्वारा निर्मित की गयी। इसमें भगवान् पार्श्वनाथकी श्यामवर्ण १० फुट ४ इंच अवगाहनावली नौ फणावलियुक्त पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। आचार्य शान्तिसागरजी के उपदेशसे इस विशाल प्रतिमाकी पुनः प्रतिष्ठा करायी गयी। इसकी प्रतिष्ठा मार्गशीर्ष शुक्ला १० संवत् १९९४ में की गयी। दूसरा मन्दिर ब्र. जीवराज गौतमचन्दजी शोलापुरने निर्माण कराया। यह वीर सं. २४६० में निर्मित हुआ था। बायीं ओर १ फुट ५ इंच उँची कत्थई वर्णकी पद्मप्रभुकी और दायी ओर वासुपूज्यकी प्रतिमा है। उपर्युक्त गुफा और पार्श्वनाथ प्रतिमा अत्यन्त प्राचीन हैं।

मांगीतुंगी

सिद्धक्षेत्र

मांगीतुंगी परम पावन सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे राम, हनुमान, सुग्रीव, गवय, गवाक्ष, नील, महानील, आदि ९९ कोटि मुनियोंको निर्वाण प्राप्त हुआ था। अतः यहाँका कण-कण पवित्र है। प्राकृत निर्वाण-काण्डमें इस तीर्थके सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख मिलता है।

"राम हणू सुग्गीवोगवय गवक्खो य नील महनीलो।
णव णवदी कोडीओ तुंगीगिरि णिव्वुदे वंदे ॥ ८॥"

अर्थात् राम, हनुमान, सुग्रीव, गवय, गवाक्ष, नील और महानील आदि ९९ कोटि मुनियोंने तुंगीगिरिसे निर्वाण प्राप्त किया। उन्हें मैं वन्दना करता हूँ।

इस क्षेत्रकी वन्दनाके माहात्म्यका वर्णन भट्टारक ज्ञानसागरने सर्वतीर्थ वन्दना नामक अपनी रचनामें दो छप्पयोंमें बडे भावपूर्ण शब्दोंमें किया है, जो इस प्रकार है -

"तुंगी पर्वत सार सिद्ध क्षेत्र सुखदायक।
श्री बलिभद्रकुमार थया जिहां सुरवरनायक।
दर्शनथी आनंद पूजत बहु सुख पावें।
सुर नर किन्नर सकल मुनिवर मिलि गुण गावें ॥
मांगीतुंगी तीर्थकी महिमा जगमें विस्तरी।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति जिहां बलिभद्रे तपसा करी ॥१२॥
हलधर श्री बलिभद्र नृप वसुदेव सुनन्द।
कृष्णरायको बंधु सकल शास्त्र कृत खंडन।
द्वारावति निज बंधु विरह थकी व्रत लीनो।
दृढतर राख्यो चित्त ध्यान अधिक परिकीनो ॥
बालक फांस्यो देखि करि तुंगीगिरि अणसण कियो।
ब्रह्म ज्ञानसागर वदति पंचम स्वर्ग सुरपद लियो ॥९२॥"

भट्टारक गुणकीर्तिने तुंगी गीत नामक अपनी मराठी रचनामें तुंगीगिरिकी यात्राको जन्मजरा और

मरणकी परम्पराका नाश करनेवाली बताया है । सम्बद्ध अंश इस प्रकार है -

"क्रम खंडण खेत्र बुझो रे लोइया अहीनिसी करो तम्हे जात्र ।
जन्म जरा मरन सर्व क्रम तुटे अवर न जानुं तम्ह बात ॥४॥"

प्राचीन मुल्हेड़ नगर

क्षेत्रके निकट प्राचीन कालमें एक बहुत विशाल और सम्पन्न नगर था, जिसे मुल्हेड़ कहा जाता था । आज तो विगतवैभव यह नगर साधारण कस्बा रह गया है । यहाँ पर्वतके ऊपर प्राचीन दुर्गके अवशेष बिखरे पड़े है । इन अवशेषोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि यह दुर्ग कभी बहुत विशाल रक्षा दुर्ग रहा होगा । इस दुर्गमें अब भी सरोवर, जलकुण्ड और भवनोंके अवशेष दिखाई पड़ते है । इस नगरमें केवल जैनोंकी संख्या ही हजारों थी । यहाँ जैनपुरा नामक एक मुहल्ला था, जिसमें जैनोंके ८०० घर थे । अबसे दो सौ वर्ष पूर्व यहाँ तीन सौ घर तो दसा हूमड़ोंके थे । यहाँ अनेक जिनालय और धर्मशालाएँ बनी हुई थी । मांगीतुंगीकी यात्रा करनेवाले यात्री इन्ही धर्मशालाओंमें विश्राम करते थे । वहाँसे जंगलो-दुर्गोमें होते हुए तीन मील पैदल या गाडियोंमें चलकर तलहटीमें विश्राम करते थे । वहाँसे जंगलों-दुर्गों में होते हुए तीन मील पैदल या गाड़ियोंमें चलकर तलहटीमें पहुँचते थे । तब मार्ग ऊबड़-खाबड़ था । पहाड पर जानेके लिए भी सीढ़ियों का निर्माण नहीं हुआ था । इसलिए अनेक यात्री तो तलहटीमें ही पूजन आदि करके सन्तुष्ट हो लेते थे ।

इस नगरमें कई सुप्रसिद्ध जैन साहित्यकार भी हुए है । ईडर गादीके भट्टारकोंकी ओरसे ब्रह्मचारी ब्रह्म जिनदास यहाँ रहते थे । संस्कृत और प्राकृतमें विरचित आपके कई ग्रन्थ आज भी मिलते हैं । ब्रह्म जिनदास ईडर शाखाके प्रसिद्ध भट्टारक सकलकीर्तिके शिष्य थे । ब्रह्म जिनदासके शिष्यब्रह्म शान्तिदास भी बड़े विद्वान थे । वे भी मुल्हेड़में रहे थे । उनके समय सूरत गादीके भट्टारक लक्ष्मीचन्द और मुनि दयालचन्द्र मुल्हेड़में वास कर रहे थे, इस प्रकारके प्रमाण प्राप्त होते है । इन्हीके कालमें वेटावदके निवासी वेणीदासजी दसा हूमड़ उच्च कोटिके विद्वान थे । आपने भी संस्कृत और प्राकृतमें कुछ ग्रन्थोंकी रचना की थी । आपकी प्रेरणासे वेटावद निवासी संघवीने वि. सं. १८२२ में श्री मांगीतुंगीके लिए संघ निकालकर मुल्हेड़नगरमें जिन-बिम्ब-प्रतिष्ठा करायी थी । अमलनेरके निकट मांडल ग्रामके जिनालयमें चौबीसीकी चरण-चौकीपर जो लेख है, उससे भी मुल्हेड नगरमें हुई बिम्ब-प्रतिष्ठाकी सूचना मिलती है । वह मूर्ति-लेख इस प्रकार है ।

"श्री सं. १८२२ वर्षे द्वितीय चैत्र शुक्ला ७ बुधवासरे श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्री सकलकीर्ति तदनुक्रमेण भट्टारकश्री विजयकीर्तिस्तत्पट्टे भट्टारकनेमिचन्द्र तत्पट्टे भट्टारकश्री चन्द्रकीर्ति गुरु उपदेशात् श्री वगलान देशे मुल्हेड़ हूंबड़ नगरे ज्ञाती लघुशाखायां गंगेश्वर गोत्रे सा श्री साल वेलजी तत् भार्या उताइ स्तेना सुत राखेवदास भ्राता लघु यग्मं एते प्रतिष्ठा करान्ति शुभं चतुर्विशति तीर्थकराणां नित्यं प्रणमति श्रीरस्तु शुभं भवतु कल्याणमस्तु ।"

इससे प्रतीत होता है कि दो शताब्दी पूर्व मुल्हेडनगर, जो हूंबड़ जातिका नगर कहलाता था, सम्पन्न था और उस काल तक वहाँ बिम्ब प्रतिष्ठा होती रही थी । किन्तु किन्ही प्राकृतिक अथवा राजनीतिक कारणोंसे मुल्हेड़ नगर शोभाविहीन हो गया, जनविहीन हो गया और वहाँके हूंबड़ नगर छोड़कर खानदेशके विभिन्न ग्रामोंमें जा बसे । यहाँ तक कि इस नगरमें एक भी जैन नहीं रहा । तब यहाँके जिनालयकी कुछ प्रतिमाएँ

कुसुम्बाके जिनालयमें भेज दी गयी। निश्चयही, मल्हेड़ नगरका यह उत्थान और पतन संसारके परिवर्तनशील स्वभावका बोध कराता है।

मॉंगी शिखर

मॉंगी शिखर - महावीर मन्दिर एक गुफा है। इसे पलस्तर और टाइल्स द्वारा कमरेका रुप दे दिया गया है। इसमें मूलनायक प्रतिमा भगवान् महावीर की है। यह श्वेत वर्णकी पद्मासन मुद्रामें विराजमान है। इसकी अवगाहना ३ फुट ३ इंच है। मूर्तिके ऊपर पालिश की हुई है। इसके पीठासनपर लेख और लांछन नही है।

बायी ओरकी दीवारमें १ फुट १ इंच ऊँची ४ पद्मासन प्रतिमाएँ हैं। इनमें ३ एक पंक्तिमें है और १ मूर्ति बायी ओर दीवारमें हैं। ये सभी दीवारमें उकेरी हुई है। इधर ही दो सालोंमें इतनी ही बड़ी प्रतिमाएँ उत्कीर्ण है।

इस मन्दिरसे कुछ आगे चलनेपर पहाडकी दीवारमें ८ प्रतिमाएँ तीर्थकरों और यक्षयक्षियोंकी उत्कीर्ण है। इसके निकट एक छोटासा जल-कुण्ड है। आगे बढ़नेपर एक बरामदा मिलता है जिसमें टाइल्स लगे हुए हैं। दीवारमें पहले पैनलमें ४ फुट ऊँची तथा बायीं ओर २ फुट ३ इंच ऊँची मूर्ति है। इससे आगेके पैनलमें शिलामें २ फुट ऊँची तथा उसके पार्श्वमें कार्योत्सर्गासन में एक साधु प्रतिमा है। उससे ऊपरकी ओर एक शिलामें चौबीस तीर्थकर मूर्तियाँ है। एक प्रतिमा श्रीकृष्णके भाई बलराम मुनिकी है। इनकी पीठ दिखाई पड़ती है। जब देव द्वारा समझानेपर बलरामको यह विश्वास हो गया कि उनका प्राणोपम भाई वास्तवमें गतप्राण हो चुका है तो उन्हें इस असार संसारसे वैराग्य हो गया और वे दुनियासे मुख मोड़कर मुनिदीक्षा लेकर तप करने लगे। दुनियाकी ओर पींठ किये हुए यह प्रतिमा उसी अवस्थाका बोध कराती है, ऐसी रोचक उक्ति प्रचलित है।

आगे बढ़नेपर गुफानं. ६ मिलती है। यह गुफा औरोंकी अपेक्षा बड़ी है। इसे भी पलस्तर करके कमरेका रुप दे दिया गया है। दायीं ओरसे बायीं ओरको भगवान् आदिनाथ की ४ फुट ६ इंच उँची पद्मासन प्रतिमा है। इसके ऊपर श्वेतवर्णकी पालिश की हुई है आगे दीवारमें २० पद्मासन प्रतिमाएँ हैं जिनमें एक खड्गासन है। आगे ६ भक्त युगल हैं। वेदीके मध्यमें एक शिलाफलकमें पार्श्वनाथ है। सिरके ऊपर छत्र हैं, दोनों पार्श्वोंमें चमरवाहक हैं। नीचे दो पद्मासन और दो खड्गासन तीर्थकर प्रतिमाएँ हैं। अधोभागमें बायी और दो भक्त हाथ जोडे हुए खडेहै। इस मूर्तिसे आगे २८ पद्मासन अर्हन्त प्रतिमाएँ तथा १० कायोत्सर्गासन साधु प्रतिमाएँ है तथा द्वारपर दायीं ओर पद्मासन प्रतिमा है। गुफाके मध्यमें एक दीवार है जिसमें ७ अर्हन्तोंकी पद्मासन और ६ साधुओंकी कार्योत्सर्ग मुद्रामें दीवारके तीन ओर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

इससे आगे गुफा नं.७ मिलती है। यह एक अर्धमण्डप है। इसके मध्यमें एक चैत्य है जिसमें चारों दिशाओंमें चार प्रतिमाएँ बनी हुई हैं तथा अन्दर दीवारमें ४ प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

इससे आगे एक खुली गुफा नं. ८ है। इसमें तीन ओर २० पद्मासन अर्हन्त प्रतिमाएँ और ७ साधु प्रतिमाएँ हैं इनके एक हाथमें माला और दूसरे हाथमें पीछी है। गुफाकी बाह्य भित्तियों पर ७ अर्हन्त प्रतिमाएँ और ४ साधु प्रतिमाएँ हैं।

आगे गुफा नं. ९ हैं। इसमें तीन ओर ४७ पद्मासन अर्हन्त प्रतिमाएँ और १३ खड्गासन साधु-प्रतिमाएँ है। मध्यमें २ फुट १० इंच उँची पार्श्वनाथ प्रतिमा है।

इसके आगे अर्धमण्डप है। उसके मध्यमें ५ फुट ३ इंच ऊँचे क्षेत्रपाल विराजमान हैं। निकट ही एक कुण्ड हैं। आगे पहाड़की दीवारमें ४० प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

यहाँसे पर्वतका परिक्रमा पथ प्रारम्भ होता है । इसमें पर्वतकी दीवारमें २४ तीर्थकर मूर्तियाँ, साधु मूर्तियाँ और १ चरण चिन्ह बने हुए है । परिक्रमा समाप्त होनेपर यहाँसे उतरना प्रारम्भ हो जाता है । थोड़ासा उतरनेपर एक खुली गुफामें दो चरण-चिन्ह बने हुए हैं । कहा जाता है, यहाँ सीताजीने आयिका दशामें तपस्या की थी । उसकी स्मृतिस्वरुप ये चरण-चिन्ह विराजमान किये गये हैं ।

तुंगी शिखर - मांगी शिखरसे सीढियों द्वारा उतरकर पाषाण द्वारपर आते है । वहाँसे दायीं ओरको एक चौरस कच्चा मार्ग तुंगी शिखरके लिए जाता है । तुंगी शिखरके मार्गमें मार्बलकी दो छतरियाँ मिलतो हैं । इनमें प्रचीन चरण-चिन्ह विराजमान हैं । इनसे कुछ आगे चलनेपर सीढियों प्रारम्भ हो जाती है । यहाँ सीढियोंकी कुल संख्या ३०० है । कुछ मार्ग अनगढ़ है । सर्वप्रथम चन्द्रप्रभ गुफा मिलती है । यह गुफा १२ फुट चौडी और १८ फुट लम्बी है । अनगढ़ है । यहाँ वेदीपर भगवान् चन्द्रप्रभकी ३ फुट ३ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा विराजमान है । प्रतिमाके ऊपर श्वेत पालिश की हुई हैं । भित्तियोंमें तीन और १७ प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं जनमें २ खड्गासन और १५ पद्मासन हैं । पद्मासन प्रतिमाओंमें ७ प्रतिमाएँ २ फुट १ इंचकी और ८ प्रतिमाएँ १ फुट ३ इंचकी हैं । खड्गासन प्रतिमाएँ १० इंच ऊँची हैं।

इस गुफाके बगलमें रामचन्द्र गुफा बनी हुई है । इस गुफाका आकार ९ फुट x ९ फुट हैं । सामने वेदीपर श्वेत पालिश की हुई ३ प्रतिमाएँ विराजमान हैं । ये तीनों ही २ फुट ३ इंच अवगाहनाकी हैं । इनमें मध्यमें रामचन्द्र, बायीं ओरकी दीवारमें नील और गवाक्ष तथा दायीं ओरकी दीवारमें सुडील और गव अर्हन्तकी प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं । सभीप्रतिमाएँ पद्मासन मुद्रामें हैं ।

गुफाके बहार दायीं ओर पहाडकी दीवार में ललितासनमें एक यक्षी आसीन है । गलेमें मौक्तिक माला धारण किये हुए है । इसके ऊपर बने हुए एक कोष्ठकमें तीर्थकर प्रतिमा है । यक्षीके वाम पार्श्वमें खड्गासन मुद्रामें एक तीर्थकर प्रतिमा उत्कीर्ण है । इससे कुछ आगे पर्वत शिलामें पार्श्वनाथ और एक अन्य तीर्थकर प्रतिमा उत्कीर्ण हैं ।

इस शिखरके चारों ओर भी परिक्रमा-पथ बना हुआ है । परिक्रमा-पथमें लोहेकी रेलिंग लगी हुई है । दोनों शिखरोंके परिक्रमा-पथ कच्चे हैं । यदि ये पक्के बना दिये जायें तो सुरक्षाकी दृष्टिसे अधिक सुविधाजनक हो जायें ।

दोनों शिखरों और शुद्ध-बुद्धजी की गुफाओंमें मूर्तियाँ बहुत प्राचीन हैं । अनुमानतः इनका निर्माण काल ७-८वीं शताब्दी प्रतीत होता है । इन मूर्तियोंमें सुडौलता नहीं है, छातीपर श्रीवत्स नहीं है, उनके पादपीठपर लेख और लांछन भी नही है । मूर्तियोंकी यह विधा गुप्तकालके पूर्वमें प्रचलित रही थी । इस दृष्टि यदि इनका काल गुप्त युगसे भी पीर्ववर्ती हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं होगी । यहाँकी गुफाएँ प्राकृतिक हैं । किन्तु भक्तजनोंने फलस्तर द्वारा इन्हें कमरोंका रुप दे दिया है । इसी प्रकार उन्होंने कुछ मूर्तियोंपर पालिश करवा दी है । सम्भवतः उनका उद्देश्य गुफाओं और मूर्तियोंकी सुरक्षा करना रहा होगा । एक सीमा तक वे अपने उस उद्देश्यमें सफल भी हुए हैं क्योंकि जिन मूर्तियोंके ऊपर लेप नहीं किया गया, वे खिरकर विरुप हो गयी है । इसी प्रकार गुफाएँ भी सुन्दर लगने लगी है । किन्तु गुफाओंका अपने प्राकृतिक रुपमें जो महत्व था, वह पलस्तर करने और टाइल्स लगानेसे जाता रहा। गुफाओंकी तरह पालिश की हुई प्रतिमाओंमें प्रीचीनताका आभास भी

हूमड इतिहास भाग २

नहीं मिलता। सांस्कृतिक, पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टिसे प्राचीनताका विशेष महत्त्व हैं।

तलहटीमें मन्दिरों का निर्माण

जब मुल्हेड़में जैनोंका अभाव हो गया, तब ईडरकी गादीके भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिजी को यात्रियोंकी सुख-सुविधाकी चिन्ता हुई। अतः आपने वि.सं. १८७० में पं. रिखवदासजीको भेजकर पर्वतकी तलहटीमें एक धर्मशाला बनवायी और लकड़ीका एक सिंहासन बनवाकर एक जिनप्रतिमा दर्शन और पूजनके लिए वहाँ विराजमान करा दी।

संवत् १९०४-५ में कारंजाके भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिजी और उनके शिष्य मण्डलाचार्य ब्र.रतनसागरका यहाँ आगमन हुआ। उनके सदुपदेशसे शोलापुर निवासी उत्तरेश्वर गोत्री गान्धी देवकरणने एक विशाल शिखरबन्द जिनालय निर्माण कराकर वि.सं. १९१५ माघ शुक्ला ५ को भगवान् पार्श्वनाथकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भट्टारकजी द्वारा करायी।

तत्पश्चात् उक्त भट्टारकजीके उपदेशसे बार्शी निवासी सेठ तुलजाराम बड़जातेने एक दूसरा जिनालय निर्माण कराया, जिसकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भट्टारकजी द्वारा वि. सं. १९२७ को माघ शु. ५ के शुभ मूहर्तमें करायी।

इसके पश्चात् तो वहाँ धर्मशाला, कुआँ, सभा-मण्डप, मानस्तम्भ, पहाड़पर जानेके लिए सीढ़ियों आदिका निर्माण हुआ।

क्षेत्र-दर्शन

तलहटीके मन्दिरोंके पृष्ठ भागमें लगभग एक किलोमीटर कच्चे मार्गसे चलकर सीढियोंका सिलसिला शुरु हो जाता है। पहाड़पर मांगी और तुंगी दोनों शिखरोंपर जानेके लिए २९६० सीढियाँ है।

कुन्थलगिरि

सिद्धक्षेत्र

कुन्थलगिरि या कुन्थुगिरि सिद्धक्षेत्र या निर्वाणक्षेत्र है। यहाँसे कुलभूषण और देशभूषण नामक दो मुनि मुक्त हुए थे। इस सम्बन्धमें प्राकृत निर्वाणकाण्डमें इस प्रकार उल्लेख प्राप्त होता है -

"वंसत्थलवरणियडे पच्छिमभायम्मिकुंथुगिरि सिहरे।
कुलदेशभूषणमुणी णिव्वाणगया णमो तेसि ॥१७॥"

अर्थात् वंशस्थलके निकट पश्चिमकी ओर कुन्थुगिरिके शिखरपर कुलभूषण और देशभूषण मुनि निर्वाणको प्राप्त हुए। उन्हें नमस्कार हो।

भट्टारक मेघराज (समय १६वीं शताब्दी) ने प्राकृत निर्वाणका मराठी अनुवाद किया है। उसमें उन्होंने प्राकृत मूलपाठसे अधिक एक विशेष सूचना भी दी है। मराठी अनुवाद इस प्रकार है -

"कुंथलगिरिवरसार देशभूषण कुलभूषण।
उपसर्ग टाले राम सिद्ध हवा जगमंडणए ॥१२॥"

इसमें उन्होंने यह भी सूचित किया है कि रामने दोनों मुनियों का उपसर्ग दूर किया। अन्य अनेक लेखकोंने जैसे ज्ञानसागर, गुणकीर्ति, सोमसेन, जयसागर, चिमणा पण्डित, सुमतिसागर, दिलसुख आदिने भी इसे सिद्धक्षेत्र माना है, किन्तु उन्होंने कुन्थलगिरि नाम न देकर वांसिनयर, वंशगिरि, वंशाचल आदि नाम दिय

हैं जो निर्वाणकाण्डके 'वंसत्थल' से मिलते जुलते हैं अथवा समानार्थक हैं।

क्षेत्र दर्शन

दोनों मुनियोंका निर्वाण कुन्थलगिरिको ऊपर हुआ था, अतः वही निर्वाण-भूमि है। पर्वतके ऊपर जानेके लिए पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। सीढ़ियोंकी कुल संख्या २५० है। पहाड़पर कुल ७ जिनालय बने हुए हैं। यह पहाड़ दक्षिण उत्तरमें फैला हुआ है और १७५ फोट ऊँचा है।

(१) कुलभूषण-देशभूषण - यह यहाँका मुख्य मन्दिर है। गर्भगृहमें वेदीपर दोनों मुनियोंके प्राचीन चरण विराजमान हैं। इन चरणोंकी प्राप्तिके सम्बन्धमें एक अनुश्रुति प्रचलित है। बाबावड़ ग्रामके ब्रह्मचारी मेटाशाह हूमड़के एक बार स्वप्न हुआ कि कुन्थलगिरि पर्वतपर जहाँ गाय अपने बछड़ेको दूध पिलायेगी, वहाँ भूमिके नीचे कुलभूषण-देशभूषण मुनियोंके चरण चिन्ह दबे पड़े हैं। ब्रह्मचारीजीने अपने इस स्वप्नकी चर्चा लोगोंसे की। तब ब्रह्मचारीजी कुछ लोगोंको लेकर पर्वतपर गये। वे चारों ओर खोज करने लगे। तभी उन्हें एक गाय बछडेको दूध पिलाती हुई दिखाई पड़ी। सब लोग उस स्थानपर पहुँचे। उन्होंने उस स्थानको खोदा तो उन्हें पाषाणके चरण-चिन्ह दिखाई पड़े। उन्हें निकाला गया और उनका प्रक्षाल करके सबने भक्तिपूर्वक दोनों मुनियोंकी पूजा की तथा एक ऊँची शिलापर उन्हें विराजमान कर दिया।

संवत् १९३२ में सेठ हरिभाई देवकरणने ईडरके भट्टारक कनककीर्ति द्वारायहाँके मन्दिरकी प्रतिष्ठा करायी ओर उसमें चरण-चिन्ह विराजमान किये।

वेदीमें चरण-चिन्हों के अतिरिक्त दोनों मुनियोंकी ३ फीट १ इंच ऊँची श्वेत पाषाणकी तथा पीतलकी १ फुट ३ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। इनका प्रतिष्ठा-काल संवत् २००६ हैं। बायीं और २ फीट ४ इंच ऊँची मुनिसुव्रतनाथ और शान्तिनाथकी पाषाण-मूर्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त वेदीपर १० धातु-प्रतिमाएँ हैं।

गर्भगृहके बाहर सभा मण्डपमें दायी और बायीं ओर भगवान् आदिनाथकी १ फुट ११इंच ऊँची संवत् १९३२ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण की पद्मासन मूर्तियाँ हैं। यहाँ एक शिलालेख भी है, जिसके अनुसार संवत् १९३२ मगसिर वदी १ सोमवारको भट्टारक कनककीर्ति द्वारा प्रतिष्ठा की गयी।

द्वारके निकट बायीं ओर एक भित्ति-वेदीमें ३ फीट २ इंच ऊँचे शिलाफलकमें भगवान् आदिनाथकी अर्ध पद्मासन प्रतिमा है। स्कन्धों तक जटाएँ फैली हुई हैं। वक्षपर श्रीवत्स लांछन हैं। दायीं और पार्श्वनाथकी श्वेत प्रतिमा है। प्रतिमा ११ फणावलीयुक्त है। भित्ति-वेदीके शिखरके ऊपर सीमन्धर स्वामी की १ फुट ६ इंच ऊँची संवत् २००६ में प्रतिष्ठित गेहुँआ वर्णकी प्रतिमा हैं। इसके एक पार्श्वमें आचार्य शान्तिसागरजीकी मूर्ति हैं तथा दूसरे पार्श्वमें उनके चरण-चिन्ह हैं। मन्दिरकी छतपर एक छतरी है जिसमें दो चरण रखे है। छतपर जानेके लिए मन्दिरके पृष्ठ भागमें सीढ़ी है।

२. शान्तिनाथ मन्दिर :- मुख्य मन्दिर के द्वारके सामने द्वारके सामने प्रांगणमें प्रवेश-द्वार बना हुआ है। इसके दायीं ओर पूर्व की तरफ शान्तिनाथ मन्दिर है। इसमें ऊपर चढ़कर जाना पड़ता है। भगवान् शान्तिनाथकी २ फीट ३ इंच ऊँची श्याम वर्णकी पद्मासन प्रतिमा है। इसका प्रतिष्ठा काल संवत् १९३२ है। इसके अतिरिक्त ४ श्वेतवर्ण और २ श्यामवर्ण पाषाणकी तथा पद्मावती एवं सरस्वतीकी धातु-मूर्तियाँ हैं।

प्रवेश-द्वारके बायी ओर (पश्चिमकी ओर) एक कमरेमें आचार्य शान्तिसागरजीके चरणमें हैं। पूज्य आचार्य महाराजने १४ अगस्त सन् १९५५ को कुलभूषण-देशभूषण मुनिराजोंके चरणोंके समक्ष इंगिनीमरण नामक

संलेखनाका नियम लिया था संलेखना के दोनों आचार्यश्री इसी कमरेंमें बैठते थे और १८ सितम्बर १९५५ को इसी कमरेंमें उनका समाधिमरण हुआ था। इसलिए यह कमरा भी एक पावन तीर्थस्थल बन गया है।

आचार्य शान्तिसागरजीका समाधिमरण :- आचार्य शान्तिसागरजी इस युगकी महान् आध्यात्मिक विभूति थे। वे धर्मके मूर्तिमान् रुप थे। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। उनकी प्रत्येक गतिविधि और क्रियामें शास्त्रानुमोदित धर्मके दर्शन होते थे। वे आत्महितमें सदा सजग रहते थे। सन् १९५१ में आचार्यश्रीगजपंथा क्षेत्रपर पधारे। उन्होंने विचार करके वहींपर द्वादश वर्षवाली सल्लेखनाका नियम ले लिया। तभीसे उन्होंने उपवासोंकी संख्या बढ़ा दी। सन् १९५३ में आचार्यश्रीका चातुर्मास कुन्थलगिरि क्षेत्रपर हुआ। अब वे लम्बे लम्बे उपवास करने लगे थे। इसके दो वर्ष पश्चात् आचार्यश्री नीरा ग्राममें पधारे। उनके भाव मुक्तागिरिकी ओर जानेके थे। किन्तु कुन्थलगिरि क्षेत्रके लोगोंने उनसे कुन्थलगिरि चलनेका विशेष आग्रह किया, तब महाराज कुन्थलगिरि पावन भूमिमें पहुँचे। वहाँ आचार्यश्रीकी मनमें एक भावना बार-बार उदित होती थी - शरीर तो अवस्थाके अनुरुप ठीक है, किन्तु आँखोंकी ज्योति मन्द हो रही है। इन्द्रीयाँ और मन तो मेरे आधीन है। अतः इन्द्रीय संयममें कोई बाधा नहीं है किन्तु नेत्रोंकी ज्योति निर्बल होनेके कारण प्राणी संयमका निर्दोष रीतसे पालन होना कठिन होता जा रहा है। एक दिन इस भगवान ने निश्चयका रुप ले लिया। १४ अगस्त १९५५ को आहार लेनेके पश्चात् उन्होंने केवल जल रखकर सभी प्रकारके आहारका सर्वथा त्याग कर दिया और यम सल्लेखना लेली।

उनके ८४ वर्षके जीवनमें १४ अगस्तका आहार उनका अन्तिम आहार था।

आचार्यश्री द्वारा यम सल्लेखना ग्रहण करनेका समाचार सारे देशमें बड़ी चिन्ताके साथ सुना गया। देशके सभी भागोंसे आचार्यश्री के दर्शनार्थ हजारों व्यक्ति कुन्थलगिरि पहुँचनेलगे। कोलाहल और भीड़भाड़के बावजूद उन योगिराजकी समाधि शान्तिपूर्वक चलती रही। उनका शरीर निरन्तर क्षीण हो रहा था, किन्तु उनका आत्मबल उससे सहस्र गुना बढ़ रहा था। ४ सितम्बर को जल ग्रहण करनेके पश्चात उन्होंने जलका भी त्याग कर दिया। ८ सितम्बरको उन्होंने २२ मिनिट पर्यन्त लोक कल्याणकारी अन्तिम सन्देश दिया जो रिकार्ड किया गया। १८ सितम्बर १९५५ को प्रातःकाल ६-५० भाद्रपद शुक्ला २ रविवारको हस्त नक्षत्र और अमृत सिद्धियोगमें उस चारित्रचक्रवर्ती महायोगीने इस मानव-देहको त्यागकर स्वर्गलोक प्रयाण किया। उनकी आयु उस समय ८४ वर्षकी थी।

आचार्यश्रीके उस तपःपूत शरीरको उपयुक्त प्रवेश-द्वारके बाहर बायीं ओर एक उन्नत स्थानपर जनताके दर्शनार्थ रख दिया गया। मध्यह्नमें वह पार्थिव शरीर एक काष्ठ-विमानमें विराजमान करके जलूसके साथ क्षेत्रके बाहर बनी पाण्डुक शिला तक ले जाया गया और फिर पर्वतकी परिक्रमा देकर पुनः पर्वतपर मानस्तम्भके निकट मैदानमें रख दिया गया। पश्चात् श्री लक्ष्मीसेन स्वामीने १५००० लोगोंके समक्ष शास्त्रानुसार कराया। आचार्य महाराजके शरीरका अग्नि संस्कार करनेमें इस प्रकार सामग्री काममें आयी -२५ मन चन्दन, ६० किलो घी, १२०० किलो नारियल तथा तीन बोरा कपूर।

आचार्य श्री का पार्थिव शरीर जहाँ दर्शनार्थ रखा गया था, वहाँ छतरीका निर्माण करके आचार्यके चरणोंके मापके ११ इंच आकारके श्वेत पाषाणके चरण विराजमान कर दिये गये तथा जहाँ आचार्यश्रीका अन्तिम संस्कार किया गया था, वहाँ एक चबूतरा बनाकर पाषाणचरण विराजमान कर दिये गये हैं।

३. बाहुबलि मन्दिर :- प्रवेशद्वारके दायी और चौकमें बाहुबली स्वामीकी मकरानेकी १७ फीट ६ इंच ऊँची खड्गासन प्रतिमा है । इसकी प्रतिष्ठा सन् १९७२ में हुई थी ।

४. आदिनाथ मन्दिर :- इसके निकट आदिनाथ मन्दिरमें वेदीपर भगवान् आदिनाथकी ४ फुट ६इंच ऊँची संवत् १९३२ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण पद्मासन प्रतिमा है । इसके अतिरिक्त वेदीपर २२ धीतु मूर्तियाँ और हैं तथा पद्मावतीकी १ पाषाण प्रतिमा हैं ।

५. अजिनाथ मन्दिर :- आदिनाथ मन्दिरके निकट यह मन्दिर बना हुआ है । इसमें वेदी पर २ फुट ४ इंच ऊँची श्वेत वर्णवाली अजितनाथ भगवानकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान हैं । प्रतिष्ठाकाल संवत् १९३२ हैं । इसके अतिरिक्त यहाँ ३४ मूर्तियाँ और हैं जिनमें बाहुवली स्वामीकी ३ तथा चौबीसीकी २ प्रतिमाएँ हैं ।

इन मन्दिरोसे आगे बढ़नेपर सीढियोंके सामने ५३ फुट अन्नत और संवत् २००१ में प्रतिष्ठित मानस्तम्भ खड़ा हुआ है ।

६. चैत्य :- मानस्तम्भके आगे एक छतरीमें चैत्य विराजमान है जिसमें चारों दिशाओंमें चार प्रतिमाएँ हैं तथा इसके पीछे दो स्तम्भोंमें विदेह क्षेत्रके २० तीर्थकरोंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं ।

७. नन्दीश्वर जिनालय :- जहाँ पर्वतकी सीढियाँ समाप्त होती हैं, वहाँ नन्दीश्वर जिनालय बना हुआ है । इसमें पीतलका एक नन्दीश्वर हैं । यह तीन कटनीवाली वेदीमें सबसे ऊपर विराजमान है । शेष दो कटनियों पर पाषाणकी १३ मूर्तियाँ हैं । इस मन्दिरकों प्रतिष्ठा क्षेत्रके एक मुनीम श्री निहालचन्दने संवत् १९५२ में करायी थी । इस मन्दिरके आगे एक चबूतरेपर लगभग १० फुट ऊँचा एक मानस्तम्भ बना हुआ है ।

तलहटीके मन्दिर

१. नेमिनाथ मन्दिर :- पर्वतसे उतरने पर दायी ओर नेमिनाथ मन्दिर बना हुआ हैं । इसमें मूलनायक नेमिनाथ भगवान्की संवत् १९५८ में प्रतिष्ठित २ फुट १० इंच ऊँची श्वेत वर्णकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है । इसके दोनों पार्श्वोंमें महावीर और आदिनाथकी २ फुट ४ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमाएँ हैं । वेदीके नीचे सम्भावनाथ की संवत् १९५८ में प्रतिष्ठित २ फुट ४ इंच ऊँची पद्मासन प्रतिमा है । इसके दोनों पार्श्वोंमें कुन्थुनाथ और मुनिसुव्रतनाथकी दो श्वेत प्रतिमाएँ है । उपर शिखर वेदीमें १ फुट ८ इंचकी संवत् १९५८ में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथकी ९ एणयुक्त श्वेत पद्मासन प्रतिमा है ।

यह मन्दिर नेमिनाथ मन्दिरके सामने है । इसमें संवत् १९५८ में प्रतिष्ठित
२. महावीर मन्दिर :- यह मन्दिर नेमिनाथ मन्दिरके सामने है । इसके इधर-उधर हाथी रखे है
महावीर भगवान्की २ फुट ८ इंच ऊँची श्वेत प्रतिमा पद्मासन मुद्रामें आसीन है । इसके इधर-उधर हाथी रखे है
। बायी और चन्द्रप्रभ भगवानकी श्वेत ओर श्याम वर्णकी दो प्रतिमाएँ हैं । दायी और श्वेत शान्तिनाथ और गेहुँआ
अरहनाथकी प्रतिमाएँ हैं । इसके आगे खुला मण्डप है । फिर सामने एक वेदीपर मध्यमें मल्लिनाथकी ३ फुट २
इंच, बायी ओर मुनिसुव्रतनाथकी २ फुट १० इंच और दायीं ओर अरनाथकी २ फुट १० इंचकी प्रतिमाएँ है । यह
रत्नत्रय मूर्ति कहलाती है । इनका प्रतिष्ठा काल संवत् २००८ हैं । सीढियों से उपर जाकर शिखर-वेदीमें १ फुट
७ इंच की श्वेत पार्श्वनाथ प्रतिमा है । प्रतिष्ठाकाल संवत् १९३२ है ।
यह मन्दिर हैं । वेदीपर शान्तिनाथकी २ फुट ९ इंच
३. रत्नत्रय मन्दिर :- शिखर-मन्दिरके वगलमें यह मन्दिर हैं । ये श्वेत पाषाणकी और खड्गासन हैं । इनका प्रतिष्ठा काल
और कुन्थुनाथ अरनाथकी २ फुटकी प्रतिमाएँ हैं । ऊपर शिखर-वेदीमें मूँगा वर्णकी २ फुट ६ इंच
संवत् १९६१ है । इनके दोनों ओर ३-३ मूर्तियाँ विराजमान हैं ।

हूमड इतिहास भाग २

ऊँची बाहुबली स्वामीकी संवत् २००८ में प्रतिष्ठित खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इस गर्भगृहमें चारों ओर काँच जड़े हुए हैं। अतः यह काँच मन्दिर कहलाता है।

दहीगाँव

मार्ग और अवस्थिति

'श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र दहीगाँव' महाराष्ट्र प्रान्तके शोलापुर जिलेके मालशिरसतालुकामें अवस्थित है। लोणन्दसे पंढरपुर जानेवाली सड़कपर नातेपुत्ते है। नातेपुत्ते से बालचन्दनगरको जानेवाली सड़कपर ६ कि.मी. दूर दहीगाँव हैं। बालचन्दनगर यहाँसे केवल १३ कि.मी. है। सड़कसे क्षेत्रके मन्दिर दिखाई पड़ते है। दक्षिण-मध्य रेलवेके वारामतीसे यह ३५ कि.मी. पंढरपुर नीरा और लोणन्दसे ६५ कि.मी. है। फलटण, अकलूज, सतारासे एस.टी.की बसें मिलती है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इस प्रदेशमें दहीगांव नामके दो गाँव है तथा एक गाँव दहीगाँव नामसे हैं। जैन क्षेत्र उस दहीगाँवमें है जो नातेपुत्तेके निकट है तथा नातेपुत्तेसे बालचन्दनगरको जानेवाली सड़कके किनारेपर है।

अतिशय क्षेत्र

आजसे प्रायः डेढ़ शताब्दी पूर्व इस स्थानपर कोई जिनालय नहीं था। यहाँके जैन उस समय धर्मके प्रति उदासीन थे। अज्ञान और मिथ्यारुढियाँ प्रचलित थी। लगभग १२५ वर्ष पूर्व यहाँपर कारंजाके निकटवर्ती सेन्दुरजना ग्रामके निवासी ब्रह्मचारी महतीसागरजी पधारे। वे एक विद्वान और शासन प्रभावक त्यागी थे। इस प्रदेशमें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उन्होंने कई स्थानों पर जिनालयोंका निर्माण कराया था। उनके उपदेशोंसे यहाँकी समाजमें जागृति आयी और कुरुढियोंका नाश हुआ। यहाँ पर एक विशाल और कलापूर्ण मन्दिर बनवानेकी उनकी हार्दिक इच्छा थी, किन्तु वे असमयमें ही विक्रम संवत् १८८९ में दिवंगत हो गये। ब्रह्मचारीजीकी इस अन्तिम अभिलाषाकी पूर्तिका दायित्व उनके शिष्य पण्डित गुणचन्द्र और गृहस्थशिष्योंने अपने ऊपर लिया और विशाल जिनालयका निर्माण कराया। विक्रम संवत् १८९३ में उनके एक गृहस्थशिष्य फलटण निवासी सेठ जयचन्द गान्धी और उनके पुत्रोंने ब्रह्मचारीजीकी समाधिका निर्माण कराके उसमें उनकी चरण-पादुका विराजमान करायी। इन चरण-पादुकाओंके दर्शन करनेसे लोगोंकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती है, इस प्रकार जनतामें विश्वास व्याप्त है। इसी मान्यताओं लेकर धीरे धीरे यह स्थान अतिशय क्षेत्रके रुपमें प्रसिद्ध हो गया है।

क्षेत्र दर्शन

यहाँ मुख्य वेदीमें ५ फुट ५ इंच अवगाहनावाली भगवान् महावीरकी श्याम वर्ण पद्मासन प्रतिमा मूलनायक के रुपमें विराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९१० माघ शुक्ला ४ रविवार को हुई थी। बायीं और आदिनाथ भगवानकी श्वेत पद्मासन तथा दायीं ओर पार्श्वनाथकी कृष्ण पद्मासन प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त इस वेदीपर धातुकी ५० मूर्तियाँ विराजमान हैं।

यहाँसे निकलकरबायीं ओर मण्डपमें से जाते है और ३-४ सीढियाँ उतरनेपर एक गर्भगृह मिलता है जिसमें वेदीपर भगवान् महावीरकी श्वेत पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा आसीन है। इसी वेदीपर ब्रह्मचारी महतीसागरजीकी चरणपादुकाएँ हैं। ये ही पादुकाएँ अतिशयसम्पन्न कहलाती है।

उक्त वेदीकी बायीं ओर एक गर्भगृहमें ३ फुट २ इंच उँचे एक शिलाफलकमें भगवान् पार्श्वनाथकी

सप्तफणावलियुक्त श्यामवर्णवाली खड्गासन प्रतिमा है । पादपीठपर लेख नहीं है । प्रतिमाके दोनों पार्श्वोंमें यक्ष-यक्षी बने हुए है । यह फलक एक किसान को खेत जोतते समय भूगर्भसे प्राप्त हुई थी।

मुख्य वेदीके सामने जो सभा-मण्डप बना हुआ है, उसके नीचे उतना ही बड़ा तलघर है । आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके उपदेशसे यहाँ विदेह क्षेत्रमें वर्तमान २० तीर्थकरोंकी प्रतिमाएँ विराजमान की गयी थी । इनमें सीमन्धर भगवानकी ४ फुट ४ इंच ऊँची श्वेतवर्ण पद्मासन प्रतिमा हैं जिसकी प्रतिष्ठा संवत् २००२ में हुई थी । अन्य तीर्थकर प्रतिमाएँ भी वर्ण, आकार आदीकी दृष्टसे लगभग इसके समान हैं । ये इस तल-प्रकोष्ठमें दीवरोंसे संलग्न चारों ओरकी वेदियोंमें विराजमान हैं । इस प्रकोष्ठके मध्यमें एक चबूतरेपर ५ फुट ऊँचा पीतलका सहस्रफूट जिनालय है । ऊपर एक ऊँचा शिखर है । जिनालयमें चारों दिशाओंमें १००८ प्रतिमाएँ बनी हुई है । यह जिनालय संवत् १६६५ में प्रतिष्ठित हुआ है ।

इस प्रकोष्ठमें एक कमरेमें जाते है । इसमें एक वेदीपर ५ फुट ४ इंच अवगाहनावाली संवत् १९२१ में प्रतिष्ठित भगवान् आदिनाथकी कृष्ण पाषाणकी पद्मासन प्रतिमा विराजमान है । इसके दोनों पार्श्वोंमें शिलाफलकमें उत्कीर्ण भगवान् पार्श्वनाथकी श्वेत वर्णवाली पद्मासनप्रतिमाएं है ।

इस कमरेमें से दूसरे कमरेमें जाते है जहाँ वेदीपर भगवान् पार्श्वनाथ की ९ फणावलिमण्डित कृष्ण वर्ण पद्मासन प्रतिमा विराजमान है । अवगाहना ५ फूट ८ इंच है । इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९४९ में हुई थी । यहाँ एक दीवार वेदीमें भगवान् आदिनाथकी ३ फुट ८ इंच अन्नत तथा सेवत् १९२९ में प्रतिष्ठित कृष्ण वर्णवाली पद्मासन प्रतिमा आसीन है ।

यहाँसे घूमकर एक अन्य तलघरमें पहुँचते हैं जहाँ पाषाणकी २८ तीर्थकर प्रतिमाएँ विराजमान है । इनमें तीन मूर्तियाँ पार्श्वनाथकी हैं । ये श्वेत वर्णकी हैं और सहस्र फणावलियुक्त हैं । मूलनायक प्रतिमा भगवान् नेमिनाथकी है जो ३ फुट उत्तुंग है, कृष्णवर्णकी है, पद्मासन है और संवत् १९१९ की प्रतिष्ठित है ।

इससे आगे बढ़नेपर एक अन्य कमरा मिलता है । इसमें २ फुट उँची संवत् १७४५ में प्रतिष्ठित भगवान् पार्श्वनाथकी सप्तफणवाली श्वेत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है । इसके अतिरिक्त यहाँ ६ श्वेत पाषाण-मूर्तियाँ और है । यहाँ क्षेत्रपालकी भी एक मूर्ति है ।

इस कमरेंमें से निकलकर तलघरसे उपर जाते हैं । वहाँ मुख्य वेदीके दायी ओर गर्भगृहमें ३ फुट ४ इंच उँचा एक रत्नत्रय स्तम्भ है । इसकी चारों दिशाओंमें श्याम वर्णवाली ३-३ खड्गासन मूर्तियाँ बनी हुई है । इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९२९ में हुई है । इसीके कारण यह रत्नत्रय मन्दिर कहलाता है ।

इसके पीछे दालानमें जाकर दायीं ओर कमरेंमें पार्श्वनाथकी एक खड्गासन प्रतिमा श्वेत पाषाणकी है। उसके दायीं ओर एक शिलाफलकमें पार्श्वनाथ खड्गासन मुद्रामें हैं । परिकरमें भामण्डल, छत्र, गजलक्ष्मी, दोनों ओर ३-३ पद्मासन मूर्तियाँ और उनसे नीचे चमरेन्द्र हैं । इसका प्रतिष्ठा-काल संवत् १९१९ है । बायीं ओर आदिनाथकी श्वेतवर्णवाली पद्मासन प्रतिमा है जो संवत् १९६१ की प्रतिष्ठित है।

बायीं ओर एक आलेमें भगवान् महावीरकी श्वेत वर्णकी संवत् १९४९ में प्रतिष्ठित पद्मासन प्रतिमा है । इसके बायीं ओर दो श्वेत पार्श्वनाथ मूर्तियाँ खड्गासन मुद्रामें है । इन पार्श्वनाथ मूर्तियों में फणावलि नहीं है। पादपीठपर सर्प लांछन अंकित है ।

हूमड इतिहास भाग २

इससे आगेके बरामदेमें दायी ओर संवत् १९३९ में प्रतिष्ठित श्वेत वर्ण और नौ फणमण्डित पार्श्वनाथकी पद्मासन प्रतिमा है। बायीं ओर कृष्ण वर्णकी पार्श्वनाथ प्रतिमा संवत् १९५७ में प्रतिष्ठित पद्मासन मुद्रामें आसीन है। तथा दायीं ओर एक पाषाणफलकमें पद्मावती देवीकी चतुर्भुजी मूर्ति है। इसके शीर्ष भागपर ७ तीर्थंकर प्रतिमाएँ बनीहुई हैं। अधोभागमें एक ओर धरणेन्द्र है तथा दूसरी ओर भैरव अपने वाहन श्वानपर आसीन है।

बायीं ओर एक कमरेंमें संवत् १९३९ में प्रतिष्ठित श्वेतवर्ण आदिनाथकी पद्मासन प्रतिमा है। उसके बायीं ओर खड्गासन कृष्णवर्ण ऋषभदेवकी दो मूर्तियाँ है। तथा दायीं ओर सुपार्श्वनाथ की कृष्ण पद्मासन प्रतिमा है। कमरेके मध्यमें एक चैत्य विराजमान है।

मुख्य वेदीवाले गर्भगृहके सामने २४ स्तम्भोंपर आधारित सभामण्डप बना हुआ है। उसके मध्यमें एक खेला-मण्डप है। सभामण्डपके सामने देशी श्याम पाषाणका बना हुआ ५३ फुट उत्तुंग मानस्तम्भ है। इसकी प्रतिष्ठा संवत् १९५७ में हुई थी। मध्य मण्डपके दोनों ओर भी मण्डप बने हुए है।

यहाँ एक कमरेंमें शास्त्र-भण्डार है। एक अन्य कमरेंमें संग्रहालय बना हुआ है। इसमें ब्रह्मचारी महतीसागरजीकी सभी वस्तुएँ-शास्त्र, ऐनक आदि संग्रहीत है। क्षेत्रके मुख्य द्वारके बगलमें क्षेत्र कार्यालय है।

इस क्षेत्रसे लगभग ३ फलाँग दूर जंगलमें आचार्य धर्मसागरजीके समाधि-स्थानपर छतरी बनी हुई है।

हूमड इतिहास भाग २

उदयपुर

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
१	बदशना	७२	५८९
२	भाणदा	१२	७०
३	भूदर	२९	१९१
४	बिछ्वडा	२३	१८१
५	बणावदागिव	८	४१
६	छाणी	७९	५४९
७	बावलवाडा	५९	४११
८	धरियावद	२९१	१८२४
९	झाडोल	८२	५११
१०	कांकरोली	३	१९
११	खेरवाडा	३१	१७९
१२	रवाखड	३२	२७१
१३	खूँता	१२	६१
१४	काल्यारी	११९	११०३
१५	मंगवास	६	२९
१६	मुघट	३	१४
१७	नयागाँव	७२	४१३
१८	ओगणा	५४	३९२
१९	फलासिया	९४	६०१
२०	ऋषभदेव	१९	१२१
२१	सलूम्बर	६२	४०१
२२		१११	८४१
२३		२९३	१६११
२४	गोगला	२१	१२९
२५	उदयपुर	४११	२४२९
२६	पारसोला		
२७	धरियावद		
२८	बोरिया		
२९	देवल	८२	२५८
३०	ज्ञौधरी	५	२९
३१	करावाड़ा	४	१९
३२	गिर्ता	२११	१३५८
३३	नरवाली	९	४९
३४	गामड़ी	११	५४
३५	रीछा	८	३९
३६	कोलियारी	७	४१
३७	बिचोवडा	८	४२
३८	आयड	६	३३
३९	चणवदा	७	४५
४०	कोटडा	६	३९
४१	सुणादरी	५	४४
४२	मूगांणां	१४	५९
४३	वीसा हूमड़	१३	५५
४४	आमनाद	११	४९
		२४१३	१४६१९

हूमड इतिहास भाग २

बांसवाडा

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
१	आनंदपुरी	२९	१७९
२	अरथूना	१२७	८४९
३	बागीदौरा	१९३	१२११
४		२४१	१९४२
५	चन्दूजीका गठा	३५	३११
६	ददूका	७२	४१९
७	गठी	६३	३९८
८	घाटोल	३८१	२११२
९	श्रोलाना क्षेत्र	२८	२११
१०	कालिजरा	८२	४९८
११	खमेरा	४०	२०९
१२	खोडन	१९	१०१
१३	मोर	५	२६
१४	नखाली	१०२	५२२
१५	नौगामा धनमल	१७९	११०९
१६	पालोदा	८०	६११
१७	वरतापुर	१०	९१
१८	सागवाडा	२६१	१३४०
१९	सेरडी बडी	१५	७२
२०	तलवाडा	११९	६११
२१	बांसवाडा	३१२	१४८२
२२	गनोडा	१५	८९

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
२३	मेतवाला	१३	९१
२४	कोटडा बडा	१९	१११
२५	बडोदिया	१११	६२९
२६	बोडीगाम	९	७०
२७	बजवाडा	११	१२
२८	कुंवाला	८७	२११
२९	वरवाली	३१	३००
३०	ओंगणा	९	७१
३१	बोरी	११	७२
३२	आनन्दपुरी	२३	१११
३३	जौलाणा	३९	१८१
३४	कुशलगढ़	१५	८१
३५	गाजना	११	६१
३६	ठाकराडा	९	४५
३७	धारका गाँव	६	३९
३८	थान्दला	५	३१
३९	पादडी बडी	४	१९

डूंगरपुर

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
१	आंतरी	४१	३११
२	भीलूडा	७१	४१९
३	बीछीवाडा	२९	२७१
४	छोटादिवडा	३	१३
५	चीतरी	४१	३१४
६	दीवडाबडा	९	४९
७	देवल	४६	३०९
८	गामडी	६३	४१९
	निठारवा		
९	कुँपा	३४	१९१
१०	माणडव	११	७१
११	औबरी	६९	५०२
१२	पाडवा	८	३९
१३	पीठ	६१	३०१
१४	सानला	३	८
१५	सरोदा	४३	३११
१६	वादखेड	४	१५
१७	वरदी	१९	९१
१८	ठाकरडा	८	४३
१९	ओबरी	११	५६
२०	घाटका गाँव	७	४२
२१	मालव	५	३२

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
२२	टामटिया	४	२९
२३	कोकापुर	६	३४
२४	खडगदा	८	३९
२५	साबला	३	१३
२६	मुगेड	९	४५
२७	बडोदिया	११	६९
२८	पादरडीबडी	८	४०
२९	जेठाणा	७	३९
३०	गलिया कोट	५	३३

कोटा

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
१	कोटा	९	५१
२	रावतभाटा	३	१७
३	रामगंजमंडी	१७	१४१

जालावाड

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
१	असनावर	५	३१
२	झालरापाटन	१४	७९
३	मैभरी	४	१९

चितौडगढ़

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
१	चितौड	४	१९
२	चूपना	६	३१
३	घावडा	३	१९
४	कोटडी,व्याहा	५	३१
	अरनोद		
५	निम्बादेडा	३	१३
६	जाबुआ	११	६९
७	इकापुर	८	४२
८	गढवा	६	३५
९	मंदसौर	४	१९
१०	नीनौर	७	३९
११	घोडाला	८	४३
१२	प्रतापगढ़	२८१	१९४४
१३	देलवाड़ा(रावला)	९	४१
१४	चौधरी(जवास)	३	१५
		३५८	२३६०

परचूरन

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
१	अजमेर	२९	३११
२	भवानीमण्डी	१९	८१
३	भीलवाडा	२९	१७३
४	गंगापुर सिटी	३	१९
५	उदयपुर	४	२१
६	जयपुर	३१	१८९
७	जोधपुर	२	११
८	करावाडा	३	१९
९	कुशलगढ़	३९	१९१
१०	पाली	२	११
११	चीतौड		
१२	देलवाडा	११	९१
१३	जलदा	१३	१०५

अखिल भारतीय हूमड जैन महासंघ अधिवेशन फलटण ५-६ जून १९९९
के विशेष प्रसंग के फोटो और विवरण

अखिल भारतीय हूमड़ जैन महासंघ द्वितिय अधिवेशन फलटण (महाराष्ट्र) के शुभारंभ पर श्री चंद्रप्रभु दि. जैन मंदिर के सिद्धांत भवन से धवल, जयधवल, महाधवल महाग्रंथकी ताम्रपत्रपर लिखित प्रतिलिपी समारोह स्थलपर ले जाते हुअे महासंघके अध्यक्ष श्री. शांतीलालजी दोशी इंदौर, सदस्य अेवं वरिष्ट उपाध्यक्ष (महाराष्ट्र) श्री ज्ञानचन्द्रजी शेठ मुंबई ।

ताम्रपत्र समारोह स्थलपर ले जाते हुअे अन्य महानुभावों के साथ अध्यक्ष श्री शांतीलालजी दोशी ।

श्री चन्द्रप्रभु मंदिर से ताम्रपत्र के साथ बाहर निकलते हुअे ।

ताम्रपत्र के साथ, जुलूसके साथ स्वागताध्यक्ष श्री जिवराज खुशालचन्द्र गांधी अेवं अन्य महानुभाव ।

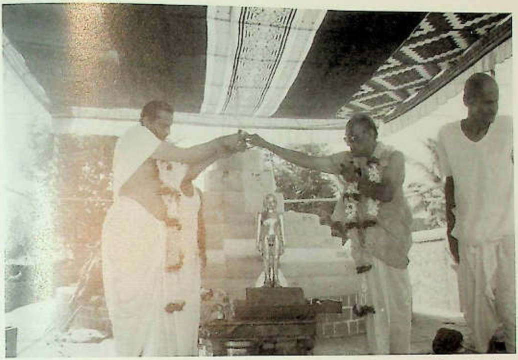

अधिवेशन के पूर्व श्री आदिनाथ दि. जैन मंदिर के सामने मैदान में भगवान जिनेंद्रदेव का अभिषेक करते हुअे
श्री राजेंद्रकुमार जिवराज गांधी अेवं परमसंरक्षक ज्ञानचंद्र सेठ ।

संगीत के साथ अभिषेक पाठ पढ़ती हुई फलटण महिला मंडलकी सदस्याऐं ।

अभिषेक के समय उपस्थित महिलाऐं ।

अभिषेक के समय उपस्थित श्रावकगण ।

हाथीपर बैठकर "श्री धवल, जयधवल ऐवं महाधवल महाग्रंथ के ताम्रपत्र" जुलुसका समारोह स्थलपर ले जाने के लिए परम भाग्यशाली सेठ श्री अनंतलाल कुबेरभाई गांधी फलटणकर डोबिंवली निवासी महासंघके अध्यक्ष श्री शांतीलाल दोशी इंदौर ऐवं भाग्यशाली सेठ श्री अनिल चंदुलाल मेहता फलटणकर घाटकोपर निवासी को 'श्री हूमड जैन इतिहास की प्रति अर्पित करते हुऐ महासंघके महामंत्री ऐवं इतिहास लेखक ऐवं संयोजक श्रद्धेय श्री हिरालालजी सालगिया । साथमे शेठ ताराचंद दोशी, श्री ज्ञानचंद्र शेठ ऐवं श्री जिवराज गांधी ।

हाथीपर विराजमान, धवल जयधवल ऐवं महाधवल महाग्रंथ के साथ श्री अनंतलाल कुबेरभाई गांधी ऐवं इतिहास के साथ श्री अनिल चन्दुलाल मेहता फलटण राजवाडे के पास ।

प्राचीन दिगंबर जैन मंदिर राजवाडा के पास हाथी पर विराजमान श्री अनिल चंदुलाल मेहता फलटणकर घाटकोपर व श्री अनंतलाल कुबेरचंद गांधी फलटणकर डोंबिवली और अन्य ।

अ. भा. हूमड जैन महासंघके द्वितीय अधिवेशन स्थल सांस्कृतिक भवन फलटण के प्रांगण में ध्वजारोहन एवं वंदन करते हुअे माननीय श्री विजयकुमारजी रामावत इंदौर ।

अधिवेशन के उदघाटन अवसरपर स्वागत गीत प्रस्तुत करती हुई महिला मंडल की सदस्याअें ।

दीप प्रज्वलितकर अ. भा. हूमड जैन महासंघ द्वितीय अधिवेशन का उदघाटन करते हुओ भूतपूर्व मंत्री महाराष्ट्र राज्य माननीय शिवाजीराजे नाईक निंबाळकर । साथ में महासंघके अध्यक्ष श्री शांतीलालजी दोशी, सभारंभ अध्यक्ष श्री हिरालाल (श्री बाबूभाई) गांधी अेवं महामंत्री श्री हिरालालजी सालगिया अेवं स्वागताध्यक्ष जिवराज खुशालचंद गांधी ।

मंचपर विराजमान अध्यक्ष श्री शांतीलालजी दोशी, स्वागताध्यक्ष श्री जिवराज खुशालचंद गांधी फलटणकर मुंबई, समारोह अध्यक्ष श्री हिरालालजी गांधी अकलूज, अतिथी विशेष माननीय श्री शिवाजीराजे नाईक निंबाळकर ऐवं अन्य गणमान्य महानुभाव ।

माननीय स्वागताध्यक्ष श्री जिवराज खुशालचंद गांधी फलटणकर मुंबई अतिथियों ऐवं महानुभावों का स्वागत करते हुऐ ।

माननीय महासंघ अध्यक्ष श्री शांतीलालजी दोशी इंदौर, अतिथी अेवं विशिष्ट महानुभावों का परिचय कराते हुअे ।

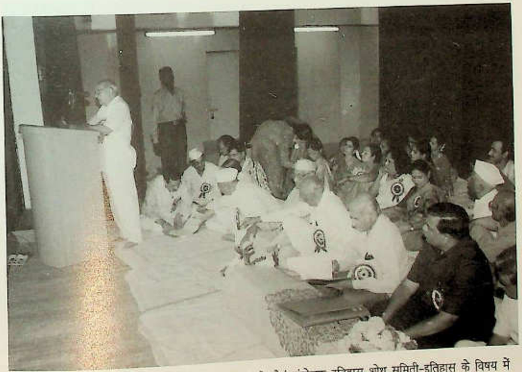

माननीय श्री हिरालालजी साळगिया महामंत्री महासंघके अेवं संयोजक इतिहास शोध समिती-इतिहास के विषय में जानकारी देते हुअे ।

माननीय श्री विमलचन्दगांधी इंदौर श्री हूमड़ जैन इतिहास द्वितीय भाग का विमोचन स्वहस्ताक्षरसे सुशोभित करते हुअे ।

माननीय भाग्यशाली श्री अनिलचंदुलाल मेहता फलटणकर घाटकोपर निवासी, श्री विमल चन्दजी गांधी से हूमड़ जैन इतिहास के द्वितिय भाग की सर्व प्रथम प्रति प्राप्तकर प्रदर्शित करते हुअे साथमें है श्री हसमुखजी गांधी, समारोह अध्यक्ष श्री हिरालालजी गांधी अकलूज अेवं श्री पवनजी बागड़िया ।

मान्नीय श्री सुरेशचन्द्रजी नवनीतलालजी गडिया प्रतापगढ़ मुंबई अ. भा. हूमड जैन महासंघ द्वितीय अधिवेशन पर प्रकाशित
प्रथम स्मरणिका का विमोचन करते हुअे । साथमें श्री जिवराज गांधी, श्री सुमतिलालजी गांधी संपादक स्मरणिका,
श्री हिरालालजी गांधी, श्री प्रकाशचन्द्रजी दोशी इडर अध्यक्ष द्वितिय सत्र, श्री शांतीलालजी दोशी अेवं ज्ञानचन्दसेठ परमसंरक्षक
अेवं संयोजक स्मरणिका समिती ।

अधिवेशन के उदघाटनप्रसंगपर उपस्थित पूज्य साधुगण १०५ श्री दयानाथ महाराज १०५ श्री क्षु. अनन्तकिर्ती आदि ।

महिला संम्मेलन का द्वीप प्रज्वलितकर उदघाटन करती हुई अध्यक्षा सौ. श्रीमती धनश्री अरविंद फडे, अन्य प्रमुख महिलाऐं, ॲडव्होकेट सौ. शिरिन शहा फलटण, सौ. श्रीमती कौशल्या पतंगीया इंदौर, सौ. जया साळगिया, सौ. डॉ. संगीता मेहता इंदौर अेवं सौ. निर्मला पंचोली ।

महिला अधिवेशन मंचपर विराजमान प्रमुख महिला ।

मुंबई के महिला मंडल ने सादर किया हुआ नाटिका का एक दृष्य ।

अधिवेशन तृतीय सत्र अध्यक्ष माननीय श्री. कैलाश अभयकुमार गांधी फलटणकर भू. पू. जनरल मैनेजर एच. एम. टी. बंगलोर, सातारा निवासी को माल्यार्पण करके स्वागत करते हुओ महासंघके परमसंरक्षक श्री ज्ञानचन्द्रसेठ, मुंबई ।

द्वितीय अधिवेशन तृतीय सत्र मुख्य अतिथी श्री माननीय सी. आर. दोशी चार्टड अकौंटंट सोलापूर को माल्यार्पण कर के स्वागत करते हुअे महासंघके परमसंरक्षक श्री. ज्ञानचंद्र शेठ ।

द्वितीय अधिवेशन तृतीय सत्र अध्यक्ष माननीय श्री. प्रकाश चन्द्रजी दोशी इंडर साथमें मंचपर विराजमान श्री विमलचंदजी गांधी, श्री हिरालालजी गांधी अकलूज निर्मलकुमारजी वंडी मुंबई, श्री जवाहर फडे अध्यक्ष अकलूज ।

महामंत्री अेवं हूमड जैन समाज इतिहास के प्रबुद्ध लेखक अेवं समिती के संयोजक माननीय श्री हिरालालजी साळगिया अहमदावाद का अभिवादन करते हुअे, फलटण कार्यकारणीके अध्यक्ष एवं फलटण अेज्युकेशन सोसायटी के उपाध्यक्ष श्री. रमणलाल आनंदलाल दोशी ।

अधिवेशन के अवसर पर इतिहास विमोचन कर्ता मा श्री. विमलचंदजी गांधी का सन्मान करते हुअे स्वागताध्यक्ष श्री जिवराज खुशालचंद गांधी अेवं महासंघाध्यक्ष श्री शांतीलालजी दोशी इंदौर ।

माननीय श्री अनिलचंदुलाल मेहता फलटणकर घाटकोपर निवासी का अभिवादन करते हुओ फलटण कार्य कारणी के अध्यक्ष श्रीमान रमणलाल आनंदलाल दोशी फलटण ।

फलटण कार्यकारणीके अध्यक्ष श्री रमणलाल आनंदलाल दोशी का अभिवादन करते हुओ अ. भा. हू. जैन समाज के अध्यक्ष श्री. शांतीलाल दोशी इंदौर.

श्री पवनजी बागडीया का स्वागत श्री आनंदलाल (श्री. बाबूभाई) कुबेरचंद दोशी फलटण करते हुअे ।

माननीय श्री सुरेशचन्दजी नवनीतलालजी गड़िया स्मरणिका विमोचन करता का सन्मान करते हुअे महासंघके परमसंरक्षक श्री. ज्ञानचन्द्रजी सेठ बीचमें खडे स्वागताध्यक्ष श्रीमान जिवराज गांधी ।

स्वागताध्यक्ष माननीय श्री जिवराज खुशालचंद गांधी फलटणकर का अभिवादन करते हुओ महासंघाध्यक्ष
श्री शांतीलालजी दोशी अेवं परम संरक्षक श्री ज्ञान चन्दजी सेठ

अ. भा. हूमड जैन महासंघके परमसंरक्षक अेवं वरिष्ट उपाध्यक्ष महाराष्ट्र, तथा संयोजक स्मरणिका समिती माननीय श्री ज्ञानचन्द्र सेठ का सन्मान करते हुओ महासंघाध्यक्ष श्री. शांतीलालजी दोशी अेवं स्वागताध्यक्ष श्री जिवराज खुशालचंद गांधी।

अ. भा. हूमड जैन महासंघके नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्रीमान जिवराज खुशालचंद गांधी फलटणकर मुंबई का स्वागत करते हुऐ निवृत अध्यक्ष श्री शांतीलालजी दोशी इंदोर ।

श्री हेमन्तकुमार भूरालाल सेठ पुणेकर परम संरक्षक सदस्यता की स्वीकृती देनेपर उनका स्वागत करते हुऐ श्री पवनजी बागड़ीया इंदोर ।

समारोह अध्यक्ष श्री हिरालालजी माणिकलालजी गांधी अकलूज का सन्मान करते हुअे स्वागताअध्यक्ष श्री जिवराज खुशालचंद गांधी फलटणकर मुंबई ।

अ. भा. हुमड़ जैन महासंघके द्वितिय अधिवेशन, हूमड़ समाज की सांस्कृतिक नगरी फलटणमें नवनिर्वाचित अध्यक्ष माननीय श्री जिवराज खुशालचंद गांधी फलटणकरका परम पूज्य १०५ आर्जिका रत्नमती माताजी के स्मरणार्थ शैक्षणिक योजना के लिए बृहद्दानकी घोषणापर उनका उपस्थित सर्व महानुभावों द्वारा भव्य सन्मान ।

हूमड़ों के गोत्र का इतिहास

प्रस्तावना :-

हूमड़ समाज की पहचान बनाये रखने के लिये अत्यन्त आवश्यक है कि उसके गोत्र का अध्यन भी किया जाये। गोत्र इस बात को इंगित करते है कि हमारे समूह कहाँ कहाँ और कितनी संख्या में है। गोत्र के माध्यम से हम हमारी भारतीय स्तर पर पहचान बनाये रखने मे सक्षम हो सकते हे। हूमड समाज की अखिल-भारती स्तर पर बनी डायरेक्टरी इस बात का पूरावा देती है कि हम गोत्र के माध्यम से ही देश और विदेशों में अपने आपको आइडेन्टीफाय कर पाये हे। अतः गोत्र हमारी संस्कृति और परम्परा के संवाहक है। इतिहास के प्रथम भाग मे हम गोत्र के बारे में वर्णन कर चूके हे पर गोत्र, हूमड़ जाति की प्राचिनता, उदभव अस्तित्व के ठोस प्रमाण है। अतः इस भाग में निम्न बिंदुओ पर विचार करेंगें।

१. गोत्र के सम्बन्ध में समाज शास्त्रीयों के मत :
२. गोत्र से सीधे सम्बन्ध रखने वाले जाति, वर्ण कुल, (वंश) की मिमांशा
३. आगम के अनुसार आचार्यो के विचार और गोत्र की स्थिति
४. लोक में इसके प्रचलन के कारण
५. गोत्र और हूमड जाति
६. गोत्र जानने के आधार
७. भिन्न भिन्न स्थलों, शास्त्र भंडारो, प्राचिन ग्रंथो आदि से उपलब्ध गोत्र पत्रक इतिहास शोध द्वारा संशोधन, समन्वय चार्ट आदि

प्रसिध्ध समाज शास्त्रीयों के मत :

१ **प्रो. मजूमदार** के अनुसार गोत्र का अर्थ हे कुछ वंशावलियोंका समूह। इन वंशावलियों का आदि प्रवर्तक प्राय कल्पित होता हे। यह कल्पित पूर्वज कोई मनुष्य हो सकता हे, या कल्पित पशु, वृक्ष तथा जड पर्दार्थ भी हो सकता हे।
२. प्रसिध्ध **समाज शास्त्री कापडीया** के अनुसार सह गोत्र विवाह करने वाला वेसा ही पापी हे जैसा कि गुरु पत्नि के साथ विवाह करने वाला (याझवल्य से उद्‌घृत)
३. काने -शब्द कोष के अनुसार गोत्र, कुल पुरुष या गुरु के नाम से होता हे।
४. फान्सीसी पादरी दुव्वाय के अनुसार जाति कि व्यवस्थाने ही भारतको बर्बरता में गिरने से बचाया हे
५. वर्तमान वैज्ञानिक शोध के अनुसार एक ही रक्त समूह में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने वाले दम्पतियोंकी संताने मन, बुद्धि और शक्ति से निर्बल होती है। अतः सह गोत्र विवाह नहीं करने चाहिये।

"गोत्र से सीधे सम्बन्ध रखने वाले जाति वर्ण कुल की मिंमासा"

प्रस्तावना :-

गोत्र हमारी परम्परा, संस्कृति का महत्वपूर्ण अनिवार्य अंग है। हमारी २००० वर्षो की पहचान और वर्तमान में हमारे अस्तित्व और हूमड़ जाति को बनाये रखने के लिये आवश्यक होने से इस हूमडो के संस्कृतिक इतिहास में इसकी विस्तृत चर्चा आवश्यक है जिससे हमारी वर्तमान पीढी इसकी आवश्यकता और महत्व को महसूस कर सके। इसलिये गोत्र से सीधा सम्बन्ध रखने वाले या इसके नामान्तर जैसेकी 'जाति' 'कूल' 'वंश' का सामान्य विवेचन आगम ग्रन्थो के आधार पर करना आव्श्यक है।

आर्जिका ज्ञानमतीजी

गोत्र कुल वंश : सन्ताममित्येकोऽर्थः गोत्र कुल वंश और सन्तान ये सब समार्थक नाम है!

धवल पुस्तक / ६ पृष्ठ ७७

पितु रन्वय शुद्धिर्या तत्कुलं परिभाष्यते।
मातृरन्वय शुद्धिस्तु जातिरित्य भिलप्यते ॥८५॥

पिता के वंश शुद्धि कुल शुद्धि कहलाती है। और माता के वंश की शुद्धि जाति शुद्धि। दोनो की शुद्धता से "सज्जाति" कही जाती है।

सज्जाति सम्पन्न मनुष्य ही रत्नत्रय का प्राप्ती रुप प्रव्रज्या के अधिकारी है।

जाति मीमांसा

भारतीय लोकिक जीवन में कुल और गोत्र के समान जातीय व्यवस्था को बडा महत्व मिला हुआ है। इसका प्रभाव सभी क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होता है। जातिके आश्रय बिना कोई भी महत्वपूर्ण कार्य नहीं होसकता है। आत्म शुद्धि में प्रयोजक, ध्यान, तप, संयम और धर्म कार्य सें लेकर विवाह आदि प्रत्येक सामाजिक कार्य में इसका विचार किया जाना उपयोगी माना जाता है।

जाति वर्ण

जाति वर्ण परम्परा आनादि है। यह मानव जीवन, समाज को पनपने और जीवन्त रखने के लिये प्राण स्वरुप है। इनके आधार पर ही मानवता, सम्पन्नता, समृद्धि और आदर्श टिके रहते हैं और आगे भी रह सकेगे। अतः वर्ण व्यवस्था को बनाये रखना मनुष्य समाज को बनाए रखना है।

जाति व्यवस्था का पोषण व स्थिति मानव समाज को नैतिक और आध्यात्मिक आधार प्रदान करते है। तथा उभय लोकहिकारी है। शिष्टता और सदाचार का मूल जाति धर्म है। इसके सुव्यवस्थित रहने पर ही धर्म न्याय राज्य राष्ट्र वंश समाज समृद्ध रह सकता है अन्यथा नही। वर्ण और जाति व्यवस्था हिन मनुष्य निरापशु है। शील संयम व्रतविहिन जीवन मरण तुल्य है।

जाति मीमांसा

जातयोऽनादयः सर्वास्तक्रियापि तथाविधा।
श्रुतिः शास्त्रन्तर वास्तु प्रमाणं कात्र नः क्षतिः ॥
स्वजत्यैव विशुद्धनां वर्णानामिह रत्नवत्।
तत्क्रियाविनियोगाय जैनागमविधिः परम् ॥

सब जातियाँ और उनका आचार-व्यवहार अनादि है । इसमें वेद और मनुस्मृति आदि दूसरे शास्त्रोको प्रमाण माननेमें हमारी (जैनोंकी) कोई हानि नहीं है । रत्नोके समान वर्ण अपनी अपनी जातिके आधारसे ही शुद्ध हैं । उनका आचार व्यवहार उसी प्रकार चले इसमें जैनागमविधि उत्तम साधन है ॥पृ०४७३॥

सा जातिः परलोकाय यस्याः सद्धर्मसम्भवः।
न हि सस्याय जायेत शुद्धा भूर्बीजवर्जिता ॥

जिसमें समीचीन धर्म की प्राप्ति सम्भव वह जाति परलोककी हैतु है, क्योकि बीज रहित शुद्ध भुमि शस्य को उचित करने में समर्थ नहीं होती । यश तिस्तक चम्पू पृ ४१३.

आदि पुराण

गोत्र कर्म के फल स्वरुप जो कुल एवं जाति उल्लिखित हुई है ! उसका सम्बंध माता पिता के रज और वीर्य से है !

यह सुनिश्चित सिद्धांत है कि प्रत्येक वाच्चार्थ अपने वाचक शब्द में सुनिहित रहकर ही कार्यकारी होता है ! जातिशब्द "जनि प्रादुभवि" धातु से लिन प्राच्य लगाने पर बनता है !

प्रादुर्भाव का अर्थ उत्पति, जन्म या पैदाइश से है !

वास्तव में जन्म और जाति में आधेय आधार सम्बन्द है, जैसे हथेली और रेखा !

हथेली आधार । रेखा आधेय

इसी प्रकार जब से जन्म है तबसे जाति और जब से जाति है तब जन्म । चूंकि जीव अनादिकाल से है, अतः अनादि से जन्म सन्तति है तो यह भी मानना होगा जाति भी अनादि है !

जन्म और जाति का तादात्मय सम्बन्ध है !

तिर्यच जाति पंचेन्द्रिय जाति का उपभेद है परन्तु गाय, भैंस, हाथी घोडा और बकरी, सर्प एवं पक्षियों में तोता मैना, कबूतर आदि अनेक भेदों में भी विभक्त है । इसमें पंचेन्द्रिय समान होने पर भी मैथुन कर्म अपनी अपनी जातियों में मान्य है !

सभी जातियाँ मनुष्य धर्म की अपेक्षा एक है परन्तु मैथुन संज्ञा की प्रवृत्ति को शान्त करने के लिये अपनी अपनी जाति में ही प्रवृत्ति करती है !

इससे विवाह सम्बन्द एक जाति में ही होना चाहिये !

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जाति वर्ण परम्परा अनादि है !

वह मानव समाज को पनपने और जिवित रखने के लिए प्राण स्वरुप है ! इसके आधार पर ही मानवता, सभ्यता, समृद्धि और आदर्श टिके रहे है, और आगे भी रह सकेगें !

जाति व्यवस्ता का पोषण व स्थिति मानव समाज को नैतिक और आध्यात्मिक आधार प्रदान करते हैं ! तथा उभय लोक में हितकारी है ! शिष्टता और सदाचार का मूल जाति धर्म है ! इसके सुव्यवस्थित रहने पर ही धर्म स्थायीव, राज्य, राष्ट्र, देश, व समाज, सुदृढ, रह सकता है अन्यथा नहीं ।

दि. जैन समाज में जातियों का प्रादुभाव :-

जैनियो की सभी जातियो ने गोत्र को स्वीकार किया है । उनकी प्राचीन समय से परम्परा रही है । हूमडजाति और गोत्र को समझने के लिये आवश्यक है कि हम दि. जैन समाज के मुख्य जातियो के विषय में संक्षेप में जाने ।

(१) मुख्य सभी जातियो का उद्‌भव समय विक्रम की पहली, दूसरी शताब्दि से है ।
(२) मूलसंघ के विभाजन के बाद विभन्न संघो के आचार्यो के उपदेश से विभन्न क्षत्रिय कुलों की, विभन्न जातियो की स्थापना हुई ।
(३) सभी जातियो ने एक या दूसरे प्रकार से गोत्र व्यवस्था स्वीकार की है ।
इसका संक्षेप में विवरण निम्न प्रकार है ।

"*जातियों का प्रार्दुभाव :-*

साधु संघो के संघ,गण एवं गच्छो के विभाजन से समस्त जैन समाज भी जातियों एवं उप जातियों में विभक्त हो गया। यद्यपि भगवान महावीर के समय जाति प्रथा ने अधिक जोर नहीं पकडा था लेकिन उनके निवार्ण के कुछ वर्षो पश्चात से ही प्रादुर्भाव होने लगा।"

खण्डेलवाल जैन समाज का इतिहास पृ.१८ - २९

जैन जातियो के उद्‌भव एवं विकास में जैनाचार्यो एवं भटारको का भी महत्त्वपूर्ण योग दान रहा है

डॉ. कस्तूरचंद पृ. २९

दिगम्बर जैन समाज में ८४ जातियो का वर्णन निम्नग्रन्थों मे उपलब्ध है।

(१) आमेर शास्त्र भंडार गुटका नं. ३८ प्राकृत भाग
(२) विलास ८४ जाति जयमाल
(३) बह गुलाल कृत चौरासी जाति जयमाल
(४) अजमेर भट्टारकीय शास्त्र भंडार में
(५) विनोदी लाल रचित फूल माला पच्चीसी।
(६) राजस्थान प्राच्य बिद्या प्रतिष्ठान ग्रन्थ क्रमांक २७०३३ संवत् १९१३
(७) अभय जैन ग्रन्थालय हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक ७७६१

विश्व दृष्टि में विश्वहितंकर महावीर :-

भगवान महावीर का अहिंसा सन्देश आज पहले की अपेक्षा अधिक महत्व रखात हे। देश को मजबूत बनाने के लिये हम सबका कर्तव्य है की हम भगवान महावीर स्वामी की शिक्षाओं का पालन करें।

प्रधान मंत्री :- श्रीमती इंदिरा गांधी

खण्डेलवाल	मूल उद्गम स्थल	वर्तमान मूख्य निवास	उद्गम समय	आचार्य आदि के उपदेश	अन्य
	खाडेला नगर (सीकर जिला राजस्थान)	राजस्थान मालवा, विहार मध्यप्रदेश	संवत् १०१ भादरवा सुदी १३ रविवार	जिनसेन गोत्र ८४ गोत्र साह पापडीवाल भावसा पहाडिया छाबडा आदि जैन धरम अपजाय॥	सिधाडे जिनसेन अपराजित मुनिराय। राजकुली चौबीसी धरि प्रति बोध्या मुनि आय। चौरासी श्रावक कुली भादवा सुदी १३रविवार खण्डेलवाल थाप्या ॥ श्रावककोत्पति गुटका
अग्रवाल	आगोहा हरियाणा प्रदेश	हरियाणा राजस्थान,उत्तर प्रदेश,मध्यप्रदेश दहेली	लोहाचार्य वि. प्रथम सताब्दि	संवत् १७७९ से लोहाचार्य १८ गोत्र गर्ग गोयल सिंधल आदि	अगरवाल को मेरी जात, पुर अगरोए महि उतपत्ति प्रधुम्न चरित- रचनाकाल १४११ से
परवार		मध्य प्रदेश सागर, जबलपुर ललित पूर	विक्रम संवत्१६	आचार्य गुप्तिगुप्त १२ गोत्र गोइल्ल वाधल्ल, कासिल्ल भरिल्ल,का आदि	
बधेरवाल	वधेरा गाँव जिला टोंक राजस्थान	राजस्थान फोटा बूंधी टोंक	संवत् १०१	५२गोत्र खडवड समधरा हरसोला आदि	२५ गोत्र काष्ट संघ २७ गोत्र मूल संघ
जैसवाल	जेसल मेर	आगरा, ग्वालियर फिरोजाबाद	दो भागो मे तिरो-तिया उपरोतिया	मूल संघ फाष्ट संधी	मूलसंघ ४६ गोत्र फाष्ट संधी ३६ गोत्र
पल्लीवाल	पाली नगर राजस्थान	आगरा, फिरोजाबाद कन्नोज अली गढ गवालियर उज्जैन			
ओसवाल	ओसिया जोधपुर राजस्थान	राजस्थान पंजाब मध्यप्रदेश	वीर संवत ७० (इतिहास की अमरवेल ओसवाल से)	स्थमप्र भूसिर	मूल गोत्र

खण्डेलवाल	मूल उद्गम स्थल	वर्तमान मूख्य निवास	उद्गम समय	आचार्य आदि के उपदेश	अन्य
नरसीपुरा राजस्थान	नरसीगपुरा नगर	राजस्थान,म.प्र	संवत् १०२	२७ गौत्रो	काष्ट संघ नदी तट गच्छ विद्यागण भटारको की गादी सूरत प्रतापगढ रामसेन-विजयसेन यशकिर्ति उदयसेन त्रिभुवनंकिर्तीरत्नभूषण उन्तिम जसकिर्ती (प्रतापगढके सहित)
अन्य जातिया :-	गोलापूर्व, गोलालोरे, गोलमिंचारे, पद्मावती पोरवाड, चितौडा, वरैया, रामकवाल आदि				वर्तमान मे दक्षिणभारत की जि. जैन जातियों सेतवाड-२०८८९ बोगार-२४३९ कासारों-९९८७ चतुर्थ-६९२८५

विश्व दृष्टि में विश्वहितंकर महावीर :-

भगवान महावीर का हमें अहिंसा का व्यापक सिद्धांत दिया

सुप्रसिद्ध गांधी वादी नेता श्री मोरारजीभाई देसाई

सज्जातित्व क्या है ?

हमारी अनादि कालिन परम्परा धार्मिक परम्परा रही है। इस परम्परा में जीव स्वपुरुषार्थ से कर्मो को काट कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है आचार्य जिनसेन स्वामी ने आदि पुराण में मोक्ष प्राप्ति के सात परम स्थान कहे है।

सज्जति सद्‌गृहित्वं त परिताज्य सुरेन्द्रता।
साम्राज्य परमर्हिन्त निर्वाण चेति सप्रधा ॥

(आदि पर्व-३८ श्लोक ८४)

अर्थात् १ सज्जति (२)-सद्‌गृही, ३-दीक्षा, ४-सुरेन्द्र, ५-स्तम्राज्य, ६-अर्हतंपद,७ मोक्ष

मोक्ष जाने के लिये सात पदो की आवश्यकता है इनमें से प्रथम स्थान सज्जाति का है। सज्जाति का अर्थ बताते हुए आचार्य जिनसेन स्वामी ने आदि पुराण में कहा है कि जिसकी जाति व कुल शुद्ध होगा वही भवसागर से पार हो सकता है। पिता के वंश को शुद्ध कुल तथा माता के वंश की शुद्धि को जाति कहते है तथा इन दोनों की शुद्धि को सज्जात्वि कहते हैं। इन दोनों शुद्धियों के विना मोक्ष हो ही नहीं सकता है। वह कहते है

पितुरन्वशुद्धि या तत्कुलं परिभ्यते।
मार्तुन्वशुद्धिस्तु जातिरित्.मिलप्यते ॥८५॥
विशुद्धिरुभयस्यास्व सज्जतिरनुवर्तिता।
यत्प्राप्ौ सुलभाम्भोधेरन्तोमतैगुर्णे ॥८६॥ आदि पर्व ३८॥

अर्थात् पितृवंश शुद्धि को कुल व मातृवंश शुद्ध को जाति तथा इन दोनो के कुल की शुद्धि को सज्जाति कहते है। इस प्रकार की शुद्धि से भवसागर से जीव पार हो जाता है अन्यथा कभी भी मोक्ष की प्राप्ति नही हो सकती। ऐसा उल्लेख अन्य शास्त्रो में भी पाया जाता है। पूज्यपाद स्वामी ने दीक्षार्थी के लिये भी कहा है देश जाति, कुलोत्पन्नो क्षमा व संतोष शीलवान। अर्थात दीक्षार्थी को देश जाति कुल में अच्छा हो क्षमा व सन्तोष धारण करते वाला हो, शीलवान हो आदि। आचार्य भक्ति में भी कहा है देश,कुल, जाति शुद्धा अर्थात् देश, कुल व जाति से शुद्ध ही आचार्य हो सकता है। ऐसा अनेकों शास्त्रों में है। प्रतिष्ठा शास्त्रों में इन्द्र यजमान व प्रतिष्ठाचार्य के लिये भा स्पष्ट लिखा है कि अच्छे कुल व जाति में उत्पन्न हुआ व्यक्ति ही प्रतिष्ठाचार्य व यजमान हो सकता है। *विशुद्धवंशो कुलजाई शुद्धो*। उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि शुद्ध कुल जाति वाला ही मोक्ष मार्गी है और अन्य धार्मिक क्रियाओं का अधिकारी भी है अन्यथा नहीं। कुल जाति जिसकी शुद्ध नही वह अहार, दान देने पर भा सफलता तो प्राप्त करता ही नही अपितु कुभोगभूमि में भी उत्पन्न होता है। त्रिलोकसार में सिद्धान्त चक्रवर्ति नेमिचन्द्र जी ने कहा है :-

"दुत्भावअसुचिसूदपुफ्कवईजाइसकरादीहिं।
कयदाणाविकुपत्ते जीवां कुणरेसु जायन्ते ॥" **त्रिलोकसार (नेमिचन्द्र)**

खोटे भाव वाला, अशुद्धभाव वाला, सूतक पातक वाला, रजस्वला, जातिसंकर लोग कुपात्र को दान देने वाले नियम से कुभोग भूमि में जन्म लेता है। इन सबो में एक शब्द आया है जाइ संकरादीहिं अर्थात् जिसने जाति संकर किया हो और वह दान देवे तो भी कु भोग भूमि में उत्पन्न होता है।

आदि पुराण में कर्वन्वय क्रियाओंका निर्देश करते हुए सर्व प्रथम सज्जाति क्रिया दी है और उसका लक्षण करते हुए कहा है कि दीक्षा को योग्य कुलमें जन्म होना यही सज्जाति है जिसका विशुद्ध कुल और विशुद्ध जातिके आश्रयसे होती है। तात्पर्य यह है कि एक ओर तो पिता के अन्वयकी शुद्धिसे युक्त कुल होना चाहिए और दूसरी और माता के अन्वयकी शुद्धिसे युक्त जानि होनी चाहिए। जहाँ इन दोनें का योग मिलने पर सन्तति उत्पन्न होती है वह सन्तति सज्जाति सम्पन्न मानी जाती है। सज्जाति दो प्रकारकी होती है :-

प्रथम शरीर जन्मसे उत्पन्न हुई सज्जात और दूसरी संस्कार जन्मसे उत्पन्न हुई सज्जाति । जिसे शरीर जन्मसे उत्पन्न हुई सजाति प्राप्त होती है उसके सब प्रकारके इष्ट अर्थोकी सिद्धि होती है और जिसे संस्कार जन्मसे उत्पन्न हुई सज्जाति प्राप्त होती है वह भव्यात्मा सचमुचमें द्विज संज्ञाको प्राप्त होता है । इसकी पुष्टिमें आचार्य जिनसेनने कई उदाहरण उपरिथत किये है । वे कहते है कि जिस प्रकार विशुद्ध खनिसे उत्पन्न हुा रत्न संस्कारके योगसे उत्कर्षको प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रियाओ और मन्त्रोंसे सुसंस्कारको प्राप्त हुआ आत्मा भी अत्यन्त उत्कष'को प्राप्त हो जाता है । अथवा जिस प्रकार सुवर्ण उत्तम संस्कारको पा कर शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार भव्य जीव उत्तम क्रियाओंके आश्रयसे शुद्ध हो जाता है (पर्व २६ श्लो०८९ से) ।

आदि पुराण में जिनसेन आचार्य कहते है :-

"यथा स्व स्योचित्त कर्म प्रजादध्युरसं करम्"
विवाह जाति सम्बन्ध व्यवहारश्वतन्मतम् ॥ (१८७) ॥ आदि पुराण पर्व १५।

मनुष्य योग्य जो कर्म है, व्यवहार है, उसको करते हुए विवाह मात्र स्वजातियों में किया ऐसा भगवान आदिनाथ ने कहा था । विवाह तो स्वजातियों में ही होना चाहिये । खण्डेलवाल की कन्या खण्डेलवालों में जायसवाल की जा यसवाल में, पल्लीवाल की लड़की पल्लीवालों में अग्रवाल की अग्रवालों में ही लेवे देवे आदि । जाति मिश्रण से रक्त मिश्रण होगा, पिण्ड मिश्रण होगा आचार्यो ने कहा है जाति मिश्रण से जाति की मूल स्वरुप बिगड़ जायेगा । जैसा अग्रवाल लडकी को खण्डलवालमें दी तो उनसे उत्पन्न सन्तान न तो अग्रवाल होगी और न ही खण्डेलवाल होगी एक अन्य तीसरी जाति उत्पन्न होगी । हमारे गुरु आचार्य महावीर कीर्ति जी इस सम्बन्ध में अनेक उदाहरण देते थे । उनमें कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ । जैसे पशु जाति में भी अनेक अर्न्तजातियाँ है । जैसे हाथी, घोडा, ऊँट, बैल आदि । हाथी, घोडे में भी अनेक जातियॉ है । इसी प्रकार जातियों में भी जात्यान्तर भेद है । फिर मनुष्यों की जाति भी करणानुयोग ग्रन्थों में चौदह लाख बताई है । इस सब को समझते हुए देखिये, जिस प्रकार दो विभिन्न जाति के पशुओं के सम्बन्ध से उत्पन्न पशु की कोई शुद्ध जाति उत्पन्न होगी नहीं । इसी प्रकार से जाति व विजाति के मिश्रण से भी जातीय मनुष्य की उत्पत्ति नही होगी । आचार्यो ने कहा है ।

परयोनिषु गच्छतौ मैथुनं देश नाशः
अन्यत्रवेसरोत्पत्ति नृणां वाजादि मैथुनात् ॥

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि विजाति मिश्रण से शुद्ध सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती। पूर्वाचार्यो का वर्तमान सभी आचार्यो का यही कहना है किसी भी प्रकार से अपनी अपनी जातियों का रक्षण करना चाहिये, जाति संकर नहीं करना चाहिए । जाति संकर एक पाप है, पाप पाप ही रहेगा धर्म नहीं हो सकता । कोई कहे कि साधुओ को इन बातों से क्या करना ? साधुओं को इस विषय में बोलना भी नहीं चाहिये,
विवाहादि सामाजिक विषय है ? तो इसका उत्तर यह है कि साधु भी एक समाज का अंग है । समाज ठीक रहे, शुद्ध रहे तो साधु की चर्या भी ठीक रह सकती है । आगम का वाक्य है

जो देश कुल जाति से शुद्ध है उन्हीं के घरानोंमें साधूओं को आहार करना चाहिये । पूर्वाचार्यो, आचार्य शान्तीसागर, आ. वीर सागर, आ. महावीर कीर्तिजी आ. शिवसागर, आ. धर्म सागर, आ. विमल सागर, आ. सन्मति सागर, आ. अजित सागर अथवा गणनिआर्यिका सुपार्श्वमति, ग. आ. विजय मति. ग. आ. ज्ञानमति, ग. आ. विशुद्धमति आदि एवं साधुओं ने जो मूल परम्परा से जुड़े है ि

वजातीय विवाह करो ऐसा नहीं कहा सभी ने विरोध किया है। केवल एक दो सुधारवादी आचार्यो व साधुओ को छोडकर आ. धर्म सागर व आचार्य कल्पश्रुत सागर तो विजायतीय विवाह के कट्टर विरोधी थे। आ. शान्तीसागर परम्परा के साधुओं ने तो ऐसे घरों में आहार नही लिया जिन्होंने विजायतीय सम्बन्ध किये है।

कुल मीमांसा

कुल, वंश और सन्तान ये गोत्र के ही नामान्तर है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार लौकिक द्रष्टि से गोत्र परम्परा विशेषको सूचित करता है उसी प्रकार कुल और वंश भी परम्परा विशेष को ही सूचित करते है।
काल लक्षण इन शब्दो में किया है -

पितुरन्वयशुद्धियाँ तत्कुलं पम्पिषते ।८५, पर्व ३१ ॥

पिताकी वंशशुद्धिको कुल कहते है। तात्पर्य यह है कि अपने कुलाचारका योग्य रीतिसे पालन करते हुए जो पुत्र-पौत्र सन्ततिमें एक रुपता बनी रहती है उसे कुलशुद्धि कहते है। इसी अभिप्रायको ध्यानमें रखकर महापुराणमें कुलावधि क्रियाका निर्देश इन शब्दोमें किया गया है।

कुलावधिः कुलारक्षणं स्थान् द्विजन्मनः ।
तस्मिन्नसत्यसौ नष्टक्रियोऽन्यकुलतां भजेत् ॥१८१-४०॥

अपने कुलके आचारकी रक्षा करना द्विजकी कुलावधि क्रिया है। उसकी रक्षा नहोने पर उसकी समस्त क्रियाऐं नष्ट हो जाती हैं और वह अन्य कुलको प्राप्त हो जाता है।

महापुरुषो में आगे यह तो कहा है कि जिसका कुल और गोत्र शुद्ध है वही द्विज दीक्षा धारण कर सकता है। वहाँ बतलाया है कि जिसका उपनयन संस्कार हो चुका हो, जिसका कुल दूषित नही है, जो असि, मषि, कृषि और वाणिज्य इन चार कर्मोका आश्रय लेकर अपनी आजीविका करता है, जो निरामिषमोजी है, जिसे अपनी स्त्रीके साथ ही सेवन करनेका व्रत है, जो संकल्पी हिंसाका त्यागी है तथा जो अभक्ष्य और अपेयका सेवन नहीं करता। इस प्रकार जिसकी शुद्ध वृत्ति है वह समस्त व्रतचर्या विधिका अधिकारी है।

जिस प्रकार समाजकी सुव्यवस्थाके लिए राजव्यवस्था और आजीविकाके नियम आवश्यक हैं। उसी प्रकार कौटुम्बिक व्यवस्थाको बनाये रखनेके लिए और समाजको अनाचारसे बचाये रखनेके लिए विवाहविधि या दूसरे प्रकारसे स्त्री-पुरुषोंके ऊपरनियन्त्रण बनाये रखना भी आवश्यक हे। मूलतः यो तीनों प्रकारकी व्यवस्थाएँ सामाजिक परम्पराकी अङ्गभूत हैं। इसलिए समाजशास्त्र के निर्माताओंने अपने अपने कालके अनुरुप इन पर पर्याप्त विचार किया है।

समणं गणि गुणड्ढं कुलरुववयोविसिट्ठमिट्ठदरं ।
समणो हि तं पि पणदो पडिच्छमं चेदि अणुगहिदो ॥२०३॥

वो गुणोंसे आट्य है, कुल, रुप और वयसे विशिष्ट है तथा श्रमणो के लिए अत्यन्त इष्ट हैं ऐसे गणीको प्राप्त होकर और नमस्कार कर भक्ते अङ्गकार करो ऐसा शिष्यके द्वारा कहनेपर आचार्य अनुग्रहीत करते है।

महाकुला माहार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ।

सम्यग्दर्शनसे पवित्र हुए पुरुष महाकुलवाले और महापुरुषार्थवाले मानवतिलक होते है। -रत्नकरण्ड

देसकुलजाईसुद्धो सोमंगो संगभंग उम्मुक्को ।
गयण व्व णिरुवलेवो आईरिया एरिसो होइ ॥

जो देश, कुल और जातिसे शुद्ध है, सौम्यमूर्ति है, अन्तरंग और बहिरंग परिग्रहसे रहित है और आकाशके समान निमल है ऐसा आचार्य परमेष्ठी होता है। धवला प्र० पुस्तक पृ० ४१ उद्धृत

बारसविहं पुराणं जगदिट्ठं जिणवेरहिं सव्वेहिं ।
तं सव्वं वण्णेदि हु जिणवंसे रायवंसे य ॥
पढमो अरहंताणं विदियो पुण चक्कवट्टिवंसो दु ।
विज्जाहराण तदियो चउत्थयो वासुदेवाणं ॥
चारणवंसो तह पश्चमो दु छट्ठो य पण्णसमणामं ।
सत्तमओ कुरुवंसो अट्ठमओ तह य हरिवंसो ॥
णवमो य इक्ख्योणं दसमो वि य कासियाण बोद्धव्वो ।
वाईणेक्कारसमो जारसमो णाहवंसो दु ॥

जिनेन्द्रदेवने जगतमें बारह प्रकारके पुराणोका उपदेश दिया है । वे सब पुराण जिनवंशो और राजवंशोका वर्णन करते है । पहला अरिहंता का, दूसरा चक्रवर्तीयोका, तीसरा विद्याधरोंका, चौथा वासुदेवोंका, पाँचवाँ चारणोका और छठ्ठा प्रज्ञाश्रमणोंका वंश है । इसी प्रकार सातवाँ कुरुवंश, आठवाँ हरिवंश, नौवाँ इक्ष्वाकुवंश, दसवाँ काश्यपवंश, ग्यारहवाँ वादियोंका वंश और बारहवाँ नाथवंश है ।

तत्थकुलं पश्चविहं-पश्चथूहकुलं गुहावासीकुलं सालमूलकुलं असोग वाडकुलं खण्डकेसरकुलं।

कुल पाँच प्रकारका है-पश्चस्तूप कुल, गुफावासी कुल, शालमूल कुल, अशोकवाट कुल और खण्डकेशर कुल ।

तस्यष्टमूरुलङ्ग च सुधीतसितशाटकमे ।
अर्हतानां कुलं पूतं विशालं चेति मूचने ॥३८-१११॥
वर्णलाभोऽयमुद्दिष्टः कुलचर्याऽधुनोच्यते ।
आर्यषट्कर्मवृत्तिं स्यात् कुलचर्यास्य पुष्कला ॥३६-७२॥
पितुरन्तयशुद्धिया तस्कुलं स्यात् द्विजन्मनः ।
कुलानि तुलाचाररक्षणं स्यात् द्विजन्मनः ।
तस्मितसत्यसौ नष्टक्रियोऽन्यकुलतां भजत् ॥४०-१८१॥

अत्यन्त धुली हुई सफेद धोती उसकी जाँधका चिन्ह है । वह धोती सूचित करती है कि अरिहन्त कुल पवित्र और विशाल है ॥ ३८, १११॥

वर्णालाभ क्रिया कही । अब कुलचर्या क्रिया कहते है आर्यपुरुषों द्वारा करने योग्य छह कर्मोसे अपनी आजीविका करना इसकी कुलचर्या क्रिया है ॥३६,७२॥

पिताकी वंशशुद्धिको कुल कहते है ॥३६,८५ ॥

अपने कुलके आचारकी रक्षा करना द्विजोकी कुलावधि क्रिया कहलाती है । इसकी रक्षा न होने पर उसकी समस्त क्रियाएँ नष्ट हो जाती है और वह अन्य कुलको प्राप्त हो जाता है ॥४०-८१॥

महापुराण

कुलं गुरुसन्ततिः ।

गुरुकी सन्ततिको कुल कहते है ।

मूलाचार अ० ५ गा० ८६-४४ टीका

कुलक्रमागतकौर्यादिदोषवर्जितत्वाच्च कुलविशिष्टम् ॥२०३॥

कुल क्रम से आये हुए क्रूरता आदि दोषोसे रहित होनेके कारण कुल विशिष्ट है ॥२०३॥

प्रवचनसार टीका

इक्ष्वाकुनाथभोजोग्रंशास्तीर्थकृता कृताः ।
आद्येन कुर्वता राज्य चत्वारि प्रथति भुवि ॥१८-६५॥
अर्ककीर्तिरभूत्पुत्रो भरतस्य रथाङ्गिनः ।
सोमो बाहुलेस्ताभ्यां वंशौ समार्कसंज्ञिकौ ॥१८-१६॥

राज्य करते हुए प्रथम तीर्थकर ऋषभदेवने लोकमें प्रसिद्ध इक्ष्वाकुंवश, नाथवंश, भोजवंश और उग्रवंश इन चार वंशोका निर्माण किया ॥१८-६५॥

भरतचक्रवर्तीका अर्ककीर्ति नामका पुत्र हुआ और बाहुबलीका सोम नामका पुत्र हुआ। इन दोनोंने चन्द्रवंश और सूर्यवंश चलाये ॥१८-६६॥

कुलं पूर्वरुपपरम्पराप्रभवो वंशः ।

पूर्व पुरुष परम्परासे उत्पन्न हुआ वंश कुल कहलाता है ।

सागारधर्मामृत टीका २-२०

क्षत्रियाणां सुयाणां व्यधि पर्यन्त वोदसा ।
चत्वरि चतुरेणैव राजस्थितिसुसिद्धये ॥२-१६३॥
सुर्वागत्वाकुराद्यस्तु द्वितीय कौरवो मतः ।
हरिवंशस्तृतीयस्तु चतुर्थी नाथनामभाक् ॥२-१६४॥

चतुर आदि ब्रह्माने राज्योकी परम्पराको व्यवस्थितरुपसे चलानेके लिए क्षत्रियोके उत्तम चार गोत्रोका निर्माण किया ॥२-१६३॥ प्रथम इक्ष्वाकु गोत्र, दूसरा कौरव गोत्र, तीसरा हरिवंश और चौथा नाथगोत्र ॥ २-१६४ ॥

हरिवर्षादतीर्णो यद्भवतां पूर्वजः पुरा तस्मात् ।
हरिवंश इति ख्यातो वंशो द्यावापृथिव्योर्वः ॥ १-२८॥

क्योकि तुम्हारा पूर्वज पहले हरिवर्षसे आया था, इसलिए तुमाहार वंश इस लोकमें हरिवंश नाम से विख्यात हुआ ॥१-२८॥

-पुराणसारसंग्रह

गोत्र मीमांसा

लोकमें और आगम में गौत्र और उसका परम्परा सम्बन्ध :-

गोत्र शब्द की व्याख्या और लोकमें उसके प्रचलन का कारण :-

भारतीय जनजीवन में गोत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। गोत्र शब्द का व्युत्पतिलभ्य अर्थ है

'गूयते शब्द्यते इति गोत्रम्'

जो कहा जाय । लोक में गोत्र एक प्रकार का नाम है जो भारतीय समाज में कारण विशेष से रुढ़ होकर परम्परा से चला आ रहा है इससे किसी व्यक्ति, समुदाय, कुल वंश, के इतिहास की छान बीन करने में सहयता मिलती है । जब मानव समुदाय अनेक भागोमें विभक्त होने लगा था और उसके अपने पूर्वजो और सम्बन्धियों का ज्ञान करने के लिये संकेत की आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी तभी से गोत्र प्रचिलत हुये । विवाह सम्बन्ध और सामाजिक रीतिरीवाजोंमें धार्मिक क्षेत्र में किसी न किसी रुपमें सभी भारतीय परम्पराओं ने गोत्र की महत्ताको स्वीकार किया ।

साधारणत : हमारी परम्परामें गोत्र, रक्तपरम्परा का पर्यायवाची माना जाता है । इसका रक्त परम्परा के साथ लोकमें प्रचलित कुल और वंश की सामाजिक व्यवस्था में महत्व है ।

वैयाकरण पाणिनी ने गोत्र का लक्षण किया है :-:

'अत्यन्त गोत्रप्रभृति गोत्रम्' अर्थात् पौत्र से शुरु करके संसति या वंशजों को गोत्र कहते है ।'

वेद-काल से लेकर अब तक ब्राह्मणों में चाहे वे किसी भी प्रांत के हों यह गोत्र परम्परा अखण्ड रुप से चली आ रही है ।

गोत्र परम्परा के विषय में इतिहासज्ञों का कथन है कि भगवान महावीर के बाद बौद्धकाल में गोत्र और जाति व्यवस्था लगभग विच्छिन्न हो गई और उसके बाद वे आचार्यो को जाति और गोत्र व्यवस्था फिर से कायम करने की आवश्यकता महसूस हुई । यह समय विक्रम के प्रथम और द्वितीय शताब्दि में था ।

संताण कमेणागय जीवायरणरस गोदमिदि सण्णा ॥
उज्ज णीवं चरणं उज्जणीवं हवे गोदं ॥ (गोम्मटसार क. का.)

कुल की परिपाटी के क्रम से चला आया जीव का जो आचरण है उसकी गोत्र संज्ञा है, उस कुल परम्परा में उत्तम आचरण होतो उच्च गोत्र कहते है । निम्द आचरण का ही दूसरा नाम नीच गोत्र है । (६९९)

गोत्र शब्द की व्याख्या और लोक में इसके प्रचलन का कारण :-

भारतीय जनजीवन में गोत्र का महत्व पूर्ण स्थान है । गोत्र शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है गूयते शब्यते इति गोत्रम् जो कहा जाय । लोक में गोत्र एक प्रकार का नाम है जो भारतीय समाज में कारण विशेष रुढ होकर परम्परा से चला आ रहा है । इससे किसी व्यक्ति या समुदाय विशेष के आंशिक इतिहास की छानबीन करने में सहायता मिलती है । लौकिक दृष्टि से यह उस समय की देन है जब मानव समुदाय अनेक भागों में विभक्त होने लगा था और उसे अपने पूर्वजों और सम्बन्धियों का ज्ञान करने के लिये संकेत की आवश्यकत का प्रतीत होने लगी थी । क्रमशः जैसे जैसे मानव समाज अनेक भागों में विभक्त होता गया वैसे इसकी महत्ता बढती गई । विवाह सम्बन्ध और सामाजिक रीति रिवाजोंमें इसको आवश्यक माना जाने लगा धार्मिक क्षेत्र में भी इसने स्थान प्राप्त कर लिया । व भारतीय परम्परा के यह आवश्यक अंग बन गये ।

"आगम के आलोक में वर्ण गोत्र आदि को स्थति में " :-आचार्य कल्प श्री ने महापुराण त्रिलोक सार, उपासकाध्ययन आदि ग्रन्थों के आधार पर वर्ण गोत्र व्यवस्था सार्थक और अनादि सिद्ध किया है ।

"आगमिक व्यवस्था और आधुनिक उहा पोह " में आर्यिक विशुद्धमतीजी ने धवला, सर्वाथ सिद्धि, भगवती आराधना, राज वार्तिक, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, आदिपुराण, तिलोय पण्णति . हरिवंस पुराण आदि ग्रन्थों से

प्रमाण प्रस्तुत कर गोत्र, जाति एवं वर्ण व्यवस्था को अनादिकालीन सिद्ध किया है। आज भी इस आगमिक व्यवस्था की आवश्यक्ता प्रतिपादित की है।

जैन धर्म और वर्ण व्यवस्था में आर्यिका विजयमति ने गोत्र, जाति वर्ण और उत्पति आदि शब्दो वाच्चार्थ स्पष्ट करतें हुए इन्हें अनादि सिद्ध किया है। उनके अनुसार वर्ण व्यवस्था न सार्दि है और न अटकलपच्चू कल्पित ही किन्तु अनादि और ध्रुव सत्य है। यह मानव समाज को पनपने और जीवन्त रखने के लिये प्राणस्वरुप है। इनके आधार पर ही मानवता, सम्यता, समृद्धि और आदर्श टिके रहे हैं और आगे भी रहेगें। यह व्यवस्था मानवता की रोधक नहीं पोषक है।

गोत्र और जाति वर्ण के अर्न्तगत ही होते हैं। जैसे भगवान आदिनाथ ने क्षत्रियवर्ण के इक्ष्वाकुवंश और कश्यप गोत्र में जन्म लिया था। यह तथ्य इस बात का पुरावा देता है कि गोत्र अनादि है।
सागर धर्मामृत टीका २-१६३-१६४ में लिखा है कि -

क्षत्रियाणां सुगोत्राणि, त्यधपियत वेधसा।
चत्वारि चतुरेणैव राजस्थिति सुसिद्धेय॥
सुवागिध्वा कुराद्यस्तु द्वितीय कौरवो मतः।
हरिवंस स्तृतीयस्तु, चतुर्थो नाथनाम भाक।

चतुर आदि ब्रह्मा ने राज्यों की परम्परा को व्यवस्थित रुप से चलाने के लिये क्षत्रियों के उत्तम चार गोत्रों का निर्माण किया। प्रथम इक्ष्वाकु गोत्र, दूसरा कौरव गोत्र तीसरा हरिवंश गोत्र और चौथा नाथ गौत्र।
भारतीय आर्य प्रजा अपनी वंश शुद्धि को अक्षुण्ण रखने हेतु चिरकाल से पूर्ण सजग व सतर्क रही है। अपनी वंश शुद्धि को स्थिरता प्रदान करने हेतु अनेक बन्धनों का निर्माण किया, जिससे कोई दुराचारी छलकपट के द्वारा उसकी कुलीनता को क्षति न पहुँचा सके। गोत्रों की परम्परा भी बन्धनों में से एक है।
अमर कोष में गोत्र शब्द का अर्थ इन शब्दों में दिया है संतति गोत्रम् जननम् कुलम्, अभुजनः, अन्वयः वंश, अन्ववाय, संतान। इन शब्दों को देखने से ज्ञात होता है कि जिस नाम या विशेषण से किसी वंश का परिचय प्राप्त होता हो या जिस शब्दके सम्बन्ध से किसी वंश परम्परा या समूह के कुल विशेष के वंश का परिचय प्राप्त होता हो वह शब्द गोत्र कहलाता है।

आचार्य वीरसेन स्वामी ने भी गोत्र कुल वंश सन्तान इन सब को एकार्थक शब्द कहा है। गोत्रों की मानेयता में निम्न कारण सहायक माने जाते है :-

(१) किसी व्यक्ति के वंश का विस्तार होनें पर उसकी पहचान हेतु जिससे यह ज्ञात होता रहे कि यह अमुक व्यक्ति की सन्तान परम्परा से सम्बन्धित है।
(२) एक निवास स्थल का परित्याग कर दूसरे स्थान पर निवास करने पर उस परित्यक स्थान की स्मृति को ताजा बनायो रखने हेतु।
(३) किसी प्रभावी महापुरुष की कीर्ति अमर रखने हेतु
(४) किसी महत्वपूर्ण धार्मिक सामाजिक, लौकिक या लोकोत्तर जन कल्याणकारी कार्य करने की स्मृति को फिर स्थायी बनाये रखने हेतु।
(५) किसी व्यापार व्यवसाय के नाम पर।

श्रीमाल पुराणमें उल्लेख है :-

कुलदेवी प्रवक्ष्यामि, गोत्रे गोत्रे पृथक-पृथक
चित्र स्थानादि कर्मादि शाखा सर्वे प्रवर्तते।

अर्थात-निवास स्थान या व्यवसाय धन्धे के कारण गोत्रों की प्रवर्ती हुई और पृथक पृथक गोत्र की पृथकपृथक कुल देवी मानी गई ।

(६) कुल गुरुओं के गोत्रों के नाम से सम्बन्धित होने के कारण कुलगुरुओं के गोत्र भी जातियों से सम्बन्धित हो गये ।

वर्तमान परिपेक्ष्य में भी गोत्र महत्त्वपूर्ण है :-

(१) पाश्चात्य सम्यता एवं संस्कृति के दुष्प्रभाव तथा केवली कथित पुनीत वाणी की अनभिज्ञता अथवा अवमानना से गत कुछ वर्षो में स्वच्छन्दा चार का पोषण करने वाला साहित्य भी प्रकाश में आयाहै । स साहित्य ने आर्यजाति की मूल संस्कृति वर्ण व्यवस्था को ही छिन्न भिन्न करने का दुष्प्रयास किया है । गोत्र देश धर्म सबकी उन्नति के लिये हितकारी साधन है । " फ्रांसिसी पादरी दुव्वाय ने कहा है कि जाति की व्यवस्था ने ही भारत को बर्बरता में गिरने से बचाया है ।"

(२) तथाकथित सुधारवादी मान्यता के अनुसार पूर्वकाल में जाति, गोत्र, वर्ण व्यवस्था नहीं थी अतः आज भी नहीं होना चाहिये । एसा माने तो कम से कम पूर्व (पहले ,दूसरे, तीसरे) काल की सी व्यवस्था तो होनी ही चाहियें । तीसरे काल तक भोग भूमि होने के कारण माता के गर्भ से युगल सन्तान पुत्र, पुत्री का युगरत् जन्म होता था और वं ही पति-पत्नि हो जाते थे अतः वहां वर्ण जाति गोत्र की आवश्यकता नहीं थी । लेकिन आज के आधुनिक समाज में इस व्यवस्था को लागू करने की सामथ्य किसी में नही है । आधुनिक समाज भौतिकता की चकाचौंध एवं स्वच्छन्दता से ग्रसित है ,अतःउस पर नियन्त्रम गोत्र व्यवस्था से ही रखा जा सकता है ।

(३) गोत्र को मानने का वैज्ञानिक कारण भी है । वैज्ञानिको को कभी मानना है कि एक ही रक्त समूहवाले परिवारों में विवाह सम्बन्ध नही होने चाहिए , इसलिए वर्ण संकरता का भय रहता है । गोत्र शब्द का अर्थ है । एक रक्तवाले मनुष्यो का समूह ।

आगम के आलोक में गौत्र की स्थिति :-

इस हुण्डावसर्पिणी कालमें भगवान आदिनाथ ने जिस समय वर्णों का विधान किया था, उस समय जीवों के पिण्ड की अशुद्धता रुप संकरता नही थी अर्थात पिण्ड शुद्ध ही था। शनैः जब विसयासक्ति और विलासिता बठी तो विवेकहीन कामान्ध मानवों ने मानवता को तिलांजली देकर अनर्गल व्यभिचारादि प्रवृत्तियों के द्वारा नीच गौत्र को प्रश्रय दिया।

तत्वार्थ सूत्र में उमास्वामी आचार्य ने गौत्र दो प्रकार के बताये (१) उच्च गोत्र (२) नीच गौत्र।

मनुष्य तथा तिर्यंच पर्याय में स्थित जीव यदि देवायु का बन्ध करता है तो देवायु के साथ उच्च गोत्र क ाही बन्ध करता है।

इसी प्रकार मनुष्य या तिर्यय पर्याय में स्थित जीव यदि नरकायु का बन्ध करता है तो उसी समय सके नरक गति व नीच गौत्र का ही उदय होगा, चाहे वह कृतकृत्य वेदक हो अथवा क्षायिक सम्यग्दष्टि हो। उस पर्याय के साथ नीच गौत्र का ही उदय रहेगा।

नीच गौत्र की उत्पत्ति के सामान्य चार कारण है :-

(१) ***व्यक्त नीच गोत्र*** :- अनमेल जाति या अनमेल वर्ग अथवा विधवा -विवाह व्यभिचार आदि से उत्पन्न हुई सन्तान नियम से नीच गोत्री ही होती है। उसकी सन्ततियों में से आई हुई सन्तान नीच गोत्री ही होगी।

(२) ***अव्यक्त नीच गोत्र*** :- काम के आवेश में जिस स्त्री ने पर पुरुष के साथ गुप्‍ रुप से व्यभिचार सेवन किया उससे जो सन्तान हुई वह समाज में अव्यक्त है पर वह सन्तान नियम से नीच गोत्री होगी।

(३) ***क्षेत्र सम्बन्धी नीच गोत्र*** :- म्लेच्छ खण्ड में उत्पन्न होने वाले सभी मानव नीच गोत्री ही होते हैं। ये धर्म क्रिया से रहित व्रतादि धर्म क्रिया नहीं करते अतः म्लेच्छ कहलाते हैं।

(४) ***काल की अपेक्षा नीच गोत्र*** दुःखमां दुःखमां छठे कालमें उत्पन्न होने वाले जीव नीच गोत्री होते हे। उनमें से जिन जीवों का पिण्ड परम्परा से शुध्द चलता आया है तथा उनमें से जिनके विशेष पुण्य का उदय है एसे कुछ जीव प्रलयकाल के समय छट्ठे काल का अन्त होने के पूर्व या स्वंय विजयद्धा पर्वत की गुफाओं में पहुँच जायेगे। तथा कुछ जीवों को देव ले जायगें।

" **सर्वाथसिद्धि** " में भी नीच और उच्च गोत्री का वर्णन इस प्रकार है :-

(१) जो क्षेत्र आर्य हैं पर आर्य जाति में उत्पन्न नहीं है तथा कर्म आर्य, दर्शन आर्य और चारित्र आर्य भी नहीं है वह नीच गोत्री (मिथ्यादृष्टि) हैं।

(२) जो क्षेत्र आर्य है पर आर्य जाति में उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु कर्म आर्य व दर्शन आर्य हैं एसा नीच गोत्री सम्यग्दष्टि है।

(३) जो क्षेत्र आर्य है, आर्य जाति में उत्पन्न भी हुये है पर कर्म आर्य व दर्शन आर्य नहीं है एसे उच्च गोत्री मिथ्यादृष्टि हैं

(४) जो क्षेत्र, जाति कर्म व दर्शन आर्य है पर चरित्र आर्य नही है तो व चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दष्टि उच्च गोत्री है।

(५) जो क्षेत्र आर्य, जाति आर्य, कर्म आर्य, दर्शन आर्य , व चरित्र आर्य है एसे उच्च गोत्री निर्वाण पुरुष दीक्षा के अधिकारी है।

धवला पु.६ पृष्ठ ७७

(१) गमयत्युच्चनीय कुलमिति गोत्रम्

उच्चनीचकुलेसु उप्पादओ पोग्गसक्खंधो,

मिच्छत्तादिपच्चएहि जीव संबद्धो गोदमिदिउच्चदे ।

(२) गोदस्स कम्मस्स दुवेपयडीओ ।

उच्च गोदं चेव णिच्चगोदं चेव ॥

धवला पुस्तक ७ पृष्ठ १५ उद्धृत

उच्चुच्य उच्च तह उच्चणीय पुषणीच णीचं च ।

जस्सोदयेण भावो णीचुच्च विवज्जिदो तस्स ॥

ज्ञानर्णव :- गोत्राख्यं जन्तु जातस्य कर्म- दत्ते स्वकं फलम्

शस्ताशस्तेशु गोत्रषु जन्म निष्पाद्य सर्वथा ।

" *महापुराण - ३९-१५८* " :- विशुद्ध कुल गोत्रस्य,सद्वृणस्य वपुष्मतः ।

दीक्षा योग्यत्वमाम्नातं, सुमुखस्य सुमेधसः ॥

गोम्मटसार टीका :- उच्चर्गोत्रनीचैर्गोत्रयोरुत्तरोत्तर प्रकृतिविशेषोदयैः संजातः वंशः कुलानि ।

गोत्र की व्याख्या उत्तरण पुराण में :-(पर्व ७४ में)

जाति गोत्रादि कर्माणि शुक्लध्यान है तवः ।

येषु से स्युस्त्रयो वर्णाः शेषाः शूद्रां : प्रकीर्तिताः ।

आदिपुराण में ही वर्णन आता है :-

गोत्र कर्म के फलस्वरुप जो कुल एवं जाति उल्लुखित हुई है, उसका सम्बन्ध माता के रजर्वीय से है ।

श्री कुन्द कुन्दकृत आचार्य भक्ति :-

देस कुलजाइसुद्धा वुसुद्धमणवयण कायसंजुता

तु हां पायपयोरुहमिह मंगलमत्थु में णिच्चं ।

धवला :- गोत्र कुलं वशंः सन्तानसामित्ये कोएर्थः ॥

गोम्मटसार कर्मकाण्ड में :-

" संताणकमेणगय जीवायरणस्य गोदमिदि सण्णा ।

उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं ।"

अर्थात सन्तान क्रम से चले आये जीव के आचरण की गोत्र संज्ञा है ।

अभी तक आगम के आलोक एवं जैनाचार्यों के एवं विद्वानों के मत में गोत्र की परिभाषा एवं व्याख्याऐं पढी पर लोक में इसके प्रचलन का क्या कारण है, एवं लोक में इसका महत्व क्यों है इस पर विचार करेगें ।

गोत्र और हूमड़ जाति

लेखिका कौशल्या पतंगिया

गोत्र हमारी संस्कृति का आधार स्तम्भ है। अटक बदलती रहती है परन्तु गोत्र हमारे कुल-वंश की पहचान बनाये रखने के लिये हमारे उद्‌भव समय से वर्तमान २००० वर्षो से प्रचलित है। वर्तमान में उद्यौगिकरण के कारण हूमड़ समाज भारत के अनेक प्रांतो के शहरो एवं विदेशो में जाकर बसा उन सबक पहचान का एक मात्र साधन गोत्र है।

हमारे गोत्र हूमड़ जाति के उद्‌भव के समय से है। विशेष सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियो में भगवान महावीर से चला आया मूल संघ वीर संवत ५६५ में विभाजन के बाद उस विभाजन में से एक संघ नन्दिसंघ जो आगे जाकर बलात्कार गण सरस्वती गच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुआ उसके आचार्य हूमाचार्य जो अर्हतबली के शिष्य थे उन्होने खेडबह्मा और उसके आसपास रायदेश में मूल रहने वाले लाड वंशीय क्षत्रियो जिन्होंने विशेष परिस्थितियों में वणिक धर्म स्वीकार कर लिया था उनके १८ कुलो के समूह का एक संगठन स्थापित किया जो हूमड़ कहलाया। हम इसके कुछ एतिहासिक प्रमाण का विवेचन करेगे।

मूल संघ विभाजन

भगवान महावीर की परम्परा में सभी मुनियो, आचार्यो का पंचवर्षीय सामूहिक प्रतिक्रमण करने की प्रथा प्रचलीत थी उसी प्रथा के अनुसार आचार्य अर्हतबली नेवीर संवत ५६५ विक्रम संवत ९५ इस. सन् ३८ में वे वेष्णा नदी तट पर महिमानगरी (सतारो महाराष्ट्र) में पंच वर्षीय प्रतिक्रमण के समय मुनि सम्मेलन का आयोजन किया और विशेष परिस्थितियो को मूल संघ का विभाजन किया देखिये।

अर्हत्‌वली ने पंच वर्षीय प्रतिक्रमण के समय मुनि सम्मेलन बुलाया देखिये

आरत्त संवत्सर पंचकारसाने युग प्रतिक्रमणम्
कुर्वन्योजन रात मात्र वर्ति मुनिजने समाजस्य ॥८७॥
अथ सोड़भदा युगान्ते कुर्वत् भगवान्युग प्रतिक्रमणम्
मुनिजन वृन्द मपच्छत्कि सर्वे त्यांगता यतः ॥८८॥

इन्द्रनन्दि श्रुतावतार से प्राचीन ग्रन्थ से

संघ भेद

भगवान महावीर के निर्माण के पशचात् उनका संघ निर्ग्रन्थ महाश्रमणा संघ के नाम से प्रसिद्ध रहा। लेकिन यही संघ आगे चलकर कितने ही संघों में विभाजित हो गया और मूलसंघ के अतिरिक्त यापनीय संघ, कूर्चक संघ, द्रविड़ संघ, काष्ठासंघ, माथुर संघ आदि नामों से जाना जाने लगा। इन्द्रनन्दि श्रुतावतार में लिखा है कि वर्धन पुण्डोपुरवासी आचार्य अर्हतबली प्रत्येक पांच वर्षो के अन्त में सौ योजन में बसने वाले मुनियों को युगप्रतिक्रमणा के लिये बुलाते थे। एक समय उन्होंने ऐसे ही प्रतिक्रमण के अवसर पर समागत मुनियों में से पूछा क्या सब आ गये। मुनियों ने उत्तर दिया - हाँ हम सब अपने संघ के साथ आ गये। इस उत्तर को सुनकर उन्हें लगा कि जैन धर्म अब गण पक्षपात के साथ ही रह सकेगा। अतः उन्होंने संघों की रचना की। जो मुनि गुफा से आये थे उनमें से किसी को नन्दि नाम दिया और उनको वीर जो अशोकवाट से आये थे। उनमें से कुछ को अपराजित और कुछ को देव नाम दिया। जो पंचस्तूप निवास से आये थे उनमें से कुछ को सेन नाम दिया और कुछ को भद्र नाम दिया। जो शाल्मली वृक्ष मूल से आये थे उनमें से किन्हीं को गुणाधर और किन्हीं को गुप्त।

जो खण्डकेसर वृक्ष के मूल से आये थे उनमें से कुछ को सिंह नाम दिया और किन्हीं को चन्द्र । इन्द्रनन्दि ने अपने कथन की पुष्टि में एक प्राचीन पद्य भी उद्धत किया है । इससे स्पष्ट है कि मूलसंघ से ही काष्ठासंघ, सेनसंघ, सिंह संघ और देवसंघ हुये ।

(१) आयातौ नन्दिवीरों प्रकट गिरि गुहा वासतो अशोक वाटा दे
वाश्चान्यो अपराविर्जित इति यतयो सेन भद्राहवयोच ।
पंच स्तूप्यातून गुप्तौ गुणधर वृषभ शाल्मली वृक्षमूलात ।
निर्यातौ सिंह चन्द्रौ पथित गुणगणौ केसरा त्खण्डा पूर्वात् ॥१६॥

(२) अर्हद्बली गुरुश्चक्रे संघ संघटन परम ।
सिंह संघो नन्दिसंदो सेन संघस्त यापरः ।
देव सघ इति स्पष्ट स्थान स्थिति विशेषतः ।

तत्थ कुल पजविह. पज्चथूहकुलं गुहावासीकुल सालमूलकुलं असोगवाडकुंल खण्डकंवरकुंर । कुल पाँच प्रकार का है। पद्यदप कुल, गुफावासी कुल, शालमूल कुल,अशांकवाट कुल ओर खणडकेशर कुल ।

कर्म अनुयोगद्वार सूत्र १३६ पु. १३ धवला

तत्थ कुलं पश्चविहं पश्च थूह कुलं
गुहा वासी कुलं सालमूलकुलं असोग वाड कुलं खण्डकेसर कुलं ।

कुल पाँच प्रकार का है - पश्चरतपकुल, गुफावासीकुल, शुक्लकुल, अशोक वाट कुल और खण्डक़ेशर कुल

कर्म अनुयोग द्वारा सूत्र १३६ पृ.१३ धवला

हम धवला आदि अनेक आगम ग्रन्थों में गोत्र, कुल वंश के प्रमाण देचुके है हमारे उद्‌भव के समय और हमारे उद्‌भव का सीधा सम्बन्ध स्थल-गिरनार, सजोत, अंकलेश्वर आदि से है देखिये

इन्द्र आचार्य इन्द्र नन्दिका " श्रुतावतार " ग्रंथ जो जैन समाज के इतिहास को उजागर करने वाला सबसे अधिक प्राचीन और प्रमाणित ग्रंथ है जैन इतिहास के सभी लेखको ने प्राचीन इतिहास के लेखन में पट्टावली आदि उल्लेखो द्वारा इतिहास लिखने में सहायता दी है । उस उपरोक्त श्रुतावतार के अनुसार संघो का नामकरण संस्कार गुफा वृक्ष आदि से किया उसी प्रकार गोत्र का भी नामकरण अपने अपने संघो के आचार्यो ने तत्वां ध्यान में हुआ ।

श्रुतावतार ग्रंथ में हमारे मूंल १८ गोत्रों में से सात गोत्र के नामों का उल्लेख आता है । जिसे गोत्र चार्ट में भी बताया गया है । वे गोत्र निम्न है ।

श्रुतावतार के अनुसार

संघो का नामकरण संस्कार गुफा वृक्ष आदि से किया उसी प्रकार गोत्र का भी नामकरण अपने अपने संघो के आचार्यो के तत्वधान में हुआ देखिये.......................

१.	अगस्ति गोत्र	अगस्ति वृक्ष के कारण
२.	खेरज्या गोत्र	खरे खादिर वृक्ष करण
३.	विज्जाणु	बीजक वृक्ष
४.	पंखाणु गोत्र	पंकज (कुसुम)
५.	पुष्कर गोत्र	पुष्कर
६.	अत्रस्थ्य गोत्र आश्वत्थ वृक्ष (पीपलवृक्ष)	
७.	गणेयगोत्र	गंगातट

हमारे गौत्र का नामकरण हमारे उद्भव के समय से है। गोत्र हमारी पहचान का एक मात्र उपाय है। हूमड़ दुनिया के किसीभी कोनेमें बसा होगा वह गौत्र से ही पहचाना जायेगा। हमारे अस्तित्व के सिवाय संस्कृति का मूल है। इस सदी के आरंभ में हमारे भट्टारको की प्रथा शिथिल होने के कारण हूमड़ समाज पर जाति बंधन ढीले होने लगे। इसी समय इस युग (सदी) प्रवर्तक आचार्य १०५ शांति सागरजी ने सजातीय का उपदेश देकर गौत्र प्रथा को आगमानुसार बताकर उनके संघ के आचार्यो को अन्य जाति से विवाह करनेवालो के यहाँ अहार गृहण न करने का आदेश दिया जिसे आजतक उनके संघ में पालन किया जाता है।

उपरोक्त गौत्र की मान्यता से आगम एवं व्यवहार से अन्तरजाति व्यवहार हूमड़ समाज की संस्कृति के विरुद्ध है।

वर्तमान मान्यता है कि हमारे गौत्र ब्राह्मणो, पुरोहित गोरजी महाराज ने उनके स्वार्थ के लिये देवी देवता ओ के नाम से बनाये है। यह मान्यता निरर्थक है। हमारे उद्भव के समय में ही जिनवाणी ताड पत्रो पर पहली बार लिखी जाने लगी जो परम्परा से तीर्थकरो की वाणी से सम्बन्ध रखती है। धवला जय धवला ग्रन्थो का निर्माण समय विक्रम की ८० से १८३ तक का है। जो हमारा उद्भव समय है। मूलसंघ विभाजन मे आपने देखा अलग २ विभाजित संघो के आचार्यो ने अपने संघ में विभिन्न जातियो को सम्मलित करके उस समय की प्रथानुसार वनस्पती, गुफा,वृक्ष, नदी के नाम से कुलो - गौत्रो की रचना की।

विक्रम की द्वितीय सदी में हूमड़ समाज के नाम एवं गोत्र के एतिहासिक प्रमाण :-

मूलसंध के विभाजन के बाद नन्दिसंध का आचार्य पद माधनन्दि को प्राप्त हुआ उनके शिष्य विहार प्रांत से भ्रमण करने विक्रम की प्रथम सदी के अन्त में गुजरात के रायदेश खेडब्रह्मा विहार करते आये और उन्होनेंने लाड क्षत्रियो जो वणिक हो गये थे उन्हें नन्दिसंध में सम्मलित किया और उसी समय हूमड़ नाम से हूमड़ जाति का उदभव हुआ।

निम्नलेख पुरातन ब्रह्मक्षेत्र नो प्राचीन अर्वाचित इतिहास लेखक गणपतिशंकर जयशंकर शास्त्री जिसे गुजरात सरकार के प्रकाशित "गुजरात नो प्राचीन सास्कृतिक इतिहास" भाग १ से १० में भी मान्यता दी है वह निम्न है।

राज्यमां जैन धर्मनो प्रचार करवा मांडयो. ते समये विहार सुह्म देशना यतियोनां गमन थयां तेमणे प्रचार कार्य सुंदर पार पाडवा मांडयुं गामे गामे तेमना विहार थावा मांडया तेमा पूर्वना लाट वैश्यो के जेओ खेडमां मने आस पासना गामोमां वसवाट करी हती तेमणे जैन दीक्षा स्वीकारी. अने लाट प्रदेश वाचक नामने स्वीकार्यु. अने सुह्मस्यो पाछलथी हुम्मड नामथी ओळखावा मांडया.

"सुह्मस्." शब्दनो अपभ्रंश हुमस्थ हुमंड हुंमड अने दुम्म ऐवुं नाम व्यवहारमां प्रचलित थयुं. अने दिगंबर मतना सिद्धांता कबूल राख्या. छतां असल संस्कृति जालवी लाट क्षत्रिययोनी संस्कृति वैश्योमां पण दीर्घकाल जळवायेली हती, तेवीज जैन दीक्षा लीधा पछी पण जळवायेली अत्यारे पण जणाई आवे छे.

खेटक ब्राह्मणोनुं पुरोहित पणु कायम राख्युं मंगल प्रसगोमां धर्मक्रियायो करावता रहे छे. विवाह लग्न जेवा अनेक मंगल प्रसगोमां क्षत्रियने छाजतो रिवाजो जाळव्यो छे. अने धणा खरा रीतरिवाजो पण असलना क्षत्रिय पणने घटता थोडा धणा रूपातंरे हजु पण प्रत्यक्ष थता रह्या छे।

गोत्र चार्ट उपरोक्त ग्रन्थो के आधार उपरान्त केन्द्र के पास ५००० मूर्ति लेख, २००० प्रशस्ति, ५०० शिलालेख आदि से संग्रह करके बनाया गया है जिसका विवरण निम्न है ।

(१) क्रम नं. २ में वर्तमान प्रचलित नाम
(२) क्रम नं. ३ में प्राचीन प्राकृत, संस्कृत प्राचीन नाम जो मूर्तिलेख, शिलालेख, प्रसरितयो से लिये गये है ।
(३) क्रम नं. ४ आगम ग्रन्थो में जिन गोत्र का उल्लेख है ।
(४) क्रम नं. ५ में वर्तमान में अलग २ प्रांत और भाषा में गोत्र के नाम प्रचलित है उनके स्थान पर नये सर्वमान्य प्रस्ताविक नाम अंकित किये है जिसमें मूल नाम का विशेष ध्यान रखा गया है जिसे महासंघ अगले अ. भा. हूमड़ सम्मेलन में मान्यता दे ऐसा अपेक्षा है ।
(५) क्रम नं. ५ से ९ अलग २ ग्रन्थो के आधार से गोत्रनाम

क्रम नं. १० गोत्र के साथ अटक का समावेश किया गया है स्मरण रहे अटक समय समय पर आवश्यक्तानुसार बदलती गई है परन्तु गोत्र कभी भी संयोगोमें नही बदलते है ।

क्रम नं. ११ दक्षिण भारत में विशेष अटक जो प्रचलित है उसे लिया गया है ।

क्रम नं. ११ मूल अटक के अलग २ प्रांतो में भाषाई नाम बताये है

विशेष मूल १८ गोत्र के सिवाय कुछ ६ से ९ गोत्र भी पाये जाते है परन्तु उनकी संख्या बहुत अल्प है जिसे आप अगले चार्ट में देखेगे ।

उपरोक्त चार्ट से प्रमाणित होता है कि हूमड़ समाज गत् २००० वर्षो से अपने गोत्र का अस्तित्व बनाये रखा है जिसका उसको गौरव है ।

धवला ग्रन्थ का रचना स्थल गिरनार

सजोत अंकलेश्वर है जो गुजरात के है उनका रचना समय देखिये :-

	हमारा उद्भव समय	नन्दिसंघ स्थापना	मूलसंघ विभाजन	धरसेन आचार्य धवला के उपदेशक समय	पुष्पदंत और भूतबली जिन्होने धवला संघ धवला ताड पत्र पर अंकित की का समय	
					पुष्पदंत	भूतबली
वीर संवत	५७१	५५०	५६५	५५०-६३३	५९३-६३३	५९३-६८३
विक्रम संवत	१०१	८०	९५	८०-१६३	१२३-१६३	१२३-२१३
इ. सन.	४५	२३	३८	६६-१८६	६६-१०६	६६-१५६

हूमड़ो के गोत्र को जानने निम्न आधार है :-

(१) हूमड़ पुराण (२) छोटे आशीष (३) बडे आशीषा (४) हूमड़ वंशावली (५) महाजन वंश मुक्तावली (६) यति राय लाल दानवीर माणकचंद जीवन चरित्र (७) मोडारामजी गोरजी का हस्तलिखीतासंग्रह (८) श्री जवाहरलाल बैद्य प्रतापगढ का हस्तलिखित (९) जीवराज दोशी फल्टन (१०) समय २ पर उपरोक्त ग्रन्थो के आधार प्रकाशित जैन मित्र आदि पत्र पत्रिकाओ में (११) जैन जाति महोदय - मुनि ज्ञान सुन्दरजी जैन गोत्र संग्रह - पं. हीरालाल हंसराज (१२) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान का ग्रन्थ क्रमांक २७०३३ (१३) श्री अभय जैन ग्रन्थालय हस्तलिखित क्रमांक ७७६१ (१४) नाहर ग्रन्थालय का हस्तलिखित व्याग गोरधन महाजनरी जात रो छन्द । (१५) भट्टारक सम्रदाय (१६) **JAINISUM IN RAJASTHAN** सभी ग्रन्थो में एक या दूसरे प्रकार हूमडो के गोत्र को मान्यता दी है।

एतिहासिक गोत्र कुण्ड

खेडब्रह्मा का प्राचीन भौगोलिक उल्लेख

वर्तमान गुजरात राज्य के हिम्मतनगर में खेडब्रह्मा नामक पौराणिक नगर है। जो इडर से ३५ की मी एवं अहमदाबाद से १५० की मी तथा हिंमतनगर से ६५ की. मी. पर स्थित है।

इस खेडब्रह्मा के आसपास के ग्राम्य विस्तार के समूह को रायदेश के नाम से जाना जातां है इसके उत्तरपूर्व में विजयनगर दक्षिण में इडर उत्तर में पोशिना पूर्व में खडगदेश पश्चिम में सत्तर तालुका है (विजयनगर, इडर, पोशिना, और खडगदेश राजस्थान, उदयपुर जिला ये सभी स्थल हूमडो के प्राचीन समय से वर्तमान में भी केन्द्र है)

खेडब्रह्मा हिरण्य गंगा नदी के किनारे बसा हुआ है। (इसका प्राचीन नाम हिरण्य गंगा) जो वर्तमान में हरगाव नदी खेडब्रह्मा से पश्चिम की और बढ़ती हे। आगे इसमें कोशम्बी एवं भीमा शंकरी नँदियो आकर मिल जाती है इसलिये यह क्षेत्र संगमतीर्थ प्रयाग की तरह पवित्र माना जाता है। यह नगर ईसा पूर्व कई शताब्दीयोसे अत्यन्त समृद्ध रहा। इसके आसपास का संपूर्ण क्षेत्र वैष्णव, शैव एवं जैन पुरातत्व सामग्री से परिपूर्ण है। इस भूमि में कोइ बडा उत्खन अथवा शोध कार्य नहीं हुआ उसके बाबजूद भी पूरातत्व सामग्री से यह परिसर समृद्ध हे। कला शिल्प वाणिज्य एवं ज्ञान का साक्ष्य है।

खेडब्रह्मा अत्यन्त प्राचीन पौराणिक नगर है इसका उल्लेख अर्थवेद में ऋचा १००२ में बह्मपुर के नामसे महाभारत पर्व ६,७,१०,१४ में एवं विष्णु पुराण एवं वैष्णव हरिवंश पुराण में मिलता है।

ब्रह्मपुराण में ब्रह्मक्षेत्र महात्तम में बह्मखेटक एक योजन बताया है उसमें पेटा तीर्थो के वर्णन, हरिण्या नदी, दक्षिण टेकरी पर क्षीरजादेवीतीर्थ और अबिकातीर्थ का उल्लेख है।

अथर्व वेद १००२ में भी इस नगर का बलपूरी नाम से उल्लेख है यथा "पुर यो ब्रह्मणोदेव यस्या पुरुष उच्चने " अर्थव वेदमें बह्मपुर के वर्णन जिन मुलो में अवतरित हुए है उनका उद्‌गम स्थान ऋग्वेद संहिता है। इस प्रकार खेडब्रह्मा नगर का अस्तित्व ऋग्वेद काल से चला आ रहा है।

ऋग्वेद कालकी प्राचीनता न्यूनतम ५००० वर्ष की मान्य होने से यह नगर कम से कम इतना पुराना तो मान्य किया जा सकता है इस प्रकार विश्व की प्राचीनतम जीवन्त बस्तियो में एक खेडब्रह्मा भी है। जैसा कि हम देख चुके है कि लाड़ क्षत्रियों का अस्तित्व ५००० वर्षो से है। इनमें जैन धर्म के सिवाय विष्णु धर्म को मानने वाले भी थे जो जैनियों के साथ वनिक हो गये थे उनका अस्तित्व वर्तमान में गुजरात एवं बम्बई (गुजरात के प्रवासी) में है।

इन लाड़ क्षत्रियों द्वारा अपने गौरव हेतु बाह्मण पुरोहितो की प्रेरणा से ब्रह्मा के महामन्दिर का निर्माण करवाया। मन्दिर के समक्ष ही कुल देवता की पूजार्थ जल प्राप्ति हेतु बह्मवापी तीर्थ की भी स्थापना की जिसे गौत्र कुण्ड कहा जाता है।

इस गोत्र कुण्ड में अपनी कुल देवियो की देव कुलिकाए निर्माण कर उनमें कुला पुरुष देवियों के प्रस्तर बिम्ब भी प्रतिष्ठित करवाये ।

जैन लाड क्षत्रियो ने नन्दीश्वर दीप की प्रतिकृति बावन जिनालय निर्मित करवाया (जो वर्तमान में देवपुर (डेरोल) में जीर्णोद्धार के बाद मौजुद है)

खेडब्रह्मा एवं हिरण्य गंगा के परिसर में अनेक जैन वेष्णव, शैव शक्ति मन्दिर के ध्वंसावशेष सम्मलित रुपसे इस जाति की यशोगाथा कह रहे है ।

"मंगल आशीष" के अनुरुप हूमड़ जाति हिरण्य गंगा नदी के उत्तर दिशा संभाग में निवास करती थी ।

इससे प्रमाणित होता है कि हूमड़ो के गोत्र उदभव के समय से है । जो अठांरह गोत्रो में विभक्त है। खेडब्रह्मा एवं निकटस्थ क्षेत्र में वर्तमान में २००० वर्षो से प्राचीन गौत्रकुम्ड विद्यमान है । इन गौत्रकुण्डो में हूमड़ जाति के अठारह जाति के अठारह गौत्रौं की अधिष्ठात्री देवियों के १८ देव कुलिकाएँ बनी हुई है । संस्कृत के अति प्राचीन ग्रन्थ ब्राह्मणोत्पति मार्तण्ड में खेडब्रह्मा के विषय में निम्न श्लोक प्राप्त होना है ।

गूर्जरं विषये रम्ये, ब्रह्मा खेटक चार्बुदा संज्ञक ।
पुरमस्ति महाद्दिव्य, दक्षिणे चार्बुदा चलता ॥
कुते ब्रह्मपुर नामा, त्रेता या त्रम्बकां ।
तदैव द्वापरै ख्यांत, कलौवे ब्रह्मा खेटक ॥
अस्ति तत्र महीपुण्या, हिरण्याख्या नदी शुभ ॥
तत्रैव सगम पुम्यौ, नदी द्वितीय संभवः ॥
ग्राम मध्ये निवसति, देवो वै पद्म संभवः ।
भार्या द्रेयेन संयुक्तो, तत्प्रासादस्य पूर्वतः ॥१८॥
वापिकास्ति महारभ्या तन्मध्ये, कुल देवता
यासा पूजन माचेण चेटिस्त फल लभ्यते ।

रमणीक गूर्जर प्रदेश में ब्रह्मा केड नामक नगर है, जो महा दिव्य होकर यह अर्बुदचल के दक्षिण में सतयुग में ब्रह्मपुर कलियुग में खोडब्रह्मा ब्रह्माखेटक नाम से प्रसिद्ध है । इस पूज्य भूमि पर हिरण्य और दो नदियों का संगम हौ ।

नगर के माध्य में पद्म संभव (ब्रह्मा) निवास करते है । इन दो पंक्तियों में भव्य मंदिर है । इस पद्म कुण्ड (वापिका) में हूमड़ो की कुल देवियाँ विद्यामान है । उपरोक्त कुण्ड (वापिका) वर्तमान में विद्यमान है । इस पद्म कुम्ड (वापिका) में हूमड़ो की कुल देवियाँ विद्यमान है । यह कुण्ड अभी भी विद्यमान हे । इस विशाल वापिका में अगाध जल है ।

वर्तमान में यहं गोत्र कुम्ड १००० वर्ष से भी प्राचीन होने से भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के आधीन है । यह तीन माल का प्राचीन शेली का कुण्ड (वावडी) है इसकी दूसरी माल में हूमडोके १८ कुल देवियो के कुलाए के विषय ९ पुरोहितो की कुल देवियों की कुलिकाएँ भी है । मूर्तियों आज से १०-१५ वर्ष पूर्व चोरी हो गयी है । कूलिकाए भी खुब जीर्ण है । गत् वर्ष ३० डिसेम्बर १९९७ के टाइम ओफ इन्डीया में इसके जीर्णोद्धार की आवश्यक्ता के लिये फोटो सहित प्रकाशित किया गया था गुजरात सरकार के पुरातत्व विभाग ने जीर्णोद्धार के लिये फंड नही होने से जीर्णाद्धार करने की असमर्थता बताइ है । महासंघ इस पर हूमड़ो का शीला लेख स्थापित करने की शर्त पर जीर्णोद्धार कराने के प्रश्न पर विचार कर रहा है ।

दि. ३० डिसेम्बर १९९७ का वर्णन इस ग्रन्थ में सलग्न है इसके सिवाय वर्तमान कुण्ड के भी विवरण हे । चित्र सहित इस भागमें दिये जा रहे है ।

क्रम	प्रांत	नाम	खरजेश्वर	उतेश्वर	भात्रेश्वर	मंत्रेश्वर	बुद्धेश्वर	रजियाणु	भीमेश्वर	कमलेश्वर	कारवेश्वर	गंगेश्वर	चान्देश्वर	पंखेश्वर	अम्बेश्वर	दुग्धेश्वर	कल्याणेश्वर	अगस्त	शंखेश्वर	आत्रय	ललितेश्वर	संधेश्वर	कमलेश्वर
			१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
१.	गुज	बेतालीस हूंमड़	१९६	१५२		१७८	२०७	१३२		१९		७	२३	४					६८				
२.	गुज	बेतालीस हूंमड़	१८२	१०७	५	१७६	९५	२४		३१			३५	४६									
३.	गुज	दाहोद	२७	३०	७	१२	१	१५	१८	५६		२	२	१९									
४.	गुज	रायदेश	६४	१७		२५	५१	५६		२४	२६	१४	८	१	१६				१०				
५.	गुज	इडर	६५	६०	८	३१	५	५	१९	२५	१	२०	८										
		Total	५३४	३६६	२०	४१२	३५९	२३२	३७	१५५	३६	४३	७६	७०	१६				७८				
		Percenage	२१.९४	१५.०४	०.८२	१६.९३	१४.७५	९.५३	१.५२	६.३७	१.४८	१.७७	३.१२	२.८८	०.६६				३.२०				
१.	महा	धूलिया	११	१०		१५	१३	३	१	५	१३	१६		२									
२.	महा	कुसुबा	१			३४		११				८											
३.	महा	खानदेश	९३	७९		४१	३९	५३	३९	८९	६१	९७		११									
४.	महा																						
५.	महा	बारामती	१४	२७		१७	२७	३२	१	२	६	४	५	८	२	१३							
६.	महा	मुंबई	१९२	३२०	४४	२०९	२७२	१८८	३०	१५४	२९	३२	२३	६९	११	८	२		२२				
७.	महा	Misc	१५०	२१७	२२	१६२	१७०	१४४	३०	१२५	५४	७३	१४	४५	६	११	३		१५				
		Total	३६१	६५३	६६	४८८	५२१	४३२	१०१	२७५	१६३	२३०	४२	१३५	१९	३२	५		३७				
		Percenage	१०.१४	१८.३४	१.८५	१३.७१	१४.६३	१२.१३	२.८४	७.७२	४.५८	६.४६	१.१८	३.७९	०.५३	०.९०	०.१४		१.०४				
१.	M.P.	इन्दौर	१३३	६७	५३	२७	३१	२०	४६	२२		२	५६	४४	१				४				
		Percenage	२१.२४	२२.५६	९.९६	५.०८	५.८३	३.७६	९.४०	४.१४		०.३८	१०.५३	८.२७	०.१९				०.७५				

क्रम	प्रांत	नाम	खरजेश्वर	उसेश्वर	भातेश्वर	मंत्रेश्वर	बुद्धेश्वर	रजियाणु	भीमेश्वर	कमलेश्वर	कारवेश्वर	गंगेश्वर	वाग्वेश्वर	पंखेश्वर	अम्बेश्वर	दुग्धेश्वर	कल्याणेश्वर	अगस्त	शंखेश्वर	आत्रस्य	ललितेश्वर	संघेश्वर	कमलेश्वर	बद्रीश्वर	नागेश्वर	अंकेश्वर
			१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१.	राज	बेतालीस हुंमड़	६१	५८	१२	२२	८	५	३२	१६	१		२४	२५												
२.	राज	उदयपुर	१११	१९५	२२		२४	२८	३८	३२	१४	३२	६३	६२	४२	१६										
३.	राज	खडगदेश	७७	६३	१९	६	७५	२८		१	२	५	१३			१४			२							
४.	राज	सागवाड़ा	३५	४३	४२	३	२८	१८	१०	१	१	१			२०		१		१७							
५.	राज	बासवाड़ा	३०	३६	२०	२३	१५	१३	१	२१	२३		२	२२	११		१									
६.	राज	बागीदौर	५	३०		३४	२०	४७		२८	१		७													
७.	राज	भीलूडा	६	५	१	१		४		१		४			४				२८							
८.	राज	धरियावद	४		२३	७		६१		८०	३४			३५												
९.	राज	घाटोल	३०	७७		५१	१	२	४	४५	३	१९	४	५१												
१०	राज	गढ़ी	१	६	६	४	१२			३	३			१३												
११	राज	कलिजंरा	३	७	२	४		६	७		५		१४	२	१०											
१२	राज	छाणी	१४	२२	५		२१	६																		
१३	राज	कोल्यारी	२९	९४					१३		४७	३०		६												
१४	राज	पलासिया	१४	४३	३	१			३	२				१												
१५	राज	नौगामा	३४		४२		३	१७																		
१६	राज	Misc	४१९	७११	२०४	१४७	१९७	२७५	९८	२४१	१५९	१०५	९९	१९८	१०१	३८	६	०	५२					४१	१७	२१
		Total	८७५	१३९०	३९९	३०३	४०४	५१०	२०६	४७१	२९३	१९६	१५६	४१५	१८८	६८	६		९९					४१	१७	२१
		Percenage	१४.४४	२२.९४	६.५९	५.००	६.६७	८.४२	३.४०	७.७७	४.८४	३.२४	२.५८	६.८५	३.१०	१.१२	०.१०		१.६३					०.६८	०.२८	०.३५

	क्रम प्रांत	नाम (प्रांतका)	खरजोश्वर	उरोश्वर	भात्रेश्वर	मंत्रेश्वर	बुद्धेश्वर	रजियाणु	भीमेश्वर	कमलेश्वर	कारवेश्वर	गंगेश्वर	वागेश्वर	पंखेश्वर	अम्बेश्वर	दुग्धेश्वर	कल्याणेश्वर	अगस्त	शंखेश्वर	आत्रेय	ललितेश्वर	संघेश्वर	कमलेश्वर	बद्रीश्वर	नागेश्वर	अंकेश्वर
			१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
संख्या कुल	१.	गुजरात	५३४	३६६	२०	४१२	३५९	२३२	३७	१५५	३६	४३	७६	७०	१६				७८							
	२.	राजस्थान	८७५	१३९०	३९९	३०३	४०४	५१०	२०६	४१७	२९३	१९६	१५६	४१५	१८८	६८	६		९९					४१	१७	२१
	३.	महाराष्ट्र	३६१	६५३	६६	४८८	५२१	५३२	१०१	२७५	१६३	२३०	४२	१३५	१९	३२	५		३७							
	४.	म.प्र.	११३	१०९	५३	२७	३१	२०	५०	२२		२	५६	४४	१				४							
		Total	१८८३	२५१८	५३८	१२३०	१३१५	११९४	३९४	९२३	४९२	४७१	३३०	६६४	२२४	१००	११		२१८					४१	१७	२१
		Percenage	१४.९६	२०.०१	४.२८	९.७७	१०.४५	९.४९	३.१३	७.३३	३.९१	३.७४	२.६२	५.२८	१.७८	०.७९	०.०९		१.७३					०.३३	०.१४	०.१[illegible]
%	१.	गुजरात	२१.९४	१५.०४	०.८२	१६.९३	१४.७५	९.५३	१.५२	६.३७	१.४८	१.७७	३.१२	२.८८	०.६६				३.२०							
	२.	राजस्थान	१४.४४	२२.९४	६.५९	५.००	६.६७	८.४२	३.४०	७.७७	४.८४	३.२४	२.५८	६.८५	३.१०	१.१२	०.१०		१.६३					०.६८	०.२८	०.३[illegible]
	३.	महाराष्ट्र	१०.१४	१८.३४	१.८५	१३.७१	१४.६३	१२.१३	२.८४	७.७२	४.५८	६.६४	१.१८	३.७९	०.५३	०.९०	०.१४		१.०४							
	४.	म.प्र.	२१.२४	२२.५६	९.९६	५.०८	५.८३	३.७६	९.४०	४.१४		०.३८	१०.५३	८.२८	०.१९				०.७५							

परम्परा उद्भव :-

'परम्परा' शब्द अपना विशेष महत्व रखता है और विश्वके कण-कणसे सम्बन्धित है। परम्पराका इतिहास लेखबद्ध करना वैसेही कठिन कार्य है, फिर श्रमण-परम्पराका इतिहास तो सर्वथा ही दुखह है। प्रसंगमें जहाँ 'परम्परा' शब्द सद्-आगम और सद्गुरुओंका बोधक है, वहाँ यह प्रमाणिकताका द्योतक भी है। परम्परागत आगम और गुरुओंको सर्वत्र प्रथम स्थान है। इसीलिए 'आचार्यगुरुभ्यो नमः' के स्थान पर 'परम्पराचार्यभ्यो नमः' का प्रचलन है। लोकमें आज भी यह परम्परा प्रचलित है। जैसे गृहस्थोंके विवाह आदि संस्कारों में परम्परा (गोत्रादि) का प्रश्न उठता है, वैसे ही मुनियो के संबंधमें भी उनकी गुरु-परम्पराका ज्ञान आवश्यक है।

जैनधर्म अपनी मौलिकता और वैज्ञानिकता के कारण अपने अस्तित्व को एक शाश्वत धर्म के रुप में अभिव्यक्ति दे रहा है

किसी भी देश, जाति तथा संस्कृति का इतिहास उसकी सामाजिक संघटना, धार्मिक विधि विधान एवं प्राचीन परम्परागत प्रचलित संस्कारों में परिलक्षित होता है। समाज स्वयं एक व्यवस्था है, जिसका आधार व्यक्ति के आचार-विचार हैं। विवेक पूर्ण विचारों से समाज का निर्माण होता है।

प्रत्येक संस्कृति, देश और जाति का अपना इतिहास होता है। इतिहास तत्थों का संकलन मात्र नहीं है, अपितु परिस्थितियों के परिपेक्ष्य में उत्थान और पतन, विकास और अवनति, जय और पराजय की पृष्ठ भूमि वस्तुतः धर्म का इतिहास भी विषयो का ही इतिहास होता है क्योंकि घर्म घार्मिको के उच्च नैतिक आचार और आदर्शो में ही परिलक्षित होता है व्यक्तिओ और धर्म के इतिहास का एक मात्र प्रयोजन वर्तमान और भावी पीढी को प्रेरणा देना होता है जिससे वह भी उन आचारो और आदर्शो को जीवन व्यहार का अभिन्न अंग बनाकर अपने जीवन को उस उच्च भूमिका तक पहुँचा सके।

प्रत्येक जाति की अपनी संस्कृति और अपनी विशेष परम्परा होती है। उस जाति विशेष की संस्कृति और परम्परा की इतिहास का रचना करना जैन संस्कृति के इतिहास में योगदान देना है।

हरिवंश पुराण का अध्यन ग्रन्थ लेखक श्री राममूर्ति चौधरी से :-

संस्कृति और मानव समाज के विविध क्रिया कलायों तथा उनके प्रेरक मूल्यों एवं मान्यताओ की संज्ञा को संस्कृति कहते है। एक युग की संस्कृति अनेक प्रकार से न्यूनाधिक मात्रा में आगे आने वाले समाज को प्रभावित करती है। राष्ट्र की युग विशेष की संस्कृति उस समय की स्वाभाविक रुप से समाहित रहती है। और वही परवर्ती कालमें स्वयुगीत संस्कृति के विविध पक्षों की उदभाषित करता रहता है। वास्तव में संस्कृति किसी देश या समाज जाति की वह निधि है जिसमें उस समाज की पूर्ववर्ती जनजीवन के विविध सांस्कृतिक आयाम निहित करती है। वह अपने युग की परम्परां गतिविधियो मूल्यों एवं आदर्शो का निर्देशन कराती है। हूमड़ जाति अति प्राचीन है इसके पूर्वजो का ५००० वर्षो से अधिक इतिहास है उसके लिये निम्न वाक्य योग्य है :-

Jainism is an important, fully developed and well established religious and cultural system, purely indigenous to India. It still retains certain most primitive conceptions, and is the oldest living representative of the ancient sramana current of Indian culture which was in its origin non vedic and probably non Aryan and even pre-aryan.

From :- Raligion and Culture of the Jain Pry Dr. Jaytihard Jain

सौजन्य :- श्री दीपचंद लालचंद फडे
श्री अरविंद दीपचंद फडे महावीर पथ, अकलूज. (महाराष्ट्र)

अध्यात्म प्रधान भारत :

भारत अध्यात्म की उर्वर भूमि है । यहां कें कण-कण में आत्मा निर्भर का मधुर संगीत है, तत्वदर्शन का रस है और धर्म का अंकुरण है । यहां की मिट्टी ने ऐसे नवरत्नों को प्रसव दिया है जो अध्यात्म के मूर्त रुप थे । उनके हृदय की हर धडकन अध्यात्म की धडकन थी । उनके ऊर्ध्व मुखी चिन्तन ने जीवन को समझाने का विशद दृष्टिकोण दिया। भोग में त्याग की बात कहीं और कमल की भांति निर्लेप जीवन जीने की कला सिखाई ।

वैदिक परम्परा के अनुसार चौबीस अवतारों ने इस अध्यात्म प्रधान धरा पर जन्म लिया है । बौद्ध परंपरा के अनुसार गैतम बुद्ध का बोधिसत्वों के रुप में पुनः पुनः यही आगमन हुआ है तथा जैन तीर्थकरों का सुविस्तृत इतिहास भी इसी आर्यावर्त के साथ जुड़ा है ।

जैन परम्परा और तीर्थकर :

जैन परंपरा में तीर्थकरों का स्थान सर्वोपरि होता है । नमस्कार महामंत्र में सिद्धों से पहले तीर्थकरों को नमस्कार किया गया है । तीर्थकर सूर्य की भांति ज्ञान रश्मियों से प्रकाशमान और अध्यात्म युग के अनन्य प्रतिनिधि होते हैं । चौबीस तीर्थकरों की क्रम व्यवस्था से अनुस्यूत होते हुए भी उनका विराट् व्यक्तित्त्व किसी तीर्थकर विशेष की परंपरा के साथ आबद्ध नहीं होता । मानवता के सद्यः उपकारी तीर्थकर होते हैं ।

परम्परा प्रवहमान सरिता का प्रवाह है । उसमें हर वर्तमान क्षण अतीत का आभारी होता है । वह ज्ञान, विज्ञान, कला, सभ्यता, संस्कृति, जीवन-पध्धति आदि गुणों को अतीत से प्राप्त करता है और स्व-स्वीकृत एवं सहजात गुण सत्व को भविष्य के चरणों में समर्पण कर अतीत में समाहित हो जाता है ।

आचार्य परम्परा के वाहक होते हैं । उनके उत्तरवर्ती क्रम में शिष्य सम्पदा आदि का पारम्परिक अनुदान होता है पर तीर्थकरों के क्रम में ऐसा नहीं होता । तीर्थकर स्वयं संबुद्ध साक्षात् द्रष्टा, ज्ञाता एवं स्वनिर्भर होते हैं अतः वे उपदेश विधि और व्यवस्था क्रम में किसी परंपरा के वाहक नहीं, अनुभूत सत्य के उद्‌धाटक होते हैं एवं धर्म तीर्थ के प्रवर्तक होते हैं ।

तीर्थकर ऋषभ :

भारत भूमि पर वर्तमान अवसर्पिणी काल में प्रथम तीर्थकर ऋषभनाथ थे । तीर्थकर ऋषभ अन्तिम कुलकर नाभि के पुत्र थे । वे मानवीय संस्कृति के आद्य सूत्रधार, प्रथम समाज व्यवस्थापक, प्रथम राजा, प्रथम मुनि, प्रथम भिक्षाचर, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम धर्म प्रवर्तक एवं प्रथम धर्म चक्रवर्ती थे ।

समाज व्यवस्थापक के रुप में ऋषभ ने असि, मसि, कृषि का विधान दिया । ब्राह्मी और सुन्दरी अपनी इन दोनों पुत्रियों को लिपि विद्या और अंक विद्या में कुशल बनाया । जैन मान्यता के अनुसार आज की सुप्रसिद्ध ब्राह्मी लिपि का नामकरण ऋषभ पुत्री ब्राह्मी के नाम पर हुआ है । प्रागैतिहासिक काल से अब तक अनेक भाषाएं ब्राह्मी लिपि में लिखी गई है ।

ऋषभ ने अपने पुत्र भरत को भी राजनीति का प्रशिक्षण देकर राज्य संचालन के योग्य बनाया । भरत प्रथम चक्रवर्ती बने । जैन मान्यतानुसार ऋषभ पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ । कई आधुनिक विद्धानों का भी इसमें समर्थन है ।

ऋषभ पुत्र भरत से दुष्यन्त पुत्र भरत बाद में हुए हैं । सुप्राचीनकाल में यहां भारत जाति निवास करती थी । इससे स्पष्ट है इस भूमि का भारत नाम दुष्यन्त पुत्र भरत से पहले ही हो गया था ।

समाज और राज्य की समुचित व्यवस्था करने सके पश्चात् ऋषभ मुनि बने . साधना में प्रवृत्त हुए । सर्वज्ञ बने।

सौजन्य :- श्री मथुराबाई व खुशालचंद गांधी मु. पो.बुधवार पेठ फल्टन (महाराष्ट्र)

उन्होंने धर्म तीर्थ प्रवर्तन किया । उत्तराध्ययन सूत्र में उल्लेख है -- "धम्माणं कासवो मुहं" कश्यप (ऋषभ) धर्म के मुख थे अर्थात् ऋषभ धर्म के आद्य प्रवर्तक थे ।

तीर्थंकर ऋषभ का तेजोमय व्यक्तित्व त्याग और तप का पूंजीभूत आचार्यों के काल का संक्षिप्त सिंहावलोकन रुप था . वे महाप्रभावशाली अध्यात्म पुरुष थे ।

वेदों और पुराणों में कई स्थलों पर ऋषभ का श्लाध्य पुरुष के रुप में उल्लेख हुआ है । भागवत पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने ऋषभदेव के रुप में आठवां अवतार धारण किया था । उनके पिता का नाम नाभि था और माता का नाम मरुदेवा था । भागवत पुराण का यह उल्लेख जैन मान्यता से कुछ अंशों में साम्य रखता है । अग्नि प्राण, वायु पुराण, स्कन्ध पुराण आदि कई पुराण ग्रंथों में ऋषभ प्रभु के उल्लेख के साथ पिता नाभि, माता मरुदेवा एवं उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत का भी उल्लेख है । ऋग्वेद और अथर्ववेद के मंत्रों में भी ऋषभदेव की स्तुति की गई है । वेदोंमें कई स्थानों पर केशी शब्द का प्रयोग हुआ है । केशी को वातरसना मुनियों में श्रेष्ठ माना है । जैन ग्रन्थ " त्रिषष्टीशलाका पुरुष चरित " में भी ऋषभ को केशी कहा गया है । वैदिक परम्परा और जैन परम्परा दोनों में ऋषभ को उत्तम पुरुष माना है । बौद्ध साहित्य में भी ऋषभ का उल्लेख है ।

प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के पश्चात् द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ, तृतीय तीर्थंकर सम्भव...........रामायण काल में बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ हुए हैं । अनन्त काल को इतिहास एवं बुद्धि की परिधि में नहीं बांधा जा सकता इसलिये ऋषभदेव के अनन्तर बीस तीर्थंकरों का काल इतिहास के शोध विद्वानों द्वारा प्रगैतिहासिक युग मान लिया गया है । जैन ग्रन्थों में प्रत्येक तीर्थंकर का इतिहास विस्तार से उपलब्ध है।

हूमड़ के पूर्वज लाड़ क्षत्रियों का उल्लेख सर्व प्रथम जैनियो के २० वे तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के समय से मिलता है जो पावागढ तीर्थ क्षेत्र से भगवान राम के समय लाड़ क्षत्रियो ने वहाँ से मोक्ष प्राप्त किया ।

इसका प्रसंग भगवान नेमीनाथ की निर्वाए भूमि गिरनार से जहाँ से लाड़ राज कुमारो ने निर्माणप्राप्त किया ।

वर्तमान जैन परम्परा और भगवान महावीर

वर्तमान जैन शासन की परम्परा का सीधा सम्बन्ध भगवान महावीर से है । भगवान महावीर के गौतम प्रमुख और १४ हजार साधु, चन्दन बाला प्रमुख ३६ हजार साध्विया । अनेक श्रावक, श्राविका, और श्रणिक - उदयन - चंचपधोन चंरक प्रमुख शाशक अनुयायी थे ।

बोद्ध धारा विदेश की और अधिक प्रवाहित हुई । और भारतमें विच्छिन्न प्रायः होकर समाप्त सी हो गई है । जैन धर्म २५०० से भी अधिक वर्षो से कुछ विशिष्ट क्षमताओ से भारत में महावीर का धर्म गौरव पूर्ण मस्तक उँचा किये हुअे है । उत्तरवर्ती आचार्यो ने महावीर की परम्परा को बचाये रखा । गणधरो ने गूंथा सूत्रागम का निर्माण किया । आचार्यो ने संरक्षण दिया । श्रुत संपदा को काल के क्रूर दुष्काल में विनष्ट होने से बचाया ।

पत्येक जाति की उसकी अपनी संस्कृति और विशेष परम्परा होती है । और उस जाति विशेष का इतिहास उसकी संस्कृति और परम्परा के तथ्यो का संकलन मात्र नही है । वस्तु परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य में उत्थान और पतन, विकास और अवनति, जय और पराजय की प्रत्येक भूमि वस्तुतः धर्म का इतिहास भी व्यक्तियों का ही इतिहास होता है ।

सौजन्य :- मे.स्पेक्ट्रा डायमंड 5, जीवराज निवास, ४०८, एला. बी. शास्त्री मार्ग कुर्ला, मुंबई (महाराष्ट्र)

हूमड़ जातिने मूलसंघ के विभाजन के समय नंदिसंघ को स्वीकार किया । उसी समय हमारे लाड़वंशीय क्षत्रियो के कूलो के १८ गोत्रो की स्थापना की गई और हमारे पूर्वजो ने उन गोत्रो को आगम की आज्ञा अनुसार स्वीकार किया । आज लगभग २००० वर्ष होने पर भी उपरोक्त गोत्र संस्कृति को बनायें रखा है ।

हमारी विशेष परंपरा का एक मात्र प्रयोजन वर्तमान और भावि पेढ़ी को प्रेरणा देना होताहै । जिससे वह भी उन आचारो और आदर्शो को जीवन व्यवहार का अभिन्न अंग बनाकर अपने जीवन को उस उच्च भूमिका तक पहोचाया सके ।

इसलिए जाति विशेष के परंपरा की इतिहास को रचना करना जैन संस्कृति के इतिहास में योगदान देना है ।

हूमडों की परम्परा

प्रत्येक जाति की विशेष परम्परा होती है इसका अर्थ यह नहीं की हम आगम की अन्य मान्यताओ या आचार्यो की उपेक्षा कर रहे है । भक्ति, ध्यान उपासना में किसी विशेष बिन्दु पर लक्ष रखा जाता है ।

हमारी परम्परागत् मान्यताओ का विस्तार से द्वितीय भाग में हम विवेचन करने जा रहे है उसकी बहुत संक्षेप में एक झलक -

(१) पूजा अभिषेक पद्धति :- हमारी पूजा अभिंषेक पद्धति आचार्य पूज्य पाद जो हमारे नन्दिसंघ के आचार्य थे उनका समय वि. संवत् ४७८-५३८ इसन् ४२१-४८१ है याने १५०० वर्ष से एक धारा चला आरहा है ।

(२) येत्र, तंत्र, मंत्र और ध्यान की विशेष परम्परा नंदिसंघ के आचार्य गुण नन्दि रचित 'ऋषिमंडल यंत्र पूजा से चला आया है जो इसवी सन् ४२६-४४२ में हुअे थे ।

हूमड़ जाति ने मूलसंघ के विभाजन के समय नंदिसंघ को स्वीकार किया । उसी समय हमारे लाडवंशीय क्षत्रियो के कुलोने १८ गोत्रो की स्थापना की गई और हमारे पूर्वजो ने उन गोत्रो को आगम की आज्ञा अनुसार स्वीकार किया । आज लगभग २००० वर्ष होने पर भी उपरोक्त गोत्र अस्तित्वमें है ।

विवाह संस्कार और गोत्र की मान्यता :-

उपरोक्त परम्परा के अनुसार हम गत् २००० वर्षो तक हम हमारे विवाह संस्कार को अपनी जाति तक रखते आये है जो आगम और हमारी परम्परा के अनुसार है ।

हमारी विशेष परम्परा का एक मात्र प्रयोजन वर्तमान और भावी पीढी को प्रेरणा देना है । जिससे वह भी उन आचारो और आदर्शो को जीवन व्यवहार का अभिन्न अंग बनाकर अपने जीवन को उस उच्च भूमिका तक पहुँचा सके ।

इस लिये जाति विशेष की परम्परा के इतिहास की रचना करना जैन संस्कृति के इतिहास में योगदान देना है ।

वर्तमान में हूमड़ समाज सभी धार्मिक मान्यताओ और परम्परा का आगम साहित्य आचार्य पूज्यपाद के समय से उपलब्ध है । और ५ वी सदी से वर्तमान में अधिकांश (८०%) हूमड़ समाज उसी पद्धति और परम्परा से पूजा अभिषेक करते है । परन्तु १७ वी सदी में भट्टारको के विरोध में एक छोटे हूमड़ समुदाय ने तेरापंथ

सौजन्य : ***श्री जयंतिलाल हिराचंद शाह*** ५/२ अजित्य कोलोनी रोड सतारा (महाराष्ट्र)

स्वीकार किया अतएवं धार्मिक परम्परा में हूमड़ इतिहास में आचार्य देवनन्दि पूज्यपाद का विशेष स्थान और योगदान है।

आचार्य देवनन्दि पूज्यपाद

जैन परम्परा में पूज्यपाद विक्रम संवत् ४७८-५३८ इ. सन् ४२१-४८१ सर्वप्रथम और सर्वप्रतिष्ठित नाम है आचार्य देवनन्दि पूज्यपाद का, जो 'पूज्यपाद' नाम से सर्वाधिक विख्यात हैं। जैन साहित्य के आदि प्रस्तवनाओं में आचार्य समन्तभद्र के उपरान्त देवनन्दि पूज्यपाद की सर्वमहान् आचार्य के रुप में गणना है। गद्य और पद्य दोनों में समान रुप से उच्चस्तरीय संस्कृत भाषा में अपने ग्रन्थों का प्रणयन करने वाले देवनन्दि पूज्यपाद कवि, वैयाकरण और दार्शनिक इन तीनों व्यक्तित्वों का एकत्र समवाय देवनन्दि पूज्यपादमें पाया जातां है।

आचार्य देवनन्दि अपने समय के प्रसिद्ध तपस्वी मुनि युंगव थे। वे साहित्य जगत के प्रकाशमान सूर्य थे जिनके आलोक के समस्त वाङ्मय आलोकित रहेगा। इनका दिक्षा नाम देवनन्दि था। बुद्धि की प्रखरता के कारण वे जिनेन्द्र बुद्धि कहलाये, और देवो द्वारा उनके चरण युगल पूजे गए थे, इस कारण वे लोक में पूज्यपाद नाम से ख्यात थे। जैसा कि श्रवण बेल गोल के शिलालेख (नं.४०) के निम्न पद्य से स्पष्ट है।

'यो देवनन्दि प्रथमाबिधानो बुद्धयमहत्या स जिनेन्द्रबुद्धिः।
श्री पूज्यपादोऽजनि देवताभिर्यत्पूजितं पादयुगं यदीयम् ॥१०॥'

-जै० शि० सं०, भा० १, पृ० २५।

श्रवणवेल गोलाके ही एक दूसरे शिलालेख न० १०८में भी उनका गुणगान करते हुए लिखा है - 'श्री पूज्यपादने धर्मराज्यका उद्धार किया था, इसीसे आप देवीके अधिपतिके द्वारा पूजे जाकर 'पूजायपाद' कहलाये। उनके वैदुष्य आदि गुणोंको आज भी उनके द्वारा रचे हुए शास्त्र बतला रहे है। आप जिनेन्द्रकी तरह विश्वबुद्धिके धारणकरके कामदेवको जीतनेवाले थे और ऊँचे दर्जे के कृतकृत्य भावको धारण किये हुए थे। इसीसे योगियोंने आपको 'जिनेन्द्रबुद्धि' ठीक ही कहा था।'

'श्री पूज्यपादो धृतधर्मराज्यस्ततो सुराधीश्वर पूज्यपादः।
यदीयवैदुष्यगुणानिदानी वदन्ति शास्त्राणि तदुध्दृतानि ॥१५॥'
धृतविश्वबुद्धिरयमत्र योगिभिः कृतकृत्यभावमनुबिभ्रदुच्चकै :।
जिनवद् बभूव यदनङ्गचापहृत स जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधुवर्णितः ॥१६॥

जै० शि० सं०, भा० १, पृ० २११।

आदिपुराणके रचयिता आचार्य जिनसनने इन्हें कवियोममें तीर्थकृत लिखा है —

कवीनां तीर्थकृद्वेवः किं तरां तत्र वर्ण्यते।
विदुषां वाङ्मलध्वसि तीर्थ यस्य वचोमयम् ॥ आदिपुराण, १।५२।

जो कवियोंमें तीर्थकरके समान थे, अथवा जिन्होंने कवियोंका पथप्रदर्शन करनेके लिये लक्षणग्रन्थकी रचना की था और जिनका वचनरुपी तीर्थ विद्वानोके शब्दसम्बन्धी दोषोंको नष्ट करनेवाला है, ऐसे उन देवनन्दि आचार्यका कौन वर्णन कर सकता है।

ज्ञानवर्णवके कर्ता आचार्य शुभचन्द्रने इनकी प्रतिभा और वैशिष्ठ्यका निरुपण करते हुए स्मरण किया है

सौजन्य : चंदुलाल तलकचंद शाह ५/२/१८ अजित्य कोलोनी रोड, सतारा (महाराष्ट्र)

आपकुर्वन्ति यद्वाचः कायवाक्चित्तसम्बवम् ।
कलङ्कमङ्गिनां सोऽयं देवनन्दि नमस्यते ॥

जिनकी सास्त्रपद्धति प्राणियोंके शरीर, वचन और चित्तके सभी प्रकारके मलको दूर करनेमें समर्थ है, उन देवनन्दि आचार्यको मैं प्रणाम करता हूँ ।

आचार्य देवनन्दि-पूज्यापादका स्मरण हरिवंशपुराणके रचियता जिनसेन प्रथमने भी किया है । उन्होंने लिखा है -

इन्द्रचन्द्रार्कजैनेन्द्रव्याडिव्याकरणेक्षिणः ।
दोवस्य देववन्द्यस्य न वन्द्यन्ते गिरः कथम् ॥

अर्थात् जो इन्द्र, चन्द्र, अर्क और जैनेन्द्र व्याकरणका अवलोकन करने वाली है, ऐसी देववन्द्य देवनन्दि आचार्यकी वाणी क्यों नही वन्दनीय है ।

इससे स्पष्ट है कि आचार्य देवनन्दि प्रसिद्ध वैयाकरण और दार्शनिक विद्वान थे और विद्वन्मान्य। इनके सम्बन्धमें आचार्य गुणनन्दिने इनके व्याकरण सूत्रोंका आधार लेकर जैनेन्द प्रक्रियामें मंगलाचरण करते हुए लिखा है -

नमः श्रीपूज्यपादाय लक्षणं यदुपक्रमम् ।
यदेवात्र तदन्यत्र यन्नात्रास्ति न तत्क्वचित् ॥

जिन्होंने लक्षणाशास्त्रकी रचना की है, मैं उन आचार्य पूज्यपादको प्रणाम करता हूँ । उनके लक्षणशास्त्रकी महत्ता इसीसे स्पष्ट है कि जो इसमें है, वह अन्यत्र भी है और जो इसमें नहीं है, वह अन्यत्र भी नहीं है ।

उनके साहित्यकी यह स्तुति-परम्परा धनंजय, वादिराज आदि प्रमुख आचार्यों द्वारा भी अनुभूति की गई । पूज्यापादको ज्ञानगरिमा और महत्ताका उल्लेख उक्त स्तुतियों में विस्तुत रुपसे आया है ।

उनसे स्पष्ट है कि देवनन्दि-पूज्यपाद कवि और दार्शनिक विद्वान्के रुपमें ख्यात है ।

जीवन-परिचय

इनकी जीवन-परिचय चन्द्रय्य कविके 'पूज्यपादचरिते' और देवचन्द्रके 'राजावलिकथे' नामक ग्रन्थों में उपलब्ध है । श्रवणबेलगोलाके शिलालेखोंमें इनके नामोंके सम्बन्धमें उल्लेख मिलते है । इन्हें बुद्धिकी प्रखरताके कारण 'जिनेन्द्रबुद्धि' और देवोंके द्वारा चरणोंको पूजा किये जानेके कारण 'पूज्यपाद' कहा गया है ।

यो देवनन्दि प्रथमाभिधानो बुद्धया महत्या स जिनेन्द्रहबुद्धिः ।
श्री पूज्यपादोऽजनि देवताभियत्पूजितं पादयुगं यदीयं ।.
जैनेन्द्रे निज शब्द भोगमतुलं सर्व्वार्थसिद्धिः परा
सिद्धान्ते निपुणत्वमुद्धकवितां जैनाभिषेकः स्वकः ।
छन्दस्सूक्ष्मधियं समाधिरातक-स्वास्थयं यदीयं विदा-
माख्यातीह स पूज्यापाद-मुनिपः पूज्यो मुनीनां गणैः ॥

अर्थात् इनका मूलनाम देवनन्दि था । किन्तु यो बुद्धिकी महत्ता के कारण जिनेन्द्रबुद्धि और देवों द्वारा पूजित होनेसे पूज्यपाद कहलाये थे । पूज्यपादने जैनेन्द्र व्याकरण, सर्वार्थसिद्धि, जैन अभिषेक, समाधिरातक आदि ग्रन्थों की रचना की है ।

सौजन्य : श्री कान्तिलाल मगनलाल दोशी 4C3 सिविल होस्पिटल रोड,

शिलालेख नं० १०५ से भी उक्त तथ्य पुष्ट होता है।

प्रगम्यधायिगुरुणा किल दोवनन्दी बुद्धया पुनर्विपुलया स जिनेन्द्रबुद्धिः ।

श्रीपूज्यपाद इति चैष बुधैः प्रचख्ये यत्पूजितः पदयुगे वनदेवताभिः ॥

पूज्यपाद और जिनेन्द्रबुद्धि इन दोनों नामोंकी सार्थकता अभिषेक नं० १०८ में भी बतायी है।

इनके पिताका नाम माधवभट्ट और माताका नाम श्रीदेवी बतलाया जाता है। ये कर्नाटकके 'कोले' नामक ग्रामके निवासी थे और ब्राह्मण कुलके भूषण थे। कहा जाता है कि बचपनमें ही इन्होने नाग द्वारा निगले गये मेढककी तड़पन विरक्त हो दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली थी। पूज्यपादचरिते में इनके जीवनका विस्तृत परिचय भी प्राप्त होता है तथा पूज्यपाद किस संघके आचार्य थे, यह विचारणीय है। "राजावलिकथे" से ये नन्दिसंघके आचार्य सिद्ध होते हैं। शुभचन्द्राचार्यने अपने पाण्डवपुराणमें अपनी गुर्वावलिका उल्लेख करते हुए बताया है -

"श्रीमूलसंघेऽजनि नन्दिसंघस्तस्मिन् बलात्कारगणोऽडतिरम्यः ।

तत्राभवत्पूर्वपदांशवेदी श्रीमाधनन्दी नरदेववन्द्यः ॥"

अर्थात् नन्दिसंघ, बलात्कारगण मूलसंघके अन्तर्गत है। इसमें पूर्वोके एक देश ज्ञाता और मनुष्य एवं देवोसे पूजनीय माधनन्दि आचार्य हुए।

माधनन्दिके बाद जिनचन्द्र, पद्मनन्दि, उमास्वामी, लोहाचार्य, यशःकीर्ति, यशोनन्दि और देवनन्दिके नाम दिये गये है। ये सभी नाम क्रमसे नन्दिसंघकी पट्टावलीमें भी मिलते है। आगे इसी गुर्वावलिमें ग्यारहवें गुणनन्दिके बाद बारहवे वज्रनन्दिका नाम आया है, पर नन्दिसंघकी पट्टावलिमें ग्यारहवें जयनन्दि और बारहवें गुणनन्दिके नाम आते है। इसके पश्चात और पूर्वकी आचार्यपरम्परा गुर्वावलि और पट्टावलिमें प्रायः तुल्य है। अतएव संक्षेपमें यह माना जा सकता है कि पूज्यापाद मूलसंघके अन्तर्गत नन्दिसंघ बलात्कारगणके प्ट्टाधीश थे। अन्य प्रमाणों से भी विदित होता है कि इनका गच्छ सरस्वती था और आचार्य कुन्दकुन्द एवं गृद्धपुच्छाकी परम्परामें हुए है।

इससे प्रमाणित होता है कि विक्रमसंवत् ४७८ (इसवी ४२१) में नन्दिसंघ -सरस्वतीगच्छ बलात्कार गण अस्तित्वमें था।

२१८. तीर्थकर महावीर और उनकी आचार्य पुरम्परा के अनुसार भी पूज्यपाद मूलसंघ सरस्वती गच्छ और बलात्कार गण के पट्टाधीश थे।

पूज्यापादके पिता माधवभट्टने अपनी पत्नी श्रीदेवी, के आग्रह से जैन धर्म स्वीकार कर लिया था। श्रीदेवीके भाईका नाम पाणिनि था। उससे भी उन्होंने जैन धर्म स्वीकार कर लेनेका अनुरोध किया, पर प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे वह जैन न होकर मुडीकुण्डग्राममें वैष्णव संन्यासी हो गया। पूज्यापादकी कमलिनी नामक छोटी बहन था और इसका विवाह गुणभट्टके साथ हुआ, जिससे गुणभट्टको नागार्जुन नामक पुत्र लाभ हुआ।

एक दिन पूज्यपाद अपनी वाटिकामें विचरण कर रहे थे कि उनकी दृष्टि साँपके मुँहमें फँसे हुए मेढकपर पड़ो। इससे उन्हें विरक्ति हो गयी। प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि अपना व्याकरण ग्रन्थ रच रहे थे। वह पुरान हा पाया था, कि उन्हें अपना मरण काल निकट दिखालाई पड़ा और पूज्यपादसे अनुरोध किया कि तुम इस अपूर्ण ग्रन्थको पूर्ण कर दो। उन्होने उसे पूर्ण करना स्वीकार कर लिया।

सौजन्य :श्री ऋजकुमार व रविंद्र धन्यकुमार दोशी खटावकर

७५७/५८ सदीशिव पेठ, जुनी भाजी मंडई, सतारा (महाराष्ट्र)

इसके पश्चात उन्होने पाणिनि-व्याकरणको पूर्ण कर दिया । पाणिनि-व्याकरणके पूर्ण करनेके पहले पूज्यपादने जैनेन्द्र व्याकरण अर्हदप्रतिष्ठावक्षण और वैदिक ज्योतिषके ग्रन्थ लिखे थे ।

रचनाएँ

पूज्यपाद आचार्य द्वारा लिखित अबतक निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं -

१. दशभक्ति २. जन्माभिषेक ३. तत्त्वार्थवृत्ति (सर्वार्थसिद्धि) ४. समाधितन्त्र ५. इष्टोपदेश

६. जैनेन्द्रव्याकरण ७. सिद्धिप्रिय-स्तोत्र

१. ***दशभक्ति*** - जैनागममें भक्तिके द्वादश भेद हैं (१) सिद्ध-भक्ति (२) श्रुत-भक्ति (३) चार्त्र-भक्ति (४) योगि-भक्ति (५) आचार्य-भक्ति (६) गुरुभक्ति (७) तीर्थङ्कर-भक्ति (८) शान्ति-भक्ति (९) समाधि-भक्ति (१०) निर्वाण-भक्ति (११) नन्दीश्वर-भक्ति और (१२) चैत्य-भक्ति । पूज्यापाद स्वामीकी संस्कृतमें सिद्ध-भक्ति, श्रुत-भक्ति, चारित्र-भक्ति, योगि-भक्ति, निर्वाण-भक्ति और नन्दीश्वर-भक्ति ये सात ही भक्तियाँ उपलब्ध हैं । काव्यकी दृष्टिसे ये भक्तियाँ बडी ही सरस और गम्भीर हैं । सर्वप्रथम नौ पद्योंमें सिद्ध-भक्तिकी रचना की गयी है ।

२. ***जन्माभिषेक*** - श्रवणबेलगोलाके अभिलेखोमें पूज्यापादकी कृतियोंमें जन्माभिषेकका भी निर्देश आया है ।

वर्तमानमें एक जन्माभिषेक मुद्रित उपलब्ध है । इसे पूज्यापाद द्वारा रचित होना चाहिए । रचना पौढ़ और प्रवाहमय है ।

१. जैन शिलालेख-संग्रह, प्रथम भाग, अभिलेख संख्या ४०, ५०,५५, पद्य-११

अधिकांश हूमडो द्वारा वर्तमान में जो पंचामृत अभिषेक किया जाता है वह मूल पुण्यपाद काबनाया हुआ है अभी का हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध है और अभी के आधार पर आवृत्ति अभिषेक भी अपलब्ध है पूज्य गणिती द्वारा हिन्दी में सुन्दर अनुवाद से अपलब्ध है ।

३. ***तत्वार्थवृत्ति***- पूज्यापादकी यह महनीय कृति है । तत्वार्थसीत्र पर संघमें लिखी गयी यह मद्यम परिमाणकी विशद वृत्ति है । इसमें सूत्रानुसारी सिद्धान्तके प्रतिपादनके साथ दार्शनिक विवेचन भी है । इस तत्वार्थवृत्तिको सर्वार्थसिद्धि भी कहा गया है । दृत्तिके अन्तमें लिखा है -

स्वर्गपर्गसुखमाप्नुमनोभिराये
जैनेन्द्रशासनवरामृतसारभूता ।
सर्वार्थसिद्धिरिति सद्भिरुपात्तनामा
तत्वार्थवृत्तिरनिशं मनसा प्रधार्या ॥

जो आर्य स्वर्ग और मोक्ष सुखके इच्छुक हैं वे जिनेन्द्रशासनरुपी श्रेष्ठ अमृतसे भरी सारभूत और सत्पुरुषों द्वारा दत्त 'सर्वार्थसिद्धि' इस नामसे प्रख्यात इस तत्त्वार्थवृत्तिको निरन्तर मनोयोगपूर्वक अवधारण करें ।

सौजन्य : डॉ अनिल हीराचंद शाह
५७७ सदर बाजार, गोरेगाँव रोड
सतारा (महाराष्ट्र)

इस वृत्तिमें तत्त्वार्थसूत्रके प्रत्येक सूत्र और उसके प्रत्येक पदका निर्वचन, व्वेचन एवं शंका-समाधानपूर्वक व्याख्यान किया गया है। टीकाग्रन्थ होनेपर भी इसमें मौलिकता अक्षुण्ण है।

४. ***समाधितन्त्र*** - इस ग्रन्थका दूसरा नाम समाधिशतक है। इसमें १०५ पद्य हैं। अध्यात्मविषयका बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है।

५. **इष्टोपदेश** - इस आध्यात्मकाव्यमें इष्ट - आत्माके स्वरुपका परिचय प्रस्तुत किया गया है। ५१ पद्योंमें पूज्यापादने अध्यात्मसागरको गागरमें भर देनेकी कहावतको चरितार्थ किया है।

६. ***जैनेन्द्र व्याकरण*** - श्रवणबेलगोलाके अभिलेखों एवं महाकवि धनंजयके नाममालाके निर्देशसे जैनेन्द्र व्याकरणके रचयिता पूज्यपाद सिद्ध होते हैं। गुण रत्नमहोदधिके कर्ता वर्धमान और हेमशब्दानुशासन के लघुन्यासरचायता कनकप्रभ भी जैनेन्द्र व्याकरणके पूचयिताका नाम देवनन्दि बताते है।

अभिलेखों से जैनेन्द्रन्यासके रचय्ता भी पूज्यपाद अवगत होते है। पर यह ग्रन्थ अभी तक अनुपलब्ध है।

जैनेन्द्र व्याकरणके दो सूत्रपाठ उपलब्ध है एकमें तीन सहस्त्र सूत्र है, और दूसरेमें लगभग तीन हजार सात सै। पंडित नाथूरामजी प्रेमीने यह निष्कर्ष निकाला है कि देवनन्दि या पूज्यापादका बनाया हुआ सूत्रपाठ वही है, जिसपर अभयनन्दिने अपनी वृत्ति लिखी है।

जैनेन्द्र व्याकरणमें पाँच अध्याय हैं और प्रत्येक अध्यायमें चार-चार पाद है। इसका पहला सूत्र महत्वपूर्ण है। इसमें 'सुद्धिरनेकान्तात्' सूत्रसे समस्त शब्दोंका साधुत्व अनेकान्तद्वारा स्वीकार किया है, क्योंकि शब्दमें नित्यत्व, अनित्यत्व, उभयत्व, अनुभयत्व आदि विभिन्न धर्म रहते है। इन नाना धर्मोसे विशिष्ट धर्मीरुप शब्दकी सिद्धि अनेकान्तसे ही सम्भव है। एकान्तसिद्धान्तसे अनेकधर्मविशिष्ट शब्दोंका साधुत्व नहीं बतलाया जा सकता। यहाँ अनेकान्तके अन्तर्गत लोकप्रवृत्तिको भी मान्यता दी है। लोकप्रसिद्धिपर आश्रित शब्द व्यवहार भी मान्य है।

सिद्धिप्रियस्तोत्र

इस स्तोत्रमें २६ पद्य है अैर चतुर्वशति तीर्थकरों की स्तुति की गयी है। रचना प्रौढ़ और प्रवाहयुक्त है। कवि वर्धमानस्वामीकी स्तुति करता हुा कहता है -

श्री वर्धमानवचसा परमाकरेण
रत्नत्रयोत्तमनिधेः परमाकरेण।
कुर्वन्ति यानि मुनयोऽजनता हि तानि
वृत्तानि सन्तु सततं जनताहितानि ॥

यहाँ यमकका प्रयोग कर कविने वर्धमानस्वामीका महत्व प्रदर्शन किया है। 'जनताहितानि' पद विशेषरुपसे विचारणीय है। वस्तुतः तीर्थकर जननायक होते है और वे जनताका कल्याण करनेके लिये सर्वथा प्रयत्नशील रहते है। इन प्रमुख ग्रन्थोके अतिरिक्त पूज्यपादके वैद्यक सम्बन्धी प्रयोग भी उपलब्ध हैं। जैनसिद्धान्तभवन आरासे वैद्यसागसंग्रह नामक ग्रन्थमें कतिपय प्रयोग प्रकाशित है। छन्दशास्त्र सम्बन्धी भी इनका कोई ग्रन्थ रहा है, जो उपलब्ध नहीं है।

सौजन्य : डॉ विजयकुमार हीराचंद शाह म्हसवड ५७७ सदर बाजार, गोरेगाँव, सतारा (महाराष्ट्र)

देवनन्दि-पूज्यपादका वैदुष्य काव्यप्रतिभा

जीवन और जगत के रहस्योंकी व्याख्या करते हुए मानवीय व्यापारके प्रेरक प्रयोजनें और उसके उत्तरदायित्वकी सांगोपांग विवेचन पूज्यापादके ग्रन्थोका मूल विषय है । व्यक्तिगत जीवनमें कवि आत्मसंयम और आत्मशुद्धि पर बल देता है । ध्यान, पूजा, प्रार्थना एवं भक्तिको उदात्त जीवनकी भूमिका के लिये आवश्यक समझता है । आचार्य पूज्यपादकी कवितामें काव्यतत्वकी अपेक्षा दर्शन और अध्यात्मतत्व अधिक मुखर है । श्रृङ्गरिक भावनाके अभावमें भी भक्तिरसका शीतल जल मन और हदय दोनोंको अपूर्व शान्ति प्रदान करने की क्षमता रखता है । शब्द विषयानुसार केमल है, कभी कभी एक ही पद्यमें ध्वनिका परिवर्तन भी पाया जाता है । वस्तुतः अनुरागको ही पूज्यपादने भक्ति कहा है और यह अनुराग मोहका रुपान्तर है । पर वीतरागके प्रति किया गया अनुराग मोहकी कोटिमें नहीं आता है । मोह स्वार्थपूर्ण होता है और भक्तका अनुराग निःस्वार्थ । वीतरागीसे अनुराग करनेका अर्थ है, तदरुप होनेकी प्रबल आकाक्षाका उदित होना । अतएव पूज्यपादने सिद्धभक्तिमें सिद्धरुप होनेकी प्रक्रिया प्रदर्शित की है ।

अपनी इस विद्धता, ज्ञान और प्रतिभा के कारण आचार्य देवनन्दि न केवल अपने शिष्यों और अपनी आम्नाय के श्रावको के, अपितु जनसाधारण और अपने समकालीन अनेक शासकों और सामन्तों के श्रद्धास्पद भी बने । दक्षिण कर्णाटक में तलकाड में पश्चिमी गंगवंशीय सम्राट अविनीत कोंगिणी ने इन आचार्य देवनन्दि को अपने पुत्र एवं युवराज दुर्वनीत की शिक्षा का भार सौंपा था । अपने पिता के उपरान्त सम्राट बन जाने पर भी दुर्विनीत का आचार्य देवनन्दि से शिष्य-गुरु सम्बन्ध बना रहा । कहा जाता है कि पश्चिमी गंगवंशीय सम्राटो की राजधानी तलकाड के निकट इन आचार्यने कदाचित्त अपने किस्म का पहला, एक बड़ा विद्याकेन्द्र स्थापित किया था जिसके वह प्रधान थे । इन सन्त विद्वान देवनन्दि को अनेक चमत्कारी शक्तियों का धारक भा बताया जाता है और यह आज भी अपनी कृतियों के कारण बड़े सम्मान की दृष्टि से देखे जाते है । .

संस्कृति संरक्षक आचार्य गुणनन्दि

वि. स. ४९३-४९९ इ. ४२६-४४२ (क्रम १२)

आचार्य गुणनन्दि नन्दिसंघ के आचार्य पूज्यपाद शिष्य थे । आचार्य पूज्यपाद ने सर्वप्रथम संस्कृत में अभिषेक पूजाविधी आदि की रचना करके संरकृत भाषा की परम्परा प्रारम्भ की । उसीके अनुसंघान में सर्वप्रथम ऋषीमंडल स्त्रोत एवं विधान की रचना की ।

यह स्त्रोत एवं विधान हूमड़ो की १५०० वर्षो की धार्मिक संरकृति, श्रद्धा, आराधना, भक्ति, ध्यान का मुख्य साधन रहा है ।

इसमें मंत्र, तंत्र, यंत्र, ध्यान, आराधना, भक्ति का समावेश होता है ....।

कुच लोगोकी मान्यता है कि भट्टारको ने मंत्र, तंत्र, यंत्र आदि का प्रारम्भ और उपयोग प्रचार प्रसार किया परन्तु उनके उद्‌भव के ८०० वर्ष पूर्व आचार्य गुणनन्दि का ऋषिमंडल स्त्रोत्र एवं विधान इस का खण्डन करता है । आगम ग्रन्थ से हम चर्चा के पूर्व एतिहासिक प्रमाण डुगरपुर के पास हूंमडो के प्रसिद्ध प्राचीन नगर, आंतरी में संवत् ८०० का ११½ फीट व्यास का पत्थर का ऋषिमंडल यंत्र है ऋषिमंडल यंत्र का एक विशेष लेख इसी ग्रन्थ में अलग से प्रकाशित किया जा राहा है ।

सौजन्य : मे. जे. के. इन्जीनीयरीग (डायमंड वकर्स)
४०८, जीवराज निवास, बहादुर शास्त्री मार्ग, कुर्ला (महाराष्ट्र)

आचार्य शुभचन्द्र और उनका ज्ञानार्णव

आ. शुभचन्द्र एक महान दिगम्बराचार्य हुए है। उन्होंने अपने त्याग और तप से संसार की असारता को बहुत पीछे धकेल कर आत्मतत्व को प्राप्त कर महा-निर्वाण प्राप्त किया है।

आचार्य विश्वभूषण कृत भक्तामर की भूमिका में उक्त आचार्य शुभचन्द्र की एक कथा मिलती है। तदनुसार, ग्यारहवी शताब्दि के आचार्य शुभचन्द्र का जन्म उज्जैन के राजा सिंहल की रानी मृगावती के उदर से हुआ। ये युगलिया भाई थे-दूसरे भाई का नाम भर्तृहरि। इन्हें वैराग्य कैसे हुआ-इसके बारे में जब हम आगे बढ़ते है तो संसार की असारता और राज्यलिप्सा का एक नंग नाच हमें दृष्टगत होता है। कथानक इस प्रकार है :-

राजा सिंह उस वक्त उज्जैन के शासक थे। इनके कोई सन्तान नहीं थी। निःसन्तान होने का इन्हें बहुत दुख था। एक दिन वनक्रीडा को ये जंगल में गए थे तो लौटते समय इन्हें एक मुंज (एक प्रकार की धास जिसकी प्रायः रस्सी, बाण, आदि बनाये जाते है) के झुण्ड में एक बालक अंगूठा चूसते हुए दिखा। तत्काल उसे उठाया और महल में आकर रानी की गोद में रख दिया। गूढ गर्भ की घोषणा एवं पुत्र-जन्म की चर्चा सब जगह फैल गई। पुत्र जन्मोत्सव मनाया गया । इसका नाम रखा गया 'मुंज'

कुछ समयोपरान्त रानी ने गर्भधारण किया और समय आने पर एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया सिंहल। युवावस्था में सिंहल का विवाह मृगावती नाम की राजकुमारी से हुआ। इस मृगावती रानी ने समय पाकर युगल पुत्रों को जन्म दिया जिनमें ज्येष्ठ-शुभचन्द्र तथा छोटे भर्तृहरि हुए।

राजकुमार शुभचन्द्र और मृतहरि युवावस्था प्राप्त करके खुब बलवान और तेजस्वी हूए। राजा मुंज को लगाकि ये मेरे राज्य को ही उखाडकर न फेंक दे।

राजमहल में आकर राजा ने तुरन्त मन्त्री को बुलवाया और आदेश दिया कि जैसे भी हो, दोनों राजकुमारों को जेगल में मरवा दिया जाये। मेरे आदेश का पालन शीघ्र हो। मन्त्री ने इस अन्याय को न करने के लिए राजा से बार बार निवेदन किया लेकिन राजा ने न सुनी।

मन्त्री दोनों राजकुमारों को जंगल में ले गया और उनसे सारी बात कह दी। यह भी कहा कि अगर आप चाहें तो ऐसे अन्यायी राजा को पराजित कर राज्य प्राप्त कर सकते है।

शुभचन्द्र ने कहा - "मन्त्रीजी, नही ऐसा नहीं। हम पापपुण्य अपने सिर नहीं लेना चाहते। हमने संसार की असारता और राज्यलिप्सा का तांडवनृत्य देख लिया है" ---और दोनों ही उदास हो, वन की और चल दिए।

राजा भोज, कालिदास, मानतुंगाचार्य आदि सब एक समयवर्ती है। आचार्य शुभचन्द्र का उल्लेख कालिदास ने भी किया है।

अब हम उस महान ग्रन्थ को लेते है जिसके पढ़ने से वैराग्य जागृत होता है, मुनीश्वरों का तप, ध्यान और योग-साधना में बल मिलता है। यह ज्ञानार्णव विशेषतया मुनीश्वरों को अपने नियमों के प्रति दृढ़ बनाये रखने में विशेष उपयोगी है।

यह तो सत्य ही है कि आचार्य शुभचन्द्र के समय में अविद्या का घोर प्रचार-प्रसार था। जटा जूटधारी साधु भोले-भोले लोगों को बहका कर साधु बनाने में लगे हुए थे। कुधर्म का प्रचार था और जैन धर्म पालने वाले को उस बाह्य धर्मवलम्बी कहा जाता था।

सौजन्य : श्री मिलिंद आर. फडे
९५, मार्केट यार्ड गुलेट बुर्ग,
पुणे-३७ (महाराष्ट्र)

ऐसे समय में अपने अडिग तप त्याग से महामुनीश्वर मानतुंगाचार्य ने और आचार्य शुभचन्द्र नो अनेकतपोऋद्धियाँ प्राप्त करके जैनत्व की रक्षा की था। उन्होने विशिष्ट वैराग्य से कर्मो की कडियाँ काट कर अमरत्व प्राप्त किया था। ऐसे समय में ज्ञानार्णव ग्रन्थ ने रामबाण औषधि का काम किया था और आज भी कर राहा है। उस समय की अविद्या के निवारण के लिए ही अपने प्राथमिक सूत्र में आचार्य ने कहा है -

अविद्या प्रसरोद्भूताग्रहनिग्रहकोविदम् ।
ज्ञानार्णवमिमं वक्ष्ये सतामानन्दमन्दिरम् ।.

अर्थात - अविद्या के प्रसार से उत्पन्न आग्रह रुप पिशाच के निग्रह करने में सिद्धहस्त तथा सत्पुरुषों के लिए आनन्द का मन्दिर रुप ज्ञानार्णव कह रहा हूँ।

विश्व दृष्टि में विश्वहिंकर भगवान महावीर

आधुनिक ज्ञान विज्ञान की भित्ति पर जो किले मानव समाज ने बनायें हे और बनाता जा रहा है, उसकी सुरक्षा के लिए आध्यात्मिक तत्व का सहारा लेना आवश्यक है। भगवान महावीर के जीवन चरित्र और उनकी शिक्षाओं से हमें वे तत्व आसानी से मिल सकते है।

स्व. राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

सौजन्य :- श्री रुशिराज आर. फडे
J-७, A.P.M.E. फोव्हेल्स सेटरिंग फडे-II
वाशी नई मुंबई (महाराष्ट्र)

-: भट्टारक उद्भव :-

प्रस्तावना :- डॉ कैलाशचन्द्र जैन अपनी अंग्रेजी पुस्तक

"JAINISM IN RAJASTHAN में भट्टारको के लिए लिखते है "

The term Bhattaraka is applied to a particular type of Jaina ascetics who unlike Munis assumed the position of religious rulers and enjoyed supreme authurity in religious matters.

It is thus clear that several Bhattarakas, Acharyas and Panditas lived and played an important part in the history of medieval Jaina society when there was anarchy. At this time, the Muslims were carrying on persecutions and destruction, and the Marathat were raiding the different parts of the country. The life and property of the people become unsafe and insecure. Even at this time, Bhattarakas wandered from place to place without any anxiety and fear for the propagation of Jainism.

Bhattarakas rendered valuable services to Jainism in medieval times. Some of the Bhattarakas like Sakalakirti and were great scholars who wrote their literary works in Sanskrit, Prakrit, APabhramsa, Hindi, Gujarati and Rajasthani languages. The preservation of manuscrips was the most valuble wprk done by them at this time. Several copies of the works on grammar, medicine, mathematics and similar subjects were prepared. They also contributed towards art and architecture. Installation of various images was considered to be their main work. As their Mathas were cultural centers, they patronised music, Painting, Sculpture, dancing and other arts. In social sphere also, their services are remarkable. They ofren arranged long pilgrimages with a large number of followers. They sometimes looked after the management of the holy places, for instance, sir Mahavirajt was managed by the Bhattarakas of jaipur. Some of them possessed ,iraculous powers gained throuigh mantras. To walk through air, to remove the effect of poison and to make stone image speak are some of the miracles ascribed to them. they used to visit the courts of hindu and Muslim rulers and induced them to abserve the doctrine of abims by the prohibition of the slaughter of animals on their kingdom on certain fixed days of the year.

In the domain of religion, the Bhattarkas were the spiritual heads having several Acharyas and Panditas under their control. They enjoyed comforts and received money in various ways from the Sravakas. they possessed administrative powers and used to appoint the Acharyas and the Panditas at different place in order to carry on the religious aftairs.

भट्टारक उद्भव

अधिकांश भट्टारक परम्पराओं के ऐतिहासिक उल्लेख नौवीं शताब्दी से प्राप्त होते है। जहाँ तक नन्दिसंघ - बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ जिसे प्रारम्भ से हूमड़ समाजने अपनाया है भट्टारक परम्परा आचार्य बसन्तकीर्ति से १३वी सदी से प्रारम्भ हुई है।

परम्पराभेद और विशिष्ट आचरण

साधुसंघ की साधारण स्थिति से यह पृथक् हुई इस का पहला कारण वस्त्रधारण था। यह पद्धति बहुत पहलेही विवाद का कारण बन चुकी थी। भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के आचार्य केशी कुमारश्रमण ने गणधर इन्द्रभूति गौतम से इस पद्धति के विषय में प्रश्न किया था। इसके परिणाम स्वरुप तात्कालिक रुपसे यह विवाद

सौजन्य :- मे. सनराज इन्डस्ट्रीज 5, जीवराज निवास, ४०८, एम. बी. शास्त्री मार्ग
कुर्ला, मुंबई (महाराष्ट्र)

शान्त हुआ। किन्तु वस्त्रधारी साधुओं का अस्तित्व बना रहा। आगे चल कर आर्य महागिरि और शिवभूति के समय फिर यह विवाद जागृत होता गया और अन्तमें जब आचार्य कुन्दकुन्द के नेतृत्व में संघने दिगम्बरत्व का सम्पूर्ण समर्थन किया तब हमेंशा के लिए श्वेताम्बर और दिगम्बर ये भेद दृढ हो गये। इस के बावजूद भी दिगम्बरसम्प्रदायमें फिर वस्त्रधारण कीप्रथा शरु हुई। इसे मुस्लिम राज्य काल में और अधिक बल मिला और आखिर वह भट्टारकों के लिए अपवाद मार्ग के रुपमें मान्य कर ली गई। व्यवहार में यद्यपि वस्त्र का उपयोग भट्टारको के लिए समर्थनीय ठहरा दिया गया तथापि तत्त्व की दृष्टि से नम्रता ही पूजनीय मानी जाती रही। भट्टारकपद प्राप्ति के समय कुछ क्षणों के लिए क्यों न हो, नग्न अवस्था धारण करना आवश्यक रहा। कुछ भट्टारक मृत्यु समीप आने पर नग्न अवस्था ले कर सलेखना का स्वीकार करते रहे। नग्नता के इस आदर के कारणही भट्टारकपरम्परा श्वेताम्बर सम्प्रदाय से पृथकत्ता घोषित करती रही।

भट्टारकपरम्परा का दूसरा विशिष्ट आचरण मठ और मन्दिरों का निवास स्थान के रुपमें निर्माण का उपयोग था। इसी के अनुषंग से भूमिदान का स्वीकार करने और खेती की व्यवस्था भी भट्टारक देखने लगे थे। संवत् ५२३ में वज्रनन्दि ने द्राविड़ संघ की स्थापना की उस के ये ही मुख्य कारण थे ऐसा देर्वसन ने कहा है। शक ६३४ में रविकीर्ति ने ऐहीले ग्राम में जो मन्दिर बनवाया वह इस पद्धति का पर्याप्त पुराना उदाहरण है यद्यपिभूमिस्वीकार के उल्लेख इस से भी पहले के मिले है।

इन दो प्रथाओं के कारण भट्टारकों का स्वरुप साधुत्व से अधिक शासकत्व की और झुका और अन्त में यह प्रकट रुप से स्वीकार भी किया गया। वे अपने को राजगुरु कहलाते थे औरक राजा के समान ही पालकी, छत्र, चामर, गादी आदि का उपयोग करते थे। वस्त्रों में भी राजा के योग्य जरी आदि से सुशोभित वस्त्र रुढ़ हुए थे। कमुण्डल और पिच्छी में सोने चांदीका उपयोग होने लगा था। यात्रा के समय राजा के समान ही सेवक सेविकाओं और गाडी घोडों का इंतजाम रखा जाता था। इसी कारण भट्टारकों का पट्टाभिषेक राज्याभिषेक की तरह बडी धूमधाम से होता था। इस के लिए पर्याप्त घन खर्च किया जाता था जो भक्त श्रावकोंमें से कोई एक करता था। इस राजवैभव की आकांक्षा ही भट्टारक पीठो की वृद्धि का एक प्रमुख कारम रही यद्यपि उनमें तत्त्व की दृष्टि से कोई मतभेद होने का प्रसंग ही नहीं आया।

स्थल और काल

साधुत्व के नाते भट्टारकों का आवागमन भारत के प्रायः सभी भागोंमें होता ता। दक्षिणमें मूडविद्री, श्रवणबेलगेल कारकल हुंवचे इन स्थानों पर देशीय गण आदि शाखाओं के पीढ स्थापित हुए थे। प्रस्तुत ग्रन्थ में वर्णित भट्टारक भी यात्रा के लिए श्रवणबेलगोलतक आते जाते थे यद्यपि इस प्रदेश से उन के कोई स्थायी सम्बन्ध नहीं थे। इससे दक्षिण में तमिलनाड और केरल ये दो प्रदेश प्राचीन जैनधर्म के प्रभाव क्षेत्र में से थे परन्तु भट्टारको के पीठ नही थे।

पूर्व भारत में सम्मेदशिखर, चम्पापुर, पावापुर और प्रयाग की यात्रा के लिए विहार होता था। कोल्हापुर में लक्ष्मीसेन और जिनसेन इन दो भट्टारको की परम्पराएँ थी। ये दोनों भट्टारक अपने सेनगण के पट्टाधीश थे। बलात्कारगण के अतिरिक्त कारंजा में सेनगण और लाडबागड़ गच्छ के भी पीठ थे। इन पीठस्थानों के अतिरिक्त विदर्भ के रिद्धिपूर, बालापुर, रामटेक, अमरावती, आसगांव, एलिचपुर, नागपुर आदि स्थानों में तथा मराठवाड़ा के जिन्तुर, मांदेड़, देवगिरि, पैठन, शिरड़ आदि स्थानों में इन पांच पीटो के शिष्यवर्ग अच्छी संख्या में रहते थे

सौजन्य :- मे. रवीराज इन्डस्ट्रीज
706, कृष्णा लक्ष्मी इन्डस्ट्रीज एस्टेट
वर्तक नगर, थाणे (महाराष्ट्र)

। प्रतिष्ठाकर्ता को समाज का नेतृत्व अनायास ही प्राप्त होता था और उसी प्रतिष्ठा में यदि गजरथ भी हो तब संघपति का पद भी उसे विधिवत् दिया जाता था। सामाजिक मान्यता की इस अभिलाषा के साथ ही मुस्लिम शासको की मूर्तिभंजकता की प्रतिक्रिया के रुप से भी जैन समाज में मूर्ति प्रतिष्टा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान मिला।

इस युग में प्रतिष्ठित की गई मूर्तियां साधारणतः पाषाण और धातुओं की होती थी। धातु मूर्तियों का प्रमाण कुछ बढ़ता गया है। तीर्थकर, नन्दीस्वर, पंचमेरु, सहस्त्रकूट, सरस्वती, पद्मावती आदि यक्षिणी, क्षेत्रपाल और गुरु ये मूर्तियों के प्रमुख प्रकार ते। तीर्थकरों की मूर्तियां पद्मासन और कार्योत्सर्ग इन दो मुद्राओं में होती थी। इन में पार्श्वनाथ की मूर्तियां सर्वाधिक संख्या में और विविध रुपोंमें पाई जाती है। नागफणा के ऊपर, नीचे, आगे या बाजू में होने से पार्श्वनाथ की मूर्तियों में यह विविधता पाई जाती है। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ इन तीन तीर्थकरों की संयुक्त मूर्ति को रत्नत्रयमूर्ति कहा जाता है। किसी एक तीर्थकर की मुख्य मूर्ति के ऊपर और दोनों और अन्य तेईस तीर्थकरों की छोटी मूर्तियां हो तो उसे चौबीसी मूर्ति कहा जाता है। इसी प्रकार अनन्त नाथ तक के चौदह तीर्थकरों की संयुक्त मूर्तियां भी पाई जाती है। और इसका खास उपयोग अनन्तचतुर्दशी पूजामें किया जाता है। सामान्य तौर पर इस युग की तीर्थकर मूर्तियां सादी होती थी। मूर्ति के साथ ही भांमडल, छत्र, सिंहासन आदि भी उकेरने की पद्धति इस युग में प्रायः लुप्त हो गई। मूर्तियों का विस्तार दो इंच से बीस फुट तक विभिन्न प्रकार का रहा है फिर भी अधिकांश मूर्तियां एक फुट ऊंचाई की हैं। मूर्तियों का निर्माण मुख्य तौर पर राजस्थान में होता था।

यंत्रों की प्रतिष्ठा यह इस काल की विशेष निर्मिति है। दशलक्षण धर्म, रत्नत्रय, षोडशकारण भावना, द्वादशांग आगम, नवग्रह, ऋषिमंडल और सकलीकरण के यंत्र ये इन के विविध प्रकार थे। सभी धर्मततत्त्वों को मूर्तरुप बांधने की प्रवृत्ति ही इस यंत्रप्रतिष्ठा का मूलभूत कारण है।

पहले तीर्थकरों के साथ अनुचरों के रुप में यक्ष आदि देवताओं की मूर्तियों का निर्माण होता था। इस युग में इन की स्वप्न मूर्तियां बनने लगी। यक्षों में धरणेन्द्र और क्षेत्रपाल प्रमुख हैं। यक्षिणियों में चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी, कूष्माडिनी, अंबिका और पद्मावती ये प्रमुख है।

कार्य मूर्ति प्रतिष्ठा

मूल ग्रन्थका सरसरी तौर पर अवलोकन करने से भी स्पष्ट होता है कि भट्टारकों के जीवन का सबसे अधिक विस्तृत कार्य मूर्ति और मन्दिरों की प्रतिष्ठा यही थी। इस पूरे युगमें मूर्तिप्रतिष्ठा का यह कार्य बडे पैमाने पर हुआ। इस का एक कारण यह है कि प्रतिष्ठा उत्सव का धार्मिक से अधिक सामाजिक रुप प्राप्त हुआ था। जिस प्रतिष्ठा का निर्देश इस ग्रन्थ के दो पंक्तियों के मूर्तिलेख में हुआ है उस के लिए भी कम से कम हजार व्यक्तियों को इकट्ठे आने का मौका मिला था। वैसे इन सब की मूर्तियों को पद्मावती के ही विभिन्न रुप माने जाने लगा, और अन्तमें काली दुर्गा जैसी अन्य या स्थानिक सम्प्रदाय की देवताओं के साथ भी इन की एकता होने लगी थी। कुक्कुट आदि वाहन, धनुष आदि शस्त्र इत्यादि बाह्य चिन्हों से यह गलत एकता आसानी से स्थापित हो सकी जिस का अब भी जैनसमाज में काफी प्रभाव है।

प्रतिष्ठाओं के लिए वैसे कोई महीना वर्ज्य नहीं था। फिर भी वैशाख में सब से अधिक प्रतिष्ठाएं हुई। इस का कारण शायद यह था कि अक्षय तृतीया एक स्वयंसिद्ध मुहूर्त माना जाता था। उस दिन के लिए पंचांग देखने की जरुरत नहीं समझी जाती थी। यातायात आदि की दृष्टि से भी यही मौसम ऐसे उत्सवों के लिए अनुकुल भी होता है।

सौजन्य :- **प्रेमचंद जीवन दोशी (माढेकर)** बार्शी

संख्या की दृष्टि से दिल्ली शाखा के भ. जिनचन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियां सब से अधिक हैं । प्रतिष्ठाकर्ता सेठ जीवराज पापडीवाल के प्रयत्नों से ये हजारों मूर्तियों भारत के कौने कौने में पहुंची हैं । इन की प्रतिष्ठा संवत् १५४८ की अक्षयतृतीया को हुई थी । विशालता की दृष्टि से ग्वालियर और चंदेरी की मूर्तियां उल्लेखयोग्य हैं । कारंजा के भ. देवेन्द्रकीर्ति ने भी रामटेक, नागपुर आदि स्थानों में विशाल मूर्तियां स्थापित की हैं ।

मूर्तियों के पादपीठ के लेख बहुधा टूटी फूटी संस्कृत में लिखे जाते थे । क्वचित हिन्दी, मराठी आदि लोकभाषाओं का भी उपयोग उनके लिए हुआ है । उनका विस्तार मूर्तिके विस्तार के अनुरुप होता था । सर्वाधिक विस्तृत लेखमें समय, प्रतिष्ठाकर्ता सेठकी वंशपरम्परा, प्रतिष्ठासंचालक भट्टारक की गुरुपरम्परा, स्थान, स्थानीय और प्रादेशिक शासक तथा एकाध मंगल वाक्य इन का निर्देश होता था ।

कार्य - शिष्यपरम्परा

जैन समाज में विद्याध्ययन की व्यवस्था कुलपरम्परा पर आधारित नहीं थी । शायद इसी लिए वह ब्राह्मणपरम्परा जितनी सुदृढ़ नहीं रह सकी । यह कभी दूर करने के लिए हंमेशा शिष्य परम्पराओं के विस्तार का प्रयत्न जैन साधुओं द्वारा किया गया । भट्टारक सम्प्रदाय भी इस प्रवृत्ति को निभाता रहा । ग्रन्थ के मूल पाठ से स्पष्ट होगा कि कार्य में भट्टारकों ने काफी सफलता प्राप्त की । ब्रह्म जिनदास, श्रुतसागरसूरि, पण्डित राजमल आदि भट्टारकशिष्यों के उन के गुरुओं से भी अधिक स्मरणीय हुए हैं।

व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा के फलस्वरुप जिस प्रकार भट्टारक पीठों की वृद्धि हुई उसी प्रकार शिष्य परम्पराओं का भी पृथक अस्तित्व रह सका । अनेक बार देखा देखा गया है कि भट्टारकों के जो शिष्य पट्टभिषित्त नहीं हुए थे उन की स्वतन्त्र शिष्य परम्पराएं छह सात पीढियों तक चलती रहीं । गमितसारसंग्रह और शब्दार्णव चन्द्रिका की प्रशस्तियों में इस के अच्छे उदाहरण मिलते हैं । विभिन्न भट्टारक पीठों में सौहार्द की रक्षा करने में शिष्यपरम्परा का महत्वपूर्ण उपयोग हुआ । दक्षिण के पण्डितदेव और नागचन्द्र जैसे विद्वानों का उत्तर के जिनचन्द्र और ज्ञानभूषण जैसे भट्टारकों से सहकार्य हुआ यह इसी का उदाहरण है । ब्रह्म शान्तिदास के सूरत और ईडर इन दोनों पिढ़ों से अच्छे सम्बन्ध थे । इसी प्रकार पण्डित राजमल भी माथुर गच्छ की दो [illegible] शाखाओं से एक ही समय संलग्न रह सके थे । कारंजा के लाडबागड़ गच्छ के कवि पामो जैसे शि[illegible] नन्दीतट गच्छ के भट्टारकों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए थे । इस दृष्टि से परस्पर सम्बन्ध और अन्य साम्प्रदायों से सम्बन्ध इन दो विभागों में आगे और विचार किया गया है ।

जैन्तर सम्प्रदायों के विद्वान भी कई बार भट्टारकों के शिष्य वर्ग में सम्मलित हुए थे । द्विज विस्वनाथ भ. इन्द्रभूषण के शिष्य थे । भ. राजकीर्ति के शिष्यों में पण्डित हजी का उल्लेख हुआ है । गोमटस्वामिस्तोत्र के कर्ता भूपति प्राज्ञमिश्र भी जैन विद्वान प्रतीत नहीं होते । इस दृष्टि का भी विशेष विवरण अलग विभागों में होगा ।

जैनेन्द्र व्याकरण, गमितसारसंग्रह, कल्याणकारक जैसे शास्त्रीय ग्रन्थों को जैनेतर समाजों में अद्वेत की दृष्टि से देखा जाता था जिस से उन का पठन पाठन कई बार लुप्तप्राय हो गया । इस संकट में से ये ग्रन्थ जीवित रह सके इस का अधिकांश श्रेय भट्टारकों के शिष्यवर्ग को ही है । इन्ही ने इन ग्रन्थों की प्रतिलिपियां करा कर उन का अभ्यास किया और उन की आयु की वृद्धि की ।

कार्य - जातिसंघटना

जैन समाज में इस वक्त जो जातियाँ हैं इन की स्थापना दसवीं सदी के करीब हुई ऐसा विद्वानों का अनुमान हैं । इन जातियों में अधिकांश के नाम स्थान या प्रदेश पर आधारित हैं । बघेरा गांव से बघेरवाल,

सौजन्य :- मे. जे. के. जेम्स
5, जीवराज निवास, ४०७, एम. बी. शास्त्री मार्ग
कुर्ला, मुंबई (महाराष्ट्र)

चंडेला से खंडेलवाल, पद्मावती पल्लीवाल इत्यादि नाम रुढ़ हुए है। इस युग में हिन्दू समाज के प्रभाव से जैन समाज में भी वह जातिसंख्या अति नियमित और कठोर हुई। खानपान, विवाहसम्बन्ध, व्यवसाय और ऊँच नीच की कल्पना इन चारों बातों में जाति का ही निर्णायक महत्व होता था और बहिष्कार के शस्त्र से वह बराबर कायम रखा गया। अब इन चारों में सिर्फ विवाहसम्बन्ध पर ही जाति का प्रभाव है और वह भी कोई जगह ढीला पड़ चुका है।

साधुपद पर प्रतिष्ठित होने के नाते भट्टारक जातिभेद से ऊपर होते थे। फिर भी बिरुदावलियों में उनकी जाति का अनेक बार उल्लेख हुआ है। जाति संस्था के व्यापक प्रभाव का ही यह परिणाम है। इसी प्रकार यद्यपि भट्टारक जातिभेद से ऊपर होते थे। फिर भी बिरुदावलियों में उन की जाति का अनेक बार उल्लेख हुआ है। जाति संस्था के व्यापक प्रभाव का ही परिणाम है। इसी प्रकार यद्यपि भट्टारकों के शिष्यवर्ग में सम्मिलित होने के लिए किसी विशिष्ट जाति का होना आवश्यक नही थी तथापि बहुतायत से एक भट्टारक पीठ के साथ किसी एक ही विशिष्ट जाति का सम्बन्ध रहता था। बलात्कार गण का सुरत शाखा से हूमड़ जाति, अटेर शाखा से लमेचू जाति, जेरहट शाखा से जाति तथा दिल्ली, जयपुर शाखा से खंडेलवाल जाति विशेष सम्बन्ध पाया जाता है। इसी प्रकार काष्ठासंघ के माथुर गच्छ के अधिकांश अनुयायी अगरवाल जाति के नन्दितट गच्छ के अनुयायी हूमड़ जाति के और लाड़बागड़ गच्छ के अनुयायी बेघरवाल जाति के थे।

अनेक जातियों में भटों द्वारा जाति के सब घरानों का वृत्तान्त संग्रहित करने की प्रथा थी। ऐसे वृत्तान्तों में अक्सर किसी प्राचीन आचार्य के द्वारा उस जाति की स्थापना होने की कहानी मिलती है। नन्दीतट गच्छ के प्रकरण से ज्ञात होगा कि नरसिंहपुरा जाति की स्थापना का श्रेय रामसेन को दिया जाता था तथा भट्टपुरा जाति उन के शिष्य नेमिसेन द्वारा स्थापित मानी जाती थी। ऐतिहासिक काल में भी सूरत के भ. देवेन्द्रकीर्ति (प्रथम) को रत्नाकर जाति का संस्थापक कहा गया है। बघेरवाल जातिमें मूलसंघ के आचार्य रामसेन द्वारा और काष्टासंघ के आचार्य लोहद्वारा धर्म की स्थापना हुई थी ऐसी कथा मिलती है। कई स्थानों पर जैनेतर समाजों में धर्मोपदेश दे कर नई जातियों की स्थापना की गई इसी का यह उदाहरण कहा जाता है। इतिहाससिद्ध न होने पर भी इन कथाओं को भावना की दृष्टि से कुछ महत्व अवश्य है।

प्रत्येक जाति में नियत संख्या के कुछ गोत्र थे। मूर्तिलेख आदि में बहुधा इन का उल्लेख हुआ है। बघेरवाल जाति के पच्चीस गोत्र काष्ठासंघ के और २७ गोत्र मूलसंघ के अनुयायी थे। नागौर शाखा के भट्टारक बहुधा खंडेलवाल जाति के गोत्रों के उल्लेख मिलते हैं। हूमड़ जाति में लघुशाखा और वृद्धशाखा ऐसे दो उपभेद थे। इनेहें ही दस्सा और बीसा हूमड़ कहते है। इसी प्रकार परवार जाति में अठासखे, चौसखे आदि भेद थे। ये भेद विवाह के समय कितने गोत्रों का विचार किया जाय इस पर आधारित थे। श्रीमाल, औसवाल आदि कुछ जातियां श्वेताम्बर सम्प्रदाय में ही है। किन्तु इन के भी कुछ उल्लेख दिगम्बर भट्टारकों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियों के लेखों में मिलतो हैं।

कार्य-तीर्थयात्रा और व्यवस्था

तीर्थक्षेत्रों की यात्रा और व्यवस्था ये मध्ययुगीन जैन समाज के धार्मिक जीवन के प्रमुख अंग थे। तीर्थक्षेत्रों के दो प्रकार किये जाते हैं। जहां किसी तीर्थकर या मुनि को निर्वाण प्राप्त हुा हो उसे सिद्धक्षेत्र कहते हैं। जहां किसी व्यक्ति, मूर्ति, या चमत्कार के कारण क्षेत्र स्थापित हुआ हो उसे अतिशयक्षेत्र कहते हैं। सिद्धक्षेत्रों में पश्चिम में गिरनार और शत्रुंजय विशेष प्रसिद्ध थे। दक्षिण में गजपंथ और मांगीतुंगी प्रसिद्ध थे। पूर्व में

सौजन्य : डॉ विजयकुमार हीराचंद शाह म्हसवड ५७७ सदर बाजार, गोरेगाँव, सतारा (महाराष्ट्र)

सम्मेदशिखर, चम्पापुरी और पावापुरी ये सर्वमान्य सिद्धक्षेत्र थे। मध्य भारत में सोनागिरि और चूलगिरि (बडवानी) को कुछ महत्व था। अतिशयक्षेत्रों में सुदूर दक्षिण में श्रवणबेलगोल की गोम्मटेश्वर की महामूर्ति सब से अधिक प्रसिद्ध थी। राजस्थान में धूलिया के केशरियानाथजी की कीर्ति सर्वाधिक थी। हैदाबाद राज्य के माणिक्यस्वामी भी काफी लोकप्रिय थे।

कारंजा के सोनगण के पट्टधीशों में भ. जिनसेन और नरेन्द्रसेन ने लम्बी यात्राएं की। वहीं के बलात्कार गण के पट्टाधीश देवेन्द्रकीर्ति (तृतीय) ने पश्चिमी क्षेत्रों की छह यात्राएं की। ईडर शाखा के भ. सकलकीर्ति (प्रथम) और भ. पद्मनन्दि की शत्रुंजय यात्राएं स्मरणीय रहीं। भानपुर शाखा के भ. रत्नकीर्ति के शिष्यों ने दक्षिण की यात्रा की। सूरत शाखा के भ. विद्यानन्दि, उन के शिष्य श्रुतसागरसूरि और भ. इन्द्रभूषण ने विस्तृत यात्रा ओं के उल्लेख मिलते है जो भौगोलिक नाम सूची में पूरी तरह संकलित किये गए हैं। परस्परसम्बंध के निरुपण में कुछ तीर्थयात्राओं पर प्रस्तावना के अगले विभागों में और विचार हुआ है।

नन्दीतट गच्छ के ब्रह्म ज्ञानसागरने अपने समय के तीर्थक्षेत्रों का वर्णन स्फुट कवितों में किया है। इस में सिद्धक्षेत्र और अतिशय क्षेत्र मिला कर ७८ क्षेत्रों का उल्लेख हुआ है। इस का सारांश अन्यत्र प्रकाशित हो चुका है। इसी प्रकार जयसागर की तीर्थजयमाल, श्रुतसागर की रविव्रत कथा तथा षट्प्राभृतटीका और छत्रसेन की पार्श्वनाथपूजा में भी अनेक तीर्थक्षेत्रों के उल्लेख हैं। विस्तार भय से ये सब मूल ग्रन्थ में समाविष्ट नहीं किए जा सके। तीर्थक्षेत्रों के इतिहास की दृष्टि से इन का अपना महत्व है।

महावीरजी क्षेत्र की व्यवस्था जयपुर शाखा के भट्टारकों द्वारा, सोनागिरि की वहीं के भट्टारकों द्वारा तथा केशरियाजी क्षेत्रकी व्यवस्था काष्ठासंघ के भट्टारकों द्वारा होती थी। इस दृष्टिसे विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं हुए है किन्तु होने की संभावना अवश्य है।

कार्य - चमत्कार

मन्त्र तन्त्रों की साधना द्वारा किसी देवी या देव को प्रसन्न कर लेना भट्टारकों का विशेष कार्य माना जाता था। ऐहिक दृष्टि से मुक्त होने के कारण और श्रावकों से कम सम्बन्ध होने के कारण मुनियों को मन्त्रसाधना करने का निषेध था। भट्टारकों का स्थान समाज के शासक के रुप में होने से उनके लिए मन्त्रसाधना इष्ट ही समझी जाती थी। सूरत शाखा के भ. मल्लिभूषण ने पद्मावती देवी की आराधना की थी, तथा लाडबागड गच्छ के भ. महेन्द्रसेन ने क्षेत्रपाल को सम्बोधित किया थ, ऐसे उल्लेख प्राप्त हुए हैं।

मन्त्रसाधना द्वारा भट्टारकों ने जो चमत्कार किये उनके कुछ उल्लेख प्राप्त हुए हैं। इन में पालकी का आकाश गमन मुख्य है। भ. सोमकीर्ति ने पावागढ़ में और भ. मलयकीर्ति ने आंतरी में यह चमत्कार किया था। सूरत के अन्तिम भट्टारकों के विषय में भी ऐसी ही अनुश्रुति प्राप्त हुई है। सरस्वती की पाषाण मूर्ति के द्वारा दिगम्बर सम्प्रदाय का प्राचीनत्व सिद्ध किया गया यह भी चमत्कारों का अच्छा उदाहरण हैं। सामान्यतः यह चमत्कार आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा किया गया ऐसा मानते है, किन्तु कुछ विद्वानों के मत से यह चमत्कार उत्तर शाखा के भ. पद्मनन्दि द्वारा किया गया था। कारंज शाखा के भ. पद्मनन्दि की मृत्यु मुक्तागिरि क्षेत्र पर किसी चमत्कार के कारण हुई ऐसी लोकोक्ति है। कारंजा के भ. देवेन्द्रकीर्ति (उपान्त्य) ने मातकुली के प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर लगी हुई आग मन्त्रित जल द्वारा शान्त की ऐसी भी अनुश्रुति है।

बीसवी सदी के उत्तरार्ध में चमत्कारों का कोई महत्व नहीं रहा हैं। किन्तु मध्ययुग की सामान्य लोगों की भावनाओं को देखते हुए उसे धर्म क्षेत्र में जो स्थान मिला वह स्वाभाविक ही प्रतीत होता है।

सौजन्य :- रत्नकांत रूपचंद फळे मु. अकलूज (महाराष्ट्र)

कार्य-कलाकौशल्य का संरक्षण :-

मध्ययुगीन समाज के जीवनमें धर्मको जो महत्वपूर्ण स्थान था उसके कारण अन्यान्य अनेक क्षेत्रों का धर्म से सम्बन्ध स्थापित हो गया था। धर्म के नेता के नाते भट्टारकों ने विविध कलाओं को समय समय पर प्रोत्साहन दिया यह इसी का उदाहरण है। संगीत, शिल्प, चित्र, नृत्य आदि कलाओं के विषय में अनेक उल्लेख प्राप्त हुए हैं।

पूजाप्रतिष्ठा भट्टारकों का प्रमुख कार्य था और इस में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान था। इस युग के पूजापाठों में गेयता विशेष रुप से है इस का निर्देश पहले किया जा चुका है। प्रतिष्ठा उत्सव के समय अक्सर दूर दूर से भजन या कीर्तन के लिए गायक बुलाए जाते थे। इसके अलावा अन्य समय भी हफ्तें में एकबार मन्दिरों में सामुदायिक भजन करने की प्रेरणा थी। भजनों के लिए भट्टारकों द्वारा रचे गए कई पद उपलब्ध होते हैं। मूर्ति, यन्त्र और मन्दिरों की निमिति से भट्टारकों द्वारा शिल्परला के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान मिला है। कई स्थानों पर मन्दिरों में पाषाण या लकडी के स्तम्भों या छतों पर जिनेन्द्र जन्माभिषेक, सम्मेदशिखर आदि तीर्थक्षेत्र और अन्यान्य कथाओं की प्रतिकृतियां प्राप्त होती है। सूरत के गोपीपुरा मन्दिर की एक मेरुमूर्ति पर चार भट्टारकों की मूर्तियों निर्मित हैं। जिन्तूर के निकट नेमगिरि पर नेमिनाथ की विशाल मूर्ति के पादपीठ पर उस क्षेत्र के संस्थापक वीर संघपति और उनके कुटुबियों की सुंदर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इसी प्रकार अनेक स्थानों पर मन्दिरों के सामने विशाल मानस्तम्भों का निर्माण हुआ है जिन पर समवसरणादि विविध दृश्य अंकित मिलते है। भट्टारकों के समाधिस्थानों पर निर्माण किये गए स्मारक भी कई स्तानों पर दर्शनीय बने हैं।

हस्तलिखितों की प्रतियों कराते वक्त कई भट्टारकों ने अपने चित्रकलाप्रेम का परिचय दिया है। जनसागर विरचित सुगन्धदशमी कथा की एक प्रति ७३ चित्रों से विभूषित है जो नागपुर के सेनगणमन्दिर में उपलब्ध हुई हैं। अंजनगांव के बलात्कारगण मन्दिर में चौवीस तीर्थकरों के शस्त्रोंक्त आसन, यक्ष, यक्षणियाँ, वर्ण आदि से युक्त सुन्दर चित्र प्राप्त हुए है। नागपुर के त्रैलोक्यदीपक नामक हस्तलिखित में बडे प्रमाण पर मानचित्रों का अंकन हुआ है। काष्ठासंघ माथुरगच्छ के भ. क्षेमकीर्ति के उपदेश से वैराट नगर के जिनमन्दिर को विविध चित्रों से अलंकृत किया गया था। कई सुन्दर प्रतियों का लेखन सुवर्णक्षरों द्वारा हुआ है। पूजा के लिए जो मण्डल बनाये जाते थे उन में भी कई बार चित्रकला के अच्छे नमूने प्राप्त होते हैं।

मध्ययुग में अन्य कलाओं की अपेक्षा नृत्य कुछ हीन लोगों की कला मानी जाती थी। फिर भी विविध धार्मिक उत्सवों के अवसर पर टिपरियों के खेल को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। खास कर विजयादशमी और पद्मावती की रथयात्रा के अवसर पर नियमपूर्वक इसका प्रयोग होता था।

इस सब कलाओं के केन्द्रित होने के कारण ही मध्ययुग में मन्दिरों को समाज जीवन के केन्द्रो का स्थान मिल सका। इस से इन कलाओं का अस्तित्व बना रहा और साथ ही उन में गम्भीरता और पावित्र्य की भावना भी दृढ हो सकी। इसी लिए बाल और वृद्ध, स्त्री और पुरुष सभी प्रकार के व्यक्ति मन्दिरों की ओर आकर्षित हो सके। जैन समाज का अन्य समाजों से सौहार्द स्थापित करने में भी इन कलाओं का विशेष महत्व रहा।

सौजन्य :- सुरेश प्रेमचंद फडे
महावीर पथ, मु. पो. अकलूज जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

उपसंहार

भट्टारक सम्प्रदाय का इतिहास अब तक कुछ अपेक्षित सा रहा है। इस ग्रन्थ में उसके एक भाग का उपलब्ध वृतान्त संग्रहीत हुआ है। इस से यह स्पष्ट होता है कि इतिहास का यह भाग भी काफी महत्वपूर्ण है। इसी पद्धति से दिगम्बर सम्प्रदाय के मुडबिदी, श्रवणबेलगुल, कारकल, हुंबच और कोल्हापुर के भट्टारक पूठों का वृत्तान्त तथा श्वेताम्बर सम्प्रदायके बीकानेर, दिल्ली, लखनऊआदि अनेक भट्टारक पीठों का वृतान्त संगृहीत किया जाए तो जैन सम्प्रदाय का एक हजार वर्षों का इतिहास बहुत कुछ स्पष्ट और प्रमाणिक रुप से हो सकेगा।

इस ग्रंथ में एक सीमित संख्या में ही साधनों का उपयोग हो सका है। अभी अनेक भट्टारक पीठों के शास्त्रभंडार, अनेक मूर्तिलेख एवं शिलालेखों का अवलोकन कर के नई सामग्री प्रकाश में लाई जा सकती है। इसी प्रकार ऐसे कई अंधिक साधन उपलब्ध होने पर इन की सन्दिग्धता भी दूर हो सकती है। इस तरह साधनो की मर्यादाओं के बावजूद इस ग्रन्थ में कोई ४०० भट्टारकों का, उनके १७५ शिष्यों का, ३०० ग्रन्थों का, ९० मन्दिरों का, ३१ जातियों का, १०० शासकों का तथा २०० स्थानों का उल्लेख हुआ है एवं उनका ऐतिहासिक मूल्य निर्धारित हुआ है। यदि सब साधनों का पूरा उपयोग किया जाए तो यह संख्या आसानी से दुगुनी हो सकती है।

भट्टारक सम्प्रदाय के इतिहास में जैनसमाज की अवनति का ही इतिहास छिपा है। किन्तु उसमें कई उज्जवल व्यक्तित्व हमारा ध्यान आकर्षित करने के लिए समर्थ हैं। भ. शुभचन्द्र और भ. सकलकीर्ति जैसे ग्रन्थकर्ता और भ. जिनचन्द्र जैसे मूर्तिपतिष्ठापक आचार्यों की सर्वथा उपेक्षा की जाए तो जैन समाज का इतिहास अधूरा ही रहेगा। उन्नति का इतिहास प्रेरक शक्ति के रुप में उपयुक्त होता है। उसी प्रकार अवनति का इतिहास भी अनेक शिक्षा दे सकता है। भट्टारक सम्प्रदाय के इतिहास में जो संरक्षणशीलता दृष्टिगोचर होती है उसके परिणामों से सावधान हो कर यदि हम फिर एक बार विकासशील प्रवृत्ति को अपना सके तो जैन समाज फिर एक बार अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सकता है।

विश्व दृष्टि में तिर्थंकर भगवान महावीर

रिश्वत, बेईमानी, अत्याचारअवश्य नष्ट हो जावें यदि हम भगवान महावीर की सुन्दर और प्रभावशाली शिक्षाओं का पालन करें।

स्व. प्रधानमंत्री लालबहादूर शास्त्री

सौजन्य :- मे. अरवींद ट्रेडींग कम्पनी
महावीर पथ, मु. पो. अकलूज जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

सम-सामयिक परिस्थितियाँ

इस काल खण्ड में हम विक्रम की तेरवी शतीब्दि से १६ वी शताब्दि की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यक परिस्थितियों की चर्चा करेगे । मूगलो द्वारा अधिकाश हूमड़ो के जिनालयो को गुजरात और राजस्थान में नष्ट करके मूर्तियो को नष्ट किया जा चूका था । हिन्दुओ को जबरदस्ती धर्म परिवर्तन कराके मुसलमान बताये जा रहा था ऐसे कढिन समय की विसे, परिस्थितियों में भट्टारक प्रथा का उद्‌भव हुआ :-

राजनैतिक परिस्थिति :-

पृत्वीराज चौहान की हार के बाद भारतमें मुसलमान साम्राज्य स्तायी रुप से जम गया । गुलामवंश, खिलजीवंश, तुगलकवंश और सैयदवंश के सासको ने लगभग १५ वी शताब्दी तक दिल्ली पर राज्य किया । राजस्थान के अजमेर, नागौर और मेवात के क्षेत्र पर प्रारम्भ से ही दिल्ली के शासकों का अधिकार रहा । अलाउद्दीन खिलजी ने लगभग सारा राजस्थान जीत लिया था । बागड़, मेवाड़ और हाड़ौती के क्षेत्र जहां हमारे आलोच्य कवि ब्रह्म जिनदास ने विहार किया था १४वीं शतीब्दी के प्रारम्भ से ही खिलजी सल्तनत के भाग बन गये थे ।

मुसलमान यद्यपि धार्मिक दृष्टि में बड़े कट्टर थे किन्तु जैनों से इनके अच्छे संबंध रहे थे । अलाउद्दीन के राज्यकोष का अधिकारी ठक्कुर फेरु जैन था । जैन नन्दि संघ के भट्टारक प्रभाचन्द को जो दिगम्बर मुनि थे फिरोजशाह तुग्लक ने अपने महल में बुलाया था ।

तुगलक बादशाहो के अन्त में केन्द्रीय शासको की शक्ति क्षीण हो गयी थी और प्रान्तीय राजा स्वीधीन हो गये थे । इनमें मालवा और गुजरात के शासक विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं । मालवा में दिलावरखाँ गौरी ने नया राज्य स्थापित किया और गुजरात में जफरखाँ ने उसी समय मेवाड के शासक हम्मीर ने मुसलमानों को हटाकर अपने पूर्वजों का शासन पुनः प्राप्त कर लिया था । इसके पुत्र खेता और पौत्र राणा लाखा के समय से मेवाड़ राज्य की शक्ति और बढ़ गयी थी । राणा लाखा का अधिकारी मोगल भी योग्य शासक था ।

इसका लड़का कुम्भा सन् १४३३ ई० में चितौड़ के सिहासन पर बैठा । यह महान प्रतापी शासक था । इसने मालवा और गिजरात के सुलतानों को कई बार हराया । इसके समय में कई निर्माण कार्य हुये । चितौड़ में नौ मञ्जिला उत्तुंग कीर्ति स्तम्भ इसी द्वारा निर्मित है । इसी रामा के आश्रम में ओसवाल गुणाराज ने सन् १४३८ में चितौड़ में जैन कीर्ति स्ताम्भ के निकट स्थित महावीर स्वामी के प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया । मचीद दुर्ग में सुन्दर चैत्यालय बनवाया गया । जून् १४४८ में राणा के कोषाद्यक्ष वोलाक ने जो शाह केल्हा का पुत्र था, चितौड़ में एक छोटा सा कलापूर्ण भगवान शान्तिनाथ का मन्दिर बनवाया जिसे श्रृंगार चंवरी कहते है । इसी समय रणाकपुर के भव्य जिनालय एवं आबू के देलवाड़ा का दिगम्बर जैन मन्दिर भी निमित हुये थे ।

डूंगरपुर के आस पास का क्षेत्र बागड़ कहलाता था जो आज भी है । सन् १४०४ ई० में डुंगरपुर में महारावल प्रतापसिंह का शासन था । इसके पश्चात सन् १४२६ ई० में महारावल इपाल या गोपीनाथ डूंगरपुर का शासक बना । इसके शासनकाल की मुक्य घटनाएँ महाराणा कुम्भा और गुजरात के सुलतान अहमदशाह के साथ युद्ध करना है । महारावल गइपाल बड़ा महत्वाकांश्री शासक था । महाराणा मोकल के अन्तिम दिनों में मेवाड़ की फूट का लाभ उठाकर उसने कोटडा, जावर आदि भाग छीन ल्ये । फारसी तवारीखों के अनुसार

सौजन्य :- अविनाश भरतलाल दोशी पूना (महाराष्ट्र)

गुजरात के सुल्तान अहमदशाह ने सन् १४४२ ई० में डूंगरपुर, मेवाड़ और नागौर पर आक्रमण किया था। वह डूंगरपुर होता हुआ मेवाड़ में देलवाड़ा और भीलवाड़ा की तरफ भी गया। उसके सेनापति मलिक मुनीर ने डूंगरपुर और मेवाड़ में बड़ी लूट मचाई थी और एकलिंगजी के प्रसिद्ध देव भवन को खण्डत कर दिया था। महाराणा कुम्भा ने सन् १४३९ ई० में आक्रमण कर डूंगरपुर विजय किया। कुम्भा की इस बागड़ प्रदेश की विजय के फलस्वरुप जावर को पुनः मेवाड़ राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था।

सामाजिक परिस्थितियाँ

भारतीय समाज प्राचीन काल में चार वर्णो में विभक्त था। किन्तु मध्य काल में यह व्यवस्ता बिखर गयी थी। वर्ण-धर्म में परिवर्तन शरु हो गया था। ब्रहाणों की वित्तीय रिथति दयनाय हो गयी थी। धार्मिक कार्यो में उनको समाज में उच्चस्तर स्थान प्राप्त था, किन्तु आर्थिक विपन्नता के कारण उन्हे लक्ष्मी की दया पर आश्रित रहना पड़ता था। कुम्भलगढ़ के लेख से ज्ञात होना है कि जिन ब्रहाणों ने पूजा पाठ और वैदिक यज्ञ कार्य बन्द कर दिया था उन्हेम महाराणा मोकल ने कृषि कर्म से हटा कर पुनः वेद पढ़ने को प्रेरित किया था युद्ध करना यद्यपि क्षत्रियों का कर्म था, लेकिन उस काल में प्रायः सभी वर्गो के लोग युद्ध कार्य में कुशल होते थे। सब ही वर्गो के लोग देश रक्षा के लिए बड़ा से बड़ा बलिदान देने का तत्पर रहते थे।

मुस्लिम शासकों के अत्याचारी जातीय परिवर्तनों से हिन्दु धर्म को क्षति पहुंची। धर्म परिवर्तन होने पर एक जाति ने दूसरी जाति के साथ खाना पीना भी छोड़ दिया। ब्रहाणों ने अन्य सवर्णो से अपने आप को अलग मान चौके और कच्चे-पक्के का विधान बना लिया। इसका प्रभाव अन्य समाज पर भी पड़ा। परिणाम स्वरुप जातियों की संख्या में अनावश्यक वृद्धि हो गयी। चारों वर्णों में कई गोत्र चल पड़े। उस समय १५ वी शताब्दी में अकेले महाजनों की ८४ जातियां प्रसिद्ध हो गयी थी। सम सामायिक पृथ्वीचन्द चरित और सोम सौभाग्य काव्य में इनका उल्लेख है। स्वयं ब्रहा जिनदास ने अपनी एक कृति में जिनेन्द्रदेव के अभिषेक के पश्चात जिनेन्द्र की पुष्पमाला की बोली के उत्सव में सम्मिलित किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि धार्मिक समारोहों में भाग लेने के लिए उस समय कोई जातिगत भेद भाव नहीं था। सभी वर्ग के लोग एक दूसरे के समारोहों में सम्मलित होते थे। अपने धर्म में दृढ़ श्रद्धा के साथ अन्य धर्मो के प्रति समाज में आदर भावना थी।

उस काल में प्रायः राजाओं एवं श्रेष्ठियों में बहु विवाह का प्रचलन था। राजाओं एवं उच्च वर्ग के व्यक्तियों के कई रानियाँ एवं पत्नियों होती थी। समसामयिक कृतियों में राजाओं श्रेष्ठियो औ ख्याति प्राप्त पुरुषों की कई स्त्रियाँ वणित कीगई है। ब्रहा जिनदास ने अपने रास काव्यों में नायक की कई पत्नियों का उल्लेख किया है। बहु विवाह के कारण उस काल के इतिहास में बड़ी उथल पुथल मची थी। स्त्रियों को स्वाधीनता नहीं थी। पर्दा प्रथा व्यापक रुप में प्रचलित था। जन्म से मृत्यु पर्यन्त उन्हें पुरुषों के आधीन रहना पड़ता था। उनमें शिक्षा का अभाव था। सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार भी उन्हें प्राप्त नहीं थे। पुत्रहीनों की सम्पत्ति को राजा ले लेता था।

गृहस्थ जीवन प्रायः सुकी था, किन्तु सपत्नी द्वेष से शून्य नहीं। परिवार में सभी का यर्थोचित् स्थान था। पुरुष की प्रधानता होती थी। पुत्र की महत्ता एवं आवस्यक्ता अधिक होती थी। पुत्र के बिना घर सूना एवं दुखदायी माना जाता था। पति का प्रवास सामान्य सी बात नहीं थी क्योंकि उसको व्यापार से लोटने पर बहुत समय लग जाता था। जीवन में सुख दुख का सम्मिश्रण था। जीवन सोलह संस्कारों से युक्त होता था।

सौजन्य :- अविनाश भरतलाल दोशी पूना (महाराष्ट्र)

वैश्यों के पास अपार सम्पत्ति होती थी। दान उनके धर्माचरण का आवश्यक अंग था। बसन्त मास में प्रायः सभी वर्ग के लोग वन उपवनें में जाकर, रास, भास, गीत, चंग से आनन्देत्सव मनाते थे। इस समारोह में राज परिवार भी सम्मिलित होता था। स्त्रियाँ इस अवसर पर विशेष श्रृंगार करती थी। नृत्य गायन एवं वीणावादन आमोद प्रमोद का मुक्य साधन था। राणा कुम्भा स्वयं अच्छा संगीतज्ञ था।

स्त्री समाज शिक्षा दीक्षा में भले ही अबावग्रस्त था, पर धर्म कर्म में उसकी अस्था अच्छी थी। पढी लिखी न होते हुए भी वह धर्म सभा में श्राविका श्रोतृ के रुप में उपस्थित हो धर्म श्रवणा कर आत्मिक कल्याण की और अग्रसर होती थी। व्रतोद्यापन पर उनके आग्रह से ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करवायी जाती और उन्हें साधु सन्तों को पठनार्थ दे दिया जाताथा।

उस समय भारत में रह कर भी मुसलमान भारतीयों एवं भारतीयता से सर्वथा पृथक् ही बने रहे। प्रत्येक मुसलमान चाहे वह कितनी ही क्षुद्र स्थिति का क्यों न हो, स्वयं को उँचे से उंचे भारतीय से श्रेष्ठ समक्षा था और यथा सम्भव हिन्दू आदि से कोई सामाजिक सम्पर्क न रखता था। किन्तु यह स्थिति अधिक नहीं चल पायी। जिन भारतीयों को इस्लाम अंगीकार करना पड़ा था। उन्हों ने अपने अधिकांश पुराने रीति रिवाज आचार विचार भी अपनाये रखे। इसके अतिरिक्त कुछ मुसलमान फकीरों मुइनुद्दीन चिश्ती, निजामुद्दीन औलिया आदि ने प्रचलित एवं व्यवहार्य इस्लाम को बहुत कुछ भारतीयता के रंग में रंग दिया। पूरपूजा, उर्म नृत्यगान, वेदान्त से मिलते जुलते सूफी विचारों आदि के प्रचार दोनों संस्कृतियों की बीच खाई को कम कर दिया।

भारतीय सन्तों ने अपने प्रवचनों एवं सत्सगों द्वारा हिन्दु मुस्लिम विद्वेष को दूर करने का प्रयत्न किया। जाति पांति और अन्य सामाजिक कुरितियों के विरुद्ध आन्दोलन किया। इस भारतीय धर्म एवं समाज सुधार आन्दोलन के प्रमुख पुरस्कर्ता पूर्वात्तर भारत में स्वामी रामानन्द, सन्त कबीर, पंजाब में गुरुनानक, दक्षिण में ज्ञानदेव, बंगाल में चैतन्यदेव, गुजरात में लोकाशाह और बुन्देलखम्ड में तारगास्वामी थे। उन्होने भारतीय जीवन को नयी स्फूर्ति दी, हिन्दू-मुस्लिम वैभनस्य को दूर किया तथा दोनों ही धर्मो में कुछ ऐसे सुधार किये जिन्होंने प्रत्यक्ष विरोधों को बहुत कुछ कम कर दिया। लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि मध्ययुग में इतना सब कुछ होते हुए भी आतताइयों की कुदृष्टि से अपनी बहु बेटियों की रक्षा करने के लिए पर्दाप्रथा, बाल विवाह, सती प्रता और छुआ छूत जैसी कु प्रथा ओं का जन्म भी हिन्दुओं में इसी काल में हुआ तथा जाति व्यवस्था भी समाज को कुछ और अधिक जकडती चली गयी।

इस काल में ब्रहाण पण्डतो, जैन मुनियों, भट्टारकों एवं यतियों ने भी अपनी अपनी धर्म संस्थाओं में समयानुकूल परिवर्तन करते हुए अपने प्रभाव से जनता एवं सासकों को प्रभावित करके, अपने कार्यो से देश के नैतिक स्तर को उन्नत करते हुये, धर्म कला और साहित्य आदि क्षेत्रों में सांस्कृतिक अभिवृद्धि करते हुए राष्ट्र पुनर्निर्माण में स्तुत्य योग दिया।

धार्मिक परिस्थिति:-

भारत धर्म प्राण देश है। यहाँ प्राचीन काल से ही मानव ने भैतिक सुख और ऐन्द्रिय विलासता को त्याज्य समक्ष कर अध्यात्म चिन्तन की और बढ़ने का प्रयास किया है। आनन्द तत्वकी खोज भारतीय धर्म साधना की महत्वपूर्ण सफलता है। असत्य से सत्य की और बढ़ने का चिरकाल से प्रयत्न होरहा है। राम-रावण का संगम असत्य पर सत्य की एवं भौतिकता पर आध्यात्मिकता की व्जय है।

सौजन्य :- श्री जयकुमार खुशालचंद गांधी मु. पो.अकलूज जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

सन् १३०० से १५०० ई० तक का काल भारत में धार्मिक क्रान्ति का युग था। इस काल में मेवाड़ के वीर राजाओं ने भारतीय स्वातन्त्र्य संघर्ष को सजीव रखा और अपने नेतृत्व में राजपूताने की प्रायः समस्त हिन्दू राज्य शक्तियों को एकत्र करके सुल्तानों से लोहा लेते हुये धार्मिक अत्याचारो पर प्रतिबन्ध का कार्य किया।

उस समय हिन्दु राज्यों में शैव और वैष्णव धर्म की प्रधानता हो चली थी। राणा ओं का कुल धर्म शैव था। महाराणा कुम्भा के समय वैष्णव धर्म की बड़ी प्रगति हुई। हजारों देवालय बने। अलाउद्दीन खिलजी के क्रमण के समय विनष्ट हुए मन्दिरों के अवशेषों पर नये मन्दिर बनाये गये। नये देवालय कुम्भेलगढ़, चितैड़, एकलिंगजी, आदि स्थानों में बनाये गये। कुम्भलगढ़ में भामादेव का मन्दिर अति विख्यात है। पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार यह पहले चौमुका मन्दिर था, जिसे बाद में वैष्णव मन्दिर के रुप में परिवर्तन कर दिया गया।

उस काल में जैन धर्म के प्रति प्रायः सभी राणा और अन्य शासक उदार एवं सहृष्णु थे। जैन साधुओं का सम्पूर्ण राजस्थान में उन्मुक्त विहार था। राजस्थान में अनेक स्थानों पर उनके तीर्थ, सांस्कृतिक केन्द्र और भट्टारकीय गादियां थी। कभी कभी राज्य वंश भी जैन धर्म के अनुयायी रहे। उस काल में जैनों की संख्या आज से बहुत अधिक थी। जैनी प्रायः क्षत्रिय और वैश्य जातियों में से ही थे। इन जैनों में मेवाड़ तथा अन्य राजपूत राज्यों के संरक्षण, शासन प्रबन्ध, धर्म, साहित्य, कला एवं सांस्कृतिक विकास में अपना स्तुत्य योग दिया।

मेवाड़ राज्य में समय समय पर नवीन जैन मन्दिर बनाये गए। देलवाड़ा का शिखर बंध ्दिनाथ का मन्दिर विक्रम संवत् १४६१ में बना। चितौड़ में विक्रम संवत १४६५ में जैन कीर्ति स्तम्भ के पास महावीर स्वामी का मन्दिर बनाया गया। उस समय मेवाड़ में ्यिका, सरस्वती और सच्चिया देवी की आराधना मुक्य रुप से होती थी। कुसी भी जैन साधु के राजधानी में आने पर राज परिवार उन्हे आदरपूर्वक राज प्रसाद में आमन्त्रित करके उनके आहारादि का प्रबन्ध करता था। राज सभाओं में जैन साधुओं के भाषण और शास्त्रार्य होते थे। उनका सन्मान होता था। उनके तीर्थो का संरक्षण राज्य की ओर से होता था। प्रायः यही व्यवहार अन्य राजपूत राजाओं का भी था।

तत्कालीन समय में समाज का प्रत्येक वर्ग अपने अपने धर्म में आस्थावान था। साधारमातः समाज में साधुजनें का यथोचित आदर सत्कार होता था। स्त्रियों में भावना अपेक्षाकृत अधिक थी। साधुजन समय समय पर विहार करते रहते थे और यथा समय अपने नियम साधना का परिपालन करते थे। आलोच्य कवि ब्रह्म जिनदास के गुरु एवं अग्रज भ्राता भट्टारक सकलकीर्ति बागड़ प्रदेश की भट्टारक गादी के सर्वाधिक प्रसिद्ध साधु थे, सकलकीर्ति नैमावा से बगाड़ प्रदेश लौटने के पस्चात् जनसादारण में साहित्यिक चेतना जाग-त करने के लिए स्थान स्थान पर विहार करने लगे। एक बार वे खोड़गा नगर आये और नगर के बाहर उद्यान में ध्यान लगा कर बैठ गए। उधर से नगर में आने वाली एक श्राविका ने जब उन्हे ध्यानमुद्रा में देखा तो घर जाकर उसने अपनी सास से साधु के नगर में आने के समाचार सुनाये, जिसे सुन कर सान हर्षित हुई और तत्काल उनकी बन्दना के लिए वन में पहुँच कर उसने तीन प्रदक्षिणा पूर्वक उन्हे नमोस्तु किया।

उस समय में होने वाली प्रतिष्ठाएँ, धर्मोपदेश, मुनियों का यत्र-तत्र विहार उस समय की धार्मिक भावनाओं के द्योतक हैं। स्वयं सकलकीर्ति के संघ मे रह कर ब्रह्म जिनदास ने विभन्न तीर्थो की यात्राएँ की यात्राएँ का और प्रतिष्ठाओं एवं जिनालयों के निर्माण में प्रेरणा दी। उनके समय में संवत् १४६०, १४६२, १४६७ आदि में प्रतिष्ठित मूर्तियाँ उदयपुर, डूँगरपुर एवं सागवाड़ा आदि स्थानों के जैन मन्दिरों में मिलती है। प्रतिष्ठा महोत्सवों के आयोजनों से तत्कालीन समाज में धर्म एवं संस्कृति के प्रति अनुराग विद्यमान था।

सौजन्य :- श्री हीरालाल माणिकलाल गांधी मु. पो.अकलूज जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

४

तीर्थ दर्शन की उत्कट भावना उस समय के धार्मिक जीवन का विशेष अंग थी। मनुष्य प्रायः संसार की असारता एवं धर्म के शास्वत सत्य मानकर थोड़ा सा सामान लेकर यात्रियों के साथ सम्मलित हो जाते और मार्ग में अनेक कष्टों को सह कर तीर्थो के दर्शन करते है। इसी प्रकार तीर्थोद्वार, साधु सेवा और दान आदि महान् कार्य थे। आज जैसे आवागमन के साधनों के अभाव के कारण तीर्थयात्राएँ लम्बे समय की होती थी। लौटने पर विशेष समारोह किये जाते थे। तीर्थयात्राओं का नेतृत्व करने वाले साधु होते थे। उनके संघ में साधु साद्वियां एवं श्रावक-श्राविकाएं आदि सभी होते थे।

ज्ञान प्राप्ति के लिये शास्त्र श्रवण एवं प्रवचन का प्रचलन था। जिससे सभी अपने इह एवं पारलौकिक जीवन का परिमार्जन करते थे। परवर्ती भट्टारकों की अपेक्षा इस काल के भट्टारक मुनि ही रहे जाते थे। निर्ग्रन्थ वेश में वे वीतरागता के सच्चे सन्देशवाहक थे। व्रतोपवास की समाप्ति पर इन्ही की प्रेरणा से श्रावकगणा ग्रन्थ रचना एवं उनकी प्रतिलिपियां करवा कर मन्दिरों में भेंट स्वरुप देते थे। जिनके स्वाध्याय से सभी अपने स्वपर हित में संलग्न रहते थे।

इस धार्मिक परिस्थिति से ब्रह्म जिनदारा पूर्णातः प्रभावित रहे। इनके काव्यों में धर्म का जो स्वरुप मिलता है वह इसका साक्षी है। सम्यक धर्माचरणा के लिए इन्होंने अपने काव्यों में पाठको को स्थान स्थान पर विविध रुप से सावधान किया है। एक प्रकार से इनके समस्त काव्य धार्मिकता का पुट लिए हुए है।

साहित्यक परिस्थिति :

साहित्य सूजन की दृष्टिसे मध्यकाल भारतीय साहित्य का स्वर्णयुग था। मुस्लिम शासकों से हिन्दू राजाओं के इस संघर्ष काल में भी विविध क्षेत्रों में विशाल साहित्य रच गया। अमीर खुसरो जैसे कवि ने हिन्दी में कव्वा की और संस्कृत हिन्दी तथा फारसी मिश्रित भाषा के प्रचलन किया। इस काल में भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन मिला। अपभ्रंश से जन भाषा विकसित हुई। भारतीय कवियों ने उत्साहवर्धक वीर गाथाओं एवं धार्मिक, ऐतिहासिक रासो ग्रन्थों का प्रणायन लोक भाषा अपभ्रंश में करके जहां वीरों के स्वातन्त्र्य प्रेम, युद्ध और देश प्रेम को प्रज्वलित रखा तथा उनके धर्म भाव को पृष्ट बनाया, वहीं उनहोंने मुसलमान सूफी सन्तों के सदृश निर्गुण भक्ति का परन्तु प्रेम मार्ग का नही, ज्ञान मार्ग का प्रचार किया। पूर्वोत्तर भारत में स्वामी रामानन्द और सन्त कबीर, पंजाब में गुरुनानक, दक्षिण में ज्ञानदेव और नामदेव, बंगाल में चैतन्य देव, बिहार में विद्यापति और ठाकुर, गुजरात में लोकाशाह और बुन्देलखण्ड में तारणस्वामी इन सभी सन्तों ने अपनी बोल चाल की लोक भाषा में साहित्य रचा।

गुजारात में दिगम्बर अम्नाय के नन्दिसंघ बलात्कारगण सरस्वती का काफी प्रभाव था। १पूर्वी शताब्दी तक सूरत, सौजित्रा, भडौच और ईडर आदि कई स्थानों में दिगम्बर भट्टारकों की गादियां स्थापित हो चुकी थी। इनमें आचार्य सकलकीर्ति, भुवनकीर्ति, ब्रह्मजिनदास, ब्रह्मा श्रुतसागर, ब्रह्मनेमिदास, ज्ञानभूषण, शुभचन्द्र आदि अनेक विद्धानों ने विविध विषयक विपुल साहित्य की संस्कृत एवं मरुगुर्जर भाषा में रचना की। इनके अतिरिक्त जिनेश्वर और भद्र शेखर की कथावलियां, प्रभाचन्द्र का प्रभावक चरित्र, मेरुतुर की चिन्तामणि जिनप्रभ सूरि का विविध तीर्थकल्प राज शेख का प्रबन्ध कोष आदि महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ भी इसी काल में ही लिखे गये। १५ वीं शती में अहमदाबाद में जैन ग्रन्थों की प्रतिलिपियों का कार्य कई संस्थाओं में बड़े पैमाने पर होता था। जैन सुधारक लोकाशाह ने (सन् १४३० से १४७६ ई०) मुसलमानी शासन काल को मन्दिरों और मूर्तियों के प्रतिकूल समभ्कर साहित्य निर्माण पर जोर दिया।

सौजन्य :- श्री जीवराज रावजी गांधी मु. पो.अकलूज जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

उस समय मेवाड़ी और गुजराती में कोई भेद नहीं था। जैन साधुओं ने अपनी लोक भाषा मरुगुर्जर में व्याख्यान एवं साहित्य के माध्यम से दोनों प्रदेशों में एकता बनाये रखने का सुन्दर प्रयास किया। राजकीय मित्रता के बाद भी अनेक वर्षो तक भाषा में एकता बनी रही। गुजरात और राजस्थान के भक्त कवियों ने अपनी भक्ति वाणी से गुजरात, राजस्थान और सौराष्ट्र के समस्त प्रदेश को मुखरित किया था। इन सन्तों के साथ इस मिश्रित भाषा में साहित्य रचना करने वाले कवियोंमें जैन और चारण कवि थे।

मध्यकाल में समस्त पश्चिमी भारत के भू-भाग में शीरसैनी अपभ्रंश का प्रचार था। जब अपभ्रंश भाषा अलग हुई तो दो विभिन्न भाषाएं अर्थात् गुजराती और राजस्थानी बनी। गुजराती एवं मारवाड़ी दोनों के ध्वनि तत्व और रुप तत्व का ऐतिहासिक और तुलनात्मक विवेचन करने पर कहा जा सकता है कि ये दोनों भाषायें गुजराती और राजस्थानी आज भी एक मां की दो बेटियां है। ब्रह्म जिनदास के काव्यों की भाषा इसका ज्वलंत प्रमाण है।

परमार राजा भोज और चौहान राजा बीसलदेव के पश्चात् राजपूत राजाओं में कुम्भा ही ऐसा शासक था जो स्वयं संस्कृत का विद्वान था और कई साहित्यकारों का आश्रयदाता भी। उसके आश्रित विद्वानों में कन्हव्यास, महेशभट्ट, सूत्रधार मंडन आदि संस्कृत के महान विद्वान थे। मेवाड़ में लाखा से लेकर कुम्भा कर कला एवं साहित्य का अद्भूत विकास हुआ। स्वयं कुम्भा ने संगीतराज की रचना की। उसने मेवाड़ी भाषा को पृथक से मान्यता दी। इस काल का संरचित साहित्य धार्मिक एवं लौकिक दोनों ही प्रकतार का उपलब्ध होता है। धार्मिक साहित्य में जैन साहित्य प्रमुख है। यद्यपि महाराणा कुम्भा दीर्घकाल तक युद्ध में व्यस्त रहा, फिर भी उसकी उत्कृष्ट साहित्यिक अभिरुचि के कारण वह युग मध्यकालीन राजस्थान के साहित्य क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

इस मध्यकाल में राजस्थान में कितने ही जैनाचार्य हुये जिन्होने भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की अपूर्व सेवा की। आचार्य हरिभद्र सूरि का चितौड़ से स्तय धिक सम्बन्ध रहा था। आगम ग्रन्थों पर इनका पूर्ण अधिकार था। तपागच्छीय सोमसुन्दर इस युग के महान आचार्य छे। महाराणा कुम्भा इनकी काव्य कला से अत्यन्त प्रभावित था। राजस्थान एवं गुजरात के सीमावर्ती प्रदेशों में साहित्यापराधना में संलग्न भट्टारक सकलकीर्ति, भट्टारक भुवनकीर्ति, आचार्य सोमकीर्ति, भट्टारक, ज्ञानभूषण, ब्रह्म जिनदास आदि को कभी नहीं भुलाया जा सकता।

साहित्य परिस्थिति १५वीं शताब्दी भट्टारक युग का र्स्वणकाल था। भट्टारकों ने अपनी ज्ञान साधना एवं तपस्या द्वारा देश में एक नये युग का सूत्रपात किया। इन्होंने संस्कृत के साथ लोक भाषा में निर्गुणा एवं सगुणा दोनों प्रकार की काव्य रचना से जन मानस को परितृप्त किया। ईडर, डूंगरपुर, सागवाड़ा, गलियाकोट में अनेक भट्टारको ने साहित्य के क्षेत्र में अपनी अनुपम सेवाएं दी। डूंगरपुर के आसपास का वागड़ प्रदेश रावल गइपाल एवं प्रतापसिंह के समय में साहित्य सेवा का केन्द्र थां। इनके शासन काल में विद्या का बड़ा विकास हुआ और कई ग्रन्थ लिखे गये। इन भट्टारकोंने जो सन्त मुनि कहलाते थे, स्वयं साहित्य सृजन के साथ अपने शिष्यों को भी इस और प्रेरित किया . स्वयं आलोच्य कवि ब्रह्म जिनदास ने अपने गुरुद्वय भट्टारक सकलकीर्चि एवं भट्टारक भुवनकीर्ति ने अपने साधु जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग किया। साहित्य सेवा की ऐसी नींव डाली जो कलान्तर में दीर्घकाल तक चलती रही। समाज और शासन दोनो द्वारा साहित्य सेवियों को यथोचित सम्मान प्राप्त था।

सौजन्य :- निर्मलकुमार छगनलालजी व्होरा
मु. पो. म्हसवड जी. सतारा
(महाराष्ट्र)

राजस्थान के इन सन्तोंने एक और भाषाओं में सैंकड़ो हजारों कृतियों का सृजन किया तो दूसरी और अपने पूर्ववर्ती आचार्यो, साधुओं एवं कवियों की रचनाओं का बड़ी श्रद्धा, प्रेम अपने पूर्ववर्ती आचार्यों, साधुओं एवं कवियों की कितनी ही प्रतियां लिखवा कर ग्रन्थ भण्डारों में विराजमान की और जनता को उन्हें पढ़ने एवं स्वाध्याय के लिये प्रोत्साहित किया । राजस्थान के अनेक हस्त लिखित ग्रन्थ दृष्टि से कभी जातिवाद एवं सम्प्रदाय के चक्कर में नहीं पड़े अपितु जहां भी उन्हें अच्छा एवं कल्याणकारी साहित्य उपलब्ध हुआ, वही से उसका संग्रह करके शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत किया । इस दृष्टि से स्थान स्थान पर ग्रन्थ भण्डार स्थापित किये गये । श्वेताम्बर साधु श्री जिनचन्द्र सूरि ने संवत् १४९७ में वृहद् ज्ञान भण्डार की स्थापना करके साहित्य की सैंकड़ों अमूल्य निधियों को नष्ट होने से बचा लिया ।

भट्टारक सकलकीर्ति एवं भुवनकीर्ति १५वीं शताब्दी के प्रमुख सन्त थे । राजस्थान एवं गुजरात में साहित्य एवं संस्कृति का जो प्रचार प्रसार हो सका था उसमें प्रमुख योगदान रहा था । इनके हृदय में आत्म साधना के साथ साहित्य सेवा की भी उत्कट अभिलाषा थी । ये दोनों सन्त बागड़ प्रदेश एवं गुजरात के कुछ भागों में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागरण का शंखनाद फूंकते रहे । उन्होंने स्थान स्थान पर ग्रन्थ संग्रहालय स्थापित किये, जिनमें उनके शिष्य शिष्य साहित्य लेखन एवं प्रचार का कार्य करते थे । इन्होंने अपने शिष्यों को भी साहित्य निर्माण की और प्रेरित किया ।

विश्व दृष्टि में विश्वहिंकर भगवान महावीर

भगवान महावीर ने जो संसार के सामने जो रास्ता रखा हे वह शान्ति और अमन का रास्ता है ।

प्रधानमंत्री स्व. श्री गुलजारीलाल नन्दा

सौजन्य :- श्री हुकमचन्द रावजी दोभाडा मु. पो.अकलूज जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

"भट्टारक परम्परा एवं उद्भव"

कौशल्या पतंग्या

भारत धर्म प्राण देश है। यहाँ प्राचीन काल से ही मानव ने भौतिक सुख और विलासिता को त्याज्य समझकर अध्यात्म चिन्तन की ओर बढ़ने का प्रयास किया है। आन्नद तत्त्व की खोज भारतीय धर्म साधना की महत्त्वपूर्ण सफलता है। असत्य से सत्य की ओर बढ़ने का चिरकाल से प्रयत्न हो रहा है।

सन् १३०० से १५०० ई. तक का काल भारत में धार्मिक क्रान्ति का युग था। इस काल में मेवाड के वीर राजाओं ने भारतीय स्वातन्त्र्य संघर्ष को सजीव रखा और अपने नेतृत्व में राजपूताने की प्रायः समस्त हिन्दु राज्य शक्तियों को एकत्र करके सुल्तानों से लोहा लेते हुये धार्मिक अत्याचारों पर प्रतिबन्ध का कार्य किया।

उस समय हिन्दु राज्यों में शिव और वैष्णव धर्म की प्रधानता थी। राजाओं का कुल धर्म शिव था। महाराजा कुम्भा के समय वैष्णव धर्म का प्रभाव तेजी से बढ़ा। हजारों देवालय बने। अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय विनिष्ट हुये मन्दिरों के अवशेषों पर नये मन्दिर बनाये गये। नये देवालय कुम्भलगढ़, चित्तौड़, एकलिंगजी, आबु आदि स्थानों में बनाये गये। कुम्भलगढ़ में भामदेव का मन्दिर अति विख्यात है। पुरातत्व वेत्ताओं के अनुसार यह पहिले चौमुखा मन्दिर था जिसे बाद में वैष्णव मन्दिर के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।

उस काल में जैन धर्म के प्रति प्रायः सभी राजा और शासक उदार एवं सहिष्णु थे। जैन साधुओं का सम्पूर्ण राजस्थान में उनमुक्त विहार था। राजस्थान में अनेक स्थानों पर जैन तीर्थ, सांस्कृतिक केन्द्र और भट्टारक गादियाँ थी। कुछ राज्यवंश भी जैन धर्म के अनुयायी रहे। उस काल में जैनों की संख्या भी अधिक थी, जैन प्राय क्षत्रिय और वैश्य जातियों में से ही थे। इन जैनों ने मेवाड़ तथा अन्य राजपूत राज्यों के संरक्षण में धर्म, साहित्य, कला, एवं सांस्कृतिक विकास में सराहनीय योगदान दिया। मेवाड़ राज्य में समय समय पर नवीन जैन मन्दिर बनाये गये। देलवाड़ा का शिखर बंध, आदिनाथ का मन्दिर विक्रम संवत १४९१ में बना। चितौड़ में विक्रम संवत १४९५ में जैन किर्ति स्तम्भ के पास महावीर स्वामी का मन्दिर बनाया गया। उस समय मेवाड में अम्बिका, सरस्वती और सच्चिया देवी की आराधना मुख्य रूप से होती थी।

जैन साधुओं के राजधानी में आने पर राज परिवार उन्हें आदरपूर्वक राज प्रसाद में आमन्त्रित करते थे। आहार आदि भी देते थे। राज सभाओं में जैन साधुओं के भाषण और शास्त्रार्थ होते थे।

तत्कालीन समय में समाज का प्रत्येक वर्ग अपने अपने धर्म के प्रति आस्थावान था,और साधुओं का यथोचित सत्कार करता था। स्त्रियों में धार्मिक भावनाऐं अपेक्षाकृत अधिक होती थी।

साधुजन समय समय पर विहार करते रहते थे, और अपने नियम साधनो का परिपालन भी करते थे। आलोच्य कवि ब्रह्म जिनदास के गुरू एवं अंग्रेजी भ्राता भट्टारक सकलकीर्ति बागड़ प्रदेश की भट्टारक गादी के सर्वाधिक प्रसिद्ध साधु थे।

ज्ञान प्राप्ति के लिये शास्त्र- श्रवण एवं प्रवचन का प्रचलन था। परवर्ती भट्टारकों की अपेक्षा इस काल के भट्टारक मुनि ही कहे जाते थे। निर्ग्रन्थ वेश में वे वीतरागता के सच्चे सन्देशवाहक थे। व्रतोपवास की समावष्टि पर इन्हीं की प्रेरणा से श्रावक ग्रन्थ रचना एवं उनकी प्रतिलिपियाँ करवा कर मन्दिरों में भेंट स्वरूप रखते थे।

सौजन्य :- श्री मोतीलाल भाईचंद दोशी
मु. पो.अकलूज जी. सोलापुर
(महाराष्ट्र)

१५वीं शताब्दी भट्टारक युग का स्वर्णकाल था। भट्टारकों ने अपनी ज्ञान साधना एवं तपस्या द्वारा देश में नये युग का सूत्र पात किया। इन्होंने संस्कृत के साथ लोक भाषा में निर्गुण एवं सगुण दोनों प्रकार की काव्य रचना से जनमानस को परितृप्त किया। ईडर, डूंगरपुर, सागवाड़ा, गलियाकोट में अनेक भट्टारका नें साहित्य के क्षेत्र में अपनी अनुपम सेवायें दी। डूंगरपुर के आसपास का बागड़ प्रदेश रावल गईपाल एवं प्रतापसिंह के समय में साहित्य सेवा का केन्द्र था। इनके शासन काल में कई ग्रन्थ लिखे गये। इन भट्टारकों में जो सन्तमुनि कहलाते थे, स्वयं साहित्य सृजन के साथ साथ अपने साधु जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग किया। इस काल के साधुओं द्वारा साहित्य सेवा की ऐसी नीवं डाली गई जो दीर्घकाल तक चलती रही।

राजस्थान के सन्तों ने एक ओर विविध भाषाओं में हजारों कृतियों का सृजन किया तो दूसरी ओर अपने पूर्ववर्ती, आचार्यो, साधुओं एवं कवियों की रचनाओं का संग्रह भी किया। एक-एक ग्रन्थ की अनेक प्रतिलिपियाँ बनाकर ग्रन्थ भंडारो में विराजीत की। उन्हे जहाँ भी अच्छा एंव कल्याणकारी साहित्य उपलब्ध हुआ, उनका संग्रह कर शास्त्र भण्डारों में संग्रहित किया। श्वेताम्बर साधु श्री जिनचन्द्रसूरि ने संवत १४९७ में वृद्ध ज्ञानभंडार की स्थापना करके साहित्य की सेकड़ों अमूल्य निधियों को नष्ट होने से बचा लिया।

भट्टारक सकलकिर्ती एवं भुवनकीर्ती १५वीं शताब्दी के प्रमुख सन्त थे। राजस्थान एवं गुजरात में साहित्य एंव संस्कृति का जो प्रचार प्रसार हो सका उसमें उनका मुख्य योगदान रहा। इनके ह्रदय में आत्मसाधना के साथ साहित्य सेवा की भी उत्कृष्ट अभिलाषा थी। ये दोनो सन्त साहित्य एंव सांस्कृतिक जागरण का शंखनाद फूकते रहे। इन्होंने स्थान-स्थान पर संग्रहालय स्थापित किये, जिनमें उनके शिष्य साहित्य लेखन एवं प्रचार का कार्य करते थे।

भट्टारक उद्‍भव

इतिहास के नेत्र हैं- शिलालेख, ग्रन्थ, पुरातत्व, भूगर्भ विज्ञान एवं सबसे अन्त में मनुष्य का अनुमान ज्ञान।

इन सभी आधार स्तम्भों को ध्यान में रखते हुये जैन समाज के इतिहास को हम तीन काल खंडो में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम काल खंड भगवान महावीर के निर्वाण के बाद करीब ६०० वर्ष तक का हैं। इस समय जैन साधुओं ने ऋषभ प्रणित धर्मचक्र को गति दी, उसे समायिक और युगानुरूप बनाये रखने के दायित्व का निर्वाह किया। ज्ञान के आधार पर मनिषियों, त्यागियों व आचार्यों ने तीर्थंकरों की वाणी को सुरक्षित रखा, परिणाम स्वरूप उन्हें लिखित ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं पडती थी। जन साधारण से सम्पर्क कायम रखने के उद्देश्य से वे निरन्तर भ्रमण करते थे। उन्हें मठ, मन्दिरों या वाहन, आसनों की आवश्यकता नही थी। उनके तपश्चर्या के नियम भी भगवान महावीर के आदर्श से बहुत कुछ मिलते जुलते थे।

ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी से जैन समाज व्यवस्था प्रिय होने लगा। व्यवस्था का यह युगं भी करीब ६०० वर्ष तक चलता रहा। आचार्यो ने काँटो की तूलि से भगवान के पावन जीवन चरित और सन्देशो को अंकित कर ताड़ पत्र के वृक्षो को सुशोभित किया। इस युग के आरम्भ में कुन्द कुन्द और धरसेनाचार्य ने विशाल जैन शास्त्रों को सूत्र बद्ध किया। तत्वज्ञान के क्षेत्र में भी समन्तभद्र और सिद्धसेन के मौलिक विवेचन को अकलंक और हरिभद्र द्वारा सुव्यवस्थित संप्रदाय का रूप प्रदान किया गया।

पल्लव,कदम्ब, गंग और राष्ट्रकूट राजाओं के आश्रय से इसी युग में मठ और मन्दिरों का निर्माण तीव्र गति से हुआ तथा आचार्य परम्पराऐं सर्वदेशीय रूप छोड़कर स्थानीय रूप ग्रहण करने लगी। इस काल खंड में साधु धर्म को जैन धर्म का औत्सार्गिक रूप माना जाने लगा। एवं श्रावक धर्म को अपवाद रूप। इस समय के

सौजन्य :- श्री भारतलाल भालचंद्र फडे मु. पो.अकलूज जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

ग्रन्थ अधिकांशतः साधुओं को लक्ष्य करके लिखे गये थे। जब धीरे धीरे जैन साधु का आचार पालन कम होता गया तो श्रावक धर्म की आवश्यकता महसूस होने लगी।

जैन धर्म के धार्मिक और सामाजिक रूप में परिवर्तन :

शैव और वैष्णव धर्म के प्रभावरूप जैन धर्म में भी परिवर्तन आया, इसकी स्पष्ट झलक जिनसेनाचार्य द्वारा रचित महापुराण में दिखाई देती है। जिनासेनाचार्य ने महापुराण में श्रावकों के षोडस संस्कारो की विशेष रूप से चर्चा की, इसका मुख्य उद्देश्य था तत्कालीन ब्राह्मण समाज के प्रभाव का सामना किया जा सके।

समन्तभद्र आचार्य ने अपने रत्नकरण श्रावकाचार में कहा है "धार्मिकों बिना धर्म नहीं"। इस उक्ति को सूत्र रूप में ग्रहण करके जैनचार्यों ने लौकिक धर्म को अपने धर्म में समाविष्ट कर लेना उचित समझा, जो धर्म सम्मत न होते हुये भी लोक में अपना विशेष जुट प्रभाव रखते थे। सोमदेव ने उपासकध्याय में स्पष्ट लिखा है कि गृहस्थ के दो धर्म होते हैं- लौकिक और पारलौकिक। लौकिक धर्म लोकानुसार चलता है और पारलौकिक आगम अनुसार। जिससे धर्म की हानि न होवे तथा व्रतो में दोष न लगे वह लौकिक विधि सभी जैनो के लिये मान्य है।

आचार्य कुन्द कुन्द ने अपने पंचास्तिकाय में (गा.१६६) अरहन्त, सिद्ध, चैत्य और प्रवचन भक्ति को निर्देश किया है, तथा प्रवचनसार में (गा.१-६७) देव, यति और गुरूपूजा का निर्देश दिया है। अतः जैन धर्म में मूर्तिपूजा की परम्परा प्राचीन है, किन्तु उत्तरकाल में उसको ही विशेष रूप से प्रधानता दी गई। मूर्ति तथा मन्दिरों का निर्माण श्रावक का प्रधान कर्म बन गया। सातवीं शताब्दी के पद्मचरित (पर्व १८,श्लोक २१३) में कहा है जो जिन भगवान की आकृति के अनुरूप जिनबिम्ब बनवाता है, उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं। उसी शताब्दी के वारंग चरित (सर्ग २२) मे भी जिनपूजा के महत्ता के साथ जिनबिम्ब और जिनालय निर्माण का बहुत महत्व बतलाया है। दसवीं शताब्दी से तो इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि हुई।

आचार्य अमितगति ने सुभाषित रत्न सन्दोह (श्लोक ८७६) में लिखा है कि जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान की अंगुठ प्रमाण प्रतिमा बनवाता है वह अविनाशी लक्ष्य प्राप्त करता है। आचार्य पद्मनन्दि उससे भी बढ़कर कहते हैं, जो बिम्ब पत्र के प्रमाण जिनमन्दिर बनाकर उसमें सरसों के बराबर जिनप्रतिभा की स्थापना करता है, उनके पुण्य का वर्णन सरस्वती भी नहीं कर सकती। आचार्य वसुनन्दि ने उनसे भी बढ़कर उसमें सरसों के बराबर जिन प्रतिभा की स्थापना करता है वह मनुष्य तीर्थंकर पद के योग्य पुण्यबन्ध करता है। (वसु. श्रा.गा. ८७९)। इस प्रकार के कथनों, एवं विचारो के मूल मै जैन धर्म को प्रोत्साहन देना एवं मुसलमानों के द्वारा मन्दिरो और मूर्तियों के खण्डन के फलस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियो में जैन धर्म के अस्तित्व को बनाये रखना था। मन्दिरों और मूर्तियों के निर्माण को महत्व देने के साथ ही साधुओं की चर्या में भी अन्तर आया। वे उसका उपयोग भी ज्ञान आराधना से हटकर मन्दिर और मूर्तियों के निर्माण एवं रख रखाव में करने लगे धीरे धीरे वे वनवासी से चैत्यवासी बन गये। ऐतिहासिक प्रमाणो से यह स्पष्ट हैं कि दक्षिण में जैन साधुओं में चैत्यांस के साथ मठाधीश बने की प्रवृति ७वीं शताब्दी से ही आ गई थी, इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही प्रसिद्ध ग्रन्थकार भी इस प्रवृत्ति से अछूति नहीं रहे। इसके कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं :

सौजन्य :- श्री राजेश सुरजमल महेता मु. पो.अकलूज जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

प्रमाण :

(१) राजाधिराज विजयादित्य ने पूज्यपाद के शिष्य उदयदेव को शंख जिनेन्द्र मन्दिर के लिये शक सं ६२२ में कदर्म नामक गाँव दान में दिया ।

(२) पार्श्वनाथ चरित की प्रशस्ति में बादिराजसूरि ने अपने दादा गुरू श्रीपालदेव को "सिंहपुरै मुख्य " लिखा है। न्यायविनिश्चय विवरण की प्रशस्ति में अपने को सिंहपुरेश्वर लिखा है। इससे यही प्रतीत होता है कि वे सिंहपुर नामक स्थान के स्वामी थे । सिंहपुर उन्हें जागीर में मिला था और वे उसके मठाधीश थे ।

(३) वल्लग्राम के वमिरे देवमन्दिर में शक सं १०४७ का एक शिलालेख है जिसमें उक्त वादिराज के वंशज श्रीपाल योगीश्वर को होयसलवंश के विष्णुवर्धन पोयसल देव ने जिन मन्दिरों के जिर्णोद्धार और ऋषियो के आहार दान के लिये शल्यनामक ग्राम दान में दिया था ।

(४) राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय के सामन्त अरिकेसरीने श.सं. ८८८ में अपने पिता वद्दिग के बनवाये हुये शुभधाम जिनालय की भरम्मत, और चुने की कलाई कराने तथा पूजोपहार चढाने के लिये सोमदेव को विनकटुपल्लु गाँव दान में दिया ।

इस प्रकार के दानपत्र सेकडो हैं । जैन शिलालेख संग्रह के चारों भाग ऐसी दानों से भरे हुये हैं। चतुर्थ भाग के शिलालेख के नं.२०८ में मन्दिरों तथा मुनियों को गाँव, जमीन, सुवर्णकारों की आय आदि देने का वर्णन है। इन लेखो से स्पष्ट है, दिं. जैन परम्परा के बडे बडे मुनि भी अपने अधिकार में गाँव आदि रखते थे। उनकी आय से वे मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराते थे, दूसरे मुनियों के आहार की व्यवस्था करते थे । दानशालायें बनवाते थे। भगवान महावीर के निर्वाण से भद्रबाहु (द्वितीय) वीर संवत ४७२ ५१५ तक मूल संघ परम्परा एक ही आचार्य के सानिन्ध्य में चलती रही । उनके बाद उनके शिष्यो में मतभेद होने के कारण अहँतबली ने वीर सं ५५० ईसवी २३ में मूलसंघ का विभाजन किया जिसका विस्तृत वर्णन प्रथम भाग में पृष्ठ ३८ से ८० में किया गया है। इस विभाजन में आचार्य अर्हतबली ने आचार्य माधनंदी को नंदिसंघ का आचार्य बनाया । हूमड़ों के पूर्वजो ने उसी समय से नंदिसंघ और आगे जाकर नंदिसंघ के बलात्कार गण सरस्वतीगच्छ को स्वीकार किया, और उसमें होनेवाले आचार्यों को परंम्परा से अपना विशेष आचार्य स्वीकार किया ।

(१) इस नंदिसंघ में क्रम नं. ११ देवनंदि पूज्यपाद (विक्रम सं ८७८-५३८) सबसे पहले संस्कृत भाषा में पंचामृत अभिषेक तथा शांतिधारा और पूजा अभिषेक की पद्धति का निर्माण किया । इसके पहले जो कुछ भी इन विषयों के साहित्य उपलब्ध है, परन्तु वह प्राकृत भाषा में है।) उस समय से लेकर वर्तमान तक सारे भारत में हूमड़ (विशेषकर दक्षिण एंव गुजरात) में उसी पद्धति से पूजा अभिषेक करते हैं। हूमड़ो के १२वीं शताब्दी से लेकर १९वीं शताब्दी तक सभी भट्टारकों ने इसी पद्धति को अपनाया ।

आचार्य गुणनंदि जो आचार्य पूज्यपाद के शिष्यो में क्रम १२ पर थे ने विक्रम संवत ८७३-८७७ में ऋषिमंडल स्त्रोत की संस्कृत में रचना की । उसी स्त्रोत का वर्तमान में भी सभी हूमड़ प्रतिदिन पाठ करते हैं। हूमड़ों के सभी जिनालयों, चैत्यालयों एवं धरो में ऋषिमंडल यंत्र स्थापित करके पूजे जाते हैं। चौथी शताब्दी से नंदिसंघ के आचार्यों ने श्रावकों के लिये जो पद्धति का निर्माण किया उसी मूल पद्धति को कुछ आवश्यक संशोधनो के साथ हूमड़ों के सभी भट्टारकों ने अपनाया एंव प्रचार प्रसार किया। जैसा कि उपर बताया जा चुका है, विक्रम की ५वीं शताब्दी से १०वीं शताब्दी तक राजनैतिक, सामाजिक, परिस्थितियो के अनुसार आचार्यो

सौजन्य :- श्री हीरालाल अमौलिक व्होरा मु. पो.अकलूज जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

और मुनियों के आचरणो में परिवर्तन होने लगा, उसके पश्चात १०वीं से १३वीं शताब्दी तक राजनैतिक परिस्थितियों में बहुत परिवर्तन हुआ । विदेशो के आक्रमण के कारण विशेष मन्दिरों मूर्तियों आदि का विनाश होने लगा। धर्म, संस्कृति, एवं रीति-रिवाजों का रक्षण करना कठिन हो गया। राजस्थान और गुजरात में अनेक मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ा गया व मन्दिरों को खंडहारो में बदल दिया गया। मुसलमान और नवाबों के राज्य में नग्न साधुओं का विहार अत्यन्त कठिन हो गया। इन सब परिस्थितियो में भट्टारक समप्रदाय का उद्‌भव हुआ।

"मध्यकाल पूर्वार्ध" सं १२००-१५५०

सन् १२०० से १५५० तक भारत में मुसलमान शासकों का शासन रहा। सन् १२०६ से लेकर १२८० तक गौरीवंश, १२८० से १३३० तक खिलजी वंश, १३२१ से १४१३ ई तक तुगलक वंश, और १४१४ सं लेकर १४५७ ई. तक सैयद वंश और १४५९ से १५२६ तक लोदीवंश, १५२६ से १५३७ तक मुगल सम्राट, बांबर हुमायु रहे, इसी बीच १५४० से १५५३ तक शेरशाह सूरी ने शूरीवंश की स्थापना कर राज्य बागडोर सम्हाली, पर पुनः मुगलसम्राट अकबर ने अपने नेतृत्व में मुगलों को संगठित कर भारत पर एक छत्र राज्य स्थापित किया, अन्तिम मुगल सम्राट बहादूरशाह जफर हुये, जिन्हें अग्रेजोंने रगून में बन्दी बना लिया था ।

सन् १२९२ में गजनी के सुलतान मुहम्दगौरी ने भारत के राजपूत राजा पृथ्वीराज चौहान एंव जयचन्द गहड़वाल को पराजित कर दिल्ली, अजमेर एवं कन्भोज पर अधिकार कर लिया । पुनःश्य दिल्ली को अपना केनद्र बिन्दु बनाकर पंजाब से लेकर बिहार तक और करीब सम्पूर्ण उत्तर भारत के बहुत से भागो को अपने अधिकार में कर लिया ।

इस लम्बे मुसलमानी शासन काल में उपरोक्त चारो वंशो में बीच बीच में कमजोर शासक भी हुये, जिसके परिणाम स्वरूप प्रान्तीय सुबेदारों ने अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया, देश में कई मुसलमानी सल्तानों फैल गई । इन तुर्क सुल्तनत के द्वारा अधिकृत और शासित प्रदेशों में भारतीय संस्कृति एंव धर्म अपने अस्तित्व के लिये झुमने लगा। निरकुंश और अत्याचारी शासकों के जुल्म से प्रजा के जानमाल एवं इज्जत पर भी आँच आने लगी। इन सुल्तानों में धार्मिक सहिष्णुता का अभाव था, ऐसी परिस्थिति में जैन धर्म को बचाये रखना अत्यन्त आवश्यक था ।

अतः जैन आचार्यो ने तंत्र मंत्र और अपनी प्रतिभा के द्वारा मुसलमान शासकों को प्रभावित किया व धर्म की रक्षा का फरमान जारी करवाया । मुगल सम्राट अकबर धार्मिक सहिष्णुता से ओत प्रोत था. इसका प्रमाण है कि वह सप्ताह में एक बार सर्वधर्म सभा बुलाता था, जिसमें जैन आचार्यो को भी आमन्त्रित किया जाता था। अकबर के बाद के शासकों में औरगंबाद कट्टर मुसिलम शासक हुआ, जिसने मूर्तियाँ तोडी, मन्दिर नष्ट किये, एवं लोगों को धर्म परिवर्तन करने के लिये बाध्य किया। हिन्दुओं पर जजिया कर लगाये। इस अमानुषिक शासनकाल में भट्टारको ने महत्वपूर्ण भूमिका अदाकर जैन धर्म को बचाये रखा।

डॉ. कैलाशनाथ जैन ने अपनी पुस्तक में लिखा हैं- " **Bhattarakas rendered Valuable services to jaimsm in medieval times** " आगे वे स्पष्ट करते हुये लिखते हैं कि " **The term Bhataraka is applied to a particular type of jain ascetics who unlike Munis assumed the position of religious rules and enjoyed supreme authority in religious matters.**

आपने अपने इतिहास में लिखा है सकलकिर्ती, एवं शुभचन्द्र जैसे महान पंडितज्ञ भट्टारकों ने साहित्य की रचना संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती एवं राजस्थानी भाषाओं में की एवं शिलालेखो को सुरक्षित रखने का

सौजन्य :- श्रीजम्बूकुमार गौतमचंद दोशी

संग्रामनगर, मु. पो.अकलूज
जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

महत्वपूर्ण कार्य भी किया। भट्टारकों ने व्याकरण, गणित, चिकित्सा के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया। कला एवं संस्कृति, संगीत एवं चित्रकारी को भी प्रश्रय प्रदान किया। भट्टारको ने पवित्र स्थानों के प्रबन्धन का कार्य भी किया। जैसे मुड भद्री श्रवण बोलगेला, एवं ज्वालामालिनी देवी की प्रबन्धन का कार्य आज भी भट्टारकों के हाथो में है।

भट्टारको ने मंत्र विद्या द्वारा सिद्धियाँ भी प्राप्त की और अनेक बार इन सिद्धियों के बल पर जनसेवा भी की। भट्टारको ने अपने प्रभाव के द्वारा समय समय पर हिन्दु और मुसिल्म राजाओं को इस बात के लिये प्रेरित किया कि वे निश्चित पर्व के दिनों में पशुओं का वध न करें।

इस तरह आचार्यो का एक समूह भट्टारकों के रूप में अस्तित्व में आया। इन भट्टारको ने विधिवत् अपने संघो की स्थापना की जो इस प्रकार थे।

(१) प्रत्येक संघ अपना शिष्य समुदाय रखता था। शिष्य समुदाय में यह जरूरी नहीं था कि वे जैन या किसी विशेष जाति के हो। विशेष योग्यता रखने वाले व्यक्ति को ही शिष्य बनाया जाता था। आचार्यवद भी विशेष योग्यता प्राप्त शिष्य ही प्राप्त कर सकता था। इसी सर्वमान्य प्रणाली का नंदीसंघ बलात्करगण सरस्वतीगच्छ के आचार्यो ने भी अनुकरण किया।

(२) नंदीसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ के भट्टारक, जैनियों द्वारा निर्मित मन्दिरों में प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न करवाते थे उसमें वे अपने संघ, गणगच्छ, और परम्परा का मूर्तिलेख में उल्लेख करते थे, साथ प्रतिष्ठा करवानेवाले श्रेष्ठी की जाति गोत्र आदि का भी उल्लेख करते थे। इसी प्रकार अन्य संघ के भट्टारक भी मूर्तिलेख का कार्य करवाते थे।

(३) भट्टारको के शिष्य बालब्रह्मचारी रहते थे। इन शिष्यो को बाल्यकाल से ही सभी प्रकार की धार्मिक, साहित्यिक, मंत्र-तंत्र, ज्योतिषी आदि की शिक्षा दी जाती थी। इन शिष्यो में से किसी एक योग्य शिष्य को भट्टारक की गद्दी दी जाती थी। यह कार्य समाज की सम्मति से विशेष आयोजित समारोह में सम्पन्न किया जाता था। भट्टारक की गद्दी ग्रहण करनेवाले आचार्य का प्रमुख कार्य, धार्मिक, क्रियाओं, सामाजिक संस्कारो और रीति रिवाजों के बारे में उपदेश देना था। वह पूजा विधान प्रतिष्ठा आदि कार्यों का संचालन करते थे। मन्दिर व मठों की व्यवस्था का कार्य भी देखते थे। पूज्यपाद के अभिषेक, शांतिधारा, पूजा आदि के मूल संस्कृत का अनुवाद,हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में वर्तमान में उपलब्ध है। नन्दीसंघ के सभी भट्टारकों ने उसी मूल पाठ के अनेक अनुवाद किये और उसी पद्धति को प्रचालित रखा। वर्तमान हूमड़ समाज ने भी पूज्यपाद स्वामी द्वारा प्रचालित अभिषेक पूजा आदि पद्धति को बनाये रखा है।

"*हूमड़ समाज और भट्टारक*"

हूमड़ समाज के इतिहास में भट्टारकों का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्म, समाज, संरकृति की सुरक्षा के लिये किये गये भट्टारको के प्रयासों को इतिहास में स्वर्ण अक्षरो में अंकित किया जाना चाहिये।
आचार्य बंसतकीर्ति से भट्टारक पद्मनन्दी तक भट्टारको की गादी अजमेर दिल्ली में स्थापित रही, इसका विस्तार गुजरात, के ईडर, राजस्थान के सागवाड़ा और दक्षिण में भी हुआ।
भट्टारकों की दूसरी गादी सुरत में स्थापित हुई जिसका विस्तार बारडोली, जेरहर तक हुआ।भट्टारकों की गादियों के विस्तार के साथ, अनेक स्थानों पर भट्टारको को राज्य की ओर सम्मानित किया गया एवं भट्टारकों ने शिक्षा एवं धर्म के प्रचार प्रसार हेतु ठोस कार्य किये.

सौजन्य :- श्री हिम्मतलाल केशवलाल फडे मु. पो.अकलूज सुभाष पेठ
जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

(१) मोहम्दगौरी द्वारा भट्टारक प्रथा के प्रवर्तक आचार्य बंसककीर्ति को अजमेर के राजदरबार मे सम्मान दिया गया।

(२) दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह ने भट्टारक प्रभाचन्द्र को राजमहल में बुलाकर सम्मानित किया। प्रभाचन्द्रजी के उपदेश में प्रभावित होकर, जैन साधुओं को बिना रोक टोक के राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं दक्षिण में संघ निकालने, यात्रा करने मन्दिरों का जीर्णोद्धार करने की अनुमति प्रदान की।

(३) फलस्वरूप १३०० से १७०० (१७००) तक गुजरात और राजस्थान के जितने जिनालय विदेशियो के द्वारा तोडे गये थे उनका जीर्णोद्धार भट्टारको ने करवाया।

(४) पाचीन हस्त लिखित की प्रतिमाँ बनवाकर अपनी देख रेख में उन शास्त्रो को शास्त्र भंडार में जमा करवाने का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य भट्टारको ने किया इस लिये समस्त जैन समाज आपका ऋणि रहेगा। इस परिपेक्ष्य में कुछ बातें स्पष्ट परिलक्षित होती हैं कि

(१) श्रावक हस्तलिखित ग्रंथ मन्दिरों में रखते थे, एवं आचार्यो को प्रदान करते थे, एवं आचार्यो को प्रदान करते थे।

(२) शास्त्र दान की परम्परा से श्रुत एवं जिनवाणी के संरक्षण को बल मिला।

(३) भट्टारकों द्वारा ग्रंथ संकलन और श्रुत रक्षा को आश्रय प्राप्त हुआ।

(४) विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण से छिन्न भिन्न होते हूमड़ जैन समाज की संस्कृति, धर्म और सामाजिक तानेबाने को भट्टारकों ने बचाये रखने में अपना सक्रिय योगदान दिया। भट्टारको का यह गौरवशाली योगदान इतिहास में स्वर्णिम अक्षरो में अंकित हैं।

"*भट्टारक बंसतकीर्ति से पद्मनंदी*"

नन्दीसंघ की परम्परा में क्रमांक ७३ में आचार्य बंसतकीर्ति सं १२६१ में हुये, उनके समय भट्टारक प्रथा का प्रारम्भ हुआ। उनकी शिष्य परम्परा पट्टावली क्रमांक ७४ से ७९ तक चलती रही जो निम्न हैं-

क्रमांक - -	७३	बंसतकीर्ति (वि .सं. १२६१.१२६६ ईसवी १२०४.१२०९)
क्रमांक - -.	७४	विशालकीर्ति (संवत १२६६)
क्रमांक - -	.७५	शुभकीर्ति
क्रमांक - -.	७६	धर्मकीर्ति (धर्मचन्द) (१२७१.१२७६)
क्रमांक - -.	७७	रत्नकीर्ति (१२७६.१३१०)
क्रमांक - -	७८	प्रभाचन्द्र (१३१०.१३८५)
क्रमांक - -	७९	पद्मनंदि (१३८५.१४६२)

पद्मनंदि ने अपने तीन शिष्यों द्वारा तीन भट्टारक गद्दी स्थापित की

(१) भट्टारक सकलकीर्ति	--	ईडर-
(२) भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति	-- -	सूरत
(३) भट्टारक शुभचन्द्र	- -	दिल्ली
ईडर शाखा से	- -	सागवाडा,भानपुर, कांरज और भातुर शाखा की स्थापना हुई।
सूरत शाखा से	- -	जेरहट, बारडोली में गद्दी स्थापति हुई।
दिल्ली शाखा से	- -	अटेर, नागोर, चितौड़ में भट्टारकों की गद्दी स्थापति हुई

सौजन्य :- श्री केशवचंद रजूचंद फडे मु. पो.अकलूज सुभाष पेठ. सोलापुर, (महाराष्ट्र)

"भट्टारक संप्रदाय के प्रवर्तक "

भट्टारक बंसतकीर्ति (पट्टावली क्रम. ७३) वि.सं. १२६१-१२६६ ई.सं. १२०४ से १२०९)

सैद्वान्तिको भयकीर्तिर्वनवासी महातपा :।

बसंतकीर्तिर्व्याधांह्रिसेवितःशीलसागरः ॥

विक्रम सं. १२६१ में मूलसंघ बलात्करागण सरस्वतीगच्छ के आचार्य बंसतकीर्ती थे। उस समय की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियो अनुकुल नहीं थी। राजस्थान के मांडु जिले के मंडप दूर्ग नामक स्थान पर मलेच्छों द्वारा नग्न मुनियों पर उपसर्ग किये जाते थे। मुनियो का आहार विहार के लिये बाहर निकलना मुश्किल हो गया था। अतः आचार्य बंसतकीर्ति ने मुनियो को चर्या आदि के समय चटाई टाट आदि से शरीर को ढक लेने का उपदेश दिया और फिर चर्या के बाद छोड़ देने का। इस घटना के अनेक ऐतिहासिक और पौराणिक प्रमाण उपलब्ध हैं। आचार्य श्रुतसागर ने अपने ग्रन्थ "षट प्रभृषटीका " के पृष्ठ २१ पर निम्न श्लोक लिखा हैं।

कलौकिल म्लेच्छदयो नग्न द्रष्टो पद्रवं यतीनां कुर्वन्ति तेन मण्डपदुर्गे श्रीबसन्तकीर्तिना स्वाभिना चर्यादिवेलायां तट्टी सादरादिकेन शरीरमाच्छाय चर्यादिकं कृत्वा पुनस्तन्मुच्चन्ती व्युपदेशः कृतः संयमिनां इत्थपवादवेषः।

आचार्य श्रुतसागर के अनुसार उस समय मुसलमानों का आंतक बहुत बढ गया था इसलिये बसंतकीर्ती ने अपवाद रूप उपरोक्त वेश को धारण किया इसी कारण वे भट्टारक सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने गये। कहा जाता है कि मोहमम्दगौरी ने अजमेर में अपनी बेगम के आग्रह पर बंसतकीर्तिको राजदरबार में बुलाकर सम्मानित किया था। सुलतान गयासुदीन बलवन के समय सन् १२७२ ई में दिल्ली में एक अग्रवाल श्रावक ने "कुन्द कुन्दाचार्यकृत पंचास्तिकाय " ग्रन्थ की प्रति लिखाई थी।

चितौड़ के मानस्तंभ पर प्राप्त गुर्वावली में बसंतकीर्ति का नाम व समय विक्रम संवत १२६१ बताया है। परमात्मा प्रकाश की संस्कृत टीका में ब्रह्मदेव ने भी शक्ति के अभाव में साधुतृणामय आवरणादि रखने परन्तममत्व ने रखने का विधान किया है।

निषीदिका लेख

"पद्मनंदिमुने : यहे शुभचन्द्रो पातेश्वर :।
तर्कादिक विधासु(पद) धारोरित्त सांप्रतम् ।।

शिलालेख विजौलिया पृ. ३६५.

पट्टावली क्रम.७४

भट्टारक विशालकीर्ति

क्रम नं. ७४ गुर्वावली विशालकीर्ति

तस्य श्रीवनवासिनीस्त्रिभुवनप्रख्यातकीर्तेरभूत्
शिष्योनेकगुणालयः शमयमध्यानापसागरः।
सिंह श्रीमति मण्डपेतिविदितस्त्रैविद्याविद्यास्पदम् ॥
विशालकीर्तिर्वरवृत्तमूर्तिः। (भा. १ कि.म पृ. ५२)

सौजन्य :-श्री अशोककुमार हीराचंद फडे
C/o.केशरीया ट्रेडीग कम्पनी
मु. पो.अकलूज संग्रामनगर
जी. सोलापुर, (महाराष्ट्र)

(पट्टावली क्रम.७५) शुभकीर्ति

लेखांक २२७.गुर्वावली शुभकीर्ति

ततो महात्मा शुभकीर्तिदेर :।

एकान्ताद्युग्रतपोविधाता धातेव सन्मार्गविधेर्विधाने ॥२३॥

शुभकीर्ति एकान्तर उपवास आदि कठोर तपश्चर्या करते थे।

(पट्टावली क्रम -७६) धर्मचन्द्र

लेखांक २२९. गुर्वावली धर्मचन्द्र

श्रीधर्मचन्द्रोजनि तस्य पट्टे हमीररभुपाहसमर्चनीयः।

सैध्दान्तिकः संयमसिन्धुचन्द्रः प्रख्यातमालात्मयकृतावतारः ॥२४॥

(भा.१ कि. म.पृ.५३)

पट्टावली

संवत १२७१ श्रावण सुदि १५ धर्मचंद्रजी गृहस्थ वर्ष १८ दीक्षा वर्ष। २४ पट्ट वर्ष २५ दिवस ४ अतर दिवस ८ सर्व वर्ष ६५ दिवस १२ जाति हूंबड पट्ट अजमेर ॥

(पट्टावली क्रम.७७)

रत्नकीर्ति (१२९६.१३१०)

क्रमांक ७७ गुर्वावली रत्नकीर्ति

तत्पट्टेजनि रत्नकीर्तिरनधः स्याद्वाविद्यांबुधि :।

नानादेशाविवृत्तशिष्यनिवलः प्राच्याँध्रियुग्मो गुरूः ॥

(भा. १ कि. म पृ. ५३)

रत्नकीर्ति १२७६ की भाद्रपद कृ.१३ को पट्टारूड हुये। १४ वर्ष पट्ट पर रहे। ये हूबड़ जाति के अजमेर निवासी थे।

पट्टावली क्रम नं. ७८

प्रभाचन्द्र (१३१०.१३८५)

दिल्ली पर सन् १३२५ से १३५१ तक एक विचित्र, विवादास्पद एंव निरकुंश चरित्रवाले सुलतान मुहम्दबीन तुगलक का शासन था। उसने अपने शासन काल में जितनी नई योजनाऐं लागू की। करीब करीब सभी में उसे असफलताऐं ही हाथ लगी, व ये योजनाऐं दिल्ली खजाने के लिये मँहगी सिद्ध हुई, अतःवह राजनैतिक घ्ष्टि से एक असफल शासक सिद्ध हुआ पर धार्मिक और सामाजिक घ्ष्टि से एक समन्वयवादी शासक था। अपने पूर्ववर्ती सुलतानों की तरह वह कट्टर एवं असहिष्णु नही था। वह उदार, विद्याप्रेमी एवं धार्मिक सहिष्णुता से ओत-प्रोत था। उसने अपने शासन के प्रथम वर्ष में ही जैनियों के हितार्थ एक फरमान जारी कर उन्हें सुरक्षा प्रदान की। उसी के शासनकाल में नन्दीसंघ के भट्टारक रत्नकीर्ति के पद पर भट्टारक प्रभाचन्द्र का एक विशेष महोत्सव के द्वारा पट्टाभिषेक हुआ और वे दिल्ली के पदाधीश कहलाये।

सौजन्य :- श्री कान्तीलाल मोतीलाल दोशी
C/o.बाहूबली ओटोमोबाइल
मु. पो.अकलूज जी. सोलापुर
(महाराष्ट्र)

भट्टारक प्रभाचन्द्र ब्राह्मण जाति के थे। वे अपने समय के प्रभावशाली व महत्वाकांक्षी विद्वान थे। उन्होंने अपने प्रभाव का उपयोग कर दिल्ली के बादशाहों को प्रसन्न किया। प्रभाचन्द्र के शिष्य कवि धनपाल द्वारा रचित "बाहुबली चरित " में एक जगह यह उल्लेख मिलता है कि प्रभाचन्द्र ने प्रतिवादियो का मान भंग करके मुम्हम्दशाह को प्रसन्न किया था, यही कारण है कि सुलतान ने जैन धर्म को प्रश्रय दिया।

मुहम्दतुगलक के शासनकाल में जिनप्रभसूरी ने "तीर्थकल्प " नामक ग्रंथ की रचना की जो १३३४ में पूर्ण हुआ। ग्रंथ रचना हेतु जिनप्रभसूरी सुलतान द्वारा सम्मानित किये गये। सुलतान ने उन्हें हस्तीनपुर, मथुरा आदि की ससंघ यात्रा करने, एवं धार्मिक, महोत्सव आयोजित करने की अनुमति प्रदान की। आचार्य श्री जिनदेवसूरी के कहने में सुलतान ने कन्नानगर की महावीर प्रतिभा दिल्ली मंगाई, जो कुछ दिनों तक तुगलकाबाद के शाही खजाने में रही तद्न्तर उसे देवालय में विराजमान कर दिया गया।

सुलतान की माँ "मखदूमें जहाँ बेगम" जैन गुरुओं का आदर करती थी, यही कारण है कि सुलतान के कृपापात्र ज्योतिषी धराधर जैन थे।

भट्टारक प्रभाचन्द्र की विद्ववता से प्रभावित होकर वि. संवत १३७५ में दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह के आमात्य (मंत्री) चाँदशहर ने प्रभाचन्द्रजी को दिल्ली बुलवाया था। दिल्ली में राधो और चेतन नाम के विद्वानों से प्रभाचन्द्र का साक्षात्कार करवाया जिसमें प्रभाचन्द्र विजयी हुये।

शास्त्रार्थ के बाद दोनों के बीच मंत्रो के प्रयोग की भी परीक्षा हुई, उसमें भी प्रभाचन्द्र विजयी हुये। प्रभाचन्द की किर्ती दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह के राजदरबार तक पहुँची, बादशाह ने आचार्य प्रभाचन्द्र को महलों में आकर दर्शन देने की प्रार्थना की। भट्टारक प्रभाचन्द उस समय तक दिगम्बर मुद्रा में ही रहते थे। वैसे भट्टारक बसंतकीर्ति के समय से लंगोट का प्रयोग होने लगा था पर भट्टारक प्रभाचन्द्र लंगोट धारण करना परम्परा के विरूद्ध मानते थे। अतः तत्कालीन समाज ने भट्टारक प्रभाचन्द्र से विनती की कि आप लंगोट धारण करके ही महल मे प्रवेश करे, अन्यथा बादशाह के प्रकोप के कारण समाज को कठिनाई का सामना करना पड सकता है।

समाज गणों ने आचार्य प्रभाचन्द्रजी से यह अनुनय विनय भी किया की हम आपको वेसी ही मान्यता देगें जैसे कि एक निग्रन्थ साधु को देते हैं। प्रभाचन्द्रजी ने समय की नाजुकता को देखते हुये, लंगोट धारण की तत्पश्चात्त महलों में प्रवेश किया। बादशाह और उसके परिवार को दर्शन लाभ दिया।

इस घटना का उल्लेख बखतावरशाह के "बुद्धि विलास " नामक ग्रंथ में मिलता हैं -

दिल्ली के यतिसहि भये पेरोजसहि जब,
चाँदोशाहप्रधान भट्दारक प्रभाचन्द्र तब,
आये दिल्ली मांझि बाद जीते विद्यावर,
सहिसिकि कै कही करै दरसन अंतहपुर,
तिह समै लंगोट लिवाय पुनि चांद विनती उचारी ॥
मनि हैजती जुत वस्त्र हम सब श्रावक सौगंदकरी ॥६१६ पद्मानंद (१३८५ - १४६२)

सौजन्य :- श्री शतीषचन्द्र उत्तमचंद फडे महावीर पथ, मु. पो.अकलूज जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

गुर्वावली

पट्टे श्रीरत्नकीर्तेरनुपमतपसः पुज्यपादीयशास्त्र -
व्याख्याविख्यातकीर्तिर्गुणनिधिपः सत्क्रियाचारूचंचु :।
श्रीमानान्दधाम प्रतिबुधनुतामामानसंदायिवादो
जीयादाचन्द्रतारं नरपतिविदितः श्री प्रभाचंद्र देवः ।। २७ (भा.१ कि. ४ पृ. ५३)

लेखांक (आराधनापंजिका)

संवत १४१६ वर्ष में चैत्र सुदि पंचम्यां सोमवासरे सकलराजशिरोमुकुटमाणिक्यमरीचिपिंजरीकृत चरणकमलपादपीठस्य श्रीपरोजसाहेः सकलसाम्राज्यधुरीविभ्राणस्य समये श्री दिल्ल्या श्रीकुंदकुदाचार्यान्वये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भ.श्री रत्नकीर्तिदेवपट्टोदयादितरूणरणित्वमुर्वीकुर्वाण भ. श्री प्रभाचंद्रदेव तत्सिष्याणां ब्रह्म नाथूराम इत्याराधनापंजिकाया ग्रंथ आत्मपठनार्थ लिखापितं ।। (पूना अ.१ पृ.२१३)

लेखांक

सिरि पहचंदु मलागणि पावणु बलुसीसेहि सहिउ य विरावणु ।
पट्टणे खमायझे धारणयार देवगिरि ।
मिच्छामय बिहुणंतु गणि पत्तउ जोइणिपुरि ।।
तहि भव्वलि सुमहोच्छ्उ विलियउ सिरिस्यणकित्तिपट्टे णहियउ ।
महमसाहिमणु रंजियउ विज्जलि वाइयमणु भंजियउ ।।
(बाहुबलिचरित धनपाल अ. ७ पृ. ८३)

गुर्वावली

श्रीमत्प्रभाचंद्रमुनीद्रपजे शश्चत्प्रतिष्ठा प्रतिभागारिष्ठ :।
विशुध्दसिद्धान्तरहस्यरत्न रत्नाकरो नंदतु पद्मनंदी ।२८
हंसोज्ञानमरालिका समसमा रत्लेषप्रभूतादभूता ।
नन्दं क्रीडति मानसेंति विशदे यस्यानिश सर्जतः ।।
स्याद्वादामृत मतार्ल्लिका स जयतात् श्री पद्मनंदी मुनिः।।
महाव्रत पुरन्दरः प्रश्म दग्ध रोगङ् कुरः।
स्फुर त्परपौरूषः स्थिति रशेषशास्त्रर्थावित्
यशोभर मनोहरीकृत समस्त विम्भरः।
परोपकृति तत्परो जयाति पध्मनन्दीस्वरः ।।

पद्मनन्दी पट्टावली

(१३८५.१४६२)

मुनि पद्मनन्दी भट्टारक प्रभाचन्द्र के पट्टधर विद्वान थे। विशुद्व सिद्वान्तरत्नाकर और प्रतिभा द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त

सौजन्य :- श्री अनंतलाल फुलचंद फडे
मु. पो.अकलूज महावीर पथ,
जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

हुए थे। उनके शुद्ध हृदय मे अभेद भाव से आलिङगन करती हुई ज्ञान रूपी हंसी आनन्दपूर्वक क्रीडा करती थी। वे स्यादवाद सिन्धु रूप अमृत के वर्धक थे। उन्होंने जिनदीक्षा धारण कर जिनवाणी और पृथ्वी को पवित्र किया था। महाव्रती पुरन्दर तथा शान्ति से शगांकुर दग्ध करनेवाले वे परमहंस, निग्रन्थ, पुरूषार्थशाली, अशेष शास्त्रदा सर्वलित परायण मुनिश्रेष्ठ पद्मनन्दी जयवन्त रहे। इन विशेषणो से पद्मनन्दी की महता का सहज ही बोध हो जाता है। इनकी जाति ब्राह्मण थी। एक बार प्रतिष्ठा महोत्सव के समय व्यवस्थापक गृहस्थ की अविधमानता मे प्रभाचन्द्र ने उस उत्सव को पट्टाभिषेक का रूप देकर पद्मनन्दी को अपने पट्ट पर प्रतिष्ठित किया था।

कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ. श्री रत्नकीर्ति देवास्तेषां पट्टे भट्टारक श्री प्रभाचन्द्र देवा तत्पट्टे भ. श्री पद्मनन्दी देवास्तेषा पट्टे प्रवर्तमाने (मुडित पार्श्वनाथ चरित प्रशस्ति) इससे यह भी ज्ञात होता है कि पद्मनन्दी दीर्घजीवी थे। पट्टावली में उनकी आयु निन्यांनवे वर्ष अट्ठाईस दिन की बतलाई गई है और पट्टाकल पैसठ वर्ष आठ दिन बतलाया है वि. सं. १४७९ मे असवाल कवि द्वारा रचित पासणालचरिउ में पद्मनन्दी के पट् पर प्रतिष्ठित होनेवाले भ. शुभचन्द्रका उल्लेख किया है। तहौ पदंवर सासिणामे सुहसासे मुनि पथपंकथचंद हो। संवत १४७४ में पद्मनन्दी द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तिलेख उपलब्ध है, अतः इससे स्पष्ट ज्ञात होता है। कि पद्मनन्दी ने संवत १४७४ के बाद और संवत १४७९ से पूर्व किसी समय शुभंचन्द्र को अपने बाद पर प्रतिष्ठित किया था।

कवि असवाल ने कुशार्त देश के करहल नगर में सं. १४७१ मे होनेवाले प्रतिष्ठोत्सव का उल्लेख किया है और पद्मनन्दी के शिष्य कवि हल्ल या जयमित्र हल्ल द्वारा रचित माल्लेजाह काव्य की प्रशंसा का भी उल्लेख किया है। उक्त ग्रंथ भ.पद्मनन्दी केपद पर प्रतिष्ठित रहते हुए उनकेशिष्यद्वारा रचा गया था। इसीसे उससे कवि ने उनका खुला यशोगन किया हैं :

पद्मनन्दी ने अनेक उपदेशों द्वारा सन्मार्ग दिखलाया है। इनके शिष्य प्रशिष्यो से जैन धर्म और संस्कृति की महती सेवा हुई है। वर्षो तक साहित्य का निर्माण, शास्त्र भंडारो का संकलन और प्रतिष्ठादिकार्यो द्वारा जैन संस्कृति के प्रचार में बल मिला है। इसी तरह के अन्य अनेक संत है, जिनका परिचय भी जनसाधारण तक नहीं पहुँचा है, इसी घ्ष्टिकोण को सामने रखकर पध्मानंदी का परिचय दिया गया है। क्यूकि पद्मनन्दी मूलसंघ के विद्वान थे, वे दिगम्बर वेष मे रहते थे और अपने को मुनि कहते थे और वे यथाविध यशाशक्य निर्दोष आचार विधि का पालन कर जीवन यापन करते थे। पद्मनन्दी अपने समय के अच्छे विद्वान, विचारक और प्रभावशाली भट्टारक थे। पद्मनन्दी केवल गद्दी धारी भट्टारक नहीं थे किन्तु जैन संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में सदा सावधान रहते थे। पद्मनन्दी प्रतिष्ठाचार्य भी थे। इनके द्वारा विभिन्न स्थानो पर अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा की गई थी। जहाँ वे मंत्र तंत्र वादी थे, वहाँ वे अत्यन्त विवेकशील औरचांतुर थे। आपके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विभिन्न स्थानों के मंदिरो में पाई जाती है पाठको की जानकारी के लिए दो मूर्तिलेख नीचे दिये जाते हैं।

आदिनाथमूर्ति

संवत १४५० वर्षे वैशाख सुदी १२ गुरौ श्रीचाहुवानवंशकुशेशयमार्तण्डसारवै विक्रमन्य श्रीमत् सरूप भुपरान्वय झुंडदेवात्मजस्य भूवजशकस्य श्री सुवरनृपतेः राज्ये वर्तमान श्रीमूलसंघे भ.श्री प्रभाचंद्रदेव तत्पदे श्रीपद्मनंदिदेव तदुपदेशे गोलाराडान्वये.....॥

(भा. प्र.पृ ८.)

सौजन्य :- श्री जवाहरलाल हीरचंद फडे

सुभाष पेठ, मु. पो.अकलूज
जी. सोलापुर (महाराष्ट्र)

(२) अरहंत हरितवर्ण कृष्णमूर्ति सं. १४६३ वर्षे माघ सुदी १३ शुक्रे श्री मूलसंघे पट्टाचार्य श्री पद्मनन्दी देवा गोलाराडान्वये साधु नागदेव सुत (ईटावा कें जैन मूर्तिलेख प्राचीन जैन लेख संग्रह पृष्ठ ३८सं. १४६४ (ई. सन. १४०८) और वि.स.१४८३ (ई.सन. १४२६) के विजौलिया के शिलालेखो में इनकी प्रशंसा की गयी है और वहाँ मानरस्तम्भोंने इनकी प्रतिकृति अंकित मिलती है।

शिलालेख

श्रीमत्प्रेभन्दुपट्टोस्मिन् पद्मनंदी यतीश्वरः।
तत्पट्टाबंधिसेवीव शुभचंद्रो विराजते ॥
शिष्योयं शुभचंद्रस्य हेमकीर्तिर्महान् सुधी ः।
येन वाक्यामृतेनापि पोषिता भव्यपादपाः।
विशुद्वा श्रीहेमकीर्तियतिनः सुसिद्धः।
आस्तां च तावज्जगतीतलेस्मिन् यावत्स्थिरौ चंद्रदिवाकरौ च ॥
संवत १४६५ वर्षे फाल्गुण सुदि २ बुधौ ॥ विजोलिया (अ. ११. पृ. २६६)

निषीदिका लेख

श्रीबलात्करगणे सरस्वतीगच्छे श्रीमहि (नंदि) संघे कुंदकुंदाचार्यान्वये भ. श्रीवसंतकीर्तिदेवाःभ. श्रीविशालकीर्तिदेवाः तत्पटटे भ.श्री दमन कीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ. श्री धर्मचंद्रदेवाः तत्पट्टे भ. श्री रत्नकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ. श्री प्रभाचंद्रदेवा तत्पट्टे भ. श्री पद्मनंदिदेवाः तत्पट्टे भ.श्री शुभचंद्रदेवाः॥

पद्मनंदिमुनेः पट्टे शुभचंद्रो यतीश्वरः ।
तर्कादिकविद्यासु (पद) धारोस्ति सांप्रतम् ॥

आर्या बाई लोकसिरि विनयसिरि तस्यां शिक्षणी बाई चारित्रसिरि बाई चारित्रकी शिक्षणी बाई आगमसिरि तस्या इयं. निषेधिका आचंद्रतारकाक्षयं संवत् १४८३ वर्षे फाल्गुन सुदि ३ गुरौ ॥

(उपयुक्त पृ. ३६५)

टांडानगर में भूर्गभ से २६ दिगम्बर जैन प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई है, जिन्हें वि. सं. १४७० (ई.सन् १४१३) में प्रभाचन्द के प्रशिष्य और भट्टारक पद्मनन्दी के शिष्य भट्टारक विशालकीर्ति के उपदेश से खण्डेलवाल जाति के गंगेलवाल गोत्रीय किसी श्रावकने प्रतिष्ठित कराया था। इससे स्पष्ट है कि भट्टारक पद्मनन्दि ई.सन् १४१३ के पूर्ववर्ती है। अतएव संक्षेप में पट्टावलियों और प्रशस्तियो के आधार पर आचार्य पद्मनन्दिस्य समय ई. सन् की १४वीं सदी है ।

शिष्य परम्परा

भ. पद्मनन्दी के अनेक शिष्य थे। उनमें चार प्रमुख थे। शुभचन्द्र उनके पट्टघर शिष्य थे। देवेन्द्रकीर्ति ने

सौजन्य :- श्री अरविंद दीपचंद फडे
महावीर पथ, मु. पो.अकलूज
जी. सोलापुर, (महाराष्ट्र)

सूरत में भट्टारक गद्दी स्थापित की थी। शिवनन्दी जिनका पूर्वनाम सूरजन साहु था पद्मनन्दी द्वारा दीक्षित होकर शिवनन्दी नाम दिया गया। वे बडे तपस्वी थे धर्मध्यान और व्रतादि ने संलग्न रहते थे। बाद में उनका स्वर्गवास हो गया था। चतुर्थ शिष्य सकलकीर्ति थे जिन्होनें ईडर मे भट्टारक गद्दी स्थापित की थी। वह अपने समय के सबसे प्रसिद्ध और प्रतिभा सम्पन्न भट्टारक थे। भट्टारक सकलकीर्ति ने इनके पास आठ वर्ष रहकर धर्म, दर्शन, छन्द, काव्य, व्याकरण, कोष, साहित्य,मंत्र,तंत्र आदि का ज्ञान प्राप्त किया। दिगम्बर मुद्रा में रहते थे। इन्होंने अनेक प्रतिष्ठामें और अनेक प्रतिष्ठायें और अनेक ग्रन्थो की रचना की है इनकी शिष्य परम्परा भी पल्लवित रही है। भ. पद्मनन्दी द्वारा दीक्षित रत्न श्री नाम की आर्थिका भी थी। इस तरह पद्मनन्दी ने और उनकी शिष्य परम्पराने जैन संस्कृति की महान सेवा की है।

रचनाएँ

पध्मानन्दी की अनेक रचनाएँ है। जिनमे देवाशास्त्र गुरूपूजन, संस्कृत, सिध्दपूजा संस्कृत, पध्मनन्दी श्रावकाचारसारोद्वार, वर्धमान काव्य, जीरापल्ली, पार्श्वनाथ स्तोत्र और भावनाचर्तविंशति। इनके अतिरिक्त वीतराग स्तोत्र, शान्तिनाथ स्तोत्र भी पध्मनन्दी कृत है।

लेखांक २४० भावनापद्धति

श्रीमत्प्रेभन्दुप्रभुवाक्यरश्मिविकाशिचेतः कुमुदप्रमोदात् ।
श्रीभावनापद्धतिमात्मशुद्धयै श्री पद्मनन्दी रचयांयकार ॥३४

(अं. ११ पृ. २५९)

जीरापल्ली पार्श्वनाथ स्तोत्र

श्रीमत्प्रभेन्दुचरणाम्बुजयुग्न भृंगश्चरित्रिनिर्मलमतिर्मुनपद्मनेदी ।
पाश्चप्रभोर्विनयनिर्भराचित्तवृतिर्भक्त्या स्तवं रचितवान् मुनिपद्मनंदी ॥१०

१.	जीरापल्लीपार्श्वनाथस्तवन	२.	भावनापद्धति
३.	श्रावकाचारसारोद्धार	४.	अनन्तव्रतकथा
५.	वर्द्धमान चरित	६.	वीतरागस्तोत्
७.	शान्तिजिनस्तोत्र	८.	रावणपाश्वनाथस्तोत्र

अनन्तकथा इनमें ८५ पद्य है। अनन्तचतुर्दशी के व्रत को सम्पन्न करनेवाले फलाधिकारी व्यक्ति की कथा वर्णित है। अन्तमें कविने अपना परिचय भी दिया है। इसकी पाण्डुलिपि आमेरके शास्त्रभण्डार में है।

उपसंहार

भट्टारकों का उदभव एवं भट्टारक परम्परा का जैनों के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। भट्टारकों ने अतिविशिष्ट कार्य मूर्तिप्रतिष्ठा, ग्रन्थलेखन, संरक्षण, शिष्यपरम्परा, तीर्थयात्रा ,चमत्कार,कला कौशल का संरक्षण अन्य सम्प्रदाय से परस्पर सम्बन्ध एवं शासकों से सम्बन्ध स्थापित कर हमारी सांस्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा एवं हूमड़ जैन धर्म को सम्बल प्रदान किया। उज्जवल और जाजवल्यमान हूमड़ भट्टारक शुभचन्द्र एवं भट्टारक सकलकीर्ति ग्रन्थकर्त्ता के रूप में एवं भट्टारक जिनचन्द्र मूर्ति प्रतिष्ठापक के रूप में समाज के आधार स्तम्भ है। उन्नति का इतिहास प्रेरक शक्ति के रूप में उपयुक्त होता है। भट्टारक सम्प्रदाय के इतिहास में जो संरक्षणशीलता धष्टिगोचर होती है उसके परिणामों से सावधान होकर यदि हम फिर एक बार विकासशील प्रवृति को अपना सके तो जैन समाज फिर एक बार अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सकता है।

सौजन्य :- शेठ चंदुलाल माणिकचंद महेता १००-२९९५, पतंगनगर, घाटकोपर,
C/o. अनिल चंदूलाल महेता मुम्बई (महाराष्ट्र)

वलात्कार गण-ईडर शाखा - कालपट

१.	पद्मनन्दि (उत्तर शाखा)	२.	सकलकीर्ति (संवत १४५०-१५१०)
३.	भुवनकीर्ति (संवत १५०८-१५२७)	४.	ज्ञानभूषण(१५३४-१५६०)
			ज्ञानकीर्ति (भानपुर शाका)
५.	विजयकीर्ति (संवत १५५७-१५६८)		
६.	शुभचन्द्र (संवत् १५७३-१६१३)	७.	सुमतिकीर्ति (संवत् १६२२-१६२५)
८.	गुणकीर्ति (संवत १६३१-१६३९)	९.	वादिभूषण (संवत् १६५२-१६५६)
१०.	रामकीर्ति संवत् (१६७०)	११.	पद्मनन्दि (संवत् १६८३-१७०२)
१२.	देवेन्द्रकीर्ति (संवत् १७१३-१७२५)	१३.	क्षेमकीर्ति (संवत् १७३४)
१४.	नरेन्द्रकीर्ति (संवत् १७६२)	१५.	विजयकीर्ति
१६.	नेमिचन्द्र	१७.	चन्द्रकीर्ति (संवत १८३२)
१८.	रामकीर्ति	१९.	यशकीर्ति (संवत् १८३३)

भट्टारक सकलकीर्ति

विपुल साहित्य निर्माणकी दृष्टिसे आचार्य सकलकीर्तिका महत्वपूर्ण स्थान है । इन्होने संस्कृत एवं प्राकृत वाङ्मयको संरक्षण ही नही दिया, अपितु उसका पर्याप्त प्रचार और प्रसार किया । हरिवंशपुराणकी प्रशस्तिमें ब्रह्मजिनदासने इनको महाकवि कहा है -

तत्पट्टङ्कजविकासभास्वान् बभूव निर्ग्रन्थवरः प्रतापी ।
महाकवित्यादिकलाप्रवीणः तपोनिधिः श्रीसकलादिकीर्तिः ॥

इससे स्पष्ट है कि इनकी प्रसिद्धि महाकवीश्वरके रुपमें थी । आचार्य सकलकीर्तिने प्राप्त आचार्यपरम्पराका सर्वाधिकरुपमें पोषण किया है । तीर्थ यात्राएँ कर जनसामान्यमें धर्मके प्रति जागरुकता उत्पन्न की और नवमंदिरका निर्माण कराकर प्रतिष्ठाएँ करायी । आचार्य सकलकीर्तिने अपने जीवनकालमें १४ बिम्बप्रतिष्ठाओंका संचालन किया था । गलियाकोटमें संघपति मूलराजने इन्हीने उपदेशमें चतुर्विंशति जिनबिम्बकी स्थापना की थी । नागद्रह जातिके श्रावक संघपति ठाकुरसिंहने भी कितनी ही विम्बप्रतिष्ठाओंमें योग दिया । आबूमें इन्होंने एक प्रतिष्ठा महोत्सवका संचालन किया था, जिसमें तीन चौबीसीकी एक विशाल प्रतिमा परिकरसहित स्थापित की गयी थी ।

निःसन्देह आचार्य सकलकीर्तिका असाधारण व्यक्तित्व था । तत्कालीन संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी आदि भाषाओं पर अपूर्व अधिकार था । भट्टारक सकलभूषणने अपने उपदेशरत्नमाला नामक ग्रन्थकी प्रशस्तिमें सकलकीर्तिको अनेक पुराणग्रन्थोंका रचयिता लिका है । भट्टारक शुभचन्द्रने भी सकलकीर्तिका पुराण और काव्य ग्रन्थोंका रचयिता बताया है । लिखा है -

'तच्छिष्याग्रेसरानेकशास्त्रपयोधिपारप्राप्तानाम्, एकावलि द्विकावलिकनका वलि-रत्नवलि-मुक्तावलि-सर्वतोभद्र-सिंहविक्रमादिमहातपोवद्रनाशितकर्म पर्वतानाम, सिद्धान्तसार-तत्वसार-यत्यांचाराद्यनेकराद्धान्तविधातृणाम्, मिथ्यात्वतगोविनाशैकमार्तण्डानम्, अभ्युदपूर्वनिर्वाणसुखावश्यविधायि-जिनधर्मा - म्बुधिविवर्द्धनपूर्णचन्द्राणाम्, यथोक्तचरित्राचरणसमर्थननिर्ग्रन्थाचार्यावर्याणाम् श्रीश्रीश्री सकलकीर्तिभट्टारकाणाम् ।

सौजन्य :- श्री मन्नालाल ओंमकारदास जैन (शाह) मु. पो.कापडळा ता. जी. धूले (महाराष्ट्र)

अर्थात् पद्मनन्दिके शिष्य, अनेक शास्त्रोंके पारगामी, एकावलि, द्विकावलि,रत्नावलि, मुक्तावलि, सर्वतोभद्र, सिहविक्रम आदि महातपोंके आचारणद्वारा कर्मरुपी पर्वतोंको नष्ट करनेवाले, सिद्धान्तसार, तत्वसार, यत्याचार आदि आगमग्रन्थोंके रचयिता, मिथ्यात्वरुपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्यतुल्य जिनधर्मरुपी समुद्रको वृद्धिगत करनेके लिए चन्द्रमातुल्य और यथोक्त चारित्रका पालन करनेवाले निग्रन्थाचार्य सकलकीर्ति हुए ।

अतः स्पष्ट है कि निग्रन्थाचार्य सकलकीर्ति एक बड़े तपस्वी, ज्ञानी धर्म प्रचारक और ग्रन्थरचयिता थे । उस युगमें ये अद्वितीय प्रतिभाशाली एवं शास्त्रों के परागामी थे ।

आचार्य सकलकीर्तिका जन्म वि० सं० १४४३ (ई०सन्१३८६) में हुआ था । इनके पिताका नाम कर्मसिंह और माताका नाम शोभा था । ये हूबड़ जातिके थे और अणहिलपुर पट्टनके रहनेवाले थे । गर्भमें आनेके समय माताको स्वप्नदर्शन हुआ था । पतिने इस स्वप्नका फल योग्य, कर्मठ और यशस्वी पुत्रकी प्राप्ति होना बतलाया था ।

बालकका नाम माता-पिताने पूर्णसिंह या पूनसिंह रखा था । एक पट्टावलीमें इनका नाम पदार्थ भी पाया जाता है । इनका वर्ण राजहंसके समान शुभ और शरीर ३२ लक्षणोंसे युक्त था । पाँच वर्षकी अवस्थामें पूर्णसिंहका विद्यारम्भ संस्कार सम्पन्न किया गया । कुशाग्रबुद्धि होनेके कारण अल्पसमयमें ही शास्त्राभ्यास पूर्ण कर लिया । माता-पिताने १४ वर्ष की अवस्थामें ही पूर्णसिंह का विवाह कर दिया। विवाहित हो जानेपर भी इनका मन सांसारिक कार्योंके बन्धनमें बँध न सका । पुत्रकी इस स्थितिसे माता-पिताको चिन्ता उत्पन्न हुई और उन्होंने समझाया - अपार सम्पत्ति है, इसका उपभोग युवावस्थामें अवश्य करना चाहिये। संयम प्राप्तिके लिए तो अभी बहुत समय है । यह तो जीवनके चौथे पनमें धारण किया जाता है । पिता-पुत्र के बीचमें जो वार्तालाप हुआ उसे भट्टारक भुवनकीर्तिने निम्नलिखित रुपमें व्यक्त किया है -

देखवि चञ्चल चित्त माता पिता कहि वछ सुणि ।
अहम् मंदिर वहू वित्त आविसिह कारणि कवइ ॥
लहुआ लीलावंत सुख भोगवि संसार तणाए ।
पछइ दिवस बहूत, अछिह संयम तप तणाए ॥
वयणि तं जि सुणोवि पुत्र पिता प्रति हम कहिए ।
निजमन सुविस करेवि धीर जे करणि तप गहिए ॥
ज्योवन गिइ गमार पछइ पालइ शायल घणां ।
ते कुहु कवण विचार विण अवसर जे वरसीयिए ॥

कहा जाता है कि माता-पिताके आग्रहसे ये चार वर्षों तक घरमें रहे और १८ वें में प्रवेश करते ही वि० सं० १४६३ (ई०सन् १४०६) में समस्त सम्पत्तिका त्याग कर भट्टारक पद्मनन्दिके पास नेणवामें चले गये । भट्टारक यशःकीर्ति शास्त्रभण्डारकी पट्टावलीके अनुसार ये २६ वें वर्षमें नेणवां गये थे । ३४ वें वर्षमें आचार्य पदवी धारण कर अपने प्रदेशमें वापस आये और धर्मप्रचार करने लगे । इस समय ये नग्नावस्थामें थे ।

आचार्य सकलकीर्तिने बागड़ और गुजरातमें पर्याप्त भ्रमण किया था और धर्मोपदेश देकर श्रावकोंमें धर्मभावना जागृत की थी । उन दिनोंमें उक्त प्रदेशोंमें दिगम्बर जैन मन्दिरोंकी संख्या भी बहुत कम थी तथा साधुके न पहुँचनेके कारण अनुयायियोंमें धार्मिक शिथिलता आ गयी थी । अतएव इन्होंने गाँव गाँवमें विहार कर लोगोंके ह्रदयमें स्वाध्याय और भगवद्भक्तिकी रुचि उत्पन्न की ।

सौजन्य :- श्री महावीरकुमार अमृतलालजी सोनी ७४, नहेरू बाजार उदयपुर
अमृत टेन्ट हाउस (राज.)

बलात्कारगण इडर शाखाका आरम्भ भट्टारक सकलकीर्तिसे ही होता है। ये बहुत ही मेघावी, प्रभावक, ज्ञानी और चरित्रवान थे। बागड़ देशमें जहाँ कहीं पहलें कोई भी प्रभाव नहीं था, वि०सं० १४९२ में गलियाकोटमें भट्टारक गद्दीकी स्थापना की तथा अपने आपको सरस्वतीगच्छ एवं बलात्कारगणसे सम्बोधित किया। ये उत्कृष्ट तपस्वी और रत्नावली, सर्वतोभद्र, मुक्तावली आदि व्रतों का पालन करनेमें सजग थे।

स्थितिकाल

भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा वि०सं०१४९० (ई० सन् १४३३) वैशाख शुक्ला नवमी शनिवारको एक चौबीसी मूर्ति, विक्रम संवत् १४९२ (ई०सन् १४३५) वैशाख कृष्ण दशमीको पार्श्वनाथमूर्ति, सं०१४९४ (ई०सन् १४३७) वैशाख शुक्ला त्रयोदशीको आबू पर्वत पर एक मन्दिरकी प्रतिष्ठा करायी गयी, जिसमें तीन चौबीसीकी प्रतिमाएँ परिकरसहित स्थापित की गयी थी। वि०सं० १४९७ (ई० सन् १४४०) में एक आदिनाथस्वामीकी मूर्ति तथा वि०सं०१४९९ (ई० सन् १४४२) में सागवाड़ामें आदिनाथ मन्दिरकी प्रतिष्ठा कीथी। इसी स्थानमें आपने भट्टारक धर्मकीर्तिका पट्टाभिषेक भी किया था।

भट्टारक सकलकीर्तिने अपनी किसी भी रचनामें समयका निर्देश नहीं किया है तो भी मूर्तिलेख आदि साधनोंके आधारपरसे उनका निधन वि० सं० १४९९ पौष मासमें महेसाना (गुजरात) में होना सिद्ध होता है। इस प्रकार उनकी आयु ५६ वर्षकी आती है।

भट्टारकसम्प्रदाय ग्रन्थमें विद्याधर जोहरपुरकरने इनका समय वि० सं० १४५०-१५१० तक निर्धारित किया है। पर वस्तुतः इनका स्थितिकाल वि०सं० १४४३-१४९९ कर आता है।

रचनाएँ

आचार्य सकलकीर्ति संस्कृतभाषाके प्रौढ़ पंडित थे। इनके द्वारा लिखित निम्नलिखित रचनाओंकी जानकारी प्राप्त होती है -

१. शान्तिनाथचरित २. वर्द्धमानचरित ३. मल्लिनाथचरित ४. यशोधरचरित ५. धन्यकुमारचरित
६. सुकमालचरित ७. जम्बूस्वामीचरित ८. श्रीपालचरित ९. मूलाचारप्रदीप १०. प्रश्नोत्तरोपासकाचार
११. आदिपुराण - वृषभनाथचरित १२. उत्तरपुराण १३. सद्भाषितावली -सूक्तिमुक्तावली
१४. पार्श्वनाथपुराण १५. सिद्धन्तसारदीपक १६. व्रतकथाकोष १७. पुराणसारसंग्रह १८. कर्मविपाक
१९. तत्त्वार्थसारदीपक २०. परमात्मराजस्तोत्र २१. आगमसार २२. सारचतुर्विंशतिका २३. पञ्चपरमेष्ठीपूजा
२४. अष्टानिहिकापूजा २५. सोलहकारणपूजा २६. द्वादशानुप्रेक्षा २७. गणधरवलयपूजा
२८. समाधिमरणोत्साहदीपक

राजस्थानी भाषामें लिखित रचनाएँ

१. आराधनाप्रतिबोधसार २. नेमीश्वर-गीत ३. मुक्तावली-गीत ४. णमीकार-गीत
५. पार्श्वनाथाष्टक ६. सोलहकारणरासो ७. शिखामणिरास ८. रत्नत्रयरास

१. शान्तिनाथ चरित

इस चरितकाव्यमें १६ अधिकार है और ३४७५ पद्य हैं। इसमें १६वें तीर्थकर शान्तिनाथ का जीवनवृत अंकित है। काव्यचमत्कार यत्र-तत्र पाया जाता है। महाकाव्यत्वके स्थानपर पौराणिकताका ही समावेश हुआ है।

सौजन्य :- श्री बदामीलालजी वखारीया डूंगरपुर (राज.)
संजय साइकिल एजन्सी

२. *वर्धमान चरित :-*

इस चरितकाव्यमें अन्तिम तीर्थकर वद्धमानके पावन जीवनका वर्णन किया गया है । कथावस्तु १९ सर्ग या अधिकारोंमें विभक्त है । प्रथम छह सर्गोंमें महावीरके पूर्व भवोंका और शेष १३ सर्गोंमें गर्भकल्याणसे लेकर निर्वाणकल्याणक तक विभिन्न लोकोत्तर घटनाओंका विस्तुत वर्णन मिलता है । भाषा सरल और काव्यमय है ।

३. *मल्लिनाथ चरित :-*

इस चरितकाव्यमें ७ सर्ग या परिच्छेद है और ८७४ श्लोक हैं । इसमें तीर्थकर मल्लिनाथका चरित वर्णित है । ग्रन्थकर्तानें आरम्भमें मल्लिनाथ स्वामी को ही नमस्कार किया है -

नमः श्रीमल्लिनाथाय कर्ममल्लविनाशिने ।
अनन्तमहिमाप्ताय त्रिजगत्स्वामिनेऽनिशं ॥
शेषान् सर्वान् जिनान्वन्दे धर्मचक्रप्रवर्तकान् ।
विश्वभव्यहितोद्युक्तान् पंचकल्याणनायकान् ॥ प्रथम सर्ग, पद्य १,२

कवि वस्तुवर्णनमें भी कुशल है । अनुष्टम् जैसे छेटे छन्दमें ग्राम, नगर, परिखा, ऋतु, सरित, वसन्त आदि का चमत्कारपूर्ण वर्णन करता है । वीतशोका नगरी,विस्तीर्ण खाइयों, ऊँचे परकोटों और आदिकेवर्णनमें उत्प्रेक्षाका प्रयोग चमत्काररुपमें किया गया है ।

दीर्धखततिकया तुङ्ग शालगोपुरतोरणैः ।
मनोज्ञैर्यदभाज्जंबूद्वीपवेद्यब्धिवत्तराम् ॥
पुण्यवद्धामकूटाग्रध्वजहस्तैर्मरुद्वशैः ।
नाकिनामाह्वयंतीव मुक्तये यद्भुवस्तराम् ॥ -प्रथम सर्ग पद्य १९,२०

इस काव्यमें दान, अहिंसा, रत्नत्रय, भक्ति, पूजा दिका भी वर्णन आया है । काव्यतत्वके साथ दर्शनतत्वको अवगत करनेके लिए यह रचना महत्वपूर्ण है ।

यशोधरचरित :-

यशोधरचरित कथा अत्यन्त लोकप्रिय रही है । इस कथाको आधार मानकर अनेक जैन कवियोंने विभिन्न भाषाओंमें काव्योंकी रचना की है । सकलकीर्तिकी यह रचना संस्कृत भाषामें है । इसमें अहिंसाका महत्व प्रतिपादित किया गया है ।

धन्यकुमारचरित :-

इस चरितकाव्यमें धन्यकुमारकी कथा वर्णित है । इसमें सात सर्ग या अधिकार है । कविने घटनाओंको काव्यशैलीमें प्रस्तुत किया है ओर धन्यकुमार के जीवनकी कौतूहलपूर्ण घटनाओंको काव्यात्मक रुपमें उपस्थित किया है ।

सुकुमालचरित :-

इस काव्यमें सुकुमालके जीवनका पूर्वभवसहित वर्णन किया गया है । सम्पूर्ण कथा-वस्तु ९ सर्गोंमें विभक्त है । पूर्वभवमें किया गया वैरभाव जन्म जन्मान्तरमें कितना कष्टकारी होता है, इसका चित्रण इस काव्यमें सुन्दररुपमें किया है । सुकुमाल दैभवपूर्ण जीवनयापन करता है, पर मुनि अवस्थामें अत्यन्त घोर तपश्चरण कर आत्मशुद्धि लाभ करता है ।

सौजन्य :- श्री रमणीकलालजी दोशी मालेगाँव महाराष्ट्र

सुदर्शनचरित :-

इस चरितकाव्यमें सेठ सुदर्शनका जीवनवृत्त वर्णित है और कथावस्तु ८ परिच्छेदों में विभक्त है। शीलव्रतके पालनमें सुदर्शनकी दृढ़ताका चित्रण बड़े ही सुन्दर रुपमें हुआ है। कविने अन्तर्धन्द्वोंका विकास बड़े ही सुन्दर रुपमें किया है। कपिलाके यहाँ सुदर्शनके पहुँचनेपर एवं कपिला द्वारा कमोत्तेज नाओंके उत्पन्न होनेपर भी सुदर्शनकी दृढ़ता किसके ह्रदयको स्पर्श नहीं करती। अभया रानी सुदर्शनको विचलित करने का प्रयास करती है, पर वह सुमेरुकी चट्टानके समान दृढ रहता है। सुदर्शनके चरित्रको यह दृढ़ता और शीलकी अटलता काव्यका उदात्तीकरण है। कविने मुनि अवस्थामें पाटलीपुत्रमें देवदत्ता गणिका द्वारा जो उपसर्ग दिखलाये है या जिन कामचेष्टाओंका वर्णन किया है, वे पुरुक्त जैसी प्रतीत होती है। शीलके चित्रणमें आठों कारकोंका नियोजन किया गया है।

शीलं मुक्तिवधूप्रियं भवहरं शीलं सशीलाः श्रिताः
शीलेनात्र समाप्यत शिवपदं शीलया तस्मै नमः।
शीलान्नास्त्यपरः सुधर्मजनकः शीलस्य सर्वे गुणाः
शीले चित्तमनारतं विदधतं मां शील मुक्ति नय ॥१३०॥

संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि यह चरितकाव्य काव्यगुणोंसे युक्त उदात्त शैलीं लिखा गया है। अष्टम सर्गमें सुदर्शनकी आराधनाका रुपक अलंकारमें चित्रण किया है। भाषा सरल और कथा रससे परिपूर्ण है। सूक्तियाँ और धर्मोपदेश पर्याप्त मात्रामें हैं।

श्रीपालचरित :-

इसमें कोटीभट्ट श्रीपालके जीवनकी प्रमुख विशेषताओंका वर्णन आया है। समस्त कथावस्तु ७ सर्ग या परिच्छेदोंमें विभक्त है। श्रीपालका राजासे कुष्ठी होना, समुद्रमें गिरना, शूलीपर चढ़ना आदि कितनी ही ऐसी घटनाएँ हैं, जो पाठकोंके मनमें कौतुहल जागृत करती है। कविने नाटकीय ढ़गसे घटनाओंका नियोजन किया है। इस चरितकाव्यकी रचना कर्मफलके सिद्धान्तको प्रतिष्ठित करनेके लिए की गयी है। विश्वके समस्त प्राणी कर्मकृतफलकी प्राप्त करते हैं। निकाचितकर्म फल दिये बिना नहीं रहते है। काव्यकी भाषा सरल और परिमार्जित है।

मूलाचारप्रदीप :-

यह आचारसम्बन्धी ग्रन्थ है। इसमें मुनिके जीवनको समस्त क्रियाओं, विधिओं और साधनाओंका निरुपण किया गया है। इस ग्रन्थ में १२ अधिकार है जिनमें २८ मूलगुण, पंचआचार, दशलक्षणधर्म, द्वादशानुप्रेक्षा एवं द्वादशतपोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

प्रश्नोत्तरोपासकाचार :-

इस ग्रन्थमें श्रावकोंके आचारधर्मका वर्णन है। इसमें २४ परिच्छेद है। मूल गुण, द्वादशव्रत, अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थकी विशेषता यह है कि भट्टारक सकलकीर्तिने श्रद्धालु भक्तोंके आचारविषयक प्रश्नोंका समाधान करनेके लिए इस ग्रन्थकी रचना की है।

आदिपुराण :-

इस पुराणमें भगवान् आदिनाथ, भरत, बाहुबलि, सुलोचना, जयकुमार आदिके जीवनवृतका वर्णन किया है। यह २० सर्गोमें विभक्त है और इसमें ४६२८ पद्य हैं। इस कृतिका दूसरा नाम वृषभनाथचरित भी है। प्रधानतः इसमें आदि तीर्थंकर ऋषभदेवका जीवन वर्णित है।

सौजन्य :- श्री मणीभद्रजी जैन डूंगरपुर (राज.)

उत्तरपुराण :-

प्रथम तीर्थकरको छोड़ शेष २३ तीर्थकरोंका जीवनवृत्त इस पुराणमें वणित है । साथही इसमें चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण आदि शलाका पुरुषोंके जीवन भी अंकित हैं । इसमें १५ अधिकार है ।

सुभाषितावली :-

इस सुभाषित ग्रन्थमें धर्म, सम्यक्त्व, मित्यात्व, इन्द्रियजय, स्त्रीसहवास, कामसेवन, निर्ग्रन्थसेवा, तप, त्याग, राग-द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह आदि विभिन्न विषयोंका विवेचन किया है । इसमें कुल ३८९ पद्य हैं । सभी पद्य उपदेशप्रद हैं । यथा -

सर्वेषु जीवेषु दया करु त्वं, सत्यं वचो बृहि धनं परेषाम् ।
चाब्रह्मसेवा त्यज सर्वकालं, परिग्रहं मंच कुयोनिबोजं ॥

पार्श्वनाथपुराण :-

इसका दूसरा नाम पार्श्वनाथचरित भी है । इसमें २३ वें तीर्थकर भगवान् पार्श्वनाथके जीवनका वर्णन हैं । कथाका आरम्भ वायुभूतिके जीवनसे हुआ है । वायुभूति अपनी साधना द्वारा पार्श्वनाथ बन निर्वाण प्राप्त करता है । समस्त कथावस्तु २३ सर्गोमें विभक्त है ।

सिद्धन्तासारदीपक :-

यह रचना करणानुयोगसम्बन्धी है । इसमें उर्ध्वलोक, मद्यलोक एवं अधोलेक इन तीनें लेकोंका एवं इन तीनों लेकोंमें निवास करनेवाले देव, मनुष्य निर्यच और नारकियोंका विस्तृत वर्णन किया है । तिलोयपण्णत्ति और त्रिलोकचार के विषयको इस कृतिमें निबद्ध किया गया है । इसका रचनाकाल वि.सं. १४८१ और रचनास्तान बडालो नगर है । समस्त ग्रन्थ १६ अधिकारों में विभक्त है ।

व्रतकथाकोश :-

इस ग्रन्थमें विभिन्न व्रत सम्बन्धी कथाएँ निबद्ध की गयी है । व्रतपालन द्वारा जिन व्यक्तियोंने अपने जीवनमें विभूतियाँ प्राप्त की है, उन व्यक्तियोंके आख्यानोंका वर्णन इस कताकोशग्रन्तमें किया गया है।

पुराणसारसंग्रह :-

प्रस्तुत ग्रन्थमें आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान इन छह तीर्थकोंके चरितोंको निबद्ध किया गया है । तीर्थकरोंका जीवनवृत अत्यन्त संक्षेपमें लिखा गया हैं ।

कर्मविपाक :-

यह ग्रन्थ संस्कृतगद्यमें लिखा गया है । इसमें आठ कर्म तथा उनके १४८ भेदों का वर्णन है । प्रकृतिबनाध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध एवं अनुभवबन्धकी अपेक्षासे कर्मोके बन्धका वर्णन सुन्दर एवं बोधागम्य हैं । इसमें ५४७ पद्य है ।

तत्वार्थसारदीपक :-

जीव-अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वोंका १२ अध्यायोंमें वर्णन किया गया है । प्रथम सात अध्यायोंमें जीव एवं उसकी विभिन्न अवस्थाओंका चित्रण है । अष्टम द्वादश अध्याय तक अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, और मोक्षका क्रमशः वर्णन है । इस ग्रन्थको आचार्यने आध्यात्मिक रचना कहा है ।

सौजन्य :- श्री चंदूलाल माणेकचंद महेता **मुम्बई (महाराष्ट्र)**

यह लघु स्तोत्र है। सिमें १६ पद्य हैं। रचना भावपूर्ण है।

आचार्यद्वारा लिखित पूजासाहित्य भी कम लोकप्रिय नहीं रहा है। नामके अनुसार, पंचपरमेष्ठी, अष्टाहिका और सोलहकारण आदिकी पूजाएँ अंकित है। द्वादशानुप्रेक्षामें अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व आदि भावनाओंका चित्रण किया गया है। इस प्रकार आचार्य सकलकीर्तिने सिद्धान्त, तत्त्वज्ञान, अद्यात्म, कर्मसिद्धान्त, आचार एवं चरितग्रन्थोंकी रचना कर संस्कृतसाहित्यको समृद्ध किया है।

राजस्थानी भाषामें आचार्य सकलकीर्तिने गीत, रास और फाग विषयक रचनाओंका प्रणयन किया है। गीतोंमें लधुगीत और प्रबन्धगीत दोंनों ही पाये जाते है। राजस्थानी के साथ गुजराती भाषा का प्रयोग भी जहाँ तहाँ उपलब्ध होता है।

निः सन्देह आचार्य सकलकीर्ति अपने युगके प्रतिनिधि लेखक हैं। इन्होंने अपनी पुराणविषयक कृतियोंमें आचार्यपरम्परा द्वारा प्रवाहित विचारोंको ही स्थान दिया है। चरित्रनिर्माणके साथ सिद्धान्त, भक्ति एवं कर्मविषयक रचनाएँ परम्पराके पोषणमें विशेष सहायक हैं। सिद्धान्तसारदीपक, तत्त्वार्थसार, आगमसार, कर्मविषाक जैसी रचनाओंसे जैनधर्मके प्रमुख सिद्धान्तों का उन्होंने प्रचार किया है। मुन्याचार और श्रावकाचारपर रचनाएँ लिखकर उन्होंने मुनि और श्रावक दोनोंके जीवनको मर्यादित बनानेकी चेष्टा की है। इनकी हिन्दीमें लिखित सारसीखामणिरास और शान्तिनाथफाग अच्छी रचनाएँ है। इनमें विषयका प्रतिपादन बहुत ही स्पष्टरुपमें हुआ है।

आचार्य भुवनकीर्ति विविध भाषाओं और शास्त्रोंके ज्ञाता थे। इन्हें विभिन्न कलाओंका परिज्ञान भी था। ब्रह्मजिनदासने अपने रामचरितकाव्यमें इनकी कीर्तिका गुणानुवाद किया है तथा इन्हें यतिराज कहा है। यथा-

पट्टे तदोये गुमावान् मनीषी क्षमानिधाने भुवनाकीर्ति।
जीयाच्चिरं भव्यसमूहबंद्या नानायतिव्रातनिषेवणीयः ॥
जगति भुवनकीर्तिर्भूतलख्यातकीर्तिः,
श्रुतजलनिधिवेत्ता अनंगमानप्रभेक्ता।
विमलगुणनिवासः छित्रसंसारपाशः
स जयति यतिराजः साधुराजिसमाजः ॥

भुवनकीर्तिके सम्बन्धमें ब्रह्मजिदास, भट्टारक ज्ञानकीर्ति आदिने बताया है कि पहले ये मुनि रहे है और सकलकीर्तिकी मृत्युके पश्चात् इन्हे भट्टारकपद प्रदान किया गया है। शुभचन्द्र पट्टावलिमें भी इसका उल्लेख मिलता है।

तत्पट्टाभरनणानेकदक्षमौरव्यनिष्पान्द - सकलकलाकलापकुलरत्नसुवर्णरौप्यपित्तलाश्मप्रतिमा तन्त्रप्रतिष्ठायात्रार्चनविधानोपदेसाज्जितकोर्तिकपूरपूरितत्रैलोक्यविवरणानाम्, महातपोधनानां श्रीमद्भुवनकीर्तिदेवानाम्।

सकलकीर्तिके पट्टपर भूषणतुल्यः, सकलकलाप्रवीण, रत्न, सुवर्ण, रौप्य, पित्तल, पाषाणकी प्रतिमा, यन्त्र और प्रासादमन्दिरकी प्रतिष्ठा और अर्चनविधानजन्यकीर्ति-कर्पीरसे त्रिभुवनविबरकोपूरित करनेवाले महीतपस्वी श्री भुवनकीर्तिदेव हुए।

सौजन्य :-मास्टर दिपककुमार शाह
आंध एक्सप्रेस सर्वीस प्रा. लि.
३५, भागँवाडी शोपींग मारकेट,
कालवादेली, मुम्बई (महाराष्ट्र)

भुवनकीर्तिने ग्रन्थरचनाके साथ साथ प्रतिष्ठाएं भी करायी थी । वि०सं० १५११ में इनके उपदेशसे हूबड़ जातीय श्रीवक करम एवं उसके परिवारने चौबीसी प्रतिमा स्थापित की थी ।

सं० १५१३ में इन्हींके तत्त्वावधानमें चतुर्विंशतिप्रतिमाकी प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी ।

सं० १५१५ में गंधारपुरमें प्रतिष्ठा सम्पन्न हई थी तथा इन्ही के उपदेश से जूनागढ़में एक शिखरवाले मन्दिरका निर्माण कराया गया और उसमें धातुकी आदिनाथ स्वामीकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी । इस उत्सवमें सौराष्ट्रके छोटे बड़े राजा महाराजा भी सम्मिलित हुए थे । भुवनकीर्ति इसमें मुख्य अतिथि थे ।

सं० १५२५ में नागद्रहाजाति, श्रावक पूजा एवं उसके परिवारवालोने इन्हींके उपदेशसे आदिनाथस्वामीकी धातुमय प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी ।

सं० १५२७ में वैशाख कृष्ण एकादशीको भुवनकीर्तिने हूंबड़जातीय जयसिंह आदि श्रावकोसे धातुकी रत्नमय चौबीसी प्रतिष्ठित करायी थी । .

रचनाएँ :-

आचार्य भुवनकीर्तिके जीवन्धररास, जम्बूस्वामीरास, और अज्जनाचरित ग्रन्थ उपलब्ध है । जीवनधररासमें जीवन्धरके पुण्यचरितका और जम्बूस्वामीरासमें जम्बूस्वामीके पावनचरितका रासशैलीमें अकन किया गया ।

आचार्य ज्ञानभूषण :-

ज्ञानभूषण नामके चार आचार्योका उल्लेख प्राप्त होता है । प्रथम ज्ञानभूषण भट्टारक सकलकीर्तिकी परम्परामें भट्टारक भुवनकीर्तिके शिष्य हुए हैं । द्वितीय ज्ञानभूषण सूरत शाखाके भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिकी परम्परामें भट्टारक वीरचन्द्रके शिष्यके रुपमें हुए हैं । इनके भट्टारक होनेका समय सं०१६००-१६१६ है । तृतीय ज्ञानभूषणका सम्बन्ध अटेरशाखाके साथ रहा है और इनका समय १७ वीं शताब्दी माना जाता है । चौथे ज्ञानभूषण नागौरके भट्टारक रत्नकीर्तिके शिष्य थे इनका समय १८वीं शताब्दीका अन्तिम चरण है ।

विवेचनीय ज्ञानभूषण प्रारम्भमें भट्टारक विमलेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे । किन्तु उत्तरकालमें इन्होंने भुवनकीर्तिको अपना गुरु स्वीकार किया है । ज्ञानभूषण एवं ज्ञानकीर्ति ये दोनें ही सगे भाई एवं गुरुभाई थे । ये गोलालारे ही दिन आयोजित होनेके कारण दो भट्टारक परम्पराएँ स्थापित हुई । सागवाड़ामें होनेवाली प्रतिष्ठाके संचालक भट्टारक ज्ञानभूषण थे और नोगाम के प्रतिष्ठा महोत्सवके संचालक ज्ञानकीर्ति थे । यहींसे ज्ञानभूषण बड़साजनेंके गुरु और ज्ञानकीर्ति लोहड़साजनेंके गुरु कहलाने लगे ।

नन्दिसंघकी पट्टवलिसे ज्ञात होता है कि ज्ञानभूषण गुजरातके रहनेवाले थे । गुजरातमें इन्होंने सागारधर्म धारण किया, अहोर (आभीर) देशमें ११ प्रतिमाएँ धारणकी और वागबट या बागड़देशमें दुर्धर महाव्रत ग्रहण किये । तौलवदेशके यतियोंमें इनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। तौलंगदेशके उत्तम-उत्तम पुरुषोंने इनके चरणोंकी वन्दना की । द्रविड़ देशके विद्वानेंने उनका स्तवन किया, महाराष्ट्रमें उन्हें बहुत यश मिला; सौराष्ट्र धनी श्रावकोंने उनके लिए महामहोत्सव किया, रायदेश (ईडरके आसपासका प्रान्त) के निवासियोंने उनके वचनेंको अतिशय प्रमाण माना, मेदपाट (मेवाड़) के अज्ञानी लोगोंको उन्होंने प्रतिबोधित किया, मालवेके भ्वयजनोंके ह्वदयकमलको विकसित किया, मेवालमें उनके अध्यात्मरहस्यपूर्ण व्याख्यानसे विविध विद्वान श्रावक प्रसन्न हुए, कुरु जाङ्गलके लोगोंका अज्ञानरोग दूर किया, तूरवके फड्दर्शन और तर्कके जानने वालोंपर विजय प्राप्त किया, वैराट (जयपुरके आसपास) के लोगोंको उभयमार्ग (सागर-अनगार) दिखलाये, नमियाढ

सौजन्य :- श्री दावडा निर्भयकुमार माणेकलालजी ३०३-३०४, न्यु शांतिनगर, एस. वी. पी. रोड, बोरीवली, मुम्बई

(निमाड़) में जिनधर्मकी प्रभावना की, टगराट हड़ी-बटी नागट चार्ल (?) आदि जनपदोंमें प्रतिबोधके निमित्त विहार किया, भैरव राजाने उनकी भक्ति की, इन्द्र राजाने चरण पूजे, राजाधिराज देवराजने चरणोंकी आराधनाकी, जिनधर्मके आराधक मुदिलियार, रामनाथराय, धोम्मरसराय, कलपराय, पाण्डुराय आदि राजोंने पूजा की और उन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्रा की। व्याकरण-छन्द अलंकार साहित्य-तर्क आगम, अध्यात्म, आदि शास्त्ररुपी कमलोंपर विहार करनेके लिए वे राजहंस थे और शुद्ध ध्यानामृत-तपनकी उन्हें लालसा थी।

नन्दिसंघकी पट्टावलीमें जो यह प्रसस्ति दी गयी है इसमें सन्देह नहीं कि भट्टारक ज्ञानभूषण मेघावी और प्रपभावशाली थे।

इनके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें शुभचन्द्र-पट्टावलिसे पूरा प्रकाश प्राप्त होता है। इस पट्टावलिसे नवम अनुच्छेदमें बताया है कि इन्होंने अनेक जनपदोंमें विहार कर प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। लिखा है -

इनके (भुवनकीर्तिके) पट्टरुपी उदयाचलको लिए सूर्यके समान, गुर्जरदेशमें सर्वप्रथम सागरधर्मके प्रचारक, अहीर आभीर देशमें स्वीकृत एकादशप्रतिमासे पवित्र शरीरवाले, वाग्वर देशमें अंगीकृत द्वद्वॅर महाव्रतके भारकी धारण करनेवाले कर्णाटक देशमें उँचे उँचे चैत्यालयोंके दर्शनसे महापुण्यको उपार्जित करनेवाले, तौलव देशके महावादीश्वर विद्वज्जनों और चक्रवर्तियोंमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले, तैलंग देशके सज्जनोंसे पूजित चरणकमलवाले, द्रविड़ देशके सुविज्ञोंसे स्तुति किये जानेवाले, महाराष्ट्र देशमें उज्जवल यशका विस्तार करनेवाले, सौराष्ट्र देशके उत्तम उपासकोंसे महोत्सव मनाये जानेवाले, सम्यग्दर्शनसे युक्त रायदेशके निवासी प्राणिसमूहसे प्रमाणीकृत वाक्यवाले, मेदपाट देशके अनेक अज्ञजनेंको उद्‌बोधित करनेवाले, मालव देशके भव्योंके ह्रदयकमलको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान, मेवाड देशके अन्यान्य विज्ञउपासकोंको अपने आद्यात्मिक व्याख्यानोंसे रंजित करनेवाले, कुरुजांगल देशके प्राणियोंके अज्ञानरुपी रोगको हटानेके लिए सद्वैद्यके समान, तुरब देशमें षड्‌दर्शन न्याय आदिके अध्ययनसे उत्पन्न अखर्व गर्वको दबाकर विजय प्राप्त करनेवाले विराट देशमें उभय मार्गको प्रर्दशित करनेवाले, नमियाड़ देशमें जिनधर्मकी अत्यन्त प्रभावना और नव हजार उपदेशकोंको नियत करनेवाले, टग, राट, हड़ी, वटो, नाग और चाल आदि अनेक जनपदोंमें ज्ञानप्रचारकके लिए विहार करनेवाले श्रीमूलसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छके दिल्लि सिंहासनके अधिपति, अपने प्रतापसे दिड़मण्डलको आक्रमण करनेवाले, अष्टांगयुक्त सम्यक्त्व आदि अनेक गुणगणसे अलंकृत और श्रीमान् इन्द्रदि भूपालोंसे पूजित चरणकमलवाले, गजान्तलक्ष्मी, ध्वजान्तपुण्य, नाट्यन्तभोग, समुद्रान्तभूमिभागके रक्षक, सामन्तोंके मस्तक से धृष्ट चरणवाले श्री देवरायसे पूजितपादपद्मवाले, जिनधर्म के आराधक मुदितपालराय, रामनाथराय, बोम्बसराय, कल्पराय, पाण्डुराय आदि अनेक राजाओंसे चर्चित चरणयुगलवाले, अनेक तीर्थयात्राओंको सम्पन्नकरनेवाले, मोक्षलक्ष्मीको वशीभूत करनेवाले, रत्नत्रयसे सुशोभित शरीरवाले, व्याकरण, छन्द, अलंकार, साहित्य, न्याय और अद्यात्मप्रमुख शास्त्ररुपी मानसरोवरके राजहेस, शुद्धध्यानरुपी अमृतपानकी लालसा करनेवाले और वसुन्धराके आचार्य श्रीमद् भट्टारकवर्य श्रीज्ञानभूषण हुए।

भट्टारक पद पद प्रतिष्ठित होते ही ज्ञानभूषणके कार्यकालमें अनेक महत्वपूर्ण प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न हुई है। इन्होंने १५३१ में डूंगरपुरमें सहस्त्रकूट प्रतिष्ठाका संचालन किया। १५३४ फाल्गुन शुक्ला दशमीमें आयोजित

सौजन्य :- महेता मोतीलाल मन्नालालजी
कंकूबाई मोतीलालजी
९०२, एवरेस्ट चेम्बर्स, माउन्ट प्लेजेन्ट रोड, वालकेश्वर, मुम्बई

प्रतिष्ठा महोत्सवके समय प्रतिष्ठित की गयी मूर्तियाँ अनेक स्थानोंपर आज भी प्राप्त होती है। वि०सं० १५३५में इन्होंने दो प्रतिष्ठाओंमें भाग लिया था। एक प्रतिष्ठाका निर्देश जयपुरके छावड़ोंके मन्दिरमें और दूसरीका उल्लेख उदयपुरके मन्दिरमें मिलता है। वि०सं० १५४०में बूबड़ जाति श्रावक लाखा एवं उसके परिवारने उन्हीके आदेशसे आदिनाथस्वामीकी प्रतिष्ठा करायी थी। ईनके तत्त्वावधानमें वि.सं. १५४३, १५४४ एवं १५४५ में विविध प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुए थे। वि०सं० १५५२ में एक बृहद् आयोजन हुआ, जिसमें भट्टारक ज्ञानभूषण सम्मिलित होनेके उल्लेख प्राप्त होते है। वि.सं. १५६० और १५६१ में सम्पन्न हुई प्रतिष्ठाओंमें इनके शिष्य भट्टारक विजयकीर्तिका उल्लेख मिलता है। तथा-

संवत् १५६० वर्षे श्री मूलसंघे भट्टारक श्री ५ानभूषण तत्पट्टे भ० श्री विजयकीर्तिगुरुपदेशात् बाई श्री ग्रोद्धन श्रीबाई श्री विनय श्री विमान पंक्तिव्रत उद्यापने श्रीचन्द्रप्रभ....... ।

संवत् १५६१ वर्षे चैत्र वदो ८ शुक्रो श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे भट्टारक श्री सकलकीर्ति तत्पट्टेभ० भुवनकीर्ति तत्पट्टे भ० श्रीज्ञानभूषण तत्पट्टे भ० विजयकीर्तिगुरुपदेशात् हूंबड़ ज्ञातीय श्रेष्ठि लखमण भार्या मरगदी सुत श्रे०समधर भार्या मचकूं सुत श्रे० गंगा भार्या वल्लि सुत हरखा होरा झठा नित्यं श्री आदीश्वर प्रणमति बाई मचकूं पिता दोसी रामा भार्या पूरी पुत्री रंगी एते प्रणमति।

भट्टारक ज्ञानभूषमने संस्कृत और हिन्दी दोनें ही भाषाओंमें रचनाएँ लिखी है। निम्नलिखित संस्कृत रचनाएँ प्रसिद्ध है -

१. आत्मसम्बोधन काव्य २. ऋषिमण्डल पूजा ३. तत्त्वज्ञानतरंगिणी ४. पूजाष्टकटीका
५.पञ्चकल्याणकोद्यापनपूजा ६.नेमिनिर्वाणकाव्यकी पञ्जिकाटीका ७.. भक्तामरपूजा ८.श्रुतपूजा
९. सरस्वतीपूजा १०.सरस्वतीस्तुति ११.शास्त्रमण्डलपूजा

हिन्दी रचनाएँ

१आदीश्वरफाग २.जलगालनरास ३.पोसहरास ४.षट्कर्मरास५.नागद्रारास

आत्मसम्बोधन :- आत्म संबोधन आध्यात्मिक कृति है। इसकी प्रति जयपुर के बाबा दुलीचन्द्रके शास्त्र भंण्डार में संग्रहीत है।

तत्त्वज्ञानतरंगिणी :- इस ग्रन्थमें १८ अध्याय हैं और समस्त पद्यसंख्या ३६ हैं। कविने अन्तमें अपना परिचय निम्न प्रकार निबद्ध किया है।

जातः श्रीसकलादिकीर्तिमुनिपः श्री मूलसंघेग्रणी -
सततपट्टोदयपर्वते रविरमूद्रव्यांवुजानंदकृत्।
विख्यातो भुवनादिकीर्तिरिथ सस्तत्पादकंजे रतः
तत्त्वज्ञानरंगिणी स कृतवानेतां हि चिद्भूषणेः ॥२१॥

स्पष्ट है कि ज्ञानभूषणके प्रगुरु सकलकीर्ति और गुरु भुवनकीर्ति थे। इस ग्रन्थमें शुद्ध चैतन्यस्वरुपका प्रतिपादन किया गया है। ध्यान, भेद-विज्ञान, क्षहेकार-ममकारका त्याग, रत्नत्रयस्वरुप, शुद्ध चैतन्यरुपका विस्तारसे विवेचन किया गया है। बताया है कि शुद्ध चैतन्यस्वरुपका स्मरण ही समस्त सुख प्रदान करनेवाला, मोहको जीतनेवाला, अशुभ आस्त्र एवं दुष्कर्मोंका हर्ता, सम्यग्दर्शन, सम्यग्क्षान और सम्यक्चारित्रकी प्राप्तिकी साधक और मनुष्य जन्मकी सफलताका सूचक है।

सौजन्य :- श्रीमती निशा दिपाकुमार शाह
आंध एक्सप्रेस सर्वीस प्रा. लि.
३५, भौंगवाडी शोपींग मारकेट,
कालवादेवी, मुम्बई.

सौख्यं मोहजयोऽशुभास्त्रवहतिर्नाशोतिदुष्कर्मणा -

मत्यंत च विशुद्धता नरि भवेदाराधना तत्तिकी ।

रत्नानां त्रितयं नृजन्मसफल संसारभीनाशनं

चिद्रूपोहमितिस्मृतेश्च समता सद्भ्यो यशःकीर्तनं ॥

आचार्यने बताया है कि भेदविज्ञानके बिना शुद्ध चिद्रुपका ध्यान नही किया जा सकता है । जो भेद-विज्ञानका धारी है, उसे यह सारा संसार भ्रान्त प्रतीत होता है । अतएव मेदविज्ञानकी प्राप्तिके लिए निरन्तर प्रयास करना चाहिये । आचार्यने लिखा है -

उन्मतं भ्रांतियुक्त गतनयनयुगं दिग्विमूढं च सुप्तं

निश्चित प्राप्तमूर्च्छ जलवहनगतं बालकावस्थमेतत् ।

स्वस्याधीनं कृतं वा ग्रहिलगतिगत व्याकुल मोहधूर्तः

सर्व शुद्धात्मदृग्भीरहितमपि जगद् भाति भेदज्ञचित्ते ।

इस प्रकार इस तत्त्वज्ञानरंगिणीमें शुद्ध चैतन्यकी प्राप्तिके लिये परद्रव्यों के त्यागका वर्णन किया है । आत्मतत्त्वको अवगत करनेके लिए यह ग्रन्थ उपादेय है ।

भक्तामर, श्रुत, सरस्वती, शास्त्रमण्डल आदि पूजाग्रन्थोंमें तत्तद्पूजाओंका संकलन किया गया है । पूजाष्टकमें आठ पूजों की स्वोपज्ञ टीका है । समस्त कृति दश अधिकारोंमें विभक्त है । इसका रचनाकाल वि०सं० १५२७ है । अन्तिम पुष्पिका निम्न प्रकार है ।

"इति भट्टारकश्रीभुवनकीर्तिशिष्यमुनिज्ञानभूषणविरचितायां स्वकृताष्टकदशकटीकायां विद्वज्जनवल्लभसंज्ञायां नन्दीश्वरद्वीपजिनालयार्चनवर्णनोयेनाम दशमोऽधिकारः॥"

आदीश्वरफाग :- फागसम्बन्धी हिन्दीकी रचनाओंमें इस कृतिका विशिष्ट स्थान है । इस कृतिमें आदितीर्थकरका जीवनचरित वर्णित है । आरम्भका अंश संस्कृतमें लिखा गया है और अवशिष्ट हिन्दीमें । २३९ पद्य संस्कृतमें लिखे गये है और शेष २६२ हिन्दीमें । समस्त पद्योंकी संख्या ५०१ है । तीर्थकर आदिनाथका जन्म, शैशवावस्था और युवावस्थाका संगोपांग चित्रण किया गया है । निलाज्जनाके नृत्य करते समय विलीन हो जानेके कारण आदिनाथ संसारसे विरक्त हो जाते हैं । कविने इस घटनाका सजीव चित्रण करते हुए लिखा है -

आहे धिग-धिग इह संसार, बेकार अपार असार ।
नही सम मार समान कुमार, रमा परिवार ॥
आहे घर पुर नगर नहीं निज रज सम राज अकाल ।
हय गय पयदल चल मल सरिखउ नारि समाज ॥
आहे आयु कमल दल सम चंचल चपल शरीर ।
यौवन धन इव अथिर करम जिय करतल नीर ॥
आहे भोग वियोग समन्रित रोग तणू धर अंग ।
मोह महा मुनि निदित निदित नाटीय संग ॥
आहे छेदन भेदन वेदन दीठीय नरग मझारि ।
भामिनी भोग तणइ फलि तउ किम बांधइ नीरि ॥

पोसरहास :- यह व्रतविधानके महात्म्य पर आधारित रास है । भाषा एवं शैलीकी दृष्टिसे इसमें रासोकाव्य जैसी सरसता और मधुरता पायी जाती है । कविने कृतिके अन्तमें अपना नामांकन किया है।

सौजन्य :- श्रीमती मंजूला के. शाह
आंध एक्सप्रेस सर्वीस प्रा. लि.
३५, भौंगवाडी शोपीग मारकेट,
कालवादेवी, मुम्बई.

वारि रमणियमुगतिज सम अनुप सुख अनुभवइ ।
भव म कारि पुनरपि न अवइ इह बू फलजस गमइ ॥
ते नर पोसह कांन बावई परि पोसह धरइज नर नारि सुजण ।
ज्ञान भूषण गुरु इम भणइ, ते नर करइ बखाण ॥

इसी प्रकार षट्कर्मरास कर्मसिद्धान्तपर आधारित है । इसमें देवपूजा, गुरुपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन षट्कर्मोंके पालन करनेका सुन्दर उपदेश दिया है । इसमें ५३ छन्द हैं और अन्तिम छन्दमें कविने अपने नामका उल्लेख किया है । जलगालनरास' में ३३ पद्य है । इसमें जल छाननेकी विधिका रासशैली में वर्णन है । इस प्रकार ज्ञानभूषणने साहित्य, संस्कृति और समाजके उत्थानके कार्य किये हैं ।

विजय किर्ति १५५७-१५६

लेखांक (पद्मनंदि पंचविंशतिका)

सं. १५६८ वर्षे फागुणमासे शुक्लपक्षे १० दिन गुरौ श्रीगिरिपुरे श्री आदिनाथचैत्यालये श्रीमूलसंघे..... भ. श्रीज्ञानभूषण तत्पट्टे भ. श्रीविजयकीर्ति ततभगिनि आर्यिका देवश्री तस्यै पद्मनंदिपंचविंशतिका श्रीसंघेन लिखाप्य दत्ता । (बडौदा, दा. पृ. ३४)

शुभचन्द्र १५७३-१६१३ -

लेखांक :-अध्यात्मतरंगिणी टीका

विजयकीर्तियतिर्जगतां गुरुर्विधृतधर्मधुरोध्दुतिधारक : ।
जयतु शासनभासभारतीयमयतिर्दलितापरवादिक : ॥
शिष्यस्तस्य विशिष्टशास्त्रविशद : संसारभीताशयो
भावाभावविवेकवारिधितरः स्याद्वादविद्यानिधि : ।
टीकां नाटकपद्यजां वरगुणाध्यात्मा दिस्त्रोतस्विनीं
श्रीमच्छ्रीशुभचंद्र एष विधिवत् संचकरीति स्म वै।
त्रिभुवनवरकीर्तेर्जातरूपात्तमूर्तेः शमदभयमपूर्तेराग्रहान्नाटकस्य ।
विशदविभववृत्तो वृत्तिमाविश्वकार गतनयशुभचंद्रो ध्यानसिद्धयर्थमेव ॥
विक्रमवरभूपालात् पंचत्रिशते त्रिसप्ततिव्यधिके ।
वर्षेप्याश्विनमासे शुल्के पक्षेय पंचमीदिवसे ॥ (सनातन ग्रंथमाला, १५, कलकत्ता)

लेखांक ३६९ - करकंडुचरित्र

व्यष्टे विक्रमतः शते समइते चैकादशाब्दाधिके
भाद्रे मासि समुज्ज्वले समतिथौ खंगेजवाछे पुरे ।
श्रीमच्छ्रीवृषभेश्वरस्य सदने चक्रे चरित्रं त्विदं
राज्ञः श्रीशुभचंद्रसूरियतिपश्चं पाधिपस्याद् भुतम् ॥ (अ. ११,पृ. २६५)

सौजन्य :- श्रीमती के. टी. शाह ३५, भौंगवाडी शोपींग मारकेट,
आंध्र एक्सप्रेस सर्वीस प्रा. लि. कालबादेवी, मुम्बई.

लेखांक - कार्तिकेयानुपेक्षा टीका

श्रीमद्विक्रमभूपतेः परिमिते वर्षे शते षोडशे
माघे मासि दशाग्रवह्निसहिते ख्याते दशम्यां तिथौ ।
श्रीमच्छ्रीमहिसारसारनगरे चैत्यालये श्रीगुरो :
श्रीमच्छ्रीशुभचंद्रदेव वविहिता टीका सदा नंदतु ॥६
वर्णिश्रीक्षेम चंद्रेण विनयेनाकृत प्रार्थना ।
शुभचंद्रगुरो स्वामिन् कुरू टीकां मनोहारम् ॥७
तथा साधुसुमत्यादि कीर्तिनाकृत प्रार्थना ।
सार्थीकृता समर्थेन शुभचंद्रेण सुरिणा ॥९॥
भट्टारकपदाधीशा मूलसंधे विदां वराः ।
रमावीरेन्दुचिद्रूपगुरवो हि गणेशिनः ॥१० ॥ (जैन साहित्य और इतिहास पृ.५२८)

लेखांक : - संशयिवदनविदारण

अ. १ क्षुद्बाधारहितत्वं हि जिनस्यानंतशर्मणः ।
एष्टव्यं भव्यसद्वर्गैः शुभचंद्रैश्विदावहे : ॥
अ.२ इत्यवादि च संवादात् स्त्रीनिर्वाणनिवारणम् ।
शुभचंद्रेण संक्षेपाद् विस्तारोन्यत्र लोक्यताम् ॥
अ.३ श्रीमतो वर्धमानस्याह्नतेर्भूणस्य वारणम्।
प्रणीत शुभचंद्रेण जीयादाचंद्रतारकम् ॥
(हरीभाई देवकरण ग्रंथमाला, कलकत्ता १९२२)

लेखांक :- षड्दर्शनप्रमाणप्रमेयानुप्रवेश

जयति शुभचंद्रदेवःकंडूगणपुंडरीकवनार्तडः
चंडत्रिदंडदूरो राद्धांतपयोधिपारगो बुधविनुतः ॥
(भा.ग्र.पृ.२१)

लेखांक :- अंगणपत्ती

सिरिसयकलकित्तिपट्टे आसेसी भुवणाकित्तिपरमगुरू।
तप्पट्टकमलभाणू भडारओ बोहभूसणओ।।
सिरिविजयकित्तिदेओ णाणासत्थप्पयासओ धीरो ।
बुहसेवियपयजुअलो तप्पयवरकलमसत्तो य ॥
तप्पयसेवणसत्तो तेवेज्जो उहयभासपरिवेई ।
सुहचंदो तेण इणं रइयं सत्थं समासेण।।
(सिद्धांतसारादिसंग्रह,माणिकचंद्र ग्रंथमाला, बम्बई)

WITH BEST COMPLIMETS FROM :
CHANDRAKUMAR SHETH
6839, CHABLIS COURT
MENTOR OH.
MILWAUKEE U.S.A.

लेखांक :- नंदीश्वर कथा

जगति जयति दक्षःपालितानेकपक्षः
सुगुरूविजयकीर्ति : प्रस्फुरत्सूरिमूर्ति : ।
चरणनलिनरक्तस्तस्य सद्धक्तियुक्तः
समकृत शुभचंदः सत्कथां भव्यचंद्रः॥ (ना.२५)

लेखांक :- पांडवपुराण

विजयकीर्तियतिर्मुदितात्मको जितनतान्यमनः सुगतैः स्तुतः।
अवतु जैनमतं सुमतो मतो नृपतिभिर्भवो भवतो विभुः॥
पट्टे तस्य गुणांबुधिर्व्रतधरो श्रीमान् गरीयान् वरः
श्रीमच्छ्रीशुभचंद्र एव विदितो वादीभसिंहो महान्।
तेनेदं चरितं विचारसुकरं चाकारि चंचद्रुचा
पाण्डो : श्रीशुभसिद्धिसातजनकं सिद्धयै सुतानां सदा ॥
चंद्रनाथचरितं चरितार्थं पद्मनाभचरितं शुभचंद्रम्।
मन्मथस्य महिमानमचंद्रो जीवकस्य चरितं च चकार ॥
चंदनायाःकथा येन च्ध्वा नांदीश्वरी तथा ।
आशाधरकृताचारवृत्ति : सदवृत्तिसिद्धार्चनमाव्यधत्त ।
सारस्वतीयार्चनमत्र शुद्धं चिंतामणीयार्चनमुच्चरिष्णु : ॥
श्रीकर्मदाहविधिबंधुरसिद्धसेवा नानागुणौघगणनाथसमर्चनं च ।
श्रीपार्श्वनाथवरकाव्यसुपंजिकां च यः संचकार शुभचंद्रयतींद्रचंद्रः ॥
उद्यापनमदीपिष्ट पल्योपमविधेश्च यः।
चारित्रशुद्धितपसश्चतुस्त्रिद्वादशात्मनः ॥
संशयवदनविदारणमपशब्दसुखंडनं परमतर्कं ।
सत्तत्त्वनिर्णयं वरस्वरूपसंबोधिनी वृत्ति ।.
अध्यात्मपद्यवृत्तिं सर्वार्थापूर्वसर्वतोभद्रम्।
योकृत सद्व्याकरणं चिंतामणीनामधेयं च ॥
कृता येनांक्गप्रज्ञप्तिः सर्वांगार्थप्ररूपिका।
स्तोत्राणि च पवित्राणि षड्वादाः श्रीजिनेशिनाम् ॥
श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहते स्पष्टाष्टसंख्ये शते
रम्येष्टाधिकवत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ ।
श्रीमद्वाग्वरनिर्वृतीदमतुले श्रीशाकवाटे पुरे
श्रीमच्छ्रीपुरूषभिधे विरचितं स्थेयात् पुराणं चिरम् ॥
श्रीपालवर्णिना येनाकरि शास्त्रार्थसंग्रहे।
साहाय्यं स चिरं जीयाद् वरविद्याविभूषण ॥ (भा.१ कि.म पृ.३७)

सौजन्य :- महावीर राजेन्द्रकुमार शेठ
१२२, शुशीला एपार्टमेन्ट, एल. टी. रोड, बजीरानाका, बोरीवली. मुम्बई

लेखांक :- (जीवधर रास)

सं. १६३९ वर्षे कार्तिकमासे शुक्लपक्षे पंचमी रवौ। श्रीवाग्वरदेसे श्रीसागवाडाशुभस्थाने श्रीआदिनाथचैत्यालये श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुंदाकुंदाचार्यान्वये भ. श्रीपद्मनंदीदेवाः तत्पट्टे भ. श्रीसकलकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ. श्रीभुवनकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ. श्रीज्ञानभूषणदेवाः तत्पट्टे भ. विजयकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ. श्रीशुभचंद्रदेवाः तत्पट्टे श्रीसुमतिकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ. गुणकीर्तिदेवा : तत्शिष्य श्रीहरषा तत्शिष्य ब्रम्ह श्रीशंकर लख्यतं आत्मपठनार्थ।

(ना. ३६)

लेखांक :- श्रेणिकापृच्छा कर्मविपाक

शुभचंद्र जशचंद्रज कही सुमतिकीरति गुरू वंदू सही।
श्रीगुनकीरति भट्टारक भने भणे सुणे इच्छित तेहने ।।७१ (ना. ६)

लेखांक :- (अध्यात्मतरंगिणी)

संवत १६४२ वर्षे ज्येष्ठ द्वितीय कृष्ण दशम्यां शुक्रे मूलसंघे....... भ. श्रीसुमतिकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ. श्रीवादिभूषणगुरूस्तच्छिष्य पं. देवजी पठनार्थ ॥ (जैन साहित्य और इतिहास पृ. ५२९)

लेखांक - पद्मप्रभ मूर्ति रामकीर्ति १६७०-१६८२

संमत १६७० वर्षे फागुन वदी ५ शुक्रे श्रीमूलसंघं भ. श्रीवादीभूषण तत्पट्टे भ. श्रीरामकीर्तिगुरुपदेशात् अगरवालज्ञातीय सं. ....॥ (भा. १३ पृ. १३०)

पद्मनंदी

लेखांक - पार्श्वनाथ मूर्ति

संवत १६८३ वर्षे माघ सु. ५ गुरौ श्रीमूलसंघे....भ. श्रीरामकीर्ति तत्पट्टे पद्मनंदिगरुपदेशात् हूमड ज्ञातीय लधुशाखा खरजा गोत्रे सं. नाकर ॥ (भा. १४ पृ. २९)

लेखांक-शांतिनाथ मूर्ति

संवत १६८६ वर्षे वैशाख सुदी ५ बुधे शाके १५५१ वर्तमाने श्रीमूलसंघे ....भ. श्री आदिभूषणदेवः तत्पट्टे भ. श्रीरामकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ. श्री पद्मनंदिगुरुपदेशात पादशाह श्रीसाहजहां विजयराज्ये श्रीगुर्जरदेशे श्रीअहमदाबादवास्तव्य हूंबड ज्ञातीय ब्रह्मच्छाखीय वाग्वदेशस्यांतरीय- नगर-नौतनभद्र-वासादोद्वरणधीर जाज मोना भार्या लकु...एतेषां महीसिद्धक्षेत्र - श्रीसेत्रुंजयरत्नगिरी श्रीजिनप्रसाद श्रीशांतिनाथबिंब कारयित्वा नित्यं प्रणमति । शुभं भवतु ॥

सौजन्य :- बलभद्र बालचंद्जी डोटिया

४०४-बी. जय साई धाम, सोडावाला रोड, बोरीवली. मुम्बई

लेखांक ३८९ - (गणितसार संग्रह)

संवत १९०२ वर्षे माह शुदि ३ शुक्ले श्रीमूलसंघे.........भ.श्रीसकलकीर्ति.देवाःतदन्वये भ.श्रीवादिभूषण तत्पट्टे भ. श्रीरामकीर्ति तत्पट्टे भ. श्रीपद्मनंदी विराजमाने आचार्यश्रीनरेंद्रकीर्ति तच्छिष्य ब्रम्ह श्रीलाऽयका तच्छिष्य ब्रम्ह कामराज तच्छिष्य ब्रम्ह लालजी ताभ्यां श्रीरायदेशे श्रीभोलोडानगरे श्रीचंद्रप्रभचैत्यालये दोसी कुहा.....दत्तं श्रीरस्तु ॥ (का.६३)

लेखांक ३९० - (शब्दार्णवचंद्रिका)

संवत् १७१३ वर्षे कार्तिक शुदि अष्टमी बुधे वाग्वरदेशे सागवाडानगरे श्रीआदिश्वरनवीनचैत्यालये राउल श्रीपुंजराजविजयराज्ये श्रीमूलसंघे भ. श्रीरामरीकीर्तिदेवाःतत्पट्टे भ. श्रीपद्मनंदिदेवाः तत्पट्टे भ. श्रीदेवेंद्रकीर्तिदेवाः तदाम्नाये मुनि श्रीश्रुतकीर्तिस्तच्छिष्य मुनि श्रीदेवकीर्तिस्तच्छिष्या चार्यश्रीकल्याणकीर्ति तच्छिष्य ब्रम्ह तेजपालेन स्वज्ञानावरणीयकर्मक्षार्थं स्वरपपाठनार्थ जैनेंद्रमहाव्याकरणं सवृत्तिकं लिखितं शोधितं च॥

(सनातन ग्रन्थमाला, बनारस १९१५)

लेखांक ३९१ - (गणितसारसंग्रह)

संवत १७२५ वर्षे कार्तिक सुदि १० भौमे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भ. श्रीसकलकीर्त्यन्वये भ. श्रीवादिभूषणदेवाः तत्पट्टे भ. श्रीपद्मनंदिदेवाः तत्पट्टे भ. श्रीदेवेंद्रकीर्तिगुरूपदेशात् मुनिश्रीश्रुतकीर्ति तच्छिष्य मुनिश्रीदेवकीर्ति तच्छिष्याचार्य श्रीकल्याणकीर्ति तच्छिष्य मुनिश्री त्रिभुवनचंद्रेणेदं षटत्रिंशतिका गणितशास्त्र कर्मक्षयार्थं लिखितं ।. (कां.६५)

लेखांक ३९३-(अष्टसहस्त्री)

वत्से नेत्रषडश्वसोम १७६२ निहिते ज्येष्ठे च मासेनघे
शुभ्रे पक्ष इति त्रयोदशादिने श्रीतक्षकाख्ये पुरे।
नेमिखाभिगृहे व्यलीलिखदिदं देवागमालंकृतेः
पुस्तं पूज्यनरेंद्रकीर्तिसुगुरोः श्रीलालचंद्रो बटुः ॥ (अ.१०पृ.७३)

लेखाक ३९४-चरण पादुका

स्वस्तिश्री संवत १८३२ शाके १६८७ प्रवर्तमाने शुभकारक कल्याण मासे कृष्णपक्षे ३ तृतीया शुभस्थ तिथि शुक्रवारे श्रीखड्गदेशे धूलेवग्रामे श्रीऋषभदेवचैत्यालये श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुंदकुदाचार्यान्वये भ. श्री सकलकीर्ति तत्पट्टे भुवनकीर्ति तदनुक्रमेण भ. श्रीक्षेमकीर्ति तत्पट्टे श्रीनरेद्रकीर्ति तत्पट्टे भ. श्रीविजयकीर्ति तत्पट्टे भ. नेमिचंद्र तत्पट्टे भ. श्री १०८ श्रीचंद्रकीर्ति प्रतिष्ठिते...बाईजी श्रीसजूबाईके चतुरविशति जिन पादुका स्थापित शुभं । (केशरियाजी, वीर २ पृ. ४६०)

सौजन्य :- श्री अशोक हिम्मतलाल फडे
अरिहंत २ सामने, गुरुजी हा. सो.
रूइकर कोलोनी, नबीक, कोल्हापुर,

देडारग देश मेवाड़मे उदयापुर सुजान।
राज करे तिहं राजवी भीमसिंह राजान॥
संवत १८६३ मे अषाड सुदी ३ तीज।
गुरूवारे मुहूर्तज कज्यो मली तरे पूजा कीध॥
मूलसंध गछ सरस्वती बलात्करा गण धरबुडौ।
कुंदकुंद सूरिवर सदा सुमतिकीर्ति नमूं पाय।
ज्ञानभूषण ते पाटे प्रगट विजयकीर्ति सूरि दृश्य॥
शुभचंद्र सूरिवर सदा सुमतिकीर्ति गुणकीर्ति गुरू॥
गुपातिलु वादिभूषण तस पाट रामकीर्ति पाट शोभतो॥
राख्यो धर्मन ठाठ पद्मनंदि पाटे सुजस।
देवेंद्रकीर्ति गुणधार खेमकीर्ति पर उज्जवलो॥
नरेंद्रकीर्ति मनुहार विजयकीर्ति पट्टे गुरू।
नेमिचंद्र भवतार चंद्रकीर्ति चंद्र समो॥
रामकीर्ति सुखकार यशःकीर्ति सूरिवर सिंह।
उदयो पुन्य अंकुर करि प्रतिष्ठां दुर्ग तणी॥
जस व्याप्यो भरपूर बागडदेश सुहावनो।
सागलपुर वर ग्राम संघपति साहर लिया॥

(केशरियाजी, वीर २ पृ. ४६१)

सौजन्य :-डॉ. धनपाल सालगिया
१०, कपील पोलि क्लिनिक,
७५, जयन्त एपार्टमेन्ट, वरली, मुम्बई

सागवाडा शाखा द्वारा
पं. चन्दनलाल जैन (भ.यशकीर्ति सरस्वतीगच्छ ऋषभदेव राज.)

धर्मकीर्ति	१४७१	१४९५
विमलेन्द्रकीर्ति	१४९५	१५०८
भुवनकीर्ति	१५०८	१५३५
रत्नकीर्ति	१५३५	१५६५
जसकीर्ति	१५६५	१६१३
गुणचन्द्र	१६१३	१६४३
जिनचन्द्र	१६४३	१६५४
सकलचन्द्र	१६५४	१६७०
रत्नचन्द्र	१६७०	१६८८
हर्षचन्द्र	१६८८	१७२३
शुभचन्द्र	१७२३	१७४८
अमरचन्द्र	१७४८	१७६३
रत्नचन्द्र	१७६३	१७८७
देवचन्द्र	१७८७	१८०५
धर्मचन्द्र	१८०५	१८५६
महीचन्द्र	१८५६	१८५८
नेमिचन्द्र	१८५८	१८७३
गुणचन्द्र	१८७३	१८८४
हेमचन्द्र	१८८४	१९१०
राजेन्द्र भूषण	१९१०	

सागवाडा भट्टारक गद्दी

प. चन्दनलाल जैन (भ. यशकीर्ति सरस्वती भवन ऋषभदेव (राज.) समप्रादक)

पद्मनन्दी गुरुजातियो, बलात्कारगण ग्राणी ।
पाषाण धारिता येन, वादिता श्री सरस्वती ॥
ऊर्जयन्त गिरौ तेन, गच्छेहा सरस्वती भवन ।
अतर स्तस्मौ मुनीन्द्राय नमः श्री पद्मनन्दीने ॥

सौजन्य :- महेन्द्रकुमार मन्नालालजी महेता १००२, एवरेस्ट चेम्बर्स, माउन्ट प्लेजेन्ट रोड, वालकेश्वर, मुम्बई

१. भट्टारक सकलकिर्ति		संवत १४७१ वर्षे बागडदेश के सागवाडा में भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा भट्टारक गादी की स्थापना की गई । उस समय बागड़ पर राहल श्री मूलब का राज्य प्रवर्तता था । सकलकीर्ति संवत् १४७१ में खोडण नगर होते हुऐ सागवाडा आये और वहाँ भट्टारकगदी स्थापित की वहाँसे नौगामा विहार किया जहाँ संघवी ढँसाने बावन जिनालय का निर्माण किया ।
२. भ. धर्मकीर्ति	(संवत १४७१ से १४९५)	भट्टारक सकलकीर्ति ने नैतनपुर मे धर्मकीर्ति को भट्टारक दिया थे सागवाडा निवासी थे इनकी अटक अंगारिया थी इन्होंने सागवाडा आदिनाथ का मन्दिर का निर्माण करवाया । इन्होंने अन्य चार प्रतिष्ठा मैं करवाई। उनके पुत्र ने मन्दिर के सामने उनकी निशिर्थका स्मारक बनवाया ।
३. विमलेन्द्रुकीर्ति	१४९५-१५०८	नौतनपुर मे भट्टारक गदी पर बैठाये
४. भुवनकीर्ति	१५०८-१५६५	नौगामा में दिया और नौगावा में प्रतिमा करवाई
५. रत्नकीर्ति	११५३५-१५६५	तेण सं. १५३५ वर्षे श्री नोगामे दीक्षा लीधी हती । **पट्टावली** तच्छिष्योभद् रत्नकीर्तिः वर्यौदार्यगांभीर्ययुक्तः । ग्रंथैमुक्तो योवतीर्णः श्रुताब्धि सोयं भव्यान् पातु संसारवाद्धौ ॥३६ (जैन सिद्धांत १७ पृ.५८)
६. भट्टारक जसकीर्ति (यशकीर्ति)	१५६५ - १६१३	**ऐतिहासिक घटना:** भट्टारक यशकीर्ति के समय हूमड़ समाज की एक महत्वपूर्ण घटना हुई। इस समय सागवाडा के अमरकीर्ति ने ६३ व्यक्तिओं के साथ संवत १५४५ में कारंज भट्टारक गादी की स्थापना की। इन ६३ व्यक्तिओं के कुटुम्ब वर्तमान में कारंजा, अमरावती, मालेगाँव, आकोला, में निवास करते है ऐतिहासिक पत्र निम्न है। **लेखांक पट्टावली यशकीर्ति** श्रीरत्नकीर्तिपदपुष्करालिरादेष्टमुख्यो यशकीर्तिसूरि :। पादौ भजामि सुहृचेष्टमूर्तिर्देदीप्यातां कौ मुनिचक्रवर्ती ॥ ३८ (उपर्युक्त) **लेखांक ऐतिहासिक पत्र** तार पुठे तेणानके पाटे आचार्य यशकीर्ति नोगामे थाप्या तार पुठे केटलाक मास दिवसे अनंतकीर्ति आदि लेईने जण ६३ दक्षिणदेसे गुरू पासे आज्ञा लेईने विहार करयो ते आज दिवस सुदी दक्षिणेदेशमाही रत्नकीर्तिना पाटधर कहावे छे तेणाना पाट सुदी नग्न चाल्या आवे छे.सं.१६१३ वर्षे जसकीर्तिये वागड माहे गाम भीलोडे काल करयो ॥ (मा. १३ पृ.११३)
७. भट्टारक गुणचन्द्र	१६१३-१६४३	साबला में दिक्षा सागवाडा में समाधि

		पट्टावली जीयाच्छ्रीकीर्तिकीर्ति स्फुरतरगुणयुक् सिहनंदी यतीद्रो । व्याख्याव्यामोहितार्यस्त्रि भुवनपतिभिः सेव्यपादारविंद : ॥३९ तच्छिष्यसूरिर्गुणचंद्रनामा न्यायागमाध्यात्मगुणैकधाम । साहित्यसल्लक्षणशास्त्रसीम जीयाद्धरित्र्यां गुणरत्नवेश्म ॥४० ***अनंतनाथ पूजा*** संवत् षोडशत्रिंशतैष्यपलके पक्षेवदाते तिथौ पक्षत्यां गुरूवासरे पुरजिनेट् श्रीशाकमार्गे पुरे । श्रीमध्दुंबडवंशपद्मसविता हर्षाखयदुर्गी वंणिक् सोयं कारितवाननंतजिनसत्पूजां वरे वाग्वरे ॥ श्रीरत्नकीर्तिभगवज्जगतां वरेण्यश्चारित्ररत्ननिवहस्य बभार भारं। तद्दीक्षितो यतिवरो यशकीर्तिश्चारित्ररंजितजनोद्वहितासुकीर्ति ॥ तच्छियो गुणचंद्रसूरिभवचारित्रचेतोहर स्तेनेदं वरपूजनं जिनवरानंतस्य युकत्यारचि ॥ (हि.१४पृ. ९६)
८. जिनचन्द्र ९. सकलचन्द्र	(१६४३-१६५४) (१६५४-१६७०)	***नौनपुर में गदी पर बेठे सागवाडा मे समाधि*** ***पट्टावली*** श्रीमूलसंघे गुणवान् गुणज्ञः श्रीवंशश्रीमान् गुणचंद्रसूरी । तत्पट्टेधारी जिनचद्रदेवः तस्येह पट्टे सकलेंदुसुरी ॥४५॥ ***लेखांक ४०९ ऐतिहासिक पत्र*** गाम नोगामे लघु साजनामो संघ मलीनो आचार्य सकलचंद्र पाट थाप्या सं. १६७० वर्षे आसोज सुदी ८ दिवसे आचार्य सकलचंद्र सागवाडे समाधी मरण करयो । (भा. १३ पृ. ११३)
१०. रत्नचन्द्र	१६७० - १६८८	***पुष्पांजलि पूजा*** विधुवसुरसद्राकौः प्रयुक्तैक्षतोर्चा शरदि नभसि मारे रत्नचंद्रैश्चतुर्थ्या धवलभृगुसुवारे सागवाडे युस्वः जिनवृषभगणादिश्रावकादेशतोव्यात् ॥ (ना. ८७)
११. हर्षचन्द्र	१६८८. १७२३	***पट्टावली*** पट्टे तदीये जयतज्जिताक्षो भट्टारको हर्षसुचंद्रनाम । षट्शास्त्रवेता गुणरत्नवेश्म खंडेरवालान्वयजो व्रतात्मा ॥५१॥ (उपयुक्त) संवत १७२० मे पाडसोला में प्रतिष्ठा करवाई १७२३ में घाटोल में प्रतिष्ठा करवाई १७२३ सागवाडा में समाधि
१२. शुभचन्द्र	१७२३. १७४८	त्यार पुठे शुभचन्द्र थाप्या सं. १७२३ वैशाख वदी ५ श्रीघांटोल भ. शुभचंद्र थाप्या सं. १७४९ वर्षे आश्विज वदी १३ गाम मेलुडे भ. शुभचंद्र परोक्ष थया ॥ (भा. १३ पृ. ११३)

		पट्टावली श्रीहर्षचंद्रस्य मुनेः सुपट्टे जिनागमात्पाप्तसमस्ततत्त्व : । शुद्धेन शीलेन विराजमावनो भट्टारकः श्रीशुभचंद्र आसीत् ॥५२॥ (जैन सिद्धांत १७ पृ. ५९)
१३.अमरचंद्र	१७४८. १७६३	**पट्टावली** ज्ञानेश्वरस्य शुभचंद्रमुनीश्वरस्य सिंहासनेमरनरेश्वरवंद्यमाने । सर्वागमार्थसुमहार्णवपारगामी दिव्यत्यसौ अमरचंद्रमहामुनींद्रः ॥५३॥ (उपयुक्त) **ऐतिहासिक पत्र** सं. १७४८ वर्षे माहा शुदी १० सोमवारे गाम मेलुडे भ. अमरचंदजी गाम घाटयोल थाप्या । १७५८ में झाबुआ में प्रतिष्ठा करवाई वैशाख सुद ९ मंगलवार सागवाडा में समाधि ।
१४. रत्नचंद्र	१७६३.१७८७	**पट्टावली** मणिहर्षशुभेंदूनां पट्टेभूदभरेंजित् । तत्पादांभोजहंसोरित्त रत्नचंद्रो यतीश्वरः ॥५५॥ (जैन सिद्धांत १७ पृ. ६०) **लेखांक ४२२ मंदिर लेख** ऊँस्वस्ति विक्रमाजित्य समयातीत संवत् १७७४ वर्षे शाके १६३९ प्रवर्तमाने माह सुदी १३ रवि श्रीदेवगढ नगरे महाराजाधिराज महारावत श्रीपृथ्वीसिंहजी विजराज्ये कुंवर श्रीपहाडसिंघ विराजमाने श्री मूलसंघे बलात्कारगणे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भ रत्नचंद्र तत्पट्टे भ. हर्षचंद तत्पट्टे भ. शुभचंद तत्पट्टे भ. श्रीअमरचंद्र तत्पट्टे भ. श्रीरत्नचंद्रगुरुपदेशात् श्रीमत् हूमबड्ज्ञातीय मंत्रीश्वरगोत्रे संघवी वर्षावत भार्या नानी .... श्रीमल्लिनाथ प्रासाद प्रतिष्ठा महामहोत्सवैः सह कराविता । (देवगढ दा. पृ. ६८) **लसेखांक ४२३ ऐतिहासिक पत्र** सं. १७८६ वर्षे माध वदी ६ गाम कोठे देश हाडोली माहे भ. रत्नचंद्रजी काल प्राप्त हुआ है । (भा. १३ पृ.११३)
१५. देवचन्द्र	१७८७ - १८०५	सं. १७८७ वैशाख सुदी भ. देवचंन्द्रजी गाम भाणपुर स्थाप्या त्यार पुठे सं. १८०५ वर्षे गाम जांबूचरे भ. देवचंद्रजी माध वदी ७ दिने काल प्राप्त थयाजी ॥ (ज्मबूसर) पाट खाली छे पण श्रावक धर्मनी थापना दयढ राखी छे........कागद लखाववोजी सं. १८०५ वर्ष जोठ वदी शनौ शोभादीने ॥ संवत १८०५ से १८११ गद्दी खाली रही है

१६. धर्मचन्द्र	१८०५.१८५६	संवत् १८११ माघ सुद ५ झाडोल में दीक्षा संवत १८१३ गलियाकोट में वैशाख सुद ११ प्रतिष्ठा करलवाई सुद ११ प्रतिष्ठा करवाई संवत १८२२ सागवाडा में भट्टारक देवचन्द्र की छत्री बनवाई संवत १८२२ में उदयपुर में प्रतिष्ठा संवत १८२९ में सुसनेर में प्रतिष्ठा कार्तिक सुद सींगोली मे प्रतिष्ठा संवत १८२९ गरोढ में माघ सुद ५ प्रतिष्ठा संवत १८२९ मालपुर पार्श्वनाथ बिम्ब प्रतिष्ठा. जेठाणा में चतुमार्स कर राजपूत ने पैसा के लालच महीनदी के किनारे आधीरात्री को हव्या कर दी।
१७. महीचन्द्र	१८५६.१८५६	सागवाडा मे प. मीठाजी को गद्दी नाम नहीचन्द्र रखा १८५६ माघ सुध प उदयगढ प्रतिष्ठा
१८. नेमीचन्द्र	१८५८.१८७३	गरोढ मे चतुमार्स ओर गरोढ सम्मेदशिखरजी यात्रा १८ श्रळण वदी २ भालारापारण में समाधि चार वर्ष गादी खाल्डी रही
१९. गुणचन्द्र	१८७७.१८८४	ब. गुलाबचन्द्र को गद्दी नाम रखा गुणचन्द्र पाडसोल, भीलोडा, परतापुर में प्रतिष्ठा करवाई १८७९ सागवाडा में चतुर्मास सागवाडा में लुहोरिया तालब पर छतरी बनवाई। धरियावाद में देवलोक संवत १८८४ माघ सुद ५२ समाधि
२०. हेमचन्द्र	१८८४.१९९०	२१ संवत १९९० राजेन्द्र भूषण आगे विवरण प्राप्त नही है वर्तमान कोई भट्टारक नहीं है।

बलात्कार गण - भानपुर शाखा - काल पट

१. भुवनकीर्ति (ईडर शाखा)
२. ज्ञानकीर्ति (संवत् १५३४)
३. रत्नकीर्ति (संवत् १५३५)
४. यशकीर्ति (संवत् १६१३)
५. गुणचन्द्र (संवत् १६३० - १६५३)
६. जिनचन्द्र
७. सकलचन्द्र (संवत् १६६७-१६७०)
८. रत्नचन्द्र (संवत् १६७०-१७०७)
९. हर्षचन्द्र (संवत् १६९९)
१०. शुभचन्द्र (संवत् १७२३-१७४९)
११. अमरचन्द्र (संवत् १७४८)
१२. रत्नचन्द्र (संवत् १७७४-१७८६)
१३. देवचन्द्र (संवत् १७८७-१८०५)

दोहा

संवत अंठारेसे बिषै पंचावन भादव मास।
शुल्क पञ्च सप्तमी रवि पूर्ण ग्रन्थ विलास ॥६५
भेदपाट देश विशे शलुम्बर शुभ स्थान।
धन कन कंचन पूरिया सुखी लोक पुन्यमान ॥६५॥
जिनवर चैत्य मनोहरु आदिनाथ जिनराय।
प्रावृट काल रहा तिहा हर्ष धरी सुखपाय ॥६६॥
तहाँ ये रचोयो ग्रन्थ ने प्रणमी जिन चरण।
सुख संपति लहे नव नवि सकल जीव मंगलचरण ॥६७॥

इति श्री चँदप्रभचरित्रे भट्टारक श्री यशकीर्ति विरचिते भगवान निर्वाण गमणव्यावर्णानां द्वादशमो उल्लासः ॥१२॥ इति श्री चँदप्रभ पुराण संपूर्ण समाप्तं। संवत १८७६ ना वर्षे कार्तिकमासे शुक्लपक्षे एकदाशी गुरुवासरे श्री मूलसंघे सरस्वतिगच्छे बलात्कारगणे श्री कुंदकुंदाचार्याम्नाये भट्टारक श्री मूलसंघे तत्पट्टे भट्टारकजी भुवनकीर्तिजी तदनुक्रमे भट्टारकजी नेमिचन्दजी तत्पट्टे भट्टारकजी चँद्रकीर्तिजी तत्पट्टे भट्टारकजी श्रीरामकीर्तिजी तत्पट्टे भट्टारकजी श्री यशकीर्तिजी ततशिष्य पंडित गोतमजी, श्री रस्तु, कल्याणमस्तु, शुभं भवतु, लिखित पंडित रूपचँद, गाम साखला मधे लख्यो छे।

संवत १८८१ साल मागसरे श्री भाणसुर नगर मध्ये चंद्रप्रभ चैत्यालये भट्टारकजी श्रीयशकीर्तिजी चैत्रमासे कर्यो प्रावके भावभक्ति घणी आसी करी ओर चँदप्रभ पुराण देवरे पधराव्यो।

सौजन्य :- विनोदकुमार वालचंदजी दोशी
ए-६०३, रत्नपुरी गौशाला लेन, मलाड (पूर्व) मुम्बई

शिलालेख नं. ७ से हूबहु मिलती हुई प्रशस्ति

भट्टारक यशकीर्ति भानपुर .

चंदप्रभ पुराण रास

श्रीमूलसंघ जगत विख्यात, सरस्वती गच्छ जगत नो नाथ ।
बलात्कार गण गणमें महान, सर्व संघ में तिलक समान ॥७९॥
पद्मनन्दी भट्टारक धोर, सकलकीर्ति तस पट्टे वीर ।
अनेक ग्रन्थ रचना सिद्धान्त,महा तपोनिधि गुण महान्त ॥८०॥
भुवनकीर्ति कीर्ति है यही, ज्ञानभूषण ज्ञान निधि सही ।
विजयकीर्ति जयवंता सूरी, शुभचन्द्र चन्द्र सम पुरी ॥८१॥
सुमतकीर्ति सुमति दातार, गुणकीर्ति गुण ज्ञान भंडार।
वादीभुषण वादी हरो मान, रामकीर्ति रामचन्द्र समान ॥८२॥
पद्मनंदि पद्मा सम कान्त, देवेन्द्रकीर्ति देव मूर्ति विख्यात ।
क्षेमकीर्ति क्षेमकारक जीव, नरेन्द्रकीर्ति नरेन्द्र जजे सदीव ॥८३॥
विजयकीर्ति तस पाटे धार, नेमचन्द वादी मद हार
तस पाटे चंद्रकीर्ति सार, जीर्ण चैत्या कर करी उद्धार ॥८४॥
रामकीर्ति गछ नामक जान, अनेक सिद्धान्तना भेद बखान
ये गछ नामक ज्ञान भंडार, प्रणमु चरण कमल भवतार ॥८५॥
ये भट्टारक प्रणमी पाय, यशकीर्ति कहै सुख थाय।
अल्प बुधि मैं रचना करी, पूर्व मुझ कृपा करी ॥८६॥
उत्तम वंश जानो अग्रवाल, गोयल गोत्र सोहै विशाल ।
हरि राम सुत त्याह गोपाल, भीसमदे तस नारि विशाल ॥८७॥
तस तनी कूखे लियो अवतार, गुरू पासे भणौ मनुहार ।
भट्टारक पदवी है सार, यशकीर्ति नामें मनुहार ॥८८॥
तेने ग्रन्थ रचो ये सार, स्वहित पर जीव सुखकरा ।
आवागमन से मिटे नरनार, सुणता होय मुक्ति भरतार ॥८९॥

WITH BEST COMPLIMETS FROM :
CHANDRAKUMAR SHETH
6839, CHABLIS COURT
MENTOR OH.
MILWAUKEE U.S.A.

२. ज्ञानकीर्ति	संवत् १५३४	**बलात्कार गण - भानपुर शाखा** **लेखांक ३९६ - (पुण्यास्त्रव कथाकोष) ज्ञानकीर्ति** संवत् १५३४ वर्षे फाल्गुनमासे शुक्लपक्षे पंचमीदिवसे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्री कुन्दाकुदाचार्योन्वये भ. सकलकीर्तिदेवा स्तत्पट्टे भ. श्रीभुवनकीर्तिदेवास्तेच्छिष्य श्री ज्ञानकीर्तिरतदंते निवासी ब्रह्मदेवदासस्य पाठनार्थ चीत्तुडा वास्तव्य नागद्रा ज्ञातीय श्रेष्ठि मदा भार्या पांचूं.......। (पा.५.१६४) **लेखांक ३९७** वागड़ देश में देश सुहामणाजी खडक देश है बहुत ए गुलजारी । जिहा रेणपुर नग्रवीं सोभता है वहां रिषभनाथका देहरा बहुत भारी। च्यार दिस के संघ ए नित्य आदि मंगल भावत है बहुत नर नारी ज्ञानकीर्ति का शिष्य कुबेर बोले तीन लोकसु गत अद्‌भूत थारी ।
३. रत्नकीर्ति	संवत १५३५	**लेखांक ३९९ ऐतिहासिक पत्र** रत्नकीर्ति हता तेणे सं. १५३५ वर्षे श्रीनोगामे दीक्षा लीधी हती त्यारे रत्नकीर्ति भट्टारक पदवी आपवानु स्थापन करी। **लेखांक ४०० पट्टावली** तच्छिष्योभद् रत्नकीर्ति : प्रवृद्धाचार्यो वर्यौदार्यगंभीर्ययुक्त :। ग्रंथैर्मुक्तो योवतीर्ण : श्रुताब्धि सोयं भव्यान् पातु संसारवाद्धौ ॥ ३६॥ (जैन सिद्धांत १७ पृ. ५८)
४. यशकीर्ति	संवत १५४५	**भट्टारक यशकीर्ति** भट्टारक यशकीर्ति के समय हूमड़ समाज की एक महत्त्वपूर्ण घटना हुई। इस समय सागवाडा के अमरकीर्ति ने ६३ व्यक्तितओं के साथ संवत १५४५ में कारंज भट्टारक गादी की स्थापना की । इन ६३ व्यक्तिओं के कुटुम्ब वर्तमान में कारंजा, अमरावती, मालेगाँव, आकोला, में निवास करते है ऐतिहासिक पत्र निम्न है। **लेखांक ४०१ पट्टावली यशकीर्ति** श्रीरत्नकीर्तिपदपुष्करालिरादेष्टमुख्यो यशकीर्तिसूरि :। पादौ भजामि सुह्यचेष्टमूर्तिर्देदीप्यातां कौ मुनिचक्रवर्ती ॥ ३८ (उपर्युक्त) **लेखांक ४०२ ऐतिहासिक पत्र** तार पुठे तेणानके पाटे आचार्य यशकीर्ति नोगामे थाप्या तार पुठे केटलाक मास दिवसे अनंतकीर्ति आदि लेईने जण ६३ दक्षिणदेसे गुरू पासे आज्ञा लेईने विहार करयो ते आज दिवस सुदी दक्षिणेदेशमाही रत्नकीर्तिना पाटधर कहावे छे तेणाना पाट सुदी नग्न चाल्या आवे छे.सं.१६१३ वर्षे जसकीर्तिये वागड माहे गाम भीलोडे काल करयो ॥ (मा. १३ पृ.११३)

५. भट्टारक गुणचन्द्र	१६१३-१६४३	साबला में दिक्षा सागवाडा में समाधि ***पट्टावली*** जीयाच्छ्रीकीर्तिकीर्ति स्फुरतरगुणयुक् सिहनंदी यतीद्रो । व्याख्याव्यामोहितार्यस्त्रि भुवनपतिभिः सेव्यपादारविंद : ॥३९ तच्छिष्यसूरिर्गुणचंद्रनामा न्यायागमाध्यात्मगुणैकधाम । साहित्यसल्लक्षणशास्त्रसीम जीयाद्धरित्र्यां गुणरत्नवेश्म ॥४० (जैन सिद्धांत १७ पृ.५८) ***लेखांक ४०४ अनंतनाथ पूजा*** संवत् षोडशत्रिंशतैष्यपलके पक्षेवदाते तिथौ पक्षत्यां गुरुवासरे पुरजिनेट् श्रीशाकमार्गे पुरे । श्रीमध्दुंबडवंशपद्मसविता हर्षाखयदुर्गी वंणिक् सोयं कारितवाननंतजिनसत्पूजां वरे वाग्वरे ॥ श्रीरत्नकीर्तिभगवज्जगतां वरेण्यश्चारित्ररत्ननिवहस्य बभार भारं तद्दीक्षितो यतिवरो यशकीर्तिश्चारित्ररंजितजनोद्वहितासुकीर्ति ॥ तच्छियो गुणचंद्रसूरिभवचारित्रचेतोहर स्तेनेदं वरपूजनं जिनवरानंतस्य युकत्यारचि ॥ (हि.१४पृ. ९६)
६. जिनचन्द्र		***ऐतिहासिक पत्र*** तेणानी पाटे गाम सावले...... समस्त संघ मिली आचार्य गुणचंद्र स्थापना करवानी....... सं. १६४३ वर्षे आचार्य श्रीगुणचंदजी सागवाडे काल करयो ॥ (भा. १३ पृ. ११३) ***सागवाडा मे समाधि -जिनचन्द्र (१६४३-१६५४)*** ***नौनपुर में गदी पर बेठे***

बलात्कार गण कारंजा कालपद

रत्नाकीर्ति सागवाडा

१	अमरकीर्ति	१५४५.१५६७
२.	विशालकीर्ति	१५६७.१५९०
३.	विद्यानंद	संवत् १५९०
४.	देवेंद्रकीर्ति	संवत् १५९९
५.	धर्मचन्द्र	संवत् १६२२
६.	धर्मभूषण	संवत् १६३८
७.	देवेंद्रकीर्ति	सं. १६३८.१६४९
८.	कुमुदचन्द्र	सं. १६५६.१६७०
९.	धर्मचन्द्र	सं. १६८४.१७०४
१०.	धर्मभूषण	सं. १७०७.१७०४
११.	विशालकीर्ति अजितकीर्ति (लातूर शाखा)	१६३२.१६४२
१२.	धर्मचन्द्र पद्मकीर्ति	१६४२.१६५६
१३.	देवेंद्रकीर्ति	सं. १७५६.१७८६
१४.	धर्मचन्द्र	सं. १७९३.१८३३
१५.	देवेंद्रकीर्ति	सं. १८४०.१८५०
१६.	पद्मनन्दि	सं. १८५०.१८७९
१७.	देवेंद्रकीर्ति	सं. १८७९.१९४१
१८.	रत्नकीर्ति	सं. १९३६.१९५३
१९.	देवेंद्रकीर्ति	सं. १९५७.१९७३

कारंजा मार्ग और अवस्थिति

कारंजा मध्य रेलवेके मूर्तिजापुर यवतमाल मार्गपर मुतिजापुरसे ३२ किं.मी.दूर स्टेशन है। अमरावती यहाँ ६२ कि.मी. है। विदर्भके सभी बडे नगरोंसे सड़क मार्ग द्वारा इसका सम्बन्ध है। अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ यहाँसे मंगलरूलपीर और मालेगाँव होकर केवल ९२ कि.मी. है। यह जिला अकोलाका व्यापारिक केन्द और समृद्ध नगर है। नगरके समीप दरवाजों और दीवारोके भग्नाशेष देखनेसे ज्ञात होता है कि पहले नगर.के चारों ओर एक मजबूत किला होगा।

नगरके मन्दिर

नगरमें तीन प्रसिद्ध मन्दिर है। इनके नाम इस प्रकार है (१) श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन सेनगण मन्दिर, (२) श्री चन्द्रनाथ स्वामी काष्ठासंघ दिगम्बर जैन मन्दिर (३) श्री मूलसंघ चन्द्रनाथ स्वामी बलात्कारगण दिगम्बर जैन मन्दिर । इन तीनो मन्दिरोंके नामोंसे ही ज्ञात होता है कि तीनों मन्दिर भट्टारकों की तीन परम्पराओंसे सम्बन्धित है। यद्यपि वर्तमानमें इन मन्दिरोंमें किसी भट्टारक परम्पराका पीठ नहीं है, किन्तु १५.१६वीं शताब्दीसे इन मन्दिरोंमें भट्टारक पीठ थे। पार्श्वनाथ मन्दिरमें सेनगणके भट्टारकोका पीठ था, दूसरा मन्दिर काष्ठासंघके भट्टारकोंसे सम्बद्ध था और तीसरे मन्दिरमें मूलसंघ बलात्कारगणके भट्टारक रहते थे। ये भट्टारक

सौजन्य :- श्री शोभागमलजी कियावत

ए-२२, आशीयाना पेलेस,
बन्ध गार्डन रोड, पूना (महा.)

अत्यन्त सक्रिय और कर्मठ थे। उनमें कार्यको दृष्टिसे पारस्परिक स्पर्धा भी रहती थी। इसलिए कारंजा उस समय सामाजिक गतिविधियोंका केन्द्र बना हुआ था। विदर्भ प्रान्तकी सम्पूर्ण जैन समाज इस नगरसे मार्गदर्शन प्राप्त करती थी। इस दृष्टिसे कारंजाने विदर्भ प्रान्तमें शताब्दियों तक सामाजिक नेतृत्वका गौरव प्राप्त किया।

१२ फीटके एक शिलाफलकमें २४ तीर्थंकर उत्कीर्ण है। मध्यमें ऋषभदेवकी ४ फीट २ इंच ऊँची खडगासन मूर्ति है। शेष २३ तीर्थंकरों में २१ पद्मासन और २ खड्गासन मुद्रामें है। नीचे ब्रह्म ज्ञानसागरने सकल तीर्थ वन्दना नामक रचनामें दो छप्पयों द्वारा यहाँके चन्द्रनाथ स्वामीकी प्रशंसा की है। उन्हें रोग शोक भयका हरनेवाला और मनवांछित सुखका देनेवाला बताया है।

३. श्री मूलसंघ चन्द्रनाथ स्वामी बलात्कारगण दिगम्बर जैन मन्दिर यह मन्दिर बलात्कारगणके भट्टारकोंकी गतिविधियोंका कई शताब्दी तक केन्द्र रहा। इस मन्दिरकी मुख्य वेदी गर्भगृहमें सात स्तम्भोंपर आधारित मण्डपके नीचे बनी हुई है। इसमें मूलनायक भगवान् चन्द्रपभका लांछन अर्धचन्द्र अंकित है, किन्तु लेख नहीं है। इस वेदीपर ११ धातुकी और २ पाषाणकी मूर्तिया है। इसके पीछेकी वेदीपर पाषाणकी २७ और धातुकी २७ प्रतिमाएँ विराजमान है। मन्दिरके शिखरमें भगवान् महावीरकी श्वेत पद्मासन प्रतिमा विराजमान है।

यहाँ पीतलके दो सहस्त्रकूट जिनालय है। ये और इनकी मूतियाँ साँचेमें ढालकर बनायी गयी है। एक चैत्यालयमें १००८ मूतियाँ है तथा दूसरे चैत्यालयमें १७२८ मूर्तिया हैं।

यहाँपर बलात्कारगणके भट्टारकोंकी गद्दी है। यहाँ अन्तिम भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति हुए। कारंजामें बलात्कारगण भट्टारक पीठकी स्थापना भट्टारक धर्मभूषणने की थी। ये भट्टारक धर्मचन्द्रके शिष्य थे। इन्होंने शक संवत् १५७२ में पार्श्वनाथकी शक संवत् १५८० में नेमिनाथकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा की । भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिकी चरण पादुका भी यहाँ बनी हुई है। इनका स्वर्गवास संवत् १८५० कार्तिक कृष्णा १० बुधवारको शिरडशाहपुर में हो गया था।

इस मन्दिरमें हस्तलिखित शास्त्रोंका अमूल्य भण्डार है। हस्तलिखित ग्रन्थोकी कुल संख्या १८१ है। इनमें ताड़पत्रके ग्रन्थोंकी संख्या २५ है। इनमें कई ग्रन्थ अप्रकाशित है।

१२ फीटके एक शिलाफलकमें २४ तीर्थंकर उत्कीर्ण है। मध्यमें ऋषभदेवकी ४ फीट इंच २ ऊँची खड्गासन मूर्ति है। शेष २३ तीर्थंकरोमें २१ पद्मासन और २ खड्गासन मुद्रामें । नीचे यक्ष यक्षीका अंकन है। फलक अत्यन्त कलापूर्ण है।

एक अन्य फलक ३ फीट ५ इंच उन्नत है। इसमें पद्मासन ऋषभदेवकी मूर्ति उत्कीर्ण है। सिरके पीछे भामण्डल, सिरके ऊपर छत्र और उनके ऊपर दुन्दुभिवादक है। उधर दोनों कोनोंपर पुष्पमाला लिये गन्धर्व है। भगवान् के दोनों पार्श्वोमें चमरेन्द्र खड़े है। अधोभागमें ऋषभदेवके यक्ष यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी है। चरण पीठ पर वृषभ लांछन अंकित है।

एक और शिलाफलक है जो २ फीट ६ इंच ऊँचा है। इसमें पद्मासनस्थ आदिनाथकी मूर्ति है। परिकरमें भामण्डल, छत्र ऊपर कीर्तिमुख है। शीर्ष भागमें दो पद्मासन तथा अधोभागमें दो खड्गासन मूतियां है। नीचे गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी यक्षी है। चरण चौकी पर ऋषभका लांछन वृषभ अंकित है। ये मूर्तिया नागपुर के निकटवर्ती कण्डलेश्वर गाँवके मन्दिरसे लायी गयी है। ये ७.८वीं शताब्दीकी प्रतीत होती है। ऊपर एक कमरे में २० प्राचीन मूतियाँ संरक्षित है। इनमें नवदेवताकी एक मूर्ति अद्भूत है।

सौजन्य :- श्रीमती अरूणा हठीसींग सोलवाडीया **३-२२, रिद्धि सिद्धि तिलक रोड, शांताक्रुज, मुम्बई**

सत्रहवीं शताब्दीमें कारंजा

सत्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें मुनि शोलविजयजीने गुजराती भाषामें "तीर्थमाला" पुस्तक की रचना की थी। वे श्वेताम्बर सम्प्रदायके तपागच्छीय संवेगी साधु थे। उन्होंने चारों दिशाओं के तीर्थोंकी पैदल यात्रा की थी। तीर्थोपर उन्होंने जो कुछ देखा सुना था, उसे गुजराती भाषामें पद्यबद्ध कर दिया था। अपनी इस यात्रामें उन्होंने दिगम्बर जैन तीर्थोंकी भी यात्रा की थी और उनका वर्णन एक तटस्थ दर्शककी भाँति निष्पक्ष रूपसे कर दिया। यात्रा करते हुए वे कारंजा भी पधारे थे। उन्होंने वहाँ जो कुछ देखा, वह उन्होंने लिख दिया। उससे तत्कालीन कारंजा नगरके जैन समाजकी आर्थिक समृद्धि, धार्मिक आचार आदि पर प्रकाश पड़ता है। उन्होंने बघेरवाल जातिके भोज संघवी और उनके परिवारकी धर्मपरायणता और उनके वैभवका भी वर्णन किया है। उससे पता चलता है कि उस समय जैन समाज में कैसे कैसे उदार श्रीमन्त थे। यह विवरण इस भाँति है ।

इसका सारांश यह है कि कारंजामें बड़े बड़े धनी लोग रहते हैं और वहाँ जिन भगवान् के मन्दिर है जिनमें दिगम्बर देव विराजमान है । वहाँ गच्छनायक (भट्टारक) हैं जो छत्र, सुखासन (पालकी) और चँवर धारण करते है। शुद्धधर्मी श्रावक हैं जिनके वहाँ अपार धन है। बघेरवाल वंशके श्रृंगाररूप भोज संघवी बड़े ही उदार और सम्यक्त्वधारी हैं। वे जिन भगवान् को ही नमस्कार करते हैं। उनके कुलका आचार उत्तम है। उन्हें रात्रि भोजनका त्याग है। नित्य ही पूजा महोत्सव करते रहते है। भगवान के आगे मोतियोंका चौक पूरते हैं और पंचामृतसे अभिषेक करते हैं। यह सब मैंने अपनी आँखासे देखकर कहा है। गुरू स्वामी (भट्टारक) और उनके पुस्तक भण्डारका पूजन करते हैं। उन्होंने संघ निकाला, प्रतिष्ठाकी, मन्दिर बनवाये और आह्लादपूर्वक बहुत से तीर्थोंकी यात्रा की । कर्नाटक, कोंकण, गुजरात, पूर्व मालवा और मेवाड़से उनका बहुत बड़ा व्यापार चलता है। जिनशासनको शोभा देनेवाले सदावर्त, पूजा, जप,तप, क्रिया महोत्सव आदि उनके द्वारा होते रहते हैं। संवत् १७०७ में उन्होंने गढ़ गिरनारकी यात्रा करके नेमि भगावन् की पूजा की, सोनेकी मोहरोंसे संघ वात्सल्य किया और एक लाख रूपया खर्च करके धनका "लाहा लिया "। प्याउओं पर पानी शीतकाल में दूध, गर्मियोंमे गन्नेका रस और इलायची वासित जल राहगीरोंको पिलाया और पात्रोंको भक्तिपूर्वक पंत्तामृत पकवान खिलाया जाता है। भोज संघवी के पुत्र अर्जुन संघवी और शीतल संघवी भी बड़े दाता, विनयी, ज्ञानी और शुभ काम करनेवाले हैं।

मुनि शीलविजयजीके इस वर्णनसे कारंजाके तत्कालीन जैन समाजकी सम्पन्न दशा और धार्मिक रुचिका स्पष्ट चित्र हमारे समक्ष आ जाता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उस समय सम्पन्न लोग ऐसे धर्मात्मा भी होते थे जो भगवान् के समक्ष मोतियोंका चौक पूरते थे। शास्त्रोंमें इस प्रकार वर्णन पढ़कर बड़ा अद्भूत सा लगता है किन्तु भोज संघवीका आँखो देखा चरित्र पढ़कर विश्वास हो जाता है कि शास्त्रोंका कोई विवरण अविश्वसनीय नहीं है।

बलात्कारगण कारंजा शाखा (१५४५ १५६७)

सौजन्य : शेठ शुशीलकुमार भुरालालजी सी.एस.पी. ५, गितांजलीनगर ४९ ४थे माले, बोरीवल्ली मुम्बई (महा.)

कारंजा भट्टारक गद्दी

१. अमरकीर्ति	१५४५-१५६७	**पट्टावली** श्रीनंदिसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगणाग्रगण्यानां आचार्यवरेण्यानां परंपराप्रवर्तितमहासिंहास योग्यानां श्रीमदमरकीर्ति राउलप्रियाप्रमुख्यानां । (नां. ८८)
२. विशालकीर्ति	१५६७.१५९८	आपने सुलतान सिकन्दर विजयनगर के महाराज विरूपाक्ष और आरगनगर के दण्डनायक देवप्प की सभाओं में सत्कार पाया था (ले. ९९) **दशभक्त्यादि महाशास्त्र** भट्टारको बलत्कारगणाधीशो सहाताः । विशालकीर्तिवादींद्र : परमागमकोविद :॥ सिकंदरसुरित्राण प्राप्तसत्कारवैभव । महावादिजयोद् भूतयशोभूषित विष्टपः ॥ श्रीविरूपाक्षरायस्य श्रीविद्यानगरेशिन : । सभायां वादिसंदोहं निर्जित्य जयपत्रकम् ॥ स्वीकृत्य च महाप्रज्ञाबलेन बुधभूभुजै :। मतं सरस्वतीमूलशासनं वा सदोज्जवलम् ॥ देवप्पदंडनाथस्य नगरे श्रीमदारगे । प्रकाशितमहाजैनधर्मोभाद् भूसुरार्चित : ॥
३. विद्यानंद	१५९०.१५९९	विशालकीर्ति के शिष्य विद्यानन्द हुए। आपने श्रीरंगपट्टण के वीर पृथ्वीपति, साल्लुव, कृष्णदेव, विजयनगर के सम्राट् श्रीकृष्णराय आदि शासकों से समान पाया था। आप का सम्मान सुलतान अल्लाउद्दीन ने भी किया था। आप का स्वर्गवास शक १४६३ में हुआ। (ले. १००,१०१) **लेखांक १०० पट्टावली** प्रचंडाशेपतुरखराजा धिराजअल्लावदीनसुलतानमान्य श्रीमदभिनववादि विद्यानंदस्वामिनां । (म. ५७) **दशभक्त्यादि महाशास्त्र** विशालकीर्ति : श्रीविद्यानंदस्वामीति शुद्वित :। अभवत्तनय : साधुर्मल्लिरायनृपार्चित : ॥ कावेरीसरिदंबुवेष्टनलसच्छीरंगसत्पत्तने
४. देवेन्द्रकीर्ति	संवत् १५९९	**पट्टावली** तत्पट्टोदयाद्रिदियाकरायमान नित्याद्ये कांतवादि प्रथमवचनखंडन प्रवचनरचनाडंबर षड्दर्शनस्थापना चार्यषट्तर्कचक्रेश्वर श्रीमहेवेंद्र कीर्तिदेवानां ॥
५. धर्मचन्द्र	(१५९९.१६२२)	**पट्टावली** तत्पट्टोदयदेवगिरि परमताभिव्यंजनतिमिरनिर्नाशनदिनकर समानानां सार्थकनाम भट्टारकश्री मद्धर्मचंद्रदेवानां

		लेखांक १०७. पद्मावती मूर्ति सक १४८७ प्रजापत संवत्सरे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भ. धर्मचंद्राणाम उपदेशात् ज्ञाति बघेरवाल भुरा गोत्रे सा रतन भार्या पुतली ...... ॥ (२. सुं. खेडकर, नागपुर)
६. (प्रथम) धर्मभूषण	१६२२.१६३८	**पट्टावली** तत्पट्टोदयाचलदिवाकरायमान .... भट्टारक श्रीधर्मभूषणदेवानां॥ (म. ५७) ***चंद्रप्रभ मूर्ति*** सके १५०३ वृपनाम संवत्सरे फागुण सुदि ७ श्रीमूलसंघे बलात्कारगण भ. धर्मभूषणोपदेशात् बघेरवालज्ञाति ठवला गोत्रे सं. पासुसा .... ॥ (अं गु. मिश्रीकोटकर, नागपुर)
७. देवेंद्रकीर्ति	सं. १६३८-१६४९	शके १५०३ वृपनाम्नि संवत्सरे फाल्गुणमासे शुक्लपक्षे ६ बुधवासरे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भ. श्री धर्मचंद्रस्तत्पट्टे भ. श्रीधर्मभूषणस्तत्पट्टे भ. श्रीदेवेंद्रकीर्त्युपदेशात् श्रीव्याघ्रेरवाल ज्ञातीय खंडोरियागोत्रे ......॥ (ब. १) ***अंबिका रास*** संवत १६४१ वर्षे कार्तग वदि ५ दिने श्रीएरंडबेलसुभस्थाने श्रीधर्मनाथचैत्यालये मुनिश्रीदेवेंद्रकीर्ति लक्षित वाई हरषमती पठनार्थ ॥ (ना. ३५) ***द्वादशानुप्रक्षा*** शके १५१४ नंदननाम संवत्सरे पौषमासे शुक्लपक्षे त्रयोदसितिथौ गुरूवारे वराडदेशे श्रीमूलसंघे...... भ. धर्मचन्द्र तत्पट्टे भ. धर्मभूषण तत्पट्टे भ. देवेंद्रकीर्ति...... गंगराडाज्ञाति लघु नंदिग्रामे आदशेटी.......ताभ्यां स्वहस्ते लिखित ॥ (ना. १५) ***लेखांक १११ नेमिनाथ पूजा*** जलाद्यैर्यजेहं मुदार्घेण देवं सुधर्मादिभूषं गुरूं भूपसेवं परं प्राप्तकैवल्यराज्यं विशालं सुदेवेंद्रकीर्तिस्तुतं शर्मशालं ***लेखांक ११२ नंदीश्वर पूजा*** सुभक्तिभाव पूजये परापरं जिणालये । सुधर्मभूपसायरं सुरेंद्रकीर्तिचर्चितं ॥
८. कुमुदचन्द्र	१६५६.१६७०	***लेखांक ११५ पार्श्वनाथ पूजा*** मलयादिमृगपति पीठमंडितधर्मभूषणवंदितं देवेंद्रकीर्तिमुनीद्र संभवकुमुद चंद्रसुवंदित । श्रीसंघसार विशेषवरकृतभाव भूतिविभूवरं भजतु भावजनाशकारणपार्श्वनाथ जिनेश्वरं ॥(ना. ७८)

९. धर्मचन्द्र	१६८४.१७०४	
१०. धर्मभूषण	१७०७.१७३२ द्वितीय	
११. विशालकीर्ति		
१२. धर्मचन्द्र	१६४२.१६५६	***लेखांक १२१ चरणपादुका*** सं. १६९३ वर्ष शके १५५९ मनु नाम संवत्सरे मागसिर शुक्ला २ शनै शुभमुहूर्ते श्रीमूलसंघे... भ. श्रीधर्मचंद्रोपदेशात् जयपुर शुभस्थाने बघेरवालज्ञाति सं. श्रीपासा .....॥
१३. देवेन्द्रकीर्ति	सं. १७५६.१७८६	***लेखांक १५० कल्याणमंदिर पूजा*** गुणवेदांगचंद्राब्दे शाके १६४३ फाल्गुनमास्यदं । कारंजाख्यपुरे घ्ष्टं चंद्रनाथदेवार्चनं ॥ इति श्रीबलात्कारगळेयं भ. देवेंद्रकीर्ति विरचितं । कल्याणमंदिरपूजा संपूर्ण ॥ (ना. ७४)
१४. धर्मचन्द्र	सं. १७९३.१८३३	३. बलात्कार गण कारंजा शाखा
१५. देवेंद्रकीर्ति	सं. १८४०.१८५०	***लेखांक १५६***
१६. पद्मनन्दि	सं. १८५०.१८७९	गुज्जर देश सु तारंग पर्वत कोडिशिलोपरि कोडि मुनीसा।
१७. देवेंद्रकीर्ति	सं. १८७९.१९४१	कोडि अउट्ठ बली वरदत्त पुरःसर भेदि जवंजव खासा ॥
१८. रत्नकीर्ति	सं. १९३६.१९५३	चंद्र शराधिक षोडश उज्जवल पंचमि भार्गव मार्गक वासा।
१९. देवेंद्रकीर्ति	सं. १९५७.१९७३	देवेंद्रकीर्ति भट्टारक संग समेत नमे करि भूतल सीसा ॥

बलात्कार गण लातूर शाखा कालपट धर्मभूषण (कारंज शाखा) १७०७-१७३२

१. अजितकीर्ति १७०८

२. विशालकीर्ति १७२६

३. महीचन्द्र १७५३	पद्मकिर्ती १७३६.४३
४. महीभूषण १७७४	
५. शान्तिकिर्ती	
६. कल्याणकिर्ती	विद्याभूषण १७४४
७. गुणकिर्ती	हेमकिर्ती १७५२.१७८७
८. चन्द्रकिर्ती	
९. माणिककिर्ती १८३२	अतिमकिर्ती १८३२.१८५७
	चन्द्रकिर्ती
	योगेन्द्रकिर्ती
	विशालकिर्ती

लातूर के भट्टारक चन्द्रकिर्ती द्वारा संवत् १८२२ में मुल्हेड नगर में बिम्ब प्रतिष्ठा का आयोजन -

क्षेत्रके निकट प्राचीन कालमें एक बहुत विशाल और सम्पन्न नगर था। जिसे मुल्हेड कहा जाता था। आज तो विगत वैभव का यह नगर साधारण कस्बा रह गया है। यहाँ पर्वत के ऊपर प्राचीन दुर्ग के अवशेष बिखरे पड़े है। इन अवशेषो के देखने से ज्ञात होता है कि यह दुर्ग कभी बहुत विशाल रक्षा दुर्ग रहा होगा। इस दुंग में अब भी सरोवर,जलकुण्ड और भवनोंके अवशेष दिखाई पड़ते है। इस नगर में केवल जैनो की संख्या ही हजारो थी यहाँ जैनपुरा नामक एक मुहल्ला था, जिससे जैनो के ८०० घर थे। अबसे दो सौ वर्ष पूर्व यहाँ तीन सो घर तो दसा हूमड़ो के थे। यहाँ अनेक जिनालय और धर्म शालाएँ बनी हुई थी। दुर्गो में होते हुए तीन मील पैदल या गाडियों में चल कर तलहटी में पहुँचते थे। तब मार्ग उबड़ खाबड़ या पहाड पर जानेके लिए भी सीढियों का निर्माण नहीं हुआ था। इसलिए अनेक यात्री तो तलहटी मे ही पूजन आदि करके सन्तुष्ट हो लेते थे।

इस नगर में कई सुप्रसिद्ध जैन साहित्यकार भी हुए है। ईडर गादी के भट्टारकों की ओर से ब्रह्मचारी ब्रह्म जिनदास यहाँ रहते थे। संस्कृत और प्राकृत में विरचित आपके कई ग्रन्थ आज भी मिलते है। ब्रह्म जिनदास ईडर शाखा के प्रसिद्ध भट्टारक सकलकीर्ति के शिष्य थे। ब्रह्म जिनदास के शिष्य ब्रह्म शान्तिदास भी बड़े विद्वान थे। वे भी मुल्हेड़ में रहे थे, उनके समय सूरत गादी के भट्टारक लक्ष्मीचन्द और मुनिकाल वेदवादके निवासी वेणीदासजी दसा हूमड़ उच्चकोटी के विद्वान थे। आपने भी संस्कृत और प्राकृत में कुछ ग्रन्थोकी रचना की थी। आपकी प्रेरणा वेदावद निवासी संधवी ने विं.सं.१८२२ में श्री मांगीतुंगी के लिए संघ निकालकर मुल्हेड नंगर में जिन बिम्ब प्रतिष्ठा करायी थी। अमलनेरके निकट मांडल ग्रामके जिनालय में चौबीसीकी चरण चौकीपर जो लेख है उससे भी मुल्हेड नगर में हुई बिम्ब प्रतिष्ठा की सूचना मिलती है। वह मूर्ति लेख इस प्रकार है।

WITH BEST COMPLIMETS FROM :

CHANDRAKUMAR SHETH

6839, CHABLIS COURT
MENTOR OH.
MILWAUKEE U.S.A.

श्री सं.१८२२ वर्षे द्वितीय चैत्र शुक्ला ७ बुध वासेर श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री सकलकीर्ति तदनु क्रमणे भट्टारक श्री विजयकीर्ति स्तपट्टे भट्टारक नेमिचन्द्र तत्पट्टे भट्टारक श्री चन्द्रकीर्ति गुरू उपदेशात् श्री बगलान देशे मुल्हेड हुंबड नगर ज्ञातौ लघु गंगेश्वर गोत्रे सा श्री साल बेलजी ततभार्या उताई स्तेना सुत शखेवदास भाता लघु पग्म प्रतिष्ठा करान्ति शुभं चतुविशांति तीर्थंकराणा नित्यं प्रजपति श्रीसस्तु शुभं भवतु कल्याण स्तु। इससे प्रतीत होता है कि दो शताब्दी पूर्व मुल्हेड नगर, जो हुंबड जाति का नगर कहलाता है, सम्पन्न था और उस काल तक वहाँ बिम्ब प्रतिष्ठा होती रही थी। किन्तु किन्हीं प्राकृतिक अथवा राजनैतिक कारणोंसे मुल्हेड नगर शोभा विहिन हो गया और वहाँ के हुंबड नगर छोड़कर खानदेश के विभिन्न ग्रामो में जा बसे यहाँ तक कि इस नगर में एक भी जैन नही रहा तथा यहाँ के जिनालय की कुछ प्रतिमाएँ कुसुम्बाके जिनालय में भेज दी गई। निश्चय ही मुल्हेड नगरका यह उत्थान और यतन संसार के परिवर्तन शील स्वभावका बोध करता है।जिनालय और धर्मशाला का निर्माण कराया तथा और हूमड़ो द्वारा १९०४.५ में मांगीतुंगी तलहटी में प्रतिष्ठा किया ।

जब मुल्हेड में जैनोंका अभाव हो गया, तब ईडर की गादी के भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के यात्रियोंकी सुख सुविधाकी चिन्ता हुई। अतः आपने वि.सं. १८७० में य रिश्वबदासजी को भेजकर पर्वतकी तलहटी में एक धर्मशाला बनवायी और लकड़ीका एक सिंहासन बनवाकर एकाजिन प्रतिमा दर्शन और पूजन लिए वहाँ बिराजमान करा दी।

संवत १९०४.५ में कारजांके भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति और उनके शिष्य भण्डचार्य बुरतनसागर का यहाँ आगमन हुआ। उनके सदुपदेशसे सोलापुर निवासी उत्तरेश्वर गोत्री गाँन्धी देवेकरण में एक विशाल शिखरबन्द जिनालय निर्माण कराकर वि.सं. १९१५ माघ शुक्ला ५ को भगवान पार्श्वनाथ की पंच कल्याण प्रतिष्ठा भट्टारकजी द्वारा करायी। तत्पश्यात् उक्त भट्टारकजी के उपदेश के वाशी निवासी सेठ तुलजा सय बड़ जाते ने एक दूसरा जिनालय निर्माण कराया, जिसकी पंचकल्याण प्रतिष्ठा भट्टारकजी द्वारा करायी। तत्पश्यात् उक्त भट्टारकजी के उपदेश के वाशी निवासी सेठ तुलजा सय बड़ जाते ने एक दूसरा जिनालय निर्माण कराया, जिसकी पंचकल्याण प्रतिष्ठा भट्टारकजी द्वारा वि.सं.१९२७ को माघ शु. ५ के शुभ मुहूर्त में करायी। इसके पश्चात् तो वहाँ धर्मशाला , कुआँ,सभा, मण्डप, मान स्तम्भ, पहाड पर जाने के लिए सीढियों आदिका निर्माण हुआ ।

सौजन्य : हिराचन्दज जीवनचन्द दोशी

मु. पो. अकलूज
जी. सोहापुर (महाराष्ट्र)

सूरत शाखा काल पट

१. पध्मनन्दि (उत्तरशाखा) २. देवेन्द्रकीर्ति (संवत् १४९३)

३. विद्यानन्दी (संवत् १४९९.१५३७)

(श्रुतसागर सूरि)

४. मल्लिभूषण (संवत् १५४४.१५५५) ब्रह्मनेमी दत्त

५. लक्ष्मीचन्द्र (संवत् १५५६.१५८२)

६. वीरचन्द्र

७. ज्ञानभूषण (संवत् १६००.१६१६)

८. प्रभाचन्द्र (संवत् १६२५. १६२७)

९. वादिचन्द (संवत् १६३७.१६६४)

१०. महीचन्द्र (संवत् १६७९.१६८५)

११. मेरुचन्द्र (संवत् १७२२.१७३२)

१२. जिनचन्द्र

१३. विद्यानन्दी (सं १८०५.१८२२) द्वितीय

१४. देवेन्द्रकीर्ति (संवत् १८४२)

१५. विद्याभूषण

१६. धर्मचन्द्र (संवत् १८९९)

१७. गुणचन्द (१९१९)

१९. सुरेन्द्रकीर्ति

सूरत भट्टारक गद्दी

श्लोक स्वस्ति श्री मूलसंघे प्रवरबलगणे कुंदकुंदान्वयेच ।
विद्यानन्दी प्रबंध विमलगुणयुक्तं मल्लिभुषणं मुनीन्द्रम ॥
लक्ष्मीचन्द्र यतीन्द्रं विबुधकरनुतं वीरचन्द्र स्तुवेदम् ।
श्री मत्ज्ञानादिभूषं सुमति सुखकरं श्री प्रभाचंद वंधे

विक्रम संवत् १३९३ पध्मनंदी महाराज गुर्जरने देशान्तर गत गांधार बन्दर में दिल्ली से आकर बलात्करगण की गद्दी स्थापित की। यह स्थान उस समय बहुत उन्नत अवस्थामे था । यहाँ जैनियों के ७०० गृह थे अर्थात् अब भी वहाँ पर दिगम्बर जैन मंदिर है। किन्तु जैनियों का एक भी गृह नहीं है। अब भी यह स्थान जैनियों के किसी समय के उत्कर्ष को बता रहा है। गाधारबन्दर की जब बहुत ही अवनत दशा हो गई तब संवत् १४६१ में श्रीमद् देवेन्द्रकीर्तिजी महाराज ने सूरत से २ मील रांदेर स्थान में गद्दी स्थापित की और इनके गुरू भ्राता भट्टारक सकलकीर्ति ने ईडर की प्रथम गद्दी स्थापित किया ।

सूरत

मार्ग और अवस्थिति :

सूरत पश्चिमी रेल्वे का प्रख्यात स्टेशन है। बम्बई नगर से यह २६३ कि.मी. है। यह तापती नदी के तट पर वसा हुआ है। जबकी दूसरे तट पर रांदेर है। इसका अपर नाम सूर्यपुष्ट मी मूर्ति लेखो और प्रशस्तियो में उपलब्ध होता है। प्राचीन काल में यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था और जलमार्ग द्वारा बड़े पैमाने पर व्यापार होता था। तबसे इस नगर की समृद्धि निरन्तर बढ़ती गयी और अब यह प्रसिध्ध व्यापारिक केन्द्र बन गया है ।

स्थापना का इतिहास :

इसकी स्थापना के सम्बन्ध मे बताया जाता है कि पहले सूर्यपुरा नामका एक छोटा सा गाँव था। किन्तु बादमें एक हिन्दु गृहस्थ गोपीके प्रयत्नोसे इस गाँव की काया पलट हो गयी। ब्राहाण पुत्र गोपीने सूरज की स्मुतिमें, जो एक प्रसिद्ध नर्तकी थी, सन १५२१ में तत्कालीन बादशाह मुजफ्फर बादशाह के द्वारा इस गाँव का नाम सूरत रखाया और उसका विकास कराया । धीरे धीरे गाँव लुप्त हो गया और उसका स्थान एक विकसित

सौजन्य : ओम जनरल एन्ड स्टील मेटल्स

मु. पो. कापडना
ता. जि. धूले (महाराष्ट्र)

और वैभवशाली शहर ने ले लिया सन् १५२६ में गोपीने यहाँ एक तालाब बनवाया जो खेलट वाड़ी के पास गोपी तलाबके नाम से अब भी मौजूद है ।

सूरत पर तुगलकवंश ने शासन किया फिर गुजरात के बादशाह यहाँ के शासक बने। गुजरात के तीसरे मुजफ्फरशाहने बादशाह अकबर के विरूद्ध बगावत् कर दी तब अकबर फौज लेकर स्वयं आया और सूरत पर अधिकार किया। मुगलोंके बाद यह अंग्रेजो के अधिकारमें चला गया।

इसके व्यापारिक महत्व के देखते हुए अँग्रेजोने सन् १६१४ ये मुगल बादशाह जहाँगीर से आज्ञा लेकर एक कोठी कायम की। उस समय मुगल दरबार से सर टामसरो अँग्रेज राजदूत था। औरंगजेब बादशाह के समय तारीख ५ जनवरी १६६४ हिन्दूकूल गौरव छत्रपति शिवाजीने इस शहर को बुरी तरह लूटा। कहते हैं कि इस लूटमें उन्हें तीस करोड़ रूपये की आय हुई ।

जैन मन्दिर :-

सूरतमें सात दिगम्बर जैन मन्दिर और ६ चैत्यालय हैं । नावापुरमें चार मन्दिर हैं - मेवाड़का, गुजरातियोंका, चौपड़ाका और दांडियाका । एक दिगम्बर जैन मन्दिर गोपीपुरामें है, जिसमें भट्टारकोंकी गद्दी है । चन्दनवाड़ीके पास दो दिगम्बर जैन मन्दिर है ।

भट्टारक पीठ

सूरतमें मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगणे भट्टारकोंका पीठ भट्टारक पद्मनन्दीके शिष्य भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिने स्थापित किया था । चन्दाबाड़ी के पासवाले बड़े मन्दिरमें मूलनायक आदिनाथके पादपीठपर जो मूर्तिलेख अंकित है, उससे ज्ञात होता है, कि इस परम्परामें निम्नलिखित भट्टारक हुए -

देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्दी, मल्लीभूषण, लक्ष्मीचन्द्र, वीरचन्द्र, ज्ञानभूषण, प्रभाचन्द्र, वादीचन्द्र, महीचन्द्र, मेरुचन्द्र, जिनचन्द्र, विद्यानन्दी ।

इनके पश्चात् निम्नलिखित भट्टारक हुए : - देवेन्द्रकीर्ति, विद्याभूषण, धर्मचन्द्र, चन्द्रकीर्ति, गुणचन्द्र सुरेन्द्रकीर्ति ।

इन भट्टारकोने धर्म-रक्षा के अनेक कार्य किये, अनेक स्थानोंपर मन्दिर निर्माण कराये, मूर्ति-प्रतिष्ठाएँ करायी । इन्होंने अनेक लोगोंको जैन धर्ममें दीक्षित किया । जिन नवदीक्षित लोगोंको रोटी-बेटी व्यवहारमें असुविधा अनुभव हुई, उनकी एक पृथक जातिका निर्माण कर दिया । इससे उन लोगोंकी समस्याका समाधान हो गया । इन्होंने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया और ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करायी ।

देवेन्द्रकीर्तिजीने अवन्तिदेशमें अनेक प्रतिष्ठाएँ करायी । तथा सात सौ कुटुम्बों को जैनधर्ममें दीक्षित करके रत्नाकरजाति नामसे उनकी एक पृथक जाति स्थापित कर दी । आपके एक शिष्य त्रिभुवनकीर्तिने बलात्कारगणकी जेरहट शाखाकी स्थापना की ।

देवेन्द्रकीर्तिके पट्टशिष्य विद्यानन्दी हुए । आपने सुदर्शनचरित नामक संस्कृत काव्यकी रचना की । कर्नाटकके अनेक राजाओंने आपका सम्मान किया था । आपके शिष्य श्रुतसागर सूरिने ज्येष्ठ जिनवरकथा, षोडश कारण कथा, मुक्तावली कथा, मेरुपंक्ति कथा, लक्षणपंक्ति कथा, मेघमाला सप्त परमस्थान - रविवार, चन्दनषष्ठी, आकाश पंचमी, पुष्पांजलि, निर्दुःख सप्तमी, श्रवण द्वादशी, रत्नत्रय आदि व्रतोंकी कथाएँ लिखी । आपकी अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं औदार्यचिन्तामणी नामक प्राकृत व्याकरण, ज्ञानावर्णके गद्यभागकी टीका, तत्त्वत्रय प्रकाशिका, महाभिषेक टोका तथा श्रुतस्कन्ध पूजा, पूल्यविधान कथा, अक्षयनिधान कथा, यशस्तिलक चन्द्रिका, सहस्त्रनाम टीका, तत्त्वार्थवृत्ति, षट्पाभृत टीका ।

सौजन्य : डॉ. धनपाल सालगिया १० कपिल पोली क्लिनिक्स ७५, जयन्त ऐपार्टमेन्ट, वरली. मुम्बई (महा.)

विद्यानन्दीके पट्टशिष्य मल्लिभूषण हुए। उन्होंने स्तम्भ पर तीर्थपर एक निषधिका बनवायी । मालवाके सुलतान ग्यारादीन अथवा ग्यासुद्दीनने आपका सम्मान किया था ।

मल्लिभूषण के शिष्य लक्ष्मीचन्दका सम्मान कर्नाटकके १८ राजाओंने किया था । कारंजाके भट्टारक वीरसेन और भ. विशालकीर्तिने भी आपका सम्मान किया था ।

लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य वीरचन्दने बोधसताणू और चित्तनिरोध कथा लिखी । आपने नवसारीके शासक अर्जुनजीयराजसे सम्मान पाया ।

वीरचन्दके पट्टशिष्य ज्ञानभूषण हुए । आपने सिद्धान्तसार भाषाकी रचना की तथा कर्मकाण्डपर टीका लिखी । आपके एक शिष्य सुमतिकीर्तिने चौरासी लक्ष योनि विनती, धर्मपरीक्षारास और त्रैलोक्यसार रासकी रचनाएँ की । आपने शत्रुंजयमें शान्तिनाथ मन्दिरका निर्माण कराया । आपने श्वेताम्बरों के साथ शास्त्रार्थ भी किया था । ज्ञानभूषणके पट्टशिष्य प्रभाचन्द्र हुए । उन्होंने त्रेपन क्रिया विनंती लिखी।

प्रभाचन्द्रके पट्टपर वादिचन्द्र भट्टारक हुए । आपने पार्श्वपुराण, ज्ञानसूर्योदयनाटक, श्रीपालचरित, यशोधरचरित नामक ग्रन्थोंकी रचना की ।

वादिचन्द्रके पट्टपर महीचन्द्र भट्टारक बने । इन्होंने संस्कृतमें पंचमेरु पूजा बनायी । महीचन्द्रने षोडशकारण पूजा, नन्दीश्वर पूजा-विधान बनाया ।

मेरुचन्द्रके पट्टपर जिनचन्द्र भट्टारक बने । जिचन्द्रके बाद विद्यानन्दी पट्टाधीश हुए । इनके बाद देवेन्द्रकीर्ति हुए । इन्होंने पादरा तथा आमोदमें मन्दिर बनवाये । देवेन्द्रकीर्तिके पट्टपर विद्याभूषण भट्टारक हुए । इन्होंने महुआ, सूरत, अंकलेश्वर, सजोद और सोजित्रामें मन्दिर बनवाये । इनके बाद धर्मचन्द, चन्द्रकीर्ति, गुणचन्द्र और सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक हुए ।

भट्टारक गुणचन्द्र के साथ एक ऐसी घटना घटित हुई जिससे उनके मन्त्रबलका पता चलता है संवत् १९१९ में बम्बई निवासी सेठ सौभाग्यचन्द्र मेघराजजी भट्टारक गुणचन्द्रको लेकर सपरिवार पालीताणा गये । वहाँ भट्टारकजीने कोई विधान किया । जलयात्राके समय जब उनकी पालकी बाजारमें पहुँची तभी पालकीमें मन्त्रप्रेषित नीबू और उड़द आदि आकर गिरे । पालकी स्तम्भित होने लगी । भट्टारकजीने तत्काल नीबू, उड़द आदि मन्त्र पढ़कर सभी दिशाओंमें फेंके फलतः पालकी पूर्ववत् चलने लगी ।

इस प्रकार सूरतमें बलात्कारगणके भट्टारकोंने धर्म-प्रभावनाके अनेक कार्य किये । इन भट्टारकोंकी समाधियाँ सूरतके निकट कतार गाँवमें विद्यानन्दि क्षेत्रमें बनी हुई है । यहाँ भट्टारक विद्यानन्दिकेचरण चिन्ह बने हुए है । विद्यानन्दि बड़े प्रभावशाली और चमत्कारी व्यक्ति थे । इस स्थानपर प्रथम समाधि इन्ही की बनायी गयी थी । इसलिए इस स्थानकी नाम ही विद्यानन्दी क्षेत्र हो गया ।

सूरतके मन्दिरोंमें विराजमान मूर्तियोंके लेखोंसे ज्ञात होता है कि उपयुक्त भट्टारकोंमें से अधोलिखित भट्टारकोंने यहाँ मूर्ति-प्रतिष्ठा करायी । विभिन्न मूर्तियोंपर इन भट्टीरकोंके नाम अंकित है ।

विद्यानन्दि, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचन्द, वीरचन्द्र, ज्ञानभूषण, प्रभाचन्द, वादिचन्द, महिचन्द ।

सूरतमें काष्टासंघमें भट्टारकोंका भी पीठ रहा है । गोपीपुराके दिगम्बर जैन मन्दिर और नवापुराके मेवाड़ जाति के मन्दिरमें काष्ठासंघी भट्टारकोंका प्रभाव रहा है । इन मन्दिरोंमें जो मूर्तियाँ हैं उनके मूर्तिलेखों के अध्ययनसे ज्ञात होता है कि वे काष्ठासंघी भट्टारकों द्वारा प्रतिष्ठित की गयी थी, किन्तु या तो वे अन्य किसी मन्दिर से लायी गयी हैं अथवा अन्य स्थानपर प्रतिष्ठित कराकर यहा लायी गयी है, ऐसा लगता है ।

WITH BEST COMPLIMETS FROM :
CHANDRAKUMAR SHETH
6839, CHABLIS COURT
MENTOR OH.
MILWAUKEE U.S.A.

यहाँके मूर्तिलेखोंसे काष्ठासंघके निम्नलिखित भट्टारकोंके सम्बन्धमें जानकारी मिलती है -
विशालकीर्ति, विश्वसेन, विद्याभूषण, श्रीभूषण, चन्द्रकीर्ति, राजकीर्ति, लक्ष्मीसेन, देवेन्द्रभूषण, सुरेन्द्रकीर्ति ।

दर्शनसारके अनुसार काष्ठासंघकी स्थीपना कुमारसेनने नन्दीतट ग्राम (वर्तमान नादेड़) में की थी । अतः गच्छका नाम स्थानके नामपर नन्दीतटगच्छ रखा गया । मूर्तिलेखोंमें विद्यागण भी आता है, जो सरस्वतीगच्छका केवल अनुकरण मात्र है । इन लेखोंमें रामसेनान्वय भी मिलता है । इन्हीं रामसेनने नरसिंहपुरा जातिका स्थापना की थी और जिस नरसिंहपुरामें स्थापना की थी उसी ग्राममें शान्तिनाथ मन्दिरका निर्माण कराया था । इनके शिष्य नेमिसेनने भट्टपुरा जातिकी स्थापना की । भट्टारक विश्वसेनने आराधनासार टीका लिखी । विद्याभूषणने द्वादशानुप्रेक्षाकी रचना की । श्री भूषणका श्वेताम्बरोंके साथ वाद हुा, जिसमें श्वेताम्बर पराजित हो गये और उन्हें देशत्याग करना पड़ा । आपकी रचनाओंमें शान्तिनाथ पुराण, प्रबोधित चिन्तामणि और द्वादशांग पूजा उपलब्ध हैं । इन्होंने भट्टारक वादिचन्द्रको भी वादमें पराजित किया था । ये वादिचन्द्र मूलसंघके भट्टारक थे । श्रीभूषणके शिष्य चन्द्रकीर्तिने पार्श्वनाथ पूजा, नन्दीश्वर पूजा, ज्येष्ठ जिनवर पूजा, षोडशकारण पूजा, सरस्वतीपूजा, जिन चउबीसी और गुरुपूजा मिलती है । इन्होंने दक्षिण यात्राके समय कावेरी तटपर नरसिंहपट्टनमें कृष्णभट्टको वादमें पराजित किया ।

इनके बाद राजकीर्ति भट्टारक हुए । आपने वाराणसीमें वादमें जय प्राप्त की ।

भट्टारक सुरेन्द्रकीर्तिने केशरिया क्षेत्रपर दो चैत्यालयोंकी प्रतिष्ठा की । काष्ठासंघके इन भट्टारकोंके गद्दी सोजित्रामें थी । सूरतमें बलात्कारगणकी गद्दी थी । काष्ठासंघके भट्टारकोंकी सूरतमें शाखापीठ थी । यहाँके मूर्तिलेखोंमें काष्ठासंघके नन्दीतटगच्छ और लाडवागड़ गच्छका उल्लेख मिलता है । मूर्तियोंके प्रतिष्ठाकारक व्यक्तियोंकी जातियोंके नाम भी मिलते हैं जैसे नरसिंहपुरा, बघेरवाल, हूमड़ , मेवाड़, सिंहपुरा, रायकवाल ।

इस प्रकार इन भट्टारकोंकी धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक गति विधियोंका अध्ययन करने पर हमें लगता है कि तत्कालीन समाजपर इन भट्टारकोंका बड़ा प्रभाव था । वे सम्पूर्ण धार्मिक और सामाजिक चेतना और गतिविधियोंके केन्द्र थे, नियामक थे और संचालक थे । यदि ये भट्टारक उस कालमें न हुए होते तो हमारी धार्मिक और सामाजिक स्थिति उस समय क्या होती, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती । भट्टारक संस्थामें कुछ त्रुटियाँ भी रही होंगी, जिनके कारण यह संस्था शनैः शनैः अपना प्रभाव खोती गयी । किन्तु भूतकालमें इस संस्थाने जो उपकार किया है, उसे हमें कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए ।

विद्यानन्दी क्षेत्र

सूरत से ३ कि.मी. दूर कतार गाँव में विद्यानन्दी क्षेत्र है। चरण चिह्न अलग अलग वेदियों मे विराजमान है। ये वेदियाँ तीन पंक्तियों में बनी हुई है । ये सभी श्वेत संगमरमर की है। चरण चिह्नों के माध्यम में आचार्य शांतिसागरजी महाराज की १ फुट १ इंच ऊँची मूतियाँ विराजमान है। विद्यानन्द की मूर्ति की पुष्ठ पंक्ति मे उनके १ फुट ३ इंच लम्बे चरण बने हुए हैं। भट्टारक विद्यानन्दी अपने समय के बडे प्रभावशाली और चमत्कारी पुरूष थे। वे मन्त्र तन्त्र में निष्णात तपस्वी साधु थे। उनके चमत्कारों की अनेक कथाएँ समाज मे प्रचलित है एक प्रशस्ति के अनुसार राजाधिराज, बज्रांग, गंग, जयसिंह, व्याघ्र आदि अनेक नरेश आपके भक्त थे। उनका स्वर्गवास मार्गशीर्ष वदी १० संवत् १५३७ को हुआ था।

चरण वेदिकाओं के निकट एक मानस्तम्भ भी बना हुआ है। ऊपर जाने के लिए २७ सीढियाँ बनी हुई है। इसकी शीर्ष वेदिकामें चारो दिशाओंकी औरं मुख किये हुए चार तीर्थकारों की मूर्तियां विराजमान है यहाँ एक और सम्मेदशिखर की भव्य रचना निर्मित है ।

सौजन्य : महेन्द्रकुमार मन्नालालजी महेता १००२, अेवरेस्ट चेम्बर माउन्ट प्लेजमेन्ट रोड, बावकेश्वर मुम्बई . (महा.)

२. देवेन्द्र कीर्ति (सूरत)	संवत् १४९३	संवत् १४९३ को १३५८ वर्षे वैशाख वदि ५ गुरौ दिने मूलनक्षत्रे श्री मूलसंघे बलात्कार गणे सरस्वतीगच्छे कुंद कुंदाचार्यान्वये भ. श्री प्रभाचंद्रदेवाः तत्पट्टे वादिवदिन्द भ. श्री पध्मनंदिदेवाः तत्पट्टे श्री देवेन्द्रकीर्तिदेवाः पौरणाटान्वये अष्ठशाखे आहारदान दानेश्वर सिघई लक्ष्मण तस्य भार्या अश्वयसिरी कुक्षेसमुत्यन्न अर्जुनः ॥ (देवगढ अ. ३ पृ. ४४५) सूरत शाखा का आरम्भ भ. देवेन्द्रकीर्ति से हुआ । आप भ. पध्मनन्दि के शिष्य थे जिनका वृतान्त उत्तरशाखा मे आ चुका है। आपने संवत् १४९३ की वैशाख कृ.५ को एक मूर्ति स्थापित की (ले. ४२६) आपने उज्जैन के प्रांत में प्रतिष्ठायें करवाई तथा सातसौ घरों की रत्नाकर जाति की स्थापना की. (ले.४२६) आपके शिष्य त्रिभुवनकीर्ति से जेरहट शाखा का आरम्भ हुआ।
३. विद्यानन्दी (सूरत)	संवत् १४९९.१५३८	मूलसंघ भारती गच्छ और बलात्कारगण के कुन्दकुन्दाम्नाय में हुए थे। इन्होंने अपनी परम्परा का उल्लेख निम्न प्रकार दिया है प्रभाचन्द्र, पध्मनन्दी, देवेन्द्रकीर्ति और विद्यानन्दी । श्री मलूसंघेवर भारतीये गच्छे बलात्कारगणे गतिरम्ये । श्री कुन्दकुन्दारत्थ मुनिन्द्र पट्टे जातः प्रभाचन्द्र महामुनीन्द्र : ॥४७ पट्टे तदीये मुनि पध्मनन्दी भट्टारको भव्यसरोज भानुः। जातो जगन्त्रयलितो गुणरत्न : सिन्धुं कुयति सत्तां सार सुखं यतीशः ॥४८ तत्पट्टे पद्माकर भास्करोत्र देवेन्द्रकीर्ति मुंनि चक्रवर्ती । तत्पाद षडक्रेज सुभक्तियुक्तो विद्यानन्दी चरितं चकार ॥४९ इनका कार्य सं. १४९९ से १५३८ तक पाया जाता है। पट्टावली के अनुसार इन्होंने सम्मेद शिखर, चम्पा, पावा, ऊर्जयन्त गिरि (गिरनार) आदि सिद्ध क्षेत्रों की यात्रा की थी। ये अनेक राजाओ से वज्राय, गंगजय सिंह, व्याघ्ररनेन्द्र आदि से सम्मानित थे। इन्हें डॉ. हीरालालजी अष्टशाखा प्रागवट शाखा परिवार वंश का बतलाया है इनके द्वारा प्रतिष्ठित मूतियों हूमड वंशी श्रावको में अधिक पाई जाती है। भ. विद्यानन्दी के अनेक शिष्य थे ब्रहा श्रुतसागर, मल्लिभूषण, ब्रहाअजित, ब्रहाछाहड, ब्रहाधर्मपाल आदि। ***सूरत*** ***विद्यानन्दी क्षेत्र*** सूरत से ३ कि.मी. दूर कतार गाँव में विद्यानन्दी क्षेत्र है। चरण चिह अलग अलग वेदियों मे विराजमान है। ये वेदियाँ तीन पंक्तियों में बनी हुई है । ये सभी श्वेत संगमरमर की है। चरण चिह्नों के माध्यम में आचार्य शांतिसागरजी महाराज की १ फुट १ इंच ऊँची मूर्तियाँ विराजमान है। विद्यानन्द की मूर्ति की पुष्ठ पंक्ति मे उनके १ फुट ३ इंच लम्बे चरण बने हुए हैं। भट्टारक विद्यानन्दी अपने समय के बडे प्रभावशाली और चमत्कारी

		पुरूष थे। वे मन्त्र तन्त्र में निष्णात तपस्वी साधु थे। उनके चमत्कारों की अनेक कथाएँ समाज मे प्रचलित है एक प्रशस्ति के अनुसार राजाधिराज, बज्रांग, गंग, जयसिंह, व्याघ्र आदि अनेक नरेश आपके भक्त थे। उनका स्वर्गवास मार्गशीर्ष वदी १० संवत् १५३७ को हुआ था। चरण वेदिकाओं के निकट एक मानस्तम्भ भी बना हुआ है। ऊपर जाने के लिए २७ सीढियाँ बनी हुई है। इसकी शीर्ष वेदिकामें चारो दिशाओंकी और मुख किये हुए चार तीर्थकारों की मूर्तियां विराजमान है यहाँ एक और सम्मेदशिखर की भव्य रचना निर्मित है।
४. मल्लिभूषण	*संवत १५४४.१५५५*	सं १५४४ वर्षे वैशाख सुदी ३ सोमे श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भ. श्री विद्यानन्दिदेवाः तत्पट्टे भ. श्री मल्लीभूषण श्री स्तंभतीर्थे हूँबड ज्ञातेय श्रेष्ठी चांपा भार्या रूपिणी तत्पुत्री श्री अर्जिका रत्नसिरी क्षुल्लिका जिनमती श्री विद्यानंदीदिक्षीता आर्जिका कह्याणसिरी तत्वल्ली अग्रोतका ज्ञातो साहदेवा भार्या नारिगंदे पुत्री जिनमती नरसही कारापिता प्रणमति श्रेयार्थम । विद्यानन्दी के पट्ट शिष्यों में मल्लिभूषण की गणना की जाती है। इन्होंने वि. संवत् १५४४ की वैशाख शुक्ला तृतीया को खम्भातमे एक निषीदिका बनावयी थी। इस निषीदिका पर जो अभिलेख प्राप्त हुआ है, उससे आर्यिका रत्न श्री कल्याण श्री और जिनमती का परिचय प्राप्त होता है। यह अभिलेख आर्यिका की मूर्ति पर उत्कीर्ण है। मल्लिभूषणने गोपाचल की यात्रा की थी और गयासुद्दीनके द्वारा सम्मान प्राप्त किया था। मल्लिभूषण पद्मावती के उपासक थे। पट्टावलीमे इनके वादी होने का भी निर्देश मिलता है। मल्लिभूषणने धर्मोपदेश, शास्त्रार्थ आदि के द्वारा धर्मकी प्रभावना की थी। ***सुदर्शनचरित्र से :-*** प्रबुध्दाचार्या एवं परम्परापोषकाचार्य ३७३ तत्पट्टोदयाचलपालभास्कर प्रवरपंरवादिगजयूथकेसरि मंडपगिरि मंत्र वादसमस्याप्तच न्द्रपूर्णविकटवादि गोपाचलदुर्गमेघाकर्षकभविकजन सस्यामृतवाणिवर्पणसुरेंद्रनार्गेद्रासि वितचरणारविंदानांग्यासदीसभामध्यप्राप्त सनमानपद्मावत्युपासकानां श्री मलिलभूषण भट्टारकवर्याणाम् ।
५. लक्ष्मीचन्द्र	*(संवत् १५५६.१५८२)*	लक्ष्मीचन्द के समय श्रुतसागर सूरि ने प्रशस्तिलक चन्द्रिका, सहस्त्रनामा टीका, तत्वार्थ वृत्ति तथा बटप्राभृतटीका की रचना की (ले. ४७२.७४)। इनकी प्रशस्तियों से पता चलता है कि श्रुतसागर ने नीहकण्ठ भट्ट आदि ९९ वादियों पर विजय प्राप्त की तथा सिद्धान्त सागर यति के लिए यशस्तिलक चन्द्रिका

बनाई। लक्ष्मीचन्द्र के समय ब्रह्मजिनदास के शिष्य ब्रह्म शान्तिदास ने शान्तीनाथ वृहपुजा की रचना की। उस समय मुल्हेर मे दयाचन्द्र भट्टारक थे (ले. ४७५)। पट्टावली से पता चलता है कि. भ. लक्ष्मीचन्द्र भैरवराय, मल्लिराय, देवराय,बंगराय आदि १८ राजाओं द्वारा सम्मानित हुए थे, तथा आपने भ. विरसेन, भ. विशालकीर्ति आदि से भी सन्मान पाया था (ले. ४७६)

मल्लिभूषण के पट्टशिष्य लक्ष्मीचन्द्र हुए। इनके उपदेश से सांगबकने संवत् १५५६ की चैत्र शु. १ को हंसपतन में नागकुमार चरित की एक प्रति लिखी (ले. ४६८) संवत् १५७५ की ज्येष्ठ कृ. ७ को घोघा में संभुबाई ने महापुराण की एक प्रति लक्ष्मीचंद्र के शिष्य नेमीचंद को अर्पित की (ले. ४६९) संवत् १५८२ को चैत्र शु. ५ को आप के शिष्य ज्ञानसागर के लिए आर्यिका विनयश्री ने महाभिषेक टीका की प्रति लिखी (ले. ४७९)।

६. आचार्य वीरचन्द्र

लेखांक ४७९ - पट्टावली

तद्वंशमंडनकंदर्पदलनविश्चलोकहृदयरंजन-महावेरतिपुरदराणां नंसहस्त्रप्रमुखदेशाधिपतिराजाधिराज श्री अर्जुमजीयरासभामध्यप्राप्तसन्मानानां षोडशवर्षवर्यन्त शाकपाकपकान्नशाल्योदनादिसर्पिः प्रभुतिसरसाहर परिवर्जितानां सकलमूलोत्तरगुणगणमणिमंडितविबुधवरश्रीवीरचंद भट्टारकाणाम् ॥ (जैन सिद्धांत १७ पृ. ५१)

भट्टारकीय बलात्कारगण सूरत शाखा के भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिकी परम्परा मे लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य आचार्य वीरचन्द्र हुए है। वीरचन्द्र अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न विद्वान थे। व्याकरण एवं न्यायशास्त्र के विद्वान थे या प्रभाण्डवेत्ता थे। छन्द, अलंकार एवं संगीत शास्त्रकी मर्मज्ञता के साथ वादविद्या मे भी वे निपुण थे। साधुजीवनका निर्वाह करते हुए वे गृहस्थोको भी संयमित जीवन यापन करनेकी शिक्षा देते थे। भट्टारक पट्टावली मे उनका परिचय इस प्रकार प्राप्तहोता है।

सूरिश्रीमल्लिभूषण जयो जयो श्रीलक्ष्मीचंद ॥
तास वंश विद्यानिलु ला नाति श्रुंगार।
श्रीवीरचंद्र सूरि भणी चित्तनिरोध विचार
तद्वंशमंडनकंदर्पदलनविश्वलोकहृदय रंजन

महाव्रतिपुरंदराणां नवसहस्त्रप्रमुख देशाधिपतिराजा धिराज श्री अर्जुन जीयराज समामध्य प्राप्त सन्मानषोडशवर्षपर्यन्तशाकपाक पक्वान्नशल्यो दनादिसर्प : प्रभुतिसरसाहा रपरवर्जितानां सकलमूलोत्तरपुण गणपणंडितविबुधवर श्री वीरचंद्रभट्टारकाणाम्।

उपर्युक्त प्रशस्ति से यह स्पष्ट है कि आचार्यवीरचन्द्रने नवसारी के शासक अर्जुन जीवराजसे सम्मान प्राप्त किया था तथा १६ वर्षो तक निरस आहारका सेवन किया था। वीरचन्द्र

की विद्वत्ता के सम्बन्धमें अन्य विद्वानोने भी प्रकाश डाला है। भट्टारक शुभचन्द्रने अपनी कार्तिकेयानुपेक्षा की संस्कृतटीका मे इनकी प्रशंसा की है।

भट्टारकपदाधीशाः मूलसंघे विदांवरा : य
रमावीरेन्द्रविद्रुपा : गुरवो ह गणेशिन :॥

भट्टारक सुमतकीर्तिने भी इन्हे यशस्वी, अप्रतिम विद्वान बतलाया है

दुर्वारदुर्वादिकपर्वतानां वज्जायमानो वरवीरचन्द्र :।
तददन्वयेसस्विरप्रधानो वज्जायमानो वरवीरचन्द्रः।

लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य होने के कारण वीरचन्द्र का समय वि. सं. १५५६.१५८२ के मध्य है। इनके द्वारा रचित कृतियोंमें जो समय प्राप्त होता है, उससे भी इनका कार्यकाल वि. की १७वीं शताब्दी सिद्ध होता है।

रचनाएँ

आचार्य वीरचन्द्र संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और गुजराती के निष्णात विद्वान थे। इनके द्वारा लिखित आठ रचनाएँ प्राप्त है।
१. वीरविलासफाग २. जम्बुस्वामीवेलि ३. जिनान्तर ४ सीमन्धरस्वामीगीत ५ सम्बोधसत्ताणु ६. नेमिनाथरास ७. वित्तनिरोधकथा ८. बाहुबलिवेलि

७. ज्ञानभूषण *(संवत् १६०० १६१६)*

क्रम नं७ ज्ञानभूषण

(संवत् १६०० १६१६)

लेखांक ४८६ पट्टावली

अनेकदेशनरनाथ नरपतितूरगपतिराजपतिय वनाधीशसभामध्यसंप्राप् त.
सन्मानश्रीनेमिनाथ तीर्थकर कल्याणिकपवित्रश्री ऊर्जयंतशत्रुंजय्च तुंतीगिरि चूलगिर्यादि
सिध्दक्षेत्रयात्रापवित्रीकृत चरणानां सकलसिद्धांतवेदिनिर्धयाचार्य वर्यशिष्य श्री सुमति
कीर्ति स्वदेशविख्यातशुभ मूर्तिश्री रत्नभूषणप्रमुखसूरिपाठक साधु सेवितचरणसरोजानां भट्टारक श्रीज्ञानभूषणगुरूणाम् ॥

(जैन सिध्दांत १७ पृ. ५२)

संवत् १६०० वर्षे माघ वदि ७ सोमे भ. श्रीवीरचंद्रदेवा : तत्पट्टे भ. श्री ज्ञानभूषण हूंबड ज्ञातीय भावजी भा. राई तयो पोमासा नित्यं प्रणमंति ॥

(बालपुर, अ ४ प. ५०५३)

लेखांक ४८७ सिद्धांतसारभाव्य

श्रीसर्वज्ञं प्रणम्यादौ लक्ष्मीवीरेंदुसेवितम् ।
भाष्यं सिद्धांतसारस्य वक्ष्ये ज्ञानभूषणम् ॥
(सिद्धांतसारादिसंग्रह, माणिकचंद्र ग्रंथमाला, बम्बई)

लेखांक ४८२ पंचस्तिकाय

भ. श्रीमल्लिभूषणा : । भ. श्रीलक्ष्मीचंद्रा :। भ. श्री वीरचंद्रा :।
भ. श्रीज्ञानभूषणानमिदं पुस्तक ॥

(का. ४१२)

लेखांक ४८३ कर्मकाण्ड टीका

मूलसंघे महासाधुलक्ष्मीचंद्रो यतीस्वर :।
तस्य पादस्य वीरेंदुविबुद्धा विश्ववेदित :॥
तदन्वये दयांभोधि ज्ञानभूषो गुणाकरः।
टीकां हि कर्मकाण्डस्य चक्रे सुमतिकीर्तियुक् ॥

(नां. १०)

भट्टारक संप्रदाय

लेखांक ४८४ (गणितसारसंग्रह)

स्वस्तिश्री संवत् १६१६ वर्षे कार्तिक सुदि ३ गुरौ श्रीगंधारशुभस्थाने श्रीमदादिजिनचैत्यालये श्रीमूलसंघे....भ. श्रीवीरचंद्रदेवाः तदन्वये आचार्यसुमतिकीर्तेरुपदेशात् श्री हूंब (ड) ज्ञातीय सोनी सांतू प्रदत्तं ॥

८. प्रभचन्द्र

पट्टावली

दिलुगौर्जरादिदेशसिंहासनाधीश्वराणाम्
श्रीज्ञानभूषणसरोजचंचरीकभट्टारक श्री प्रभाचंद्रगुरूणाम्।

९. वादिचन्द्र (विद्यानन्दी सूरत)

वादिचन्द्र विद्यानन्दी की परम्परा मे होनेवाले भ. ज्ञानभूषण के प्रशिष्य एवं भ. प्रभाचन्दर के शिष्य थे। इन्हें साहित्य निर्माण की रूचि गुरू परम्परा से प्राप्त हुई थी संस्कृत एवं हिन्दी गुजराती पर इनका अच्छा अधिकार था इसलिए इन्होंने संस्कृत एवं हिन्दी दोनों मे अपनी कलम चलाई । ये एक समर्थ साहित्य करा थे। संवत् १६४० मे इन्होंने संस्कृत में यवनदूतपूर्ण किया था। यवनदूत कालीदास के मेघदूत के आधार पर रचा गया काव्य है।

१. पार्श्वनाथ विनती २. श्रीपाल सौभागी आख्यान ३. बाहुबली नो दंद ४. नेमिनाथ समवसरण ५. द्वादश भावना ६. आराधना गीत ७. अम्बिका कथा ८. पाण्डव पुराण

११. बलात्कार गण सूरत शाखा

तत्पट्टालभूषणं समभवद्दंबरीये मते ।
चंचद्वर्हकरञ सभातिचतुर : श्रीमत्प्रभाचंद्रमाः ॥
तत्पट्टेजनि वादिवृन्दतिलकः श्रीवादिचंद्रो यति
स्तेनायं व्यरिच प्रबोधतरणिर्भव्यर्जसंबोधन : ॥२॥
वसुवेदरसाब्जांके वर्षे मागे सिताष्टमी दिवसे ।
श्रीमनमधूकनगरे सिद्धोयं बोधसंरम्य : ॥३॥
(जैन साहित्य और इतिहास पृ. २६८)

		लेखांक श्रीपाल आख्यान प्रगट पाट त अनुक्रमे मानु ज्ञानभूषण ज्ञानवंत्तजी । तस पद कमल भ्रमर अविचल जस प्रभाचंद्र जयवंतजी ॥ जगमोहन पाटे उधयो वादीचंद्र गुणालजी । नवरस गीते जणे गायो चक्रवर्ति श्रीपालजी ॥ संवत् सोल एकावनावर्षे कीधो ये परबंधजी । (जैन साहित्य और इतिहास पृ.२७०)
१०. महीचन्द्र	***संवत १६७९.२६८५***	वीरचन्द्र के पट्ट पर महीचन्द्र आरूढ हुए। आपने संवत् १६७९ में एक चन्द्रप्रजा मूर्ति तथा संवत् १६८५ में एक सम्यग्यान यन्त्र स्थापित किया (ले. ४९९.५००)
११. मेरुचन्द्र	***१७२२-१७३२***	***पट्टावली*** लघुखाखाहुंबलड कुलशंगारहारदिल्लीगुर्जर सिंहासनाधीशवलाकारगण बिरुदावली विराजमान भ. श्रीमेरुचंद्रगुरूणाम् ॥ (जैन सिद्धांत १७ प. ५२)
१२. जिनचन्द्र	***संवत १७३२-१८०४***	
१३. आदिनाथमूर्ति विद्यानन्दि	***सं. १८०५-१८२२ द्वितिय***	***आदिनाथमूर्ति विद्यानन्दि १८०५-१८२२ द्वितिय*** श्रीजिनो जयति स्वस्ति श्री १८०५ वर्षे शाके १६७५ प्रवर्तमाने वैशाखमासे शुक्लपक्षे चद्रवासरे गुर्जरदेशे सूरतवंदरे जुम्यादिचैत्यालये श्रीमूलसंघे नंदीसंघे भ. श्रीमहीचंद्रदेवाः तत्पट्टे भ. श्रीजिनचंद्रदेवाः तत्पट्टे भ. श्री विद्यानंदीगुरूपदेशात् सूरतवास्तव्य रायकावाल जातीय धर्मधुरंधर ... ॥ (सूरत . दा. पृ. ३१) ***लेखांक (आराधना सकलकीर्ति)*** संवत् १८२२ मिति मार्गसीर सुदि ८ बुधवारे नागपुरमध्ये श्रीमूलसंघे भ. श्रीविद्यानंदीजी तच्छिष्य ब्रह्मजिनदासेन लखित ॥ (ना. ९४)
१४. देवेन्द्रकीर्ति	***संवत् १८४२***	***लेखांक ५१० पट्टावली*** श्रीविद्यानंदीपट्टोधर धीराणांश्रीमत्खंडेलवालज्ञाती यशुद्धवंशदभवानाम् भट्टारकोत्तसश्रीमद्देवेन्द्रकीर्ति भट्टारकाणां तपोराज्याभ्युदयार्थं भव्यजनैः क्रियमाणे श्रीजिननाथाभिषेक सर्वे जनाः सावधाना भवतु । इति श्री नंदिसंघबिरूदावरी श्रीसुमतिकीर्तिकृता संपूर्ण ॥ (जैन सिद्धांत १७ पृ. ५३) विद्यानन्दी के पट्टशिष्य देवेन्द्रकीर्ति हुए। संवत् १८४२ मे इस ने गणितसार संग्रह की एक प्रति अपने शिष्य विद्याभूषण कादी वे खंडेलवाल जाति के थे। (ले. ५०९.११)। ***लेखांक ५०९ गणितसार संग्रह देवेन्द्रकीर्ति*** संवत् १८४२ मिति वैशाख सुदि ११ भ. श्रीविद्याभूषण इद गणित छत्तिसी भ. श्रीदेवेन्द्रकीर्ति प्रदत्तं शुभं भूयात् । (का. ६४)

१५. विद्याभूषण		***लेखांक ५११ पट्टावली विद्याभूषण*** खंडिल्यान्वयशृंगारहाराणां देवेन्द्रकीर्ति पट्टधारसुरिविरदावलि समूहविराजमान श्रीमद् विद्याभूषण भट्टारकाणाम् ॥ (जैन मूर्ति १९.६.१९२४)
१६. धर्मचन्द्र	*(संवत १८९९)*	***पट्टावली*** भट्टारक वरेण्याविद्याभूषण विद्यमानदत्तनंदिसंघपदानां गठाधइराजभट्टारकवरेण्पर माराध्यपरामपुज्य श्री भट्टारकधर्मचंद्रा णआ तपोराज्याभ्युदयार्थभव्यजनैञ क्रियमाणे श्री जिननाथाभिषेके सर्वे जनाः सावधान भवंतु । (जैन मित्र, १९.६.१९२४) विध्याभूषण के बाद धर्मचन्द्र पट्टाधीश हुए। इनके गुरूबन्धु भाणचंद ने संवत् १८९९ में पध्मावती मूर्ति की स्थापना की (ले. ५१२) । ***पध्मावती मूर्ति*** सं. १८९९ वैशाख सुद १२ गुरूवार श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे कुंदकुंदाचार्यान्वये भ. विद्यानंदि तत्पट्टे भा। श्रीदेवेन्द्रकीर्ति तत्पट्टे भ. श्री विद्याभूषणजी तत्पट्टे भ. धर्मचन्द्र तत्गुरूभ्राता पंडित भाणचंद उपदेशात् सा. वेणिलाल केसुरदास तत्सुता बाई इछाकोर नित्यं प्रणमति । (सूरत दा. पृ.४६)

हूमड इतिहास भाग २

बारडोली शाखा स्थापना सं. १५७६ मूल संघ, सरस्वती गच्छ एवं बलात्कारगण

आचार्य कुन्दकुन्द

१. भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र	१५५६	१५७०
२. भट्टारक अभयचन्द्र	१५७०	१६०५
३. अभयनन्दि	१६०५	१६३०
४. रत्नकीर्ति	१६३०	१६५६
५. कुमुदचन्द्र	१६५६	१६८५
६. अभयचन्द्र द्वितीय	१६८५	१७२१
७.शुभचन्द्र	१७२१	१७७४
८. रत्नचन्द्र सं.	१७४५	

ब्रह्म श्रीपाल द्वारा गुर्वावली से भट्टारक विद्यानन्द की परम्परा में होनेवाले भट्टारकों का गुणानुवाद है। गुर्वावली ऐतिहासिक बन गयी है। यदि संवत लिखने की उस समय परम्परा होती तो ऐसे गीत भी निश्चित ही इतिहास की सामग्री बन जाते फिर भी इस प्रकार के गीत साहित्य की अमूल्य धरोहर है। इसमें ११ पद्य है। पूरी गुर्वावली निम्न प्रकार है.

वंदो गुरू विद्यानन्द सूरि, जेह नामे दुख जाये दूरि ।
जनम जनम ना पाप पलाय, जिम रूडाँ मन वांछित थाय ॥१॥
मल्लिभूषण छे मोटा मति, जेहनें जग जाणे शुभमती ।
वचन अनुपम अमिय समान, ग्यासदीन रंज्यो सुल्तान ॥२॥
लक्ष्मीचन्द्र नमो नति पाय, जेहनी सेव करे नर राय।
गच्छनायक गुणवो भन्डार, भव सागर उतारो पार ॥३॥
अभयचन्द्र सेवो सहु संत, जेहना गुणनो नवि अंत ।
पाले संयम साधु सुजाण, जेहनी महीपति मनि आण ॥४॥
अभयनन्दि यति कोमलकाय, जेहनाँ वचन भला सुखदाय ।
साधु शिरोमणि कहीये एह, भवियग नाम जपा सहु तेह ॥५॥
रतनकीरति रुपे अति भलो, चन्द्रकिरण सम जस उजलो ।
हूबड वंश तणो सिणगार, जेहना गुणनो नवि पार ॥६॥
कुमदचन्द्र गुरूवो चादलो, रत्नकीरति पाटे गोर भलो ।
मोढवंश उदयाचल रवि, जेहनां वचन बखाणे कवि ॥७॥
अभयचन्द सेवो शुभमति, जेहनां चरण नमें नरपती ।
वादि शिरोमणी कहीये एह, गुणसागर विद्यानो गेह ॥८॥
अभयचन्द्र कुल अवर चन्द्र, उदयो पुन्य तरूवर कंद ।
दीठे भवियण मनि आंणद, वादो सहे गुरू श्री शुभचन्द्र ॥९॥
सम रवि,जेहना वचन बखाने कवि।
वर जसवंत , जेहना पद सेवे माहंत ॥१०॥
समरो...... गुरू राय, समरता सुख संपति वाय।
रत्नराशि सेवो अन्य काल, प्रणमे जिन सेवक श्रीपाल ॥११॥

इति श्री गुर्वावली समाप्ता

सौजन्य : महेन्द्रकुमार मन्नालालजी महेता
१००२,एवरेस्ट चेम्बर, माउन्ट प्लेजेन्ट रोड, वालकेश्वर मुम्बई

बारडोली भट्टारक गद्दी - १५७०.१७८५

यह काल देश के इतिहास मे शांति एवं समृद्धि का काल माना जाता है। इस वर्षो में तीन मुगल बादशाहो का शासन रहा। १६३१.१६६२ अकबर, १६६२ का १६६५ जहाँगीर, १६८५.१७०० शाहजहाँ, अकबर का शासन राजनैतिक, संगठन, शान्ति तथा सुव्यव्यवस्था के लिये, शाहजहाँ का शान्ति एव पारस्परिक सद्भाव के लिये प्रशंनीय है। अकबर का राज दरबार कवियों, विद्वानो, सामन्तों एवं कला प्रेमियों से अंलकृत था।इसी समय हिन्दी कविता भी अपने सम्पूर्ण उत्कृष्ट विकास को प्राप्त हुई।

इन ७० वर्षो में देश में भट्टारक युग भी अपने चरमोत्कर्ष पर था। राजस्थानमें एक और भट्टारक चन्द्रकीर्ति तथा भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति आमेर में, वागड में सकलकीर्ति की परम्परा वाले भट्टारक सुमतकीर्ति गुणकीर्ति लक्ष्मीचन्द की परम्परा में राजकीर्ति, कुमुदचन्द्र अपने समय के प्रमुख जैन संत माने जाते है।

इन भट्टारकों के कारण सारे देश विशेषकर प्राचीन भारत में जैन धर्म की प्रभावना और संरक्षण को विशेष बल मिला। उनका तत्कालीन शासन पर प्रभाव, विहार का उचित प्रबन्ध, जन साधारण का भट्टारक संस्था पर श्रद्धा और आदर जागृत हुआ। उनके प्रत्येक गाँव नगर में केन्द्र, जिनके द्वार विधि विधान, पंच कल्याणक प्रतिष्ठा आदि का आयोजन होता था।

भट्टारक रत्नकीर्ति १६३०.१६५६

भट्टारक रत्नकीर्ति धर्म गुरू थे। उपदेश देना, विधि विधान कराना एवं संघ का संचालन करना जैसे उनके प्रमुख कार्य थे। लेकिन सबसे अधिक विशेषता उनकी काव्य शक्ति थी। वे गुजरात प्रदेश के रहनेवाले थे। गुजराती उनकी मातृभाषा थी। लेकिन हिन्दी में उन्होंने भक्ति परक गीत लिखे और तत्कालीन समाज में जिन भक्ति के प्रति आकर्षण पैदा किया। रत्नकीर्ति का जन्म गुजरात प्रान्त में धोधा नगर में हुआ था। उनके पिता हूंबड जातीय श्रेष्ठी देवीदास थे। बालक बडा मनोहर था। इसलिए उनका पढ़ने लिखने में देर नहीं लगी। और थोडे ही समय में उसने प्राकृत एवं संस्कृत का अध्ययन कर लिया गुजराती उसकी मातृभाषा थी और हिन्दी उसने सहज रूप में सीख ली थी। थोड़े ही समय में वह अपनी बुद्धि चातुर्य एवं विनयशीलता के कारण सबका प्रिय बन गया। संवत् १६३० में अभयनन्दि, भट्टारक गादी पर विराजमान थे। अभयनन्दि आचार्य कुन्दकुन्द की परम्परा में होनेवाली मूलसंघ, सरस्वति समाज एवं बलात्कारगण शाखा में होनेवाल भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र के प्रशिष्य एवं अभयनन्दि के शिष्य थे। गुणों के सागर एवं विद्या के केन्द्र थे। भट्टारक अभयनन्दि को जब बालक रत्नकीर्ति को बुद्धि के सम्बन्ध में जानकारी मिली तो वे उसको अपना शिष्य बनाने के लिए आतुर हो गये। एक दिन अकस्मात ही जब अभयनन्दि का धोधा नगर में बिहार हुआ तो वे बालक को देखते ही बड़े प्रसन्न हुए और उसकी बुद्धि एवं वाकचातुर्य से प्रभावित होकर उसे अपना शिष्य बना लिया।

हुंबड वंशे दिबुध विख्यात रे, मात सेहजले देवीदास तात रे।
कुंवर कलानिधि कोमल काय रे, पद पूजे जेम पातक पलाय रे॥
भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्रः व्यक्तित्व एवं कृतित्व

यद्यपि रत्नकीर्ति ने पहले शास्त्रों का अध्ययन कर रखा था लेकिन भट्टारक अभयनन्दि इससे संतुष्ट नहीं हुए और पुनःउसे अपने पास रखकर सिद्धान्त, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष एवं आयुर्वेद विषयों के ग्रंथो का अध्ययन करवाया। बालक व्युत्पन्नमति था। इसलिये शीघ्र ही उसने ग्रंथो पर अधिकार पा लिया अभयनन्दि ने उसे अपना पट्ट शिष्य घोषित कर दिया। बत्तीस लक्षणों एवं बहत्तर कलाओं से सम्पन्न विद्वान युवक को कौन अपना शिष्य बनाना नही चाहेगा।

सौजन्य : विनोदकुमार वालचंदजी दोशी
ए-६०३, रत्नपुरी गौशाला लेन, मलाड पूर्व
मुम्बई

संवत १६३० के दक्षिण प्रान्त के जालणा नगर में एक विशेष समारोह आयोजित किया गया। समारोह में आयोजक से संघपति पाक साह तथा संघवणि रपाई तथा उनके पुत्र संघवी आसवा एवं संघवी रामाजी जो जाति से बघेरवाल थे। समारोह मे भ. अभयनन्दि ने संवत् १६३० वैशाख सुदि ३ के शुभ दिन भट्टारक पद पर रत्नकीर्ति का पट्टाभिषेक कर दिया। उसका नाम रत्नकीर्ति रखा गया। इस पद पर वे संवत १६५६ तक रहे। भट्टारक पट्टाभिषेक के समय वे सिद्धान्त ग्रंथो के परम वक्ता थे तथा आगम काव्य, पुराण, तर्कशास्त्र, न्याय शास्त्र, छंद शास्त्र, नाटक आदि ग्रंथो पर वे अच्छा प्रवचन करते थे।

विहार

रत्नकीर्ति २७ वर्ष तक भट्टारक रहे। इस अवधि में उन्होंने सारे देश में विहार करके जैन धर्म एवं संस्कृति तथा साहित्य का खूब प्रचार किया। उनका मुख्य कार्यक्षेत्र गुजरात एवं राजस्थान का बागड प्रदेश था। बारडोली में उनकी भट्टारक गादी थी इसलिये उन्हें बारडोली का संत भी कहा जाता है। उनकी गादी की लोकप्रियता आसमान को छूने लगी थी इसलिये उन्हें स्थान स्थान से सादर निमन्त्रण मिलते थे। वे भी उन स्थानों पर विहार करके अपने भक्तों की बात रखते थे। वे जहां भी जाते सारा समाज उनका पलक पावडे बिछाकर स्वागत करता और उनके मुख से धर्म प्रवचन सुनकर कृत कृत्य हो जाता। उनके विहार के संबंध में लिखे हुए कितने ही गीत मिलते है जिनमें उनके स्वागत के लिये जन भावनाओं को उभारा गया है। यहां ऐसा एक पद दिया जा रहा है:-

सखी री श्रीरत्नकीरति जयकारी
अभयनंद पाट उदयो दिनकर, पंच महाव्रत धारी।
सास्त्रसिघांत पुराण ए जो सो तर्क वितर्क विचारी।
गोमटसार संगीत सिरोमणी, जाणी गोयम अवतारी।
साहा देवदास केरे सुत सुखकर सेजलदे उर अवतारी।
गणेश कहे तुम्हें बंदो रे भवियण कुमति कुसंग तिवारी॥

भानेज गोपाल, बेजलदे, मानाबाई बहिने आदि सभी थे। यह प्रतिष्ठा संवत १६४३ बैशाख सुदी पञ्चमी गुरुवार के शुभ दिन समाप्त हुई थी।

बलसाड नगर में फिर उन्होंने पंच कल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई। यह प्रतिष्ठा हूंबड वंशीय मल्लिदास ने कराई थी। उसकी पत्नी का नाम राजबाई था। उसके जब पुत्र जन्म हुआ तब मल्लिदास ने दान आदि में खुब पैसा लगाया तथा एक पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन किया। मांगसर सुदी पंचमी के दिन कुंकुम पत्रिका लिखी गई।

चारों ओर गांवो में पंडितों को भेजा गया। पत्रिका में लिखा गया कि जो भी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा को देखेगा उसे महान पुण्य की प्राप्ति होगी। पंच कल्याणक प्रतिष्ठा की पूरी विधि सम्पन्न की गयी। अंकुरारोपण, वस्तु विधान नांदी मंडल, होम, जलयात्रा आदि विधान कराये गये। मंडल में भट्टारक रत्नकीर्ति सिंहासन विराजमान रहते थे। विविध वाद्य यंत्र बजाये गये थे। संघपति मल्लिदास, संधवेण मोहनदे, राजबाई आदि की प्रसन्नता की सीमा नही रही। अन्त में कलशाभिषेक सम्पन्न हुए तब प्रतिष्ठा समारोह के समाप्ति की घोषणा की गयी।इसके पश्चात माघ सुदी एकदशी के शुभ दिन भट्टारक रत्नकीर्ति ने ब्रहम जयसागर को आचार्य पद पर दीक्षित किया। सर्व प्रथम प्रासुक जल से स्नान कराया गया। भट्टारक रत्नकीर्ति ने उसके माथे पर तिलक किया तथा पांच महाव्रतों को अंगीकार कराया गया।

सौजन्य : श्रीमती अरूणा हठीसींग सोलवाडिया

३-२२, रिधि सिद्धि तिलक रोड, शातांक्रुज, मुम्बई (महा.)

इस प्रकार भट्टारक रत्नकीर्ति जीवन पर्यन्त देश के विभिन्न भागों में विहार करते रहे। वास्तवमें भट्टारक रत्नकीर्ति का युग भट्टारकों का स्वर्ण युग था जब सारे देश में उनके त्याग एवं तपस्या की इतनी अधिक प्रभावना थी कि समाज का अधिकांश भाग उन पर समपर्ति था। उसके आदेश को शिरोधार्य करने में ही जीवन की उपलब्धि माना जाता था। भट्टारक संस्था भी अपने आपको साधु समाज का एक प्रतिनिधि बनने का पूरा प्रयास करती नहीं। समय समय पर उसने अपने को योग्य प्रमाणित किया और समाज एवं संस्कृति के विकास के प्रति जागरूत रहा। रत्नकीर्ति का विशाल व्यक्तित्व समाज की आशाओं का केन्द्र था।

शिष्य परिवार

रत्नकीर्ति वैसे तो अनेको शिष्यों के आचार्य थे, जीवन निर्माता थे और उनके मार्गदर्शक भी थे,लेकिन उनमें तो कुमुदचद्र, ब्रहम जयसागर, गणेश, राधव एवं दामोदर के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इन सभी ने रत्नकीर्ति के सम्बन्ध में पद एवं गीत लिखे हैं। कुमुदचन्द्र तो रत्नकीर्ति के पश्चात भट्टारक गादी पर ही बैठे

क्रम ७ भट्टारक कुमुदचन्द्र (१६७६.१६८७)

वे भट्टारक रत्नकीर्ति द्वारा भट्टारक गादी पर अभिषित्त किये गये। वे बागड़ और गुजरात प्रदेश के धर्माधिकारी बन गये। वे युवा, सौन्दर्यशाली, और विद्वान थे सरस्वती की कृपा से उनकी वाणी में आकर्षण से जनगणना के प्रिय बने और समाज पर उनका पूर्ण वर्चस्व स्थापित हो गया।कुमुदचन्द्र का जन्म गोपुर गाम में हुआ। पिता सदाफल माता पदमाबाई थी। वे मोढवंश के थे। रातदिन व्याकरण, न्याय, आगम छन्द, अंलकारो का विशेष अध्ययन किया करते थे। संवत १६५६ में वैशाख मास में बारडोली में भट्टारक रत्नकीर्ति ने स्वयं उन्हें भट्टारक पदवीं पर प्रति पदापित कर दिया।

संवत सोल छपन्ने वैशाखे प्रगट पट्टी धर था प्यारे।
रत्नकीर्ति गोर बारडोली वर सूर मंत्र शुभ आप्यारे ॥

मूल संघ मुगट मणि माहत सरस्वती गच्छ साहये रे।
कुमुदचंद्र भट्टारक आगलि वादि को वादे न आवे रे।॥

विहार

कुमुदचन्द्र वे भट्टारक बनते ही गुजरात एवं राजस्थान में विहार किया। अपनी तेजस्वी, मधुर, आकर्षक वाणी से सबका ह्रदय जीत लिया। वे जहाँ भी जाते उनका कुकुंम छोडकर, चौक पूर करके स्वागत होता था।

सुन्दरि रे सहु आवो तम्हें कुकुंम छडो देवडावो,
बारा मोतिये चौकं पूरावो, सडा सह गुरू कुमदचन्द्र ने बधाई

भट्टारक पद स्थापन के पश्चात् बारडोली नगर साहित्यिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया। कुमुदचन्द्र की वाणी सुनने के लिये वहां धर्म प्रेमी समाज का जमघट रहता था। कभी तीर्थ यात्रा करनेवालों का संघ उनकी आशीर्वाद लेने आता तो कभी कभी विभिन्न नगरों का समाज उन्हें सादर निमन्त्रण देने आता। कभी वे स्वयं ही संघ का नेतृत्व करते तथा तीर्थों को यात्रा कराने में सहयोग देते। संवत १६८२ में कुमुदचन्द्र संघ सहित घोषा नगर आये जो उनके गुरु रत्नकीर्ति का जन्म स्थान था। बारडोली वापिस लोटने पर श्रावकों ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया। इसी वर्ष उन्होंने गिरनार जानेवाले एक संघ का नेतृत्व किया था और उसमें अभूतपूर्व सफलता पाई थी।

सौजन्य : शेठ सुशीलकुमार भुरालालजी
सी.एस.पी.-५ गीतांजली नगर,
४९,४थे माले, बोरीवल्ली मुम्बई-९२(महा.)

साहित्य सेवा

कुमुदचन्द्र बडे भारी साहित्यिक भट्टारक थे। साहित्य सृजन में वे विश्वास करते थे। इसलिये भट्टारक पद के कर्तव्य से अवकाश पाते ही काव्य रचना में.लग जाते । उनकी अब तक २८ छोटी बडी कृतियां एवं ३० से भी अधिक पद मिल चुके है । लेकिन शास्त्र भण्डारों की खोज पाने पर और भी रचनायें मिलने की आशा है। उनकी **प्रमुख रचनाओं के नाम निम्न प्रकार है।**

१. भरत बाहुबलि छंद २. त्रेपन क्रिया विनती ३. ऋषभ विवाहलो ४. नेमिनाथ का द्वादशमासा
५. त्रण्यरतिगीत ६. नेमिश्वर हमची ७. हिन्दोलना गीत ८. दशलक्षणि धर्म व्रत गीत
९. अढाई गीत १०. व्यसन सातनूं गीत ११. भरतेश्वरगीतुं १२. पार्श्वनाथ गीत १३. गौतम स्वामी चौपाई
१४. संकटहर पार्श्वनाथनी विनती १५. लोडणापार्श्वनाथनी विनंती १६. जिनवर विनंती
१७. गुरूगीत १८.भारती गीत १९.जन्म कल्याणक गीत २०.अष्टोलडी गीत २१.शीलगीत
२२.चिन्तामणि पार्श्वनाथ गीत २३.दिवाली गीत २४. चौबीस तीर्थंकर देह प्रमाण चौपाई
२५. बलभ्रदनी विनंती २६. नेमिजिन विनंती २७. वणजारा गीत २८. गीत
२९. विभिन्न राग रागनियों में निर्मित पद

इस प्रकार कुमुदचन्द्र की जो कृतिया राजस्थान के विभिन्न शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध हुई है उनका नामोल्लेख किया गया है। कवि की सभी रचनायें राजस्थानी भाषा में है जिन पर गुजराती का पूर्ण प्रभाव है। वास्तव में १७वीं शताब्दि में गुजराती एव राजस्थानी भिन्न भिन्न नही हो सकी थी। इसलिये कवि अपनी कृतियों में दोनों ही भाषाओं का प्रयोग किया है। इनकी रचनाओं में एक गीत हैं जिन्हें ये अपने प्रवचन के समय श्रोताओं के साथ गाते थे। नेमिनाथ के तोरण द्वार पर आकर वैराग्य धारण करने की अदभूत घटना से ये अपने गुरू रत्नकीर्ति के समान बहुत प्रभावित थे इसलिये इन्होंने भी नेमिराजुल पर कितनी ही रचनाएं एवं पद लिखे है उनमें नेमिनाथ, बारहमासा, नेमिश्वरगीत, नेमिजिनगीत पद के नाम उल्लेखनीय है।

क्रम ६ भट्टारक अभयचन्द्र

अभयचन्द्र संवत् १६८५ में भट्टारक गादी पर विराजमान हुए । वे भट्टारक बनते समय पूर्णयुवा थे। उन्होंने कामदेव वे मद को चकनाचूर कर दिया था। वे विद्वता में गौतम गणधर के समान थे। अपूर्व क्षमाशील, गंभीर एवं गुणों की खान थे। विद्या के वे कोष थे तथा बाद विवाद में वे सदैव अपराजित रहते तै। पं. श्रीपाल ने उनेक सम्बन्ध में अपने एक पद में निम्न प्रकार परिचय दिया है।

चन्द्रवदनी मृग लोचनी नारि
अभयचन्द्र गछ नायक वांदो, सकल संघ जयकारी ।
मदन महामद मोडेए मुनिवर, गोयम सम गुणधारी
क्षमावंतवि गंभीर विचक्षण, गुरूयो गुण भंडारी ॥

अभयचन्द्र अपने गुरू भट्टारक कुमुदचन्द्र के योग्यतम शिष्य थे। उन्होंने भट्टारक रत्नकीर्ति एवं भट्टारक कुमुदचन्द्र का समय देखा था और देखी थी उनकी साहित्यिक साधना इसलिये जब वे स्वयं भट्टारक बने तो उन्होंने भी उसी परम्परा को जीवित रखा। बारडोली नगर में इनका पट्टाभिषेक हुआ था। उस दिन फाल्गुण सुदी ११ सोमवार संवत १६८५ था। पाट महोत्सव में समाज के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। इनमें संघवी नागजी, हेमजी, मेघवी, रूपजी, मालजी, भीमजी आदि के नाम उल्लेखनीय है। कविकर दामोदर ने पाट महोत्सव का निम्न शब्दों में वर्णन किया है ।

सौजन्य : सूर्यप्रकाश सालगिया १८८६-ए घोबीघाट के सामने, कृष्णगंज
अजमेर -३०५००१

बारडोली नयरि उच्छव कीधो, महोछव अन्त अवारी।
सधवी नाग जी अति आणद्या, हेमजी हरष अपार।
सधवी कुंवर जी कुलमंडल, मेघजी महिमावत।
रूपजी मालजी मनोहारू, सहु सज्जन मन मोहत।
संधवै भीमजी भावस्युं, सुन जीवा मनें उल्हास
संधवई जीवराज उलट घणो, पहोती छे मन तणी आस।
संवत सोल सोल पच्यासीये, फागुण सुदि एकादशी सोमवार।
नेमिचन्द्रे सुर मंत्रज, आप्यां बरतयो जयकार॥

अभयचन्द्र का जन्म संवत १६४० के लगभग हूंबड वंश में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीपाल एवं माता का नाम कोडमदे था। बचपन में ही बालक अभयचन्द्र को साधुओं की मंडली में रहने का सुअवसर मिल गया था। हेमजी कुंवरजी इनके भाई थे। ये सम्पन्न घराने के थे। युवावस्था के पूर्व ही पांच महाव्रतों का पालन प्रारम्भ कर दिया था।

हूंबड वंशे श्रीपाल साह तात, जनम्यो रूडी रतनदे कोडमदे मात।
लघु पणें लीधो महाव्रत भार, मनवश करी जीत्यो दुर्धरि भार।

इसी के साथ इन्होंने प्राकृत के ग्रंथो का उच्च अध्ययन किया। न्याय शास्त्र में पारगंता प्राप्त की तथा अलंकार शास्त्र एवं नाटकों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। इसके साथ ही अष्टासहस्त्री,त्रिलोकसार, गोम्मटसार जैसे ग्रन्थों का गहरा ज्ञान प्राप्त किया।

व्याकर्ण छन्द अलंकार रे अष्ट सहस्त्री उदार रे
त्रिलोक गोमम्टसार के भाव हृदय धरे॥

जब उन्होंने युवावस्था में पदार्पण किया तो त्याग एवं तपस्या के प्रभाव से उनकी मुखाकृति स्वयमेव आकर्षक बन गयी और भक्तों के लिये वे आध्यात्मिक जादुगर बन गये। इनके पचासों शिष्य बन गये उनमें गणेश, दामोदर, धर्मसागर, देवजी, रामदेवजी के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इन शिष्यों ने भट्टारक अभयचन्द्र की अपने गीतों में भारी प्रशंसा की है। लगता है उस समय चारों ओर अभयचन्द्र का यशोगाथा फैल गयी थी। जब वे विहार करते तो इनके शिष्य जन साधारण को एवं विशेषतः महिला समाज को निम्न आह्वान करते थे।

आवो रे भामिनी गज वर गमनी
वांदवा अभयचन्द्र मिली मृग नयनी॥
मुगताफलनी लाल भरी जे
गच्छानायक अभयचन्द्र बधावीजे।
कुंकुम चन्दन भरीवे कवोली
गेम पद पूजो गोरना सहू भली ॥३॥

भट्टारकों की वेशभूषा लाल चद्दर वाली होती थी। चद्दर को राजस्थानी में पछेवड़ी कहते हैं। इसलिये जब भट्टारक अभयचन्द्र अपनी भट्टारकीय वेशभूषा में सभा में बैठते थे तो वे कितने सुन्दर एवं लुभावने लगते थे इनी को धर्म सागर ने एक गीत में छन्दो वद्ध किया है.

WITH BESTG COMPLIMENTS FROM : 6839, CHABLIS COURT MENTOR OH
MILWALUKELWI U.S.A.
CHANDRAKUMAR SHETH

लाल पिछोडी अभयचन्द्र सोहे
निरखतॉं भवियकना मन मांहे ।
आखडली कज पांखडीरे, मुखडं ते पूनिमचन्द
शुक चंची सम नासिका रे, अधर प्रवालनां वृद रे
कठे कबु हराविया रे, हैडले सरस्वती वाल्ही
वांदि सकोमल एहजीरे पिछि, हाथि रढियो ली रे

संवत १७०६ में भट्टारक अभयचन्द्र का सूरत नगर में विहार हुआ । उस समय उनका वहां अभूतपूर्व स्वागत हुआ। घर घर में उत्सव आयोजित किये गये। मंगल गीत गाये गये। चारो ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। जय जय कार होने लगी। इसी एक दृश्य का देवजी ने एक पद में निम्न प्रकार छन्दों बद्ध किया है। वे ३६ वर्ष तक भट्टारक पद पर रहे और सारे प्रदेश में अपने हजारों प्रशंसको एवं भक्तो का समूह इकट्ठा कर लिया ।

अभयचन्द्र की अब तक निम्न रचनायें प्राप्त हो चुकी है.

१. वासपूज्यनी धमाल	२ गीत
३ चन्दा गीत	४ सूखड़ी
५ पद्मावती गीत	६ शान्तिनाथजी विनती
७ आदीश्वरजी विनती	८ पञ्चकल्याणक गीत
९. बलभद्र गीत	१० लांछन गीत
११ विभित्र पद ।	

भट्टारक अभयचन्द्र की विद्वता एवं शास्त्रों के ज्ञान को देखते हुए उक्त रचनायें बहुत कम है इसलिये अभी उनकी रचनायें मिलने की अधिक संभावना है लेकिन इसके लिये बागड़ प्रदेश एवं गुजरात के शास्त्र भण्डारों में खोज की आवश्यकता है।

क्रम ७ भट्टारक शुभचन्द्र १७२१.१७४५

भट्टारक अभयचन्द्र के पश्चात् शुभचन्द्र गद्दी पर बैठे । संवत् १७२१ की ज्येष्ठ बुदि प्रतिपदा के दिन पोरबन्दर में एक विशेष उत्सव किया गया और उसमें शुभचन्द्र को पूर्ण विधि के साथ भट्टारक गद्दी पर अभिषिक्त किया गया। प. श्रीपाल ने शुभचन्द्र लिखी है उसमें शुभचन्द्र अभिषिक्त के भट्टारक पद पर अभिषेक होने से पूर्व तक का पूरा वृतान्त दिया हुआ है।

सखी संवत सत्तर एक बीसे जेष्ठ बदी प्रतिपद दीवसे
श्री पोरबन्दर मोहोछव हवा, मल्या चतुविध संघ ते नवा नवा

शुभचन्द्र का जन्म गुजरात प्रदेश के जलसेन नगर मे हुआ जहां गढ एवं मन्दिर थे तथा सुन्दर सुन्दर भवन थे। वही हूंबड वंश के शिरोमणी हीरा श्रावक थे। माणिकदे उनकी पत्नी का नाम था । बचपन से ही बालक व्युत्पत्रमति थे उनका विद्याध्ययन की ओर विशेष ध्यान था, इसलिए व्याकरण, तर्कशास्त्र, पुराण एवं छन्द शास्त्र का गहरा अध्ययन किया। अष्टसहस्त्री जैसे कठिन ग्रन्थों को पढ़ा। प्रारम्भ में उसका नाम नवलराम था लेकिन ब्रह्मचर्यव्रत धारण करने पर उनका नाम सहेजसागर रखा गया और भट्टारक बनने पर वे शुभचन्द्र नाम से प्रसिद्ध हुये।

सौजन्य : बाबूलाल हीरालाल शाह **सीताराम बील्डींग, ३सरी माला, १२ दूसरी फळलवाडी, मुम्बई-४००००२.**

हूबड वंश हिरणी हीरा सम सोहे मन गो धन्य
वस मन रंजक माणिकद शुभ जायो सुन्दर तत्र रे
बालपणे बुधिवंत विलक्षण विद्या चउद निधाना ।
जैनागम जिन भक्ति करें एह जिन सास्त्र बहुतान रे ॥५॥

शुभचन्द्र शरीर से अतीव सुन्दर थे। श्रीपाल कवि ने उनकी सुन्दरता का निम्न प्रकार वर्णन किया है.

नाशा शुक चंची सम सुन्दर, अधर प्रवाली वृन्द ।
रक्तवर्ण द्विज पंक्ति विराजित, निरखता आनन्द रे॥९॥

एक दिन भट्टारक अभयचन्द ने अपनी प्रवचन सभा में हर्षित होकर कहा कि सहेजसागर के समान कोई मुनि नहीं है। वहीं पट्टस्थ होने योग्य है। वह आगमों का सार भी जानता है।

इसके पश्चात संघपति प्रेमजी, हीरजी, मल्लूजी, नेमीदास हूबड वंश शिरोमणी बाधजी, संघजी, रामजीनन्दन,गामजी जीवधरं वर्धमान आदि सभी श्रीपुर से आये और चतुविध संघ के समक्ष यह महोतसव का आयोजन किया । सघ सहित श्री जगजीवन राणा भी फाट महोत्सव में आये तथा दक्षिण मे धर्मभूषण भी ससंघ सम्मिलित हुये। शुभ मुहूर्त देखकर जिन पूजा की गई। शान्ति होम विधान सम्पन्न हुआ। जलयात्रा एवं जीमणवार हुई और जेठ सुदी प्रतिपदा के दिन जय जयकार के बीच शुभचन्द्र को पट्टस्थ विराजमान कर दिया । सूरि मन्त्र धर्मभूषण ने दिया। पट्टस्थ होने के पश्चात इन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया और अपने आत्म उद्धार के साथ साथ समाज के अज्ञानान्धकार को दूर करने का बीडा उठाया और उन्हें अपने मिशन में पर्याप्त सफलता भी मिली। उन्होने अनेक स्थानों पर विहार किया और जन जन के श्रृद्धा एवं भक्ति के पात्र बने । वे तीर्थों की वन्दना को जाते तो आपने साथ पूरे संघ को ले चलते । एक बार वे संघ के साथ मांगी तुगीगिरि की यात्रा पर गए और वहां आनन्द के साथ पूजा विधान सम्पन्न किया ।

मांगीतुगी गई जिन भेरियाए, पूजा कीधा पवित्र निज गात्र ।
सांतिक त्रीस चोबिसि पूजा, सोभताए, जल यात्रा करी पोषे पात्र ॥८॥

जब वे नगर में विहार करते ही तो उनके भक्तगण उनका गुणानुवाद करते, प्रशसा करते और स्तवन में पेदो की रचना करते। इस प्रसंग पर निर्मित एक पद देखिये वादो श्री शुभचन्द्र सुखकारी

अभयचन्द्र सुरि पाटे पट्टोधर, अकलक समो अवतारी ।
साह मनजी कुल मंडल सुंदर, ज्ञानकला गुणधारि
माणकदे धन्य तात मनोहर, अव्यम तत्व विचारि ॥२॥
मूलसंघ सरहंस विचक्षण वादी विवुध मदहारी ।
पंच महाव्रत शीलशिरोमणि, सुद्धाचार अभरी ॥वादो॥
सोलकला शशि वदन विराजित, मनमथ मान उतारो
वाणी विनोद मिथ्यागत भागे अवनी गयो उदारि
मही मंडल महिमा छ मोयें, कीरति जल विस्तारि
अमल विमल वाणी सम बोले, गुण गाल नर नारि ॥वादी ॥५

सौजन्य : पुष्पा बाबूलाल शाह
सीताराम बील्डींग, ३सरी माला, १२ दूसरी
फळलवाडी, मुम्बई-४००००२.

शुभचन्द के शिष्यों में प. श्रीपाल, गणेश, विद्यासागर, जयसागर, आनन्दसागर आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। श्रीपाल ने तो शुभचन्द्र के कितने ही पदो में प्रशंसात्मक गीत लिखे है जो साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों प्रकार के है।

भ. शुभचन्द्र साहित्य निर्माण में अत्यधिक रूचि रखते थे। यद्यपि उनकी कोई बडी रचनो उपलब्ध नही हो सकी है, लेकिन जो पद साहित्य के रूप में इनकी कृतियां मिली है, वे इनकी साहित्य रसिकता की ओर प्रकाश डालनेवाली है। अब तक इनके निम्न पद प्राप्त हुए हैं.

१. पेखो सखी चन्द्रसम मुख चन्द्र
२. आदि पुरूष भजो आदि जिनेन्द
३. कौन सखी सुध ल्यावे श्याम की
४. जपो जिन पार्श्वनाथ भवतार
५. पावन मति मात पदमावती पेखता
६. प्रात समय शुभ ध्यान धरीजे
७. श्री सारदा स्वामिनी प्रणमि पाय, स्तबू वीर जिनेश्वर विबुधराया।
८. वासु पूज्य जिन विनती सुणो वासु पूज्य गौरी विनती
९. अज्झारा पार्श्वनाथनी विनती

क्रम ८ भट्टारक रत्नचन्द्र

ये भट्टारक शुभचन्द्र के शिष्य थे और उनके स्वर्गवास के पश्चात भट्टारक गादी पर बैठे थे। एक प्रशस्ति के अनुसार ये संवत् १७४८ कार्तिक शुक्ला पंचमी को भट्टारक पद पर आसीन थे। प. श्रीपाल ने एक प्रभाती गीत में भ. रत्नचन्द्र के सम्बन्ध में निम्नगीत लिखा है जिसके अनुसार रत्नचन्द्र अत्यधिक सुन्दर एवं अंग प्रत्यंगो से मनोहारी लगते थे। वे विद्वान थे। सिद्धान्त ग्रन्थों के पाठी थे तथा अष्टसहस्त्री जैस कष्ट साध्य ग्रन्थों के पारगामी अध्येता थे। भट्टारक रत्नचन्द्र की साहित्य रचना में विशेष रूचि थी। लेकिन अपने पूर्व गुरूओं के समान वे भी छोटी छोटी रचनाओ के निर्माण रुचि रखते थे। उनकी निम्न रचनाएं मिल चुकी है.

१. वृषभ गीत अपर नाम आदिनाथ गीत   २. प्रभाति   ३. गीत आदिनाथ   ४. बलिंभद्रनुं गीत
५. चिन्तामणि गीत   ६. बावनगज गीत   ७. गीत

१. आदिनाथ के स्तवन में लिखा हुआ यह छोटा सा पद है। किन्तु भाव भाषा एवं शैली की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। पूरा पद निम्न प्रकार है.

वृषभ जिन सेवो सुखकार
परम निरंजन भवभय भंजन संसारार्णवतार ॥वृषभा॥ टेक
नाभिराय कुलमंडन जिनवर जनम्या जगदाधार।
मन मोहन मरूदेवी नन्दन, सकल कला गुणधार ॥ वृषभ ॥
कनक कांतिसम देह मनोहर, पाँचसे धनुष उदार।
उज्वल रत्नचन्द्र समं मनोहर, विस्तरी भुवन मझार ॥ वृषभ ॥

सौजन्य : सूर्यकान्तभाई बायचंदभाई दोशी   दोशी पेलेस, २४ वालकेश्वर रोड, मुम्बई (महा.)

२. चिन्तामणी पारसनाथनुं गीत भी ऐतिहासिक बन गया है। क्लेश्वर नगर में चिन्तामणी पार्श्वनाथ का मन्दिर था। भट्टारक रत्नचन्द्र उस मन्दिर के बड़े प्रशंसक थे। वहां बडे ठाट से अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा होती थी। पूरा गीत निम्न प्रकार है.

श्री चिन्तामणी पूजो रे पास, वांछित पोहोचरो मूनणी आस ।
आवो रे भवियण सहु गली संगे, वसुविध पूज्य रे करो मन रंगे ।
देस मनोहर कासी रे, सोहे नगर बनारसी जय मन मोहे ॥ आवो रे॥
विश्वसेन राजा रे राज करंत, ब्रह्मादेवी राणी सु प्रेम धरेत ।
तस कुल अंबर चन्द, उदयो अनोपम पास जिनेंदा।
नीलवरण नव हस्त उत्तंग, निरूपम काम कलाधर चंग ।
सुरनर खग फणी सेवित पाय, सत सवच्छर पूरण आय ।
एकदां अस्थीर संसार जांणि चारित्र लीधुंरे संवेग आणी ।
तप बले उपनु केवल ज्ञान, लोकालोक प्रकासी रे भान ।
सेव करम सहु दूर करी ने, मुगति बधुवरी प्रेम धारी ने।
दर्शन ज्ञान रे वीर्य अनंत, पाम्या सोख्य अनंतारेनंत ।
वांछित पूरे रे पंचम काले, संकट को विधन सहु टाले ।
श्री अंकलेश्वर नगर निवास, संघ सकल तणी पूरे रे आस ।
मुनी शुभचन्द चरण ची आणी, सूरि रतनचन्द्र वंदे अमु वाणी ।
आवो रे भवियण सहु मली संघे, वसुविध पूजा रे करो मन संगे ।

इस तरह इनकी सभी रचनाएं भाषा, शैली की दृष्टी से समुन्नत है ।

जेरहत शाखा काल- पट

१. देवेन्द्रकीर्ति सूरत
२. त्रिभुवनकीर्ति १५५२.५३
३. श्रुतकिर्ति
४. पद्दनन्दि
५. यशकीर्ति
६. ललितकीर्ति
७. धर्मकीर्ति १६५५.१६८३ — रत्नकीर्ति
   - चन्द्रकीर्ति (सं. १६७५-८१)
८. पद्दमकीर्ति रत्नकीर्ति
९. सकलकीर्ति (१७११-२०)
१०. सुरेन्द्रकीर्ति १७५६

बलात्कार गण जेरहत शाखा - इस शाखा का आरंभ भ. त्रिभुवनकीर्ति से हुआ। आप भ. देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे जिन का वृत्तान्त सूरत शाखा में आ चुका है। आपके शिष्य श्रुतकीर्ति ने संवत् १५५२ में ग्यासुद्दीन के राज्यकाल में जेरहट में हरिवंशपुराण लिखा (ले.५२३)। श्रुतकीर्ति दिल्ली जयपुर शाखा के भ. जिनचन्द्र और उन के शिष्य विद्यानन्दि का भी उल्लेख किया है। इन ने संवत् १५५३ मे जेरहट में ही परमेष्टि प्रकाशसार की रचना की। भ. त्रिभुवनकीर्ति के बाद क्रमशः श्रुताकीर्ति पद्मनन्दी यशकीर्ति ललितकीर्ति और धर्मकीर्ति भट्टारक हुए। धर्मकीर्ति ने संवत् १६४५ की माध शु. ४ को एक मूर्ति, संवत् १६६० की चैत्र पौर्णिमा को एक चन्द्रप्रभमूर्ति तथा एक पार्श्वनाथ मूर्ति और संवत १६७१ वैशाख शु. ५ को एक नन्दीश्वर मूर्ति स्थापति की है।

भट्टारक संप्रदाय - धर्मकीर्ति के बाद पद्मकीर्ति और उन के बाद सकलकीर्ति भट्टारक हुए। इन के उपदेश से संवत् १७११ में एक पार्श्वनाथ मूर्ति, संवत् १७१२ में एक पार्श्वनाथ मूर्ति, संवत् १७१८ में एक अन्य मूर्ति तथा संवत् १७२० में एक षोडशकारण यन्त्र स्थापित किया गया (ले.५३३ .५३७) सकलकीर्ति के पट्ट पर सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक हुए। इन के शिष्य बिहारीदास ने संवत् १७५६ में आदिनाथ स्तोत्र लिखा (ले. ५३८) ललितकीर्ति के एक और शिष्य रत्नकीर्ति थे। इन के शिष्य चन्द्रकीर्ति ने संवत् १६७५ में एक षोडशकारण यन्त्र तथा संवत् १६८१ में एक सम्यकचारित्र यन्त्र स्थापित किया (ले. ५३९.४०) संवत १६७१ की आशिवन कृ ५ को हरिवंशपुराण लिखा (ले. ५२९) संवत १६८१ में एक पार्श्वनाथ मूर्ति, संवत १६८२ में एक षोडशकारण यंत्र तथा संवत १६८३ में एक और यन्त्र आप ने स्थापित किया (ले. ५३०.३२)। धर्मकीर्ति के बाद पद्मकीर्ति और उन के बाद सकलकीर्ति भट्टारक हुए। इन के उपदेश से संवत १७११ में एक पार्श्वनाथ मूर्ति,संवत् १७१२ में एक पार्श्वनाथ मूर्ति संवत १७१८ में एक अन्य मूर्ति तथा संवत १७२० में एक षोडशकारण यन्त्र स्थापित किया गया (ले.५३८) ललितकीर्ति के एक और शिष्य रत्नकीर्ति थे। इन के शिष्य चन्द्रकीर्ति ने संवत् १६७४ में एक षोडशकारण यन्त्र तथा संवत १६८१ में एक सम्यकचारित्र यन्त्र स्थापित किया (ले. ५३९.४०)।

सौजन्य : विनोदकुमार वालचन्दजी दोशी ए-६०३, रत्नपुरी गोशाला लेन, मलाड पूर्व मुम्बई (महा.)

कवि परिचय - भट्टारक श्रुतकीर्ति नन्दीसंघ बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ के विद्वान थे। यह भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य और त्रिभुवनकीर्ति के शिष्य थे। ग्रंथकर्ता ने भ. देवेन्द्रकीर्ति को मुदुभाषी और अपने गुरु त्रिभुवनकीर्ति को अमृतवाणी रूप सद्गुणों के धारक बतलाया है। श्रुतकीर्ति ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए अपने को अल्प बुद्धि बतलाया है। कवि की उक्त सभी रचनाएँ वि.सं.१५२२ और १५५३ में रची हुई। और वे सब रचनाएँ मांडवगढ (वर्तमान मांडू) के सुलतान ग्यासुद्दीन के राज्य में दमोवा देश के जेरहट नगर के नेमिनाथ मंदिर मे रची गई है। इतिहास से प्रकट है कि सन् १४०६ मे मालवा के सूबेदार दिलावखाँ को उसके पुत्र अलफखाँ ने विष देकर मार डाला था, और मालवा को स्वतन्त्र उदघोषित कर स्वयं राजा बन बैठा था। उसकी उपाधि हुशंगसाह थी।इसने मांडवगढ को खूब मजबूत बनाकर उसे ही अपनी राजधानी बनाई थी। उसी के वंश में ग्यासुद्दीन हुआ, जिसने मांडवगढ से मालवा का राज्य सं. १५२३ से १५५७ अर्थात् सन् १४६९ से १५०० ईस्वी तक किया है। इसके पुत्र का नाम नसीरशाह था, और उसके मंत्री का नाम पुंजराज था, जो जैनधर्म का प्रति पालक था। ८५वीं ८६वीं और १०७वीं प्रशस्तियाँ क्रमशः हरिवंशपुराण, परमेष्ठी प्रकाशसार और योगसार की हैं, जिनके कर्ता कवि श्रुतकीर्ति है।

पहली कृति हरिवंशपुराण है जिसमें ४७ सन्धियों द्वारा जैनियों के २२वे तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के जीवन परिचय की अंकित किया गया है। प्रसंगवश उसमें श्रीकृष्ण आदि यदुवंशियो का संक्षिप्त जीवन चरित्र भी दिया हुआ है।इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ अब तक उपलब्ध हुई है। एक प्रति जैन सिद्धान्त भवन आरा मैं है, और दूसरी आमेर के भट्टारक महेन्द्रकीर्ति के शास्त्र भंडार में उपलब्ध है, जो संवत् १६०७ की लिखी हुई है। और जिसका रचनकाल संवत १५५२ है। इसकी लिपि प्रशस्ति भी परिशिष्ट में दे दी गई है। आरा की वह प्रति सं. १५५३ की लिखी हुई और जिसमें ग्रन्थ के पूरा होने का निर्देश है जो मंडपाचल (मांडू) दुर्ग के सुलतान ग्यासुद्दीन के राज्य काल में दमोवादेश के जेरहट नगर के महाखान और भोजखान के समय लिखी गई है । ये महाखान, भोजखान जेरहट नगरके सूबेदार जान पड़ते है। वर्तमान में जेरहट नाम काएक नगर दमोह के अन्तर्गत है यह दमोह पहले जिला रह चुका है। बहुत सम्भव है कि यह दमोह उस समय मालवराज्य में शामिल हो। और यह भी हो सकता है कि मांडवगढ के समीप ही कोई जेरहट नाम का नगर रहा हो, उसकी संभावना कम ही जान पडती है।क्योंकि प्रशस्ति में दगोवा देश का उल्लेख स्पष्ट है।

प्रशस्ति परमेष्ठीप्रकाश साक की है। इसकी एकमात्र प्रति आमेर ज्ञान भंडार में ही उपलब्ध हुई है। जिसमें आदि के दो पत्र और अन्तिम पत्र नही है। पत्र संख्या २८८ हैं, ग्रंथ में ७ परिच्छेद या अध्याय है, जो तीन हजार श्लोक प्रमाण को लिये हुए है। ग्रंथ का प्रमुख विषय धर्मोपदेश है। इसमें सृष्टि और जीवादि तत्त्वों का सुन्दर विवेचन, कड़वक और घत्ताशैली में किया गया है। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना भी उक्त मांडवगढ के जेरहट नगर के प्रसिद्ध नेमीश्वर जिनालय मे की है। उस समय वहाँ ग्यासुद्दीन का राज्य था और उसका पुत्र नसीरशाह राज्य कार्य में अनुराग रखाताथा। पुंजराज नाम के एक वणिक उसके मंत्री थे। ईश्वरदास नाम के सज्जन उस समय प्रसिद्ध थे। जिनके साधर्मी भाईयों ने भी इसकी अनुमोदन की थी और हरिवंशपुराणादि ग्रन्थों की प्रतिलिपियां कराई थी। प्रस्तुत ग्रन्थ विक्रम सं. १५५३ की श्रावण महीने की पंचमी गुरूवार के दिन समाप्त हुआ था। एकसौ सात (१०७)वीं प्रशस्ति जोगसार की है। प्रस्तुत ग्रन्थ दो परिच्छेदों या संधियों में विभक्त है, जिनमें गृहस्थोपयोगी आचार सम्बन्धी सैद्धान्तिक बातों पर प्रकाश डाला गया है। साथ में कुछ मुनिचर्या आदि के विषय मे भी लिखा गया है।

सौजन्य : महेन्द्रकुमार मन्नालालजी महेता **१००२, अवरेस्ट चेम्बर माउन्ट प्लेजमेन्ट रोड, बावकेश्वर मुम्बई . (महा.)**

१. संवत १५५३ वर्षे क्वारवादि द्वज सुदि (द्वितीया) गुरौ दिने अद्येह श्री मण्डपाचल गढग्दुर्गे सुलतान गयासुद्दीन राज्ये प्रवर्तमाने श्री दमोवादेशे महाखान भोजखान वर्तमाने जेरहट स्थाने सोनी श्री ईसुर प्रवर्तमाने श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेव तस्य शिष्य मंडलाचार्य देविन्दकीर्तिदेव तच्छिष्य सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेव तस्य शिष्य मंडलाचार्य देर्तिन्दकीर्तिदेव तच्छिष्य मंडलाचार्य श्रीत्रिभुवनकीर्ति देवान् तस्य शिष्य श्रुतकीर्ति हरिवंश पुराणे परिपूर्ण कुतम् आराप्रति

१२. बलात्कारगण जेरहट शाखा

१३. बलात्कारगण जेरहट शाखा

लेखांक ५२३ हरिवंशपुराण श्रुतकीर्ति

कुंदकुंदगणिणा अणुकम्मइ जायई मुणिगण विविह सहम्मइ ।
गण बलत्त वागेसरि गच्छइ णंदिसंघ मणहर मइसत्छइ ।
पहाचंदगणिणा सुदपुण्णइ पोमणंदि तह पट्ट उवण्णइ।
पुणु सुभचंददेव कम जायइ गणि जिणचंद तह य विक्खायइ।
विज्जाणंदि कमेण उवण्णइ सीलवंत बहुगुण सुदपुण्णइ ।
पोमणंदि सिस कमिण ति जायइ जे मंडलायरिय विक्खायइ ।
मालवदेसे धम्मसुपयासणु मुणि देवेंदकित्ति पिउभासणु ।
तह सिसु अमियवाणि गुणधारउ तिहुवणकित्ति पबोहणसारउ।
तह सिसु सुदकित्ति गुरूभत्तउ जेहि हरिवंसपुराणु पउत्तउ ।
संवतु विक्कमसेण णरेसह सहसु पंचसय बाबण सेसहा।
मंडयगडु वर मालवदेसइ साहि गयासु पयाव असेसइ।
गंथु सउण्णु तत्थ इहु जायउ चउविह संसुणि सुणि अणुरायउ
णयर जेरहद जिणहरुं चंगउ चउविह संसुणि सुणि अणुरायउ
माघ किण्ह पंचमि ससिवारइ हत्थणखत्त समत्तु गुणालह । (अ. ११ पृ. १०६)

लेखांक ५२४ परमेष्ठिप्रकाशसार

दह पण सय तेवण गय वासइ पुणु विक्कमणिसंवच्छरहे।
तह सावणमासहु गुरूपंचमि सहु गंथु पुण्णु तय सहस तहे।।
मालव देस दुग्ग मंडवचलु वट्टइ साहि गयासु महाबलु ।
साहि णसीरु णाम तह णंदणु रायधम्म अणुरायउ बहुगुणु ।
तह जेरहट णयर सुपसिद्धउ जिण चेइहर मुणिसुपबुद्धइ ।
णेमीसर जिणहर णिवसंतइ विरयउ एहु गंथु हरिसंतइ ।
तेहि लिहाइहि णाणागंथइ इय हरिवंसपमुह सुपसत्थइ ।
विरइय पढम नमहि वित्थारिय धम्मपरिक्ख पमुह मणहारिय।
इय परमिट्ठिपयाससारे अरुहादिगुणेहि वण्णणालंकारे अप्पसुदसुद
किंति जहासत्ति महाकव्वु विरयंतो णाम सत्तमो परिच्छेउ समत्तो
(अं. ११ पृ. १०७)

सौजन्य : धनपाल सालगिया १० कपिल पोली क्लिनिक्स ७५, जयन्त ऐपार्टमेन्ट, वरली. मुम्बई (महा.)

धर्मकीर्ति १६४५ - १६८३

सं. (१६) ४५ माघ सुदि ५ श्रीमूलसंघे कुंदकुंदाचार्यन्वये भ. यशकीर्तिपट्टे भ. श्रीललितकीर्ति पट्टे भ. श्रीधर्मकीर्ति उपदेशात् पौरपट्टे छितिरा मूर गोहिलगोत्र साधु दीन् मार्या ....

(थूबौन, अ. ३ पृ. ४४५)

लेखांक ५२६ चंद्रप्रभ मूर्ति

संमत १६६९ चैत्र सुद रवौ मूलसंघे कुंदकुंदाचार्यान्वये भ. यशोकीर्ति तत्पट्टे भ. ललितकीर्ति तत्पट्टे भ. धर्मकीर्ति उपदेशात्....... (पा. ५१)

लेखांक ५२८ नंदीश्वरमूर्ति

संमत १६७१ वर्षे वैशाख सुद ५ मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुंदकुंदाचार्यान्वये भ. यशकीर्ति तत्पट्टे भ. ललितकीर्ति तत्पट्टे भ. धर्मकीर्तिउपदेशात् पौरपट्टे सा. उदयचंदे भार्या उदयगिरदें प्रतिष्ठा प्रसिद्धं ॥

लेखांक ५२९ हरिवंशपुराण

श्रीमूलसंधेजनि कुंदकुंद : सूरिर्महात्माखिलतत्त्ववेदी ।
सीमन्धरस्वामिपदप्रवन्दी पंचाह्वयो जैनमतप्रदीपः ॥
तदन्वयेभूद् यशकीर्तिनामा भट्टारको भाषितजैनमार्ग : ।
तत्पट्टवान् श्रीललितादिकीर्तिभट्टारकोजायत सत्क्रियावान् ॥
जयति ललितकीर्तिज्ञातत्वार्थसार्थो
नयविनयविवेकप्रोज्जवलो भव्यबन्धु :।
जनपदशतमुख्ये मालवेलं यदाज्ञा
सभभवदि जैनद्योतिका दीपिकेव ॥
तत्पट्टांबुजहर्षतरणिर्भट्टारको भासुरो
जैनग्रंथविचारकेलिनिपुणः श्रीधर्मकीर्त्याह्वय :।
तेनेदं रचितं पुराणममलं गुर्वाज्ञया किंचन
संक्षेपेण विबुद्धिनापि सुहृदा तत् शोध्यमेतद्धुवम् ॥
वर्षे व्यष्टशते चैकाग्रसप्तत्यधिके रवौ॥
आश्विने कृष्णपंचम्यां ग्रंथोय रचितो मया ॥ (म. प्रा. पृ. ७६१)

सौजन्य : महेन्द्रकुमार मन्नालालजी महेता १००२, अेवरेस्ट चेम्बर माउन्ट प्लेजमेन्ट रोड, बावकेश्वर मुम्बई . (महा.)

हूमड़ संस्कार

हूमंड़ो के जन्म से मरण तक के संस्कार

<u>प्रस्तावना :-</u>

लेख संग्रहकर्ता :- *कौशल्या पंतग्या*

प्राचीन एंव वर्तमान जन्म से मरण तक के संस्कार (रिति रिवाज) :-विश्व की चार संस्कृतियाँ प्राचीनतम् मानी जाती है। ये है: भारत, मिस्त्र,चीन और यूनान । इन चारों प्राचीनतम् संस्कृत्तियों मे तीन शेष मर चुकी है और भारत की संस्कृति आज भी जीवित है और जीवित रहेगी, क्योकि इसने अपने विशिष्ट गुणों के कारण अपनत्व प्राप्त कर लिया है। भारतीय संस्कृति सुरसरिता गंगा के समान है, जिसमें छोटी छोटी नदियाँ, नाले सभी मिल जाते हैं पर गंगा सदैव गंगा ही रहती है। उसी तरह भारतीय संस्कृति में विदेशी संस्कृतियों भी मिली, पर वे उसीमें समाकर गंगाजल बन गई । भारतीय संस्कृति उस विशाल वटवृक्ष के समान है, जिसकी शाखा प्रशाखाओं के रूप में वैदिक, संरकृति, जैन संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, फली फुली । जैसे एक शरीर के विभिन्न अंग होते हैं उसी तरह यह विभिन्न संस्कृतियाँ भारत के विभिन्न अंग प्रत्यंग है।

जैन संस्कृति और भारतीय संस्कृति एक दूसरे के पर्याय है जैन दर्शन और जैन संस्कृति की अपनी कुछ मौलिक विशेषताएँ भी हैं, जैसे अंहिसा जैन धर्म का मूल मंत्र है, जितना सूक्ष्म विवेचन जैन दर्शन में है उतना कदाचित अन्यत्र नहीं । इसी तरह सभी संस्कारों का वर्णन जैन ग्रन्थोंमें है, अन्यत्र नही। इन संस्कारों से संस्कारित मानव उत्तमोत्तम पद प्राप्त कर सकता है। यदि धार्मिक दृष्टि से इसकी व्याख्या करें तो इस प्रकार कह सकते हैं कि द्रव्य कर्म और भाव कर्म, दोनों के मध्य एक ऐसा तत्व स्थित है जो कि व्यवहार भूमि पर जड को चिदभासी और चेतन को जड़भासी बना देता है, वही तत्व संस्कार है।

बाह्य जगतमें अथवा अभ्यन्तर जगत में हम जो कुछ भी काम या कर्म करते हैं वह काम या कर्म यद्यपि उसी क्षण समाप्त हो जाता है, तदापि जाते जाते हमारी चित्तभूमि पर अपना पद चिह्न अंकित कर जाता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार की माताऐं घर के द्वारो पर हाथ के थापे करती हैं । यह अंकन कार्य के समाप्त होने के पश्चात् भी वहाँ स्थित रहता है। मन भूमि पर अंकित यह प्रभाव साधारण भाषा में आदत या टेव कहलाती है जबकि शास्त्रीय भाषा में हम इसे संस्कार कहते हैं। सत्संगति और सद प्रयासों से अच्छे संस्कारों का निर्माण होता है जबकि कुसंगति या बुरे कार्यों से असत् संस्कारों का निर्माण होता है । अतः मानव जीवन को कंचन सा पवित्र संस्कारित करने हेतु संस्कार निर्माण का सिद्धान्त, निर्धारित कर लेना चाहिये ।

संस्कार शब्द क्रिया शब्द का पर्यायवाची भी है। संस्कार शब्द की व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है, एक व्युत्पत्ति मूलक दूसरा व्यवहार मूलक । जहाँ तक प्रथम व्याख्या का सम्बन्ध है, इस शब्द की उत्पत्ति "सम्" पूर्वक "कृ" धातु से "धत्र" प्रत्यय से मानी गई है। "संस्कृयते अनेन इति संस्कार" । इसका अर्थ है संस्करण या परिमार्जन अथवा शुद्धिकरण। मूलतः इसका तात्पर्य शुद्धीकरण से है, जिसका प्रयोग संस्कृत, साहित्य में अनेक अर्थो में हुआ है, जैसे शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण, सौजन्य पूर्णता, व्याकरण सम्बन्धी शुद्धि, संस्करण, परिष्करण, शोभा , आभूषण, प्रभाव स्वरूप, स्वभाव,क्रिया, स्मरणशील, स्मरणशक्ति पर पडनेवाला प्रभाव , शुद्धि क्रिया धार्मिक विधि विधान अभिषेक विचार,भावना धारणा कार्य का परिणाम क्रिया की विशेषता आदि ग्रंथो में हुआ है। कतिपय विद्वानों ने संस्कार शब्द को लेटिन के "सीरिमोनिया " और अंग्रेजी के "सेरीमनी" शब्दो का समस्तरीय माना है। संस्कार शब्द की इन दोनों शब्दो में मौलिक समानता भले ही हो, किन्तु व्यापक अभिप्राय में इनमें पर्याप्त भिन्नता है। सीरीमोनिया और सेरेमनी शब्द सामान्यतः धार्मिक कृत्यों के द्योतक है।

द्वितीय व्यवहारमूलक व्याख्या की दृष्टि से संस्कार शब्द इनसे पर्याप्त भिन्न है। इसका अभिप्राय नितान्त बाह्य धार्मिक क्रियाओं, अनुशासन परक अनुष्ठान, आडम्बर निसत्त्व, कर्मकाण्ड, राज्य के द्वारा निर्दिष्ट प्रचलनों औपचारिकताओं तथा अनुशासन परक व्यवहार से नहीं है। ऐसी स्थिति में संस्कार को उक्त दोनों शब्दों का समानार्थक नहीं माना जा सकता। इसके विपरीत संस्कार शब्द के तात्पर्य से न्यूनाधिक सीमा तक समता

रखेनवाला अँग्रेजी का "सेक्रामेन्ट" शब्द है, जिसका उद्देश्य है आन्तरिक शुचिता और जिसके विधि विधान आन्तिरक शुचिता के दृश्यमान् बाह्य प्रतीक माने जा सकते हैं।

सामान्यतया प्राचीन भारतीय आदर्श के व्यवस्थापकों ने संस्कार का तात्पर्य ऐसी क्रिया से माना है, जिसके द्वारा व्यक्ति विशेष की पात्रता सामाजिक, गतिविधि के अनुकूल बनाई जाती थी, उदाहरणार्थ, जैमिनी सूत्र ३.१.३ की व्याख्या में **शबर** ने संस्कार शब्द की व्याख्या करते हुये वर्णन किया है कि "संस्कारो नाम स भवति यस्मिञजाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य" संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिये योग्य हो जाता है। इसी प्रकार **कुमारिल भट्ट ने** तन्त्रवातिर्क में कहा है कि "योग्यता चादधानाः क्रियाः संस्कार इत्युच्यन्ते "। संस्कार वे क्रियायें तथारीतिया है, जो योग्यता प्रदान करती है।

संस्कार के प्रति जैन पुराणों का द्रष्टिकोण :-

श्रोत स्मार्त ब्राह्मण धर्म के प्रभाव के कारण महापुराण में गर्भ से लेकर मृत्युपर्यन्त सभी क्रियाओं (संस्कार) के विषय में विशद वर्णन उपलब्ध है। इसके पूर्व अन्य किसी भी जैन ग्रन्थ में इस प्रकारका विस्तृत वर्णन प्राप्य नहीं होता है। जैन पुराणकार संस्कारों के विषय में भारतीय व्यवस्थापकों के सामान्य प्रवृति के अनुकूल है, किन्तु युग विशेष की परिवर्धित परिस्थितियों के कारण और विशेषतया साम्प्रदायिक आग्रह के फलस्वरूप इनके वर्णन अधिकांशतः भिन्न अवश्य पाये जाते हैं। संस्कार के लिये जैन पुराणों में "क्रिया" शब्द व्यवहृत हुआ है। ये क्रियायें या "संस्कार" व्यक्ति के निजी जीवन से सम्बन्द्ध रहती है। गर्भाधान से निर्वाण पर्यन्त जो क्रियाएँ सम्पन्न की जाती है। उन्हें ही संस्कार माना जाता है।

संस्कार की महत्ता प्रदर्शित करते हुये वर्णित है कि जो व्यक्ति आलस्य रहित यथाविधि संस्कारो (क्रियाओं) का सम्पादन करते हैं, उन्हें परमधाम एवं उत्कृष्ट सुख की प्राप्ति होती है। संसार के भवबन्धन, जन्म, वृद्धावस्था एवं मृत्यु से उन्हें मुक्ति मिलती है। ऐसे पुरूष, श्रेष्ठ जाति में जन्म ग्रहण कर सदगृहस्थ बन एवं परिव्रज्या को धारण कर स्वर्ग में इन्द्र की लक्ष्मी प्राप्त करते हैं। स्वर्ग से आयुपूर्ण मनुष्य होकर ; चक्रवर्ती होकर दिक्षालेकर अर्हन्त बनकर निर्वाण को प्राप्त करतें हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कार को सम्पन्न करने पर क्रमशः अभ्युदय की उपलब्धि होती है।

(१.) जैन श्रावकों की त्रेपन क्रिया :-

जैनाचार्यो ने संस्कारों को प्रधानतया तीन वर्गो में विभक्त किया है (१) गर्भान्वय क्रिया (२) दिक्षान्वय क्रिया (३) कर्त्रन्वय क्रिया। जिनसेन आचार्य ने महापुराण नामक महान ग्रन्थ में श्रावक की त्रेपन (५३) क्रियाओं का बहुत ही सुस्पष्ट विवेचन किया है वे इस प्रकार है :-

कर्त्रन्वयक्रियाश्चेति तास्त्रिधैवं बुधैर्मताः ॥५१॥ आदिपुराण पृ. ३८ पर्व (१) गर्भान्वय क्रिया (२) दीक्षान्वय क्रिया (३) कर्त्रन्वय क्रिया। संस्कार में गर्भाधान आदि से लेकर त्रेपन प्रकार की क्रियायें है।

(१) गर्भाधान संस्कार :-

आधानं नाम गर्भादौ संस्कारो मन्त्रपूर्वकः ।
पत्नीमृतुमतीं स्नातां पुरस्कृत्यार्हदिज्यया ॥७०॥ आदिपुराण पृ. प. ३८

स्नान की हुई स्त्री को मुख्य कर गर्भाधान के पूर्व अरहन्तदेव की पूजा और मन्त्रपूर्वक जो पूजा संस्कार किया जाता है उसे "आधान" क्रिया कहते हैं। विवाह केवल विषयाभिलाषा की पूर्ति हेतु नहीं अपितु पुत्रोत्पत्ति एवं गृहस्थ जीवन द्वारा सदाचरण,लोक सेवा तथा आत्मोन्नति के उद्देश्य से किया जाता है। गर्भ में आनेवाले बालकको मानसिक और शारीरिक शक्तियों की दृढ़ता और कमजोरी माता द्वारा प्राप्त होती है। माता के मन, वचन और काय की क्रिया का असर बालक पर पड़ता है अतः माता को विवेकशील और धर्मात्मा होना चाहिये। स्त्री को मासिक धर्म के ४ दिन बाद पांचवे दिन स्नानादि से शुद्ध होकर मन्दिर जाकर जिनेन्द्र देव की

पूजा स्वाध्याय आदि करना चाहिये। जिन प्रतिमा के दायें तरफ तीन छत्र, बायें तरफ तीन छत्र और तीन प्रकार की पुण्याग्नि स्थापन कर दोनों पति पत्नी अरहन्त भगवान की पूजा कर अग्निकूंडो मे होम विधि करके पूजन विधि पूर्ण करें। आयुर्वेद और ज्योतिष के अनुसार मासिक धर्म के पांचवें दिन से समरात्रि ६,८,१० जैसी रात्रि में पति पत्नी सहवास करे तो पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है और विषम रात्रि मे सहवास से कन्या प्राप्ति होती है। इस प्रकार के संस्कार विधि से गर्भ में आनेवाली आत्मा पर अच्छा प्रभाव डालना गर्भाधान क्रिया है।

(२) प्रीति क्रिया – गर्भाधान के पश्चात् तीसरे महिने में यह संस्कार क्रिया की जाती है। इस क्रिया मे भी पूर्वोक्त विधि से अरहंत पूजन करना चाहिये। दरवाजे पर तोरण बांधना चाहिये। पूजन के साथ ही ११२ आहुतियों से हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ, समाधिपाठ, विसर्जन करावें। पति पत्नी पर पुष्पक्षेपण करते हुए नीचे लिखा मन्त्र कहे-

"त्रैलोक्यनाथो भव, त्रैकाल्यज्ञाती भव, त्रिरत्नस्वामी भव,"

तदन्तर ॐ कं ठ व्हः पः अ सि आ ऊ सा गर्भोमेकं प्रमोदेन परिरक्षत स्वाहा, यह मन्त्र तीन बार पढ़कर गर्भवती के उदर पर पति द्वारा जलसिंचन करावें। प्रथम गर्भाधान क्रिया में भी पूजन हवनोपरान्त नीचे लिखा मन्त्र पढकर पति पत्नी पर पुष्पक्षेपण करना चाहिये।

सज्जातिभागी भव, सद्गृहीभागी भव, मुनिन्द्रभागी भव, सुरेन्द्रभागी भव, परमराज्यभागी भव, अरहन्तभागी भव, परमनिर्वाणभागी भव।

(३) सुप्रीती क्रिया- गर्भाधान से पांचवे महिने में यह संस्कार किया जाता है। इसमें पूर्ववत् पूजा, हवन, पुण्याहवाचन आदि करके निम्न प्रकार खास मन्त्रों से आहुति व पुष्पों से आशीर्वाद देवे.। अवतार कल्याणभागी भव, मन्दरेन्द्राभिषेक कल्याणभावि भव, निष्कांति कल्याणभागी भव, अर्हन्त कल्याणभागी भव, परम निर्वाण कल्याण भागी भव। इसी समय पति पत्नी के सिर की मांग में सिंदूर और १०८ जौ के दानों की पहिले से तैयार कराई गई माला ॐ झ, वं, क्ष्वीं, हं, सः कान्तागले यवमाला क्षिपामी झौं स्वाहा मन्त्र पढ़कर पत्नी के गले में पहनावें। पत्नी अपने आंखो में अंजन लगावे।

(४) धृति या सीमंतान्यन संस्कार- यह क्रिया सातवें माह में करें। इसका दूसरा नाम है खोल भरना। इसमें भी पूर्ववत् अरहन्त पूजा, हवन, पुण्याहवाचन आदि करें। नीचे लिखे मन्त्रों से आहुती व आशीर्वाद देवें। सज्जातिदातृभागी भव, सदगृहस्थदातृभागी भव,मुनीन्द्रदातृभागी भव, सुरेन्द्रदातृभागी भव, परमराज्यदातृभागी भव, आर्हन्त्यदातृभागी भव, परमनिर्वाणदातृभागी भव।

अनन्तर पुत्रवाली सौभाग्यवती स्त्री द्वारा तेल व सिंदूर मे डूबोकर शमी सोना वृक्ष की समिधा (सीक) से गर्भीणी पत्नी के केशों की मांग भरी जावें। इसी दिन खोल में श्रीफल, मेवा, फल आदि भराकर पति पत्नी जिन मन्दिर जावे, साथ में महिलाएँ भी गीत गाती जावें।

(५) मोद संस्कार - गर्भ से नौवें महिने में यह संस्कार किया जाता है। इसमें पूर्ववत् अर्हन्त पूजा, यंत्रपूजा, हवन करें। साथ ही नीचे लिखे खास मन्त्रों से आहुती व दम्पति को आशीर्वाद देवें।

सज्जातिकल्याणभागी भव,सदगृहस्थकल्याणभागी भव,वैवाहकल्याणभागी भव, मुनीन्द्रकल्याणभागी भव,सुरेन्द्रकल्याणभागी भव, मन्दराभिषेकल्याणभागी भव, यौवराज्यकल्याणभागी भव

पुण्यहवाचन शान्ति पाठ के बाद द्विज विद्वान या स्वयं पति गर्भिणी के शरीर पर गात्रिका बांध मन्त्रपूर्वक बीजाक्षर लिखते हैं और मंगलाचार करके आभूषण पहनाकर उसकी रक्षा के लिय कंकण सूत्र बाँधते है। गर्भिणीमहिला को प्रतिदिन "ॐ ह्री अर्हं असिआउसा नमः" इस मन्त्र का जाप (एक माला १०८) करनी चाहिये। ब्रह्मचर्यपूर्वक रहें, सादा भोजन करें। जिनवाणी के स्वाध्याय में अधिक समय लगावें। हाथ चक्की में आटा पीसने

का अभ्यास रखें।

(६) प्रियोद्भव क्रिया - बालक के जन्म के बाद यह क्रिया की जाती है। जन्म का १० दिन का सूतक होने से गृहस्थाचार्य या जिनको सूतक न लगे, वे जिन मन्दिर में पूजा विधान करें। हवन में "दिव्य नेमिविजयाय स्वाहा, परम नेमिविजयाय स्वाहा, अर्हन्त नेमिविजयाय स्वाहा, घातिजयो भव, श्री आदि देव्यः जाता क्रिया कुर्वन्तु, मन्दराभिषेकार्ही भवतु, इन मन्त्रो से आहुति देवें। पिता आदि भी पुत्र को देखकर यह आशीर्वाद देवें। बाजे आदि बजवावें।

(७) नाम कर्म संस्कार - जन्म से १२, १६ या ३२ वें दिन शुभ नक्षत्र में यह संस्कार करें। इसमें भी अर्हन्त देव की पूजन आदि पूर्ववत् किया जाता है। १० दिन का सूतक होने से जिनाभिषेक, पूजा, शास्त्र का स्पर्श नहीं है। मुनिराज भी यहाँ आहार नहीं लेते। अतः उपर्युक्त पूजन किया जाता है। घर का प्रसुति स्थान ४५ दिन तक अशुद्ध रहता हैं। ४५वें दिन नवजात शिशु को जिन मंदिर लेजावे। वहाँ जिनेन्द्र प्रतिमा के समाने शिशु को माता नीचे सुला देवें और गृहस्थाचार्य या अन्य कोई व्यक्ति नव बार णमोकारमन्त्र उसके कानों में सुनावें। बालक को उसी समय अष्ट मूलगुण (पांच उदम्बर और तीन मकार का स्थूल रूप से त्याग) धारण करा देवे और जैन बनावें। इस त्याग की जिम्मेदारी बालकके विवेकवान होने तक उसके माता पिता की है। जिस घर में मद्य, मांस, मधु का भी त्याग न हो वह जैनघर कैसे माना जावें।

नामकर्म के लिये जन्मपत्रिका बनवाकर जिस राशि का नाम आवे उसके अनुसार १००८ जिन सहस्त्रनामों में से कोई भी अनुकूल नाम रख देवें। कन्या का नाम पुराणों में प्रसिद्ध महिलाओं के अनुकूल रखें ।

दिव्याष्ट सहस्त्रनामभागी भव, विजयाष्टसहस्त्रनामभागी भव, परमाष्टसहस्त्रनामभागी भव

इन मंत्रो से आशीर्वाद दिया जावे।

नाम घोषित करते समय ओं ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं अमुक बालकस्य नाम करण करोमि। अयं आयुराशेग्यश्वर्य वान भवतु भवतु झौं झौं अ सि आ उ सा स्वाहा मन्त्र पढ़ा जावे ।

(८) बहिर्यान क्रिया- जन्म के बाद दूसरे तीसरे महिने में मंगल क्रिया मंगल वाद्यपूर्वक बालक को प्रसुति गृह से बाहर निकालना बहिर्यान क्रिया है। इसके आशीर्वाद मंत्र नीचे लिखे अनुसार हैं.

"उपनयनिष्क्रांतिभागी भव, वैवाहनिष्क्रांतिभागी भव, मुनीन्द्रनिष्क्रांतिभागी भव, सुरेन्द्रनिष्क्रांतिभागी भव, मन्दराभिषेकनिष्क्रातिभागी भव, यौवराज्यनिष्क्रांतिभागी भव, महाराज्यनिष्क्रांतिभागी भव, परमराज्यनिष्क्रांतिभागी भव, आर्हन्त्यनिष्क्रांतिभागी भव"

बालक को जिनालय में दर्शन कराते समय औं नमोर्हते भगवते जिन भास्कराय जिनेन्द्र प्रतिमा दर्शन ने बालकस्य दीर्घायुष्यं आतादर्शन च यह मन्त्र पढ़ें ।

(९) निषद्या क्रिया - जन्म से पांचवे माह में बालक को बैठाने की क्रिया की जाती है। उस समय पूर्व मुखकर सुखासन से बैठावे । नीचे लिखे आशीर्वाद सूचक खास मन्त्र पढ़े :

दव्यसिंहासनभागी भव, विजयसिंहासनभागी भव, परम सिंहासनभागी भव।

(१०) अन्नप्राशन क्रिया - जन्म से ७,८ या ९ माह बीत जाने पर अर्हन्त भगवान की पूजा पूर्वक बालक को अन्न आहार खिलाना अन्नप्राशन क्रिया है। इसका मन्त्र है.

"दिव्यामृतभागी भव, विजयामृतभागी भव, अक्षीणामृतभागी भव"

(११) वर्ष वर्धन (व्युष्टि)संस्कार क्रिया - यह क्रिया बालक के एक वर्ष का होने पर करें। इस दिन जिन मन्दिर में पूजा विधान करावें। बालक को भी मन्दिर भेजे । उसका जन्म दिवस मनावें। नीचे लिखे मन्त्र से बालक को आशीर्वाद देवें.

" उपनयन जन्म वर्ष वर्धनभागीभव, वैवाहनिष्ठवर्धनभागी भव, मुनीन्द्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव,

सुरेन्द्रवर्षवर्धनभागी भव, मन्दराभिषेकवर्षवर्धनभागी भव, यौवराज्यवर्षवर्धनभागी भव, महाराज्यवर्षवर्धन भागी भव, परमराज्यवर्षवर्धनभागी भव, अर्हन्त्यराज्यवर्षवर्धनभागी भव"।

(१२) चौल संस्कार :- बालक के प ांच वर्ष होने पर यहक्रिया की जाती है। यूँ तो दो तीन वर्ष में भी यह क्रिया की जा सकती है। जिनेन्द्रपूजन के बाद बालक का मुंडन करना चौल क्रिया है। इसका मन्त्र इस प्रकार हैं।

उपनयनमुँड्भागी भव, निर्ग्रंथमुँड्भागी भव, निष्क्रांतिमुँड्भागी भव,परमनिस्तारकेशभागी भव, सुरेन्द्रकेशभागी भव, परमराज्यकेशभागी भव, अर्हन्तकेशभागी भव"।

केश निकल जाने पर चोटी के स्थान पर केशर से स्वस्तिक बनावें, पुष्पक्षेपण करे। इसी समय कर्ण, नासिका वेध क्रिया भी करते हैं।

(१३) लिपि संख्यान क्रिया:- बालक के पांचवे वर्ष होने पर घर में पाठशाला में अक्षरों का दर्शन करने के लिये यह संस्कार किया जाता है। जिन मन्दिर में या घर पर पूजा के बाद यह क्रिया करें। सर्व प्रथम ऊँऔर ऊँ नमः सिद्धेभ्य : बालक से पट्टी पर लिखावें और इनका उच्चारण करावें। इस समय आशीर्वाद सूचक निम्न मन्त्र पढ़ें

"शब्दपारगामी भव, अर्थपारगामीभव, शब्दार्थसम्बन्धपारगामीभव" । बालक को लिपि पुस्तक दी जावे।

(१४) उपनीति संस्कार क्रिया:- गर्भ से आठवें वर्ष में बालक पर यह उपनीति या यज्ञोपवित संस्कार किया जाता है। रक्षाबंधन के त्यौहार पर भी यह क्रिया सम्पन्न की जा सकती है। इसका मन्त्र इस प्रकार है.

"परमनिस्तारकलिंगभागी भव, परमर्षिलिंगभागी भव, परमेन्द्रलिंगभागी भव, परमराज्यलिंगभागी भव, परमार्हन्त्यलिंगभागी भव, परमनिर्वाणलिंगभागी भव"।

यज्ञोपवित पहनने का मन्त्र : 'ओ नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकुताहं रत्नत्रय स्वरूपम् यज्ञोपवीतम् दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हनमः स्वाहा' । यज्ञोपवित पहननेसे अष्टमूलगुणों का स्थूलरूप से पालन हो जाता है। रात्रिभोजन त्याग भी करना होता है।

(१५) व्रतचर्या क्रिया:- करधनी, श्वेतधोती, उरोलिंग जनेऊऔर शिरोलिंग चोटी उन ब्रह्मचर्य व्रत के योग्य चिन्हों को धारण करना व्रतचर्या क्रिया होती है। अध्ययन पूर्ण होने तक इन व्रतों का पालन करना चाहिये । इस अवधि मे पलंग पर सोना, उबटन लगाना आदि त्याज्य हैं। पांच अणुव्रत आदि व्रत पालन करना चाहिये। विद्याध्ययन होने तक ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुमुख से उपासकाचार पढ़कर अध्यात्मशास्त्र, व्याकरण,न्याय, ज्योतिष, छन्द, अलंकार, कोष, गणित आदि पढ़ने चाहिये। लौकिक शिक्षा प्राप्ति में भी उपर्युक्त संस्कार से युक्त रहने से बहुत ही लाभ होतें है।

(१६) व्रतावतरण संस्कार क्रिया- विद्याभ्यास समाप्त होने पर यज्ञोपवित, पांच अणुव्रत, अष्टमूलगुण आदि व्रतों के सिवाय शेष सभी जैसे पृथ्वी पर शयन करना, आभूषण त्याग आदि व्रतो को बारह या सोलह वर्ष बाद त्याग कर देना व्रतावतरण क्रिया है। इस क्रिया के बाद गुरू की आज्ञा से वस्त्र, माला, आभूषण आदि ग्रहण किये जाते हैं।

(१७) विवाह संस्कार क्रिया - गुरू आज्ञापूर्वक सुकुल सज्जाति में उत्पन्न कन्या के साथ विधिवत् विवाह होना विवाह क्रिया है। मंगलाष्टक, अर्हन्तपूजा, हवन, पुण्याहवाचन, शांतिपाठ, विसर्जन आदि से यह क्रिया होती है।

(१८) वर्णलाभ क्रिया- पिता की आज्ञानुसार धन धान्य सम्पदा लेकर अलग रहना यह वर्णलाभ क्रिया है ।

(१९) कुलचर्या क्रिया - पिता के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त कर विशुद्धि रीति से जीविका चलाना और देवपूजा आदि षट्कर्म करना कुलचर्या क्रिया हैं।

(२०) गृहीशिता क्रिया- गृहस्थाचार्य बनने योग्य क्रियाएँ करते हुए इस क्रिया को प्राप्त होना चाहिये।

(२१) प्रशान्ति क्रिया - अनन्तर अपने पुत्र पर गृहभार छोड़कर स्वाध्याय उपवास आदि करते हुए अत्यन्त शान्ति प्राप्त करना प्रशान्ति क्रिया है।

(२२) गृहत्याग क्रिया- गृह आदि छोड़ने को उद्यत होना गृहत्याग क्रिया है।

(२३) दीक्षाद्य क्रिया - दिगम्बर मुनिराज के पास जाकर क्षुल्लक दीक्षा लेना दीक्षाद्य क्रिया है।

(२४) जिनरूपता क्रिया- दिगम्बर जैनेश्वरी दीक्षा जैनेश्वरी याने दिगम्बर मुनि की दीक्षा ग्रहण करना जिनरूपता क्रिया है।

(२५) मौनाध्ययनवृत्तित्व क्रिया- साधु के शास्त्रज्ञान की समाप्ति होने तक मौनपूर्वक अध्ययन करना यह मौनाध्ययनवृत्तित्व क्रिया है।

(२६) गुरूस्थानाभ्युपगम क्रिया- गुरू के आचार्य पद के प्राप्त करने योग्य होकर आचार्य पद प्राप्त करना गुरूस्थानाभ्युपगम क्रिया है।

(२७) तीर्थकृभ्द्रावना क्रिया- तीर्थंकर पद के कारण भूत सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन करना तीर्थकृभ्द्रावना क्रिया है।

(२८) गणोपग्रहण क्रिया-चतुर्विध संघ के पालन करने में तत्पर होना गणोपग्रहण क्रिया है।

(२९) स्वगुरू-स्थानावाप्ति क्रिया-अपने योग्य शिष्य को आचार्य पद भार समर्पण करना स्वगुरू.स्थानावाप्ति क्रिया है।

(३०) निःसङ्गत्वात्मभावना क्रिया- शिष्य, पुस्तक आदि का ममत्व छोड़कर निःसंग होकर आत्मा.भावना में लीन होना निःसङ्गत्वात्मभावना क्रिया है।

(३१) योगनिर्वाणसंप्राप्ति क्रिया- मोक्ष में अपनी बुद्धि स्थापन कर ध्यान में तत्पर होना योगनिर्वाणसंप्राप्ति क्रिया है।

(३२) योगनिर्वाण साधन क्रिया - चतुराहार त्याग कर शरीर के छोड़ने में उद्यत होना योगनिर्वाणसाधन क्रिया है।

(३३) इन्द्रोपपाद क्रिया- मन,वचन और काय के योगों की समाधि लगाकर प्राणों का त्याग कर इन्द्र पद में उत्पन्न होना इन्द्रोपपाद क्रिया है।

(३४) इन्द्राभिषेक क्रिया - इन्द्रपद में जन्म होने के बाद देवगण मिलकर उस इन्द्र का अभिषेक करते हैं वह इन्द्राभिषेक क्रिया है।

(३५) विधिदान क्रिया- तदन्तर नम्रीभूत हुए देवों का उन उनके पद पर नियुक्त करना विधिदान क्रिया है।

(३६) सुखोदय क्रिया - देवों से वेष्टित इन्द्र बहुत काल तक स्वर्ग सुख का अनुभव करता है वह सुखोदय नाम की क्रिया है।

(३७) इन्द्रपदत्याग क्रिया- इन्द्र जब अपनी आयु की स्थिति थोड़ी रहने पर अपना स्वर्ग से च्युत होना जान लेता है तब वह देवों को समझाकर इन्द्रपद का त्याग करता है उसे इन्द्रपद त्याग क्रिया कहते हैं।

(३८) इन्द्रावतार क्रिया - गर्भ में आने के छः महीने पहले माता को सोलह स्वप्न होना, रत्नों की वर्षा आदि होना। पुनः वहाँ से च्युत होकर माता के गर्भ में आना इन्द्रावतार क्रिया हैं।

(३९) हिरण्योत्कृष्ट जन्मता क्रिया- हिरण्यगर्भ भगवान हिरण्योत्कृष्ट जन्म धारण करते हुए इस प्रकार गर्भ में ही मति,श्रुत, अवधि ज्ञान के धारक भगवान की यह हिरण्योत्कृष्ट जन्मता क्रिया है।

(४०) मन्दराभिषेक क्रिया- भगवान का जन्म होने पर इन्द्रगण आकर सुमेरू पर लेजाकर अभिषेक करते है यह मंदराभिषेक क्रिया है।

(४१) गुरुपूजन क्रिया- बिना किसी के शिष्य बने भगवान ही सबके गुरू है अतः इन्द्र आकर सर्व जगत के गुरू का पूजन करता है यह गुरुपूजन क्रिया है।

(४२) यौवराज्य क्रिया- कुमार काल प्राप्त होने पर भगवान को युवराज पद का पट्ट बन्ध किया जाता है वह यौवराज्य क्रिया है।

(४३) सम्राटपद क्रिया - सम्राट पद पर अभिषिक्त होना सम्राट पद क्रिया है।

(४४) चक्रलाभ क्रिया - चक्ररत्न की प्राप्ति होने पर यह चक्रलाभ क्रिया होती है।

(४५) दिशांजय क्रिया– चक्ररत्न को आगे कर दिशाओं को जीतना दिशांजय क्रिया है।

(४६) चक्राभिषेक क्रिया- दिग्विजय पूर्ण कर अपने नगर में प्रवेश करने पर चक्राभिषेक नाम की क्रिया होती है।

(४७) साम्राज्य क्रिया - साम्राज्य पद पर अभिषिक्त होने पर भगवान अनेक राजाओं को शिक्षा देकर न्याय नीति बतलाते हैं यह साम्राज्य क्रिया है।

(४८) निष्क्रान्ति क्रिया- राज्य से विरक्त होने पर लोकान्तिक देवों द्वारा स्तुत्य भगवान स्वपुत्र को राज्य देकर दीक्षा के लिये जाते है वह निष्क्रान्ति क्रिया है।

(४९) योगसम्मह क्रिया- -भगवान बाह्य अंतरंग परिग्रह छोड़कर ध्यान में लीन होते है तब केवलज्ञान तेज प्रगट हो जाता है वह योगसम्मह क्रिया है।

(५०) आर्हन्त क्रिया- केवलज्ञान उत्पन्न होने पर समवशरण की रचना होती है वह आर्हन्तक्रिया है।

(५१) विहार क्रिया - धर्मचक्र को आगे कर भगवान का विहार होता है वह विहार क्रिया है।

(५२) योगनिरोध क्रिया- विहार समाप्त होकर समवशरण विघटित हो जाने पर भगवान का योग निरोध होता है। वह योग निरोध क्रिया है।

(५३) अग्रनिवृत्ति क्रिया - अघातिया कर्मों का नाश हो जाने से मोक्ष होजाने पर सिद्ध शिला पर पहुँच जाने पर अग्रनिवृत्ति क्रिया होती है।

इस प्रकार गर्भाधान से लेकर निर्वाण याने मोक्ष पर्यंत मिलाकर त्रेपन क्रियायें होती है। भव्य जीवों को उनका सदा अनुष्ठान करना चाहिये।

आदिपुराण के रचयिता भगवज्जिसेनाचार्य ने गर्भधान आदि समस्त क्रियाओं का संस्कार विधि का महत्वपूर्ण प्रभाव बताते हुए कहा है कि जिस प्रकार विशुद्ध खानि से उत्पन्न हुआ मणि संस्कार विधि से अत्यन्त उज्ज्वल व कान्तिशाली हो जाता है, उसी प्रकार यह आत्मा भी गर्भाधान आदि संस्कार व मन्त्रों के संस्कार से उज्ज्वल, अत्यन्त निर्मल व विशुद्ध हो जाता है। एवं जिस प्रकार सुवर्ण पाषाण उत्तम संस्कार क्रिया(छेदन,भेदन व आग्रपुटपाक आदि) से शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार भव्य पुरूष भी उत्तम क्रियाओं संस्कारों को प्राप्त हुआ विशुद्ध हो जाता है। यह संस्कार धार्मिकज्ञान से उत्पन्न होता है और सम्यग्ज्ञान सर्वोत्तम है।

(२) हिन्दु (भारतीय) संस्कृति के अनुसार मनुष्य के सोलह संस्कार

भारतीय संस्कृति जिसका वर्णन वेद और उपनिषदों में किया गया है उसमें संस्कारों को बहुत महत्व दिया गया है। अति प्राचीन काल से ऋषियो ने इन संस्कारों को अपनी संस्कृति का आधार माना है। इन्ही संस्कारों को आधार मानकर रीति रिवाजों का जीवनमें समावेश हुआ मानव के जन्म से मृत्यु तक भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न तरीके से की जानेवाली क्रियाओं को संस्कार कहते हैं, इन सोलह संस्कारों का वेद और उपनिषदों में विस्तार से वर्णन किया गया है।क्योंकि हमारे परवर्ती आचार्य भी वैदिक धर्म के प्रभाव से अछूत न रह पाये और उन्होंने भी इन्हीं संस्कारों को परिशोधित कर अपने ग्रंथो मे इसका उल्लेख किया है।

१. ***गर्भाधान*** --यह एक धार्मिक प्रकिया है, यह सिर्फ स्त्री पुरूष के जातिय सुख के लिये ही नहीं है, वरन यह, संस्कार माना जाता है, जिसमें पुरूष और स्त्री दोनों श्रेष्ठ आचार विचार व्यवहार से संस्कार युक्त स्त्री में बालक बीज रूप धारण करने की क्रिया है।

२. ***पुसवन संस्कार क्रिया***- जो स्त्री के गर्भाधान के बाद तीसरे महिने में किया जाता है, जिसमें स्त्री के पेट में गर्भस्थ बालक निरोगी रहे उसके लिये औषधी का सेवन कराया जाता है।

३. ***सीमंतोनयन***- यह संस्कार स्त्री के प्रथम गर्भ के समय किया जाता है, जो गर्भाधान के छ मास बाद यानी ९ वें महिने में बालक और माता के संरक्षण के लिये किया जाता है।

४. ***जात कर्म***--माता से उत्पन्न बालक की मलीनता दूर करने के लिये सुविधा के अनुसार सोने की सजी से बालक के मुँह में जीभ पर गुड़ का पानी रखते है।
छट्ठे दिन सांयकाल विधाता का लेख लिखें उसके लिये विधात्री का पूजन किया जाता है। रागी में पटिये पर कलम, पान का पत्ता, दिया और कोरा कागज रखा जाता है, उसे छट्ठी के नाम से जाना जाता है।

५ ***नामकरण संस्कार***- इस संस्कार में १० दिन बाद धार्मिक विधि द्वारा बालक का नाम रखा जाता है।

६. ***निष्क्रमण***--बालक को जन्म के ३ महिने बाद घर से बाहर निकालते है उसे निष्क्रमण संस्कार कहते है । यह प्रथा गुजरात में प्रचलित है।

७. ***अन्नप्राशन*** - बलाक जन्म से माता के दूध पर रहता है, जब उसे पाँचवे या सातवें महिने में बाहर का दूध और भोजन आदि दिया जाता है। उसे अन्नप्राशन संस्कार के नाम से जाना जाता है।

८. ***चौल क्रिया***- इस संस्कार में बालक के पहले, तीसरे या पाँचवे वर्ष में विधि पूर्वक केश उतारे जाते हैं इसे मुंडन कर्म संस्कार भी कहा जाता है।

९. ***कर्ण बेध***– इस संस्कार में बालक के कान (छिदाने) विधाने की क्रिया सम्पन्न की जांती है। यह रोग प्रतिकारक और आरोग्य के लिये विया जाने वाला संस्कार है।

१०. ***यज्ञोपवित*** - इस संस्कार में बालक को यज्ञोपवित धारण कराया जाता है, उसके बाद धार्मिक विधि से बालक को गुरू के आश्रम में विद्या अध्ययन करने भेजा जाता है। इसे नया जीवन माना जाता है। यहाँ से बालक का ब्रह्मचर्य प्रारम्भ होता है।

११. ***समावर्तन*** - गुरू के आश्रम से बालक विद्याभ्यास करके घर लौएटता है तब मातापिता जो संस्कार करते है उसे समावर्तन कहते है।

१२. ***लग्न***- योग्य कन्या या वर के साथ विवाह का यह संस्कार है। यहाँ से गृहस्थाश्रम प्रारम्भ होता है। भारतीय संस्कृति में इसे बहुत पवित्र माना जाता है। यह सिर्फ संतान प्राप्ति या शारीरिक भोग के लिये नहीं परन्तु सेवा, धर्म और मोक्ष प्राप्ति के लिये इसे आत्मा का मिलन माना जाता है।

१३. ***गृहस्थाश्रम संस्कार*** - इसमें पति पत्नी धर्मपालन के साथ देश धर्म जाति और समाज के हित कार्य करते हुए, दांपत्य जीवन सफलता पूर्वक चलाते है।

१४. ***वानप्रस्थाश्रम***-५० वर्ष के बाद सभी प्रकार के गृहस्थाश्रम की जवाबदारी पूर्ण करके ऋषि जैसाजीवन आरण्य (वनवासी) बनकर जीवन व्यतीत करना।

१५. ***सन्यास*** - संसार के सभी बन्धनों से मुक्त होकर दीक्षा धारण करके वीतरागी प्रभु में मन लगाना ईश्वराभिमुख बनाने की पात्रता प्राप्त करना।

१६. ***अंत्येष्ठी*** - मानव की मृत्यु के बाद मृत देह को श्मशान में ले जाकर अग्नि समापित करना और बारह दिन तक प्रक्षाल पूजन नहीं करना इस संस्कार के अर्न्तगत आता है।

(३) हूमड़ रीति रिवाज

प्रस्तावना:- व्यक्तियों का वह समूह जिसमें सामूहिक स्वार्थ और प्रयोजन सिद्धि की भावना निहित हो समाज है। समाज व्यक्तियों से बनता है अतः व्यक्तियों को समाज का अंग माना जायेगा । व्यक्ति का काम समाज के बिना नहीं हो सकता। अतः स्पष्ट है कि व्यक्ति समाज के अस्तित्वका आधार है। आशय यह है कि समाज और व्यक्ति चिरस्थाई हैं। दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं। समाज तत्त्व में समाज की रचना, उसकी व्यवस्था उसके कार्य उसमें प्रचलित रितीरिवाज उसके विकासका इतिवृत्त सम्मिलित है। सामाजिक जीवन के आधारभूत सिद्धान्त,संगठन व्यवस्था, अनुशासन, पारस्परिक सहयोग प्रभृति भी समाज तत्व के अर्न्तगत है। समाज तत्व में समूह के आचरण की प्रवृत्ति भी आती है। समाज का विकास (१) सहयोग (२) संघर्ष (३) सम्मिलन और (४) समावेश से होता है। इन सामाजिक प्रक्रियाओं को समाजतत्त्व में ही परिगणित किया जाता है।

परिवार एक आधारभूत सामाजिक समूह है। उसके कार्यो का विस्तृत स्वरूप विभिन्न समाजों में विभिन्न होता है, फिर भी उसके मूलभूत कार्य सब जगह समान ही है। काम की स्वाभाविक वृत्ति को लक्ष्य में रखकर यह यौन सम्बन्ध और सन्तानोत्पत्ति की क्रियाओं को नियमित करता है। यह भावनात्मक घनिष्ठता का वातावरण तैयार करता है तथा बालक के समुचित पोषण और उसके सामाजिक विकास के लिये आवश्यक पृष्ठभूमि देता है। इस प्रकार सामाजिक गठन में परिवार का महत्वपूर्ण भाग होता है। इन आधार भूत कार्यो के अतिरिक्त आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व भी परिवार का होता है। संक्षेप में परिवार कार्यो का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है। परिवार कार्यो का वर्गीकरण-

(१) यौन सम्बन्धों को विहित और नियन्त्रित करना।

(२) वंश वर्धन के हेतु सन्तान की उत्पति एवं उसके संरक्षण शिक्षा दिक्षा एवं योग्यताओं और सम्भावनाओं का विकास करना।

(३) सहयोग और सहकारिता के आधार पर सुखी और समृद्ध जीवन यापन करना तथा परिवार के समस्त सदस्यों में एकता और प्रेम का संचार करना।

(४) ऐहिक उनन्ति के साथ साथ पारलौकिक और आध्यात्मिक उन्नति करना। जीवन में आनेवाली विध्नबाधाओं को सहनकर व्यक्तित्व विकास करना।

(५) जातीय जीवन के सत्य तत्त्व को दुढ़ रखते हुये धर्म कार्य सम्पन्न करना।

(६) आदर्श परिवार के गठन द्वारा समाज को शक्तिशाली और कर्तव्यपरायण बनाना ।

(७) स्नेह, सेवा,त्याग और सहानुभूति का विकासकर मानवता की प्रतिष्ठा करना तथा कर्मठ परिवार द्वारा समाज के आदर्श को उज्ज्वल बनाना ।

संस्कृत जैन काव्यों के अनुसार आत्म संरक्षण और आत्मविकासकी भावना ने मानव समाज में विवाह और परिवार की संस्था को जन्म दिया है। मातृ स्नेह, पितृ स्नेह दाम्पत्य आसक्ति, सन्तान वात्सल्य , सहयोग और संघर्ष परिवार के मुख्य आधार हैं । इन आधारों की नीवं पर ही रीति रिवाजों का प्रासाद निर्मित होता है।

मानव समाज के विविध क्रिया कलाप, उनके प्रेरक मूल्य एवं मान्यताओं की संज्ञा को रीति रिवाज कहते हैं। एक युग के रीति रिवाज या संस्कार आगे आनेवाले समाज को अवश्य प्रभावित करते है ।किसी भी राष्ट्र की युग विशेष की संस्कृति उस समय की साहित्यिक कृतियों में समाहित रहती है। यही परवर्ति कालों में एक प्राचीन अभिलेख के रूप में स्वयुगीन संस्कृति के विविध पक्षों को उद्‌भाषित करती है।

वस्तुतः जातीय स्मृति का नाम ही इतिहास है। यदि कोई जाति अपने इतिहास से अनभिज्ञ रहती है तो उसका अर्थ है उसने अपनी स्मृति खो दी है या अपना अस्तित्व भुला दिया है। ऐसी स्थिति में उसे एक नई जाति के रूप में प्रकट होना पड़ता है नये सिरे से सब कुछ सिखना पड़ता है। जातियता की वास्तविक अनुभूति उसमें नहीं हो सकती । उसका इतिहास ही एक ऐसी वस्तु है जो उसे जातियता की भावना की कुंजी प्रदान कर सकती है, क्योंकि वर्तमान आकाश में से अकस्मात् नहीं टपक पड़ता अतीत में से ही उसका उदय होता है। अतीत का विकसित मूर्त रूप ही वर्तमान है। अतएव वर्तमान को जानने के लिये समझने और भोगने के लिये अतीत का अर्थात् इतिहास का ज्ञान अनिवार्यतः आवश्यक है।

किसी भी जाति का इतिहास हमें उसकी संस्कृति से रूबरू कराता है। संस्कृति किसी भी राष्ट्र अथवा जाति के परम्परा गत संस्कारों की वह समष्टि है जिससे उसके सामाजिक आचार विचार, रहन सहन,रीति रिवाजों, नैतिकता कला, धार्मिक एवं अध्यात्मिक विश्वासों की अभिव्यक्ति होती है।

मनुष्य को बनाये रखने में संस्कृति का विशेष योगदान है। यदि मनुष्य से उसकी संस्कृति छीन भी जाय तो वह श्रीहीन हो जायेगा। मनुष्य पैदा होने के साथ ही सुसंस्कृत नहीं हो जाता वह समाज में सामाजिक परिवेश के अनुरूप संस्कृति को सिखता है। सामाजिक गुणों का धीरे धीरे विकासकर वह अपने को सुसंस्कृत बनाता है समस्त सृष्टि में एक मात्र मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो अपने आप संस्कृति से जुड़ा हुआ है। वही संस्कृति का निर्माण भी करता है। संस्कार जन्य व्यवहार अथवा स्वभाव को ही संस्कृति कहते हैं।

समाज की अपनी संस्कृति है। अपने विशेष रीति रिवाज के जैनधर्म मे अनेक प्राचीन ग्रंथ उपल्बध है, जिनमें गर्भ से लेकर मरण तक के संस्कारो का विस्तृत विवरण है। वे उपलब्ध ग्रन्थ निम्न है।

रीति रिवाजों एवं संस्कारों पर उपलब्ध जैन ग्रन्थ

१. ***भद्रबाहु संहिता***- यह अति प्राचीन ग्रन्थ है। यह उपासकाध्यानांग पर आधारित है।

२. ***वर्द्धमान नीति*** - इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्य श्री अमितगति आचार्य है। आपने संवत १०६८ (१०११ईसवी) में राजामुंज के समय इसका निर्माण किया जिसका आधार भद्रबाहु संहिता है।

३. ***इन्द्रनन्दि जिन संहिता***- इसके रचयिता बसुनन्दि , इन्द्रनन्दि स्वामी हैं। यह उपासकांध्यानांग पर निर्भर है।

४. ***आदिनाथ पुराण***- इसके रचयिता जिनसेनाचार्य हैं। आप ईसवी की ९वीं शताब्दी के हैं। वर्तमान में जो भी संस्कार सम्बन्धी साहित्य उपलब्ध है वह अधिकतर इसी ग्रंथ के आधार पर है।

५. *त्रिवर्णाचार* - इस ग्रन्थ का निर्माण भट्टारक श्री सोमसेन द्वारा १६वीं शताब्दी में किया गया।

६ *अर्हन नीति*- यह एक श्वेताम्बर ग्रन्थ है, जिसके रचयिता और समय उपलब्ध नहीं है। १२वीं शताब्दी के बाद हूमड़ समाज पर भट्टारकों का प्रभुत्व रहा उन्होंने उपरोक्त ग्रन्थों के आधार पर अनेक ग्रन्थों की रचना की और इन संस्कारो का विस्तृत वर्णन किया है।

भट्टारकों द्वारा निर्माण किया गया साहित्य यद्यपि आध्यत्मिक, धार्मिक भावना से प्रेरित होकर किया गया है, पर वह सम.- सामायिक जीवन से कटा हुआ नहीं है। इन साहित्यों के निर्माता जन सामान्य के अधिक निकट होने के कारण लौकिक घटनाओं, धारणाओं और विचारों को यथार्थ अभिव्यक्ति दे पाये हैं, इस नाते इस साहित्य की महत्ता केवल व्यक्ति के नैतिक दृष्टि से ही नहीं वरन् सामाजिक, सांस्कृतिक परिवंश की द्रष्टि से भी है।

भट्टारकों द्वारा साहित्य लेखन में जिस तटस्थ वृत्ति, व्यापक जीवनानुभुति और प्रामाणिकता की अपेक्षा होती है, वह एसे संतो में सहज रूप से प्राप्य है, वे सच्चे अर्थो में लोक प्रतिनिधि है। इनका साहित्य एक ऐसा निर्मल दर्पण हैं, जिसमें हमारे विविध आचार विचार,सिद्धान्त संस्कार, रीति नीति, वाणिज्य,व्यवसाय, धर्म, कर्म,शिल्प कला, पर्व उत्सव और तरीके, नियम कानून आदि यथा रूपसे प्रतिबिम्बित है।

जहाँ तत्कालीन सामाजिक सासंवृतिक जीवन को जानने और समझने का यह साहित्य सच्चा बेरोमीटर है वहीं जीवन की पवित्रता, नैतिक मर्यादा और उदात्त जीवन आदर्शो का व्याख्याता होने के कारण यह साहित्य समाज के लिये सच्चा पथ प्रणेता और दीपक भी है।

हमारे रीति रिवाज आदि से सम्बन्धित साहित्य हूमड़ों के अनेक प्राचीन जिनालयों के भण्डारों में पड़ा हुआ है, उसमें से कुछ तो प्रकाशित होकर उपलब्ध है, इन सबको लक्ष्य में रखकर हम हमारे रीति रिवाजों का विस्तृत वर्णन करेगें।

हूमड़ समाज के प्राचीन और वर्तमान रीति रिवाजों का इतिहास

वस्तुतः जातीय स्मृति का नाम ही इतिहास है। यदि कोई जाति अपने संस्कारों और इतिहास से अनभिज्ञ रहती है तो उसका अर्थ है उसने अपनी स्मृति खो दी है, अपना अस्तित्व भी भुला दिया है, ऐसी स्थिति में उसे एक नयी जाति के रूप में प्रकट होना पड़ता है जिसे सब कुछ नये सिरे से सिखना पड़ता है। जातीयता की वास्तविक अनुभूति उसमें हो ही नहीं सकती। इसका इतिहास ही एक ऐसी वस्तु है जो उसे जातीयता की भावना की कुंजी प्रदान कर सकती है क्योंकि वर्तमान अकस्मात नही टपक पड़ता, अतीत में से ही उसका उदय होता है। हूमड़ जैन समाज अति प्राचीन जैन समाज है जो भारत के विभिन्न प्रान्तों में फैला हुआ है। अतः भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में हमने रीति रिवाजों के लिये समाज को चार भागों में अंकित किया है:-

(१) १. राजस्थान:- यहां हमारे समाज के ४०% परिवार निवास करते है अतः इसे भी ५ भागों में अंकित किया गया है । २. खड़ग देश हूमड़ समाज ३. उदयपुर बिसा हूमड़ समाज ४. उदयपुर दशा हूमड़ बारह भाग समाज ५. सागवाड़ा १८ हजार दशा हूमड़ सम

(इसके अन्तर्गत ८० गाँव आते है जिनकी संस्थाएँ और उनकी पंचायत रीति रिवाज निर्धारित करती है।)

(२) प्रतापगढ़ विभाग का हूमड़ जैन समाज जिसके अधिकतम निवासी बम्बई, इन्दौर, रतलाम, मंदसौर, जावरा आदि स्थानों पर रहते है।

(३) गुजरात हूमड़ जैन समाज:

१. रायदेश

२. श्री बैतालीस दशा हूमड़ दिगम्बर जैन चौखला पंच

३. सतरतालुका हूमड़ समाज

(४) महाराष्ट्र हूमड़ समाज

१. फल्टन हूमड़ समाज २. सोलापुर हूमड़ समाज ३. धुलिया हूमड़ समाज

(अ) खड़ग देश के रीति रिवाज

लेखक श्री मणिभद्र जैन (डुंगरपुर)

(१) विवाह सम्बन्धी रिवाज:

(अ) सम्बन्ध करना:- वर पक्ष एवं कन्या पक्ष दोनों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का तय हो जाने पर वरपक्ष निश्चित तिथि पर अपने सम्बन्धियों को लेकर कन्या पक्षके वहां जाता हैं । कन्या पक्ष गांव के पंचो को अपने यहां एकत्रित करता है तथा पंचो एवं उपस्थित जन समूह के समक्ष समाज द्वारा निर्धारित प्रोफोर्मो में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की लिखा पढ़ी करते हैं। कन्या पक्ष की ओर से पताशी वितरण तथा वर पक्ष की ओर से ब्राहाणों को दक्षिणा देने का रिवाज है। वर पक्ष के मेहमानों को श्रीफल एवं रूपया भेंट दिया जाता है। अन्य कोई लेन देन नहीं होता है।

(ब) बसन्त भेजना :- वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना के बाद बसन्त पंचमी या इसके बाद सुविधानुसार वर पक्ष की ओर से कन्या पक्ष को निम्न सामग्री बतौर सकून किसी कुमारिका के साथ शुभ मुहूर्त में भेजी जाती है:

१. कंकु का पड़ा १२५ ग्राम

२. साकर का पड़ा १२५ ग्राम ३. रीबन ४. श्रीफल गोला

५.रोकड़ा रूपया १/ (एक) ६. चाँदी के छड़े जोड़ एक

कन्या पक्ष से वर पक्ष को निम्न सामग्री भेजी जाती हैः

१. कंकु का पड़ा १२५ ग्राम २. श्रीफल १ नग

३. रोकड़ा रूपया १/ (एक)

सगाई के बाद दोनों को आपस में बुलाकर ' ला फियारे ' (एक दूसरे पक्ष को निमंत्रित करना) का रिवाज है। जिसमें सीमित मात्रा में परिवार के लोग जाते है। कन्या पक्ष वाले वर को सिरोपाव तथा श्रीफल एवं ११/ (ग्यारह रूपया) भेंट करते है। कन्या पक्ष जब वर पक्ष के यहां जाता है तो वर पक्ष वाले कन्या को सिरोपाव भेंट करते हैं। पुरूषो को श्रीफल व रूपया तथा महिलाओं को वस्त्रादि प्रदान कर उनका उचित सम्मान किया जाता है।

(स) लग्न निश्चित करना - लग्न लेने के समय भी सीमित संख्या में वर पक्ष के लोग कन्या पक्ष के यहां जाते है तथा वहां के पंचों की उपस्थिति में लग्न की तारीख तय कर लिखा पढ़ी की जाती है। इस वक्त भी कोई आर्थिक लेन देन नहीं किया जाता है।

(द) शादी के समय के रिवाज- (सामूहिक विवाह की परम्परा नहीं है)शादी जैन विधि से जैन पंडित द्वारा ही पिछले तीस चालीस वर्षो से करायी जाती है। शादी के वक्त वर की ओर से ३० से ५० ग्राम तक के सोने के आभूषण एवं दो जोड़ कपड़े चढ़ाये जाते है। दहेज देना ओर लेना सर्वथा वर्जित है। कन्या पक्ष अपनी लड़की को घर गृहस्थी के काम की वस्तुएँ कन्यादान में देता है। सम्बन्धियों की ओर से भी ऐसी ही वस्तुएँ कन्यादान में दी जाती है। वर पक्ष कन्या पक्ष के यहां मात्र एक वक्त का भोजन ही स्वीकार करता है।मामेरा का रिवाज कन्या ओर वर वक्ष दोनों ही में होता है। वर का मामा वर पक्ष को तथा कन्या का मामा कन्या वक्ष को वस्त्रादि देकर उनका सन्मान करता है। वह कितना मामेरा करे यह उसकी इच्छा तथा आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है।

(२) मृत्यु के समय के रिवाज- परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाने पर उसके निकट के सम्बन्धियों को पत्र द्वारा सूचना देने का रिवाज है। मृत्यु के सातवें दिन सुवारा निकालने का रिवाज है। उस रोज घर की सफाई की जाती है। ब्राह्मण या पुजारी को भोजन सामाग्री दी जाती है। बारह या तेरह दिन बाद लोकाचार होता है। जिसमें औरतों द्वार छातियाँ पीटने की प्रथा बंद है। बुजुर्ग का देहावासन पर रोना धोना नहीं होता। लोकाचार के दिन मीठा भोजन बनाने पर सख्त प्रतिबन्ध लगा हुआ है। उस दिन मंदिर जी में शान्ति विधान होता है तथा दान पुण्य मृतक के परिवार की ओर से किया जाता है। यदि किसी पुरुष सदस्य की मृत्यु हो जाती है तो सम्बन्धियों द्वारा विधवा को लोकाचार के समय आर्थिक मदद भी दी जाती है। सूतक जैन शास्त्रों मे वर्णित दिनो तक रखा जाता है। खुणा निकालने का रिवाज पहले ग्यारह माह बाद का था जिसे घटा कर मात्र तीन माह कर दिया गया है।

(३) प्रथम प्रसुती एवं नामकरण- कन्या के प्रथम गर्भधान के बाद सातवें माह गोद भरने (श्रीमंत) का रिवाज है। कन्या का भाई वस्त्रादि लेकर जाता है तथा गोद भरकर अपनी बहिन को घर ले जाता है। प्रसुती के डेढ़ दो माह बाद वर पक्ष वाले बहु को लिवा लाने जाते है। कन्या पक्ष वाले वर को श्रीफल रूपया तथा वस्त्रादि

देकर उनका सन्मान करते हैं तथा कन्या एवं नवजात शिशु को वस्त्र तथा आभूषण देकर विदा करते हैं। खडक दशा हूमड़ समाज में नामकरण के लिये कोई रिवाज नहीं है। माता पिता अपने रूचि अनुसार पंडित से कुण्डली बनवाकर बालक का नाम रख लेते हैं। होली पर ढूंढ का रिवाज भी पिछले २५ वर्षों से बन्द कर दिया गया है । बालक को उस दिन श्री मंदिरजी में ले जाकर दर्शन कराये जाते हैं।

(४) जैन पर्व मनाना-पर्यूषण पर्व धूम धाम से मनाया जाता है। विधान पूजन किये जाते है। पूर्णिमा के दिन प्रत्येक मंदिर से गांव में रथ यात्रा निकाली जाती है। पंचमी और अनन्त चर्तुदशी को दुकान बन्द रखी जाती है। पर्यूषण समाप्ति पर सामूहिक भोजन (पारवी) का चलन था लेकिन कुछ गांवो में अपर्यान्त फण्ड तथा परिवारों के बिखराव के कारण लगभग यह प्रथा बन्द होने की स्थिति में है । महावीर जयन्ति के दिन भी कारोबार बन्द रखा जाता है। प्रातः प्रभात फेरी निकाली जाती है। दिन में पूजा की जाती है। एवं जुलूस निकाला जाता है एवं रात्रि में शास्त्र सभा होती है। अन्य पर्व भी धूमधाम से मनाये जाते हैं ।

(५) मंदिरो का रख रखाव एवं आर्थिक व्यवस्था :

इस क्षेत्र के लगभग प्रत्येक गांव में जिन मंदिर शिखर बंदी बने हुए है जिनकी व्यवस्था स्थानीय समाज, समाज के आर्थिक सहयोग से करती है। भूदर, भाणदा, नयागाँव, बिछीवाड़ा, आदि में जहॉ पिछले वर्षो में वेदी प्रतिष्ठाएं हुई है वहां बोलियां से प्राप्त बचत को स्थायी फण्ड के रूप में खर्चा निकलने के बाद बैकों में जमा किया गया है जिससे मंदिरों की व्यवस्था होती है। प्रत्येक गांव मे समाज के सभी प्रकार के लेन देन का हिसाब अनन्त चर्तुदशी के दिन किया जाता है। समस्त बाकी उस दिन जमा करना अनिवार्य है। श्री महावीर स्वामी (चित्रौड़) खुणादारी, सुरपुरजी एवं नागफणी पार्श्वनाथ के मंदिर, जहां वर्तमान में जैन समाज के परिवार नहीं है उनकी व्यवस्था क्रमशः छाणी, बावलवाड़ा, डुंगरपुर तथा बिछिवाडा की जैन समाज को सुपुर्द की गयी है। यात्रियों से प्राप्त दान राशि से उनका खर्च चलता है। रीति रिवाजों का संचालन समाज द्वारा स्वीकृत नियमावली के आधीन किया जाता है। संक्षेप में इस क्षेत्र का समाज विभिन्न प्रकार की सामाजिक बुराइयों तथा कुरीतियों से दूर एक सीधा सादा स्वच्छ विचारों वाला समाज है। सभी निर्णय सर्वानुभूति से प्रसारित कर उन पर विवेक पूर्वक अमल किया जाता है। अतः सामान्यतया समस्याओं से यह समाज रहित है।

(ब) उदयपुर (राजस्थान) बारह ग्राम दशा हूमड़ समाज के रीति रिवाज

डॉ. जम्बूकुमार दोशी

सगाई दस्तूर के लिये पूरी जाति में वर पक्ष की ओर से तोड़े (निमंत्रण) दिया जाता था और केवल पुरूष वधू पक्ष के घर बाजे के साथ जाते थे परन्तु आजकल पूरी जाति अथवा अधिकतर सगे संबंधी, स्त्री व पुरूष, लड़की वालों के घर जाते है। वहां पर वर के दादा या पिता वधू को जेवर चढाते है जिसकी संख्या पुराने समय में तय कर ली जाती थी। आजकल वर पक्ष की इच्छानुसार जेवर रखे जाते है। पूर्व में देशी बनावट के ५८ रूपये (अट्ठावन रूपये) रखे जाते थे जो बाद में बढाकर १०१/ कर दिये गये। गौरजी महाराज सगाई का दस्तूर कराते थे वर के पिता के दोना हाथों में पतासी रखकर उपर नारेल व एक रूपया रखा जाता था इसी प्रकार वधू के पिता के हाथ में पतासी के उपर नारेल रखा जाता था अब वर के पिता के हाथ पर वधू के पिता के हाथ रखे जाते है और मंगलाचरण के बाद पर वधू के गौत्र एवं नामोंका उल्लेख करते हुए सगाई की घोषणा करते हैं । तथा वधू का पिता आपी एवं वर का पिता आदरी कहता है इस पर वधू के पिता के हाथ में लिये हुए पतासी

नारेल कन्या के पिता के गोद में रखे जाते। उपस्थित लोगों को घर दीठ नारेल व अन्य को पतासी दी जाती थी। सन् १९५५ के पश्चात् वर पक्ष के संबंधियों को संबंध के अनुसार रूपये व नारेल दिये जाने लगे। सन् १९७७ से समागत व्यक्तियों के स्वागत में वधू पक्ष द्वारा अल्पाहार दिया जाने लगा है। आजकल वर पक्ष के पुरूषों के साथ महिलायें भी जाने लगी हैं। सगाई के दिन वधू को वर के यहां बुलाया जाता था भोजन केउपरान्त वधू की गोद भरी जाती थी जिसमें पांच खारेक, पांच सुपारी, पान एक गोला व चार फल व सवा रूपया रखा जाता था और वधू को पोषाक दी जाती थी। वर को भी वधू के यहां बुलाया जाता था और गोद भरी जाती थी जिसमें खारेक व सुपारी (प्रत्येक सात) व साथ फल व सवा रूपया रखा जाता है और फल, मेवे व मिठाई की थालियां रखने का रिवाज प्रचलित हो गया है। वर की ओर से वधू को पोषाक, फल एवं मेवे दिये जाते है। दोनों पक्ष एक दूसरे के यहां मातर की थाली रखते है।पुराने समय में सगाई के पश्चात किसी अच्छे दिन वर व उसके संबंधियों को वधु के यहां न्योता जाता और भोजन के पश्चात सबको कपड़े अथवा रूपये अथवा कपड़े देकर सम्मानित किया जाता था इसे हवीजन कहते थे। आजकल सगाई के समय ही वधू पक्ष द्वारा वर पक्ष के संबंधियों को संबंध के अनुसार कपड़े अथवा रूपये देकर सम्मान किया जाने लगा है। पुराने समय में (लगभग सन् १९४० तक) समाज में लड़कियों की कमी थी अत : कुछ घटनाओं में वधु पक्ष द्वारा वर पक्ष से सोना या रूपया मांगा जाता था जिसे दापा कहा जाता था तथा वर पक्ष से वधू के लिये सोने के जेवरों के लिये ठहराव होता था जिसे वर पक्ष येनकेन प्रकारेण पूरा करता था। दापा देने की स्थिति नहीं होने के कारण कई लोग कुंवारे रह जाते थे और विवाहेत्तर संबंध अन्य जाति की स्त्रियों के साथ रखते थे या विजातिय विवाह के कारण लोगों को समाज से बाहर भी किया जाता था। सगाई के समय महिलायें गीत गाती जिनमें मुख्यता घोड़ी बना , बनी व बधाई के गीत होते है। जब वर और उसके संबंधियों को वधु के यहां बुलाया जाता है तो हंसी मजाक व गालियों के गीत गाये जाते है। सगाई और विवाह के बीच के अन्तराल में प्रथम वर्ष में निम्न रीति रिवाज प्रचलित है।

होली - वधु पक्ष की ओर से वर के लिये खाण्डा भेजा जाता है जिसमें पांच नारेल, पांच सेर लीलवे, हरे चने, पटाखे, गुलाल व खाण्डे की लकड़ियां या उसके लिये रूपये, मिठाई व पगड़ी रखी जाती थी। बाजे के साथ खाण्डा रखने पर नो नारेल व नो सेर लीलवे रखे जाते थे बाद में पगड़ी के बजाय वर पक्ष की ओर से वधू के लिये सफेद फागणि या (बंधेज की साड़ी), मिठाई, पटाखे व पांच नारेल व पांच सेर लीलवे बाजे के साथ रखे जाते थे। यदि खाण्डा बाजे के साथ नहीं रखा जाता तो वधू को वर के यहां बुलाकर फागणियां पहना दिया जाता और गीत गाकर साथ में मिठाई साथ में मिठाई का कटोरा भेजा जाता था।

राखी - राखी पर वधू को वर के यहां जीमने बुलाकर लेहरियां पहनाया जाता है। वर को वधू के यहां जीमाकर रूपया नारेल दिया जाता है।

दिवाली - दीवाली पर वर व वधू को एक दूसरे के यहॉ जीमने बुलाया जाता है और वर को शर्ट पीस व वधू को साड़ी दी जाती है। बाहर गांव या शहर में संबंध होने पर उपरोक्त त्यौहारों पर वर व वधू को कपड़े भेजे जाते है।

लगन सही करना- किसी शुभ दिन वर एवं वधू के पिता एवं संबंधी ज्योतिषी के यहा जाकर अथवा दोनों में से किसी एक के घर पर ज्योतिषी को बुलाकर शुभ लग्न में विवाह करना तय करते है। और दो पत्रों पर लग्न लिखाया जाता है जिसमें तय किये गये दिन बार तिथि लग्न आदि लिखे जाते है। वधू पक्ष द्वारा वर पक्ष

को लगन झेलाये जाते है इसमें तय किये दिन और समय पर बारात लेकर आने का निवेदन किया जाता है। लगन पत्रिका में चांवल, मूंग के दाने, चांदी का कापा रखकर कुंमकुंम के छीटे देकर मोड़ दिया जाता है और लच्छे से परेटा दिया जाता है।

विवाह पीठी मुहूर्त - सन् १९६० के दशक से पूर्व विवाह की धूमधाम लगभग एक सप्ताह से एक माह तक रहती थी। परन्तु आजकल प्रायः विवाह एक दिन में निपटालिया जाता है। विवाह के दिन के पूर्व शुभ मुहुर्त में पीठी मुहुर्त किया जाता है जिसकी अदधि पूर्व में एक माह या अधिक होती थी। परन्तु आजकल यह अवधि कुछ ही दिनों की होती है। पीठी मुहुर्त के दिन घर की सभी महिलायें हाथ में लच्छा बांधती है, कंकु की सिली लगातीहै तथा एक कपड़े पर दूब, चांदी का कापा, सुपारी व पावली (पच्चीस पैसे का सिक्का) रखकर कंकूका छीटा डालकर उस पर बड़ी देती है। वर या वधू को बाहर दरवाजे के सामने मुंह करके ,पूर्व या उत्तर की ओर मुंह करके पाटले पर बिठा देते है। एक थाली में भिगांई हुई पीठी घोला हुआ कुंकुम दही,व घी और तेल व चांवल रखे जाते है। दुल्हे या दुल्हन की दादी, माता, काकी, नानी, मासी, भूंवा, बहनें इत्यादि एक एक करके पहले टीका लगाकर, चांवल चढाती है फिर गाल पर हथेलियों पर व पांव पर क्रम से कंकू पीठी, दही, घी व तेल नीचे से उपर की ओर चढाती है। पीठी चढाने वाली महिला कन्धे पर गोट लगा हुआ रेशमी कपड़ा डाले रखती है। पीठी मुहुर्त में समाज की सभी महिलायें आमंत्रित की जाती है।

बनियाग बैठाना (विनायक स्थापना) - विनायक को रिद्धि सिद्धि के दाता माना गया है अतः विवाह से पहले विनायक स्थापना की जाती है। इसके लिये एक विनायक के चित्र से युक्त सजी हुई मटकी में कंकू अक्षत करके पान, सवा रूपया,चांदी का कापा, रखकर गणेश प्रतिमा स्थापित की जाती है और खोपरे का गोला, मातर, पांच सुपारियां, पांच खारेक व पांच साकर(मिश्री) की डलियां रखी जाती है। इसके उपर एक छोटी मटकी और उस पर नारेल और केशरिया या लाल कपड़ा रखकर लच्छे से मुंह बांध दिया जाता है। इस समय महिलायें विनायक के गीत गाती है। इन मटकियों को एक पाटले पर चावल के ढेरी पर स्थापित कर दिया जाता है। मटकियों के स्थान पर दो धातु के कलशों का प्रयोग भी किया जाता है।

माया बैठाना - एक कमरे में पूर्वी दिवाल पर माया यंत्र बनाया जाता है उसके सामने पाटले पर चावल का सातिया बनाकर दीपक कर दिया जाता है और बनियाग का कलश भी उस पाटने पर चावल की ढेरी पर रख दिया जाता है।

वनोरा- पूर्व में पीठी मूहुर्त के दिन मामा के यहां से वनोरा पहुंचाते थे जिसमें सगे संबंधियों की स्रियां बाजे के साथ वनोरा लेकर वर वधू के घर पहुंचाते थे। इसी प्रकार अन्य संबंधी भी वनोरा पहुंचाते थे। आजकल यह प्रथा समाप्त प्रायः हो ही गई है।

हुकडी - वर और उसके मित्र वधू के लिये मेवे, श्रृंगार सामग्री एवं ब्लाऊज पीस लेकर जाते थे। इसे हुकड़ी कहा जाता था । वधू के यहां की महिलायें हंसी मजाक के गीत गाती थी और पहेलियां पूछ्ती जिसे पारसी छुड़ाना कहते थे। हुकड़ी निम्न अवसर पर रखी जाती थी। पीठी मुहुर्त के दिन, वनोरे के पहले और अखीवाड़ा की खोर के साथ।

सांत पाँच- इस रस्म में मण्डप विधान के पश्चात् वधू एवं वर को उनके ससुराल निमंत्रित किया जाता है उसे निमंत्रण देने के लिये घर की एवं संबंधियों की महिलायें जाती है जिन्हें कपड़े दिये जाते है। फिर वर एवं वधू को बुलाने जाते। वर एवं वधू अपने मित्रों व सहेलियों के साथ सात पांच जीमने जाते।

मुसारा (मायरा)-विवाह के दिन वर व वधू को मामा के यहां से मुसारा (मायरा, मामेरा) पहनाया जाता है। मामा अपने संबंधियों को लेकर बाजे के साथ अपनी बहन के यहां जाता है वहां मायरे के गीत गाये जाते है। वर या वधू को मण्डपों के नीचे बैठाकर मामा के यहां से लाये हुए कपड़े दिये जाते हैं जिन्हें विवाह के समय पहनाया जाता है परन्तु आजकल विवाह के समय अन्य कपड़े पहनने लगे हैं। अन्य सगे संबंधियों को कपड़े या रूपये तथा नारेल कपड़े दिये जाते है। अन्य लोगों को एक मुट्ठी पतासी दी जाती है। वर या वधू का पिता तिलक की थाली में कुछ रूपये रखते है क्योंकि थाली वापस खाली नहीं जाती है। पहले पिता को पगड़ी दी जाती थी आजकल पेंट या कमीज का कपड़ा देने का रिवाज है।

बारात:-

बारात रवाना होने से पहले दुल्हे को उसकी मां या दादी, भाभी, बड़ी बहन घर के मुख्य दरवाजे पर पुंखते है। पुंखने की थाली में आटे में कुमकुम मिलाकर बनाई हुई चार पीडिया बनाकर रखी जाती है, दो दीवाणीयों को एक दूसरे पर उल्टा रखकर कच्चा सूत लपेटकर रखा जाता है, इसे सम्पत कहा जाता है। थाली में घुसल, मुसल,सुया, दही, गीला कंकू व अक्षत रखे जाते है। पुंखने वाली महिला अपने कन्धे पर झाड़िया डालती है। वर को तिलक करके अक्षत चढाये जाते है। इसके पश्चात दो पुरूषों को वर के आजू बाजू खड़ा किया जाता है वे एक दूसरे के हाथ की उंगलिया फँसाकर वर के मुँह के सामने रखते है। हथेलियां पुंखने वाली महिला की तरफ रखी जाती है। दोनों पुरूषों के तिलक करने के पश्चात महिला उन दोनों की हथेलीयों पर दोनों हाथ से कुमकुम व दही तीन तीन बार नीचे से उपर की ओर लगाती है। इसके पश्चात् घुसल (हल), मूसल व सुया झाड़ियों में लपेटकर दोनों व्यक्तियों की हथेलियों से तीन बार छुआती है। इसके पश्चात् दो पीडियां हाथों को क्रास की स्थिति में रखकर वर के ऊपर की ओर फेंकती है तथा इसी प्रकार दो पीडियां नीचे की ओर फेंकती है अब सम्पत को वर के आगे रखा जाता है जिस पर वर पांव देकर आगे चढता है और अपने बड़े लोगों को प्रणाम करके घोड़े पर सवार होता है। बारात रवाना होने से पहले वर की बहनें व भुवा घोड़े की लगाम पकड़ती है जिसे छोड़ने के लिये वर कुछ नेग देता है। घर की महिलायें घोड़े के आगे नृत्य करती है। आजकल स्त्री पुरूष डांडिया नृत्य करते है। वर के मित्र व भाई बहिनें व संबंधित पशचिमी तर्ज पर नृत्य करते है। बारात कन्या के द्वार पर पहुँचने पर वधू की माता, दादी या भाभी द्वार पर वर का तिलक लगाकर स्वागत किया जाता है। वर पहले गरदन नीचे नहीं करता है कुछ देर मनुहार कराके अंततः तिलक लगवाता है। इसके पश्चात वर तलवार से छूकर द्वार पर बन्धे तोरण की वन्दना करता है (तोरण वन्दना) साथ में आये बारातियों को वधू के संबंधी माला पहनाकर स्वागत करते है और उन्हें अन्दर लाकर बिठाते है। अब वर घोड़े से नीचे उतरकर मण्डपे के नीचे (पास) खड़ा रहता है। इस समय वर के साथ आई महिलायें व्याहीजी व व्याणजी को गालियां गाती है। वधू को उसका मामा गोद में कच्चे सूत की माला पहनाता है इस समय महिलायें कामण के गीत गाती हैं यह रस्म गन्धर्व विवाह का प्रतीक है अब वधू की माता वर को तिलक व अक्षत लगाती है और पूर्व

में वर्णित विधि द्वारा वर को पूंखती है। वधू की माता वर का नाक पकड़ने का प्रयत्न करती है पर वर के साथ खड़े दोनों व्यक्ति वर को बचाते है। अब वधू की माता वर को गले में झाड़ियां (कन्धवाया) डालकर पकड़े हुए माया के कमरे चवरी) में आकर बैठाते है। आजकल वर वधू को विवाह विधि से पहले मंच पर भव्य आसनों पर बैठाया जाता है और दोनों एक दूसरे को माला पहनाते है। अधिकतर विवाह जैन विधि के द्वारा सम्पन्न कराये जाते है जिसमें देवशास्त्र, गुरू की पूजन, सिद्ध पूजन, नवदेवताओं की पूजन,हवन, गठजोड़ा, हस्त मिलाप, वरण विधि होती है। सप्त पदी (सात फेरों) से पहले वर के यहां से लाई गई चुन्दड़ वधू को ओढाकर मुकुट (मोड़) बांधते है। छह फैरों में वधू आगे रहती है। इसके पश्चात वर वधू एक दूसरे से सात वचन लेते है। सातवें फैरें में वर आगे रहता है अब वधू वामांगी हो जाती है। इससे पूर्व वधू वर के दाहिनी ओर बैठती है। हथलेवा छुडाने से पहले वधू का पिता अपने सामर्थ्यानुसार वर एवं वधू को कपड़े, जेवर, बर्तन आदि देता है। पूर्व में अन्य संबंधी भी बँधाई के रूप में वर वधू को नारेल, कापड़ा देते थे परन्तु आजकल यह प्रथा बन्द हो गई है। विवाह विधि के पश्चात वर व वधू को माया के कमरे में धोक देने के लिये ले जाते है। वर की सालियां द्वार रोकती है और वर द्वार उचित नेग देने पर अन्दर प्रवेश करने दिया जाता है। माया को धोक लगने के पश्चात सालियां नेग लेकर गठबंधन खोलती है। इसके पश्चात वर वधू अपने अपने परिजनों से मिलनी करके आशीर्वाद प्राप्त करते है। परिजन उन्हें आशीर्वाद स्वरूप कुछ वस्तु या जेवर या रूपये देते है । बारात बिदाई कन्या पक्ष की ओर से कर उसके माता पिता और अन्य संबंधियों को संबंध के अनुसार कपड़े या रूपये नारेल या बर्तन दिये जाते है। इसके पश्चात् पुनः गठ बंधन करके वर वधू को बारात के साथ बिदा किया जाता है। वधू पक्ष की स्त्रियां बिदाई के गीत गाती हुई घर के दरवाजे तक जाती है। पुराने समय में वर वधू को म्याने (पालकी) में बिठा कर ले जाया जाता था आजकल कार में ले जाया जाता है। वर पक्ष की स्त्रियां बँधाई के गीत गाती है। माता नमक व पानी के लोटे को वर वधू के उपर उतार कर दरवाजे के दोनों ओर माया को धोक देने के पश्चात् वर की बहनें गठजोड़ा खोलती है। जिसके लिये भी नेग दिया जाता है। वर वधू एक दूसरे का कंकण खोलते है। वर वधू को विविध खेल खेला कर मनोरंजन किया जाता है वर की माता वधू को चुंदड़ पहनाती है अब वर वधू को मंदिर दर्शन करने ले जाते है। मंदिर में वर वधू क्षेत्रपालजी व भगवान को नारीयल चढाकर दर्शन करते है और मंदिर की दीवार पर वर के हाथ के ५ व वधू के हाथ के ४ निशान कंकू से लगाते है। वापस घर जाने पर वर के संबंधियों के अंगूठे पकड़ाई का दस्तूर वधू के द्वारा कराया जाता है। वधू पुरूषों के अँगूठे पकड़ती है तो एक नारीयल उनके पास रखकर पांव का अँगूठा पकड़ती है पुरुष द्वारा कुछ भेंट देने पर वह अँगूठा छोड़ती है और नारीयल उठाकर दूसरे पुरूष का अँगूठा पकड़ती है।महिलाओं के अँगूठा पकडने के लिये उन्हें वधू एक मुट्ठी पतासी व संबंध के अनुसार रूपये देती है और दोनों पांव दबाती है। महिलायें भी वधू को भेंट देती है। इसके बाद वधू के साथ आई हुई उसकी सहेलियां या बहनें उसे पीहर(मायके) ले जाती है। वहां वधू को लाख का चूंडा पहनाया जाता है, माथा गूंथते है और मेहंदी लगाते है। अब वधू को चूड़े के गीत गाते हुए स्त्रियां उसके ससुराल ले जाती है। वहां वर व वधू को मण्डप के नीचे बैठाते है। वर एवं वधू एक दूसरे को मातर खिलाते है इस रस्म को काण खलाना कहते है।इस तरह उदयपुर दशा हूमड़ बारह गाम समाज में विवाह के विभिन्न रीति रिवाज प्रचलित है।

(क) सागवाड़ा १८ हजार हूमड़ समाज

(श्री धनराजजी गुवाडिया द्वारा सागवाड़ा से)

(१) गर्भधान के संस्कार

१ गर्भधान के बाद सातवे माह में अगरणी (खोपरा.पण्णा) का रिवाज प्रचलित है। जिसमें सगे संबंधियों को एवं स्थानीय समाज को एक दिन भोज कराने की प्रथा प्रचलित है। कन्या के पियर पक्ष वाले, वर पक्ष एवं कन्या को कपड़े इत्यादि करते है।

२. अगरणी के बाद बहु को पीहर भेजने की प्रथा प्रचलित है। जो पहली सुवावड़ पीहर में करवाते है।

३. पुत्र अथवा पुत्री का जन्म होते ही उसकी सूचना ससुराल पक्ष को दी जाती है। साथ ही नवजात शिशु के कुमकुम से पगले कागज पर वर कन्या का भाई वर पक्ष के वहाँ देने जाता है। वहाँ उसे वर पक्ष की तरफ से सीख दी जाती है।

४. बालक एवं बालिका के जन्म के छठे दिन छट्ठी के लेख लिखने के लिए कोरा कागज एवं कलम दवात जिनेन्द्र की तस्वीर के पास रात को रखा जाता है।

५. प्रसुती होने के बाद वर पक्ष की तरफ से बेवई बेवाण एवं वर स्वयं भी जच्चा बच्चा की कुशल क्षेम पूछने जाते है।

६. प्रसुती में पांचवे दिन,दसवें दिन व बीसवें दिन प्रसूती को स्नान कराया जाता है। जब तक बीसवां नहीं निकालते हैं तब तक प्रसुती हुई महिला किसी को छूती नहीं है । साथ ही पैंतालीस दिन तक पनियारे (परंडा) और रसोई घर में भी नहीं जाती है।

७. पैंतालीस दिन बाद जच्चा बच्चा को जिन मंदिर दर्शनार्थ ले जाते है। उसी दिन बैंड बाजे के साथ सगे संबंधी की महिलाएँ जच्चा को सदर बाजार में होकर कुएँ पर ले जाते है। जिसको जलवा दिखाने का रिवाज कहा जाता है।

८. तीन माह के बाद सुवावड़ आणे की सीख कन्या पक्ष की तरफ से दी जाती है। जिससे नवजात शिशु को कपड़े, पारणा जेवर आदि दिये जाते है। शिशु के माता पिता को भी कपड़े आदि सीख में देकर विदाई करते है।

२. नामकरण संस्कार :- होली के अवसर पर बालक बालिका के ढूंढ कराने की प्रथा है। सगे संबंधियों को चढाई जाती है । नवजात शिशु को मंदिर ले जाते हैं वहां जिनेन्द्र देव के दर्शन के साथ भेंट चढ़ाई जाती है । उसके बाद कन्या का भाई नवजात शिशु को होलीका के सात फेरे लगवाता है।सभी लोग वर पक्ष के वहां एकत्र होते हैं जहाँ पतासी, इलायची एवं गुलाल छींट कर सभी का स्वागत किया जाता है। पंच ढूंढते है। डडें बजाकर बच्चे का नाम रखा जाता है।

३. मुंडन संस्कार - बालक के केश मुण्डन की प्रथा भी यहां प्रचलित है। जो बच्चे के तीसरे वर्ष अथवा पांच वर्ष बाद अपने आराध्य देव क्षेत्रपालजी गोरेश्वर अथवा डेचा जिन मंदिर ले जाकर कराते है। बालक की भुवा बालक के केश अपने खोले में झेलती है। सामाजिक भोजन दिया जाता है। जिसमें दाल बाटी एवम् दरिये के लड्डू बनाने की प्रथा है। बालक बालिका का नाम जन्माक्षर नक्षत्रों के आधार पर ज्योतिषियों के निणार्यानुसार रखा जाता है। बालक बालिका को जैन धर्म की शिक्षा पांचवे वर्ष से दी जाती है। इन्हें लोक शिक्षा भी दी जाती है।

विवाह संस्कार -

१. सगाई बालक बालिका की उम्र सत्रह अठ्ठारह वर्ष की होने पर उनका संबंध योग्य घर बार देखकर तय किया जाता है। आज से तीस वर्ष पूर्व में बच्चों की उम्र पांच छः वर्ष की होने पर सगाई कर दी जाती थी। लेकिन अब उसमें सुधार आया है। सगाई के वक्त कन्या पक्ष वाला नारियल एवम् रूपये वर पक्ष के बुजुर्ग को भेंट करते है। जिसे रूपया नारियल झेलने की रस्म कहा जाता है। सगाई की तीन प्रतियाँ, समस्त पंचों और मान्यता प्राप्त सेठ के द्वारा बनायी जाती है जो एक एक दोनों पक्षों को दी जाती है। एवम् एक प्रति पंचों के रिकार्ड में रख ली जाती है। पंचों की लागत एवं पाठशाला का चंदा वर पक्ष से लिया जाता है जबकि गोडजी (खेडचा) की रस्म कन्या पक्ष वाले देते है।

२. लगभग तीस वर्ष पूर्व यह रिवाज था कि कोई भी पक्ष सगाई छोड़ नही सकता था। परन्तु अब परिवर्तन हुआ है। यदि कन्या सगाई किये हुये वर के साथ शादी करने से मना करे तो संबंध विच्छेद पंच कर सकते हैं।

३. यदि वर पक्ष वाला सम्बन्ध विच्छेद करना चाहे तो उसे कन्या पक्ष वाले के गांव में पंच शामिल करना पड़ेगा। यदि पंच महानुभाव उक्त संबंध विच्छेद करना उचित समझे तो वर पक्ष वालों से अमुक रकम मंदिर में भेंट कराने के पश्चात् पंचों द्वारा तय की गई रकम कन्या पक्ष को देने के बाद ही सम्बन्ध विच्छेद कर सकते हैं।

४. सगाई करने के बाद लापीयारा याने बेवाई बेवाण को आमंत्रित करने का रिवाज है। जो दोनो पक्ष अपनी इच्छानुसार करते है।

५. लगन लेने पर वर पक्ष वाला अपने संबंधी पुरूषों को लेकर कन्या पक्ष वाले के वहाँ जाता है। लगन दोनों पक्षों की सुविधानुसार तिथि तय कर लगन का दिन मुकर्रर कर लिया जाता है।

६. शादी यदि बाहर गांव में हो तो वर पक्ष वाले बारात लेकर कन्या के गांव जाते है। पूर्व मे बारात तीन दिनतक कन्या पक्ष वालों के वहां रूकती थी। लेकिन समयानुसार बदलाव आया है। अब एक ही दिन में शादी करके बारात वापस आ जाती है। गोरजी शादी जैन विधि से कराते है।

७. मांडवा उगाने की प्रथा है जिसकी पंचायत लागत लेकर पंच गोरजी के नाम मांडवा उगाने की चिठ्ठी हैसियत के अनुसार करते है।

८. वर एवं कन्या पक्ष वालों के मामा पक्ष वाले मामेरा करते है। जो शादी के पूर्व अपनी अपनी हैसियत के अनुसार करते है।

९. शादी हो जाने के बाद लड़की वाले अपनी हैसियत के अनुसार पेरामणी पहनाते है। लड़की वाले बेटी, दामाद को जेवर, कपड़े,फर्नीचर आदि अपनी इच्छा से देते है।

१०. दिवाली आणा शादी के कुछ दिन पश्चात् पहली दीपावली तक नवपरिणिता कन्या अपनी पीहर (मायके) में ही रहती है। यदा कदा विशेष अवसर पर पीहर पक्ष की तरफ से बुलाने पर मेहमान की तरह जाती है। यदा कदा ससुराल में आती रहती है। दीपावली के अवसर पर दीवाली आणा करने की प्रथा

वागड़ क्षेत्र में प्रचलित है। आसोज बदी ३० याने दीपावली के दिन सगे संबंधियों के बच्चों को साथ लेकर जमाई कन्या पक्ष केवहाँ मेहमानी जाता है। दीपावली की रात मेरिया पुराते है। कुछ दिन रूक कर अच्छा दिन व मुहुर्त देखकर बेटी जमाई को बिदाई दी जाती है। दीपावली के बाद कन्या अपने ससुराल में ही रहती हे। विशेष अवसर पर पीहर पक्ष की तरफ से बुलाने पर मेहमानी जाती है।

११. वागड़ क्षेत्र में हूमड़ समाज में खेडवा ब्राह्मण गोरजी कहते है। सगाई, शादी एवं मृत्यु के कार्यक्रमों को सम्पन्न कराने गोरजी को आमंत्रित करना जरूरी समझा जाता है।

१२. पहले छोटी उम्र में सगाई कर देने की प्रथा थी। सगाई हो जाने के बाद मिरगी की बीमारी या कोढ़ होने प र ही संबंध विच्छेद किया जाता था वर पक्षवाले वधू को घर से निकाल देते या कन्या पक्ष वाला अपनी लड़की को ससुराल ही नहीं भेजता / इसके लिये ८० गांवों का डुंगरपुर,बांसवाड़ा,थांदला, झाबुआ, राजपुर, गुजरात के संतरामपुर, दाहोद,पारसोला,धरियावद, प्रतापगढ़ आदि का एक संगठन बना जिसमें पंच महानुभावों (लगभग २ हजार सज्जन) एकत्रित हुये। जिसके पहले अध्यक्ष श्री चंपालालजी मोदी झाबुआ वाले बने। सन् १९७८ में श्री धनराजजी गोवाडिया सागवाड़ा वाले चुने गये । उनकें कार्यकाल में कई कार्यकारिणी की बैठकें सम्पन्न हुई। कई बहनों को निकाल दिया गया था उनका सर्वे अध्यक्ष, मंत्री एवं कार्यकारिणी ने किया मंत्री मंडल के सहयोग से सभी गांवो का दौरा किया गया । लगभग सत्तावन बहनें ऐसी निकली जो अपने पीहर में रह रही थी। उन्हें पुनः अपने ससुराल में स्थापित नही कर पाये।समाज में नया नियम बना। जिसके अंतर्गत लड़का १७ से १८ वर्ष की होने पर ही सगाई की जावे। सगाई की अवधि लंबी नहीं होती। जिससे बहु को घर से निकालने की घटनाएँ नही हो रही है।

मृत्यु उपरांत रिवाज:- घर में किसी की मृत्यु हो जाने पर पूर्व में जो गलत तरीके से छाती पीट पीट कर रोने की प्रथा थी वह अब समाप्त हो गई। मृत्यु के बांरह, तेरह दिन हो जाने पर आसरवा एवं साडला डालने का रिवाज है। आसरवा की क्रिया गोरजी(खुड़ेवा) करवाते है। जिनकी नियमानुसार दक्षिणा दी जाती है। रक्षा बंधन के त्यौहार पर एवं मकर संक्राती के दिन एवं पर्युषण पर्व की समाप्ति पर गोरजी (खुडेवा) को सीधा एवं दान देने की प्रथा प्रचलित है। मृत्यु भोज कराने का रिवाज लगभग बंद हो गया है। यदि वृद्ध जन का देहावासन हो जाये और घरधणी समृद्ध हो और वह जाति भोजन देना चाहता है तो पंचों से स्वीकृति हासिल कर श्री जिन मंदिर में विधान कर जाति जीमण कर सकते हैं।

(ख) प्रतापगढ़ हूमड़ समाज की परम्परायें(रीति रिवाज) व उनके बदलते स्वरूप :-

(कौशल्या पतंग्या)

प्रतापगढ़ जैन यें हूमड़ समाज नदी की धारा की तरह है। जिस समाज में जड़ता आ जाती है उस समाज में रूके हुये पानी की तरह सड़ांध पैदा होने लगती है, पर यह समाज निरन्तर समय के प्रवाह के साथ चलता रहा। इस समाज ने क्रान्तिकारी परिवर्तनों को जगह दी तो आधुनिकता की दौड़ में बिखराव को भी जगह देने में पीछे नही रहा। एकता के सूत्र में पिरोई समाज रूपी यह माला ढीले पड़ते सामाजिक बंधनों और लुप्त होते रीति रिवाज के कारण बिखरती जा रही है, या यूं कहें कि हम नकल में अपनी अकल खर्च कर रहे है। हूमड़ों का अतीत, अत्यन्त गौरवशाली रहा है। राज्यों में हो या वाणिज्य में। अतीत में कई राज्यों का शासन संचालन, युद्ध और साहूकारी हूमड़ों द्वारा की जाती रही है। हूमड़ जन राजाओं के अतिविश्वास भाजन रहे और

२० वीं सदी ने इतने परिवर्तन हूमड़ समूह को बतलाये जिसको क्रमबद्ध करना लंबा काम है, किन्तु कुछ को गिनना आवश्यक है:-

१. उच्च शिक्षा के कारण सोच की सीमा का विस्तार।
२. स्त्री शिक्षा में वृद्धि के कारण परिवर्तन की लहर।
३. समाज के बहुत से परिवारों के सदस्यों का विदेशों में बसना।
४. आर्थिक समृद्धि ।
५. स्वतन्त्रता के पश्चात देश के समस्त समाजों में परिवर्तन का अभूतपूर्व दौर आया है।

अपनी कार्यकुशल और राज्यभक्ति के परिणामस्वरूप बड़ी बड़ी जागीरें और सनदें प्राप्त की। जहाँ एक ओर प्रशासकीय समूह को राज्याश्रय प्राप्त था, वहीं व्यापारिक क्षेत्र में भी हूमड़ों ने अपना कौशल दिखाया और नगर शेठ व राजकीय सलाहकारों के पद पर रहे। कामदार, हवालदार, तामिलदार बक्षी जैसी उपलब्धियाँ राज्याश्रय के फलस्वरूप इस समाज ने प्राप्त की ।

प्रतापगढ़ समाज रियासती जमाने में ३ वर्गो में बंटा हुआ था। एक तो शासकीय सेवा में संलग्न मुसद्दी वर्ग,दूसरा वर्ग वणिक कार्यो में व्यस्त व एक उपेक्षित तीसरा वर्ग जो एहलकार के नाम से जाना जाता था। यह वर्ग दुविधाजनक स्थिति में था। यह हमेशा से होता आया है कि राजकिय अधिकार प्राप्त समूह अपने वर्चस्व को कायम रखने का हर प्रकार प्रयत्न करता है और यह हूमड़ समाज में भी था। इससे समाज का एक तबका अशिक्षित और उपेक्षित रहा।पर धीरे धीरे सामन्ती व्यवस्था का युग समाप्त हुआ और व्यक्ति स्वात्यंत्र का बिगुल बज उठा। वणिक हूमड़ को अपने कौशल और बहुओं पर पूरा भरोसा था। उसी समय शिक्षा के महत्व को समझाते हुये शेठ रतनलालजी जुँआ ने एक मीडिल स्कूल की स्थापना की थी। प्रतापगढ़ या उसके बाहर काम धन्धें में लगे बहुत से लोग या इस पीढी के कई लोग इसी स्कूल के पढे हुये थे। इस जुँआ स्कूल में वागड़ प्रान्त के भी अनेक बच्चे पढ़ने आते थे। गिरती आर्थिक स्थिति के कारण समाज इस स्कूल को संरक्षण न दे सका और वणिक वर्ग को राज्याश्रय न मिला तो हूमड़ भाईयों ने प्रतापगढ से पलायन किया वे इन्दौर, मन्दसौर, बम्बई आदि जगहों में जा बसे व अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया व विश्वास के साथ सम्पन्नता भी अर्जित की । जैनियों में हूमड़ ५५वीं जमात है । देश के जैनियों में हूमड़ समाज ही एकमात्र ऐसा अग्रणी समाज है जिसने सामाजिकता के साथ धर्म या आम्नाय को नहीं जोड़ा, न आज न पहले कभी। धार्मिक सहिष्णुता का ऐसा अनुपम उदाहरण अन्यत्र कहीं नही मिलता। हूमड़ समाज में दिगम्बर श्वेताम्बरी, मूर्तिपूजक व स्थानकवासी, माँ बहनें, बेटियाँ और पुरूष वर्ग प्रायः सभी आम्नायों में बराबरी से शिरकत करते हैं। हूमड़ समाज में यदि धार्मिक सहिष्णुता उच्च स्तर पर है तो दूसरी ओर उसकी सामाजिक रीति रिवाजों में भी प्रगतिशीलता और सर्वोत्कृष्ट समाजवादिता समायी हुई है। उसका यह पक्ष इतना उज्जवल है कि इतर समाज इसका उल्लेखनीय रूप से उल्लेख करते हैं। अतीत में समाज के कर्णधारों ने जिन परिस्थितियों में इन सामाजिक रीति रस्मों को चलाया होगा। उस समय निश्चित् ही वह क्रान्तिकारी वर्ग का रहा होगा। अमीर और गरीब एक ही सामाजिक गौरव के साथ अपनी अपनी प्रतिष्ठा बनाये रख कर समाज में बराबर का दर्जा बनाये रखें। यह गांधीजी या रशिया का समाजवाद ही तो है जिसे नेहरूजी ने समाजीकृत समाज रचना का नाम दिया था । समाज का समर्थ मध्यम व गरीब वर्ग एक दूसरे के मध्य हूमड़ों की सामाजिक व्यवस्था में इस कदर स्वेच्छा से बंधा हुआ था कि वह उससे अपने में सामाजिक एकता महसूस करता रहा। विशाल सामाजिक भोज उसकी सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा रहती थी।

सगाई:-

इस रश्म में सामाजिक क्षमता के दर्शन होते हैं। एक जमाना था लड़के वालों को सगाई के लिये लड़की वालों को अपनी सम्पन्नता दर्शाने के लिये रकमों के डिब्बे लेकर दिखाने पड़ते थे। डब्बे के अभाव में लडके कुंआरे रह जाते थे, तो समाज के सम्पन्न और समाजसेवी अपने पास से रकम का डिब्बा दिखाकर सगाई करवा देते थे। इसके उदाहरण स्वर्गीय श्री चुन्नीलालजी बोबड़ा थे। वे और उनके कुछ हम उम्र साथी समाज के रूके कार्यो को अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के बल पर समाजहित में हर संभव कार्य पूरा करने का प्रयास करते थे। सामाजिक, पारिवारिक और व्यावासायिक विवादों को भी वे कुशलता से निपटा देते थे। पर समय ने करवट ली, आर्थिक समृद्धि व भौतिक चकाचौंध ने मापदण्डों को बदल दिया, अब लड़की वाले, लडके के परिवार वालों को अपनी आर्थिक समृद्धि से आकर्षित करते हैं। अन्य समाजों के प्रभाव से हूमड़ समाज में भी दहेज प्रथा आंशिक रूप में प्रवेश कर गई है। सगाई होकर छूटना साधारण बात हो गई। रूपया नारियल झेलाकर पंचों के सामने पांच आदमियों की उपस्थिति में होने वाली सगाई की जगह शालीन सगाई के त्यौहार होने लगे। जिसमें वैभव का पूर्ण प्रदर्शन होता है, यह है देश काल का परिवर्तन।

२. *विवाह:-* हूमड़ों की सामाजिक परम्परा में सामुहिक विवाह एक ही तिथि को करना आज के सन्दर्भो में कितना महत्वपूर्ण लगता है। विवाह की रस्में भी इतनी सरल औऱ समान थी कि समाज का सब तबका समान रूप से सहभागी बन जाता था। विवाह में प्रत्येक विवाह वाला परिवार सारी समाज में न्यौता देने जाता था और " मानो नी यूँ कई करो" आग्रह के साथ उसे न्यौता देता था, भले ही वह उसका रिश्तेदार न हो पर समाज का अंग तो था कच्चा रूपया ओर नारियल हर अमीर और गरीब इसको भेंट करना समान रूप से अपना कर्तव्य समझता था। जिसके घर विवाह होता , महिलाएँ उसके घर जीमने के पूर्व दोनों टाईम काम करवाने रोटियाँ और पूरियाँ बेलने जाती थी, और पुरूष वर्ग बाहरी बुलावे व अन्य आर्थिक कार्यो में सहयोग देना अपना कर्तव्य समझते थे । तेड़े में खोटी सुपारी का लेन देन समाज के दोनों वर्गो में समान रूप से प्रचलित था। प्रत्येक वर्ग अपनी रस्म का निर्वाह आराम से कर सके। नूतरने ओर मोटा कपड़ा पहनाने के बुलावे में केशरिया कपड़ों का लेन देन जिसे एक ही समान दिखावा करने के लिये दिया जाना मान्य था । पेरावणी में केशरिया अटाण और पगड़ियाँ परम्परागत चली आती थीं। विवाह की प्रत्येक रस्म ऐसी थी जिसमें समाजवाद का बोध होता था। मंडप विधान (मांडवा उगाना), जुँवारा उगाना, मामा द्वारा लगन करवाना, मंदिर की लाग चुकाना, नृत्य करना, घोड़े पर दुल्हन का बाना निकालना, आलवणा करना, वरोठी में लोगों को जीमने के लिये ले जाना, पर सामने वाले की हैसियत के अनुसार, चोरी अड़ना (चँवरी अड़ना) दुल्हा दुल्हन के घर जा रहा है, रास्ते में अपने ही समाज की किसी अन्य दुल्हन की चँवरी लगी है, तो वह उसे पार नहीं कर सकता था जब तक कि उस घर पर शादी करनेवाला दुल्हा नहीं आ जाता, ऐसा क्यों था ? इसके पीछे कारण यह था कि समाज का यह फर्ज है कि वहाँ दुल्हे के न आने के पीछे कोई विवाद तो नही है जिसके कारण समस्या उलझे। आगे जाने वाले बाराती तलाश कर उसकी समस्या का निदान करे, फिर आगे बढ़े। यह एक सामाजिक स्नेहिल प्रतिबन्ध था जिसे सबने स्वीकार किया था।

क्षत्रिय परम्परा के कारण दुल्हे की सजावट में तलवार, साफा, कलंगी, शेरवानी व चूड़ीदार पायजामा का रिवाज आया। राजघरानों, राजपूतों ठाकूरों और मुसलमानों के प्रभाव के कारण पर्दा प्रथा समाज में आई। आर्थिक स्थितियों का प्रभाव भी रीति रिवाजों पर पड़ता है। सामुहिक विवाह आर्थिक विषमता के कारण समाज ने प्रारम्भ किये किंतु जैसे ही आर्थिक विषमता पर काबू आया व स्थानों की दूरियाँ बढ़ी, सामुहिक विवाह का चिन्तन पिछड गया खोटी सुपारी का स्थान ड्राय फूटस ने ले लिया व भोजन में सादे पकवानों का स्थान लजीज पकवानों ने ले लिया।

शिक्षा का हूमड़ समाज में प्रारम्भ से ही प्रभाव रहा है। इस कारण कुप्रथाएँ समाज में नहीं बढ़ पाई। हूमड़ समाज के लिये रीति रिवाज एक सामाजिक कार्यव्यवस्था है, जो परिस्थिति के अनुसार लचीली और स्नेह को जोड़े रखने वाले सिद्धान्तो पर आधारित है। निश्चय पूर्वक आधुनिकता की छाप जिस क्षेत्र पर पड़ी वहाँ रीति रिवाज के नाम पर होने वाले अन्यायों में कमी आई है।

इन सबका परिणाम हुआ कि जीवन अधिक पारदर्शी हुआ है। पंचायतों का स्थान चुनाव पर आधारित समाज व्यवस्था ने ले लिया है। पहले पंच पंचायत के आधार पर सभी बंधन होते थे, पर आज की समाज व्यवस्था में सभी बंधन ढीले हो गये। समाज पर अंकुश लगाने का कोई दृढ़ सेतु नही है । आज परिस्थितियों ने करवट ली है। ज्यों -ज्यों समाज का बिखराव हुआ और हम इतर लोगों के सामाजिक पारिवारिक और बाह्य प्रभाव में आते गये हूमड़ों में भी उनका प्रभाव आने लगा और हम मूल से अलग होते गये। समाज के प्रमुख लोगों में समाज के चरमराते ढांचे को सम्हालने की क्षमता का क्षय हुआ और वे समाज पर अंकुश नहीं रख पा रहे है। आर्थिक सम्पन्नता ने अहं को पैदा किया। अहं के कारण समाज के किसी बन्धन में बँधे रहना व साथ चलना अपमान समझा जाने लगा। परिणामस्वरूप पहले तो मूल स्थान से विवाह बाहर होने लगे। प्रतापगढ़ छोड़ हम जहाँ रह रहे हैं वही विवाह संपन्न करने लगे। दूसरे अब हम अपनी वैचारिक सफलता इसमें समझने लगे हैं कि हूमड़ समाज के बाहर बच्चों की शादी सम्बन्ध करें। यही हमारा स्टेट्स सेम्बुल हो गया।दिखने में दोनों ही बातें सुन्दर है, पर हम अन्दर से खोखले और कमजोर होने लगे है, समाज में सामाजिक रिक्तता बढ़ती जा रही है, वैभव का प्रदर्शन जोर पकड़ता जा रहा है, समाज की आँखमुँदाई ऐसी परम्पराओं को प्रश्न दे रही है । समाज के कर्णधारों, अग्रणी और संचालकों की पकड ढीली पडती जा रही है । अतः टूटते बंधन समाज के अस्तित्व के लिये खतरा हो सकते। टूटते बंधनों को प्रेम, औदार्य अस्तित्व के बल पर एक करना होगा। समाज़ के सामाजिक सहयोग से यह कार्य सम्भव है। हूमड़ों को अपना आत्मलोचन करना होगा। शब्दों में नहीं,गोष्ठियों में नहीं,समग्र समाज के रूप में। व्यक्ति समाज के समूह के बिना जिन्दा नहीं रह सकता । आखिर वह यहां से टूटता है तो कहीं तो बँधेगा ही ! बंधन उसकी चेतना है, जड़ता नहीं। चेतना रहती है मरती नहीं। एक ऐसे शानदार समाज का अंग होने का गौरव अनुभव करना हमारा फर्ज है। टूटने में शान नहीं, शान जुड़ने में है।

प्रतापगढ़ हूमड़ समाज के मरणोपरान्त रीति रिवाज

कौशल्या पतंग्या

हर समाज के जन्म मरण की अलग अलग व्यवस्था बनी होती है। ये सब अलिखित और नियन्त्रित होती है। गर्व की बात यह है कि हूमड़ समाज के मरणोपरान्त के सभी रीति रिवाज सादगीपूर्ण और प्रगतिशीलता के द्योतक है। हूमड़ समाज में यदि किसी महिला/ पुरुष या बालक की मृत्यु हो जाती है तो उस (मृतक) की अर्थी को स्मशान में ले जाया जाता है। स्मशान में मृतक को जलाने के लिये वहाँ कहीं किसी प्रकार का कर्मकाण्ड नहीं होता । स्मशान में लेकर जाने वाले डागू "अरहन्त नाम सत्य" का उच्चारण करते हुए निर्धारित स्थान पर पहुंचकर साथ के छोटे बड़े सभी लकड़ियाँ लाकर कुछ अनुभवी चिता बना देते है, उस पर मृतक का शव रख कर उस पर लकड़ियाँ जमाकर घर के प्रमुख द्वारा अग्नि दी जाती है, इसमें भी समझदारी की बात यह है कि शवयात्रा में आये सभी व्यक्ति तब तक ठहरते है जब तक कि पूरा शव जल न जाये। हूमड़ समाज में तीसरे का रिवाज नही है, पर आजकल खण्डेलवाल समाज के सम्पर्क के कारण तीसरे दिन उठावना होने लगा है। जिस दिन मृतक का दाग लगता है उस संध्या या रात्रि को हो पांगे बांधने की रस्म होती है। इस रस्म का प्रयोजन यह है कि व्यक्ति बिना मन्दिर के दर्शन किये एक दिन भी नहीं रह सकता है। पांगे बाँधने के रिवाज में पहले पूरा समाज एकत्र होता था पर अब दूरियाँ और समय की कमी के कारण घर के लोग ही मिलकर मन्दिर हो आते हैं। व्यक्ति का सम्बन्ध मृतक के अन्तिम रूप से उसके जीवितावस्था तक माना गया है। तीसरे दिन कुछ सम्बन्धियों के साथ अन्य समाज के लोग राख सोरने और अस्थियाँ संचय करने जाते है।परन्तु हूमड़ समाज इस परम्परा में विश्वास नहीं करता । हाँ ! अपने समकक्ष समाज के अनुसरण में तीसरे दिन मन्दिर जाने लगे है, परन्तु इस रस्म में नहीं खिलाते है। समाज के निकट के रिश्तेदार महिला एवं पुरूष प्रतिदिन मन्दिर दर्शन करने के लिये मृतक के घर वालों को ले जाते है। महिलायें पहले की तरह अब छाती पीट पीट कर छेड़ा नहीं वारती है। शिक्षा के प्रसार के कारण अब धार्मिक प्रार्थनाएँ सामुहिक रूप से बोलंती हैं। पूर्व में आखे के एक दिन पहले हुँवारा निकट के परिवार के लोग एक साथ ही एक स्थान पर नहाते थे व साथ भोजन करते थे। पर अब यह रिवाज शिथिल हो गया है। आखा (आदखा) हूमड़ों के मरण के बाद का मुख्य रिवाज है। यह ५ दिन या ७ दिन समय, दिन देखकर, किये जाते है। इस दिन गोरजी(ब्राहाण) परिवार के मुखिया को तिलक निकालकर आये हुए लोगों के सामने अधिकृत रूप से वारिस घोषित करता है। मृतक के परिवार के लोग गोरजी को सीधा देते हैं। जिसमें ५ किलो आटा, नमक, घी, दाल आदि रखे जाते है। पर आज समय के अनुसार इस रिवाज में भी शिथिलता आ गई है । हमारे समाज में १२वां या १३वां नहाकर होता है । नुक्ते का रिवाज हमारे समाज में नहीं है। मृतक की याद में हम लोग कुछ धनराशि सामाजिक कार्य मन्दिर में देने की घोषणा करते हैं । अस्थियाँ प्रवाहित करने का हमारे समाज में कोई रिवाज नही है। हमारे रीति रिवाज समय के अनुसार परिवर्तनशील है। जैसे इन्दौर में यहां लोगों की सुविधानुसार आखे सुबह नो बजे होते है। मुम्बई में रात आठ बजे होते हैं। प्रतापगढ़ व वागड़ प्रान्त में दोपहर में एक से दो के बीच होते है। यानी हम सहयोग और सुधार में विश्वास करते है। बौद्धिक विचारशीलता हमारे जीवन का आधार है।

किसी निकट के रिश्तेदार की मृत्यु की खबर बाहर गांव से आती है तो उसे हमरावणी की संज्ञा देकर बैठक रखी जाती है। व महिला एवं पुरुष सभी साथ में मन्दिर जी जाकर शांतिपाठ कर मृतक के प्रति संवेदना प्रकट करते है । इस तरह मरण सम्बन्धी रिवाजों में भी हम सादगी को धारण किये हुए हैं।

गुजरात :- (बैंतालीस हूमड़ समाज) श्री बैंतालीस दशा हूमड़ दिगम्बर चौखला पंच के रीति रिवाज जातीय इतिहास जाति को जीवित रख सकता है, यह उसकी प्रतिष्ठा का प्रतीक है और उन सदगुणों को विकसित करता है, जिनके आधार पर जातीय अस्तित्व और उत्कर्ष निर्भर है । दीप से दीप जलता है, महापुरूषों के इतिहास और मिसालें हमें उनका अनुकरण करने के लिये प्रोत्साहित करती है। इतिहास हमें स्मरण कराता है कि हमारा कर्तव्य क्या है? संसारिक समस्याओं में उलझकर जब हम हमारे जातीय विचारों और कर्तव्यों को भूलने लगते है, तब हमें इतिहास द्वारा, हमारे पूर्वजो द्वारा किये गये सदकार्य हमें कर्तव्य पथ पर अग्रणी कराते है। इतिहास मानव जीवन के अतीत का सर्वागिण प्रतिबिम्ब होता है, अतीत से ही वर्तमान का जन्म होता है, बिना अतीत की यथार्थ जानकारी के वर्तमान कदापि उन्नत और समुज्ज नहीं हो सकता। अतः मानव के वर्तमान को उन्नत प्रगतिमय और समज्वल बनाने का एकमात्र साधन इतिहास है । जहां तक गुजरात के बैतालीस दशा हूमड़ समाज के रीति रिवाज का सवाल है, नियम कठोर थे और प्रत्येक समाज जन उन नियमों को मानना अपना कर्तव्य समझता था और सामाजिक रीति रिवाजों का उलंघन करने वाले को दण्ड भरना पड़ता था, इससे यह सिद्ध होता है कि समाज एकता के बँधन में मजबूती से बँधा हुआ था।

१. सगाई (वेवीशाल) :- इस समाज का यह रिवाज कि सगाई के समय कन्या की उम्र १५ वर्ष और लड़के की उम्र १८ वर्ष होनी चाहिये। लड़के और लड़की उम्र में सिर्फ २ वर्ष का अन्तर होना चाहिये। इस मामले में गुजरात समाज काफी प्रगतिशील है। अब लड़की की उम्र १८ वर्ष और लड़के की उम्र २१ वर्ष कर दी है। नियम के अनुसार सगाई के बाद किसी भी स्थिति में सगाई तोड़ी नहीं जा सकती है, इसलिये सबकी नैतिक जिम्मेदारी है कि सगाई सोच समझकर तय करे। वर या कन्या को कोई असाध्य रोग हो तो सम्पूर्ण जांच करने के बाद पंच जो निर्णय दे वह दोनों पक्ष को मानना होगा।

१. सगाई के समय जमाई को कन्यापक्ष की तरफ से अधिक से अधिक१० रू. व श्रीफल देने का रिवाज है। जो भी पक्ष इस नियम का पालन नही करेगा उसे दण्ड स्वरूप समाज को १००१ रू. देना पड़ेगा।
२. सगाई के समय, कन्या पक्ष और वर पक्ष दोनों की ओर से कुल ११ व्यक्ति से ज्यादा नहीं होने चाहिये। वर पक्ष की ओर से किसी भी प्रकार का चाँदला या वखसीस नही दी जानी चाहिये। जो इस नियम के विरूद्ध काम करता है उसे दण्ड स्वरूप समाज को २००१ रू. देना होगा ।
३. दिगम्बर जैन समाज के ही किसी उपजाति समाज की लड़की लाना हो या देना हो तो पहले स्थानीय पंच और कारोबारी की स्वीकृति लेना जरूरी है। मंजूरी लेने के लिये कम से कम एक माह पहले आवेदन पत्र देना जरूरी है। मंजूरी मिलने के बाद भी समाज को दण्ड स्वरूप २००१ रू. देने होंगे। बिना मंजूरी या स्वीकृति के विवाह करने पर रू. ५००१ समाज को देने का कठोर नियम बना हुआ है। इसके साथ ही इस पक्षों को सामुहिक विवाह नजराना भी समाज को देना आवश्यक है।
४. लड़के और लड़की की सगाई होने के बाद यदि वह उस सगाई को तोड़ना (छोड़ना) चाहते हैं तो बेतालीस समाज का यह नियम है कि लड़के की पुनः सगाई एक वर्ष तक तथा लड़की की सगाई ६ माह तक नहीं कर सकते हैं। और अन्य नियमों के अन्तर्गत समाज में उसे हरजाने की रकम भी भरनी होगी । विधि समिति (न्याय कमेटी) जो भी आदेश देगी दोनों पक्षों को अनिवार्य रूप से मानना पड़ेगा।

५. अगर वर और कन्या पक्ष दोनों राजी खुशी से सगाई तोड़ने के आवेदनपत्र पर हस्ताक्षर करके पंचों को (न्यायिक कमेटी) को आवेदनपत्र देते हैं, तो पंच दोनों पक्षों को जनरल मीटिंग में बुलाता है और आमने सामने बात करके सगाई तोड़ने की अनुमति देता है। पर दोनों पक्षों को हरजाने के रूप में समाज को २५०१ रू.देने जरूरी होगें।

६. समाज का कोई भी व्यक्ति (लड़का या लड़की) समाज के बाहर से (दिगम्बर जैन के अतिरिक्त) लड़की लायेगा या लड़की देगा तो भी दण्ड का प्रावधान है। यदि लड़का दूसरी जाति की लड़की लाता है तो उसे रू. ५००१ समाज को देने होगें और लड़की यदि समाज के बाहर शादी करती है तो उसे ८००१ रू. समाज को देने होगें। नियम भंग का गुण दोष देखकर न्याय कमेटी तय करती है।

७. समाज में कोई भी व्यक्ति समाज के बाहर से दिगम्बर जैन कन्या से शादी करना चाहता है, तो उसे व्यक्ति की उम्र कम से कम २५ वर्ष होना जरूरी है,व उस समाज पंच से स्वीकृत लेना जरूरी है।

८. सगाई करने के पश्चात् वसंत में वर पक्ष की तरफ से ३ तोला सोना, चांदी की पायल, एक जोड़ी कपड़े (सेला) देने का रिवाज है । इससे अधिक नहीं दे सकते, तथा वसंत देने दो ही व्यक्ति जाते हैं इससे अधिक देने वाले को दण्ड स्वरूप समाज को ५०१ रू. देना पड़ता है।

९. सगाई करने के पश्चात् वर पक्ष वाले किसी भी प्रसंग में पहली बार आये तो समधी को १०१ रू. एवं समधन को रू. १०१, जमाई को रू. १०१ तथा अन्य सम्बन्धियों को ५ रू. तक दे सकते हैं। इस नियम का उल्लंधन करने वाले को समाज को १००१ रू. देने पड़ते हैं।

१०. अगर कोई भी पक्ष का समधी या समधन किसी भी सगे संबंधी को प्रताड़ित करेगा तो दोनों पक्षकारों को समाज को २००१ रू. हर्जाने स्वरूप देने पड़ेंगे ऐसा नियम बना हुआ है।

११. अगर कोई भी पक्ष का समधी या समधन किसी भी सगे संबंधी को प्रताड़ित करेगा तो दोनों पक्षकारों को समाज को २००१ रू.हर्जाने स्वरूप देने पड़ेगें, ऐसा नियम बना हुआ है।

शादी सम्बन्धी रिवाज -

१. शादी का मुहूर्त जानने के लिये वर पक्ष की ओर से दो से अधिक व्यक्ति कन्या पक्ष के यहां न जावे ।

२. दुल्हन के गहनों का मापलेने जावे तब कन्या पक्ष की ओर से किसी प्रकार की भेंट न दी जावे। उपरोक्त दोनों नियमों का उलंघन करने वाले पक्ष को २५१ रू. समाज को देने होंगे।

३. सामुहिक विवाह में, समाज के सभी परिणय सूत्र में बँधने वाले जोड़ों को सम्मिलित होना जरूरी है। यदि कोई पक्षकार इसमें सम्मिलित नहीं होना चाहता है तो सर्व प्रथम उसे पंचों से लिखितमें मंजूरी लेनी होगी व साथ ही सामूहिक विवाह का नजराना भी पंचों के पास जमा करना होगा।

सामूहिक विवाह में सम्मिलित न होने वाले पक्ष जो अलग से शादी करेंगे, किसी भी प्रकार का कार्यक्रम नहीं कर सकते, यानी वे न तो विवाह पत्रिकायें, छपवा सकते हैं, और न ही जीमणवार कर सकते हैं। इन नियमों का पालन न करने पर रू. ५००१ समाज को दण्ड के रूप में देने होगें।

४. शादी व मामेरे के समय पतासा या खारेक या सोपारी जैसी कोई भी चीज नहीं बांटनी चाहिए व मामेरा की छाब में ५१ रू. से अधिक नही रखे जाते है। इसके विपरीत कार्य करने वाले को समाज को २५१ रू. देने पड़ेंगे।

५. शादी के प्रसंग में वरेडी के बिना कोई भी रकम देना या लेना नहीं चाहिये।

६. शादी के समय वरराजा को सासु का पल्लू नहीं पकड़ना चाहिये और सासु के द्वारा कोई भी रकम, वर को नहीं देना चाहिये। नियम का उलंघन करने वाले को ५०१ रू. समाज को देने होंगे।

७. पल्ला में वरपक्ष की ओर से हम सोना (७) तोला, बंसत के साथ चाँदी की एक जोड़ पायल, मोडियो एक, मोडियों की साड़ी एक, दर्पण एक, दागीना रखने की डिब्बी एक, कंकू नाड़ाछरी (रक्षा), इससे अधिक कुछ नही दे।

८. पेरावणी में कन्या पक्ष की ओर से निम्नलिखित वस्तुएँ दी जाती है:

(१) कंकू (२) नाडाछरी (रक्षा) (३) कंकावटी

इससे अधिक कुछ भी देने का रिवाज नहीं है ।इस तरह बेतालीस दशा हूमड़ दिगम्बर चौखलापंच के नियम समाज को सादगी के परिवेश में रखने के सर्वोत्तम आदर्श है । इन नियमों का पालन कर समाज जन सही समाजवाद की रचना करते हैं जो वास्तव में अनुकरणीय है।

महाराष्ट्र हूमड़ समाज में मरण संबंधी रीति रिवाज :-

हूमड़ जैन समाज प्रगतिशील समाज है और समय के अनुसार उसमें ग्राहाता की शक्ति विद्यमान है पर महाराष्ट्र हूमड़ जैन मरण संबंधी रीति रिवाज में आज भी रूढीवादी है। इन रिवाजों में सुधार की आवश्यकता है । जब किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है तब मृत व्यक्ति को मुख में सोने का छोटा सा टूकड़ा या पैसे डाले जाते है। फिर मृत शरीर को ताटी (तरगटी) में बांधकर व्यक्ति (निकट संबंधी) स्मशान घाट ले जाते है। शवयात्रा में घर का मुखिया या घर का ही बड़ा लड़का एक पात्र में अग्नि लेकर आगे आगे चलता है और यही आग मुखाग्नि में काम आती है। चिता प्रज्जवलित करने को दाग देना या अग्नि संस्कार कहा जाता है। शव के पूर्ण जल जाने पर सब लोग घर आते है। घर के मुखिया को स्नानादि कराकर सब लोग अपने अपने घर चले जाते है। घर के सभी व्यक्ति शुचिभूत (शुद्ध स्नान कर) हो जाते है तब सगे संबंधी उन्हें भोजन के लिये बिठाते है। रात्रि को सभी समाज के लोग रात व्यक्ति के घर सांत्वना देने आते है।

यदि समाज का कोई विशेष प्रतिष्ठित व्यक्ति दिवगंत होता है तो मंदिरजी में शोकसभा का आयोजन किया जाता है। जिस दिन व्यक्ति की मृत्यु होती है उस दिन रात को मंदिर में शास्त्र प्रवचन नहीं होते है क्योंकि समाज के सभी लोग दाग में जाते है अतः शास्त्र में नहीं बैठते है मृतक के घर पर ही मृतआत्मा की शांति हेतु इकट्ठे होते है। यदि बड़ी उम्र के व्यक्ति की मृत्यु होती है तो १२ दिन का सूतक पाला जाता है, यदि छोटे बच्चे की मृत्यु हो तो आगम के अनुसार सूतक विधि का पालन किया जाता है। १२वें दिन मंदिर में पूजन विधान करके सूतक निकाला जाता है और यदि बुढा आदमी मरता है तो प्रीतिभोज किया जाता है। मृतक की आत्मा की शांति के लिये किसी संस्था या मंदिर को दान दिया जाता है व शास्त्र दान भी दिया जाता है ।यदि पुरूष की मृत्यु होती है और उसके पीछे उसकी पत्नी हो तो वह अपने सभी अलंकार उतार देती है एवं श्वेत वस्त्राभूषण ही धारण करती है। यदि वयस्क व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो ३ महिने तक पकवान नही बनाते है और कोई भी मांगलिक कार्य घर में नहीं होता है। इस तरह अभी मरणोपरान्त रीति रिवाजों में महाराष्ट्रं में प्रगतिशीलता की कमी है जिनमें सुधार आना आवश्यक है।

महाराष्ट्र में प्रचलित रीति-रिवाज

(आनंदीलाल जीवराजजी दोशी)

३४० वर्ष पहले जब हूमड़ समाज का महाराष्ट्र में आगमन हुआ था तब गुजरात और महाराष्ट्र की सामाजिक स्थितियों लगभग बराबर जैसी थी। लड़का लड़की जन्मते ही उनके माता पिता विवाह के बारे में चर्चा करते थे और विचार मिलने पर माता पिता विवाह के लिये वचनबद्ध हो जाते थे। इस तरह बाल विवाह की प्रवृत्ति बनी हुई थी। बिना पंचांग या प्रत्रिका देखें ही विवाह हो जाते थे। बाल विवाह के कारण बाल विधवाओं की संख्या भी बढती जा रही थी । हूमंड़ समाज में उस समय पुर्नविवाह नहीं होते थे यह स्थिति सन् १९७५ तक चली ।

समाज के सुधारवादियों ने सामाजिक परिस्थिति पर विचार किया और लड़की की उम्र १५ वर्ष और लड़के की उम्र २० वर्ष तय हुई। उन दिनों समाज में शिक्षण खर्च भी कम था इसलिए अँग्रेजी पढने का चलन भी कम था।

वर्तमान समय में पत्र पत्रिकाओं, मिडिया के माध्यम से परिवर्तन आया। विचारों का मंथन चालू हुआ और समाज में परिवर्तन की प्रकिया प्रारंभ हुई।

पुराने समय में लड़के वाले लड़की वालों को एक हजार से दस हजार तक कैश देते थे और विवाह संबंध तय होते थे पर जब लड़कियों की संख्या बढ़ी तो दहेज प्रथा का रिवाज बढ़ा और २०१, ५०१ रूपये दहेज के रूप में देते थे धीरे-धीरे दहेज की रकम बढी। यह पद्धति भी ५० साल तक ही रही।

धीरे धीरे जन्म दर पर रोक का जमाना आया और लड़के लड़की समान समझे जाने लगे। जिससे दहेज प्रथा भी रोक लगी। लड़कियों की कमी की वजह से भी दहेज प्रथा पर रोक लगी और लड़कियों की मांग बढी, यानी लड़की के माता पिता से आगे रहकर कन्या की मांग रखने लगे।

धीरे धीरे महंगाई ने अपना दामन फैलाया और रजिस्टर्ड विवाह(कोर्ट मेरीज) प्रारंभ हुई।

गुजरात से जब हूमड़ समूह ने महाराष्ट्र में प्रवेश किया तो अपने साथ गुजराती गौरमहाराज साथ में लाये थे । ये गौर महाराज पुरोहित का काम करते थे। ये पुरोहित विवाह जैसे मंगल कार्य सम्पन्न करते थे।

यह मंगल कार्य आज भी चल रहा है। लड़का लड़की पसंद करने के बाद शादी की अनुमति देते है। दोनों पक्षों की शक्ति के अनुसार साखर पुड़ा होती है, यथेष्ठ मित्र मंडल भी इस समय उपस्थित रहती है। पंचायत में सभी समाज को निमंत्रित करके लग्न तिथि तय की जाती है। फिर सभी महिलाओं को आमंत्रित कर गणेश स्थापना की जाती है। गणेश स्थापना के बाद सभी महिलाओ को सौभाग्य कंगन, हल्दी कंकू , सरबत, चाय देकर स्वागत किया जाता है। फिर पिट्ठी मुहुर्त, हल्दी समारम्भ छीपाया फुलेरा मामेरा आदि कार्यक्रम होते थे।

मामेरा की प्रथा यहाँ भी अन्य प्रांतो जैसी ही है। मामेरा वर या वधू के माँ बाप को मामा की तरफ से कपड़े (वस्त्र) दिये जाते है व वर वधू को अपनी शक्ति के अनुसार ५०१ से लेकर २००० तक दिये जाते है। अच्छी परिस्थिति वाला कुटुम्ब पेरावणी भी करता है। आजकल सागेरे में सभी लोग नगद राशि देना ही पसंद करते है। मामेरा करने के पहले पग पूजे जाते है व मामा वर को घोड़े पर बिठाकर बैंडबाजे के साथ मन्दिर ले जाते हैं फिर मामेरा पहनाते है।

महाराष्ट्र में भी वर घोड़े पर बैठकर ही शादी के लिये आता है। तोरण द्वार पर दुल्हे राजा का स्वागत किया जाता है फिर स्टेज पर बिठाया जाता है। पंच की अनुमति से अक्षता क्षेपन किया जाता है।

आज सने ७५ वर्ष पहले शादी के कार्यक्रम एक महिने तक चलते थे पर अब समय की कमी, बढती महंगाई, विभिन्न दूरस्थ स्थानों पर बसे परिजन आदि कारणों से शादी का संपूर्ण कार्यक्रम एक दिन में सम्पन्न कर लिया जाता है।

सारांश में यही कह सकते है। कि समय के परिवर्तन के साथ रिति रिवाजों ने भी रचीला रूप धारण किया है और समाज को गति प्रदान की है।

विवाह

कौशल्या पतंग्या

विवाह अन्नतकाल से अतूल गहराइयों, अनेक रहस्यों को अपने में समेटे प्रेम और परिणय मानव जीवन की दो सरितायें है, जिनमें बहकर धुलकर ही मनुष्य मनुष्यत्व को प्राप्त करता है। वेदों और पुराणों में मनुष्य का उच्चतम लक्ष्य मोक्ष या निर्वाण प्राप्ति बताया गया है, और प्राप्ति के साधन के लिये जिन १६ संस्कारों को निर्धारित किया गया था उनमें विवाह विशेष महत्त्व रखता था। ऋग्वेद और अथर्वेद में भी विवाह पर विस्तार से चर्चा की गई है। आरम्भिक आर्यों के लिये एक घर और एक स्त्री तथा दोनों से सम्बन्धित कुछ अनिवार्य वस्तुएँ प्रतिष्ठा से जुडी थी। विवाह को सामाजिक अनिवार्यता के साथ साथ धार्मिक महत्ता भी प्राप्त थी। सृष्टि की अनंत असीम यात्रा का नाम जीवन है, और जीवन में जड़ता नहीं, प्रवाह होता है। इसी प्रवाह में विकास, प्रगति, अथवा परिवर्तन के प्रकार निहित हैं। परिवर्तन सोच का, सिद्धान्त का , मान्यताओं, और परम्पराओं का विवाह ऐसी ही एक परम्परा है , मान्यता है, सिद्धान्त है जो सहस्त्रों वर्षों के अनुभव से विकसित हुई है। समाज का सुगठन , कामेच्छा का नियमन और भावी संस्कृति सुचारू परिपालन का उद्देश्य ही विवाह की अवधारणा का आधार है। सभ्यता के विकास के साथ विवाह परम्परा में भी अनेक आयाम जुड़ते चले गये। धरती के हरेक कोने में होनेवाले विवाहों के रूप स्वरूप अलग है प्रकार अलग है। किन्तु उनमें स्त्री और पुरुष के सान्निध्य का ध्येय छिपा है, जो संसार की सृष्टि में सहायक है। यह निर्विवाद सत्य है कि सभ्यता और संस्कार के आरम्भिक विकास क्रम के साथ विवाह परम्परा आरम्भ हो गई होगी।

वैदिक साहित्य के अनेक ग्रन्थों में विवाह के विभिन्न और विशिष्ट उदाहरणों का उल्लेख मिलता है, किन्तु विवाह व्यवस्था का विस्तार से वर्णन "मनुस्मृति" में हुआ है। इसमें परिस्थितिजन्य आवश्यकता के अनुरूप विवाह को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित कर इसे अनुष्ठान और बंधनकारी माना गया और यह घोषित किया गया कि, विवाह संबधों का आधार पूर्व जन्म के संस्कार है और मृत्यु के बाद नये जन्म में भी कायम रहेगें। भारतीय संस्कृति में वर्णित कुल आठ प्रकार के विवाहों में चार प्रकार के विवाह अत्यधिक श्रेष्ठ और अन्य चार प्रकार के विवाह मान्यता होने के बावजूद अच्छे नही माने गये। प्राचीन भारतीय समाज में प्रचलित विवाह व्यवस्था की विशिष्टता थी कि एक बार शारीरिक संबंध बन जाने के बाद फिर सबंध टूटने का प्रावधान नहीं था। समाज को स्वेच्छाचारिता, और अराजकता से बचाने के लिये प्रावधान इतने कड़े किये गये थे, कि व्यक्ति चारित्रिक कमजोरियों के प्रकट होने से बहुत डरा करता था।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थ से जीवन रूपी मंदिर की नीव धर्म है और जीवन मन्दिर का शिखर मोक्ष है। अर्थ और काम जीवन मन्दिर का मध्यम भाग है जिसे हम गृहस्थ जीवन कह सकते हैं। इससे जो मुक्त होता है वह साधू जीवन है। स्त्री पुरूष का जीवन भर के लिये स्नेह एवं सहयोग के सूत्र में पति पत्नी के रूप में बँधना विवाह है। इसके परिण्य (सर्व प्रकार कन्या के जीवन का उत्तरदायित्व लेना) व पाणिग्रहण

(कन्या का हाथ, पकडकर सहयोग का बचन देना) ये नामान्तर है। विवाह शब्द का अर्थ है विशिष्टता के साथ वहन करना। विवाह षोडस संस्कारों से संबंधित महत्वपूर्ण संस्कार है। विवाह समान कुलशील तथा भिन्नगोत्र में उत्पन्न हुये परिवार के साथ होना चाहिए।

विवाह धर्म, परम्परा अक्लिष्टरति, कुल व सदाचार की उन्नति एवं देव शास्त्र गुरू की अर्चना के लिये किया जाता है। कर्मभूमि के प्रारम्भ में भगवान आदिनाथ प्रथम तीर्थकर ने विवाह में गृहस्थ जीवन स्वीकार कर प्रजा को असि,मषि,कृषि, शिल्प, सेवा, वाणिज्य इन षटकर्मों का उपदेश एवं मार्गदर्शन कर अंत में संयम त्याग एवं तपस्या द्वारा निर्वाण मार्ग को स्वयं ग्रहण किया।

जिनसेन आचार्य ने अपने "आदिपुराण" में ९वीं शताब्दी संस्कार विधि का (षोडस संस्कार) विस्तृत वर्णन किया है। विवाह के वाग्दान वरण,पाणिग्रहण, सातफेरे व सप्तपदी ये प्रमुख अंग है। नारी, जीवन के प्रारम्भ में कन्या, मध्य में वधू, और अन्त में जननी के रूप में परिपूर्ण मानी जाती है। गृहस्थ जीवनरूपी रथ के स्त्री और पुरूष दो पहिये है। ये दोनों पहिये समान होने पर यात्रा सुखपूर्वक चलती है। गृहस्थ जीवन कुल,शील और सदाचार की समानता से सुखमय होता है।

विवाह व्यवस्था- साहित्य में विवाह के आठ प्रकार बताये गये हैं। ब्राह्म,दैव, आर्ष, प्रजापत्य, असुर, गान्धर्व,राक्षस और पैशाचन। ज्योतिष साधारणतः विशिष्ट कन्याओं के विषय में भविष्यवाणी करते हैं कि किस समय और किस स्थिति में महापुरुष से कन्या का विवाह होगा। समुद्र सेठ की पुत्री क्षेमकी तथा सागरदत्त की पुत्री विमल का सम्बन्ध जीवन्धर के साथ ऐसी ही भविष्यवाणी पूर्वक हुआ। इसमें प्रायः कन्या का पिता वर अथवा वर के पिता अथवा वर के सम्बिन्धियों के समक्ष प्रस्ताव रखता और स्वीकृत हो जाने पर विधि पूर्वक विवाह कर देता। विवाह में कहीं कहीं दुति, पति प्राप्त कराने में अधिक सहायक होती थी। "कुलोचिता वभूवेय कुमार प्राप्ति दूति का" (३.३५) विवाह घटना में अनेक कारण होते हैं । उदाहरणार्थ कभी कला विशेषमें कन्या पराजित होती और वह विजेता का स्वयंवरण करती। वीणावादन से पराजित होकर गन्धर्वदत्ता जीवन्धर का विवाह सम्बन्ध हुआ। जीवन्धर के प्रभाव से जिनमन्दिर के कपाट खुलने पर क्षेमकी के साथ, अस्त्र शिक्षण की कृतज्ञतावश कनकमाला के साथ विवाह हुआ।

किसी योद्धा विशेष को कन्या देने में कन्या का पिता गौरव अधिक समझता था। भीलों को पराजित करने पर नन्दगोप ने जीवन्धर के साथ अपनी कन्या गोविन्दा का परिणय किया। साथ ही सप्त स्वर्णयुक्तलिकायें भी भेंट की ।

स्वयंवर विवाह - की अनुमति राजा से लेनी पडती थी और इस वृतान्त की घोषणा समस्त नगरों में करनी पडती थी। स्वयंवर मण्डप को अधिकाधिक सुसज्जित किया जाता था। उसमें मरकत, पदमरा आदि मणि लगाये जाते थे। कुकुंम रस का सिंचन होता। सुरभित पुष्प विकीर्ण किये जाते थे। प्रत्येक राजकुमार के लिये पृथक पृथक मंच बनाया जाता था। यदि किसी कला विशेष में निपुणता प्रदर्शन पूर्वक स्वयंवर होना हो तो उसके लिये भी एक मंच होता था। कन्या को शिविका में बैठाकर स्वयंवर मण्डप में लाया जाता था जहां कला प्रदर्शन पूर्वक स्वयंवरण होता। कन्या के लिये दूती इस कार्य में सर्वाधिक सहयोगिनी बनती थी। राजाओं के वंश,पराक्रम राज्यादि विषयक परिचय वही दिया करती थी। स्वयंवर में समागत प्रायः प्रत्येक राजा अथवा राजकुमार के साथ उसकी अपनी सेवा रहती थी। प्रायः समूचे साहित्य में स्वयंवर के बाद संघर्ष होता हुआ दिखाई देता है।

युद्ध में विजयी होने के बाद कन्या का पिता शुभ मुहुर्त में वर वधू का विवाह करना निश्चित करता। तदर्थ एक सुन्दर और विशाल पट मण्डप बनाया जाता था। इसी पटमण्डप के बीच मांगलिक द्रव्यों से संगत वेदिका बनायी जाती जंहा पर विवाह सम्बन्धी समूचा मांगलिक कार्य सम्पन्न किया जाता। इसके पूर्व वर वधू का मांगलिक अभिषेक किया जाता। तदन्तर कन्या को प्रसाधन गृह में ले जाते जहाँ पर उसकी सखियॉ उसे पूर्व दिशा की ओर मुँहकर बैठाती और अलंकृत करती।

इसके बाद वेदी के समीप पूर्व दिशा में मुँहकर दोनों को चौकी पर बैठाया जाता वेदिका के चारो ओर मणिमय दीपक जलाते, वाद्य बजाते, मन्त्रवेत्ता मन्त्र पठन करते। इसी बीच सिद्ध प्रतिमा की पूजन होती। प्रसन्नता व्यक्त करने की दृष्टि से वराङ्गनाओं के नृत्य ज्ञान का भी प्रबन्ध किया जाता। (मारमती पदनुपुखानकाण्ड) मधुर गान चतुरवाराङ्गना नर्तन विलासिते पृ. ६९) वन्दीजन विरूदशान करतें। इसके बाद शुभ मुर्हुत में कन्या का पिता स्वर्णकलश से वर के हाथ पर "दीर्घ भवन्तामिह जीवितम्" कहकर जलधारा छोडता और बाद में वर वधू का पाणिग्रहण करता।(३.४८पृ.१०५)

मामा की लडकी के साथ विवाह करने की भी प्रथा थी। जीवन्धर की आठवीं पत्नी गोविन्दा उसके मामा की लडकी थी। यह प्रथा दक्षिण में तो थी पर उत्तर में भी दिखाई देती थी। बहु पत्नी विवाह प्रचलित थी सभी पुराण इस बात को पुष्ट करते हैं। प्रत्येक पत्नी का पृथक पृथक प्रासाद रहा करता था। प्रवास काल से पति के वापस आने पर पत्नी स्वयं उससे मिलने नहीं जाती बल्कि पति स्पष्ट होता है कि पत्नी का स्थान उच्च था (१०.२.३) विवाह के लिये कन्या और पुत्र की राय भी ली जाती थी। हरिवंशपुराण में ऐसे अनेक उदाहरण आते हैं।

गन्धर्व विवाह :- का आधार नर नारी का प्रेम होता था। किसी मन्दिर में देवता के समक्ष विवाह होने के उल्लेख मिलते हैं। हरिवंश पुराण २९१८ १२ ६६.६७ पर इस तरह का वर्णन है।

राक्षस विवाह :- कन्या के परिवार वालों की इच्छा के विरूद्ध बलातअपहरण करके विवाह करने को राक्षस विवाह कहते है।

जिनसेन आचार्य द्वारा षोड़स संस्कार में विवाह विधि - इस प्रकार है :-

जैन विवाह संस्कार

मंगलाचरण

प्रावर्तयज्जनहितं खलु कर्मभूमौ
षट्कर्मणा गृहिवृषं परिवत्यं युक्त्या ॥
निर्वाणमार्ग मनवद्य मजः स्वयंभू ः।
श्रीबभिसूनुजिनपो जयतात् स पूज्यः ॥१॥

श्री जैनसेन वचना न्यवगाह्य जैने ।
संघे विवाहविधि रूत्तमरीतिभाजाम् ॥
उद्दिश्यते सकलमन्त्रगणैः प्रवृत्तिं ।
सानातमी जनकृतामपि संविभाव्य ॥२॥

अन्याङ्गना परिहृते निज दार वृत्ते
धर्मो गृहस्थ जनता विहितोऽयमास्ते ॥
प्राच्य प्रवाह इति संतति पालनार्थं
मेवं कृतौ मुनिवृषे विहितादरः स्यात् ॥३॥

विवाह और उसका उद्देश्य

शास्त्र की विधि के अनुसार योग्य उम्र के वर और कन्या का क्रमशः वाग्दान (सगाई) प्रदान, वरण, पाणिग्रहण हो कर अन्त में सप्तपूर्वक विवाह होता है। यह विवाह धर्म की परम्परा को चलाने के लिए, सदाचरण और पुत्र पुत्री द्वारा कुल की उन्नति के लिए और मन एवं इन्द्रियों के असंयम को रोककर मर्यादा पूर्वक ऐन्द्रियक सुख की इच्छा से किया जाता है। क्योंकि पूर्ण ब्रहाचर्य का पालन अल्प शक्ति रखनेवाले स्त्री पुरूषों से नहीं हो सकता इसलिए आचार्यों ने ब्रहाचर्याणुव्रत में पर स्त्री त्याग और स्वास्त्री सन्तोष का उपदेश दिया है। यह विवाह देव, गुरू, शास्त्र की साक्षी से समाज के समक्ष होता है जो जीवन पर्यन्त रहता है। वर और कन्या में कन्या से साधारण तौर पर वर की उम्र कम से कम दो वर्ष और अधिक से अधिक दस वर्ष बडी होनी चाहिये। वर्तमान में कन्या की विवाह योग्य वय १८ वर्ष में और वर की २० वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये ।

विवाह में आजकल की परिस्थिति को देखते हुए धार्मिक क्रिया और आवश्यक सामाजिक नियमों के सिवाय अन्य रीति रिवाजों में खर्च और बचत करने में ही हित है।

विवाह की सामग्री

श्रीफल, विनायक यन्त्र, शास्त्र, सिंहासन, चमर, छत्र, अष्टमंगल
२ १ १ १ १ ३
द्रव्य (ठोणा, चमर, छत्र, दर्पण, ध्वजा, झारी, कलश, पंखा) जलभरा
सफेद लोटा, सफेद कपडा १ हाथ, लाल चोल एक हाथ, फूल माला
१ २
तीन कटनी वाली बेदी, पक्की नम्बरी ईटें , सूखी काली मिट्टी, कुमकुम
१ ८ १कि. २५ग्रा.
पिसी हल्दी, मेंहदी, लच्छा, नागर वेलपान , सुपारी, हल्दी गांठ, सरसों
५० ग्रा. २५ ग्रा. २५ ग्रा. २ ४ ४ २५ ग्रा.

दीपक, रूई, माचिस, घी, चाटू लकडी का, लाल चन्दन की व सफेद
४ १ ५०० ग्रा. १ २०० ग्रा.
चन्दन की समिधा (लकडी) बड़ पीपल आम ढाक की सूखी समिधा
४०० ग्रा. ४०० ग्रा.
देशी कपूर, पूजन द्रव्य (चावल ,गिरी (चटकें) (केशर, बादाम, लौंग)
१५ ग्रा. १ कि. १०० ग्रा. ३ ग्रा. ५० ग्रा. १० ग्रा.
पूजन उपकरण हवन द्रव्य (बादाम गुली, खोपरा, पिस्ता)
२५ ग्रा. २५ ग्रा. १० ग्रा.
लौंग, इलायची, खारेक, शक्कर का वूरा शुद्ध दशांग धूप,
१० ग्रा. १० ग्रा. १५ ग्रा. १५ ग्रा. ७५ ग्रा.
थाली, कटोरी, शुद्धगादी या गलीचा, पाटे, चौकी
४ २ १ ४ २
आसन, चुअनन्नी, सूत की माला, पंचरत्न पूडी, शास्त्र
२ २ १ १ १

नोट - विनायक यन्त्र मन्दिर से लाने और ले जाने में घर पर छूआछूत आदि से अविनय होता है अतः रकाबी में बना लेना चाहिये। अष्ट मंगल द्रव्य मन्दिर से चाँदी पर खुदे हुए मिलते हैं। पक्की नम्बरी ८ आठ ईटों से एक हाथ लम्बा चौडा तथा ४ अंगुल ऊँचा शास्त्रानुसार स्थंडिल बन जाता है। ईंटे केवल रख देने और ऊपर से मिट्टी बिछा देने से काम चल जाता है और कारीगर की आवश्यकता नहीं रहती। चाटू १ हाथ लम्बा होता है। हवन द्रव्यों को इमानदस्ते में कुटा कर मिला लेना चाहिए।

वाग्दान

सगाई मे पंचों के समक्ष वर पक्ष और कन्या पक्ष अपने वंश एवं गोत्रादि का परिचय देकर सम्बन्ध निश्चित करते हैं जिसकी लिखापढ़ी पंचायत के मन्दिर में हो जाती है। पोरवाड आदि जातियों में इस समय विनायक यन्त्र की पूजन भी की जाती है। सगाई के समय वर पक्ष को ओर से जो सोना या अन्य नकद रकम का गुप्त रूप से सौदा होने लगा है, उसें बन्द कर दोनो पक्ष के प्रेम को बढ़ाने का ख्याल रखने मे ही सबका हित है। समधी को मिलने में भी अधिक रकम दी जाना उचित नही है। इसमें गरीब व्यक्ति को भी मजबूर होना पड़ता है।

बाना (विनायक) बैठाना

विवाह के दिन प्रातः कन्या और वर अपने अपने यहाँ के श्रीजिनमन्दिर में जाकर शुभ मुहुर्त में पंच परमेष्ठी यानी विनायक यन्त्र की पूजा करें। वहाँ से घर आकर गृहस्थाचार्य से छोटा बड़ा विनायक का दीवार कंकण बन्धन करावे। कंकण बन्धन कन्या के बायें हाथ में और वर के दाहिने हाथ में किया जाये। विनायक पूजा आगे दी गई है। प्रथम कंकण में ५ गांठ और दूसरे में ७ गांठ लगावें।

कंकण बन्धन मन्त्र

जिनेन्द्र गुरू पूजनम् श्रुतवचः सदा धारणम् ।
स्वशीलयभरक्षणं ददन सत्तपोवृहंणम् ॥
इति प्रथितषटक्रिया, निरतिचारमास्तां तवे
त्यथ प्रथित कर्मणि विहित रक्षिकाबंधनम् ॥

हूमड इतिहास भाग २

टीका व लग्न

कन्या पक्ष की ओर से विवाह के पूर्व टीका में वर के लिए वस्त्र व अंगूठी तथा विवाह मुहुर्त लिखा हुआ मांगलिक लग्नपत्र पंचो के समक्ष भेजा जाता है जो वर को पाटे पर बैठा कर फल व पुष्पमाला के साथ गोद में रखा जाता है। इस समय वर की ओर से कोई भी ठहराव (शर्त) नहीं होना चाहिए । यहीं वर विक्रम का रूप माना जाता है जबकि सोना व ऊँचा सामान तथा हजारों रूपये नगद दिये जाते है। इस समय व आगे भी उक्त सामान के सिवाय कुछ भी नहीं लेना चाहिये वर को इस समय साहस दिखाना चाहिये।

मण्डप निर्माण (स्तंभारोपण)

विवाह के सात या पाँच दिन पूर्व विवाह मण्डप के लिये मण्डप की आवश्यकता हो तो स्तंभारोपण विधि की जाती है। यह स्तंभ ज्योतिषी से पूंछकर आग्नेय दिशा में कन्या के यहाँ कन्या के पिता या जो विवाह हाथ में लेता है उसके द्वारा और वर के यहाँ वर के पिता या जो विवाह हाथ में ले, उसके हाथ से शुभ मुहुर्त में होता है। कहीं कहीं स्तम्भारोपण कन्या और वर के हाथ से भी करा लिया जाता है।जहाँ जैसा हो वहाँ वैसा करा लेवें। इसकी विधी में गृहास्थाचार्य स्तम्भारोपण के लिए गडढा खुदवा कर वर या कन्या के पिता माता आदि को मंगल कलश, संकल्प, यन्त्र पूजा पूर्वक स्तम्भ का आरोपण करावें। स्तम्भ के ऊपर के हिस्से में लाल चोल में श्रीफल, सुपारी, हल्दी गांठ, चुअनन्नी, सरसों , पान, आम के पत्ते, अमरबेल आदि लच्छे से बांध दे और गडढे के पास स्तम्भ खड़ा कर जल, दूध, पारा, कुंकुम आदि क्षेप कर गडढे में स्तम्भ का आरोपण करे। फिर शान्ति पाठ एवं विसर्जन पाठ करें।

विवाह वेदी

वर के यहाँ केवल मण्डप की रचना होती है और कन्या के यहाँ मण्डप के सिवाय भॉवर (फेरे) के लिए विवाह वेदी की रचना भी होती है। मण्डप में अथवा अन्यत्र जहाँ फेरे कराये जाते है। उस स्थान पर मण्डवा (चन्देवा) ताना जाता है और कहीं कहीं मानस्तम्भ व कलश (मिट्टी का) भी स्थापित किया जाता है। इस जगह वेदी की रचना की जाती है। वेदी बनाने के लिए कम से कम चार हाथ की लम्बी चौडी जमीन के आसपास चारों कोनों मे चार कुण्डे रखकर चार चार बाँस तथा ऊपर भी कुल चार बाँस लगाकर उन्हें मूंज की रस्सी और लच्छे से बाँध देना चाहिये जिसके नीचे वर कन्या खडे रह सकें। इन वेदी के बिलकुल बीच में एक हाथ लम्बा चौडा स्थंडिल , जो विवाह सामग्री के भीतर बताया गया है बनाया जाय। इसी पर हवन होगा। इस स्थंडिल के पश्चिम या दक्षिण ओर आधा हाथ छोडकर एक हाथ की जगह में तीन कटनी वाली चौकी या उस हिसाब से एक हाथ लम्बाई से ईंटे रख देना चाहिये।

तोरण व पाणिग्रहण संस्कार विधि

कन्या के यहाँ वर पक्ष बारात लेकर जाता है। यह बारात बाहर गाँव की हो तो सारी विवाह सम्बन्धी कार्यवाही एक दिन में हो जाना चाहिए। बारात की शोभायात्रा में पुरूषों या महिलाओं द्वारा बाजार में भोंडा नृत्य कुलीन परिवार के योग्य नहीं है। वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए एक दिन में तोरन और फेरे होकर दूसरे दिन बारात बिदा कर देना चाहिए। तोरन में भी बारात का स्वागत होकर तिलक आरती हो जाय तथा बारात का मर्यादा के भीतर जलपान इल पुष्प आदि से सम्मान कर दिया जावे। इस समय रात्रि को अन्न आदि व सिगरेट,कोकाकोला आदि अनुपसेव्य पदार्थो का उपभोग न किया जाय । दिन में ही पाणिग्रहण संस्कार हो जाना चाहिए। तोरन का अभिप्राय है कन्या के यहाँ पर जाना, न कि लकड़ी का तोरण लगाकर छड़ी मारना, यह हिंसा का प्रतीक है। उत्तर प्रदेश में पहले और मध्य भारत में अब यह सुधार होने लगा है। अग्रवाल जाति में बारात जाते समय और कन्या पक्ष के यहाँ आने पर यंत्र पूजा होती है। आजकल बारात आने पर वर वधू स्टेज पर परस्पर माला डालते हैं।

फेरे के आधा घण्टे पहले गुहस्थाचार्य विवाह की सामग्री देखकर उसे वेदी के स्थान पर यथा स्थान पर जमा दें। पुजारी से पूजन द्रव्य धुलवा कर मंगा लिया जाय। स्थेडिल पर कुंकुम से सातिया बना ले और चारों ओर दीपक रख दें। पूर्व या उत्तर मुख लगी हुई तीन कटनी में ऊपर यंत्रजी, बीच में शास्त्र और नीचे गुरूपूजा के निमित्त चौसठ ऋद्धि कागज पर माँडकर रखे तथा वही अष्टमंगल द्रव्य सजावें। वर कन्या के बैठने के लिए यंत्र के दक्षिण और नई गादी बिछ्वा दे जिस पर वे उत्तर मुख बैठ सकें।

विवाह विधि

विवाह में अग्रवालों में कन्या प्रदान और पाणिपीडन (हथलेवा) का मुहुर्त मुख्य माना जाता है। ज्योतिषी इन्हीं मुहुर्तो को निकाला करते है। परंतु जैन विधि के अनुसार हूमड़ो में जबकि वर कन्या विवाह वेदी में आते हैं तब मंगलाष्टक बोलकर परम्पर वरमाला पहनाई जाती हैं उसी के मुहुर्त माना जाता है।

कन्या को स्नान करा के स्त्रियाँ वर के स्थान (जनिवासा) पर वर को स्नान कराने आवें, और जैन मंदिर पास में हो और सुविधा मिले तो दर्शन कर ठीक मुहुर्त में १५ मिनिट पहले मंडप में आ जाय। दरवाजे पर कन्या की माता चावल का छोटा सा चौक पूरकर पाटा रखे और उस पर वर के पैर जल से धोवे फिर आरती करे। कन्या का मामा वर को तिलक कर एक रूपया व श्रीफल भेंट कर साथ में वेदी पर लाकर गादी पर पूर्व मुख खड़ा कर दे। पीछे कन्या को भी गादी पर लाकर वर के सामने पश्चिम मुख खड़ा कर दे। वर और कन्या को एक एक पुष्पहार दे दे। वर और कन्या के मुँह में इस समय पान सुपारी न हो और कन्या चप्पलें पहिनें वेदी में न आवे। गृहस्थाचार्य आगे लिखा मगलाष्टक पढ़े और ठीक मुहुर्त में कन्या वर को और वर कन्या को पुष्पमाला पहना दे। पीछे दोनों पूर्व मुख होकर गादी पर बैठ जावें कन्या वर के दक्षिण ओर रहे। गृहस्थाचार्य वर से मंगल कलश स्थापन करावे। कलश में शुद्ध जल, सुपारी, हल्दी गाँठ, चुअन्नी और पुष्प डालकर श्रीफल व लाल चौल से ढक लच्छे से बाँधे और सूत की माला पहनावें।

मंगल कलश स्थापन मंत्र

ओमद्य भगवतो महापुरूषस्य श्रीमदादि ब्रहाणो मतेऽस्मिन् विधीयमान विवाह कर्मणि अमुक वीर निर्वाण संवतसरे, अमुक तिथौ, अमुक दिने, शुभ लग्ने,भूमि शुद्धयर्थ,पात्रशुद्धयर्थं, क्रियाशुद्धयर्थ, शांत्यर्थ, पुण्याहवाचनार्थ शुद्ध प्रासुकतीर्थ जल पूरित मंगलकलशस्थापनम् करोमि भवीं इवीं हं सः स्वाहा।

नोट - इसे पुण्याहवाचन कलश भी कहते है।

मंगलाष्टक

श्रीमन्नस्त्रसुरासुरेन्द्रमुकुट प्रद्योतरत्नप्रभा
भास्वत्पादनखेदवः प्रवचनांभोधावस्थायिन : ॥
ये सर्वे जिनसिद्ध सूर्यनगतास्ते पाठकाः साधवः ।
स्तुत्या योगिजनैश्च पंचगुरवः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥१॥
अर्हतो भगवन्त इन्द महिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः ॥
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः ॥
श्री सिद्धान्त सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः ।
पंचैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वतु ते मंगलम् ॥२॥
सम्यग्दर्शनबोधवृत्त ममल रत्नत्रयं पावनं।
मुक्ति श्रीनगराधिनाथजिनपत्युक्तोपवर्गप्रदः ॥
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यामखिलं चैत्यालयं श्रयालयं ।
प्रोक्तं च त्रिविधंचतुविधममी कुर्वतु ते मंगलम् ॥३॥

अनादि परम्परा सिद्धेभ्यो नमोनमः स्वाहा ॥३१॥ ओ अनाद्यनुपम सिद्धेभ्यो नमोनमः स्वाहा ॥३२॥ ओ सम्यग्दृष्टे ! आसन्नभव्य ! निर्वाणपूजार्ह ! निर्वाणपूजार्ह ! अग्नीन्द्र ! अग्नीन्द्र ! स्वाहा ॥३३॥

इस प्रकार आहुति देकर गुहस्थाचार्य नीचे लिखा काम्य मन्त्र पढ़ कर एक आहुति दे और वर कन्या पर पुष्प क्षेपे ।इसी प्रकार आगे भी करें।

सेवाफ्लं षट्परमस्थानं भवतु । दीर्घजीवनभवतु रत्नत्रयावाप्तिर्भवतु ।

जाति मनत्र

ओं सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्ये नमः ॥१॥ ओं अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्ये नमः ॥२॥ ओं अर्हन्मातु : शरणं प्रपद्ये नमः ॥३॥ ओं अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्ये नमः ॥४॥ ओं अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्ये नमः ॥५॥ ओं अनुपमजन्मनः शरणं प्रपद्ये नमः ॥६॥ ओ रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्ये नमः ॥७॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! ज्ञानमूर्ते ! सरस्वति ! सरस्वति ! स्वाहा ॥८॥

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। दीर्घजीवम भवतु रत्नत्रयावाप्तिर्भवतु ।

निस्तारक मंत्र-

ओं सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओ अर्हज्जाताय नमः स्वाहा ॥२॥ ओं षट्कर्मणे स्वाहा ॥३॥ ओं ग्रामपतये स्वाहा ॥४॥ ओं अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा ॥५॥ ओं स्नातकाय स्वाहा ॥६॥ ओं श्रावकाय स्वाहा ॥७॥ ओं देवब्राहाणाय स्वाहा ॥८॥ ओ सुब्राहाणाय स्वाहा ॥९॥ ओं अनुपमाय स्वाहा ॥१०॥ ओ सम्यग्दृष्टे ! निधिपते ! निधिपते ! वैश्रवण ! वैश्रवण ! स्वाहा ॥११॥

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। दीर्घजीवम भवतु रत्नत्रयावाप्तिर्भवतु ।

ऋषि मंत्र

ओ सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्जाताय नमः स्वाहा ॥२॥ ओ निर्ग्रन्थाय नमः स्वाहा ॥३॥ ओं वीतरागाय नमः स्वाहा ॥४॥ ओं महाब्रताय नमः स्वाहा ॥५॥ ओं त्रिगुप्तये नमः स्वाहा ॥६॥ ओं महायोगाय नमः स्वाहा ॥७॥ ओं विविधयोगाय नमः ॥८॥ ओं विविधर्द्धये नमः स्वाहा ॥९॥ ओं अंगधराय नमः स्वाहा ॥१०॥ ओं गणधराय नमः स्वाहा ॥११॥ ओ परमषिभ्यों नमः स्वाहा ॥१२॥ ओं अनुपमजाताय नमः स्वाहा ॥१३॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! भूपते ! भूपते ! नगरपते ! नगरपत्ते ! कालश्रमण ! कालश्रमण ! स्वाहा ॥१४॥

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। दीर्घजीवम भवतु रत्नत्रयावाप्तिर्भवतु ।

सुरेन्द्र मंत्र

ओ सत्यजाताय स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्जाताय स्वाहा ॥२॥ ओं दिव्यजाताय स्वाहा ॥३॥ ओं दिव्यर्चिजाताय स्वाहा ॥४॥ ओं नेमिनाथाय स्वाहा ॥५॥ ओं सौधर्माय स्वाहा ॥६॥ ओं कल्पाधिपतये स्वाहा ॥७॥ ओं अनुचराय स्वाहा ॥८॥ ओ परम्परेन्द्राय स्वाहा ॥९॥ ओ अहमिन्द्राय स्वाहा ॥१०॥ ओं परमार्हजाताय स्वाहा ॥११॥ ओ अनुपमाय स्वाहा ॥१२॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! कल्पपते ! कल्पपते ! दिव्यमूर्ते ! दिव्यमूर्ते ! वज्रनामन् ! वज्रनामन् ! स्वाहा ॥१३॥

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। दीर्घजीवम भवतु रत्नत्रयावाप्तिर्भवतु ।

परमराजादि मन्त्र

ओं सत्यजाताय स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्जाताय स्वाहा ॥२॥ ओं अनुपमेन्द्राय स्वाहा ॥३॥ ओं विजयार्चिजाताय स्वाहा ॥४॥ ओं नेमिनाथाय स्वाहा ॥५॥ ओ परमजाताय स्वाहा ॥६॥ ओं परमार्हजाताय स्वाहा ॥७॥ ओं अनुपमाय स्वाहा ॥८॥ ओं सम्यग्दृष्टे ! सम्यग्दृष्टे ! उग्रतेज : ! उग्रतेजः ! दिशांजन ! दिशांजन ! नेमिविजय ! नेमिविजय ! स्वाहा ॥९॥

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। दीर्घजीवम भवतु रत्नत्रयावाप्तिर्भवतु ।

परमेष्ठि मन्त्र

ओं सत्यजाताय नमः स्वाहा ॥१॥ ओं अर्हज्जाताय नमः स्वाहा ॥२॥ ओ परमजाताय नमः स्वाहा ॥३॥ ओ परमार्हजाताय नमः स्वाहा ॥४॥ ओं परमरूपाय नमः स्वाहा ॥५॥ ओं परमतेजसे नमः स्वाहा ॥६॥ ओं परमगुणाय नमः स्वाहा ॥७॥ ओं परमस्थानाय नमः स्वाहा ॥८॥ ओ परमयोगिने नमः स्वाहा ॥९॥ ओं परमभाग्याय नमः स्वाहा ॥१०॥ ओं परमद्धये नमः स्वाहा ॥११॥ ओं परमप्रसादाय नमः स्वाहा ॥१२॥ ओं परमकांक्षिताय नमः स्वाहा ॥१३॥ ओं परमविजयाय नमः स्वाहा ॥१४॥ ओं परमविज्ञानाय नमः स्वाहा ॥१५॥ ओं परमदर्शनाय नमः स्वाहा ॥१६॥ ओं परमवीर्याय नमः स्वाहा ॥१७॥ ओं परमसुखाय नमः स्वाहा ॥१८॥ ओं परनसर्वज्ञाय नमः स्वाहा ॥१९॥ ओं अर्हते नमः स्वाहा ॥२०॥ ओं सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे त्रैलोक्यव्जय त्रैलोक्यव्जय धर्ममूर्ते धर्ममूर्ते धर्मनेमे धर्मनेमे स्वाहा ॥२३॥

सेवाफलं षट् परमस्थानं भवतु । दीर्घजीवनं भवतु रत्नत्रयावाप्तिर्भवतु ।

आहुति मंत्र

ओं ह्रां अर्हद्भ्यः नमः स्वाहा ॥१॥ ओं ह्रीं सिद्धेभ्यः स्वाहा ॥२॥ ओं ह्र्मं आचार्येभ्यः स्वाहा ॥३॥ ओं ह्रौ उपाध्यायेभ्यः स्वाहा ॥४॥ ओं ह्रः सर्वसाधुभ्य स्वाहा ॥५॥ ओं ह्रीं जिनधर्माय स्वाहा ॥६॥ ओं ह्रीं जिनागमायः स्वाहा ॥७॥ ओं ह्रीं जिनचैत्येभ्यः स्वाहा ॥८॥ ओं ह्रीं जिनचैत्यालयेभ्यः स्वाहा ॥९॥ ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनाय स्वाहा ॥१०॥ ओं ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय स्वाहा ॥११॥ ओं ह्रीं सम्यक्चरित्राय स्वाहा ॥१२॥

शांति मन्त्र

ओं ह्रीं अहं अ सि आ उ सा सर्व शान्ति करु करु स्वाहा ।

इस मन्त्र की १०८ बार या कम से कम २७ बार आहूति दें । इसके पश्चात् आगे सप्तपदी पूजा करावें ।

सप्तपदी पूजा

सज्जातिगार्हस्थ्य-परिव्रजत्वं सौरेन्द्रसाम्राज्य-जिनेश्वरत्वम् ।
निर्वाणकं चेति पदानि सप्त, भक्त्या यजेऽहं जिनपादपद्मम् ॥
ओं ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यः पुष्पांजलि क्षिपामि ।

विमलशीतलसज्जलधारया सदिधबन्धुरशीकरसारया ।
परमसप्त सुरस्थानस्वरुपकं परिभजामि सदाष्टविधार्चनैः ॥१॥
ओं ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यो जलम् ।

मसृणकुंकुम चन्दनसद्रवैः सुरभितागतषट्पदसद्रसैः ॥परम०॥
ओं ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यः चन्दनम् ।

विपुलनिमलतंदुलसंचयैः, कृतसुमौक्तिककल्पकनिश्चयैः ॥परम०॥
ओं ह्रीं श्री सप्तपरस्थानेभ्योऽक्षतान् ।

कुसुमचंपक-पंकजकुंदकै, सहजजाति-सुगंध-विमोदकैः ॥परम०॥
ओं ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यः पुष्पम् ।

सकललोक विमोदनकारकैश्चरुवरैः सुसुधावृतिधारकैः ॥परम०॥
ओं ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्यो नैवेद्यम् ।

तरलतापसुकांतिसुमण्डनैः, सदनरत्नचयैरयखण्डनैः ॥परम०॥
ओं ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्य : दीपम् ।

अगुरूधूपभवेन सुगंधिना , भ्रमरकोटिसमेन्द्रियबंधिना ॥परम०॥

ओं ह्री श्री सप्तपरमस्थानेभ्य : धूपम् ।

सुखदपक्वसुशोभनसत्फलै : कनुकनिंवुकमोचसुतांगतैः ॥परम०॥

ओं ह्री श्री सप्तपरमस्थानेभ्यो : फलम ।

जिनवरागमसदगुरूमुख्यकार, प्रविजाये गुरूसदगुण मुख्यकाम् ।

सुशुभचन्द्रतराम् कुसुमोत्करैः समयसारपरान्पसादिकैः ॥९॥

ओं ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानेभ्योऽर्घ्यम् ।

गठजोड़ा

हवन और सप्तपदी पूजा के बाद जीवनपर्यन्त पति पत्नी बननेवाले दम्पति में परस्पर प्रेमभाव एवं लौकिक और धार्मिक कार्यो में साथ रहने का सूचक ग्रन्थिबन्धन (गठजोडा) किसी सौभाग्यवती (सुहागिनी) स्त्री के द्वारा कराना चाहिए। कन्या की लुगड़ी (साडी) के पल्ले म १ चुअन्नी, १ सुपारी, हल्दी गांठ, सरसों व पुष्प रखकर उसे बाँध ले और उससे वर के दुपट्टे के पल्ले को बाँध दे।

ग्रंथिबन्धन मंत्र

अस्मिन् जन्मन्येष बन्धो द्वॅयोर्वै, कामे धर्मे वा गृहस्थत्वभाजि ।

योगो जातः पंचदेवाग्नि साक्षी, जायापत्त्योरंचलग्रंथिबंधात् ॥

हथलेवा (पाणिग्रहण)

गठजोड़ा के पश्चात् कन्या के पिता कन्या के बायें हाथ में और वर के सीधे हाथ में पिसी हुई हल्दी को जल से रकाबी में घोलकर लेपें। लोक में जो पीले हाथ करने की बात कही जाती है यह वही विधि है। फिर वर के सीधे हाथ में थोडी सी गीली मेंहदी और १ चुअन्नी रखकर उस पर कन्या का बाँया हाथ रखकर कन्या का हाथ ऊपर वर का हाथ नीचे करके वर कन्या के दोनों हाथ जोड़ दें। इस विधि से कन्या का पिता अपनी कन्या को वर के हाथ में सौंपता है। इसे पाणिग्रहण कहते हैं।

पाणिग्रहण मंत्र

हारिद्रपंकमवलिप्य सुवासिनीभिर्दत्तं द्वयोर्जनकयोः खलु तौ गृहीत्वा ।

वाम करं निजसुताभवमग्रपाणिम् लिम्पेद्वरस्य च करद्वययोजनार्थ ॥

गृहस्थाचार्य प्रत्येक फेरे के बाद नीचे लिखा हुआ अर्घ्य क्रमशः चढाते रहें.

१. ओं ह्री सज्जाति परमस्थानाय अर्घ्यम् ।
२. ओं ह्रीं सदगृहस्थ परमस्थानाय अर्घ्यम् ।
३. ओं ह्रीं पारिव्राज्य परमस्थानाय अर्घ्यम् ।
४. ओं ह्री सुरेन्द्र परमस्थानाय अर्घ्यम् ।
५. ओं ह्रीं साम्राजय परमस्थानाय अर्घ्यम् ।
६. ओं ह्रीं आर्हन्त्य परमस्थानाय अर्घ्यम् ।

फेरे और सप्तपदी

हथलेवा के बाद वर कन्या को खड़ा कराके कन्या को आगे और वर को पीछे रखकर वेदी में चवरी के मध्य में यन्त्र सहित कटनी और हवन की प्रज्जवलित अग्नियुक्त स्थंडिल के चारों ओर छः फेरे दिलवावें। बुन्देलखण्ड के (परवार आदि जातियों) में वर वधू का हाथ छुडवा कर छः फेरे दिलाये जाते हैं। इस समय स्त्रियाँ फेरों के मंगल गीत गावें। वर और कन्या के कपड़ों को संभालते हुए फेरे दिलाना चाहिए। एक दो समझदार स्त्री और पुरुष दोनों को संभालते रहें। छ : फेरों के बाद दोनों अपने पूर्व स्थान पर बैठ जावें। गृहस्थाचार्य

निम्न प्रकार सात सात बचनों (प्रतिज्ञाओं) को क्रम से पहले वर में और फिर कन्या से कहलावें, साथ ही स्वयं उनको सरल भाषा में समझाते जायँ ।

वर की ओर से कन्या के प्रति ७ वचन

१. मेरे कुटुम्बी लोगों का यथायोग्य विनय सत्कार करना होगा।

२. मेरी आज्ञा का लोप नहीं करना होगा ताकि घर में अनुशासन बना रहे।

३. कठोर वचन नहीं बोलना होगा। क्योंकि इसमें चित्त को क्षोभ होकर पारस्परिक द्वेष हो जाने की संभावना रहती है।

४. सतपात्रों के घर पर आने पर उन्हें आहार आदि प्रदान करने में कलुषित मन नही करना होगा।

५. मनुष्यों की भीड़ आदि में जहाँ धक्का आदि लगने की सभावना हो वहाँ बिना खास कारण के अकेले नहीं जाना होगा।

६. दुराचारी और नशा करनेवाले लोगों के घर पर नही जाना होगा, क्योंकि ऐसे व्यक्तियों द्वारा अपने सम्मान में बाँधा आने की संभावना है।

७.रात्रि के समय बिना पूँछे दूसरों के घर नहीं जाना होगा ताकि लोगों को व्यर्थ ही टीका टिप्पणी करने का मौका न मिले ।

ये सात प्रतिज्ञायें तुम्हें स्वीकार करना चाहिए। इन वचनों में गृहस्थ्य जीवन को सुखद बनाने की बातों का ही उल्लेख है। इनके पालन से घर में समाज में पत्नी का स्थान आदरणीय बनेगा।

इन प्रतिज्ञाओं को कन्या अपने मुँह से निःसकोच होकर कहे और स्वीकार करे।

कन्या द्वारा वर के प्रति सात वचन

१. मेरे सिवाय अन्य स्त्रियों को माता, बहन और पुत्री के समान मानना होगा अर्थात् पर स्त्री सेवन का त्याग और स्वस्त्री सन्तोष रखना होगा।

२. वेश्या, जो परस्त्री से भिन्न मानी जाती है उसके सेवन का त्याग करना होगा।

३. लोक द्वारा निन्दनीय और कानून से निषिद्ध द्यूत (जूआ) नहीं खेलना होगा।

४. न्यायपूर्वक धन का उपार्जन करते हुए वस्त्र आदि से मेरा रक्षण करना होगा।

५. आपने जो अपने वचनों में मुझ से अपनी आज्ञा मानने की प्रतिज्ञा कराई है उस सम्बन्ध में , धर्म स्थान में जाने और धर्माचरण करने में रूकावट नहीं डालनी होगी।

६. मेरे सम्बन्ध की और घर की कोई बात मुझ से नही छिपानी होगी क्योंकि मै भी आपको सच्ची सलाह देनेवाली हूँ। कदाचित् उससे आपको लाभ हो जाय और अपना संकट दूर हो जाय। साथ ही इससे परस्पर विश्वास भी बढेगा ।

७. अपने घर की गुप्त बात दूसरो के याने मित्र आदि के समक्ष प्रकट नहीं करनी होगी। लोगों की मनोवृत्ति प्रायः यह होती है कि वे दूसरे घर की छोटी सी बात को दिल में ताड की उक्ति के समान बडी करके अपवाद फैला देते है।

नोट - उक्त वर वधू की ७-७ प्रतिज्ञाओं को ही आधुनिक भाषा में परिस्थिति को देखकर सम्मिलित रूप से निम्न प्रकार दोनों के लिए सात प्रतिज्ञाएँ प्रचार में आने योग्य हैं।

वर - वधू के लिए संशोधित महत्वपूर्ण ७ प्रतिज्ञायें

१. जीवन पर्यन्त साथ रहते हुए सहनशील और कर्मवीर बन कर एक दूसरे के लिए जीवित रहना जीवन से निराश न होना।

२. दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने और गृह जीवन के निर्माण में भीतर का उत्तरादायित्व नारी को और ब्राह्य जीवन का उत्तरदायित्व पुरूष पर है।

३. एक दूसरे के परिवार के सदस्य बन कर सबके स्नेह और आदर के पात्र बनना। विनय सेवा करना एवं सदव्यवहार से घर और ससुराल को स्वर्ग बनाना।

४. परस्पर स्नेह, अभिन्नता, आकर्षण, विश्वास बना रहे इसके उपाय आचरण में लाना। पति के लिए पत्नी सर्वाधिक सुन्दर व प्रिय और पत्नी के लिए पति परमाराध्य रहे।

५. वधू को कुलवधू (सीता,अञ्जना, सुलोचना आदिके समान) और वर को कुलपुत्र (राम, जयकुमार, सुदर्शन आदि) के समान बनना जिनसे घर का सम्मान, गौरव , प्रतिष्ठा , कीर्ति बनी रहे वैसे काम करना। निर्व्यसनी, शीलवान और विवेकी बनना।

६. जिनेन्द्र देव,गुरू, शास्त्र की अर्चना एवं साक्षीपूर्वक विवाह सम्पन्न हो रहा है उनमें श्रद्धा बनाये रखें इसमें बुराइयों से वचन में बल मिलता है। आत्महित (वीतरागता) की ओर दृष्टि रखें।

७. समाज, जनता और राष्ट्र की सेवा में दोनों परस्पर सहयोग से आगे बढें। विलासिता से बचें।

इन प्रतिज्ञाओं को दोनों स्वीकार करें। इनका सेवा और भी कोई खास बात हो तो विवाह के पहले स्पष्ट कर लेना चाहिए। जिससे दाम्पत्य जीवन आजीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत हो सच यह है कि अपने साफ और शुद्ध परिणाम (नियत) से ही सम्बन्ध अच्छा रह सकता है।

सप्तपदी के पश्चात् वर को आगे करके सातवाँ फेरा कराया जाये और अपने पहले के स्थान पर जब आवें तब वे पति पत्नी के रूप में होकर याने स्त्री पति के बाँयें ओर और पति स्त्री के दाहिने ओर बैठे। इस अवसर पर स्त्रियाँ मंगलगीत गावें।

उक्त सात फेरे (भाँवर) सात परम स्थानों की प्राप्ति के द्योतक हैं। आगमानुसार संसार मे (१) सज्जातित्व (२) सदगृहस्थत्व (३) माधुत्व (४) इन्द्रत्व (५) चक्रवतित्व (६) तीर्थंकरत्व और (७) निर्वाण ये सात परम स्थान माने गयें है।

सातवें फेरे के बाद "ओं ह्रीं निर्वाण परम स्थानाय अर्घ्यम् " बोल कर अर्घ्य चढ़ावें।

सात फेरे होने पर गृहस्थाचार्य नवदम्पति पर निम्न प्रकार मन्त्र द्वारा पुष्प क्षेपण करें।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्र : अ सि आ उ सा अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधवः शान्ति पुष्टिं च कुरूत कुरूत स्वाहा।

यहाँ पर संक्षेप में गृहस्थ जीवन के महत्त्व पर उपदेश देकर अच्छी संस्थाओं को यथाशक्ति दोनों पक्ष की ओर से दान की घोषणा कराकर तत्काल यथास्थान भिजवाने का प्रबन्ध करा देना चाहिए।

इसके बाद कन्या पक्ष की ओर से वर को तिलकपूर्वक एक रूपया और श्रीफल भेंट कर हथलेवा छुड़ा देना चाहिए और नवदम्पति खडे होकर मंगल कलश हाथ में ले लें। गृहस्थाचार्य पुण्याहवाचन पाठ पढ़े. और सर्वशांतिर्भवतु वाक्य के आने पर नीचे एक पात्र में जलधारा स्वयं छोड़ते जाय और नवदम्पति से धारा छुड़वाते जाँय।

पुण्याहवाचन

ओं पुण्याहं पुण्याहं। लोकोद्योतनकरातीतकाल संजातनिर्वाणसागर महासाधुविमलप्रभशुद्धप्रभश्रीधर सुदत्तामलप्रभोद्धराग्रिसंयमशिवकुसुमांजलि शिवगणो त्साहज्ञानेश्वर परमेश्वर विमलेश्वर यशोधर कृष्णमति ज्ञानमति शुद्धमति श्रीभद्रशान्तेति चतुविंशति भूतपरमदेव भक्तिप्रसादात्सर्व शांतिर्भवतु। (प्रीयन्ताम् २ भी कह सकते हैं)

हूमड़ समाज के विवाह रीति रिवाज (कौशल्य पतंग्या)

(१) सगाई (२) लगन जोना (३) माँ रो माटलो लाना (४) गोत्राजी भरना (५) वणाक (६) नूतरना (७) जुंवारा उगाना (८) मांडपा उगाना (९) मोटा कपडा पहनाना (हांका रुपयों) (१०) खारा जींमण (११) मामेरा (१२) आलवणो (१३) वनोरा (१४) वरोटी (१५) घोडी पर चढ़ना (१६) तोरण मारना(१७) फूंकना(१८) चौरी में बैठना (शादी) (१९) नूत करना (उपहार देना) (२०) विदाई-(पेरावणी करना)

हूमड़ समाज के विवाह रीति रिवाज

समय की धारा के साथ चलना , यानी प्रगतिशीलता की पहचान है हूमड़ समाज । इस समाज के सभी रीति रिवाज मितव्ययी एवं आजर्शोन्मुख रहे हैं । विवाह रीति रिवाजों में प्रथम सीढी है- "सगाई"

सगाई - आज से कुछ समय पूर्वतक सगाई सम्बन्ध माता पिता द्वारा ही तय किये जाते थे । लडका या लडकी अपने माता पिता के जीवन के अनुभवों से चुने हुये वर वधू को सहर्ष स्वीकार कर लेते थे । पर आज समय में बदलाव आ गया है लडके लडकी की पसंद को अधिक अहमियत दी जाती है ।

सगाई रस्म में पंच (५ आदमी) समाज के मुखिया बैठकर रूपया नारेल झेलाकर सगाई (रिश्ता) तय करते थे। अपेक्षाकृत कुछ सम्पन्न परिवार होते थे। वे "हाबत" करते थे। लड़के वाले ढोल मजीरें के साथ लड़की वालों के यहाँ जाते थे सिर्फ पुरूष महिलाऐं नहीं । समधी समधी आपस में एक दूसरे के टीका लगाते थे (कुंकुम से) व रु. नारियल, झेलाते थे । फिर लडके वालों की तरफ से नारियल बाँटे जाते थे।

लडकी का देवर अपनी नई भाभी की खोर भरताथा। लडकी को पूर्व दिशा में मुँह करके घर की देहरी पर बिठाया जाता था और २१ या ५१ नारियल से खोर भरी जाती थी । नारियल वदेरकर सबको चटके बाँटी जाती थी । चटक खाकर सब खुशी का इजहार करते थे।

यदि सगाई लम्बे समय तक रहती तो जितने भी त्यौहार आते उन पर लड़केवाले व लड़कीवाले एक दूसरे के यहाँ मिठाई भेजते थे।

लग्न ढूँढना - गाँव का गोड़जी शुभ मुर्हुत देखकर गर्मी की छुट्टियों के हिसाब से लगन की तिथि तय करते थे । उसी तिथि में सम्पूर्ण हूमड़ समाज के लोग एक जगह एकत्रित होकर शादी करते थे।

माँ का माटला लाना - शादी रस्म में वणाँक बिठाने के पूर्व सभी सगे सम्बन्धी की औरते मिलकर माँ का माटला लेने जाती थी (कुम्हार के यहाँ) । वहाँ से डिजाइन के मटके (शकुन के तौर पर) अपने सिर पर रखकर, चौबीसी गाती हुई ढोल मंजीरे के साथ घर पर आती थी। घर के द्वार पर उनको बधाया जाता था फिर माटले को गोत्राजी के पास स्थापित किया जात था।

गोत्राजी भरना - माँ का माटला लाने केबाद बाजोट पर जिनवाणी, रखकर चावल से सातिया बनाकर यन्त्रजी स्थापित करते थे जिसे गोत्राजी भरना कहते थे इसका अर्थ होता है कुलदेवी की स्थापना करना । वर वधू की शादी के बाद सबसे पहले गोत्राजी के सामने धोक दिलवाया जाता था।

वणाक एवं नूतरना - शादी के पूर्व ५ या ७ दिन पहले, लडके या लडकी का वणाक बैठता था। वणाक बिठाने के पूर्व "नूतरने" का रिवाज था। नूतरने का अर्थ था वर एवं रिश्तेदारों के यहाँ वणाक बिठाने का तेड़ा बुलावा करने जाते थे कि हमारे घर पधारो वणाक बिठा रहे हैं। नूतरने आनेवाली औरतों को केसरिया कपड़ा एवं खोटी सुपारी बाँटी जाती थी। इस तरह दोनों परिवार में आदान प्रदान केसरिया कपड़े एवं खोटी सुपारी का होता था इसके पीछे प्रेम और सौहार्द की भावनाएँ छिपी थी।

जुवारा उगाना - महिलायें इक्ट्ठी होकर गीत गाते हुये मिट्टी के छोटे छोटे कुलडे में जुवारा उगाती थी, जो पाँच दिनों में अंकुरित होकर बड़े हो जाते थे तथा शादी के बाद प्रभाये जाते थे।

मँडवा उगाना- घर के पाँच वरिष्ठ पुरुष मिलकर क्रम क्रम से गोड़जी के मंत्रोच्चारण के साथ मांडवे उगाते थे। फिर पांच या सात औरते मांडवा वदाती थी, गोडजी सबके सीधे हाथ में शुकुन के तौर पर लच्छा बाँधते थे ।

मोटा कपड़ा पहनाना - वणाक बैठने के बाद वर एवं वधू अपने अपने मामा के घर लाफी सीरा बाँधने जाते हैं, मामा के यहाँ से जो बुलाने आता है औरत को केसरिया कपडा और पुरुष को नारियल देने का रिवाज आज भी प्रचलन में है । मामा के यहाँ लाफी (सीरा) बाँध के आने के बाद मोटा कपड़ा पहनाने का रिवाज है । मोटा कपड़ा पहनाने के पहले भी नूतरने का रिवाज था । दुल्हन अपने सुसराल बैन्ड बाजे के साथ जाती थी । सुसराल में भी एक थाली में ७ बार सीरा परोसा जाता था । जिसे दुल्हन ७ बार बांदती फिर उसे वेश ओढाया जाता व रकम चढाई जाती थी । इसी तरह लडका (दूल्हा) भी अपने ससुराल जाता था जहाँ उपरोक्त सभी रीत-रस्म किये जाते थे । दूल्हे को शूट-बूट घडी, चेन-अंगूठी पहनाई जाती थी । आजकाल यह सब रिवाज समय की कमी की वजह से छोटे रुप में पूरे कर दिये जाते हैं ।

खारा जीमण - इस रिवाज के अनुसार दूल्हन की खोर उसके सुसराल में उसकी सासुजी भरती हैं । "खोर" में साँकर पान, कलदाररुपया, कच्चासूत, सूखा गोरा (नारियल) रखा जाता हैं । "खोर" के उपरान्त दूल्हनको साड़ी ओढाई जाती थी । दूल्हे को बुशर्ट पीस दिया जाता हैं ।

आलवणा - वैसे तो वणाक बैठने के बाद दूल्हा-दूल्हन रोज तास मजीरे या बैन्ड बाजे के साथ सुबह देव दर्शन को जाते थे और शाम को घोडे पर बैढकर सेल करने जाते थे पर शादी के एक दिन पहले आलवणे की रस्म होती थी । रात में वर और वधू बैन्ड बाजे के साथ मन्दिर जाते थे । मन्दिर में दर्शन के बाद वर अपने ससुराल जाता था जहाँ उसके सासुजी तिलक करके रु. नारियल देती थी और सभी सगे-सम्बन्धी भी आलवणे के रुप में २ रुपया या ५ रुपया दूल्हे को भेंट करते थे ।

इसी तरह मन्दिरजी के दर्शन के बाद वधू अपने ससुराल जाती थी । जहाँ उसको सासुजी टीका करके साडी देती थी व अन्य रिश्तेदार २ रुपया या ५ रुपया आलवण के रुप में भेंट देते थे ।

मामेरा - शादी के रस्मों-रिवाज में मामेरा का बहुत महत्व है । मामेरा का अर्थ है वर या वधू के मामा के यहाँ से पूरे परिवार को भेंट स्वरुप अपनी सामर्थ्य के अनुसार कपडे (वेश) या लिफाफे देना । वर-वधू की मामी पहले उसके पाँव पूजती है और उसे वेश ओढाती है उसके बाद वरीयता के आधार पर पेखानी पहनाई जाती है । यह रिवाज आज भी इसी रुप में प्रचलित है ।

वनोरा - इस रस्म के अनुसार दुल्हा/दुल्हन जुलूस के रुप में घोडे पर चढकर अपनी अपनी आमनाय के मन्दिर दर्शनार्थ जाते थे । इस समय पूरा परिवार और सगेसम्बन्धी भी साथ साथ चलते थे । महिलायें गीत गाती हुई (भ्कड़ - भ्काड़ पर लगी रोशनी देखे नर नारी) चलती है । मामा के यहाँ से दूल्हे / दूल्हन की मामी लाडुओं से भरी कुण्डी सिर पर लेकर चलती थी । यह कुण्डी वर/वधू के घर पर रखी जाती है जहाँ वर/वधू की माँ वनोरे के लड्डू अपने यहाँ रख लेती है और कुण्डी में शकुन के रुप में कुछ रुपये एवं पताशे रखती है । अब समयाअभाव में ये रिवाज लुप्त होते जा रहे हैं ।

वरोटी - का अर्थ है एक दिन लडकीवाले अपने समधी के सभी रिश्तेदारों को अपने यहाँ स्नेह-भोज का निमन्त्रण देते थे। दूसरे दिन लडके वाले अपने समधी के परिवारजनों को आदर सहित भोजन पर आमन्त्रित करते थे । जब वरोटी जीमने आते तो वर/वधू अपने ससुराल वालों के भाणे वांदती थी, सभी स्नेहीजन भेंटस्वरुप कुछ भेंट रुपये के रुप में देते थे ।

घोडी पर चढना - - शादी हेतु दुल्हा घोडे पर चढता तो पहले बहन उसको तिलक लगाकर घोडे पर चढाती थी । फिर घोडे की लगाम पकडकर खडी होती थी भाई के द्वारा नेक मिलने पर ही लगाम छोडती थी। दुल्हे के एक हाथ में तलवार व दूसरे हाथ में नारियल होता था । पहले मन्दिर में दर्शन करके नारियल चढाता था फिर ससुराल जाता था। ससुराल जाते समय बीच में कोई चोरी अटकती तो आगे नही बढ सकता था। चोरी अटकने का मतलाब था यदि बीच में किसी दूल्हन का घर आता, वहाँ यदि वर-राजा ने तोरण नही मारा है तो उस रास्ते से कोई दुल्हा नहीं निकल सकता है, यानी बीच में आनेवाले सभी दुल्हनों के यहाँ शादी प्रारम्भ नहीं होती तब तक दूसरा दुल्हा उस घर के आगे से निकल नहीं सकता । ससुराल पहुँचकर दुल्हा तलवार से तोरण मारता है, फिर उसकी सासुजी उसके तिलक लगाकर रु. नारियल प्रदान करती है । मुख्य द्वारा पर समधि समधन रीति रिवाज के मुताबिक फूंकने की रस्म अदा करते हैं । उस समय यह गीत गाया जाता है :-

"अंया लिजे वंया लीजे नित नित ढीकरा जणजो जी,
छोकरी होय तो हमने दीजो, छोकरा होय तो तमने लीजो "।

इस रस्म के पूरे होने के बाद सासुजी जमाईराजा को केसरियाँ दुपट्टे से पकडकर गोत्राजी के पास ले जाती है वहाँ धोंक दिलाया जाता है फिर प्राकृतिक लकडियों से बनी चोरी में(मण्डप) में बिठाया जाता है।

शादी- दूल्हे-दूल्हन के मण्डप में बैठने के बाद जैन विधि से (जो कि पूर्व में लिखी है) पंडित शादी सम्पन्न करवाता है। दुल्हा दुल्हन सात शर्तो के साथ सात फेरे पूरे करते हैं और आजीवन दाम्पत्य के बंधन में बँध जाते हैं । लडकी के मामा, भाभी, हथवेरा छुडाते हैं। इसके बाद सभी लोग बँधाई के रुप में दूल्हे-दूल्हन को भेंट प्रदान करते हैं ।

नूत - जब वरोटी जीमने लोग आते थे तो एक कलदार रु. नूत के रुप में कराते थे, नूत लेने के लिये परिवार के प्रतिनिधि के रुपमें किसी महावपूर्ण व्यक्ति को बिठाया जाता था ।

समय परिवर्तन के साथ रिवाजों में परिवर्तन आया और आजकल स्वागत-समारोह में दूल्हे-दूल्हन को भेंट स्वरुप लिफाफे दिये जाते हैं ।

विदाई - (आणो मोकलनो) शादी के बाद बेटी की विदाई होती है तब बेटी के माँ-बाप जमाईराजा के घरवालों को पेरावनी पहनाते हैं पुरुष को लेहरिया एवं केसरिया मोटडे व पगडी बाँधी जाती थी और औरतों को दुपट्टा व केसरिया अटाण पहनाई जाती थी । फिर पालकी में दूल्हे-दूल्हन को बिठाकर विदा किया जाता था । दूल्हन की माँ व सगे सम्बन्धी विदाई गीत गाते हुये दूल्हन को विदा करते थे ।

इस तरह विभिन्न रस्मों रिवाजो के बीच हूमड़ो की शादियाँ सम्पन्न होती थी पर आज समय की कमी एवं बढती महँगाई के कारण सभी रिवाज एक ही दिन में प्रतीकात्मक रुप में सम्पन्न कर दिये जाते हैं । आज के इस युग में अब स्वागत-समारोह (रिसेप्सन) का विशेष महत्व हैं ।

सामुहिक विवाह (कौशल्या पतंग्या)

विवाह एक प्रचलित संस्था है। विवाह का उद्देश्य अर्थ की उपलब्धि एवं सामाजिक ढाँचे का निर्माण है। इस सामाजिक ढाँचे के अन्तर्गत व्यक्ति नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का पालन आसानी से कर सकता है। वस्तुतः धर्म, अर्थ और काम पुरूषार्थ का सेवन विवाहित गृहस्थाश्रम में ही निराकुल भाव से किया जा सकता है। विवाह संस्था समाज को सुव्यवस्थित बनाने के लिये महत्वपूर्ण है। कुटुम्ब के व्यक्तियों को एकता में आबद्ध करना तथा कुटुम्ब को समृद्ध बनाना भी विवाह का कार्य है। कुटुम्ब समाज की इकाई है और कुटुम्ब की व्यवस्था विवाह पर आधारित है। अतः निवृत्ति प्रधान जैन धर्म में गृहस्थ श्रावक के व्रतों में स्वदार सन्तोष व्रत का उल्लेख है जो विवाह संस्था की पुष्टि करता है।

विवाह नामक परम्परा हमारे भारतीय समाज में उतनी ही लोकप्रिय है जितनी सदियों पहले थी। समय परिवर्तन के साथ इस परम्परा के रूप में बहुत बदलाव आया। आज प्रेम विवाह, ऐरेन्ज विवाह, विधवा विवाह, बहुपत्नी विवाह, रिमेरेज ,सामूहिक विवाह, अर्न्तजातिय विवाह जैसी प्रथाऐं चल पडी है। हमारे आसपास सब कुछ तेजी से बदल रहा है। हमारे सोचने के ढंग व जीवन के प्रति हमारे नजरिये में भी बहुत बदलाव आ गया है, अतः विवाह जैसे महत्वपूर्ण निर्णय में हर व्यक्ति अपनी शैली अपनाना चाहता है।

विवाह की एक शैली है सामूहिक विवाह। हूमड़ समाज हमेशा से प्रगतिशील समाज रहा है। विवाह के जिस स्वरूप की आज हम प्रचार प्रसार की बात कर रहे हैं वह शैली हमारे समाज ने वर्षों पूर्व ही अपना रखी थी। सादा जीवन उच्च विचार की शैली पर चलनेवाले इस समाज में इतनी सटीक आपसी समझदारी थी कि उसमें हर वर्ग के आदमी के कार्य बड़ी आसानी से निपट जाते थे।

प्रतापगढ़ हूमड़ जैन समाज के विवाह सामूहिक विवाह की शैली पर ही सम्पन्न होते थे। गोड़जी (ब्राहाण) के द्वारा पंचों की उपस्थिति में सामूहिक लग्न निकाले (जोअे) जाते थे, और उसी तिथि या तारीख को हिन्दुस्तान में बसे सभी हूमड़ भाई प्रतापगढ आते थे और अपने बच्चों के विवाह सम्पन्न करते थे। सामूहिक ताल मजीरों (बेन्ड बाजों) के साथ सभी जोड़े सेल करने जाते थे। इस तरह पांच या आठ दिन तक यह कार्यक्रम चलता था हर्षोल्लास के साथ एक ही दिन में अनेक जोड़े परिणय सूत्रों में बंधते थे। इस मौके पर पूरा हूमड़ जैन समाज आपस में मिल जाता था। यह उस समय का अघोषित "युवक युवती परिचय सम्मेलन" स्नेह सम्मेलन एवं सामुहिक विवाह कार्यक्रम था। जिसे हमनें आपसी समझदारी से स्थापित कर रखा था। सन् ७० के दशक तक यह व्यवस्था जारी थी।

समय ने करवट ली और हमारी ये शैलियाँ भौतिकता की चकाचौंध में दबती नजर आई और सम्पूर्ण ढाँचा ही बदल गया है, पर आज फिर समय पुकार रहा है कि "सामुहिक विवाह" प्रथा पुनः प्रारम्भ की जाय। हमारे द्वारा स्थापित रीति रिवाजों को पुनः प्रतिस्थापित करने के लिये हमें ऍड़ी चोटी का जोर लगाना पड रहा है और इन रिवाजों ने सामाजिकता के साथ साथ राजनैतिक स्वरूप अधिक ग्रहण कर लिया है। पहले विवाह पंडितों और स्वजनों के प्रेम की डोर के बीच सम्पनत्र होते थे पर आजकल यह सामूहिक विवाह राजनीतिज्ञों की उपस्थिति में प्रचार प्रसार पाने के मोहताज हो गये हैं यानी सामाजिक बन्धनों ने राजनैतिक रूप लेना प्रारम्भ कर दिया है। और छोटे बड़े पैमाने पर यह विवाह हमारे समाज में अनेक स्थानों पर हो रहे हैं।

उदाहरण के लिये गुजरात प्रान्त मे आज भी सामूहिक विवाह पद्धति प्रचलित है और वहाँ शालीनता से यह कार्य सम्पन्न होता है। गुजरात प्रान्त में हूमड़ों के दो सबल ग्रुप है उनमें दोनों में यह प्रथा आज भी प्रचलित है। उन ग्रुपों का नाम है (१) श्री बैतालीस दशा हूमड़ समाज चोखलापंच (२) रायदेश। पहला ग्रुप तलोद, हिम्मतनगर, गाँधीनगर और अहमदाबाद व बम्बई में है। अहमदाबाद व बम्बई में इस समाज के २५०-२५० कुटुम्ब है। रायदेश हूमड़ समाज ईडर, विजयनगर, भावनगर, अहमदाबाद व बम्बई में है। उसका विवरण इस प्रकर है -

१. सामूहिक लग्न की व्यवस्था -

सामूहिक लग्न की सारी व्यवस्था पंच करते हैं। पंचों की समिति का नाम है "दशा हूमड बेतालीस सामूहिक लग्न समिति"। यह समिति सामूहिक लग्न का स्थल और समय तय करती है।

२. प्रत्येक वर व कन्या पक्ष को १५०० -१५०० रूपये इस समिति को नकरे के रूप में देने होते हैं। इस तरह प्रत्येक लग्न से ३००० रू. इकट्ठे होते हैं और हर वर्ष औसतन ५० लग्न होते हैं। इस तरह ५० युगल जोड़ों से १.५० लाख रूपया आता है। खर्च के बाद बची रकम पंचों के पास रहती है जिसे जरुरत पड़ने पर पंच सामूहिक विवाह में ही खर्च करते हैं।

३. विशाल खुली जगह में एक यू - आकार का अर्ध गोलाकार मंडप तैयार किया जाता है। मंडप में मध्य मेरू पर्वत के समान ऊँची जगह पर जिनेन्द्र भगवान की एक प्रतिमा विराजमान की जाती है। मण्डप में जितने लग्न होने वाले होते है उतनी ही चोरियाँ बनाई जाती है और चोरियों के पास वर व कन्या पक्ष के लोगों के बैठने व्यवस्था होती है।

४. मंच पर सर्वप्रथम सभी लोग जिनेन्द्र भगवान की सामूहिक पूजन करते हैं फिर सभी जोड़े अपनी चँवरी में जाते हैं वहाँ पूजा और होम की सामग्री तैयार रहती है । एक पंडित लाउडस्पीकर पर मंत्रोच्चार करता है और उसके अनुसार प्रत्येक चँवरी में अर्घ चढाये जाते है और विवाह कार्य सम्पन्न किया जाता है।

५. पंचों के द्वारा सुबह का नाश्ता एवं एक समय के भोजन की व्यवस्था भी की जाती है।

६. पंचों के द्वारा कन्या पक्ष और वर पक्ष के ठहरने की व्यवस्था भी की जाती हैं। पंचों के द्वारा कुछ लग्न संबंधी नियम भी बनाये गये हैं -

१. पंच के नियमानुसार वर पक्ष कन्या कि लिये ९.३० तोला सोना चढ़ायेगा। व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार फेर बदल कर सकता है।

२. कन्या पक्ष कन्या को २१ जोड़ी कपड़े और शक्ति अनुसार बर्तन करता हैं।

३. कन्या पक्ष अपनी शक्ति के अनुसार सोना या कैश दे सकता है।

४. बैतालीस गाँव के हूमड़ों को बैतालीस गाँव समाज में ही वर कन्या का चयन करना होगा । बाहर से कन्या लाने पर समाज को ३००० रू. दंड स्वरूप पंच को देने पडेंगें।

५. सामूहिक लग्न में सम्मिलित होना अनिवार्य है। यदि किसी परिस्थिति में अलग विवाह करना हो तो दोनों पक्षों को ३००० रु. दण्ड के रूप में देने होते हैं और पंच से स्वीकृति लेनी पड़ती है । यदि पंच से स्वीकृति नहीं ली जाती है तो दोनों पक्षो को ५००० रू. दण्ड के रूप में देने होगे । ऐसा न करने पर सम्बन्धित पक्ष का सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है।

६. एक ही गौत्र मे किसी भी परिस्थिति मे लग्न नहीं किये जाते हैं। इस नियम का पालन करना अनिवार्य है। समय समय पर पंचों की बैठक होती है और समय के अनुसार नियमों में सुधार का निर्णय भी लिया जाता है । यानी नियम में लचीलापन भी है ।

भेंट योजना- इस सामूहिक विवाह की एक विशेषता यह है कि यदि कोई व्यक्ति समिति को ११,००० हजाररू. भेंट स्वरूप देता है तो भोजन व्यवस्था उसके नाम से होती है और सामूहिक आमन्त्रण पत्रिका पर उसका नाम लिखा जाता है । ५००० रू. भेंट करने वाले के नाम से चाय नाश्ते की व्यवस्था की जाती है। और भी कोई व्यक्ति वर पक्ष या वधू पक्ष को कुछ भेंट देना चाहते हैं तो दे सकते हैं । उनका शब्द रूपी पुष्पों से स्वागत किया जाता है।

यह व्यवस्था है गुजरात प्रान्त के एक समूह की । इसी तरह वागड़ प्रान्त मे भी सामुहिक विवाह प्रथा

प्रचलित है, उनमें भी इसी तरह के कुछ साधारण नियमों के साथ सामूहिक विवाह सम्पन्न होते हैं। जहाँ तक इन्दौर हूमड़ जैन समाज का सवाल है सामूहिक विवाह के लिये प्रयत्न है। १९७२-७३ में सामूहिक विवाह का एक प्रयोग किया गया था जिसमें ८ जोड़े विवाह सूत्र में बँधे थे पर उसके बाद यह प्रयोग बहुत सफल नहीं हुआ। आज समय की माँग है कि ऐसे आयोजन हो पर समाज के बदलते सामाजिक ढाँचे में ऐसे आयोजनों का सफल होना थोड़ा मुश्किल है। इसके निम्न कारण है -

१. आजकल परिवारों का आकार छोटा हो गया और सौभाग्य से अधिकांश परिवार साधन सम्पन्न हो गये हैं। आज माता पिता के जीवन में एक या दो बार ही ऐसा मौका आता है कि वे अपनी खुशी का इजहार कर सके। ऐसी स्थिति में वह सामूहिकता के बंधन में बँधना नही चाहते हैं।

२. सामूहिक विवाह जैसे आयोजनों में सम्पन्न लोग शरीक नही होते हैं और यह आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग का तमाशा बन कर रह जाता है।

३. आज हूमड़ समाज में अर्न्तजातीय विवाह की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। इस तरह के विवाह सामूहिक विवाह के बंधनों को स्वीकार करना नहीं चाहते है।

४. आज के युग में रोजगार की तलाश में सभी हूमड़ जन भारत के विभिन्न प्रान्तों में बस गये हैं। और जहाँ स्थाई रूप से निवास करते है वहाँ के लोगों के साथ उनके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सम्बन्ध विकसित हो जाते हैं। अतः वह व्यक्ति चाहता है कि विवाह जैसे मांगलिक कार्य में वहाँ के लोग भी शरीक हों। ऐसे में सामूहिक विवाह की कल्पना दुरूह लगती है।

५. विदेशों में बसे हूमड़ जैन जब भारत में विवाह करने आते हैं उनकी दिलीय इच्छा यही रहती है कि शान शौकत से अपने बच्चों की शादी करें। वे धन की बचत के लिये यहाँ नहीं आते हैं वह हमारे संस्कारों से आत्मसात होकर अपने परिवारजनों के साथ अपनी खुशियाँ बाँटना चाहते हैं। अतः वे लोग भी सामूहिक विवाह जैसी व्यवस्था को पसन्द नहीं करते।

६. सामूहिक विवाह में सम्मिलित पक्षों को कभी कभी अलग से पुनः छोटी मोटी पार्टियों का आयोजन किन्हीं कारणों से करना पड़ता है जो उन पर अतिरिक्त भार हो जाता है ऐसी स्थिति में सामूहिक विवाह की उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है।

७. २९ अगस्त १९९३ को इन्दौर हूमड़ युवा मंच द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर वर्तमान परिवेश में हूमड़ समाज में सामूहिक विवाह आवश्यक है। विषय पर वाद -विवाद प्रतियोगिता आयोजित की गई थी जिसका मकसद् था आम समाजजन की राय से रुबरू होना कि समाज क्या चाहता है, पर उस प्रतियोगिता का परिणाम यह दर्शाता है कि अधिकतर लोग विवाह की इस पद्धति में रूचि नहीं रखते हैं।

पर इस निर्णय को ही हम सर्वोपरि नही मान सकते है। बिखरते समाज को सँवारने के लिये जहाँ हम "युवक युवती परिचय सम्मेलन" आयोजित करते हैं, स्नेह सम्मेलनों का आयोजन करते हैं उसी प्रकार सामूहिक विवाह व्यवस्थाओं का भी आयोजन अपनी कर्मठता से कर सकते हैं। दृढ़ इच्छा शक्ति और समय की माँग तथा बढ़ती मँहगाई को देखते हुए ऐसे आयोजन परम आवश्यक है।

समाज का एक बड़ा तबका आज भी यह चाहता है कि समय और धन की बचत करते हुए समाज में रहकर समाज जन के साथ ही अपनी खुशियों को बाँटते हुए सामूहिक रूप से यह माँगलिक कार्य सम्पन्न हो जावे तो उन्हें कुछ राहत की साँस मिलती है। और ऐसे कार्य का बीड़ा स्थानीय समाज के युवा अपने कन्धों पर ले लें तो कोई भी कार्य असम्भव नहीं है।

आज सामूहिक विवाह के प्रति लोगों का रुझान बढ़ाने की आवश्यकता है, लोगों मे विश्वास पैदा करने की जरूरत है और जरूरत है व्यवस्थित कार्यशैली की । जैन समाज को छोड़ अन्य भारतीय समाज सामूहिक विवाह जैसे कार्यक्रमों को तेजी से अपना रहे हैं । यह इस बात का द्योतक है कि यह समाज की परम आवश्यकता है । यदि हम इस व्यवस्था को अपनाते हैं तो भविष्य में उपभोक्तावाद और भौतिकवाद की चपेट में आने से बच सक्ते हैं । हम अपने नैतिक मूल्यों को पुर्नस्थापित कर सकते हैं।

हूमड़ समाज का सांस्कृतिक जीवन

कौशल्या पतंग्या

भारतीय संस्कृति में सत्य और शिव के साथ ही सुन्दर को भी महत्त्व दिया गया है। भारतीय धर्म और दर्शन के सौन्दर्य बोध के कारण ही सत्य, शिव और सुन्दर तीनों की एकात्मकता स्थापित हुई । इसी कारण प्रसंग चाहे उपास्य देवों का हो या अप्सरओं का, नायिकाओं का या फिर सामान्य स्त्री पुरुषों का सभी के सन्दर्भ में उनके आन्तरिक या आध्यात्मिक स्वरूप और शक्ति के साथ ही बाह्य स्वरूप या रूप पक्ष की महत्ता को भी स्वीकार किया गया । फलतः मूर्त अभिव्यक्ति के सभी माध्यममों एवं साहित्य की विभिन्न विधाओं में देव,मानव,पशु एवं वनस्पति जगत को सुन्दर बताया और दिखाया गया । जैन साहित्य और कला भी इसका अपवाद नहीं है । इसी कारण धर्म और दर्शन से सम्बन्धित चर्चा के साथ ही जैन ग्रन्थों में सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों और अपने आसपास के परिवेश के प्रति जागरूकता और सौन्दर्य बोध का भाव भी उजागर हुआ है । इस दृष्टि से महापुराण निःसदेह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

धर्म और दर्शन यद्यपि प्राचीनकाल से हो भारतीय संस्कृति के मुख्य आधार स्तम्भ रहे हैं किन्तु जीवन और उसके भौतिक साधनो से भी मनुष्य को सर्वदा लगाव रहा है । सुनियोजित नगर, सुसज्जित राजसभायें, वादक, नर्तक, विविध आकार प्रकार के वस्त्र, आभूषण और केशविन्यास आदि भारतीय जीवन और संस्कृति के प्रतीक थे । आदिम अवस्था में जब मनुष्य की आवश्यकताऐ अत्यन्त सीमित थी और उसके जीवन का एकमात्र आधार आखेट था, मनुष्य प्रकृति द्वारा प्रदत्त सामग्रियों से ही अपना श्रृंगार करता था और अपने वस्त्र एवं आभूषणों की आवश्यकता को पूर्ण करता था । मनुष्य की आवश्यकता और भारतीय संस्कृति के प्रति उसके लगाव ने ही तत्सम्बन्धी कलाओं को जन्म दिया। परिणामस्वरूप वस्त्रों की कताई,बुनाई आभूषणों के निर्माण, केशों की विभिन्न शैली में रचना, पुष्पों की माला, अनुलेप, सुगंधि , नृत्य संगीत आदि से सम्बन्धित कलाओं का जन्म हुआ। वस्त्र और आभूषण आदि का सौन्दर्य वृद्धि के लिये प्राचीनकाल से ही प्रयोग होता रहा है किन्तु इसके महत्त्व से कुछ अन्य कारण भी रहे है । इनमें मांगलिक रंग निवारक एवं स्वास्थ्यवर्धक तथा भाग्योदय में सहायक और बाधाओं को दूर करने की क्षमता वाला होने तथा अनेक चमत्कारिक मोह मायावी शक्तियों का आधार होने का परम्परागत विश्वास भी प्रमुख रहा है। एलोरा की गुफा सं. ३३ के मुखमण्डप (पूर्वी) के एक स्तम्भ पर कामदेव की मूर्ति देखी जा सकती है जिसमें त्रिभंग में खडे देवता के हाथों में इक्षुधनु एवं पुष्पबाण प्रदर्शित हैं जो तत्कालीन विषय सुख की प्रवृत्ति और भौतिक जगत के विविध वस्त्राभूषणों एवं प्रसाधन आदि के महत्त्व को अभिव्यक्त करते हैं। ज्ञातव्य है कि निवृत्तिमार्गी जैनधर्म में युग की आवश्यकता के अनुरूप नियंत्रित भाव के साथ भौतिक जगत् एवं काम के महत्व को भी स्वीकार किया गया। हरिवंशपुराण में एक ऐसे जिन मन्दिर का सन्दर्भ आया है जिसमें सम्पूर्ण प्रजा के कौतुक के निमित्त कामदेव और रति की मूर्ति बनवायी गयी थी। यह जिन मन्दिर कामदेव मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध था ।

प्रस्तुत अध्याय में महापुराण के साथ साथ जैन एवं जैनेतर ग्रन्थों की सामग्री के आधार पर तत्कालीन सांस्कृतिक जीवन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। तुलनात्मक विवेचन के लिये आवश्यकतानुसार पुरातात्त्विक साक्ष्यों का भी उपयोग किया गया है। सांस्कृतिक केशविन्यास तथा नृत्य संगीत आदि का विवेचन किया गया है। इलोरा की जैन गुफाओं में ऐन्द्रिकता का भाव व्यक्त करनेवाले आलिंगनबद्ध और चुम्बन की मुद्रा में कुछ स्त्री पुरूष युगलों की आकृतियाँ भी बनी हैं। साथ ही अम्बिका एवं पद्मावती यक्षी तथा बाहुबली के मूर्तियों के साथ दो विद्याधरियों की आकृतियों में भी आकर्षक देहयष्टि तथा अलंकृत मुकुट, विविध शैलि के हार, केयूर आदि आभूषण तथा वस्त्र सज्जा की विविधता तत्कालीन वस्त्राभूषण के सुन्दर उदाहरण है।

(१) आभूषण :- आभूषण श्रृंगार के आवश्यक उपकरण है। श्रृंगार की प्रबल भावना के कारण ही आभूषणों का निर्माण तथा उसका निरन्तर विकास व परिष्कार हुआ। मानव की सहज श्रृंगार प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति के माध्यमों में आभूषण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। यही से विश्व की सभी सभ्यताओं में आभूषणों को धारण करेन की परम्परा का प्रारम्भ सभी वर्गो और जातियों में मिलती है। आभूषण नख से शिख तक के सभी अंगो में धारण किये जाते रहे हैं, किन्तु इसके उपादान का चुनाव समय, परिस्थिति , रुचि एवं आर्थिक तथा सामाजिक स्थितियों के आधार पर होता रहा है। यही कारण है कि घास,पत्ती,पुष्प,शीशे से लेकर कांसे, पीतल,चाँदी, सोने एवं रत्नों आदि तक के आभूषणों का निर्माण होता रहा है।

जैन पुराणों मे शारीरिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण करने का उल्लेख है। उत्तरपुराण में कुलवती नारियों द्वारा अलंकार धारण करने का उल्लेख है। जबकि विधवास्त्रियों द्वारा इनके परित्याग का सन्दर्भ मिलता है। उत्तरपुराण में आभूषणों से अलंकृत होने के लिये "अलंकरणगृह" तथा "श्रीगृह" का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है । उत्तरपुराण में भोग भूमि काल में भूषणांग तथा मालांग जाति के ऐसे वृक्षों का उल्लेख है। जो क्रमशः नूपुर, बाजूबन्ध, रुचिक, अंगद, मेखला, हार व मुकुट तथा विविध ऋतुओं के पुष्पों से निर्मित मालाएँ तथा कर्णफूल इत्यादि प्रदान करते थे। आदिपुराण की यह अवधारणा स्पष्टतः भारतीय परम्परा की पूर्ववर्ती कल्पवृक्ष की परिकल्पना तथा शुंग.कुशाणकालीन (भरहुत, सांची,मथुरा) ऐसे कल्पवृक्षों के शिल्पांकन से प्रभावित है जिनमें विभिन्न प्रकार के आभूषणों और वस्त्रों को कल्पवृक्ष से लटकते हुए दिखाया गया है। ज्ञातव्य है कि दिगम्बर परम्परा के पूर्वग्रन्थ तिलोयपण्णत्ति (१.४.३४२.३५४) में कल्पवृक्षों की सूची में भूषणांग एवं मालांग के भी नाम दिये हैं।

आभूषण निर्माण के उपादान - जैन पुराणो में आभूषणों का निर्माण रस, रजत, स्वर्ण तथा मणि आदि से होने का सन्दर्भ मिलता है।उत्तरपुराण में स्वर्ण को अग्नि में तपाकर शुद्ध करने के उपरान्त ही उससे आभूषण बनाने का उल्लेख है। समुद्र में महामणि के बढ़ने का भी उल्लेख मिलता है। रत्नजडित स्वर्णाभूषणों को रत्नाभूषण कहा जाता था। जैन पुराणों में विभिन्न मणियों का सन्दर्भ मिलता है जिनका प्रयोग अधिकांशतःआभूषणो के निर्माण में किया जाता था। इनमें चन्द्रकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि,हीरा, वैदूर्यमणि, कौस्तुभमणि, मोती, इन्द्रमणि,जात्यंज्जय (कृष्णमणि),पद्मरागमणि, हैम (पीतमणि),मुक्ता (श्वेतमणि) गोमुखमणि, स्फटिकमणि,मरकतमणि,पद्मरागमणि तथा प्रवाल जैसे मणियों की उल्लेख मिलते है। इनमें से कुछ मणियों का बाहर से आयात भी किया जाता था। आभूषणों के प्रकार स्त्री व पुरूष दोनों द्वारा समानरूप से धारण किये जानेवाले विभिन्न आभूषण सिरोभूषण,कर्णाभूषण,ग्रीवाभूषण, कराभूषण,कटिआभूषण तथा पादाभूषण थे। प्रत्येक आभूषण के विविध प्रकार प्रचलित थे जिनका अंगानुसार वर्णन यहाँ अपेक्षित है।

शिरोभूषण- सिर को भूषित करनेवाले आभूषणो में मुख्यतः मुकुट, किरीट, बोर, रूकड़ी, चूड़ामणि, मौलि, सीमन्तकमणि, अवत्तस, कुन्ताली व पट्ट का जैन पुराणों में उल्लेख मिलता है। हूमड़ समाज की स्त्रियों में बोर और रकडीबोंधणी थी ।

मुकुट- मुकुटदेव आकृतियों, राजा और सामंत तीनों के मस्तक का प्रमुख आभूषण था। दीक्षापूर्व तीर्थंकर भी मुकुट धारण करते थे। देव आकृतियों द्वारा धारण किये गये मुकुट के अग्रमान पर मणियाँ लगी होती थी। निःसन्देह मुकुट का प्राचीनकाल में अत्यधिक महत्त्व था और विशेषतः इसका प्रचलन राजपरिवारो में ही था। विभिन्न प्रकार के मुकुट के उदाहरण ९वीं १०वीं शती ई. के देवगढ़ (मन्दिर १२) ,एलोरा तथा ११वी.१२वीं शती ई. के सतना, शहडील व विमल वसही (आबू,राजस्थान) की अम्बिका, चक्रेश्वरी एवं पद्मावती यक्षियों की मूर्तियों में देखे जा सकते हैं।

किरीट- किरीट का निर्माण स्वर्ण होता था। चक्रवर्ती व महान सम्राट भी इसको धारण करते थे। यह प्रतिमाशाली सम्राटो की महत्ता का सूचक था। जैन यक्षी चक्रेश्वरी की मूर्तियों में किरीटमुकुट का अंकन सभी स्थलो पर मिलता है। ज्ञातव्य है कि ब्राहाण परम्परा में विष्णू एवं सूर्य की मूर्तियों में सर्वदा किरीटमुकुट ही दिखाया गया है।

किरीटी- किरीटी का निर्माण स्वर्ण व मणियो द्वारा होता था । यह किरीट से कुछ छोटा होता था तथा स्त्री व पुरूष दोनों ही इसे धारण करते थे। स्त्रियों में प्रचलित किरीटी के उदाहरण हुम्मच (कर्नाटक) के जैन मन्दिर से प्राप्त १०वी शती ई. की अम्बिका एवं अनतूर (चिकमंगलूर,कर्नाटक) से प्राप्त ल. १२वीं. शती ई. की पद्मावती यक्षी की आकृतियो में स्पष्टतः देखे जा सकते है।

चूडामणि- इसका प्रयोग देवों,राजाओं एवं सामतों द्वारा किया जाता था। चूड़ामणि के मध्य में मणि का होना आवश्यक था। आदिपुराण में चूड़ामणि के साथ चूड़ारत्न शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। वस्तुतः दोनो शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची है ।

मौलि- वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार केशों के ऊपर के गोल स्वर्णपट्ट मौलि है। पद्मपुराण के समान आदिपुराण में भी रत्नमय,स्वर्णसूत्र में परिवेष्ठित एवं मालाओं से युक्त मौलि का उल्लेख मिलता है। यद्यपि मौलि का स्थान किरीट के बाद था। किन्तु मस्तक के आभूषणों में यह महत्वपूर्ण था। प्राचीन हूमड़ महिलायें बोर गूँथने के साथ इसे स्वर्ण पट्टी का उपयोग करती थी।

सीमन्तकमणि- स्त्रियाँ सीमन्तकमणि अपने सीमन्त में धारण करती थी। आज मांगटीका के रूप में इसका प्रचलन देखा जा सकता है जिसे विवाहित स्त्रियों के लिए सौभाग्य का सूचक माना गया है।

अवतंस- युवराजों में अवतंस धारण करने का प्रचलन था। अन्य मुकुटों से यह अधिक सुन्दर होता था। मुख्यतः पुष्पो से ही इसका निर्माण किया जाता था। इसका आकार किरीट और मुकुट से छोटा होता था। रकड़ी शादी के समय दुल्हन के केश में मांग की जगह बांधी जा रही है। यह स्वर्ण में हीरे से जडित होती है।

कुन्तली - किरीट के साथ ही कुन्ताला का भी उल्लेख मिलता है। सम्भवतः आकार में कुन्ताली किरीट से बड़ा होता था। इसे कलंगी के रूप में केश में लगाने की प्रथा थी। केवल उच्चवर्ग के स्त्री पुरूषों में ही इसका प्रचलन था।

पट्ट - बृहत्संहिता में पट्टा का स्वर्णनिर्मित होना आवश्यक माना गया है तथा इसके पाँच प्रकार बताये गये है राजपट्ट (तीन शिखाएँ) महिषीपट्ट (तीन शिखाएँ), युवराजपट्ट (तीन शिखाएँ), सेनापतिपट्ट (एक शिखा) तथा प्रसादपट्ट । (शिखाविहीन) । सामान्यतः पट्ट उष्णीष के ऊपर बाँधा जाता था।

कर्णाभूषण-कानों मे विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण करने की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है । समय के अनुसार केवल इनके उपादानो में अन्तर रहा है। कर्णाभूषणों के निर्माण के लिये सामान्यतः स्वर्ण, रजत, विभिन्न रत्नों, मणियों एवं पुष्पों आदि का प्रयोग होता था । स्त्रियों व पुरूषों दोनों में कर्णाभूषण का समानरूप से प्रचलन था। केवल उनके आकार प्रकार में भिन्नता दिखायी देती है। स्त्रियों के कर्णाभूषणों में विविधता भी दिखायी देती है। पुरूष सामान्यतया कुण्डल धारण करते थे जबकि स्त्रियां कर्णफूल, कुण्डल, कनक कमल व अवतंस पहनती थी। कर्णाभूषण का निर्माण पत्रांकुर, छोटी, पत्तियों,पुष्पों व हाथी दांत से भी होता था। जैन पुराणों में कर्णाभूषणों के विभिन्न प्रकारों का सन्दर्भ मिलात है ।

कुण्डल- कुण्डल अति लोकप्रिय कर्णाभूषण था। आदिपुराण में कपोलों तक लटकने वाले व मकर की आकृति से चिन्हित रत्नमयी कुण्डलों क्र उल्लेख है । राजकुल के शिशुओं को भी मणिमय कुण्डल पहनाये जाते थे। सामान्य स्त्रियाँ कर्णमणियों से बने हुए कुण्डल पहनती थी। केवल साहित्य में ही नहीं, मूर्त उदाहरणों में भी ऐसे कर्णाभूषणों के उदाहरण मिलते हैं। देवगढ़ की सर्वानुभूति यक्ष (१०वीं शती इ.) की आकृति के कानों में इस प्रकार के कुण्डल देखे जा सकते है। रत्न एवं मणिजडित कुण्डल के विभिन्न नामों के उल्लेख जैन पुराणों में मिलते है । उदाहरणार्थ मणिमण्डल, रत्नकुण्डल, मकराकृत कुण्डल, कुण्डली, मकरांकित कुण्डल आदि। समराइच्चकहा, यशस्तिलक एवं अजन्ता की चित्रकला मे इनके उल्लेख और अंकन मिलते है।

अवतंस-पुराणों में पुष्पों एवं कोमल पत्तों से बने अवतंस के उदाहरण मिलते हैं। पद्मपुराण मे इसके लिये चंचलावतंस नाम आया है । कुमारसम्भव में शिव के पीछे चलती हुई स्त्रियों के कर्णावतंस हिलते हुए बताये गये है। सम्भवतः यह वर्तमान झुमके जैसा लटकता कर्णाभूषण था।

कर्णफूल- अधिकांश स्त्रियां कर्णफूल ही धारण करती थी। हर्षचरित में राजाओ द्वारा कर्णफूल पहनने का उल्लेख है । आदिपुराण स्वर्ण के अतिरिक्त पत्तों व धान की बालियों से निर्मित कर्णफूल का भी उल्लेख है जिन्हे स्त्रियाँ धारण करती थी । सम्पन्न हूमड़ परिवार के लोग विशेष अवसरों पर कर्ण फूला आज भी धारण करती है।

कण्ठाभूषण- स्त्री व पुरूष दोनों ही गले में विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण करते थे । गले में धारण करनेवाले आभूषणों की प्राचीनता हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो से प्राप्त विभिन्न हार व हंसली आदि से सिद्ध होती है। हार गले का प्रमुख आभूषण था जिसके विविधि प्रकार एकावली, हारशेखर, हारयष्टि, अढढहार (अर्धहार) लम्बहार,निधौतहार तथा रत्नावली आदि थे। जैन पुराणों के अनुसार गले के आभूषणों का निर्माण स्वर्ण, मुक्ता तथा रत्नों से होता था। मुक्तामणि तथा रत्नों से युक्त हार को अधिकांशतः देव तथा राजा ही धारण करते थे। मोतियों का हार नगर की स्त्रियाँ तथा स्वर्णनिर्मित माला ग्रामीण स्त्रियाँ पहनती थी। जैन पुराणों में वर्णित विभिन्न कण्ठाभूषण निम्नवत् है ।

यष्टि- लड़कियों के समूह को यष्टि कहा गया है। आदिपुराण में शीर्षक, उपशीर्षक, अवघाटक, प्रकाण्डक तथा तरलप्रबन्ध नामों से यष्टि के पाँच भेद बताये गये हैं।

शीर्षक- शीर्षक के मध्य में एक स्थूल मोती होती थी।

उपशीर्षक- इसके बीच में क्रमशः बढते हुए तीन मोती होते थे।

अवघाटक - अवघाटक के मध्य में एक मणि और उसके दोनों ओर क्रमशः छँटे हुए छोटे छोटे मोती लगे होते थे।

प्रकाण्डक- इसके बीच बीच में क्रम से बढ़ते हुए पांच मोती लगे होते थे।

तरल प्रबन्ध - तरल प्रबन्ध यष्टि में सब स्थानों पर एक समान मोती लगे होते थे।

आदिपुराण में एकावली, रत्नावली तथा अपर्वितका नामों से मणियुक्त यष्टि के अन्य तीन भेदों का भी उल्लेख मिलता है।

मणिमध्या यष्टि- मणिमध्या यष्टि के मध्य में एक मणि लगा होता था। मणिमध्या यष्टि को सूत्र तथा एकावली भी कहा गया है। मणिमध्या यष्टि के सुवर्ण व मणियों से चित्र विचित्र होने पर उसे रत्नावली नाम दिया गया। इसके अतिरिक्त जिस मणिमध्या यष्टि को किसी निश्चित प्रमाण वाले सुवर्ण मणि, माणिक्य और मोतियों के मध्य अन्तर देकर गूंथा जाता था उसे अपर्वितिका कहा गया है। इस प्रकार के मणिमध्या का उल्लेख कालिदास के रघुवंश और मेघदूत में भी हुआ है।

शुद्धा यष्टि - मणिरहित यष्टि की शुद्धयष्टि के नाम से अभिहित किया गया है।

हार-आदिपुराण में यष्टि अर्थात् लडियों के समूह को हार कहा गया है। हार में शुद्ध एवं कान्तिमान रत्नों का प्रयोग किया जाता था। मुक्ता निर्मित माला मुक्ताहार कहलाती थी। आदिपुराण में मुक्ताहार (मोतियों की माला), एकावला हार (एक लड़ी का हार) तथा नक्षत्र माला (सत्ताइस मोतियों का हार) का उल्लेख आया है। केवल साहित्य ही नहीं मूर्त उदाहरणों से भी इनके प्रचलन की पुष्टि होती है। देवगढ़ व इलोरा से प्राप्त १०वीं शती ई. की अंबिका यक्षी एवं सर्वानुभूति यक्ष की मूर्तियों से मुक्ताहार तथा एकावली या अंकन मिलता है। हार बनाने के लिये धागे में मोतियों तथा रत्नों को गुथित किया जाता था। लडियों की संख्या के घटने चढ़ने के आधार पर हार के ११ भेदों का उल्लेख भी आदिपुराण में मिलता है। ज्ञातव्य है कि प्रारम्भिकतम हारों का सन्दर्भ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित हारों की लडकियों की संख्या में कहीं कहीं अन्तर भी मिलता है। आदिपुराण में वर्णित हार के निम्न लिखित प्रकार हैं।

इन्द्रच्छन्द हार - १००८ लडियों वाले हार को इन्द्रच्छन्द हार कहा गया है। इस हार को अन्य हारों की तुलना में श्रेष्ठ माना गया है तथा इसे इन्द्र, जिनेन्द्र एवं चक्रवर्ती सम्राटों द्वारा धारण करने योग्य बताया गया है।

विजयच्छन्द हार - ५०४ मोतियों के ८१ लड़ियों वाले हार को विजयच्छन्द हार कहा गया है। इस अर्धचक्रवर्ती पुरूष धारण करते थे।

हार में १०८ लडियाँ होती थी।

देवच्छन्द हार- मोतियों के ८१ लडियों वाले हार को देवच्छन्दहार कहा गया है।

अर्धहार- ६४ लडियों वाले हार को अर्धहार की संज्ञा प्रदान की गयी।

रश्मिकलाप हार- इसमें मोतियों की ५४ लडियाँ होती थी। इसकी मोतियों से अपूर्व रश्मि निस्सरित होने का उल्लेख है। अतः यह नाम सार्थक प्रतीत होता है।

गुच्छहार- मोतियों की ३२ लडियों वाला हार गुच्छहार था।

नक्षत्रमाला हार- इसमें २७ लडियाँ होती थी। इसकी मोतियाँ अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्रावली की शोभा का उपहास करनेवाली बतायी गयी। इस हार की आकृति भी नक्षत्रमाला के समान होती थी।

अर्धगुच्छ हार--मोतियों की २४ लडियों के हार को अर्धगुच्छ हार कहा गया है।

माणव हार- माणव हार में मोती की कुल बीस लडियाँ होती थी।

अर्धमाणव हार - १० लडियों के हार को अर्धमाणव हार कहा गया है। इसके मध्य में जब मणि लगा होता था तो यही हार फलवहार कहलाता था। इसी फलवहार में जब सोने के तीन फलक (सुवर्ण के गोल दाने) लगे होते थे तो वह सोपान तथा जिसमें सोने के पाँच फलक लगे होते थे वह मणिसोपान कहलाता था। सोपान नामक हार में केवल सुवर्ण के ही फलक होते थे जबकि मणिसोपान नामक हार में रत्नजडित सुवर्ण के फलक लगे होते थे।

उपरोक्त हारो के मध्य में जब फणि लगा होता था तब उनके नामो के साथ "माणव" शब्द जोड दिया जाता था। उदाहणार्थ इन्द्रच्छन्दमाणव, विजयच्छन्दमाणव, हारमाणव इत्यादि। इसी प्रकार उपरोक्त ११ प्रकार के हारो में प्रत्येक के साथ यष्टि के ५ प्रकारों शीर्षक, उपशीर्षक, अवघाटक, प्रकाण्डक एवं तरल प्रबन्ध को भी सम्मिलित कर लिया जाय तो कुल मिलाकर हार के ५५ प्रकार प्राप्त होते हैं।

नेमिचन्द्र ने इन्द्रच्छन्द, विजयच्छन्द, देवच्छन्द, रश्मिकलाप, गुच्छनक्षत्रमाला, अर्धुगुच्छ, माणव, अर्धमाणव, इन्द्रच्छन्दमाणव तथा विजयच्छन्दमाणव के भेद से यष्टि के ११ भेदों का उल्लेख किया जो असंगत प्रतीत होता है।

गले के अन्य आभूषण- जैन पुराणों में जिन अन्य कष्ठाभूषणों का उंल्लेख मिलता है वे निम्नलिखित हैं

कष्ठमालिका-इसे स्त्री व पुरूष दोनों ही धारण करते थे।

कष्ठाभरण- यह पुरुषों द्वारा धारण किया जाता था तथा रत्नजड़ित होता था।

स्त्रक - इसका निर्माण पुष्प, स्वर्ण, मुक्ता तथा रत्नों द्वारा होता था।

कांचनसूत्र- यह सुवर्ण या रत्नयुक्त कष्ठाभूषण था । इनके अतिरिक्त ग्रैवेयक हारलता, हारवल्ली, मणिहार, हाटक, मुक्ताहार, कण्ठिका तथा कण्ठिकेवांस कण्ठ के अन्य आभूषण थे। कण्ठिकेवास को देवी प्रसाद मिश्रा ने लाख की बनी हुयी कण्ठी और गले के ऊपर वर्णित आभूषणों में इसे निम्न कोटि का बताया है। स्वर्ण, मोती, मणि तथा रत्न युक्त कष्ठाभूषणों के अतिरिक्त सन्तानक, पारिजात तथा अन्य प्रकार के पुष्पों की मालाओं से भी सौन्दर्य वृद्धि की जाती थी।

कराभूषण- अंगद, केयूर, वलय, कटक, चूंडा, गेंद तथा मुद्रिका हाथ के प्रमुख आभूषण थे जिनका स्त्री पुरुष दोनों में समान रूप से प्रचलन था। इन सभी कराभूषणो के आकार प्रकार में स्पष्टतः अन्तर मिलता है। पुरूषों में ये आभूषण सादे होते थे किन्तु स्त्रियों द्वारा धारण किये जानेवाले इन आभूषणों में घुघरू लगे होते थे।

अंगद- अंगद पीछे की ओर बाँधकर पहना जानेवाला आभूषण । इसे भुजबंद भी कहते थे । जिसे स्त्री पुरूष समान रूप से धारण करते थे । क्षीरस्वामी ने केयूर और अंगद की व्युत्पत्ति बताये हुए लिखा है के बाहूशीर्ष यौति केयूरम् अर्थात् जो भुजा के ऊपरी छोर को सुशोभित करे उसे केयूर कहते है और अंग दयते अंगदम् अर्थात् जो अंग को निपीड़ित करे वह अंगद है। अंगद का उल्लेख कालिदासकृत रघुवंश में भी आता है। बाहुओं को सुशोभित करनेवाले मुक्ता निर्मित भुजबंध के उदाहरण इलोरा के गुफा सं. ३२ को अम्बिका आकृति में स्पष्टतः देखे जा सकते है। भुजबंद का प्रयोग हूमड़ महिलायें करती थी ।

केयूर - यह भी भुजबंध का ही एक प्रकार था जिसे स्त्री पुरूष दोनों अपनी भुजाओं पर धारण करते थे। कालिदास ने केयूर में नोक होने का उल्लेख किया है। केयूर स्वर्ण निर्मित व रत्नजडित होता था। इसका उल्लेख जैन महापुराणों में अनेक स्थलों पर हुआ है। प्राचीन हूमड़ महिलायें स्वर्ण जडित चूड़ा पहनती थी। विशेष अवसर पर नोगरी, हाथफूल, एवं गेंद भी पहनती थी।

कटक - प्राचीनकाल से ही स्वर्ण, रजत, हाथीदाँत एव नख निर्मित कटक (कड़ा) पहनने का प्रचलन था। इसे स्त्री पुरूष दोनों धारण करते थे। आदिपुराण में रत्नों के बने हुए वीरांगद नामक कटक का उल्लेख है जिसके कान्ति की तुलना विद्युत को कान्ति के साथ की गयी है। इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थल पर रत्नजडित चमकीले कड़े के लिये दिव्य कटक शब्द प्रयुक्त हुआ है । भगवतीसूत्र जैसे आगम जैन ग्रन्थ के कटक के अत्यन्त ढीले होने का उल्लेख मिलता है।

मुद्रिका (अंगुठी) - यह हाथों की अंगुली में धारण किया जानेवाला एक प्रमुख आभूषण था जिसका प्रचलन प्राचीनकाल में ही स्त्री व पुरूषों में समान रूप से था। मुद्रिकाएँ सामान्यतः सादी होती थी जिनको खुडडाग भी कहा जाता था। रघुवंश तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी रत्नजडित मुद्रिकाओं के उल्लेख मिलते हैं। जैन पुराणों में भी स्वर्णनिर्मित, रत्नजडित, पशु पक्षी, देवता मनुष्य व विभिन्न चिह्न व नामोत्कीर्ण मुद्रिकाओं का उल्लेख है । इसका मूर्त उदाहरण विमलवसही (आबू १२वीं शती ई०) की अम्बिका मूर्ति में देखा जा सकता है। कर्नाटक से प्राप्त लगभग १२वीं शती ई. की चतुर्भुजा पदमावती यक्षी की अंगुलियों में भी मुद्रिका देखी जा सकती है। पदमपुराण में मुद्रिका के लिये उर्मिका शब्द प्रयुक्त हुआ है। सभी समाज के लोग धारण करते हैं ।

कटि आभूषण- कटि आभूषणों में मेखला, कांची, रशना एवं दाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

(क) मेखला - प्राचीनकाल से ही विभिन्न प्रकार की मेखला का प्रचलन स्त्री व पुरूष दोनों में सामान्यरूप से था । सैन्धव सभ्यता से मनकों और धातु के टुकड़ों से निर्मित मेखला के उदाहरण प्राप्त हुए है। भगवतीसूत्र में पुरूषों द्वारा मणिमेखला पहनने का उल्लेख है । इसके अतिरिक्त स्वर्ण व रत्नजडित भी होती थी। रघुवंश व कुमारसम्भव मे शिंजित (घुघरूयुक्त मेखला) और मुक्तामयी मेखला के भी सन्दर्भ मिलते है। विभिन्न प्रकार के मेखला के मूर्त उदाहरण ११वीं १२वीं सदी ई. के ओसिया के जीवन्तस्वामी महावीर और कुंभारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर, शान्तिनाथ मन्दिर तथा इलोरा (गुफा सं.३२) की अम्बिका यक्षी की मूर्तियो में देखे जा सकते हैं। मेखला को कंदोरा भी कहते हैं इसे आज भी हूमड़ महिलायें शौक से पहनती है।

(ख) कांची - कांची कांचनमयी व रत्नजडित होती थी। ध्वनि के लिए इसमें घुंघरू भी लगे होते थे। जैन पुराणों में कांची शब्द कटिवस्त्र से सटाकर धारण किये जानेवाले आभूषण के लिए प्रयुक्त हुआ है। कांची स्वर्ण निर्मित चौड़ी पट्टी थी जिसमें मणि और रत्न भी जड़े होते थे। ११वीं सदी ई. की पतियानदायी (सतना,म० प्र०) की अम्बिका मूर्ति में कांची का स्पष्ट उदाहरण दृष्टव्य है ।

(ग) रशना - मेखला के समान यह भी कम चौड़ी होती थी तथा इससे घुघरू लगे होने के कारण ध्वनि होती थी। इसमें होनेवाले ध्वनि के आधार पर ही इसे मेखला से भिन्न किया जा सकता है। रशना के कुछ अन्य प्रकार हेमरशना (रत्नयुक्त), रशना कलाप (जिसमें घुघरूओं की संख्या अधिक हो) और क्वणित रशना (जिसमें बडे बडे हुए घुघरु लगे हों) थे।

(घ) दाम- आदिपुराण में काचीदाम, मुक्तादाम, मेखलादाम तथा किंकिणी युक्त मणियमदास का उल्लेख है। यह भी मेखला के समान कमर में धारण करनेवाला आभूषण था ।

(ङ) कटिसूत्र - कटिसूत्र स्त्री पुरुष दोनों द्वारा कमर पर धारण किया जाता था।

पादाभूषण :-

नूपुर :- पैरों में धारण करनेवाले आभूषणों में सबसे अधिक लोकप्रिय नूपुर था। सामान्यतया यह स्त्रियों का आभूषण था किन्तु कभी कभी पुरूषों द्वारा भी नूपुर धारण करने के उल्लेख मिलते हैं। नूपुर में घुघुरु लगे होने के कारण ध्वनि निकलती थी। अजंता एवं बाघ के भित्ति चित्रों में स्त्रियों द्वारा नूपुर पहनने के उदाहरण चित्रित है। मुख्यरूप से नूपुर स्वर्ण निर्मित और रत्नजटित होते थे किन्तु अनेक स्थलों पर मणिमय नूपुरों के भी उल्लेख मिलते हैं। १०वीं १२वीं सदी ई. के देवगढ़ के मन्दिर १२, पतियानदाई एवं विमलसही की अम्बिका यक्षी की मूर्तियों में नूपुर, स्पष्टतः देखा जा सकता है। इलोरा (गुफा सं.३२) की अम्बिका मूर्ति में ढीले प्रकार के नूपुर का सुन्दर उदाहरण है। प्रस्तुत उदाहरण की तुलना वर्तमान में प्रचलित नूपुर से की जा सकती है। कर्नाटक से प्राप्त लगभग ११वीं सदी ई. की चतुर्भुजा पदमावती यक्षी की मूर्ति पैरों में नूपुर के अतिरिक्त एक अन्य पादाभूषण भी दृष्टव्य है जो वर्तमान मे पहनेवाले कड़े अथवा छड़े के सदृश प्रतीत होता है। नूपुर हूमड़ महिलाओं का पसंद दीवा आभूषण है ।

(ख) गोमुखमणि :- यह गोमुख के आकार के चमकीले मणियों से युक्त शब्दायमान् पादाभूषण था। इसी कारण प्रस्तुत मणियुक्त आभूषण को गौमुखमणि के नाम से अभिहित किया गया।

(२) वस्त्र :- वैयक्तिक श्रृंगार में वस्त्र का भी महत्वपूर्ण स्थान है। सम्भवतः शीत ताप निवारण तथा लज्जा आच्छादन के उद्देश्य से वस्त्र का आविष्कार हुआ होगा किन्तु क्रमशः श्रृंगार की दृष्टि से भी इसका महत्त्व बढ़ता गया । आरम्भिक काल में मानव वस्त्र के रूप में पशूचर्म, वृक्षों की छाल व पत्तों का प्रयोग करता था। वस्त्र के विकास के इतिहास से यह स्पष्ट हो जाता है कि आगे चलकर आवश्यकता एवं उपयोगियता की अपेक्षा श्रृंगार की दृष्टि से इनका अधिक महत्व हो गया । इसी कारण विविध रंगो, नमूनो और अलंकारों से सुसज्जित वस्त्रों का विकास हुआ और उन्हें विभिन्न आकार प्रकार देकर धारण किया जाने लगा । सभी युग में अपनी सामर्थ्य के अनुसार स्त्री, पुरूष व बालक इसका उपयोग करके अपने को आकर्षित बनाते रहे हैं।

जैन पुराणों में सामान्यतः कापसिक (सूती वस्त्र), और्ण (ऊनी वस्त्र), कीटज (सिल्क), रेशम, चर्म के वस्त्र, वल्कल(वृक्षों की छालों के वस्त्र) तथा पत्र (पत्तों के वस्त्र) वस्त्रों के उल्लेख मिलते है ।

वस्त्र के विभिन्न प्रकार एवं स्वरूप- जैन पुराणो में निम्नलिखत प्रकार के वस्त्रों एवं विभिन्न वेशभूषाओं के सन्दर्भ में उनके उपयोग के उल्लेख मिलते हैं।

(क) अंशुक :- वृहत्कल्पसूत्रभाष्य की टीका में अंशुका चमकीले रेशमी वस्त्र के रूप में वर्णित है।समराइच्चकहा एवं आचारांगसूत्र में भी अंशुक के उल्लेख है। मोतीचन्द के अनुसार यह चन्द्रकिरण और श्वेत

कमल के सदृश होता था। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार यह उत्तरीय वस्त्र था जिसके ऊपर कसीद द्वारा अनेक प्रकार के नमूने बनाये जाते थे। बाण के अनुसार अंशुक एक स्वच्छ एवं झीना वस्त्र था। पदमपुराण तथा आदिपुराण में अनेक स्थलों पर अंशुक का उल्लेख है। बिनावट के आधार पर अंशुक के एकांशुक, अध्यांशुक, द्वयांशुक तथा त्रयांशुक जैसे भेद किये गये हैं। अंशुक के निम्नलिखित पाँच प्रमुख उपभेद है।

(१) **सुकच्छायांशुक** - यह शुआपंखी अर्थात् हल्के हरे रंग का महीन रेशमी वस्त्र था।

(२) **स्तनांशुक** - यह चोली या पट्ट जैसा वस्त्र था जिससे केवल स्त्रियों का वक्ष भाग आवर्णित रहता था। इसे उत्तरासंग भी कहा गया। कालिदास ने ऋतुसंहार में स्तनांशुक वस्त्र का उल्लेख किया है। स्तनांशुक का मूलअंकन हिंगलाजगढ़ से प्राप्त एवं इन्दौर संग्रहालय मे सुरक्षित ल.१०वीं ११वीं सदी ई. की अंबिका मूर्ति में देख जा सकता है।

(३) **उज्जवलांशुक** - यह श्वेत रंग का झीना वस्त्र था जिस स्त्रियाँ अपने अधोभाग में साडी की भाँति बाँधती थीं।

(४) **सदंशुक**- यह स्वच्छ, श्वेत, सूक्ष्म एवं स्निग्ध रेशमी वस्त्र था जिसे तीर्थंकर भी धारण करते थे।

(५) **पटांशुक** - यह महीन, धवल एवं रेशमी वस्त्र था जिसे कमर पर बाँधा जाता था।

(ख)**क्षौम**- यह अत्यन्त झीना एवं सुन्दर रेशमी वस्त्र था। अंगविज्जा के अनुसार क्षौम दुकूल तथा चीणपट्ट रेशमी वस्त्र थे। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार यह असम एवं बंगाल में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की घास से निर्मित किया जाता था। काशी और पुण्ड्र देश क्षौम वस्त्र के लिये प्रसिद्ध था।

(ग) **चीनपट्ट**- सम्भवतः चीन में बने पतले रेशमी वस्त्र को चीनपट्ट कहते थे। कुषाणकाल में मध्य एशिया के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप यह वस्त्र प्रचलन में आया। अंगविज्जा में भी चीनपट्ट का उल्लेख हुआ है। बुहतकल्पभाष्य में इसका वर्णन चीन के महीन रेशमी वस्त्र के रूप में हुआ है।

(घ) **प्रावार** - यह वर्तमान दुशाले के समान पुरूषों द्वारा धारण किया जानेवाला वस्त्र था। हेमचन्द्र के ग्रन्थ में राजाच्छादना प्रावरा का प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि राजाओं के ओढ़ने व बिछाने योग्य ऊनी या रेशमी वस्त्र के लिये प्राचार शब्द प्रचलित था। अमरकोश में दुपट्टे एवं चादर के लिये पाँच शब्द- प्रावार, उत्तरासंग, बृहतिका, संव्यान तथा उत्तरीय मिलते हैं।

(ङ) **उष्णीष**- इसे साफा या पगड़ी के रूप में पुरूष अपने शीश पर धारण करते थे। अंगविज्जा में भी उष्णीष का उल्लेख है। इसे मस्तक पर टोपी के समान पहना जाता था। उष्णीष सादी व कामदार दोनों प्रकार की होती थी। ज्ञातव्य है कि जूड़े के रूप में सिर के मध्य में बंधी केशसज्जा को भी उष्णीय कहते थे जिसका अंकन कुषाणकाल से तीर्थंकर मूर्तियों में मिलने लगता है।

(च) **चीवर** - चीवर बौद्ध भिक्षुओं का परिधान था जो पीतवर्ण के रेशमी वस्त्र से निर्मित किया जाता था। ब्रह्मचारी एवं श्रमण भी इसे धारण करते थे।

(छ) **परिधान**- यह एक प्रकार की धोती समान अधोवस्त्र था।

(ज) **कम्बल**- यह ऊनी वस्त्रों का साधारण बोधक शब्द था। अंगविज्जा में ऊनी वस्त्रों के लिये उण्णिक शब्द व्यवहृत हुआ है। इसका प्रयोग रथ के पर्दे के निर्माण में भी होता था। यह भेड़ बकरी के ऊन से निर्मित मुलायम और सुन्दर ऊनी वस्त्र था।

(झ) रंग-बिरंगे वस्त्र- अंगविज्जा में श्वेत, लाल, हरे पीले, मयूर के रंग के समान नीले (मयूरकण्गीव), गहरे स्लेटी (करेणूयक) दो रंगो के (वित्र) तथा गुलाबी रंग के वस्त्रों के उल्लेख है। वस्त्र रँगने वाले को शुद्धरजक कहा जाता था।

(ञ) उपसंव्यान - यह भी धोती का ही बोधक है। अमरकोश में धोती के लिये अन्तरीय, उपसंव्यान, परिधान एवं अधोंशुक शब्द का प्रयोग किया गया है।

(ट) वल्कल - जैन साधुओं द्वारा वल्कल कुश एवं पत्रों के वस्त्र पहनने के उल्लेख है। मोतीचन्द्र ने छाल के वस्त्र को वल्कल कहा है जिन्हें बौद्ध भिक्षु पहनते थे।

(ठ) दुष्यकुटी (या देवयूष्य)- इसका प्रयोग तम्बू के रूप में होता था। स्तूप पर चढाये जानेवाले बहुमूल्य वस्त्र देवदूष्य कहलाते थे। भगवतीसूत्र में देवदूष्य को एक प्रकार का देवी वस्त्र कहा गया है जिसे महावीर ने धारण किया था।

(ड) दुकूल - दुकूल श्वेत, मृदु, स्निग्ध एवं बहुमूल्य वस्त्र था जिसका प्रयोग अधिकांशतः धनी परिवारों में ही होता था। आचारांग सूत्र में गौड़ गेश (बंगाल) में उत्पादित एक विशेष प्रकार के कपास से निर्मित दुकूल वस्त्र का वर्णन मिलता है।

(ढ) कुसुम्भ - यह लाल रंग का सूती व रेशमी वस्त्र था। संभवतः सम्पन्न लोग रेशमी वस्त्र था। संभवतःसम्पन्न लोग रेशमी कुसुम्भ का एवं निर्धन सूती कुसुम्भ का प्रयोग करते थे।

(ण) नेत्र - नेत्र एक बारीक रेशमी वस्त्र था जिसका निर्माण वृक्ष विशेष की छाल से किया जाता था। हरिवंशपुराण में इसके लिए महानेत्र शब्द प्रयुक्त हुआ है। सर्वप्रथम कालिदास ने नेत्र का उल्लेख किया है।

(त) एणाजिना - देवी प्रसाद ने इसे ' कृष्णमृगचर्म ' बताया है जिसका प्रयोग तपस्वी एवं वनवासी वस्त्र तथा आसन के रूप में करते थे।

(थ) उपानत्क - यह पैरों में पहने जानेवाले जूते के समान होता था। बृहतकल्पसूत्र भाष्य तथा भगवतीसूत्र में इसके लिये गाय,भैंस, बकरे, भेंड व अन्य वन्य पशुओं के चमड़े के उपयोग का उल्लेख है। अजंता की कुछ आकृतियों में मोजे जैसा वस्त्र अथवा मोजे के आकार का उपानह देखा जा सकता है।

जैन पुराणों में प्रच्छदपट (चादर), परिकर (कमरबन्द), गल्लक (गददा), उपधान (तकिया) तथा पीताम्बर आदि वस्त्रों का भी उल्लेख मिलता है किन्तु महापुराण में इनका कोई सन्दर्भ नहीं है।

वस्त्रों के उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि महापुराण में सूती, रेशमी, ऊनी, चर्म, वल्कल प्रकार के वस्त्रों का विस्तृत विवरण है। वस्त्र व्यक्ति की परिस्थितिनुसार सामान्य एवं बहुमूल्य, रंग बिरंगे, अलंकृत एवं सादे होते थे। पुरूषों एवं स्त्रियों के कुछ विशेष वस्त्र भी थे जो उन्हीं द्वारा धारण किये जाते थे। सामान्यतः धोती एवं उत्तरीय वस्त्र का ही प्रचलन था।

(३) केशसज्जा :-

भारत में प्राचीनकाल से ही केश विन्यास की विभिन्न शैलियाँ प्रचलित रही है। प्राचीन प्रस्तर एवं मृण्मूर्तियों तथा चित्रों मे केश विन्यास की विविध शैलियों के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। हमारा संस्कृत साहित्य भी केश सज्जा की विभिन्न शैलियों के विस्तृत विवरण की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय ज़ीवन में धर्म ही महत्ता के फल स्वरूप विभिन्न धार्मिक यज्ञों एवं संस्कारों के अवसर पर केश सज्जा की अलग अलग शैलियों का प्रचलन था। साहित्य में हमें केशों को साजसंवार कर रखने का विस्तृत वर्णन भी प्राप्त होता है। केशों को अलंकृत करने के लिये आभूषणों के अतिरिक्त भिन्न भिन्न ऋतुओं में अलग अलग पुष्पों का प्रयोग किया जाता था जिसकी चर्चा आदिपुराण में भी मिलती है। केश सज्जा में आभूषणों के वाद पुष्पों का सर्वाधिक महत्त्व था। आज भी दक्षिण भारत में केश सज्जा में पुष्पों का प्रयोग विशेष रूप से देखा जा सकता है।

जैन पुराणों में स्त्री पुरूषों की केश सज्जा के विस्तृत उल्लेख मिलते हैं। पुराणों मे केशों के लिये कुन्तल, केश,अलक तथा कबरी आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। केश को सुगन्धित जल से धोने के बाद धूप आदिसुवासित सामग्री से सुखाया जाता था। सूखने के पश्चात् केशों में कंघी की जाती थी यथा उन्हें वेणी अथवा जूड़े के रूप मे बाँधकर विभिन्न प्रकार के पुष्प आदि द्वारा सुसज्जित किया जाता था। आदिपुराण में वसन्त ऋतु मे चम्पा के पुष्पों तथा शरद ऋतु मे नीलकमल युक्त भद्रतरणी के पुष्पों से गुम्फित माला से वेणी को अलंकृत करने का उल्लेख है। कालिदास के ग्रन्थों में भी भिन्न भिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न पुष्पों से केशों के श्रृंगार का सन्दर्भ मिलता हैं । केश प्रसाधन के लिये पुष्पमाला, विभिन्न प्रकार के पुष्प, पुष्पराग, पल्लव, मंजरी आदि का प्रयोग भी किया जाता था । बृहत्संहिता तथा कालिदासकृत कुमारसम्भव, मेघदूत एवं ऋतुसंहार में केशों की स्वच्छता के लिये प्रयुक्त अवलेप तथा सुवासित करने के लिये धूँए इत्यादि का विस्तार से वर्णन है । केशों को सुवासित करने के लिये सुगन्धित तेलों का भी प्रयोग किया जाता था।

श्वेत केश सौन्दर्य वृद्धि में बाधक होते हैं। इसीलिये श्वेत केशों को रँगकर उन्हें काला बनाने की प्रथा भी प्राचीनकाल से ही भारत में प्रचलित थी। आदिपुराण में एक स्थान पर श्मश्रु को हरिद्रा से रँगने का उल्लेख है। आदिपुराण तथा कुछ जैनेतर ग्रन्थों के आधार पर केश विन्यास की निम्नलिखित शैलियाँ मिलती है।

(क) अजकजाल या अलकावली - आदिपुराण में सालकानन शब्द का उल्लेख है जिसकी व्युत्पत्ति (स +अलक + आनन) से होती है अर्थात् चूर्ण कुन्तल (सुग्नधित चूर्ण लगाने योग्य सम्मुख के केश) । स्त्रियाँ अलकावली बनाने के लिये कुमकुम, कर्पूर इत्यादि के चूर्ण का प्रयोग करती थी । इनके आलेप से केश घुघराले हो जाते थे। उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि उस समय घुघराले छल्लेदार केश विशेष लोकप्रिय थे। कालिदास ने भी अलकों के वास्तविक स्वरूप और अलकों को बनाने के लिये चूर्ण के प्रयोग का उल्लेख किया है । **वासुदेवशरण अग्रवाल** ने घुघराले केशों की रचना के कई प्रकार बताये है । राजघाट से प्राप्त मृण्यमूर्तियों में अलकजाल के अनेक उदारहण दृष्टव्य है। कुषाणकाल से निरन्तर मध्ययुग तक सभी क्षेत्रों की तीर्थकर मूर्तियों की केश रचना छोटे छोटे गुच्छको के रूप में दिखलायी गयी है।

(ख) धम्मिल विन्यास - आदिपुराण में धम्मिल शैली के केश विन्यास का उल्लेख है जिससे पता चलता है कि नीचे की और कुछ लटके हुए कोमल और कुटिल केशपाश को धम्मिल कहा गया है। गुप्तकाल से ही इस शैली की केश रचना का प्रारंभ हो जाता है। जिसका स्पष्ट उदाहरण अहिच्छत्रा से प्राप्त पावती मस्तक है। अमरकोश में मौलिबद्ध केशरचना को धम्मिल (धम्मिल) कहा गया है। राजघाट की मुण्मूर्तियों मे धम्मिल शैली के केश विन्यास के उदाहरण द्रष्यव्य है।

(ग) कबरी - कबरी प्रकार के केश विन्यास में पुष्पमालाओं, वनकी लताओं तथा चमरी गाय के बालों से भी केशपाशों को बाँधने का उल्लेख मिलता है।

(घ) वेणी - अधिकांश स्त्रियाँ अपने लम्बे व काले केशों को वेणी के रूप में बांधती थीं और वेणी को विभिन्न पुष्पों की लताओ से अलंकृत करती थी । स्त्रियों की वेणी का सुन्दर उदाहरण मल्लिनाथ तीर्थंकर की मूर्ति में देखा जा सकता है । ज्ञातव्य है कि श्वेताम्बर परम्परा में मल्लिनाथ को नारी तीर्थंकर बताया गया है ।

(ङ) जूडा- स्त्रियाँ अपने केशों को वेणी के साथ साथ जूड़े में भी सँवारती थी। इस प्रकार की केश रचना में केशों का जूड़ा बनाकर माला से बाँध लिया जाता था। उसी पुष्पों की माला गूंथी जाती थी। जूड़ा वेणी द्वारा न बनाकर सम्भवतः खुले केशों द्वारा बनाया जाता था। कभी यह जूड़ा वर्तमान जूड़े की भाँति पीछे कन्धे पर और कभी मस्तक के मध्य में स्थित रहता था। इसका सुन्दर अंकन हिंगलाजगढ़ से प्राप्त तथा वर्तमान में संग्रहालय में सुरक्षित लगभग १०वीं ११वीं सदी ई. की अम्बिक तथा १२वीं सदी ई. की विमलसही की अम्बिका मूर्तियों मे देखा जा सकता है। नृत्यांगनाओं में भी इस केश शैली का प्रचलन था।

सीमंत (माग) भी स्त्रियों की केश सज्जा का एक आवश्यक अंग था। इसके द्वारा वे अपने केशों का दो भाग में विभक्त करती थी। आदिपुराण में स्त्रियों द्वारा अपने सीमंत का परागसहित कमलों की रज से भरने का उल्लेख है। सीमंत व पुष्पों द्वारा भी सजाया जाता था।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि केश सज्जा के विभिन्न प्रकार स्त्रियों में ही प्रचलित थे। केश सज्जा के विविध शैलियों के साथ साथ उन्हें अलंकृत करने का शौक भी स्त्रियों था जो लम्बे केश रखती थी। पुरूषों में छोटे केश एवं उनके सामान्य सज्जा का ही प्रचलन था। उल्लेखनीय है कि केश विन्यास की महापुराण में वर्णित शैलियाँ वस्तुतः गुप्तकाल से ही चली आ रहीं थी।

प्रसाधन - मानव की सहज श्रृंगार प्रवृत्ति की अपेक्षा साधन सामग्री का सदैव अधिक महत्त्व रहा है। वैयक्तिक श्रृंगार प्रसाधन सामग्री का उपयोग प्राचीनकाल से विभिन्न रूपों में किया जाता रहा है। संभवतः श्रृंगार सामग्री के विकास क्रम में प्रसाधन सामग्री नश्चित रूप से पहले प्रचलन में आयी। वस्त्राभूषणों के पूर्व ही मनुष्य प्रसाधन सामग्री से भलीभाँति परिचित हो चुका था। अपने प्रतीति के श्रृंगार में सबसे पहले उसे अंगराग,चन्दन, अञ्जन तथा सुगनि जैसे प्रसाधन सामग्री की आवश्यकता पड़ती थी। इसके बाद ही व अन्य श्रृंगार सामग्री का प्रयोग करता था। प्रसाधन की विभिन्न सामाग्रियों का शरीर के विभिन्न अंगो के साथ तादात्म्य था जबकि श्रृंगार का अन्य माध्यम केवल बाह्य रूप से ही शरीर को सज्जित करते थे।

जैन पुराणों तथा जैनेत्त- ग्रन्थों में निम्नलिखित प्रसाधन सामाग्री तथा उनके उपयोग का उल्लेख मिलता है।

(१) स्नान - स्नान भारतीय श्रृंगार का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष रहा है। पउमचरीय तथा भगवती सूत्र जैसे आगम जैन ग्रन्थों में स्नान भूमि के लिये एक विशेष स्थान का उल्लेख मिलता है। स्नान के जल को विभिन्न प्रकार के सुगन्धित द्रव्य तथा पुष्प आदि से सुवासित किया जाता था। आदिपुराण में सज्जन नामक स्नान सामग्री का उल्लेख है जिसके प्रयोग से शारीरिक स्वच्छता, स्फूर्ति एवं कांति प्राप्त होती थी।

(२) तिलक- स्त्री व पुरूष दोनों में तिलक का प्रचलन था। मुख सौन्दर्य के लिये तिलक का विशेष महत्त्व था। स्त्रियाँ प्रायः लाल रंग का तिलक लगाती थी। चंदन के अतिरिक्त गोरोचन, लालरंग के गेरु तथा काले अगरू का भी प्रयोग तिलक के लिए किया जाता था।

(३) अन्जन- स्त्री व पुरूष दोनों ही आँखों की रक्षा व सौन्दर्य वृद्धि के लिये अञ्जन (काजल) का प्रयोग करते थे। कुमारसम्भव में अञ्जन लगाती हुई स्त्री का उल्लेख है।

(४) भौह का श्रृंगार - आधुनिक युग की तरह उस समय भी स्त्रियाँ भौहो का श्रृंगार करके उन्हें सुसज्जित करती थी।

(५) पत्ररचना - स्त्री व पुरूष दोनों ही अपने कपोलों पर गोरोचन, चंदन व अंगराग से पत्ररचना किया करते थे। पत्ररचना के लिये काले, श्वेत और लाल रंगो का प्रयोग होता था। इसके प्रारम्भिक उदाहरण भरहुत एवं साँची की मूर्तियों में देखे जा सकते हैं।

(६) **ओष्ठराग** - स्त्री व पुरूष दोनों ही अपने ओष्ठों को रंगते थे परिणामस्वरूप उनके अधर रक्तवर्णीय होते थे। वे पान के रस के संसर्ग से और भी अधिक लाल हो जाते थे। कालिदास ने ओष्ठराग की केवल लालरंग का बताया है। जिसके लिये अलक्तक का प्रयोग किया जाता था।

(७) **महावर**- महावर चरणों में लगाया जाता था। महावर के लिये अलक्तक, रागलेखा, पादराग, लाक्षारास, रागरेखाविन्यास, चरणराग, द्रव्यराग तथा निर्मलराग आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। स्त्रियाँ अपने पैरों की सुन्दरता के लिये अलक्तक या लाक्षारास का प्रयोग करती थी।

(८) **कुंकम** - शारीरिक स्वास्थ्य, सौन्दर्य एवं सुगन्धि के लिये कुंकुम का प्रयोग स्त्री व पुरूष दोनों ही किया करते थे।

(९) **अवलेप** - विभिन्न सुगन्धित द्रव्यों द्वारा अवलेप के अनेक उदाहरण जैन पुराणों में मिलते हैं। कालिदास ने शारीरिक सौन्दर्य व कान्ति की वृद्धि के लिये व पुरूष दोनों द्वारा चन्दन, केशर, शुक्लागुरू, कालागुरु, प्रियंगु, कालेयक, कस्तूरी तथा कुमकुम मिश्रित अवलेप लगाने का उल्लेख किया है। शीतलता और सौन्दर्य के लिये मुख्यतः चन्दन के अवलेप का ही प्रयोग किया जाता था। हेमन्त और शिशिर को छोड़कर अन्य सभी ऋतुओं में स्त्रियाँ चन्दन का ही प्रयोग करती थी। हेमन्त में केशर तथा ग्रीष्म ऋतु में चंदन के द्रव्य के अवलेप का उदाहरण आदिपुराण में स्पष्टतः है। शिशुओं के शरीर पर भी गाढ़े सुगन्धित द्रव्यों के विलेपन किया जाता था। आदिपुराण में एक स्थल पर ऐसे एक सुगन्धित अवलेपन का उल्लेख आया है जिसकी सुगन्धि से भँवरे उस स्त्री के हाथ पर आकर गुञ्जार करने लगे। सम्भवतः इस प्रकार के अवलेपन के लिये अंगराग को कस्तूरी में बसाकर सुगन्धित कर लिया जाता था और उसके बाद शरीर पर उसका विलेपन किया जाता था।

(१०) **तेल** - स्वास्थ व सौन्दर्यवृद्धि के लिये स्त्री व पुरूष सुगन्धित तेल का प्रयोग अपने शरीर तथा केशों में करते थे। अधिकांशतः स्नान से पूर्व सुगन्धित तेल का मर्दन शरीर पर किया जाता था।

(११) **सुगन्धित चूर्ण**- आधुनिक युग के समान ही उस समय भी विभिन्न प्रकार के सुगन्धित चूर्ण का प्रयोग किया जाता था। पउमचरीय में अगरु तुरुष्क व चन्दन के सुगन्धि तथा गोशीर्ष चन्दन और कालगुरू से सुगंधित धूप बनाने का उल्लेख है। कालिदास ने मुख,केश तथा शरीर के अन्य भागों पर प्रस्वरज, अम्बुजरेणु, केसरचूर्ण तथा केतकरज जैसे तरह तरह के चूर्ण लगाने का उल्लेख किया है। आदिपुराण में वस्त्रों को सुवासित करने के लिये पटवास चूर्ण के प्रयोग का सन्दर्भ हैं।

(१२) **पुष्पप्रसाधन** - सौन्दर्य प्रसाधन में प्राचीनकाल से ही पुष्पों व पुष्प मालाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। श्रृंगार के लिये मुख्य रूप से मन्दार, कमल, कुन्द,शिरीष,कदम्ब, बकुल तथा मालती के पुष्पों के प्रयोग किया जाता था। दक्षिण भारत में आज भी पुष्प स्त्रियों के श्रृंगार का एक अनिवार्य अंग है। जैन पुराणों तथा जैन पुष्पों एवं पल्लवों की माला तथा आभूषणों के अनेक उदाहरण मिलते है। स्त्रियाँ पुष्प व पत्तों से माला तथा कर्णफूल आदि विभिन्न प्रकार के आभूषण बनाकर अपना श्रृंगार करती थी। पुष्पमालाओं को केशों तथा हाथों के आभूषण रूप में धारण किया जाता था। सभी वर्ग के स्त्री पुरुष विभिन्न उत्सव आदि के अवसर पर गले में पुष्पमाला धारण करते थे। पुष्पों की कलगी या मुकुट का भी प्रचलन था।पुष्पों के अतिरिक्त सज्जा के लिये आम्रमंजरी तथा पुष्पमंजरी का भी प्रयोग किया जाता था। विभिन्न प्रकार के पुष्पों व पत्तों से निर्मित कर्णाभूषण भी स्त्रियां पहनती थी। इसके लिये वनलताओं के पुष्प, पत्ते तथा नीलोत्पल (कमल) का प्रयोग किया जाता था।

दैनिक उपयोग के पात्र आदि :-

महापुराण में मिट्टी, स्वर्ण, चाँदी, ताम्र आदि के विभिन्न बर्तनों का उल्लेख मिलता है जिनका पाकशाला तथा अन्य कार्यों के लिये प्रयोग किया जाता था। महापुराण में वर्णित है कि अन्तिम कुलकर नाभिराज ने स्वयं सर्वप्रथम मिट्टी के अनेक प्रकार के पात्र बनाकर दिये थे। उन्होंने पात्र बनाने का उपदेश भी दिया था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ में मिट्टी के ही बर्तनो (पात्रों) का निर्माण हुआ । जैन पुराणों से प्राप्त सामाग्रियों के आधार पर उस समय निम्नलिखित पात्रों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। पिठर (बटलोई या मटका), स्थाली (थाली) चाषक (कटोरा) सूर्प (अनाज से कूड़ा) साफ करने का पात्र कलश (जल भरने का घड़ा) , भृंगोर (झारी या सागर), उष्ट्रिका (कड़ाहा या कड़ाही), पार्थिवघट (मिट्टी का घड़ा), करक (करवा), स्वर्ण कुम्भ, शुक्ति आकृतिपात्र (सीप के आकार के पात्र) कुण्ड (पत्थर का कठौता), स्थाली (हण्डे भाजन बनाने के विशालपात्र) तथा कर्करिका (जल रखने का झारी जैसा पात्र) । आदिपुराण मे चालिन (आटा चालने की चलनी) का भी उल्लेख हुआ है। विवाह तथा अन्य कार्यों में प्रयुक्त होनेवाले सुवर्ण के पाट एवं चौकी का भी उल्लेख महापुराण में है। देलवाड़ा और कुंभारिया के जैन मन्दिरों में तीर्थंकरों के अभिषेक एवं नेमिनाथ विवाह के प्रसंग में विभिन्न प्रकार के घटों का अंकन हुआ है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि महा पुराण में केवल तीर्थंकरों एवं उनके यक्ष यक्षियों के विवरण ही नही वरन् तत्कालीन सांस्कृतिक जीवन से सम्बन्धित विविध पक्षों का भी विस्तार से निरूपण हुआ है । कदाचित् जीवनका ऐसा पक्ष रहा हा जिसका महापुराणमें उल्लेख न हूआ हो ।

पाद. टिप्पणी

१. कमलगिरि , भरातीय श्रृंगार, वाराणसी १९८७, पृ. ४
२. शाडखायन गुह्यसूत्र ४. १५, अथर्ववेद १९.४४.१.
३. उत्तरपुराण ६२.२९
४. उत्तरपुराण ६८.२२५
५. उत्तरपुराण ६३.४६२.४५८
६. भोगभूमि ऐसा काल जिसमें मनुष्यों के मनोवांछित वस्त्राभूषणों की पूर्ति कुछ विशेष वृक्षों द्वारा होती थी ।
७. आदिपुराण ९.१४.४२
८. सी.शिवराममूर्ति, स्कल्पचर इनस्यायर्ड बाई कालिदास, मद्रास, यु. पी. शाह जैन रूप मण्डन , पृ. ७१
९. उत्तरपुराण ६१. १२४, ६३, ४१५, । आर. एम. गुप्त एवं बी. डी. महाजन अजन्ता इलोरा एन्ड औरंगाबाद केव्स , बम्बई ११६२ वि. सं. १३८ ।
१० इन्द्रमणि के दो भेद बताये गये है । एक महा इन्द्रमणि जो हल्के और गहरें नीले रंग की होती थी । दूसरी इन्द्रनीलमणि जो हल्के निले रंग की होती थी ।
११. हरिवंशपुराण २,७,८, ९,१०,५४, ७१, ७२, ७३
१२. आदिपुराण १४,१४,७, २३१.१३, १५४.१३८, १३६

शगुन सुरभि :-

भारतवर्ष एक ऐसा राष्ट्र है जो अपनी भौगोलिक सीमाओं में विविध संस्कृतियों की सोंधी सुगन्ध को समेटे हुये है । भारत की मूलभूत संस्कृति एवं उनसे प्रसूत रंगारंग परम्पराएँ गीत संगीत के माध्यम से हमारे मन को आन्दोलित करती रहती है ।

मानव समाज चाहे वह आज का आधुनिक समाज हो या आदिम युग का समाज, वह हमेशा अपने मन की भावनाओं को गीत के माध्यम से व्यक्त करता रहा है। जीवन के हर अवसर के अनुरूप गीतों की रचना की जाती रही है। हूमड़ समाज जैन धर्मानुयायी है अतः प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारंभ में चौबीसी गाई जाती है। मण्डप विधान के पश्चात प्रतिदिन सुबह सपने गाये जाते है। पीढी मुहुर्त के पश्चात प्रति रात्रि को गीत, बन्ना बन्नी गाये जाते हैं। ऐसे ही अनेक शगुनों के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों की सुरभि आपकी सेवा में प्रस्तुत है ।

सगाई का गीत

इन्दौर शहर से सगाई तेरी आई रे बना
नेमी नगर से सगाई तेरी आई रे बना।
तेरे दादा ने करवाई तेरे पिता ने करवाई २
तेरी दादी बोली बनी काली आई रे
तेरी माता बोली बोल बनी काली आई रे
मेरा बना बोला बोल बनी प्यारी आई रे ॥
तेरे काका ने करवाई तेरे मामा ने करवाई
तेरी काकी ने करवाई...........मामी........
तेरी मामी बोली बोल बनी काली आई रे
तेरी काकी बोली बोल बनी काली आई रे
मेरा बन्ना बोला बोल बन्नी प्यारी आई रे।
(फूफा,बुआ, मौसा, मौसी लगाते जाना)

शादी के गीत

चौबीसी

पहला ऋषभनाथ वांदस्या हो परमगुरू, कोई दूजा अजीतनाथ देव
ऋद्धि सिद्ध करो परमेष्ठी परमगुरू।
अगण्या संभवनाथ वांदस्या हो परमगुरू, कोई चौथा अभिनंदन देव
ऋद्धि सिद्ध करो परमेष्ठी परमगुरू
(बीच में आंचली या दोहे लेते जाना)

दोहे - सेर सोनारो घुघरो हो परमगुरू, कोई रणक्यो मझली राते हो
ऋद्ध सिद्ध करो परमेष्ठी परमगुरू।
अणीरण के निर्मलकुमारजी जागीया हो परमगुरू, कोई कर्या रे विवाह से विचार,
ऋद्धि सिद्ध करो परमेष्ठी परमगुरू।
(इसी तरह चौबीस भगवान के नाम लेते जाना)

पापड बनाते समय के गीत -

पापड़ बनाते समय पन्ना बाई, अहमदाबाद के सेठजी, बन्ना बन्नी, ख्याली गीत,रमझोड़ गाये जाते है।

अहमदाबाद के सेठजी -

सेठजी गाथा रे परमाणे, मेमद लावोरा, रखड़ी घड़ावोरा,
हां ओ म्हारा गडा ने गुजराती, अहमदाबादी रा पटवा सेठजी
सेठजी काना रे परमाणे, कर्णफूल लावोरा, झुमका घड़ावोरा
हां ओ म्हारा गडा ने गुजराती, अहमदाबाद रा पटवा सेठजी ।
सेठजी हिवड़ा रे परमाणे ,हंस घड़वोरा, तमणो पोवाडोरा,
हां ओ.............................. ।
सेठजी हाथा रे परमाणे, हथफुल लावोरा, गजरा घड़ावोरा,
हां ओ................................... ।

बन्ना बन्नी गीत :

दूर बडें बाजे बनी को बुलाजे,
बनी नहीं आवेरे बना समझावे रे-- ।
तांबे के हंडे में ताता सा पानी
बनी नहीं नहावे रे बना समझावे रे -।
सोने की थाली में भोजन परोसे
बनी नहीं आवे के बना समझावे - ।
सोने की झारी गंगाजल पानी
बनी नहीं पीवे रे,बना समझावे रे
पाका सा पान कलाई सा चुना
बनी नहीं चावे रे बना समझावे रे - ।
सोने की सार जडाऊके पांचे
बनी नहीं खेले रे बना समझावे रे - ।

बन्ना गीत :-

बना थें तो कंठी जोई जोई पेनो, बनो थें तो डोरा पोई पोई पेनो,
इ तो माने बकसो जी बनड़ा ।
बनी थें तो जो देखो जोई मांगो, मांका पिता लडसेजी बनड़ी,
मांकी माता लड़सेजी बनड़ी ।
बना थें तो पिता से डरपो हो, बना थें तो माता से डरपो हो
पेली क्यूं परण्या जी बनड़ा ।
बनी मने बालपणे परणाया बनी माने छोट पने परणाया
अबे पछतावा जी बनड़ी ।
बना थें तो घड़िया दोई दोई पैने थें तो विंटी दोई दोई पेनो
इ तो माने बकसो जी बनड़ा
बनी थें तो देखो जोई मांगो मांका पिता लड़सेजी मांकी माता लड़सेजी
(काकी - मामी - बुआ - के साथ जोड़ते जाना)

बन्ना गीत :- बना पागां तो तुम पेन मेरे घर आना,मेरे घर आना
किलंगी में जड़यो रे जड़ाव भूल मत जाना - ।
लेदो लेदो जी गले का हार बटन की जोड़ी, बटन की जोड़ी,
चले जाओ जी पराये नार बनी को कहां छोड़ी - ।
मैं छोड़या माय ने बाप छोटा सा भाई, छोटा सा भाई
मैं छोड़यो सहेलियां रो साथ आप संग आई - ।
बना कंठी तो पेन मेरे घर आना मेरे घर आना
कंठी में जड़यो रे जड़ाव भूल मत जाना - ।
बनड़ी तो तुम परण मेरे घर आना मेरे घर आना
लेदो लेदो जी गले का हार बटन की जोड़ी बटन की जोड़ी
चले जाओ जी पराये नार बनी को कहां छोड़ी - ।
(घड़ी, अंगूठी, सबके साथ जोड़ना)

रमझोड़ :- बना थारो बंगलो कितनीक दूर, आती जाती थाकूं ओ
म्हारा सिरदार, आती जाती थांकू ओ म्हारा उमराव ।
बनी म्हारा बंगलो पिछोलारी पार, मोटर बैठी आऊं
ए म्हारी घर नार ।
बना थारी आंगण रहयो किच, किच भराणां
ओ मारा रमझोड़
बनी म्हारा दुपट्टा से पूछूं थारा पांव, वारा कूंची घोऊं
ए थारा रमझोड़ ।
बनी म्हारे माथा ने मेमंद लाओ रखड़ी रतन जड़ाओ सिरदार
(कान का झाला - हिवड़ा रो हार) ऐसे जोड़ना ।

पीठी का गीत - सुण सुण रे उदयपुर का तेली, थारी घाणी केसर ने करतुरी,
यो तेल लाड़ लड़ारे,अंग चढ़सी, दुमड़ा वेरा दादाजी भरदेसी,
लेखो वेरी दादयाबाई कर देसी ।
सुण सुण रे उदयपुर का तेली थारी घाणी केसर ने करतुरी
यो तेल लाड़ लड़ारे अंग चढ़सी, दमड़ा वेरा पिताजी भरदेसी
लेखो वेरी माताजी करदेसी ।
(काका काकी - फूफा बुआ - के साथ जोड़ते जाना)

वणाक वदावा रो गीत (वर) :-
घड़यो रे घड़यो बाजोटे, जावद जई चितरयो मिल्यो
म्हारा ओरापट सारे, बधावियो ।
विमल कुमारजी री राणी राजा ऐन भणे, पिया म्हारे केसरीया रंगावो,
आपणे घरे वरदेड़ी, पेरूं मांरा दिकरा रा ब्यावे,
मांडा में चालू मलकती ।
(जिसकी पत्नी बदवे उनके पति के नाम लेते जाते है)

रास्ते के बन्ना बन्नी के गीत :-

सड़क पर नल मत लगवा दो रे सड़क पर नल मत लगवा दो
नल का पानी बहुत बुरा जी मेरी तबियत घबरावे।
डाक्टर नाड़ी तो देखो, डाक्टर नाड़ी तो देखो,
हाथ पांव मे जीव नहीं मारी छाती में घड़कोजी,
सड़क पर नल मत.............। (दोहे बीच में लेते जाना)

दोहे (१) शीशी भरी गुलाब की जी कोई भेजूं किसके साथ बनासा
भोजन वाला घर नहीं जी कोई देवरिया नादान।
(२) चांदनिया रा चौक में जी कोई बिकरया हरिया रूमाल बनासा,
साजन होय तो मोललूं जी काइ किस पर करूं रे गुमान।
(३) एड़ी तो राखूं उजरी जी कोई पंजो सदवा सूंठ बनासा
कोई पंजो सदवा सूंठ, ऐसी चालूं झुमके जी कोई रंड़वा छाती कूट।

माण्डवा गीत :- लीली थारी वाडी ने लीलो थारो मांडपो,
वेगा आवजो के निलेश कुमारजी मांडपे।
पांगा पेरजो कि राजवी केसरिया,
वेगा आवजो कि राजवण (औरतें) मांडपे।
लुगड़ा पेरजो के राजवण केसरिया,
पालव मेलजो कि राजवण ररकता (लहराता)
लीली थारी वाडी ने लीलो थारो मांडपो,
वेगा आवाजो के निर्मलकुमारजी मांडपे ....। (सबके नाम लेते जाना)

वाना का गीत :- अणी वाते ओ केसर उड़ रही कस्तूरीरो छेयने पार रे,
के वानो हे ररीयामणो,
अणी वाने ओ दिपककुमारजी पधारिया इतो
साहे जीवनलालजी रा भीम के वानो हे ररियामणो,
अणी वाने ओ केसर उड़ रही, कस्तूरी रो छेयने पार रे (मंदिर जाते समय गाते हैं।)

बाना का चौबीसी :-

पहली ऋषभनाथ वांदसा जनजीरे पाये लागू
कोई दूजा अजितनाश देवे मोती सर्वे रतन जड़याजी
अगन्या संभवनाथे वांदस्य जनजीरे पाये लागू
चौथा अभिनंदन देवे मोती सर्वे रतन जड़याजी।
(आंचली या दोह लेना)
घोरो तो घोड़ो हंसलो जनजीरे पाये लागूं कोई मोतिया
जड़ी रे लगामे मोती सर्वे रतन जड़याजी
अणी घोड़े नेमजी विराजिा जनजीरे पाये लागू
कोई राजुल रा भरथार मोती सर्वे रतन जड़याजी
(आगे चौबीसी के साथ आंचली लगाते जाना)

आलवणा का गीत :-

अनूप कुमारजी ओ थांणे सासरे बालक बनड़ाजी
एक अनोखी रीत मोती सर्वे रतन जड़याजी
ससुराजी तो पेर्यो घाघरो बालक बनड़ाजी
सासुजी बांधी छे पाग मोती सर्वे रतन जड़याजी
ससुराजी तो घर में घुसी रहया बालक बनड़ाजी
सासुजी करे रे जुहार मोती सर्वे रतन जड़याजी
अनूप कुमारजी रा बापे देवारीया बालक बनड़ाजी
करे रे हीरा रो वेपार मोती सर्वे रतन जड़याजी
पूनम रा बापे दिवालीया बालक बनड़ाजी
करे रे कांदा रो वेपार माती सर्वे रतन जड़याजी

मामेरे का गीत (वीरा) :-

गाड़ी तो रड़की रेत में रे वीरा पहियो गयो गुजरात
चालो मारो धोर्या उतरवरा रे मारी जामण जाई जोवे वाट
धोर्या रा चमक्यां सींगडा रे मारे वीराजीरी पंचरंगी पाग
भावज रो चमक्यो चुड़लो मारा भतीजा रा हरिया रूमाल
माथा ने मेमंद लावजो रे वीरा रखड़ी रतन जड़ाव।
काना ने झाले घड़ावजो रे वीरा झुमक्या घुघरू लगाव
हिवड़ा ने हंस घड़ावजो रे वीरा माला रतन जड़ाव।

घोड़ी का गीत :-

बनासा आप तो चढ़ चाल्या मझली सी राते म्हारी
सूनी नगरी ओड़ चली रे बनड़ा
बनासा आप तो जोशीड़ा रे जाजो जी राजे लगनारी
पारख लावजो रे बनड़ा
बनासा आप रे हाथां मे हरिया रूमाल पावां री मेदी
राचणी रे बनड़ा
बनासा आप रे हाथां में हरिया रूमाल घोड़ी रे नेवर
वाजणी रे बनड़ा
बनासा आप तो सोनिडा रे जाजो जी राजे गेणलारी
पारख लावजो रे बनड़ा।
(बजाजी रे पांगरी, पारख, कंठारी रे मेवा रो पारख)
इस तरह लगाते जाना

२३

फेरे का गीत :- कुणाजी री मजल्या सु आया जी बाना, थें तो कुणारे भरोसे घर मेल्याजी बना
मैं तो दादाजी री मजल्या सु आयो ए बनी म्हारे दादी रे भरोसे घर मेल्या ऐ बनी
थाणा दादाजी रो कांई रे भरोसो जी बना वे तो खावे ने उड़ावे घर खोचे जी बना
सारी जान्यापेली (बराती) रथ मारो हांकोजी बना
मैं तो जाय ने संभाला माको घर जी बना,
आणी खावां ने कमावां घर जोड़ा जी बना।
(काका काकी मामा मामी के साथ जोड़ना)

बिदाई का गीत :- कोठी पर पड़या बाईरा खिलौणा बाई तो चाल्या परदेस,
थें घरे जाओ दादाजी आपणे, मैं तो चाल्या परदेस
संपत होय तो लावजो नीतो भला परदेस
संपत थोड़ो बाई रणघणो (दुख) बाईने लावां बडवेग
अब थैं घर जाओ ताऊजी आपणे, मैं चाल्या परदेस ।
(काकाजी मामाजी........)
(बेटी को बाहर पहुंचाकर घर लौटते समय बदावा गाते हुए आते हैं।).

बदावा का गीत :- सखी पेलो बदावो मारे आवियो सखी मोकल्यों मारा सुसराजी री पोर ।
सुसराजी हरखे बदावियो, सखी सासुजी लियो खोर्या झेले, मारी बेने बदावियो ।
सखी दूजो बदावो मारे आवियो, सखी मोकल्यो मारे जेठाजी री पोर,
सखी जेठहजी हरख़े वंदावियो,सखी जेठानी लियो घन बांट,मारी बेने बदावियो ।
सखी तीजो बदावो मारे आवियो, सखी मोकल्यों मारा वीराजी री पोर,
सखी वीराजी हरखे बदावियो, सखी भावज लागे मारे पांव, मारी बेने बदावियो ।

जच्चा का गीत :- परदे के अंदर बैठी जच्चा, हुकुम चलाती है
हमारी लगती सासु, पियाकी लगती माता
बच्चों की लगती दादी हमको नहीं सुहाती हैं ।
हमारी लगती जिठानी पिया की लगती भाभी
बच्चों की लगती ताई हमको नहीं सुहाती है
परदे के अन्दर बैठी जच्चा हुकुम चलाती है।
हमारी लगती देरानी पिया की लगती बहुवड
बच्चों की लगती चाची हमको नहीं सुहाती है।
हमारी लगती ननंद पिया की लगती बहना
बच्चों की लगती बुआ हमको नहीं सुहाती है।
हमारी लगती माता पिया की लगती सासु
बच्चों की लगती नानी हमको बहुत सुहाती है।

जापे का गीत :-

सवा मण सूंठ अढ़ाई मण अजमो ऊंडासा ओवरिया में
खांडो जी पिया धमको लोग सूणेगा।
सासुजी सुणेगा तो वेई दोड़या आवेगा,
भाभीजी सुणेगा तो वेई दोड़या आवेगा,
वेई दोड़या आवेगा ने दन दस रेवेगा,
दन दस रेवेगा ने दस गुणो खावेगा
जापो बिगाड़ी घर जावे जी पिया धमको लोग सुणेगा।
मात सुणेगा तो वेई दोड़ी आवेगा,
वेई दोड़ी आवेगा ने दन दस रेवेगा,
दन दस रेवेगा ने दस चांवल खावेगा,
जापो सुधारी घर जावे जी पिया धमको लोग सुणेगा।
(जेठानी भाभीजी के साथ आगे जोड़ते जाना)

ढूंढ का गीत :-

नान्यादादाजी गया गठ गुजरात, बजाजीरे हाट नानास्या रे टोपी लाविया
टोपी हीरा वारी, टोपी गोत्यावारी, नान्या रे सीर सोवे,
मायड़ मन मोवे नान्या री टोपी नतनवी
नान्या रा नानाजी दिवारीया गया गठ गुजरात सोनीडारे हाट, नान्या रे
कंठी लाविया कंठी हरिवारी, कंठी मोत्यावारी, नान्यारे गले सोवे,
मायरे मन मोवे, नान्यारी कंठी नीत नवी।
(सबके साथ लगाना)

नूतरने का गीत :-

बड़ा गणेश

तारे सरसत सामण वे देऊ तारे गणेश लागु पाय ।
तारे पीरा चोखा हरदी वरणा, सब कोई नुतरा दिवाय ।
तारे राता चोखा कंकु वरणा, सब कोई नुतरा दिवाय ।
तारे अरघर दिदा परघर दिदा, गणेश घर भूल लिया ।
तारे वर उगलियो ने रथ माय बैठो, रथरी डांडी मांगी ।
तारे तेड़यो सुधार्यो खीली देवाड़ी, रथ आगेनी चाल्यो ।
तारे सगराई देवता कारयो विचार, यो गणेश नो काम।
तारे सवा जो मण रो चूरमो करायो, गणेश ने मना लो ।
तारे चलो गणेशजी जाने पधारो, तम बीन जान अलुणी ।
तारे नवोज देवता, अमी दुंदारा अमी फुंदारा अमी देखी तमो लाजो ।
तारे आवो गणेशजी, तभी दुंदारा, तभी फुंदारा तमी देखी अमी हरखीया ।
तारे वर उगली ने गोयरे पधारीया, गवारीया ने नेग चुकायने ।
तारे वर उगली ने पणघट पधारीया, पणीयारी कलश बन्धाया ।
तारे वर उगलीने सेरीया पधारीया, सहेलीयाँ रो नेग चुकायो ।
तारे वर उगलीने पोर्या पधारीया, पोरीड़ा ने रो नेग चुकायो ।
तारे वर उगलीने मण्डपे पधारीया, सासुजी घूसर मूसर लेइने पुंखण आया ।
तारे वर उगलीने मायारे पधारीया, हंस हथलेवो जोड़ायो ।
तारे वर उगलीने चोरीया में पधारीय, चोरीया रो नेग चुकायो ।
तारे पहिलो फेरो हरता फरथा, दूजो मंगल वरत्यो ।
तारे तीजो फेरो हरता फरथा, चौथो मंगल वरत्यो ।
तारे पांचवो फेरो चरवा कुंडी,छठ्ठे फेरे हाथी घोड़ा मेल्यो ।
तारे सातवों फेरे वर डायचो मांगे ।
तारे तेड़ो ससुरानी डायचो मंगालो ने हंसी हंसी हाथ लेवा छुड़ावो ।

गणेश :-

चालो गजानन्द जोशी हाटे बीराजां तो आच्छा आच्छा लगन लिखावां ओ गजानन्द ।
कोटा री गादी पे नोपत बाजे, नोपत बाजे ने इन्दर गड़ गाजे ।
चो झरण झरण जालर बाजे ओ गजानन्द कोटा री गादी पे नोपत बाजे ।
चालो गजानन्द बजाजी रे चालां, आच्छा आच्छा पड़रा मोलावां। ओ गजानन्द कोटारी गादी......।
चालो गजानन्द सोनीड़ा रे चालां, आच्छा आच्छा गणेश मोलावां। ओ गजानन्द कोटारी गादी......।
चालो गजानन्द कन्दोई हाटें बीराजां, आच्छा आच्छा मेवा भोलावां। ओ गजानन्द कोटारी गादीं......।
चालो गजानन्द मोचीड़ा रे चालां, आच्छी आच्छी पनीया मोलावां । ओ गजानन्द कोटारी गादी......।
चालो गजानन्द मालीड़ा रे चालां, आच्छा आच्छा सेवरा मोलावां। ओ गजानन्द कोटारी गादी ......।
चालो गजानन्द साजनीया रे चालां, आच्छी आच्छी बनड़ी लावां। ओ गजानन्द कोटारी गादी.....।

वीरा :-

करूं विनती सुनो भय्या समय पर भात ले आना।
सास के साड़ी और लँगा, ससुर के सुट सिलवाना।
अगर इतना न हो तो भय्या तो खाली हाथ आ जाना।
बहिन प्यारी के आंगन में खुशी के बेन्ड बजवाना ॥
(उपरोक्त गीत में सास - ससुर के स्थान पर जेठानी - जेठ, देनारी - देवर,
चाची - चाचा, ननंद - नन्दोई के नाम भी लेकर गाया जाता है।)

घोड़ी :-

घोड़ी नाचत कुदत नगर गई, घोड़ी गई जोशीड़ा रे हाट
आच्छी लुमरही, आच्छी झुमरही, जोशीड़ा ए वीन्द बुलाय लियो।
हेलो पाड़ लियो। थाने देऊंआच्छा लगन लिखाया।
बछेरी आच्छी लुमरही,आच्छी झुमरही
(उपरोक्त प्रकार से गीत में जोशीड़ा और लगन लिखाया के स्थान पर -.
बजाजी -- पड़रा मोलाय, सोनीड़ा गणेश मोलाय, खेरादी चुड़ीला चीराय,
तम्बोरी - बीड़ला बन्धाय, कंदोई मेवा मेलाय,मालीड़ा सेवरो सजाय,
मोचीड़ा - पनीया पेहराय, साजनीया बनड़ी मिलाय
बोलकर यह गीत गाया जाता है।)

घोड़ी :-

घोड़ी गड़मल सुं आई रे बना, वर रे दादा सा घोड़ी मोलावे जी बना,
वर री माता बाई घोड़ी आगे नाच करे बना, घोड़ी अरीयारे खेद, खरीयारे खुदे,
मारा केसरीया वर देखी घोड़ी नाच करे, मारा पातरीया वर देखी घोड़ी छगन करे।
घोड़ी गड़मल ....
(उपरोक्त गीत में दादा और माता के स्थान पर काका और काकी, नाना - नानी,
मामा - मामी आदि का नाम लेकर गाया जाता है।)

हूमड़ समाज के कुछ लोकगीत जो विवाह अवसर पर महिलाओं द्वारा गाये जाते हैं ।

१. चमक चमक बनी रखडी भी चमके, रखडी मेरा नगीना बनासा निरखे में तो रथ में बेठां सा ।
रथमें बेठां तो भाणा दाउजी देखे, नहीं रे बेठां तो मारो जीव तरसे के मारो हीयो हरशे,
में तो रथ में बेठां सा ।
चमक चमक बनी री म्कुमकी चमके, म्कुमकी मेरा नगीना बनासा निरखे, में तो रथ.....
रथमें बेठांतो भाणा काकासा देखे, नहीं रे बेठा तो मारो जीव तरसे के मारो हीयो हरशे , मेंतो...
चमक चमक बनीरा वायव भी चमके, वायव मेरा नगीना...........
रथमें बेठां तो भाणा मामासा देखे, नहीं रे बेठां तो मारो जीवतरसे के मारो हीयो हरशे, में तो ....

बनी ने भेज दिया तार बना के लिये " जल्दी पधारो महाराज शादी के लिये "
सहेलियां खडी हे धर के बाहर " तोरण के लिये "
पंडित खडा हे मंडपके बीच ' फेरों के लिये,'
मोटर खडी हे घर के बाहर ' जाने के लिये,'
दादाजी खड़े हैं हाथ जोड ' विदा के लिये,'
बापाजी खड़े हैं दिव तोड़ ' सीख देने के लिये '
बनी ने भेज दिया हे तार बना के लिये, " जल्दी पधारो महाराज शादी के लिये ।

३. युवा पुद्दी के ससुराल के सपने :-
दादजी असा घरे दीनोजी राज " बिटिया आपरी राज करे "
केसरिया मात जीमे ओ राज कटोरिपासुं दूध पीवे,
गादी तकिया पोडेजी राज, बिटिया आपरी राज करे ।
दादाजी असा घरे दीनोजी राज, बिटिया आपरी राज करे ॥
मामासा असा घरे दीनोजी राज, मतिनी आपरी राज करे ।
वीरा असा घरे दीनोजी राज, बेन्या आपरी राज करे ।
जीजासा असा घरे दीजो जी राज, साली आपरी राज करे ।
माल मलिदा झीमे ओ राज कटोरिपांसु खीर पीवे ।
दादासा असा घरे दीजो जी राज बिटिया आपरी राज करे ॥

४. ओ दुल्हे राजा, घोड़ी पे चढ़ आजा, तूं अपनी बरातसे
तेरी दुल्हन को लेजा धूमधाम से ।
पहले भी तूने एक दिन कहा था, टीका लाना हातों से, पहनाना तू अपनी शोक से
तेरी दुलेहन को लेजा धूम धामसे ।
पहले भी तूने एक दिन कहा था, म्कुकी लाना हाथों से पहनाना तूं अपनी शोकसे तेरी....
पहले भी तूने एक दिन कहा था, साडीवाना हाथों से, पहनाना तूं अपनी शोकसे, तेरी....
म्कंम्कर लाना हाथोंसे पहनाना तूं अपनी शोकसे , तेरी...
लाकेट लाना हाथोंसे पहनाना तूं अपनी शोकसे , तेरी...
तेरी दुल्हन को लेजा धूम धाम से .....

५. तूं बना कांठव देश का, मैं बनी पंजाब की, तुम आओगे बूंटशूटमें, मैं आऊं सलवार में
बना बनीशा घूमने चाल्या दिवकी मोटर कार में,
पापा को बिढालो रे बनड़ा अपनी मोटर कार में, मम्मी का लोनकद किराया, क्या रक्खा उदारमें
तूं बना कांठव देशका, मैं बनी पंजाबकी, तुम आओगे ....
मैया को बिठावो रे बनड़ा अपनी मोटर कारमें, मामी का लोनकद किराया, क्या रक्खा उधार में
चाचा को बिठालो रे बनड़ा अपनी मोटर कार में, चाची का लोनकद किराया, क्या रक्खां उधार में
मामा को बिठालो बनड़ा अपनी मोटर कारमें , मामी का लोनकद किराया, क्या रक्खा उधार में
तूं बना कांठव देश का, मैं बनी पंजाबकी, तुम आोगे बूंट शुट में, मैं आउं सतवार में
बना बनीशा धूमने ....

६. **गीतः**- आइ आइ रे बसंत ऋतु भंवरा गुंजे,
कोई आंबुजा की डाल पर कोयल बोले,
तांबे के घड़े में तातासा पानी
नहाओ नहाओ रे हरियावा बना, टाइम जावे
आइ आइ रे बसंत ऋतु भंवरा गुंजे ....

७. **दोहा :-** मेंहदी को भरियो वाटको, जी लिख लिख मांडी हाथ ।
लिखनापढ़ना चोड़ दो, कई निरखो गोरी रो हाथ ॥

८. **गाली : -** ये तो आया पामणा मीठालालजी वारि ने वेवा ने ।
वा तो नाचण घर में सूती आड़ी दिगया टाटी रे ।
टोटी खोल नगारा वाज्या छाती फाटी रे
दो दिन रई जावो रे वचनारा बांध्या, फिर मिलां गारे ॥

९. **पारसी** - १. हाथे पगे मैंहदी दीदी चालु कसी रीत
मुंड़ा मांय लाडु मरीया, बोलो कसी रीत,
सायबजी तो पल्लो पकड़यो, नाठु करी रीत
छुड़ावो मारी पारसी, सूरतां करोनी विचार " जुवार के पूंरवड़े "
२. डाकण भूत कड़ी पड़्या, चुड़ेलम छुड़वाया,
सुणो ब्याहनी मारी पारसी, सुरता करोनी विचार । " ताला चावी "

हूमड़ों के धार्मिक एवं सामाजिक पर्व :-

पर्व जीवन रुपी सरिता में आनंद के वाहक है। जीवन को गति प्रदान करते हैं, जीवनचर्या को मर्यादित करते हैं। जहां तक हूमड़ जैन समाज के धार्मिक एवं सामाजिक पर्वो का प्रश्न है, इनका आधार लेने के लिये हमें समस्त जैन पर्वों को ही हमारा आधार स्वीकार करना होगा क्योंकि मोटे रुप से इन पर्वो को ही हमने अपने पर्वो के रुप में अंगीकार किया है। पर पर्व भी देश, काल, और परिस्थितियों से अछूते नही रहे, उनमें भी देश काल के अनुसार प्रक्रिया में परिवर्तन आया।

निश्चत रुप से हूमड़ समूह देश के मध्यांचल में सीमित है, अतः वहाँ की जलवायु, प्राकृतिक स्थिति तथा राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव उन पर परिलक्षित होता है। दक्षिण भारत में पर्व का आधार भक्ति है, मध्यभारत में पर्व का आधार आत्मचिन्तन जबकि उत्तर भारत में पर्व का आधार उसके व्यवहारिक पक्ष को उजगार करना है। उदाहरण के तौर पर रथयात्रा निकालना हमारा धार्मिक एवं सामाजिक पर्व का प्रतीक है। पर बुन्देलखण्ड में गज-रथ का महात्मय अधिक है, उसका मुख्य कारण यह भाग अत्यधिक समृद्ध था अतः उसके पर्वो में उसकी झलक दिखाई देती है जबकि मध्यांचल और दक्षिण भारत में रथ-यात्रा का स्वरुप दूसरा है, यहाँ बसे हूमड़ भारतीय मध्यमवर्गीय थे. अतः रथयात्रा यहाँ त्याग के प्रसंग के रुप में आयोजित की जाती थी। राजस्थानमें भगवान की प्रतिमा को रथमें विराजितकर रथ-यात्रा निकाली जाती थी। जिसका मुख्य उद्देश्य था तीर्थकरों के गौरव को प्रसारित करना, गाजे-बाजे,डांडियें के साथ नाचते, गाते हुए भगवान की महिमा के गुणगान के साथ रथयात्रा निकलती थी। इसी तरह सभी पर्वो पर प्रांन्तो के अनुसार प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते हैं।

हमारे पर्व आत्मा के आन्नद के पर्व हैं। आत्मा को उन्नत शक्ति का बोध कराते हैं। आत्मा के सार्वभौमिक और सार्वकालिक होने का रेखांकन कराते हैं।अतः यह महापर्व की संज्ञा को प्राप्त किये हुये हैं।हमारे पर्व अहिंसामूलक आचार की मुख्य पहचान है। पर्व सिर्फ ग्रन्थों में वर्णित नहीं वरन् यह हमारे जीवन व्यवहार को प्रदर्शित करते हैं। जैनपर्वों ने सुसंस्कारो को मानव हदय में स्थापित किया है जिसके चलते सामाजिक जीवन परिष्कृत हुआ है।

हमारे पर्व राष्ट्रीय दृष्टिकोण से परिपूर्ण हैं। जो राष्ट्रिय आंकाक्षाये हैं वे ही हमारे पर्वों में परिलक्षित होती है। जैनियों की अपनी कोई पृथक आंकाक्षाये नहीं है. यही मूलभूतगुण जैन समाज को अन्य समाज से पृथक करता है।

हमारे पर्व बहुजनहिताय बहुजनसुखाय की अवधारणा को धारणा किये हुये हैं। दशलक्षण पर्व सोलह कारण पर्व प्रत्येक आत्मा को मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं। भारत के सभी भागों और प्रदेशों में इन पर्वों में आंशिक परिवर्तन छोड समरुपता विद्यमान हैं। ये महापर्व एक शान्तिप्रिय समाज की रचना करते हैं। इस समाज के विशाल उत्सव होते हैं। धार्मिक जुलूस निकलते हैं पर कभी व्यवस्था के लिये कानून की या पुलिस की आवश्यकता नहीं पडी। यह आत्मानुशासित समाज है जो अपने धार्मिक पर्वो को सामाजिक स्तर पर मनाते हुये भी पूर्ण संयम का परिचय देता है।

जैनों के पर्व अध्यात्म प्रधान पर्व है। इनका यह रुप भगवान् ऋषमदेव से लेकर महावीर स्वामी तक और महावीर स्वामी से लेकर आज तक बदला नहीं है। यह अविच्छिन्नता ही हमारे पर्वो का विशेषता है।

जैन पर्वों का मूल मंत्र "देशस्य-राष्ट्रस्य पुरुषस्य राज्ञ, करोतुं शान्ति भगवान् जिनेन्द्र ।" हमारे पर्व वैयक्तिक लाभ की आकांक्षा नहीं करते उनकी कामना सम्पूर्ण राष्ट्र और सम्पूर्ण प्रजा के कल्याण करने की है अतः हमारे पर्व उदात्त भावना से अनुप्रेरित है ।

जैनियों के पर्व दीन की कुटिया और राजप्रासादों में एक ही रुप में मनाये जाते है, लेकिन इन्हें राज्याश्रय कभी स्वीकार नहीं हुआ । किसी राजा ने जैनियों के पर्वों को राष्ट्रीय पर्व घोषित नहीं किया फिर भी इनका प्रचार प्रसार सम्पूर्ण भारत में हुआ इसका मुख्य कारण गृहत्यागी जैन आचार्यों ने संयम की कसौटी पर अपने आचरण को निवारकर इनका प्रचार किया । जैन धर्म के उदात्त सिद्धान्त और साधुओं के निष्कलंक चरित्र ही हमारे पर्वों के प्राण हैं यही कारण है कि जैन धर्म अपनी पूर्ण गरिमा के साथ आज भी जीवित है ।

हमारे पर्वों का मूल उद्घोष है प्राणी मात्र के साथ मधुर सम्बन्ध रखना । इसका दूसरा रुप है प्राणी मात्र के साथ क्षमा भाव रखना । अंतः दशलक्षण पर्व के बाद हम क्षमावाणी पर्व मनाते हैं . जो सामाजिक स्तर पर हमें प्रेरित करता है कि क्रोधित विचारों को छोड़ उत्तमक्षमादि भावों का त्याग आर्विभाव करें ।

जैनियों के पर्व भोग नहीं त्याग के पर्व हैं, इसलिये महापर्व कहें जाते हैं । ज्ञानमयी त्याग एक अद्भुत जीवन कला हैं । ज्ञानमयी त्याग एसा गोताखोर होता है जो सागर के घनत्वों को तब तक वेधता है जब तक की उसे सीपी के संपुट से मोती उपल्ब्ध नहीं हो जाता । जब उसे मोती उपलब्ध हो जाता है तो जीवन के शांतिनिकेतन का उद्घाटन होता है जिसे हम केवल ज्ञान पर्व कहते हैं ।

जैनागम में जैन पर्व दो प्रकार के होते हैं (१) शाश्वत पर्व (२) सामायिक पर्व । सामायिक पर्व भी दो तरह के होते हैं । (१) व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित (२) घटना विशेष से सम्बन्धित ।

दीपावली , महावीर जयन्ती, रामनवमी, जन्माष्टमी , आदि पर्व व्यक्ति विशेष से संबन्धित पर्व है । दीपावली , महावीर निर्वाण और महावीर जयन्ती महावीर जन्म से संबन्ध रखते हैं । रामनवमी और जन्माष्टमी राम और कृष्ण के जन्म से सम्बन्ध रखते हैं ।

घटना विशेष से सम्बन्धित पर्वों में रक्षाबंधन, अक्षयतृतीया, होली आदि आते हैं क्योकि वे पौराणिक घटनाओं से सम्बन्धित हैं ।

त्रैकालिक अथवा शाश्वत पर्व न तो किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित होते हैं और न घटना विशेष से । वे आध्यात्मिक भावों से संबधित होते हैं जैसे दशलक्षण पर्व अष्टानिका पर्व सोलहकारण पर्व, रत्नत्रय पर्व आदि ।

धटनाओं और व्यक्ति विशेष से संबन्धित पर्व निश्चित रुप से अनादि नहीं हो सकते पर इन पर्वों में छिपें गूढ मन्तव्य आत्मा के आन्नदातिरेक में वृद्धि करतें हैं ।

भगवान महावीर का निर्वाण हुआ हमने उस अवसर को निर्वाण महात्सव के रुप में मनाया घर पर दीप जलाकर खुशी के इजहार किया, क्योंकि वह भव्य जीव जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होकर आत्मा में स्थित हो गया । अपने जीवन के प्रकाश से सम्पूर्ण लोक को प्रकाशमान कर गया उसने हमें अपनी आत्मा में सुख ढूँढने का मार्ग दिखाया । सामाजिक जीवन में महावीर निर्वाणोत्सव को दीपावली के रुप में अंगीकार किया गया । गृहस्थ अवस्था के भी अपने निश्चित आयाम होते हैं । यह पर्व उन आयामों को मूर्तरुप प्रदान करता हैं । पर्वों के माध्यम से गृहस्थों को शिक्षा, धर्म, साधन का अवसर प्राप्त होता है एवं मानवीय रिश्तों की डोर को मजबूत किया जा सकता हैं । समाज को जीवन की नई दिशा प्राप्त होती है ।

घटना विशेष से संबंधित पर्व आत्मा की पत्तों को खोलकर चैतन्य के कपाट खोलता है । घरसेन आचार्य ने श्रुतों की रक्षा की । भूतबली और पुष्पदन्त के माध्यम से ज्ञान गंगा का प्रवाह हुआ, ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन यह तिथी श्रुतपंचमी पर्व के रुप में स्थापित हो गई ।

त्रैकालिक और शाश्वत पर्व सार्वभौम और सार्वकालिक होते हैं . यह प्राणी मात्र को कल्याण का मार्ग दिखाते हैं । ३६५ दिनों में कई सामाजिक एवं धार्मिक पर्व आते हैं जिनके द्वारा आत्मासुखानुभव करता है, आध्यात्म के बीज रोपित करता है ऐसा ही एक पर्व है क्षमावाणी पर्व । इसके द्वारा प्राणी मानसिक मल को दूर कर संसार में निर्भयता से जीने का मार्ग प्रशस्त करता है ।

मुख्य रुप से क्षमा वह है जहाँ क्रोध का अभाव है । क्रोध से मानव शरीर में परिस्पदंन बढ जाती है, रक्त में लाल कणों की संख्या बढ जाती है, शरीर काँपने लगता है, चेहरा लाल हो जाता है , जिसके फलस्वरुप हाईब्लड प्रेशर एवं हार्टएटेक जैसी बिमारियाँ हो जाती है ।

क्षमा के अभाव में मानव भयभीत हो जाता है, एसी परिस्थितियों में नियन्त्रण का कार्य करता है " क्षमा पर्व " । क्षमा सामाजिक जीवन को नियन्त्रत करती है अतः यह सामाजिक पर्व भी है ।

इसी तरह अष्टानिका पर्व शाश्वत पर्व है । अनादि, अनन्त, परम्परा से चला आ रहा है । यह लौकिक इच्छा की पूर्ति के लिये नहीं, इन्द्रादि विभूति की आकांक्षा के लिये नहीं वरन कर्मों के निर्जरा के लिये मनाया जाता है । संवर और निर्जरा का फल मोक्ष प्राप्ति है अतः यह महा पर्व शाश्वत पर्व है ।

धर्म आत्मा में प्रकट होता है तिथि में नहीं किन्तु जिस तिथि में आत्मा में क्षमादि रुप, वीतराग शांति प्रकट हो वही तिथि पर्व कही जाने लगती है । पर्व मोक्ष आनंद की चरम परिणति है । अतः पर्व आनन्द के वाहक है, यह पर्व बार बार मनाये जाते हैं ताकि इनसे झरने वाला आनन्द बराबर मिलता रहे ।

हूमडो (जैनों) के सामाजिक त्यौहार

दिपावली :-

आज हमारे सामने चिन्तन के दो बिन्दु है एक धर्म और दूसरा रूढ़ियाँ। क्या रूढियाँ धर्म है? आचार्य श्री **कुन्दकुन्द स्वामी** ने प्रवचनसार में धर्म की परिभाषा बताते हुऐ कहा है कि "धर्म आत्मा का स्वभाव है"। रूढि समाज की क्षैत्रीय उपल्बिधयाँ है । "रुढियाँ धर्मपरायण तो हो सकती है किन्तु नितान्त धर्म रूप नहीं हो सकती है। उनमें धर्म लोक जीवन का मिश्रण होता है। यथा पर्वकाल में विशेष अनुष्ठानादि करना । चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह समाज में रहकर धर्मप्राप्ति का प्रयास व पुरूषार्थ करता है । इसीलिए रथोत्सव, पच्चकल्याणक आदि महोत्सवों में सम्मिलित होकर, आत्मस्वरूप धर्म की प्राप्ति का प्रयत्न किया जाता है। यही प्रयास परम्परागत होने से रूढि नाम पा लेता है। जिसे हम त्यौहार मानते है। अच्छी रूढ़ियो के पीछे धर्म व त्याग की चिनगारी छिपी होती है।

कार्तिक कृष्ण चर्तुदशी की रात्रि अमावस्या की प्रभात बेला में महावीर भगवान ने पावापुरी सिद्धक्षेत्र से निर्वाण को प्राप्त किया । तथा अमावस्या की सांयकाल भगवान गौतम स्वामी को केवल ज्ञानज्योति प्रकट हुई । फलतः वह दिन दीपावली नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस पर्व का प्रथम दिवस धन्यतेरस नही अपितु धनतेरस है। भगवान् महावीर ने कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी के दिन बाह्य समवसरण लक्ष्मी का त्याग करके मन,वचन, और काया का विरोध किया । इसलिए धनतेरस पर्व त्याग की कला सिखाने वाला पर्व कहलाया पर अज्ञानतावश हम इस दिन सोना, बर्तन आदि खरीदना परिग्रह संचय करके इस रश्म को पूरा करते है।

रूपचौदस के दिन भगवान् महावीर ने १८,००० शीलो की पूर्णता को प्राप्त किया। वे रत्नत्रय की पूर्णता को प्राप्त हुए अयोगी अवस्था में स्वरूप में मग्न हुए। अतः यह दिन अपनी आत्मा को शील, सत्य, सदाचार से सजोत्र की कला सिखाता है। इस दिन ब्रह्मचर्य में रहकर व्रत आदि करना ही सच्ची रूपचौदस है। अमावस्या के दिन निवार्ण लक्ष्मी को प्रभु ने प्राप्त की थी इसलिए हमें आत्मसुख के लिए महावीर की पूजा करनी चाहिए। आज हम सब निर्वाण को भूल, लक्ष्मी की पूजा करने लगे है। चंचल लक्ष्मी पुण्य की चेरी है। पुण्य के अभाव में वह हमें छोड़कर चली जायेगी। श्रीमान **जवाहरलालजी वैद्य** प्रतापगढ निवासी के मतानुसार सांय काल को बही का मुहुर्त करते वक्त जिनवाणी पूजन कर नयी बही लिखना चाहिए परतु ऐसा ना कर लोग लक्ष्मी पूजन और सरस्वती पूजन करके बही लिखते है यह अनुचित है मिथ्यात्वपोषक है। धन धर्म से ही मिलता है न कि लक्ष्मी पूजन या सरस्वती पूजन से। दूसरा वे इस बात को भी अनुचित कहते हैं कि चौदस अमावस एक दिन होने पर लोग भगवान के निर्वाण के पूर्व ही दीपमालिका का उत्सव कर लेते हैं जो कि भगवान के निर्वाण के पश्चात् होना चाहिए। अमावस्या का कोई नियम नही है यह तो ब्राह्मणों की चलाई प्रथा है। यदि रात्रि में एकम् भी हो तो क्या चिंतां अमावस्या तिथि से तो प्रतिपदा (एकम्) अच्छी है।

निर्वाण दिवस पर हम लडडू चढाते है।यह प्रथा मात्र काल्पनिक या रूढिमात्र नही है। इसके पीछे बहुत रहस्य है। जिस प्रकार मनुष्य लडडू का नाम सुनता है, सुनते ही उसके मुख में पानी आ जाता है। उसी प्रकार मुमुक्षु मोक्ष का नाम सुनते ही उसकी वार्ता या चिन्तवन मात्र से ही आनन्द अनुभूति प्राप्त करता है। इस पावन पर्व पर बन्धुवर्ग घर का कचरा निकालकर सडक पर डालते है। दीवारों व मकानो की सफाई तो करते है। पर अन्दर आत्मा में लगा कषायरूपी कचरा कभी नहीं निकालते। अन्याय का त्याग, अभक्ष्या का त्याग करो और सत्यता से प्यार करो। व्यवहार के पटाखे नही अन्दर की कषायों के पटाखे फोड़ो तभी सच्चीदीपावली होगी। यह हमारा महत्वपूर्ण त्यौहार है। इस दिन ठाठ बाट से हम शहर के सभी मंदिरो के दर्शन के लिए जाते है।

होली-

यह त्यौहार हूमड़ो में ही नही अपितु समस्त हिन्दू जातियों से जुडा है। तथापि प्रतापगढ़ में मानक चौक, रतन चौक,आदि मूल स्थानों पर हूमड़ समाज के नवयुवक, बालक कबाडा (लकड़ी) एकत्रित करके रात्रि को होली का दहन उत्सव मनाते है। होली के दूसरे दिन होली की आग से चूल्हा जलाया जाता था। श्रीमान् **जवाहरलालजी वैद्य** का कहना है कि " यह त्यौहार जैनियों का नही है। यह खेलकूद छिछोरा पन है। " हम सब जैनियों के विचार का विषय है यह हमारे मनाने योग्य भी है या नही ! हम लाखों जीवों की हत्या के पापके भागी बनते है। यह एक मिथ्यात्व प्रथा है और हम इस पाप रूप रूढि से भी बच सकते है। श्रीमान् वैद्य साहब ने लिखा है कि यह प्रथा दक्षिण के हूमड़ समाज में नही है। अतः हम हूमड़ जैनों को इस पर विचार कर विवेक से कार्य करना होगा।

ढूँढ-

आदरणीय **जवाहरलालजी वैद्य** ने अपने इतिहास में इस प्रथा का अत्यन्त सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। मैं उन्ही के शब्दों में यहा प्रस्तुत करती हूँ। पूर्व में होली के दूसरे दिन रात को सब पंच एकत्रित होकर जिन बालको ने इस वर्ष जन्म पाया है उनको ढूँढने जाते थे। शायद उसके पीछे कारण यह रहा होगा ढूँढ ढूँढ कर नवजात शिशुओं क नूंद करना कितने बालक है कितनी बालिकाएँ। अर्थात् समाजिक गणना करें तो इससे

इस बात का भी पता चलता है । वे मुत्युदर की भी नूंद करते रहे होगें जिससे समाज की जनसंख्या का सुचारु रूप से ब्यौरा रहता था। इससे जाहिर होता है कि इस प्रथा का चलन सोच समझकर नियोजित ढंग से हमारे पूर्वजों ने किया था।

इसमें नवजात शिशु को लकडियो से ढूँढते है अर्थात् बालक को कोई भी बालक और बालिका को कोई भी बालिका गोंद में लेकर बैठती है और पंच लोग उसके सिर पर आपस में लकडियाँ कूटते है और यह महामंत्र बोलते जाते है कि" हरियादेवी देवदत्त" । अर्थात् इतना बडा होना कह कर लकडियाँ उपर को उठाते है । इससे पूर्व समय में खडग् (तलवार) से काम लेते थे। ततपश्चात् रात्रि को फूली, जलेबी, सेव खानचना ,गुंड हुवारियाँ आदि अनेक वस्तुओं का मिक्चर समाज में वितरित होता था । परन्तु आज के इस परिवर्तन शील रफ्तार से दौड़ते समय में यह कार्यक्रम सामूहिक रूप में सम्पन्न होता है। आज जिन शहरो में जैसे इन्दौर, बम्बई, उज्जैन आदि में हमारा हूमड़ समाज अधिक संख्या में स्थापित है सामूहिक ढूँढ का कार्यक्रम खूब ठाठ बाट से सम्पन्न होता है । उनके बौद्धिक एवम् मनोरंजक कार्यक्रम भी होते है। जिसमें हमारी समाज की नई प्रतिभाओं को आगे लाने का अवसर दिया जाता है और उन्हें प्रोत्साहित भी किया जाता है। सामूहिक प्रतिभोज भी होता है। इसमें समाज के अधिक से अधिक भाईबहन,माता पिता उत्साहपूर्वक सम्मिलित होते है।

नाहन तेरस

चैत्र कृष्ण तेरस के दिन नाहन खेली जाती। बसंत ऋतु के आते ही चारों ओर हरियाली छा जाती है। बागों में फूल लद जाते है । मन को लुभानेवाला बसंत जिसे कामदेव कहते है। इसमें जलक्रीडा, वन क्रीडा, फाग खेलना उत्तम माना जाता था। यह खेल कूद रागरंग का त्यौहार है। जिस वजह से समाज के लोग मिलकर सब भेद भुला कर एक सौहार्दपूर्ण वातावरण में टेशू के फूलों का रंग बनाकर घर घर जाकर शालीनता से खेलते थे। उस समय के अनुसार यह प्रथा अच्छी थी । समाज के सभी लोग एक जगह एकत्रित होते थे । मनोरंजन हँसी मस्ती सब हो जाता था । परंतु आज यह प्रथा बंद हो गई है सिवाय प्रतापगढ के कहीं यह प्रथा नही है ।

खांडमाग :-

होली के पश्चात् चैत्र कृष्ण सप्तमी, तेरस तथा चैत्र शुक्ला तृतीया के दिन सभी भिन्न भिन्न समुदायों की ओर से शाम को अपने अपने बगीचों मे ठंडाई का मसाला व भंग तैयार की जाती थी । बगीचे में ढोल व मजीरों के साथ महिलाएँ गीतगाती थी नृत्य करती थी । चैत्र शुक्ला तृतीया को समाज की गोट (प्रीतिभोज) भी होती थी । गुलाल उडाती हुई जलती हुई मशालो के साथ ढोल मजीरे बजाती हुई गेरमानक चौक में बिखिर ती थी। तब इसका महत्व आनन्द, मजा मस्ती की दृष्टि से अधिक था । मगर आज समय बदल गया है । आज भी यह कार्यक्रम जहाँ जहाँ भी हमारे हूमड़ बसते है होता है सिर्फ उसका दृष्टिकोण बदल गया है । हम अपनी सुविधानुसार स्नेह सम्मेलन का आयोजन करते है । इसमें हमारा मुख्य ध्येय आपस में एक दूसरे से मिलना होता है। आज हम अलग अलग बिखर गये है। यदि हम चाहें तो भी समयाभाव के कारण सभी मिल नहीं सक्ते है । स्नेह सम्मेलन के दिन शहर का पूरा सामाज निश्चित जगह एकत्र होता है । सभी से प्रेमपूर्वक मिलते है । इकट्ठा भोजन करते हैं। जिससे हमारी सामाजिक प्रेम की भावना आज इस मशीनीयुग में भी जीवित है । यह एक स्वस्थ प्रथा है।

शील सप्तमी (हीरा हातम) - शील सप्तमी का त्यौहार हिन्दुओं का है । जैन धर्म में इसे मिथ्यात्व माना गया है । फिर भी इसका उद्देश्य उत्तम है । और आज तो इसका महत्व बहुत ही ज्यादा है । किसी शीलवती नारी के शील की रक्षा हुई थी । वह आज शीतला माता के नाम से पूजी जाती हैं । विद्वानलोग इस कथा को कई प्रकार से सुनाते हैं । कुछ का मत है कि माता पूजन से पुत्र की आयु में वृद्धि होती है परंतु यह सब मिथ्या है। जो जितना आयु लेकर जन्मेगा उतना ही पावेगा। उसमें माता का कुछ भी दोष नहीं है । सारा दोष अपने कर्मो का है । इसका सही अर्थ तो यह है कि माता का अपने पुत्र को पुत्रवत प्यार करना । माता तो माता होती है अपने बालक को चाहे कितना भी क्रूर स्वभावी क्यों न हो कितना भी दुखित क्यों न करता हो वह सदा उसे प्रेमभाव से ही देखती है । परंतु हमने इस आध्यात्मिक अर्थ को अलौकिक कर दिया है। शील का शीतला हुआ और शीतला का शीतल होकर ठंडी रोटी खाना, गमन नहीं करना, स्नान नहीं करना, आदि मूर्खता लिए रूढ़ियां प्रचलित हो गई है।

रक्षाबंधन - यह त्यौहार श्रावण सुदी पूर्णिमा को मनाया जाता है । इस दिन बहन बेटी भाणेजों को बुलाकर रक्षिका बंधाई जाती है और उनको कपड़े रकम आदि देते है । सो उचित ही है । परन्तु इसका धार्मिक महत्व जैन शास्त्रों में बताया गया है कि उस रोज सातसौ अकपंनादि मुनियों का विष्णुकुमार ने उपसर्ग निवारण किया था । उस वक्त लोगों ने खुशी में दीन दुखियों को दान किया था। अतः पूज्य श्रीमान जवाहरलालजी वैद्य साहब का कहना है कि हमें इस दिन दान पुंण्य भी करना चाहिए। वन मे जब सातसौ मुनि तपस्या कर रहे थे तब राक्षसो ने वन के चारो तरफ आग लगा दी थी। तब विष्णूकुमार मुनि ब्राह्मण का रूप धारण करके बलिराजा के पास जाते है और तीन पग जमीन मांगते जो राजा सहर्ष दे देते हैं । विष्णुकुमार अपनी शक्ति से विक्रय रूप धारण कर एक पग पाताल पर, एक पग आकाश पर रखते है, और पूँछते है बताओ तीसरा पग कहाँ रखूं ? तब राजा इसकी वजह पूँछते है । तब विष्णू मुनि बताते है कि मुनियों पर उपसर्ग हो रहा है और आप बेखबर है । तब राजा उनको राक्षसों से मुक्ति दिलाकर उपसर्ग निवारण करते है। ततपश्चात् विष्णूकुमार मुनि भी कई वर्षो तक उपवास कर अपना प्रयाश्चित करते है । इसी वजह से श्वेताम्बर पंथ के अनुयायी भी मंदिर में लाल धागे की रक्षा पोटली आपस मे एक दूसरे को बांधकर वात्सल्य भाव प्रगट करते है।

अष्टन्हिका पर्व

प्रतिष्ठाचार्य पं. प्रदीपकुमार जैन, बम्बई

अष्टन्हिका पर्व में देव नंदीश्वर द्वीप में जाकर पूजा करते हैं। वही पूजा हम मानव भी नंदीश्वर द्वीप की कल्पना करके करते हैं। यही अष्टन्हिका पूजा हैं। इसे महामह पूजा अथवा चतुर्मुख पूजा भी कहा जाता हैं। इस समय जो व्रत किया जाता है, वह अष्टान्हिका व्रत है अथवा इसे नंदीश्वर व्रत भी कहते हैं।

नंदीश्वरभक्ति में आचार्य लिखते हैं -

नंदीश्वर सद्द्वीपे नन्दीश्वरजलधिपरिवृत्ते धृतशोभे।
चन्द्रकरनिकरकसंन्निभरुन्द्रयशोविततदिड्महीमंडलके ॥११॥
तत्रात्यांजनदधिमुख-रतिकर-पुरुनगवराख्यपर्वतमुख्याः।
प्रतिदिशमेषामुपरि त्रयोदशेन्द्रार्चितानि जिनभवनानि ॥१२॥

अर्थात् - चंद्रमा की किरणों के समूह के समान फैले हुए यश के द्वारा जिसने समस्त दिशाओं का समूह और समस्त पृथ्वीमंडल व्याप्त कर दिया है अर्थात् जिसकी कीर्ति समस्त वृथ्वी पर फैल रही है तथा नन्दीश्वर नाम के महासागर से चारों ओर घिरा हुआ है और जो बड़ी अच्छी शोभा को धारण कर रहा है, ऐसे सर्वोत्तम नंदीश्वर द्वीप की प्रत्येक दिशा में (पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तरमें) वहाँ एक-एक अंजनगिरि है। उस अंजनगिरि के चारों ओर चार दिसा में चार-चार दधिमुख है, उन दधिमुख बावड़ियों के किनारे-कोनों पर रतिकर पर्वत हैं। प्रत्येक अंजनगिरि, दधिमुक, रतिकर पर्यत एक-एक अकृत्रिम चैत्यालय है। इस प्रकार नन्दीश्वर दमवीप की एक दिशा में एक अंजनगिरि, चार दधिमुख और आठ रतिकर सब तेरह होते हैं। इस प्रकार चारों दिशाओं के मिलकर ५२ होते हैं। इन चैत्यालयों में इन्द्रादि देवगण आकर पूजा करते हैं।

आचार्य यतिवृषभ तिलोयपण्णत्ती में कहते हैं :

झारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, चामर, छत्र, व्यंजन और सुप्रतिष्ठ इन आठ मंगल द्रव्यों से सुशोभित प्रत्येक एक सौ आठ होते हैं। देदीप्यमान रत्नदीपकों से युक्त ये जिन - भवन पांच वर्ण के रत्नों से निर्मित और गोशीर्ष, मलयचन्दन, कालागुरु और धूप की गंध से व्याप्त तथा भम्मा, भृदंग, मर्दल, जयघंटा, कांस्यताल, तिवली, दुन्दुभि एवं पटहादिक वाद्यों से नित्य ही शब्दयमान रहते हैं। त्रिलोकसार में प्रतिमाओं के विषय में निम्न वर्णन आतचा है -

चमर करणाग जक्खग बतीसं मिहुण गेहि पुह जुत्ता।
सरिसीए पंतीए गब्भगिहे सुठ्ठु सोहंति ॥९८७॥

गर्भगृह में वे जिनप्रतिमाएँ चमरधारी नागकुमारों के ३२ युगलों और यक्षों के ३२ युगलों सहित पृथक - पृथक, सदृश पंक्ति में शोभित होती है।

सिरिसुद-देवीण तहा, सव्वाण्ह - सणक्कुमार - जक्खाणं।
रुवाणि पत्तेक्कं, पडिमा-वर-रयण-रइदाणि ॥१९०५॥

प्रत्येक प्रतिमा उत्तम रत्नादिकों से रचित है और श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वहण व सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियों से युक्त है। नन्दीश्वर भक्ति में बताया है -

येषु जिनानां प्रतिमाः पञ्चशत-शरासनोच्छिताः सत्प्रतिमाः ।
मणिकनक-रजतविकृता, दिनकरकोटि-प्रभाधिक-प्रभदेहा ॥२६॥
कुंकुम कप्पूरेहिं चन्दण-कालागरुहि अण्णेहिं ।
ताणं विलेवणाइं, ते कुव्वंते सुगंध-गंधेहिं ॥१०५॥

वे इन्द्र कुंकुम, कर्पूर, चन्दन, कालारु और अन्य सुगन्धित द्रव्यों से उन प्रतिमाओं का विलेपन करते है ।

कुन्देन्दु-सुन्दरेहिं, कोमल - विमलेहिं सुरहि - गंधेहिं ।
वर - कमल - तंडुलेहिं, पूजंत जिणिंद - पडिमाओ ॥१०६॥

वे कुन्दपुष्प व चन्द्रमा के समान सुन्दर, कोमल, निर्मल और सुगन्धित उत्तम कमलधान्य के तन्दुलों से जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते हैं ।

सयवेतराय चंपय - माला पुण्णाग -णाग - पहुदीहिं ।
इच्चंति ताओ देवा, सुरहीहिं कुसुम - मालाहिं ॥१०७॥

वे देव सेवंती, चम्पकमाला, पुन्नाग और नाग प्रभृति, सुगन्धित पुष्पमालाओं से उन प्रतिमाओं की पूजा करते हैं ।

बहुविह - रसवंतेहिं, वर - भक्खेहिं विचित्त-रुवेहिं ।
अमय - सरच्छेहिं सुरा, जिणिंद-पडिमाऔ महयंति ॥१०८॥

वे सारे देवगण बहुत प्रकार के रसों से युक्त, व्चित्र रुप वाले और अमृत के सदृश उत्तम भोज्य पदार्थों से (नैवेद्य से) जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते है ।

बुप्फुरदि-किरण-मंडल-मंडिद-भवणेहिं रयण-दीवेहिं ।
णिक्कज्जल-कलसेहिं, पूजंति जिणिंद - पडिमाओ ॥१०९॥

वे इन्द्र देदीप्यमान किरणसमूह से जिनभवनों को विभूषित करने वाले और कज्जल एवं क लुषता से रहित ऐसे रत्नदीपकों से इन प्रतिमाओं की पूजा करते हैं ।

वासिद - दियंतरेहिं, कालागरु - पमुह - विविध - धूवेहिं ।
परिमिलिद - मंदिरेहिं महयंतिजिणिंद-बिंबाणिं ॥११०॥

वे देवगण मंदिर एवं दिग्मंडल को सुगन्धित करने वाले कातागरु, प्रभृति अनेक प्रकार के धूपोंसे जिनेन्द्र -बिम्बों की पूजा करते हैं ।

दक्खा-दाडिम-कदली-णारेगय-माहुलिंग-चूदेहिं ।
अण्णेहिं पक्केहिं, फलेहिं पूजंति जिणणाहं ॥१११॥

वे देव दाख, अनार, केला, नारंगी, मातुलिंग, आम तथा अन्य भी पके हुए फलों से जिननाथ की पूजा करते हैं ।

णिस्सेण कम्मक्खणेक्क हेदुं मम्णंतया तथ्य दिणिद - पूजं ।
सम्मत विरया कुव्वंति णिच्चं देवा महाणंत व्सोहि पुव्वं ॥२२८॥

इस प्रकार वहाँ पर अवरित सम्यग्दृष्टि देव जिनपूजा को समस्त कर्मो के क्षय करने में एक अद्वितीय कारण समझकर नित्य ही महान् अनन्त गुणी विशुद्धिपूर्वक करते हैं । उसके बाद देवगण पंचमेरु की पूजा के लिए जाते हैं -

निष्ठापितजिनपूजाश्चूर्ण-स्नपनेन दृष्टविकृतविशेषाः ।
सुरपतयो नन्दीश्वर - जिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुनः ॥१८॥
पञ्चसु मंदरगिरिषु, श्रीभद्रशालनन्दन - सौमनसम् ।
पाण्डुकवनमिति तेषु, प्रत्येकं जिनगृहणि चत्वार्येव ॥१९॥
तान्यथ परीत्य तानि च, नमसित्वा कृतसुपूजनास्तत्रापि ।
स्वास्पदमीयुः सर्वे, स्वास्पदमूल्यं स्वचेष्ट या संगृह्य ॥२०॥

सुगन्धित चूर्ण से जिन्होंने महाभिषेकपूर्वक जिनपूजा पूर्ण कर ली है, इसीलिए उनको महानन्द आ रहा है । उस आनन्द से जिनकी आकृति कुछ विकृत हो रही है ऐसे इन्द्र फिर नन्दीश्वर द्वीप के उन चैत्यालयों की प्रदक्षिणा देते हैं । पश्चात् वे इन्द्र पाँचों मेरुपर्वत संबंधी भद्रशालवन, नन्दनवन सौमनसवन, पांडुकवन इस प्रकार चार वनों में प्रत्येक में चार-चार जिनमन्दिरों की पहले प्रदक्षिणा देकर और उनकी स्तुति करके बहुत उत्तम रीति से पूजा करते हैं । वहाँ जो अभिषेक पूजनादिक किया, उसके बदले अपने देवपद के योग्य महीपुण्य संचय करके सभी इंद्रादि अपने - अपने स्थान को चले जाते हैं ।

इस प्रकार तीनें लेकों में रहने वाले भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष और कल्पवासी चारों प्रकार के देव सह परिवार नंदीश्वर द्वीप में जाते हैं आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन महिने की शुक्ला अष्टमी से लेकर आठ दिन तक दिव्य गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, चूर्ण और दिव्य-वस्त्र-पूर्वक आभूषणसहित सदा ही सतत अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं । इस प्रकार नन्दीश्वरपर्व का महोत्सव करते हैं । मनुष्य - जीवन में भी इस पर्व का महत्वपूर्ण स्थान हैं ।

अष्टान्हिका व्रत एवं नंदीश्वर व्रत

जब इन्द्राणि चतुर्णिकाय देव नंदीश्वर द्वीप में अष्टान्हिक पर्व मनाते हैं, उसी समय यह व्रत किया जाता है । वर्ष में तीनबार कार्तिक, फाल्गुन, व आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष में अष्टमी से पूर्णिमा तक (आठ दिन) पूजनाभिषेक सहित व्रत करना चाहिए । अर्थात् शुक्ला सप्तमी को स्नानादि शुद्धि करके, अष्ठद्रव्ययुक्त जिनेन्द्र - शास्त्र-गुरु पूजा अभिषेकपूर्वक नित्यपाठ समाप्त होने पर गुरु के पास अथवा गुरु नमिले तो जिनबिम्ब के सन्मुख व्रत का नियम करें । और उस दिन एकाशन करें । उसी दिन से ब्रह्मचर्य व्रत, भूमिशयन, सचित पदार्थो का त्याग व्रतसमाप्ति पर्यन्त धारण करें ।

अष्टमी को प्रथम दिन उपवास करके, नन्दीश्वर द्वीप का मण्डल मन्दिर में बनवाकर पंचमेरु की स्थापना करें । प्रतिमा भी स्थापन करें, अभिषेक पूजा करें । देव-शास्त्र-गुरु पूजा, चौबीसी पूजा, पंचमेरु पूजा, एवं नंदूश्वर - द्वीप बावन अर्घ्यसहित पूजा, व्रत कथा श्रवण करें या पढ़े और "ऊँ ह्रीं नंदीश्वरसंज्ञाय नमः" मंत्र का जाप्य करें व १०८ पुष्प चढ़ावे और रात्रि में जागरण करें । इसदिन के व्रत से दश लाक उपवास का फल प्राप्त होता है ।

दूसरे दिन नित्याभिषेक पूजा और पमचमेरु पूजा, नंदीश्वर द्वीप बावन जिनालय पूजा करें ।ये पूजा प्रतिदिन पर्व में करनी चाहिए । ' ऊँह्रीं अष्टमहाविभूतिसंज्ञाय नमः' इस मन्त्र का जाप्य करें । एकासन करें । इस दिन के व्रत से दस हजार उपवास का फल मिलता हैं ।

तृतीय दिन नित्य क्रिया करें । ' ऊँह्रीं त्रिलोकसारसंज्ञाय नमः' मंत्र का जाप्य करें । पानी के साथ चावल (कंजिका) का आहार लें । इस दिन का ६० लाख उपवास का फल प्राप्त होता है ।

चतुर्थ दिवस नित्य क्रिया करें ' ऊँह्री चतुर्मुखसंज्ञाय नमः' मंत्र का जाप्य करें व पुष्प चढ़ावें । अल्प भोजन (अवमोदर्य) करें । सिद्धचक्र की त्रिकाल पूजा करें । इस दिन के व्रत करने से ५६ लाख उपवास का फल होता है ।

पंचम दिवस ' ऊँ ह्रीं पंचमहालक्षणसंज्ञाय नमः' मंत्र का १०८ बार पुष्प सहित जाप्य व एकासन करें । इस दिन ८४ लाख उपवास का फल प्राप्त होता है । षष्ठ दिवस नित्य विधि करें । ' ऊँ ह्रीं स्वर्गसोपानसंज्ञाय नमः' मन्त्र का पुष्पसहित १०८ बार जाप्य करें ।खट्टे पानी में भीत (चावल) का आहार लें । सिद्धचक्र पूजा करें । इस दिन ४५ लाख उपवास का फल प्राप्त होता है । सत्पम दिन नित्य क्रिया करें । ' ऊँ ह्रीं सर्व संपत्ति संज्ञाय नमः' जाप्य करें । सूका साग एवं शुद्ध चावल का आहार या फिर भात पानी लें । इस दिन एक लक्ष उपवास का फल प्राप्त होता है ।

अष्टम दिवस नित्य क्रिया करें । ' ऊँ ह्रीं इन्द्रध्वजसंज्ञाय नमः' जाप्य विदिपूर्वक करें । पूर्ण उपवास करें । तीन करोड़ पाँच लाख उपवास का फल प्राप्त होता है ।

अंतिम नवमें दिन नित्य पूजा करें न मंडलपूजन समाप्ति विसर्जन करें । क्षमायाचना करें । चारों प्रकार का दान देवें । चार प्रकार के संघ को तृप्त करें, भोजन करावें पश्चात् पारना करें । इस प्रकार ७ या ८ वर्ष उत्तम, ५ वर्ष मद्यम, ३ वर्ष जघन्य रुप से किया जाता है ।

जो इस व्रत को तीन वर्ष तक करता है उसे स्वर्ग सुख प्राप्त होता है । कुछ भवों में मोक्ष को प्राप्त करता है । पाँच वर्ष इस व्रत को करने वाला भव्य जीव उत्तमोत्तम सुख को प्राप्त करता है व सातवें भव में मोक्ष को प्राप्त करता है । जो सात या आठ वर्ष तक इस व्रत को करता है वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की योग्यतापूर्वक उसी भव से मोक्षगामी हो जाता है .

व्रत पूर्ण होने पर समाप्ति के समय उद्यापन करना चाहिए क्योंकि जिनमंदिर बनाने के बाद कलश चढ़ाने के समान व्रत का उद्यापन माना गया है ।

हूमड़ो के धार्मिक पर्व

पर्युषण पर्व :- हमारे शास्त्र भंडारो से भट्टारको द्वारा धार्मिक पर्वो का विशाल साहित्य उपलब्ध है। इन्ही पर्वो के आश्रित व्रत नियम उपवास जाप होम आदी क्रियाओं का उल्लेख है। ई.१३वीं शदी से १९वीं शदी तक लगभग सभी हूमड़ों के भट्टारकों ने पर्यूषण पर्व और अष्टानिका पर्व को विशेष महत्व दिया है। उसे समय गुजरात और राजस्थान छोटे छोटे क्षत्रियों के राज्य में बटाँ हुआ था। उस समय भट्टारको ने अपने प्रभाव से १० दिनप्राणीवध आदि हिंसा को बंद कराने का फरमान निकाला । दशलक्षण धर्म के दस दिन और श्वेताम्बर पंथ के आठ दिन कुल मिलाकर १८ दिन अर्थात् भादवा वदी १२से लेकर भादवा सुदी १४ तक महान धर्म आराधना के होते हैं। ये दिन त्याग, नियम परिग्रह पूजन, स्वाध्याय के होते है। सभी मंदिरो में चर्तुथदशी को वार्षिक प्रतिकमण का बहुत महत्व है।

जवाहरलालजी वैद्य का अनुमान यह है कि वर्षाऋतु होने के कारण पुरान समय में लोग व्यापार, वाणिक देशगमन आदी से निवृत्त होकर घर पर बैठे रहते हैं अतः धर्म ध्यान साधन किया जाता है। तात्पर्य तो इन दिनों का धर्म साधन का है। और प्रवृत्ति भी ऐसी हो होती चाहिए। प्रतापगढ़ में भी १८ दिनों के लिए राज्य सरकार से भी हिंसा निवारणार्थ कसाई खाने बंद व भण भूजो तथा कंदोइयों की भट्टियां बद रहती थी। पूर्यषण पर्व के दिनों में अच्छे वस्त्रधारण कर सभी धर्मानुरागी मंदिरजी को जाते हैं पूजन, पाठ, स्वाध्याय प्रवचन आदी करते हैं। रागरंग, क्लेश, कषाय माया का त्याग कर व्रत उपवास करते हैं। यथा शक्ति कोई एक दिन का कोई दो दिन का कोई तीन दिन का तो कोई पाँच तो कोई १० दिन के उपवास धारण करते है। हमें यथा शक्ति दान धर्म प्रभावना आदी भी करना चाहिए! पोषा व अन्तव्रत आदि भी किये जाते है। पर्यूषण पर्व के दिनों में रात्रि को सभी मंदिरो मे अनेक कार्यक्रम होते है। जिसमें बच्चे बड़े बूढ़े सभी लोग बड बढकर भाग लेते है। जैसे धार्मिक अंताक्षरी वाद विवाद प्रतियोगिता शिक्षाबद्ध धार्मिक नाटक भजन आदी जिससे हमारे बच्चे विशेषकर आगे आते हैं। धार्मिक रूचि रखते हैं उत्साह और लगन से भाग लेते है। भट्टारकों ने अपने उनेक साहित्य में अनन्त चर्तुदशी के दिन राजाओं को मंदिर से आंमत्रित करके उनके हाथ में अनंत तार बांधकर सन्मान के अनेक उल्लेख मिलते हैं।

धूप दशमी - पर्यूषण पर्व के छठे दिन अर्थात् १० मी को धूप दशमी होती है। धूप दसमी के दिन रात्री को समी मंदिर उपकरणों से सजाये जाते है। मंदिर नई नवेली दुल्हन जैसे जगमगा उठते है। खूब रोशनी भी होती है। कई मंदिरो में नवयुवक भगवान के जीवन पर आधरित झाकिया प्रस्तुत करते है। उनके मंदिरो मे मण्डलजी को रचना धर्म पर आधारित कर जीवन के ज्वलन्त उदाहरण दर्शाति है। जैनी धर्मानुरागी मंदिरो मे धूप चढाने व दर्शनार्थ जाते है। रात्रि को जागरण होते हैं। हम जैनी है , अहिंसा, हमारा धर्म है अतः रोशनी में जीव हत्या होती है इसका हमें विचार करना चाहिए।रात्रि में धूप पाटे पर चढ़नी चाहिए न कि उसे अंगार पर जलाये। यह कार्य हम लोंगो को शोभा नही देता है।

क्षमावाणी पर्व - क्षमावाणी पर्व हमारे धर्म पर आधारित एक उत्तम परंपरा । चौथ के दिन श्वेताम्बर समाज प्रतिक्रमण करते वक्त इस धरती पर के सभी जीवों से क्षमायाचना है। छोटे कीडे, मकोड, पानी के जीवाणु तक से हम क्षमायाचना करते है। दिगम्बर समाज पर्युषण पर्व के पश्चात् हमसे गतवर्ष कोई गलती जाने

अनजाने हुई हो या रागद्वेष हो तो वापस मे क्षमायाचना करते है। बडे बुर्जुग लोगों के पैर छूकर क्षमाप्रार्थना करते है। क्षमा करना हमारा उत्तम धर्म है। हम चाहे इसका महत्व ठीक से समझे या न समझे पर कभी न कभी सच्चेभाव भी बन जाते है। यह हमारी एक आर्दश परंपरा है। जो निरंतर चली आ रही। इसे सभी जैन लोग खुब उत्साह और निर्मल भाव से मनाते है। दूर दूर रिश्तेदार मित्र आदी को बाहर क्षमापत्रिका भेजते हैं।

क्षमा का शाब्दिक अर्थ. क्षमा एक छोटा किंतु गंभीर अर्थ के साथ जुडा है। क्ष+मा क्षमा । क्ष+क्+ष । क्-- कषाय, व - षट्कायजीव मा -नही (मत) । अर्थात् कषाय (क्रोधादि) के आवेश में होकर षट्काया जीवों की हिंसा नही करना, उन्हें मन वचन, काय कृत कारित अनुमोदना आदि क्रियाओं से भी कष्ट नही पहुचाना, उनके प्रति प्रीति रखना क्षमा है। यह क्षमावाणी पर्व अश्विन कृष्णा प्रतिपदा के दिन मनाया जाता है। ऋण को थोडा , छाव को छोटा, क्षाम को तनिक और कषाय को अल्प मानकर नही बैठ जाना चाहिए, क्योंकि ये थोडे भी बढ़कर बहुत हो जाते है।

मुख्य रूप से क्षमा वह है जहाँ,क्रोध का अभाव है। एक मिनट के क्रोध से ६० सेकोण्ड का आनन्द समाप्त होता है, जिसके कारण आयु भी क्षीण होती है। क्रोध, कान्ति कराता है, जबकि क्षमा शान्तिदायिनी है।क्रोध से हिंसा होती है जिसके कारण भाववेश में यह प्राणी आत्महत्या, परहत्या करने लगता है। क्षमा तो एक अखण्ड, अक्षय, अविरत में रहनेवाली निधि है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता है किन्तु प्रत्येक प्राणी इसका अर्जत कर सकता है। क्षमा देवीयगुण है। सुनहरे जीवत में क्षमा का विशेष स्थान है। यदि यह दया धर्म मनुष्य के हृदय मे न हो तो मनुष्य व प्राणी मात्र का इस भूतले पर रहना कठिन हो जायगा। क्षमा से क्रोध को जीतो,भलाई से बुराई को द्ररिद्रता को दान से जीतो। जो क्षमा करता है और बीती बातो को भूल जाता है उसे परमेश्वर की ओर वे पुरस्कार मिलता है।

विशाल रथयात्रा उत्सव -

प्रतापगढ़ में दस लक्षणी महापयुर्षण पर्व के पश्चात् प्रतिवर्ष आसोजकृष्ण एकम् को भी जूना मंदिरजी का व द्वितीया को श्री नयामंदिरजी का विशाल काष्ठ कलाकृत रथ भीड भरी जनसमुदाय के साथ वर्षो से नगर परिभ्रमण कर रात्री को तालाब पर पहुँचकर वहाँ भेल का रूप धारण करता हैं। इस अवसर पर हूमड़ समाज के कई परिवार बाहर से यहाँ आकर इस रथोत्सव मे भोग लेते है। तालाब पर भगवान की पूजन आरती के साथ साथ माला की बोलियाँ बोली जाती है जो सहस्त्रों रूपयों मे समाप्त होती है। मालाधारक के घर सभी समाज के धर्मावलंबी भाई बहिन एकत्रित होते है। मालधारक की ओर से प्रभावना, पतासी नारियल, सूखामेवा आदि वितरित किया जाता है। रात्रि को वयस्क, युवायुवतियाँ व बालको द्वारा शानदार डाट्यिें का कार्यक्रम चलता है। प्रतापगढ़ में ये काष्ठ वीणाकृत विशाल रथ तीन है। १ जूना मंदिरजी का दूसरा नया मंदिरजी का व तीसरा भट्टारक यशकीर्ति बोर्डिंग के सीमधर जिनालय में।

कहाजाता है कि ऐसे ही विशाल रथ सागवाडा प्रांत में निर्माणित होकर कई निकटवर्ती हूमड़ मंदिरो में ले जाये गये हैं।जानकारी अनुसार निम्न स्थानों के दिगम्बर जैन मंदिरो में ऐसे ही रथ है जो पर्युषण पर्व के पश्चात् विशाल जुलूस के साथ नगरों के निकट विशिष्ट स्थानों पर रथयात्रा के रूप में ले जाया जाते हैं।

ये रथनिम्न स्थानों पर है यह भी हूमड़ समाज की एक महान उपलब्ध है ।

३. प्रतापगढ़	२ सागवाडा	१ संतरामपुर	१ घांटोल
२ डुंगरपुर	१ खेरवाडा	२ बाँसवाडा	१ धरियावद
१ पारसोला	१ संलूम्बर	१ अरथूना	१ गड़ी
१ परतापुर	१ साबला	१ जालोद	२ केसरियाजी (ऋषभदेव)

अन्यत्र भी हो सकते है। श्रीमान जवाहरलालजी वैद्य ने अपने इतिहास में रथ प्रथा आरम्भ होने के कारण का यह अनुमान बताया कि चातुर्य मास के वजह भट्टारक महाराज एक ही स्थान पर रहते है। यह प्रथा आज भी जारी है कि भट्टारक महाराज वर्षा ऋतु में बिहार नही करते। परंतु किसी गांव में किसी कारण वश भट्टारकजी को जाना जरूरी था। इस वजह उन्होंने रथ निकलवा कर आपात काल में जाने की चाल चली। परंतु अब यह प्रथा हो गई है। यह हूमड़ जाति में गाँव गाँव में प्रचलित हो गई है। रथ निकलना बुरा नहीं है, एक प्रकार से धर्म प्रभावना और शुभ राग है। लेकिन जैन लोगों को इस पर विचार करना चाहिए कि वर्षाऋतु के कारण असंख्य जीवों का सहार होता है। रात्रि हो जाने पर पूजा और आरती होती है। आधी रात तक मिठाईयों बाटी जाती है। तब ऐसा प्रतित होता है कि जैसे मुसलमानो के ताजे खुलते हैं और पर्युषण पर्व समाप्त होते ही हमारा खान पान खुल हो गया है। (यह विषय वास्तव में हम अहिंसक लोगो को लिए सोचनीय है। यह कार्य हम चातुर्यमास के पश्चात् भी कर सकते है।

श्रुतपंचमी

श्रुतपंचमी ज्येष्ठ शुक्लापंचमी को आती है। श्रुतपंचमी को ही ज्ञानपंचमी भी कहते है। जैन समाज में इसका बहुत बड़ा महत्व है। इस दिन शास्त्रों की रथयात्रा निकाली जाती है। उनको नये नये वस्त्रो में बांधा जाता है। शास्त्र भण्डारों की सफाई की जाती है। और जीर्णशीर्ण पाण्डुलिपियों को बचाने का प्रयास किया जाता है। ये समाज के लिए अमूल्य धरोहर है।

इस दिन को श्रुतपंचमी के नाम से मनाने के पीछे एक बहुत बड़ा इतिहास है। भगवान महावीर का निर्वाण ईस्वी के ५२७ वर्ष पूर्व हुआ था। वे स्वयं अनन्तज्ञान के धारी थे उन्हें केवल्य हो चुका था। भगवान् महावीर के पश्चात् गौतम गणधर को केवल्य हुआ। गौतम स्वामी के पश्चात सुधर्मी स्वामी को केवल्य हुआ । अतिछित्र धारा बहती रही ततपश्चात् ३८ वर्ष तक जम्बूस्वामी ने जो सर्वज्ञ तथा दिव्यज्ञानके स्वामी थे उनके स्थानों पर विहार करते हुऐ भारतीयों को अपने दिव्यज्ञान से संबंधित करते रहे (सन् ४६५ वर्ष पूर्व जब इनका निर्वाण हुआ तब तक महावीर के समान ही दिव्य ज्ञानकी अतिरल धारा बहती रही।

जम्बूस्वामी तक ज्ञान प्रत्यक्ष रूप में था। इसके पश्चात् किसी को केवल्य नही हुआ । वे श्रुत केवली कहलाने लगे। जम्बूस्वामी के पश्चात् पांच श्रुतकेवली हुए। (उन्होंने १०० वर्ष तक संपूर्ण श्रुतज्ञान की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित की भद्रबाहु स्वामी के स्वर्गारोहण के पश्चात् श्रुतज्ञान में कुछ कर्म आने लगी (द्वादशांग एवं १४ पूर्वो में से दस पूर्वो के ज्ञान से ही संतोषकरना पडा। फिर एक भी श्रुतकेवली नहीं हो सके। (आगे १८३ वर्षो तक

११ आचार्य हुए (जो बारह अंग एवं दस पूर्वो के ज्ञाता होते रहे। आचार्यो की स्मरण शक्ति क्षीण होने लगी। तीर्थंकरो की वाणी को धारण करने की क्षमता कम होने लगी।पर अंग में से भी ११ अंग के ही पाठी आचार्य होते रहे। इसी कड़ी के अंतिम आचार्य लोहाचार्य के स्वर्गारोहण पश्चात् १२ अंगो एव १४ पूर्वो का ज्ञान एकदम लुप्त हो गया और केवल बारहवें अंग के ही पाढी आचार्य बचा

आचार्य धरसेन तीव्र तपस्वी बारहवें अंगदृष्टिवाद के पाढी थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि उनके जीवन का अंतिम समय है, जो कुछ अग ज्ञान उनकी स्मृति में है उनकी रक्षा होती चाहिए यदि उन्होंने किसी योग्य शिष्य को तैयार नहीं किया जो अवशिष्ट अंग का ज्ञान भी सदा के लिए विलुप्त हो जावेगा।आचार्य धरसेन के आग्रह पर आचार्य पुष्पदंत और भूतबली को उनके पास गिरनार भेजा गया। आचार्य धरसेन को मुनिद्वय के व्यक्तिगत ने प्रथम दर्शन में ही प्रभावित कर दिया। लेकिन उन्होंने दोनो की स्मरणशक्ति बुद्धिकौशल एवं निर्भयता की परीक्षा लेने के लिए दोनो मुनियों को एक एक मंत्र साधना के लिए दिया जिसमें एकमंत्र में कुछ अक्षर कम एंव दूसरे में कुछ अधिक अक्षर थे। गुरूभेदो दिन के उपवास के पश्चात् उन मंत्रो को सिद्ध करने का आदेश दिया। दोनो मुनिमंत्र साधना करने लगे। जब मंत्र के प्रभावसे उनकी अधिष्ठात्री देवियाँ उपस्थित हुई तो एक देवी के दाँत बाहर थे और दूसरी कानी थी। देवता विकृतांग नही होते "इस प्रकार का निश्चय करे उन दोनो ने मंत्र संबधो व्याकरण शास्त्रके आधार पर उन मंत्रो का शोधन किया और मंत्रो का शुद्ध कर पुनः साधना में सलंग्न हुए। ये देवियाँ पुनः सुन्दर और सौम्यरूप में प्रस्तुत हुई। धरसेनाचार्य दोनो योग्य शिष्यों को पाकर बडे प्रसन्न हुए और उनको आगम ग्रंथो का अध्यापन प्रारम्भ कर दिया। उनको आषाढ शुक्ला १५ तक सभी सिद्धन्त ग्रंथो को पढा दिया जावे भी धीरे धीरे आगम ग्रंथो केपारंगत ज्ञात बन गये। उन्होंने अंकलेश्वर में चार्तुमास व्यतीत किया और वही दोनो नो षटखण्डागम की रचना करके अवशिष्ट आगमज्ञान लिपिबद्ध कर दिया और उनको नष्ट होने से बचा लिया। उसे दिन जयेष्ठ शुक्ला पंचमी का शुभ दिन था । इस प्रकार विगत १८०० वर्षो से ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को श्रुतपंचमी के आप में मनाया जा रहा है। षट्खण्डागम रचना के पश्चात् जैनाचार्यो ने जिस तीव्रगति से विविध विषयों पर ग्रंथो का निर्माण किया वह अपने आप में अनूठा उदाहरण है ।

श्रुतपंचमी एक प्रकार से हमारे लिए सत्साहित्य की दीपावली है।श्रुतपंचमी के दिन हमें एक ग्रंथ अवश्य खरीदना चाहिए ।

अक्षय तृतीया

वैशाख सुदी ३ को अक्षय तृतीया कहते है। अक्षय का अर्थ है क्षय नहीं होता। इस दिन श्रेंयास राजाने आदिब्रह्मा आदीनाथ भगवान (व्यवहार नयसे) श्राष्टि प्रतिपादन कर्ता को एक वर्ष पश्चात् इक्षु (गन्ना) रस का आहार दिया था । और वह अमर हो गया था। वैसे तो इस धार्मिक पर्व की कोई प्रथा नहीं पाई जाती है। यह दिन अत्यंत शुभ माना जाता है। इस दिन को आखातीज कहते है। लोग इस दिन विवाह एवम् नया मकान दुकान का मुहुर्त लेते है।

आज के ही दिन वर्षीतप की तपस्या का सपूर्ण हो कर पारणा होता है। जिसे श्वेताम्बर पंथ के अनुयायी अधिक करते है। इस व्रत में एक दिन उपवास और एक दिन एकासन करते हुए सपूर्ण वर्ष लगता है कमी चौदस अष्टमी की तीथी होने से दो उपवास भी आ जाते है। (फिर अक्षय तृतीया के दिन मुनि के सानिध्य में गन्ने के रस से पारणा कराया जाता है। इस तरह श्रावक भगवान आदिनाथ से प्रेरणा लेकर एक वर्ष की तपस्या करते है। और अक्षय तृतीया के दिन इसका पारणा होता है।

अन्नत व्रत -

धार्मिक पर्वो में सबसे अधिक महत्व अनंत व्रत को दिया है। यह पर्युषण पर्व में ग्यारस से चतुदर्शी चार दिन का होता है। यह १४ वर्ष तक किया जाता है। इस समय हूमड़ों के बालक युवक वृद्ध सभी सामूहिक रूप से इन चार दिनों में अपने सांसारिक कर्मो से निवृत होकर समूह रूप में मंदिरो के पास उपाश्रय या वाड़ी में परिग्रह का प्रमाण करके रहते है और प्रातः से रात तक सामायिक, अभिषेक, पूजा जप, आरती भजन प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं में व्यस्त रहते है। इन दिनों प्रारम्भ में सूत चांदियाँ सोने के तार पर चौदह गाँठ लगाकर प्रत्येक गांठ पर चौदह प्रकार के विविध धार्मिक नामों का रोज सामूहिक रूप से स्मरण करके प्रत्येक दिन १०८ विशेष जाप करते थे। नाट को अभिषेक में रखकर पूज्य को अपने घर लेजाकर पूजा के थाल पर रखते हैं। ये ४ दिन त्याग,नियम, परिग्रह परिणाम पूजा अभिषेक आदी के होते हैं । सामूहिक पूजा विशेष आनन्द का विषय बन जाती है।

सभी मंदिरो में चर्तुदशी को वार्षिक प्रतिक्रमण का बहुत महत्व है। सभी व्रतियों के लिए समाज की तरफ से शुद्ध सामूहिक भोजन का आयोजन का भी उल्लेख मिलता है। इसमें शोध (शुद्ध) भोजन गरम पानी आदी करते हैं। भट्टारकों के साहित्य में अनन्त चर्तुदशी के दिन विशेषकर राजस्थान में राजाओं को श्वेताम्बर समाज में सामूहिक व्रत ओरी आदी का रिवाज है। इन व्रतों मे सामूहिक भोजन की व्यवस्था समाज की तरफ से संपूर्ण भारत में प्रचलित है। विविध धार्मिक पर्वो, अष्टमी चर्तुदशी के व्रतों में उपाश्रय मे परिग्रह का प्रमाण कर नहीं रहने की आज भी प्रथा विशेषकर स्थानकवासी समाज में है।

१६वीं सदी में सुधारवादी के नाम से और प्रभाव से हमने उनके हमारी मूल धार्मिक संस्कृति को तिलांजली देकर उनमें धार्मिक संस्कार देने से कर दिया । सामूहिक पूजा सामायिक प्रतिक्रमण अभिषेक आदी भट्टारको के समय से शुरू हुआ था। हूमड़ों के प्राचीन ग्रंथ भंडारो में अनंत व्रत के विषय में भट्टारको द्वारा हस्त लिखित विशाल साहित्य संग्रह है। उसीका आधार लेकर निम्न लेख तैयार किया जा रहा है। यह व्रत समाज के स्त्री और पुरूषो बालक और वृद्धो मे धार्मिक संस्कार का बीज रोपण करने और उसे सींचन का काम करना है।

श्रावक और श्राविकाओ सारे वर्ष अपने गृहस्थ कार्य में और बालक बालिकामें (विद्यार्थी वर्ग) अपने अध्ययन खेल कूद में व्यस्त रहते है। उन्हें धर्म संस्कार, त्याग,तप, संयम, पूजा सामायिक का सिर्फ पुस्तकमें का ज्ञान नहीं । परन्तु प्रेक्टीकल ज्ञान का शिक्षण दिया जाता है। प्राचीन समय में हूमड़ में यह व्रत सामूहिक रूप से मन्दिरों के विशेष खण्डों अथवा उपाश्रय, धर्मशाला आदि जगहो मनाया जाता था। पर्युषण पर्व की १० की रात्रि में पच्चकाण (नियम) समूह रूप में किया जाता है। यह व्रत उंत्तम, मध्यम, जघन्य तीन प्रकार से एक वर्ष के नियम अभ्यास हेतु या १४ वर्ष के नियम से किया जाता है। (एक वर्ष के नियम में)

उत्तम- ११ से १४ तक ४ उपवास

मध्यम- ११. उपवास, बारस, तेरस ऐकासन और १४ को उपवास (इसमें शुध्ध भोजन ही करना होता है।

जघन्य- - ११,१२,१३ ऐकासन १४ को उपवास प्रच्चकाण- के साथ निम्न नियम परिग्रह प्रमाण के लिये ४ दिन के लिये करना होता है।

आवश्यक नियम-

१. चार दिन ब्रह्मचर्य व्रत

२. व्यापार, सांसारिक कार्यो से निवृत

३. चटाई या एक चादर आदि पर सोना।

४. शुद्ध भोजन।

५. दो वक्त सामायिक, रोज अभिषेक, अनंत पूजा, अनंत के जाप आदि।

पूर्णिमा को प्रातः- अभिषेक पूजा करके साथ में बनाई विधि से अनंत को धारण किया जाता है। अनंत एक ऐसा व्रत है जिसमें मंत्र,तंत्र और यंत्र तीनो प्रकार के विधि विधान का समावेश होता है और श्रावक की सभी मुख्य क्रियाओ जैसा कि सामायिक, प्रतिक्रमण, पूजा, अभिषेक, जाप, भक्ति, परिग्रह परिणाम आदि का समावेश होता है। राजस्थान के अनेक इतिहासो में इसका उल्लेख है। यह सामूहिक रूप से मनाया जाता था। और चर्तुदशी को सामूहिक वार्षिक प्रतिक्रमण की प्रथा थी। उसी रोज राजा या राज्य के मुख्य पदाधिकारी को आमंत्रित करके भट्टारक उसके हाथ में रेशमी अनंत बांधते थे। इस प्रकार धार्मिक प्रभावना करते थे इसका उदाहरण -

अनन्त व्रत विधि

ॐ जय जय जय स्वामिन् नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरीयाणं। णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहणं ॥१॥

चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहूमंगलं केवलिपण्णत्तोधम्मोमंगलं। चत्तारि लोगोत्तमा अरहंतलोगोत्तमा

सिद्धलोगोत्तमा साहू लोगोत्तमा केवलिपण्णत्तोधम्मो लोगोत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं

पव्वज्जामि साहूसरणं पव्वजामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि। ॐ नमोऽर्हते भगवते स्वाहा।

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा। ध्यायेत् पंचनमस्कांर सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्था गतोऽपि वा। यःस्मेरत्परमात्मानं सः वाह्याभ्यंतरे शुचिः॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा मम सर्वांगशुद्धिं करोमि स्वाहा।

(इस मंत्रको पढ़कर जलमें अपने शरीर पर सिंचन कर शरीरकी शुद्धि करनी चाहिये)सर्वांगशोधने।

देवेन्द्रवंद्यमभिवंद्य विशोध्य हस्तावीर्यापथस्य परिशुद्धिविधिं विधाय।

सद्वज्रपंजरगत कृतसिद्धभक्त्या, देवं समर्च्य सकलीकरणं करोमि ॥१॥

"इच्छामि भंते इरयावहियस्स विराहणाये" इस पाठको पढ़कर नववार कायोत्सर्ग धारण करे। होसके तो "सकलीकरण" विधिपूर्वक करना चाहिये। यदि सकलीकरण नहीं आता हो तो नीचे लिखी विधिसे सर्वांग शुद्धि करे।

ॐ ह्रीं असुजरसुजर भव भव हस्तशुद्धिं करोमि स्वाहा।

(इस मंत्रको पढकर शुद्ध जलसे अपने हाथ धोना चाहिये) हस्तप्रक्षालनं ।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौ ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते समस्त गंगासिंधुं आदि नदीनदतीर्थजलं भवतु स्वाहा ।

(इस मन्त्रको पढकर एक कलशमें पूर्ण जल भरकर केशर आदि द्रव्य डालकर जलकी शुद्धि करे)

ॐ अमृतं अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्त्रावय स्त्रात्रय सं सं ल्कीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय हं झं झ्वीं क्ष्वीं हं सं : स्वाहा । (इत्यमृत स्नानं)

(इस मंत्रको पढ़कर प्राशुक किये हुए और मंत्रसे पवित्र किये हुए जलसे अपना सिचन करे। भावार्थ यद्यपि प्रथम स्नान किया हुआ है तो भी मंत्रसे पुनःस्नान करे)

अद्य भवत्सफलता नयनद्वयस्य, देव त्वदीयचरणांम्बुजवीक्षचणेन ।

अद्य त्रिलोकतिलकप्रतिभासते मे, संसारवारिधिरियं चुलकप्रमाणम् ।।१।।

अद्य मे क्षालित गात्रं नेत्र च विमलीकृते। स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ।।२।।

एसो पंचणमोयारो सव्वपापपणासणो । मंगलाणं च सव्वेसि पढमं होइ मंगलं ।।३।।

(उक्त तीनों श्लोकोंको पढ़कर णमो अरहंताणं, यहां से लेकर "केवलिपण्णत्तोधम्मो सरणं पवव्जामि" पर्यन्त पाठको तीन बार पढ़कर तीन वार श्रीजिनेन्ददेवको नमस्कार करना चाहिये ।)

पडिक्कमामि भेत्ते इरियावहियाए विराहणाए अणागुत्ते आई गमणे णिग्गमणे ठाणेगमणे चंक्कमणे पाणुग्गमण वीज्जुग्गमणे हरिदुग्गमणे उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणाए। वियडिपइठावणियाए जे जीवा एइंदिया वा वीइंदिया वा तीइंदिया वा चउइंदिया वा पंचेदिया वा पण्णोलिदा वा किव्रिदा वा संघट्टिदा वा संघादिदा वा ओद्धाविदा वा परिधाविदा वा किरिछिदा वा लेस्सिदा वा छिंदिंदा वा भिंदिदा वा ठाणदो वा ठाणचंक्कमणंदो वा तस्स उत्तरगुण तस्स पार्याछित्तकरणं तस्स विस्सोहिकरणं णमोकारं करोमि तावकांम दुच्चरियं वोस्सरामि ।।

णमो अरहंताण णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं । णमो उवज्झायाणं णमो लोएसव्वसाहूणं।।

ॐ नमः परमात्मने नमोऽनेकान्ताय शान्तये।

ईर्यापथे प्रचलताद्य मया प्रमादात्, ऐकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायवाधाः।

निर्वर्तिता यदि भवेदयुगांतरीक्षा, मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरूभक्तितो मे।।

इच्छामि भंत्ते इरियावहियाए आलोचेउं पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिमचउदिसु विदिसासु विहरमाणेण जुगुत्तर दिठ्ठिणादठ्ठव्वा उवउवचारियाए पमाददोसेण पाणभूदजीवसंताणं एदेसिं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरतो वा समणु मणिय तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

पापिष्टेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना।
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।।
त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्रः भवतः श्रीपादमूलेऽधुना ।
निंदा पूर्वमहं जहामि सततं निर्वृत्तये कर्मणाम् ।।१।।

(इति लघु ईर्यापथभक्ति :)

अतिनिर्मलमुक्ताफलललितं यज्ञोपवीतमितपृतं। रत्नत्रयमिति मत्वा करोमि कलुपापहरणमाभरणम् ।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय नमः स्वाहा। इस मंत्रको पढकर जनेऊ पहरना चाहिये ।
रत्नत्रयांगमुपवीतमुरस्यथांगे, देशव्रतस्य वसुकंकणमत्र हस्ते ।
महाव्रतांगमधुना स्वकटौ च मौजी, धृत्वाऽरभे जिनमखं मम दीक्षितोऽर्हन् ।।१।।
दीक्ष्यधिन्होद्वहनाय कंकणबन्धनं (यह श्लोक पढकर अपने शरीरमें कंकण कंदोरा और मुद्रिकादि धारण करना चाहिये ।

अणुव्रतं पंच गुणव्रतं त्रयं शिक्षाव्रतं चेति चतुर्विधं मतम्। गुरूपदिष्टं विमलं सदाहं घ्ढ दधे पंचगुरून् प्रणम्य ।।

अणुव्रतपंचकं गुणव्रतत्रयं शिक्षाव्रतचतुष्टयं अर्हत्सिद्धाचार्योध्यायसर्वसाधून् साक्षीकृत्य सम्यक्त्वपूवक घ्ढव्रतं समारूढ म भवतु मे भवतु स्वाहा ।

यह पढकर व्रत धारण करना चाहिये । जो शक्ति न हो तो कुछ न कुछ स्वल्प नियम लेकर व्रतोंकी भावना वार वार चिंतवन करना चाहिये ।

"ॐ ह्रीं नमः सर्वदापविनिर्मुक्तेभ्यः स्वाहा " यह मंत्र पढकर गुरूको नमस्कार करना चाहिये फिर गुरूकी आज्ञाको स्वीकार कर शांति भक्तिका पाट करना चाहिये ।

ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं श्रावय अंई झं झ्वीं क्ष्वीं हं सं स्वाहा।ॐ असिआउसा नमः। इदमनतद्वारग्रंथिजलेन समस्तदोपपरिहारार्यं कुरूर स्वाहा । (यह मंत्र पढकर अपने अनंतको पवित्र जलसे धोना चाहिये।)

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अंहे नमोऽर्हते भगवते त्रैलोक्यनाथाय सर्वनृसुरासुरपूजिनाय अनन्तदर्शनाय अनन्तवीर्याय अनंतमुखाय अनन्तज्ञानाय अनन्ततीर्थंकराय नमः स्वाहा ।

(इस मंत्रको पढकर दूधसे अनन्तको प्रक्षालन करना चाहिये।)

अनंत व्रत के जाप्य

(एकादशी के जाप्य)

ॐ ह्रीं अर्हं हंसः अनंत केवलिने नमः।।

(द्वादशी के जाप्य)

ॐ ह्री क्षीं ह्री ह्रौं हं सं अमृत वाहने नमः ।।

(त्रयोदशी के जाप्य)

ॐ ह्रीं अनंत तीर्थ कराय ह्रीं ह्रीं हू ह्रौ ह्रः असि आउसा सर्वशांति कुरू र स्वाहा।

(चतुर्दशी के जाप्य)

ॐ ह्रीं अर्हं हंसः अनंत केवली भगवान अनंत दान लाभ भोगोपयोग वीर्याभिवृद्धिं कुरू २ स्वाहा ।।

(अनन्त मोचन मन्त्र)

ॐ ह्रीं श्रीं अहं सर्व कर्म विमुक्ताय अनन्त सुख प्रदीप अनन्त तीर्थंकराय नमः पूर्वानुवन्धित सूत्र मोचनं करोभीति स्वाहा।।

ऊपर के मन्त्र को पढ़कर पहले का बन्धा हुआ अनन्त सूत्र छोड़ना चाहिये।

(अनन्त बन्धन मन्त्र)

ॐ ह्री अर्हं हं स : अनन्त तीर्थकराय सर्व शांति कुरू २ सूत्र बन्धनं करोमीति स्वाहा।

ऊपर के मन्त्र को पढ़कर नवीन अनन्त बांवना चाहिये ।

(अनन्त बनाने की विधि)

अनन्त सोना, चांदी अथवा सूत्र की बनानी चाहिये जिसमें १४ गांठे नीचे लिखे अनुसार १९३ गुणों का चिन्तवन करते हुये लगानी चाहिये प्रत्येक गांठ पर क्रम से चौदह २ गुणों का चिन्तवन करे।

१४	तीर्थंकर	१	१४	जीव रक्षा	८
१४	प्रतिकरण	२	१४	नदी	९
१४	कुलंकर	३	१४	भव्य जीव राशी	१०
१४	अतिशय	४	१४	रत्न	११
१४	पूर्व	५	१४	स्वर	१२
१४	गुणस्थान	६	१४	तिथि	१३
१४	मार्गण	७	१४	अन्तराय निवारण	१४

इस प्रकार १९६ गुणों का चिन्तवन कर १४ गांठवाली अनंत बना पश्चात् अनंत व्रत का मांडना मांडकर की अनंतनाथ तीर्थंकर की प्रतिमाजी विराजमानकरे एवं नवीन अनंत को भी कलश में रखकर कलश को भगवान के समक्ष मांडने पर विराजमान करे। पश्चात् श्री अनंतनाथ भगवान की अभिषेक कर पूजन करें। पूर्णाहुति के बाद अनंत व्रत की कथा पढ़कर प्राचीन मंत्र द्वारा पूर्व की अनंत छोड़कर बन्धन मंत्र पढ़ते हुवे नवीन अनंत दाहिनी भुजापर धारण करे ।

लेखक परिचय

नाम : श्री बसन्तीलाल जैन जन्मस्थान : :ऋषभदेव (उदयपुर) राजस्थान

पिता : श्री जोधराजजी जैन जन्म दिनांक : २२ जुलाई १९३६

माता : श्रीमती कुरीदेवी जैन बुधवार : प्रातः ७.०० बजे

भार्या : श्रीमती सागरदेवी जैन

योग्यताः (भूगोल,हिन्दी) बी. ऐड, विशारद दैवज्ञ भूषण R.E.S. राजस्थान शिक्षा सेवा अधिकारी (सेवानिवृत्त) (ज्योतिषचार्य)

व्यवसाय : १. राज्यसेवामें प्रधानचार्य,सीनियर सेकेन्डरी स्कूल सेमारी जि. उदयपुर (राजस्थान) से सितम्बर १९९४ से सेवानिवृत्त

२. जैन कर्मकाण्ड विधान एवं प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्य

३. ज्योतिषाचार्य एवं ज्योतिष सम्बन्धी सभी कार्य

शिक्षा : भट्टारक यशकीर्ति दि. जैन बोर्डिंग प्रतापगढ़ में जैन विधि विधानका ज्ञान प्राप्त किया. शिक्षा ऋषभदेव, प्रतापगढ़, अहमदाबाद में प्राप्त की।

दि. जैन समाज ऋषभदेव में पू. धर्ममन्त्री दि. जैन पेठी में वरिष्ठ उपाध्यक्ष महावीर नगर चैत्य निर्माण समिति का महामन्त्री, जैन विद्यालय कार्यकारिणी का सदस्य, जवास दि. जैन मंदिर जीर्णोद्धार समिति के उपाध्यक्ष है तथा मुनि भक्त विद्वान एवं दानी तथा लब्ध प्रतिष्ठित ज्योतिषाचार्य एवं ज्योतिष के विद्वान हैं।

पता : श्री अभिनन्दन ज्योतिष सदन महावीर नगर ऋषभदेव जिला उदयपुर (राजस्थान)

पीन : ३१३८०२ दूरभाष : ३०२८३ एस.टी.डी. ०२९०७.

सम्पर्क : श्री सुनीलकुमार बी. जैन

श्री विनायक प्रोविजन स्टोर, पुलिस स्टेशन के पास,बापू बाजार, ऋषभदेव : ३१३८०२

श्री ऋषभदेवाय नमः श्री महावीराय नमः

भारतीय ज्योतिष एवं पंचाग :

श्री आदिनाथ प्रमुखा जिनेशाः श्री पुण्डरीक प्रमुखा गणेशा :।
सूर्यादि खेट क्षेयुताश्चभावाः जिनाय सन्तु प्रकट प्रभावा ॥
श्रीमान स्मानवतु भगवान्पार्श्वनाथ : प्रिय वा,
श्रेयो लक्ष्मया क्षितिपति गणैः सादरं स्तूयमान :।
भर्तुयस्य स्मरण करणात्तेऽपि सर्वे विवखन्
मुख्या : खेटा ददतु, कुशलं, सर्वदा देह भाजाम् ॥

मानव कार्यारम्भ के साथ ही सफलता की आकांक्षा करता है इस निमित्त कालमान के सन्दर्भ में अनुकूल व श्रेष्ठतम समय का चयन करने का प्रयास करता है इस काल शुद्धि अर्थात मुहुंर्त हेतु ज्योतिष शास्त्र का सहारा लिया जाता है। मुहुंर्त हेतु पंचाग की आवश्यकता रहती है। "तिथि , वार, नक्षत्र योग करण इति पंचागम्" पंचाग अर्थात पाँचअंग ज्योतिष का मूलाधार है।

तिथि : सूर्य एवं चन्द्रमा के भ्रमण में १२ अंशों का अन्तर मध्यम मान से होता है इसे एक तिथि कहा जाता है, अमावस्था की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक शुक्ल पक्ष, तथा पूर्णिमा की पतिपदा से अमावस्या तक कृष्ण पक्ष कहा जाता है कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष मिलाकर माह(मास)संज्ञक होते है।

नन्दादि संज्ञा तिथि चक्रम्

नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा	तिथिसंज्ञा	विशेष
१,६,११	२,७,१२	३,८,१३	४,९,१४	५,१०,१५ अमावस्या	तिथि	अमावस्या नेष्ट मानी जाती है।
अशुभ	मध्यम	शुभ	अशुभ	मध्यम	फल	-
शुक्रवार	बुधवार	मंगलवार	शनिवार	बृहस्पतिवार	सिद्धियोग	-

वार : सूर्योदय से दूसरे दिन के सूर्योदय तक की कालावधि को वार कहते है प्रत्येक दिन का नामकरण उस दिन की प्रथम होरा के ग्रह स्वामी के नाम पर किया जाता है। वार सात होते हैं।

वार संज्ञाये :-

संज्ञा	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
संज्ञक	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	सौम्य	सौम्य	क्रूर
स्वभाव	स्थिर	चर	उग्र	सम	लघु	मृदु	तीक्ष्ण
	उग्र	शुभ	उग्र	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ

वार तथा होरा मुर्हुत : सर्व कार्य सिद्धि के लिये होरा मुहुंर्त पूर्ण फल दायक एवं श्रेष्ठ है। एक दिन में २४ होराएं होती हैं अर्थात् सूर्योदय से सूर्योदय तक २४ घण्टे प्रति घण्टे के लिए पृथक होरा होती है किसी भी वार का प्रथम होरा, वारेश (उसी वार) से प्रारम्भ होता है चोधडिया के बजाय होरा मुहुंर्त श्रेष्ठ माना जाता है कहा गया है।

सर्व कार्य सिद्धि के लिये होरा मुहुर्त

कालहोरेति विख्यातं सौम्ये सौम्यफलप्रदा। सूर्य शुक्र बुधाश्चन्द्रो मन्दजीवकुजाः क्रमात् ॥
यो वारो यत्र दिवसे तदाहि गणयेत्क्रमात् । शुभग्रहस्य सुखवो मुहुंर्तनिष्टदुःखदः ॥
गुरुविवाहे गमते च शुक्रो बुधे सौम्य सर्व कार्येषु चन्द्रः। कुज युद्ध राजसेवा रवौच मंदेवित्त चेति होरा क्रमाद्वे ॥ यस्य ग्रहस्य वारेषु कर्म किंचित्प्रकीर्तितम् । तस्य ग्रहस्यं होरायां सर्व कर्म विधीयते॥

होरा सारिगी

वार	हो. १	हो. २	हो. ३	हो. ४	हो. ५	हो. ६	हो. ७	हो. ८	हो. ९	हो. १०	हो. ११	हो. १२	हो. १३	हो. १४	हो. १५	हो. १६	हो. १७	हो. १८	हो. १९	हो. २०	हो. २१	हो. २२	हो. २३	हो. २४
र.	र.	शु.	बु.	सो.	श.	गु.	गं.	र.	शु.	बु.	सो	श.	गु.	मं.	र.	शु.	बु.	सो.	श	गु.	मं.	र.	शु.	बु.
सो.	सो	श.	गु.	गं.	र.	शु.	बु.	सो	श.	गु.	मं.	र.	शु.	बु.	सो.	श.	गु.	गं.	र.	शु.	बु.	सो	श.	गु.
मं.	मं.	र.	शु.	बु.	सो.	श.	गु.	सं.	र.	शु.	बु.	श.	गु.	मं.	र.	शु.	बु.	सो	श.	गु.	मं	रं.	शु.	
बु.	बु.	सो	श.	गु.	मं.	र.	शु.	बु.	सो.	श.	गु.	स.	र.	शु.	बु.	सो.	श.	गु.	स.	र.	शु.	बु.	सो.	श.
गु.	गु.	मं.	र.	गु.	सं	र.	शु.	बु.	सो.	श.	गु.	सं	र.	शु.	बु.	सो	श.	गु.	मं	रं	शु.	बु.	मं.	सो.
शु.	शु.	बु.	सो.	श.	गु.	मं.	र.	शु.	बु.	सो.	श.	गु.	सं.	रं.	शु.	बु.	सो	श.	गु.	मं.	र.	शु.	बु.	सो
श.	श.	गु.	सं.	र.	शु.	बु.	सो.	श.	गु.	मं.	र.	शु.	बु.	सो.	रा	गु.	मं.	रं.	शु.	बु.	सो	श.	गु.	म.

होरा सारिणी

नियम १. किसी भी वार का प्रथम होरा वारेश (उसी वार) से प्रारम्भ होता है।

२. तत्पश्चात् क्रमशः होरा ज्ञानार्थ उक्त प्रथम होरा (वारेस) के विपरीत क्रम से वारों का एक एक के अन्तर से गिनें। जैसे, बुधवार को प्रथम होरा बुध का, तत्पश्चात् विपरीत क्रम से मंगल को छोड़कर सोम (चन्द्र का होरा होगा एवं रवि को छोड़ कर शनि का होरा होगा। इसी क्रम से आगे शेष २१ होरा उस दिन व्यतीत होगें।

विशेष : प्रत्येक व्यक्ति को अपनी राशि के स्वामी ग्रह के शत्रु ग्रहों की होरा को यात्रा,विवाद,युद्धादि में यत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए। जैसे मान लीजिये, देवदत्तजी की जन्म राशि का स्वामी गुरू हैं और गुरू के शत्रु ग्रह बुध और शुक्र है। अतः देवदत्तजी को बुध और शुक्र के नैसर्गिक शुभ ग्रह होने के नाते भी उनकी होराओं में उक्त कार्य नही करने चाहिये, अन्यथा परिणाम में शुभ के बजाय अशुभ फल होगा। इसी प्रकार गुरू के मित्र शुभग्रह चन्द्र है। अतःइनकी होरा में ही यत्नपूर्वक उक्त कार्य करना होगा।

नक्षत्र : समस्त आकाश मण्डलमें विद्यमान अगण्य तारिकाओंके समूह को नक्षत्र कहा जाता है। आकाशमण्डल को ज्योतिष शास्त्र में २७ भागो में विभक्त कर प्रत्येक भाग को एक नक्षत्र का नाम दिया है और सूक्ष्मता के लिये प्रत्येक नक्षत्र को चार चरणों (भागो) में विभक्त किया गया है जिसे चरण कहते है।

२७ नक्षत्रों के नाम

१. अश्विनी	२. भरणी	३. कृतिका	४. रोहिणी
५. मृगशिरा	६. आर्द्रा	७. पुर्नवसु	८. पुष्य
९. आश्लेषा	१०. मघा	११. पूर्वाफाल्गुनी	१२. उत्तराफाल्गुनी
१३. हस्त	१४. चित्रा	१५. स्वाति	१६. विशाखा
१७. अनुराधा	१८. ज्येष्ठा	१९. मूल	२० पूर्वाषाढा
२१. उत्तराषाढा	२२. श्रवण	२३. धनिष्ठा	२४. शतभिषा
२५. पूर्वाभाद्रपद	२६. उत्तराभाद्रपद	२७. रेवती	

अभिजित को २८वाँ नक्षत्र माना गया है उत्तराषाढ़ा की अन्तिम १५ घटियाँ या चतुर्थचरण एवं श्रवण नक्षत्र के प्रारम्भ की ४ घटियाँ, कुल १९ घटियों के मानवाला अभिजित नक्षत्र समस्त कार्यो में शुभ माना जाता है। पुष्य नक्षत्र पाणिग्रहण संस्कार को छोड़ अन्य सभी कार्यो में श्रेष्ठ माना गया है, तथा सूर्य महानक्षत्र से दिन के नक्षत्र तक की गिनती ४,६,९,१० १३,२० संख्या पर आवे तो वह रवियोग माना जाता है जो दोषों के समूह को नष्ट करनेवाला होता है। धनिष्ठा,शतभिषा,पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद एवं रेवती नक्षत्र पंचक कहलाते है जो नेष्ट माने गए हैं।

अश्विनी, आश्लेषा मघा, ज्येष्ठा मूल और रेवती ये ६ नक्षत्र गण्डमूल संज्ञक है, इनमें ज्येष्ठा और मूल गण्डान्त मूल संज्ञक, तथा आश्लेषा सर्प मूल संज्ञक है इन नक्षत्रों में उत्पन्न जातक की २७ दिन के लगभग जब वही मूल संज्ञक नक्षत्र आता है तब शान्ति कराई जानी चाहिए।

योग : सूर्य एवं चन्द्रमा के मध्य १३ अंश व २० कला का अन्तर होने पर क्रमशः नैसर्गिक योग बनते है विष्कुम्भादि २७ योग होते हैं। योगो के नाम ये है।

नैसर्गिक स्थायी योग

१. विष्कुम्भ	२. प्रीति	३. आयुष्यमान	४. सौभाग्य
५. शोभन	६. अतिगण्ड	७. सुकर्मा	८. धृति
९. शूल	१०. गण्ड	११.वृद्धि	१२. ध्रुव
१३. व्याघात	१४. हर्षण	१५.वज्र	१६. सिद्धि
१७. व्यतिपात	१८. वरियाण	१९.परिघ	२०. शिव
२१. सिद्ध	२२. साध्य	२३.शुभ	२४. शुक्ल
२५. ब्रह्म	२६. ऐन्द्र	२७.वैधृति	

इनमें व्यतिपात, वैघृति, अतिगंड, विष्कुम्भ, शूल, गण्ड,व्याघात, वज्र, परिघ ऐन्द्र तथा वैधृति योग अशुभ तथा निन्द्य माने जाते हैं।

तात्कालिक योग : वार तथा नक्षत्र में संयोग से आनन्दादि २८ योग बनते हैं। सुगमता से ये योग और इनका फल जानने के लिए योग चक्र दिया जा रहा है। उसमें योग,वार,नक्षत्र तथा फल का वर्णन दिया गया है। आनन्तादि योग का चार्ट में संलग्न हैं।

तात्कालिक आनन्दायि योग

योग	र	चं	मं.	बु.	गु	शु	श	फल
आनंद	अ	मृ	आ	ह	अ	उ	श	सिद्धि
कालदंड	भ	आ	म	चि	ज्ये	अ	पूक	मृत्यु
धूम्र	कृ	पु	पू	खा	मू	श्र	उक	असुख
प्रजापति	रो	पु	उ	वि	पू	घ	रे	सौभा
सौम्य	मृ	आ	ह	अ	उ	श	अ	महासो
ध्वांक्ष	आ	म	चि	ज्ये	अ	पू	भ	धनक्षय
ध्वज	पु	पू	स्व	मु	श्र	उ	कृ	सौख्य
श्रीवात्स	पु	उ	वि	पू	ध	रे	रो	सुख
वज्र	आ	ह	अ	उ	श	अ	मृ	क्षय
मुद्गर	म	चि	ज्ये	अ	पू	भ	आ	श्रीना०
छत्र	पू	स्वा	मू	श्र	उ	कृ	पु	राजस
मंत्र	उ	वि	पू	ध	रे	रो	पु	पुष्टि
मानास	ह	अ	उ	स	अ	मृ	आ	सौभाग्य
पद्म	चि	ज्ये	अ	पू	भ	आ	म	धनला०
लुम्बक	स्वा	मू	श्र	उ	कृ	पु	पूक	धननाश
उत्पात	वि	पू	ध	रे	रो	पु	उक	प्राण
मृत्यु	अ	उ	श	अ	मृ	आ	ह	मृत्यु
काण	ज्ये	अ	पू	भ	आ	म	चि	कलेश
सिद्धि	मू	श्री	उ	कु	पु	पू	स्वा	कार्यसि
शुभ	पू	ध	रे	रो	पू	उ	वि	कल्याण
अमृत	उ	श	अ	मृ	आ	ह	अ	राज
मुसल	अ	पू.	भ	आ	म	चि	ज्ये	धननाश
गदा	श्र	उ	कृ	पु	पू	स्वा	मू	क्षय
मातंग	ध	रे	रो	पु	उ	वि	पू.	कुलवृ०
राक्षस	श	अ	मृ	आ	ह	अ	उ	महा कष्ट
चर	पू	भ	आ	म	चि	ज्ये	अ	कार्यसि०
स्थिर	उ	कृ	पु	पू	स्वा	मू	श्र	महारभ
वर्धमान	रे	रो	पु	उ	वि	पू	ध	लग्न

करण : तिथि के भोग काल के आधे भाग अर्थात तिथ्याद्धे को करण कहते हैं। एक तिथि में दो करण होते है। कुल ११ करणो में से ७ करण चर संज्ञक होते है। १. बब २.बालव ३.कौलव ४. तैतिल ५. गर ६. वणिज ७. विष्टी (भद्रा) चर संज्ञक हैं।

स्थिर करण : १ शुकनि २. चतुष्पाद ३ नाग ४ किस्तुंध्न है। करण बोधक चक्र संलग्न हैं।

करणबोधक चक्र

उत्तरार्ध	पूर्वार्ध	तिथि कृष्ण	उत्तरार्ध	पूर्वार्ध	तिथि शुक्ल
कौलव	बालव	१	बव	किंस्तुघ्न	१
गर	तैतिल	२	कौलव	बालव	२
विष्टि	वाणिज	३	गर	तैतिल	३
बालव	बव	४	विष्टि	वणिज	४
तैतिल	कौलव	५	बालव	बव	५
वणिज	गर	६	तैतिल	कौलव	६
बव	विष्टि	७	वणिज	गर	७
कौलव	बालव	८	बव	विष्टि	८
गर	तैतिल	९	कौलव	बालव	९
विष्टि	वणिज	१०	गर	तैतिल	१०
बालव	बव	११	विष्टि	वणिज	११
तैतिल	कौलव	१२	बालव	बव	१२
वणिज	गर	१३	तैतिल	कौलव	१३
शकुनि	विष्टि	१४	वणिज	गर	१४
नाग	चतुष्पाद	१५	बव	विष्टि	१५

मास : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से चैत्र कृष्णा अमावस्या तक संवत्सर अर्थात वर्ष माना जाता है वर्ष में १२ मास होते हैं।

१. चैत्र २. वैशाख ३. ज्येष्ठ ४. आषाढ़ ५. श्रावण ६. भाद्रपद ७. आश्विन ८. कार्तिक ९. मार्गशीर्ष १०. पौष ११. माघ १२. फाल्गुन

प्रत्येक मास में दो पक्ष शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष होते हैं।

राशि : आकाश मंडल का सम्पूर्ण भचक्र विभाजित किया जाता है। ३६० अंशो में १०८ भाग या नक्षत्र चरणमें २७ नक्षत्रों में १२ राशियो में इसप्रकार सवा दो नक्षत्रों या ९ चरणों तथा ३० अंशो के एक भाग को राशिको संज्ञा दी गई हैं। राशियों १२ हैं। यहाँ राशि एवं उसके स्वामी ग्रह का नाम दिया जा रहा है।

१. मेष- मंगल २. वृषभ - शुक्र ३. मिथुन - बुध ४. कर्क - चन्द्र
५. सिंह - सूर्य ६. कन्या- बुध ७. तुला - शुक्र ८. वृश्चिक मंगल
९. धनु - गुरू १०. मकर- शनि ११. कुंभ - शनि १२. मीन - गुरु

अवहडा चक्र (नक्षत्र, राशि,स्वामी,वर्ण,वश्म,नाडी,योनि, गणबोधक चक्र)

नक्षत्र नाडी योनी गण	अश्विनी आद्या नाडी अश्व योनी देवगण	भरणी मध्या नाडी गज योनी मनुष्य गण	कृत्तिका अन्त्या नाडी मेष योनी राक्षस गण	रोहिणी अन्त्या नाडी सर्प योनी मनुष्य गण	मृगशिर मध्या नाडी सर्प योनी देवगण	आर्द्रा आद्या नाडी श्वान नाडी मनुष्य गण	पुनर्वसु आद्या नाडी मार्जार योनी देवगण	पुष्य मध्या नाडी मेष योनी देवगण	अश्लेषा अन्त्या नाडी मार्जार योनी राक्षस गण

नक्षत्र चरण	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४
राशि चरण	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९
नामाक्षर	चू	ये	चो	ला	ली	लु	ले	लो	अ	इ	उ	ए	ओ	वा	वी	वू	वे	वो	क	की	कू	घ	ङ	छ	के	को	हा	ही	हू	हे	ही	डा	डी	डू	डे	डो

राशि राश्याधिपति वर्ण वश्य	मेष मंगल क्षत्रिय वर्ण चतुष्पाद	वृष शुक्र वैश्य वर्ण चतुष्पाद	मिथुन बुध शूद्र वर्ण मानव	कर्क चन्द्र विप्र वर्ण . जलचर

नक्षत्र नाडी योनी गण	मघा अन्त्या नाडी मूषक योनी राक्षस गण	पूर्वा फाल्गुनी मध्या नाडी मूषक योनी मनुष्य गण	उत्तरा फाल्गुनी आद्या नाडी गो योनी मनुष्य गण	हस्त आद्या नाडी महिष योनी देव गण	चित्रा मध्या नाडी व्याघ्र योनी राक्षस गण	स्वाति अन्त्या नाडी महिष योनी देव गण	विशाखा अन्त्या नाडी व्याघ्र योनी राक्षस गण	अनुराधा मध्या नाडी मृग योनी देव गण	ज्येष्ठा आद्या नाडी मृग योनी राक्षस गण

नक्षत्र चरण	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४
राशि चरण	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९
नामाक्षर	मा	मी	मू	मे	मो	टा	टी	टू	टे	टो	पा	पी	पू	ष	ण	ठ	पे	पो	रा	री	रू	रे	ता	ती	तू	ते	तो	न	ना	नी	नू	ने	नो	या	यी	यू

राशि राश्याधिपति वर्ण वश्य	सिंह सूर्य क्षत्रिय वर्ण जलचर	कन्या बुध वैश्य वर्ण मानव	तुला शुक्र शूद वर्ण मानव	वृश्चिक मंगल विप्र वर्ण कीटक

नक्षत्र नाडी योनी गण	मूल आद्या नाडी श्वान योनी राक्षस गण	पूर्वाषाढा मध्या नाडी वानर योनी मनुष्य गण	उत्तराषाढा अन्त्या नाडी नकुल योनी मनुष्य गण	श्रवण अन्त्या नाडी वानर योनी देव गण	धनिष्ठा मध्या नाडी सिंह योनी राक्षस गण	शततारका आद्या नाडी अश्व योनी राक्षस गण	पूर्वाभाद्रपदा आद्या नाडी सिंह योनी मनुष्य गण	उत्तराभाद्रपदा मध्या नाडी गो योनी मनुष्य गण	रेवती अन्त्या नाडी गज योनी देव गण

नक्षत्र चरण	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४
राशि चरण	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९
नामाक्षर	ये	यो	भा	भी	भू	धा	फा	ढा	भे	भो	जा	जी	खी	खू	खे	खो	गा	गी	गू	गे	गो	सा	सी	सू	से	सो	दा	दी	दू	थ	झ	ञ	दे	दो	चा	ची

राशि राश्याधिपति वर्ण वश्य	धनुः गुरू क्षत्रिय वर्ण मानव	मकर शनि वैश्य वर्ण जलचर	कुम्भ शनि शूद्र वर्ण मानव	मीन गुरू विप्र वर्ण जलचर

घाततिथिघातिवारः घातनक्षत्रेष च ।
यात्रायां वर्जयेत्प्राज्ञैरन्यकर्मसु शोभनम् ॥

विवाह च उपनयनादि में यह घात चक्र वर्ज्य नहीं है यह घातचक्र द्यूत,प्रवास,राजदर्शन और यात्रामें वर्ज्य करें।

घात चक्र

राशि	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुम्भ	मीन
घात मास	कार्तिक	मार्गशीर्ष	आषाढ़	पौष	ज्येष्ठ	भाद्रपद	माध	आश्विन	श्रावण	वैशाख	चैत्र	फाल्गुन
घात तिथि	१.६.११	५.१०.११	२.७.१२	२.७.१२	३.८.१३	५.१०.१५	४.९.१४	१.६.११	३.८.१३	४.९.१४	३.८.१३	५.१०.१५
घातवार	रविवार	शनिवार	सोमवार	बुधवार	शनिवार	शनिवार	शुक्रवार	शुक्रवार	शुक्रवार	मंगलवार	गुरुवार	शुक्रवार
घात नक्षत्र	मधा	हस्त	स्वाति	अनुराधा	मूल	श्रवण	शततारका	रेवती	भरणी	रोहिणी	आर्द्रा	आंश्लेषा
घात योग	विष्कुंभ	शुक्ल	परिघ	व्याघात	घृति	शुक्ल	शुक्ल	व्यतिपाता	वज्र	वैधृति	गंड	वज्र
घात करण	बव	शुकनि	कौलव	नाग	बव	कौलव	तैतिल	गर	तैतिल	शकुनि	किस्तुध्न	चतुष्पाद
प्रहर	१	४	३	१	१	१	४	१	१	४	३	४
पुरुष घातचन्द्र	मेष	कन्या	कुम्भ	सिंह	मकर	मिथुन	धनु	वृषभ	मीन	सिंह	धनु	कुम्भ
स्त्री घातचन्द्र	मेष	धनु	धनु	मीन	वृश्चिक	वृश्चिक	मीन	धनु	कन्या	वृश्चिक	मिथुन	कुम्भ

नामक्षरो से वैरवर्ग देखने का कोष्ठक । स्वकीय वर्ग से पंचक वर्ग वेरी समझना

अ ई उ ए	क ख ग घ ङ च	च छ ज झ	ट ठ ड ढ ण	त थ द ध न	प फ ब भ म	य र ल व	श ष स ह
गरुण	मार्जार	सिंह	श्वान	सर्प	मूषक :	मृग	मेढा

राशि का विस्तृत विवरण परिशिष्ट में दिया जा रहा हैं।

ग्रहः ग्रह राज्य प्रयच्छन्ति ग्रह राज्य हरन्ति च
ग्रहै व्याप्ति मिदं सर्व त्रैलोक्य सचराचरम

ग्रह ही कर्मानुसार राज्य देनेवाले और राज्य हरण करनेवाले हैं ग्रह से ही सचराचर त्रैलोक्य व्याप्त हैं। ग्रह नव माने गए हैं। (१) सूर्य (२) चन्द्र (३) मंगल (४) बुध (५) बृहस्पति(गुरु) (७) शनि (८) राहु (९) केतु । नवीन वैज्ञानिक खगोल सम्बन्धी शोधों से (१०) यूरेनस (हर्शल) (११) नेपच्यून (१२) प्लूटो (वेकटेंश)नवीन ग्रहों का भी पता चला हैं।

इस प्रकार वर्ष,मास,तिथि,वार,नक्षत्र,योग, व करण का सम्मिलित प्रभाव राशि तथा ग्रहों पर पडता है तथा इसी का पूर्ण अध्ययन ज्योतिष का विषय हैं।

मुहूर्त हेतु महत्वपूर्ण व्यापारिक कार्य राजकीय व व्यावसायिक कार्य,गृहप्रवेश, वास्तु कार्य विवाह सम्बन्धी कार्यो हेतु विशेष मुहूर्त शोधन करना पडता है विज्ञपाठकजनों हेतु "ज्योतिष का वरदान" नाम से सर्वाङ्ग मुहूर्त चक्र संलग्न कर रहा हूँ जो सामान्य पंचाग का सहारा लेते ही महूर्त हेतु सरल बना रहेगा

यात्रा मुहूर्त एवं चौघाडिक काल भी इस के साथ प्रेषित है। विज्ञजन ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान से लाभ प्राप्त करेगें।

यात्रा मूहूर्त विचार

यात्रा मूहूर्त के लिए दिशा शूल,नक्षत्र शूल,योगिनी,भद्रा,चन्द्रमा, तारा, शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र इत्यादि का विचार किया जाता है।

शुभ तिथि - भद्रादि दोषरहित २,३,५,७,१० ११,१३, तथा कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा।

शुभ नक्षत्र- -अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा रेवती।

सर्व दिग्गमन नक्षत्र- –अश्विनी, पुष्य, अनुराधा और हस्त ।

मध्यम नक्षत्र- रोहिणी, तीनों उत्तरा, तीनों पूर्वा,ज्येष्ठा, मूल,शतभिषा ।

श्रेष्ठ चौघडिया - अमृत, चर, लाभ और शुभ ।

शुभ होरा - - चन्द्र, बुध, गुरू और शुक्र का होरा ।

शुभ चन्द्र - जन्म राशि से गिनने पर १, ३, ६,७, १०, ११वीं राशि का चन्द्र शुभ होता है। इसके अलावा शुक्लपक्ष में २, ५, ९वीं राशि का भी चन्द्र शुभ होता है।

शुभ तारा- जन्म नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनने पर जो संख्या आये उसे ९ से भाग दे, शेष १, २, ४, ६, ८, ० बचे तो शुभ हैं।

यात्रा में शुभाशुभ लग्न - कुम्भ या कुम्भ के नवांश में यात्रा कभी न करें। शुभ लग्न वह है जिसमें १, ४, ५, ७, ९,१० स्थानों में शुभग्रह और ३, ६, १०, ११ में पापग्रह हों । अशुभ लग्न वह है जिसमें चन्द्रमा १, ६,८,१२वें अथवा किसी भी ग्रह से युत हो ।शनि १०वें शुक्र ७वे,गुरू ८वें अस्त बुध १२वें, लग्नेश ६,७,८ १२वें हों।

दिशा (वार) शूल - सोम सनीचर पूरब न चालू । मंगल बुध उत्तर दिसि कालू। रवि शुक्र जो पच्छिम जाय। हानि होय पथ सुख नहिं पाय। बीफे दक्खिन करे पयाना। फिर नहिं समझे ताको आना ॥

सोम शनि को पूर्व,सोम गुरू को अग्नि कोण, गुरू को दक्षिण, रवि शुक्र को नैऋत्य और पश्चिम, मंगल को वायव्य, बुध को उत्तर, बुध शुक्र को ईशान कोण में वार (दिशा) शूल होने के कारण यात्रा न करें।

काल राहु का वास– शनिवार को पूर्व, शुक्रवार को अग्निकोण,गुरुवार को दक्षिण, बुध को नैऋत्य, मंगल को पश्चिम, सोमवार को वायव्य, रविवार को उत्तर दिशा में काल राहु का वास रहता है।सम्मुख (यात्रा की दिशा में) काल राहु नेष्ट हैं। अतः जिस वार को यात्रा की दिशा में काल राहु का वास हो, उसे त्याग हैं।

नक्षत्र-शूल- पूर्व में ज्येष्ठा, पू.पा. व उ.पा. दक्षिण में विशाखा श्रवण, पू.भा, पश्चिम में रोहिणी, पुष्य, मूल उत्तर में पू.फा. उ.फा, हस्त, विशाखा नक्षत्र शूल हैं। यात्रा दिशा के शूल नक्षत्रों में कभी यात्रा न करें। दक्षिण दिशा की यात्रा में पंचक नक्षत्र धनि, शत, पू.भा, उ.मा. रेवती वर्जित हैं।

योगिनी - वास की तिथियाँ- -१,९ को पूर्व, ६,११ को अग्निकोण ५,१३ को दक्षिण ४,१२, को नैऋत्य ६,१४, पश्चिम, ७, १५, को वायव्य, २,१० को उत्तर ८,३० को ईशान में योगिनी का वास रहता है, यात्रा में सम्मुख तथा दाहिने (दिशा) की योगिनी अशुभ होती है। बोयं और पीछे को योगिनी शुभ होती है।

चन्द्र - *दिशा*- यात्रा में चन्द्रमा सम्मुख या दाहिने (दिशा में) शुभ होता है। पीछे होने से मृत्यु और बायीं ओर होने से हानि होती है। चन्द्रमा की दिशा उसकी तात्कालीन राशि से जानी जाती है यथा

मेषसिंह धनु पूरब चन्दा। दक्खिन कन्या वृष मकरंदा ॥

पश्चिम कुम्भतुलायोमिथुना । उत्तरकर्कटवृश्चिक मीना ॥

***अर्थात्*-** मेष,सिंह और धनु राशि का चन्द्रमा पूर्व, में वृष, कन्या और मकर राशि का दक्षिण, मिथुन,तुला और कुम्भ राशि का पश्चिम तथा कर्क, वृश्चिक और मीन राशि का चन्द्रमा उत्तर में रहता हैं।

समय शूल - उषाकाल में पूर्व,गोधूलि में पश्चिम, अर्धरात्रि में उत्तर और मध्याह्न काल में दक्षिण को नहीं जाना चाहिये।

प्रत्येक दिशा की यात्रा मे अवश्यमेव वर्जनीय तिथि वारादि को निम्न चक्र में एकत्र दिया जा रहा है। ताकि प्रिय पाठकरण सरलता और शीघ्रतापूर्वक यात्रा का शुद्ध मुर्हुत स्वतःनिकाल सकें।

नोट- अग्नि,नैऋत्य, वायव्य और ईशान विदिशाओं के लिए नक्षत्र शूल, चन्द्र राशियों और समय शूल का अलग से उल्लेख नहीं मिलता। अतः आग्नेयो पूर्वादिग्ज्ञेया दक्षिण दिक्च नैऋती।
वायवी पश्चिम दिक् स्यादेशनीच तयोत्तरा इस वचनानुसार अग्निकोण के लिए पूर्व, नैऋत्य के लिए दक्षिण, वायव्य के लिए पश्चिम, ईशान के लिए उत्तर दिशा के नक्षत्र शूल, चन्द्र राशियों और समय शूल को ही ग्रहण करना चाहिये।

।। चौधडिया मूहूंर्त ।।

उद्वेगश्चामृतौ रोगो लाभःशुभचरौ मृतिः। सूर्यः शुक्रो बुधश्चन्द्रो मंदोजीवो धरामृतः ॥

सूर्यादौ क्रमतो ज्ञेयो रात्रौ पञ्चमगोड्हषट् । सूर्यो बृहस्पतिश्चन्द्रः शुक्रो भौमः शनि बुध ः॥

शीघ्रता में कोई भी यात्रा मुहूर्त न बनता हो या एकाएक यात्रा करने का मौका आ पड़े तो उस अवसर के लिए विशेषरूप से चौघडिया मुहूर्त का उपयोग है. लेकिन अव तो प्रायः हर आवश्यकीय शुभ कार्यारम्भ के लिए चौघडिया महूर्तने जनता के ह्रदय पर अपना सिक्का जमा लिया है।

दिन और रात के आठ बराबर हिस्से का एक एक चौघड़िया मुहूर्त होता है। जब दिन और रात बराबर यानी १२ घण्टे का दिन और १२ घण्टे की रात होती है तब तक चौघडिया मुहूर्त १।। घण्टा यानी पौने चार घटी का होता है, इसलिए इनका नाम चौघडिया मुहुर्त पडा । रविवार, सोमवार आदि प्रत्येक वार सूर्योदय से शुरू होकर अगले सूर्योदय पर समाप्त होता है एवं उसी समय से अगला वार आरम्भ हो जाता है। प्रत्येक वार के सूर्योदय से सूर्यास्त तक का समय उस वार का दिनमान और सूर्यास्त से अग्रिम सूर्योदय तक का समय रात्रिमान होता है। दिनमान और रात्रिमान न्यूनाधिक भी (यानी दिन रात छोटे बड़े) हुआ करते हैं, पर वार हमेशा २४ घण्टा यानी ६० घटी का होता है अर्थात् दिनमान और रात्रिमान का योग हमेशा ६० घटी होता है।जंत्री में हर रोज का दिनमान दिया रहता है। अतःजिस रोज का रात्रिमान जानना हो, उस रोज के दिनमान को ६० घटी में से घटा देने पर रात्रिमान निकल आयेगा। अब जिस रोज के दिन में यात्रा करनी हो तो उस रोज के दिनमान के अष्टमांश के घटी पल का घण्टा मिनट बना कर उस रोज के सूर्योदय समय में जोड़ते जाय तो क्रमशः उस दिन की आठो चौघडिया के समय ज्ञात होते जायेंगे। उन आठों चौघडिया मे से कौन सा

ग्राह्य और त्याज्य है, यह ऊपर दिन की चौघडिया चक्र में उस दिन के वार के सामने खाने में देख कर जान लें। इसी प्रकार जिस रोज रात्रि में यात्रा करनी हो तो उस रोज के रात्रिमान के अष्टमांश घटी पल का घण्टा मिनट बनाकर सूर्यास्त समय में जोड़ते जाने के क्रमशःरात की प्रत्येक चौघडिया का समय ज्ञात हो जायेगा और उनका शुभाशुभत्व उपर्युक्त रात की चौघडिया के चक्र में उस रोज के वार के समाने खाने में देखकर जान लें। श्रेष्ठ समय शुभ, चर, अमृत और लाभ की चौघडिया का है।अशुभ, समय उद्वेग, रोग और काल का होता है, इनको त्याग देना चाहिये। २॥ घटी का १ घण्टा तथा २॥ पल का एक मिनट होता है। अतः घटी पल का घण्टा मिनट बनाने के लिए उसमें ५ का भाग देकर लब्धि को दूना कर लें।

टिप्पणी - प्रत्येक चौघडिया के स्वामी ग्रह क्रमशः ये हैं, उद्वेग का रवि, चर का शुक्र, लाभ का बुध, अमृत का चन्द, काल का शनि, शुभ का गुरू और रोग चौघडिया का स्वामी भौम हैः ऊपर जो शुभ चर, अमृत और लाभ की चौघडिया का समय श्रेष्ठ कहा गया है, वह इसीलिए कि उन सबके स्वामी क्रमशः शुभ ग्रह गुरू, शुक्र,चन्द और बुध है। अतः इन सबके श्रेष्ठ चौघडिया मुर्हुत में प्रत्येक शुभ कार्य किये जा सकते हैं, किन्तु यात्रा में इनके स्वामी का सूक्ष्म विचार कर लेना आवश्यक है। प्रायः सभी लोग उक्त चारों श्रेष्ठ चौघडिया मे स किसी चौघडिया में किसी भी दिशा की यात्रा कर लेते हैं। किन्तु फल कभी कभी उल्टा यानी शुभ की जगह अशुभ और हानिकर हो जाता है। यदि किसी को पूर्व में जा ना है और उपर्युक्त चारों श्रेष्ठ चौघडिया मे से "अमृत" चौघडिया के समय में वह चला गया तो उस चौघडिया का स्वामी चन्द होने के कारण पूर्व दिशा के लिए वह चन्द्र दिशाशूलकारक होगा "सोम शनीचर पूरब न चालू" जिसमें शुभ फल के बजाय अशुभ होना निश्चितप्राय है। अतः चारो श्रेष्ठ चौघडिया में भी जिस चौघडिया का स्वामी अपनी यात्रा के लिए दिशाश्लकारक हो , उस चौघडिया को यत्नपूर्वक वर्जित करन चाहिए। प्रिय पाठक इस सुझाव से जरूर लाभ उठायेंगे।

दिन की चौघड़िया

	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
पहली चोघ	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल
दूसरी चौध	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
तीसरी चौध	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
चौथा चौघ	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग
पाँचवा चौध	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर
छठवी चौध	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
सातवाँ चौध	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत
आठवाँ चौध	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल

रात की चौधड़िया

	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
पहली चोघ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
दूसरी चौध	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग
तीसरी चौध	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
चौथा चौघ	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत
पाँचवा चौध	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर
छठवी चौध	लाभ	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
सातवाँ चौध	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चर	काल
आठवाँ चौध	शुभ	चर	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ

ज्योतिष का वरदान

महत्वपूर्ण व्यापारिक लिखा पढ़ी, राजकीय या व्यापारिक कोन्ट्रेक्ट भेंट मुलाकात, आवेदन पत्र या टेण्डर देना, नवीन परिचय, मैत्री द्वारा कार्यसिद्धि, किसी कलाकृति का आरम्भ आदि अनेक महत्वपूर्ण कार्य हमारे दैनिक जीवन में आते रहते हैं जिनक लिए हम अभीष्ट फलदाता शुभ मुहूर्त चाहते तो है; पर यथाशीध्र : क्योंकि इन कामों के लिए सर्वाङ्ग शुद्ध मुहूर्तकी प्रतीक्षा में अधिक दिनों तक रूका नहीं जा सकता । अतः हम अपने प्रिय पाठकों के लाभार्थ प्रायः नित्य के शुभाशुभ काल को सरलतापूर्वक जान लेने की नवीन प्रणाली निम्न चक्र द्वारा समझा देते हैं। नीचे चक्र में सोलह योग दिये गये हैं, जिनमें क्रमांक १ से ५ तक के शुभ, शेष अशुभ है। ये योग प्रत्येक वार के साथ चक्रोक्त नक्षत्र अथवा तिथि के संयोग से बनते हैं। वार सूर्योदय से शुरू होकर अगले दिन के सूर्योदय पर समाप्त होता है तथा उसी समय से अग्रिम वार का आरम्भ हो जाता है। अतः इस बीच अभीष्ट वार को कौन सा नक्षत्र, तिथि कब तक रहती है यह जंत्री पञ्चाङ्ग से ज्ञात करे; फिर उन्हें उसी वार के नीचे के खानों में देखिये। बस,आपको उस वार के दिन रात के शुभाशुभ मूहुर्त काल का स्वयं पता चल जायेगा।

नोट : १. विपारूय, कुलिक और संवर्त योग की अवशिष्ट तथा वार दग्ध, हुताशन की सर्व तिथियों का समावेश चक्र में वार क्रम से अन्यान्य अशुभ विधियों में हो गया है। इसलिए इन कुयोंगो मे खाने अलग से नहीं दिये गये हैं।

ज्योतिष की वरदान

क्रम.	योन	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार
१.	अमृ.सिद्धियों	हस्त ५	मृगशीष ६	अश्विनी ७	अनुराधा ८	पुष्य ९	रेवती १०	रोहिणी११
	विपयोग तिथि							
२.	सर्वा सिद्धियों	अश्वि.पुष्य	रो.मृ. पुष्य	अश्वि. कृ.	कृ.रो. मृ. ह.	अश्वि.पुन.	अश्वि पुन.	रो.स्वा.श्र
	दुष्ट तिथि	तीनों उ.ह.मू	अनु. श्र.२,११	अश्ले.उ.भा.	ह. अनु.७,९,११	पुष्य अनु.रे	अनु.श्र.रे.	११,१३
		१,३,७(सेंव)		३,९,१२				
३.	सिद्धियोगनक्ष	मूल	श्रवण	उत्तराभाद्रपदा	कृत्तिका	पुनर्वसु	पूर्वाफाल्गुनी	स्वाती
४.	सिद्धियोगतिथि	०	०	३,८ ,१३	७,१२	५,१०,१५,३०	१,६,११	४,१४
५.	रत्नाकुरयोग	८,१३	१	४,१४	५,१०,१५	२,७,१२	५,१५	३,८
६.	मृत्युयोग	अनुराधा	उत्तरापाढा	शतताराका	अश्विनी	मृगशीर्ष	आश्लेपा	हस्त
७.	मृत्युदा तिथि	१-४(विपाख्य)	२,७,१२	१,६,११	३,८,१३	४,९,१४	२,७,१२	५,१०,१५,३०
	अधम योग	६-११						
८.	क्रकचयोग	१२	११	१०	९	८	७	६
९.	दग्धयोग	१२	११	५	१.सं. रविषाख्य	६	८-९	९-७
					३-४ कुलिक		(विषाख्य)	(विषाख्य)
१०.	उत्पातयोग	विशाखा	पूर्वापाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उत्तराफाल.
११.	कालयोग	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित	पू.भाद्रपदा
१२.	यमघण्ट	मघा	विशाखा	आर्दा	मूल	कृत्तिका	रोहिणी	हस्त
१३.	यमदष्ट्रा	मघा,धनिष्ठा	मूल,विशाखा	भरणी,कृत्ति	पुनर्वसु,पू.षा	आश्वि.उ.षा.	रोहिणी,अनु	श्रवण,शत
१४.	मुसल यज्ञ	भरणी	चित्रा	उत्तरापाढा	धनिष्ठा	उत्तरा फा.	ज्येष्ठा	रेवती
	वा दग्धनक्षत्र							
१५.	राक्षस योग	शततारका	अश्विनी	मृगशीर्ष	आश्लेपा	हस्त	अनुराधा	उत्तरापाढा
१६.	काणयोग	ज्येष्ठा	अभिजित	पू.भाद्र	भरणी	आदी	मघा	चित्रा

कृष्णपक्ष के तिथ्यर्ध में भद्रा, शुक्लपक्ष के तिथ्यर्ध में भद्रा रहेगी। भद्रा तिथि त्याज्य है।

श्रार्यिका १०५ श्री विशुद्धमति माताजी

(प० पू० १०८ श्रा शिवसागरजी की शिष्या)

वीतरागता , सर्वज्ञता और हितोपदेशिता आदि गुणों से अलंकृत जिनेन्द्र भगवान के मुखारविन्द से निर्गत एवं गणधर देव द्वारा गुम्फित द्वादशांग गत सूर्य प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति में तथा त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों में सूर्य, चन्द्र एवं राहु आदि ग्रहों का सांगोपांग वर्णन किया गया है तथा कल्याणवाद पूर्व में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारागणों के संचार, उत्पत्ति एवं विपरीत गति के शुभाशुभ फलों का तथा शुभाशुभ शकुनों के फलों का वर्णन किया गया है। विद्यानुवाद पूर्व में प्रगुंष्ठसेनादिक सात सौ अल्प विद्याओं, रोहिणी आदि पांच सौ महाविद्याओं के साथ साथ आठ महीनिमित्तों का भी सांगोपांग वर्णन है।

जिन लक्षणों को देखकर भूत-भविष्यत् में घटित हुई अथवा घटित होने वाली घटनाओं का आभास प्राप्त होता है उसे निमित्त कहते हैं। कारक और सूचक के भेद से ये निमित्त दो प्रकार के हैं। जो किसी वस्तु को सम्पन्न करने में सहायक होते है, उन्हें कारक निमित्त कहते हैं, जैसे कुम्हार के निमित्त से घट और जुलाहे के निमित्त से पट निष्पन्न होता है, तथा जिससे किसी वस्तु या कार्य की सूचना मिलती है, उसे सूचक निमित्त कहते हैं, जैसे - सिगनल का झ्कुकना गाड़ी आने का और ठण्डी हवा बरसात या तालाब की सूचक ही। ज्योतिष शास्त्र में सूचक निमित्तों की विशेषता है, क्योंकि शुभ अशुभ प्रत्योक घटनाओं के घटित होने के पूर्व प्रकृति, शरीर, स्वभाव, वाणी

आचार्य श्री धर्मसागर अभिनन्दन ग्रन्थ

आदि में कुछ न कुछ अच्छे बुरे विकार अवश्य उत्पन्न होते है। ये शुभाशुभ विकार सूर्यादि ग्रह अथवा अन्य प्रकृतिक कारण किसी भी व्यक्ति का स्वयं इष्ट अनिष्ट नहीं करते अपितु इष्ट-अनिष्ट रुप में घटित होने वाली भावी घटनाओं की मात्र सूचना देते हैं, और जो ज्ञानी पुरुष इन संकेतों अथवा सूचनाओं के रहस्य को समभक्ते है वे भूत-भावी शुभाशुभ घटनाओं को सरलतापूर्वक जान लेते हैं।

मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं और इन सभी द्वीप समुद्रों में अलग अलग सूर्य-चन्द्रादि ज्योतिष देवों का अवस्थान हा, किन्तु जहां तक मनुष्यों का सज्जार हैं वहाँ (अढाइ द्वीप) तक के सूर्य-चन्द्रादि गमन शील हैं आगे सर्वत्र अवस्थित हैं, यह सूर्य-चन्द्रादि ग्रहों का गमन घड़ी, घण्ड़ा, दिन, माह, ऋतु, अयन एवं वर्ष आदि व्यवहार काल मात्र का द्योतक नहीं है, अपितु अंधकार में दीपक के प्रकाश सदृश मनुष्यों की भूतभावि शुभाशुभ घटनों के भी द्योतक है। इन सूर्य-चन्द्रादि ग्रहों के उदय, अस्त तथा इनकी विपरीत चाल आदि को देखकर जो भावी सुख दुःख एवं जन्म मरण दि का ज्ञान होता है वह अन्तरिक्ष निमित्त ज्ञान कहलाता है .

जैनागम में ज्ञनमावरण दर्शनावरमा आदि आठ कर्म कहे गये हैं, इनमें मोहनीय कर्म के दर्शनमोहनीय ओर चारित्रमोहनीय के भेद से दो भेद है, इस प्रकार मुख्य कर्म नौ हैं, इन्हीं कर्मो के फलों को सूचित करने वाले नव ग्रह अन्तरिक्ष में व्यवस्थित हैं। ये ग्रह किसी भी व्यक्ति के इष्टनिष्ट का सम्पादन नहीं करते मात्र मानव के शुभाशुभ कर्म फलों के अभिव्यज्जक हैं।

इन ग्रहों में से कुछ ग्रहों की किरणें अमृतमय, कुछ की विषमय और कुछ ग्रहों की उभय मिश्रित किरणें होती हैं। सौम्य ग्रह आकाश में अपनी अपनी गति विशेछ के द्वारा जहां-जहां जाते हैं। वहाँ के निवासियों के स्वास्थय एवं बुद्धि आदि पर अपनी अमृत किरणों द्वारा सौम्य प्रभाव ड़ालती हैं, इसी प्रकार क्रूर ग्रह दुष्प्रभाव और उभय मिश्रित रश्मिग्रह मिश्रित प्रभाव डालते है। बालक-बालिकाओं की उत्पत्ति के समय भी उनके पूर्व संचित कर्मानुसार जिन जिन रश्मि वाले ग्रहों की प्रधानता रहती है, उसी से उसके सम्पूर्ण जीवन के शुभाशुभ का पर्यापेक्षण कर लिया जाता है। अमृतमय रश्मियों के प्रभाव से जातक कुशाग्रबुद्धि, सत्यवादी, अपभादी, जितेन्दिय, स्वाध्यायशील एवं सच्चरित्र होते है, विषमय रश्मियों के प्रभाव से विवेक शून्य, दुर्बुद्धि, व्यसनी, सेवावृत्ति एवं हीनाचरण वाले होते है तथा मिश्रित रश्मियों के प्रभाव से मिश्रित स्वभाव वाले होते हैं।

इन ग्रह रश्मियों का प्रभाव मात्र मानव पर ही नही पड़ता, अपितु अचेतन पदार्थों पर भी पड़ता है । ग्रहों की गति एवं स्थिति की विलक्षणता के कारण तथा स्थान-विशेष के कारम भिन्न क्षेत्र एवं भिन्न भिन्न समय में उत्पन्न हुए व्यक्तियों के स्वभाव, आकृति आदि में भी विभिन्नता पाई जाती है । इसी प्रकार जड़-चेतन पदार्थों में उत्पन्न होने वाली विलक्षणताओं का प्रभाव सूर्यादि ग्रह एवं नक्षत्रों पर भी पड़ता है । जैसे भकम्पत्तादि सात सौ मुनिराजों के ऊपर उपसर्ग आने से आकाश मंडल में श्रवण नक्षत्र का कम्पायमान होना ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारों के परस्पर एवं भिन्न-भिन्न सम्पर्क से भी इनमें शुभ अशुभपना आता है । जैसे -आटे में शक्कर के सम्पर्क से मधुरता और विष के सम्पर्क से कटुता आ जाती है । क्षेत्र- मल, मूत्र, हड्डी, रक्त, आदि के सम्पर्क से क्षेत्र में अशुद्धता एवं महामहोत्सव, पूजा, प्रतिष्ठा, यज्ञ आदि के सम्पर्क से शुद्धता आ जाती है, उसी प्रकार अग्निदाह, अतिवृष्ट, सूर्य-चन्द्रादि ग्रहण के निमित्त काल में अशुद्धता और निर्वाण गमन एवं तीर्थक आदि महीपुरुषों के जन्म आदि के कारण काल में शुद्धता आ जाती है । सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र एवं चार आदि के सम्पर्क से भी समय में शुद्धता-अशुद्धता आती है । जैसे -

१. मंगलवार को सप्तमी तिथि हो तो अम-त योग एवं मंगलवार को अश्विनी नक्षत्र हो तो सर्व कार्यो को सिद्ध करने वाला अमृतसिद्धि योग बनता है, किन्तु यदि सप्तमी मंगलवार को अश्विनी नक्षत्र होता है तो सर्व कार्यो का विनाशक विष योग बन जाता है ।

जिस प्रकार, पुद्‌गल-स्वरुपवान दृश्य पंच-तत्व,दृश्य जगत की रचना करते हैं, एवं पुद्‌गल परमाणु एक दूसरे का उपकार भी करते हैं । उमास्वामी ने तत्वार्थसूत्र में बताया भी है । उसी प्रकार गर्मी-सर्दी । सूर्य-चन्द्र के प्रकाश, शरीर, जड़, चेतन जगत पर प्रभाव डालते हैं ।

जैन गणित में अभिजित से कालगणनादि का विवेचन मौलिक है । गणित पर भी जौनों की देन और कार्य, अलग चर्चा, अनुसंधान और विवेचन की अपेक्षा रखता है ।

यहाँ जिगम्बर जैन साहित्य विशेष कर हमारे प्रचीन शास्त्र भंडारों के आधार पर तैयार किये गये गन्थो के नाम - विषय जो के प्रकाशन से प्राप्त है दिये जा रहे है

भद्रबाहसंहिता में अष्टांग निमित्तों का जितना सूक्ष्म विस्तृत गहन विवेचन है, "बाराही संहिता" और "वृहद् पाराशर होरा " में भी वह नहीं है । इसमें स्वप्न, मंत्र अंतरिक्ष, मंधर्वनगर के अतिरिक्त मेघ, उल्का, पक्षी पशु, पृथ्वी समुदादि के क्रिया कलापों से, भविष्य के लिए अद्‌भुत सत्य कथन है । ये तथ्य जैन तपस्वी, आचार्य की साधना व प्रकृति निरीक्षण के समन्वय की यशोगाथा गाते है ।

वर्तमान समय में स्व० डा० नेमीचन्द्र के भारतीय ज्योति,भाग्यफल, रिष्ट समूच्चय, करलक्खणा, केवल ज्ञान प्रश्नचूड़ामणि, भद्रबाहु संहितादि-मौलिक ग्रन्थ, । भतिसागर का "**विद्यानुवाद** "भी पुस्तकालयों में हस्तलिखित रुप में है ।

कुंथु विजय ग्रन्थमाला का "लघु विद्यानुवाद " छप चुका है ।

मूल कर्म - प्रकृति आठ है । ग्रह भी सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, कतू आठ ही हैं । साता-असाता से

वेदनीय के दो भेद हैं । राहू केतू से वे, नवग्रह या नवप्रकृति ही नवग्रह । नवप्रकृति के संदर्भ में; अद्‌भूत अनुसंधान एवं विचार मंथन हैतु जैमिनी सूत्र में भरपूर सामग्री उपलब्ध है ।

"जैमिनी सूत्र " - जो तत्वधारा की ही ; फलित-ज्योतिष की, दभिण-भारतीय धारा थी एवम् जिस पर अब केवल आयु के संबन्ध में विचार किया जाता है, उस दृष्टि को विवेचना पूर्ण एवं वैज्ञानिक सिद्ध किया जा सकता है।

अशुभ कर्मोदय के लिए - जिनेन्द्र, पंच परमेष्ठी, चौबीस तीर्थकर, सिद्धचक्र विधान, पूजन का भी निर्देश इसलिए है, कि शुभाचरण के देवारा अशुभोदय को शांत किया जा सके । शांतिप्राराधना के लिए कविवर मनसुखसागरजी कृत " नवग्रह अरिष्ट," उत्तम रचना है ।

हमारे भविष्ट के पुण्य सेचरण हेतु आचार्यो ने दान, व्रतादि का आदेश दिया है व देशना की

प्रारब्ध - अर्थात पूर्व-जन्म के कर्मो का फल ।

संचित - अनेक जन्मों के कर्मों का फल ।

उपरेक्त कर्मफलों को तप, व्रत, गुप्ति, ध्यान द्वारा सकाम-निर्जरा, अकामनिर्जरा द्वारा भस्म । भुक्तमाननि करने के कथन हैं - जैन ग्रंथों में ।

अर्हच्चमाणिसागर - में भद्रबाहु ने तो जैन ज्योतिष के मूर्धन्य स्वरुप को सिद्ध करने में सक्षम-सम्पूर्ण सत्यों को प्रस्तुत कर दिया है एवं करतल में समस्त लोक उपस्थित कर दिये हैं ।

नरचंद - का "ज्योतिष प्रकाश "

अर्थकांड़ - तेजी-मंदी और व्यापार-ज्योतिष का प्रसिद्ध जैन शास्त्र है ।

महावीराचार्य का - "ज्योतिष पटल " भी प्रकाश में आ गया है ।

" त्रेलोक्यदीपक "-में ग्रहों, राशियों, नक्षत्रों और प्रश्न के समबन्द को चौपड़ के दृष्टांत से समभ्क्ताकर, सरल एवं सरस रुप दे दिया गया हैं ।

भट्टकेसरी के "आय ज्ञान तिलक " में भी-हानि लाभ-शुभाशुभ का सूक्ष्म एवं तात्विक वर्णन हैं ।

श्रीधराचार्य का - "ज्योतिज्ञॉन-निदि " ने अपनी महत्ता सिद्ध करदी है ।

"आरंभसिद्धि"-हेमहंसगणि का-मूर्हतशास्त्र पर मौलिक ग्रंथ है । इसमें लगभग ३०० पृष्ठों में "मूर्हत" पर

भारती ज्योतिष - विद्या संस्थान
(International Famed Astrologer Palmist, Spritualist, Mantric)
48/2, रावजी बाजार, इन्दौर 452004

प्रो. अक्षय कुमार जैन

एम ० ए ० (हिन्दी संस्कृत) एफ० जे० पी० एच०
साहित्य-आयुर्वेद धर्मरत्न, सिद्धांत शास्त्री, सम्पादनकर्ता
विशारद आर० एम० पी० फलित ज्योतिक विशेषज्ञ

आगम ग्रन्थों में फल, पुष्प,नदी, ग्राम देवता के नामों के देवारा भविष्य कथन की श्रद्भूत प्रशालिया यन्त्र तन्त्र उपलब्ध हैं ।निमित्त ज्ञानी मुनि; स्वर शकुन के द्वारा तत्काल हजारों मनुष्यों को चकित ही नहीं करते किन्तु श्रपना भक्त, शिष्य बना लेते है । इस प्रकार इहलैकिक एवम् पारलौकिक समस्याओं का हल प्रस्तुत कर देते हैं

ज्योतिष-ज्योति का, ज्योति तरंगों का, प्रकाश का, प्रकार किरणों का, उद्योत, श्रातय, ऊष्मा के प्रभाव का वैज्ञानिक शास्त्र है ।

सूर्य, चाँद और गृह नक्षत्रों की किरणों,तरंगों, पृथ्वी मण्डल और उसके निवारियों पर का प्रभाव डालती हैं । उसका विवेचन करना इस शासत्र का लक्ष्य है ।

काले, पीले, नाले, श्वेत, लाल रंग अलग-अलग प्रभाव डालते है । अल्फा, बीटा इक्सरे तरंगों के प्रभाव व शक्ति से सब परिचित होने लगे हैं, वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है ।

आकाश, स्थित ग्रह मण्डल- दिन-रात के भेद से काल का विभाजन करते है । विस्तृत नोलिमा-सागर या आकाश की शांति दे रही है । लाल रंग और किरणों करता व ब्लड प्रेशर को उडाती है ।

चन्द्र यानि-कैल्शियम कलोरीन का साढे सातौ, दीमागी भ्रम उत्पन्न करता है ।

की किरणें निकलती हैं । रजस्वला के नेत्रों से, अचार, पापड़, मुरब्बा बिगड़ता है । किर नेत्र-तरंगों से नजर लगना और गर्भवती की नेत्र-तरंगों से सर्प का अंधा होना, चन्द्रमा के घटने बढने से समुद्र में ज्वारभाटा आना, बीमारों के रोगों का घटना-बढना एवं कवियों, भावुकों को पीडा । प्रसन्नता होना, वैज्ञानिक सिद्ध तथ्य हैं ही ।

जैनागम में एवं वैदिक ज्योतिष में पंच-तत्व जो हैं, उन्ही के मिश्रित रुप, नवग्रह पिंड हैं । बारह राशियों, प्रसिद्ध बारह ग्रह एवं अनन्त नक्षत्र-मण्डल इन्ही के पर्यायरुप हैं । जल ही शुक्र, चन्द है । वायु ही शनि व गुरु की आकाश हैं ।

अग्नि ही सूर्य मंगल और पृथ्वी ही बुधादि के रुप हैं । रासियां भी, तीन, सात ग्यारह, वायु, तत्व की द्योतक है । चार, आठ, बारह राशियां जल त्व की द्योतक है । दो, छह, दस पृथ्वी तत्व की एवं एक, पांच नव अग्नि तत्व की प्रधानता लिप्त है । इस प्रकार चराचर पर इसका प्रभाव होना स्वाभाविक है । जल में ठंडक, आगे से गर्मी, हवा से शान्ति, आकाश से विशालता, पृथवी से इच्छित एश्वर्य का मिलना प्रत्यक्ष सिद्ध है ।

इसी प्रकार ग्रहों, नक्षत्रों के फल स्वयं सिद्ध है । गणना तो उत्तम आधार ही है । निश्चित पूर्व घोषित समय पर चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, चन्द दर्शन सूर्योदय, सूर्यास्त का होना, इसके फालित को सिद्ध करता ही है ।

जैन आगम में ग्रह व नक्षत्र, कर्मोदय । कर्मफल के सूचक और दर्शक हैं । जिस प्रकार रेल का सिगनल गाडी आने का सूचक है, बिजली की कड़कडाहट । बादल की गड़गड़ाहट वर्षा सूचक है,

जैन आर्य प्रज्ञा तन्त्रज्ञों ने प्रणियों के कल्याण के लिये ज्योतिष के सभी अंगों विलक्षण साहित्य दिया है। जैनों के सूर्य प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्राप्ति, विद्यानुवाद पूर्व, ज्योतिषकारष्डक, आगम, तिलोय प्रज्ञप्ति के साथ-साथ भद्र बाहू संहिता, केवल ज्ञान प्रश्नचूड़ामणि, रिंष्यसमुच्चर, अर्हच्चरणासन, चन्द्रोन्मीलन, करलकखणा, तिथि निश्चित, अरहंत पाशा केवली, अंगविज्जा, निमित्त शासात्र जयपाहुणा आदि अनेक ग्रन्थ हमारे यहां उपलब्ध हैं। ग्रन्थ होरा, संहिता, गणित, खलित के अनेक अंगों पर विस्तृत एवं मौलिक रुप से प्रकाश डालते हैं निमित्त ज्योतिष, स्वरशास्त्र, अंगविज्जा तो मुनियों द्वारा प्रयुक्त थे जो श्रावकों, गृहस्यों, नरेसों, श्रेष्ठियों को आकाश मेंगंवर्धनगर, पक्षी, जानवर एवं मौन,अन्तरिक्ष,स्वर, शब्दों एवं शरीर लक्षणों से अनेक जन्म और पर्यायो का भविष्य कथन करदेते थे।

कर्मों का विपाक, फल स्थिति की धारक ही दशाएं हैं। महादशाएं नक्षत्र-निसर्ग दशाए हैं। काललब्धि और दशाफल एक ही वस्तु है। राशियों के स्वरुप प्राणियों के स्वभाव के प्रतीक हैं
घडी समय सूचक है उसी प्रकार शनि दुःख सूचक, शुक्र भोग सूचक, गुरु ज्ञानसूचक, बुद्ध बुद्धिसूचक, राहू-केतु बाधा सूचक, मंगल शक्ति सूचक, चन्द्र शांति। मन स्थिति एवं सूर्य आत्मा की बलवान। तेजोमयी। निस्तेज अवस्था का सूचक है। साहित्य में क्लपना और अलंकार को अलग करने से विशुद्ध वैज्ञानिक विवेचन आ जाता हैं। इसी का नेम जयोतिष है।

सृष्ट के क्रिया-क्लाप प्रायः अधिकाँश, निश्चित नियत और क्रमबद्ध है। शरीर के अंग शक्ति, स्थान निश्चित हैं, इसी प्रकार वस्तु का स्वभाव शक्ति, परिणामन निश्चित है। ग्रहों, पंच तत्वों का फल भी निश्चित है।

सरस्वती (जिनवाणी) माता

हूमड़ो के प्राचीन जिनालयों में सरस्वती माता की मूर्ति विशेषकर दक्षिण के जिनालयो में उस विषय में "गणिनी आर्यिका रत्न श्री ज्ञानमती अभिनन्दन ग्रंन्थ में से उपरोक्त जिनवाणी के विषय में निम्न प्रकरण उद्धत किया गया है"।

(पृष्ठ ७०७. ७०८)

कई जगह मन्दिरों में सरस्वती देवी की प्रतिमा वेदी में विराजमान देखी जाती है। तो क्या सरस्वती की मूर्ति बनाने का आगम में विधान है ? श्री ज्ञानमती माताजी हाँ, प्रतिमा ग्रंथो में तो श्रुतदेवी की प्रतिमा बनाने का कथन आया है। मैंने दक्षिण प्रान्त में भी कई मंदिरो में सरस्वती माता की प्रतिमा देखी है।

चन्दना : लेकिन सरस्वती तो जिनवाणी माता का दूसरा नाम है और जिनवाणी शास्त्र रुप ही देखी जाती है। उसे अंगोपांग से सहित देवी का रुप देना कहाँ तक उचित है ?

श्री ज्ञानमती माताजी : जिनवाणी को द्वादशांग रुप भी माना है। जिन्हें सरस्वती पूजा की जयमाला में सभी लोग पढते है। उन बारहों अंगादि से समन्वित श्रुतदेवी की स्थापना करने का विधान बताया है। धवला में एक श्लोक आया है।

बारह अंगग्गिज्झा वियलिय मल मूढ दंसणुत्तिलया।
विविह वर चरण भूसा पसियउ सुय देवया सुइरं ॥

अर्थ : जो श्रुतज्ञान के प्रसिद्ध बारह अंगो से ग्रहण करने योग्य है, अर्थात बारह अंगो का समूह ही जिसका शरीर है। जो सर्व प्रकारे के मल (अतीचार) और तीन मूढ़ताओं से रहित सम्यग्दर्शन रुप उन्नत तिलक से विराजमान और नाना प्रकार के निर्मल चारित्र ही जिसके आभूषण है ऐसे भगवती श्रुत देवता चिरकाल तक प्रसन्न रहो। इसी प्रकार जयधवला में भी कहा है।

अंगगबज्झझणिपी अणाइम्ज्झंतणिम्मलंगाए।
सुयद्दयअंबाए णमो सया चक्खुमइयाए (४)

अर्थ : जिसका आदि मध्य और अन्त से रहित निर्मल शरीर, अंग और अंगबाह्य से निर्मित है और जो सदा चक्षुष्मती अर्थात् जागृत चक्षु है ऐसी श्रुतदेवी माता को नमस्कार हो।

चन्दना : क्या उस श्रुतदेवी को वस्त्र भी पहना सकते है ?

श्री ज्ञानमती माताजी : हाँ, एक जगह सरस्वती स्त्रोत में भी श्वेत वस्त्र का कथन आया है।

"चन्द्रार्ककोटिघटितोज्वलदिव्यमूर्ते, श्री चन्द्रिका कलितनिर्मलशुभ्रवासे।
कामार्थ दे च कलहंसमाधिरुढ, वागीश्वरि ! प्रतिदिन मम रक्षदेवि (१)

इस श्लोक में "शुभ्रवासे" शब्द से यह स्पष्ट होता है कि सरस्वती की प्रतिमा श्वेतवस्त्र से युक्त होती है।

चन्दना : क्या वस्त्र सहित सरस्वती की मूर्ति को नमस्कार किया जा सकता है ? श्री ज्ञानमती माताजी शास्त्र जिनवाणी ग्रंथो के ऊपर भी कपड़े का वस्दन लपेटा होता है। जैसा उस वस्त्र सहित ग्रन्थ को नमस्कार करने में कोई दोष नहीं है वैसे ही वस्त्र युक्त श्रुतदेवी की प्रतिमा भी नमस्कार के योग्य है। अरे भाई ! वह श्रुतदेवी कोई भवनवासी या व्यंतरी देवी तो है नहीं। उनका श्वेत वस्त्र तो ज्ञान की उज्जवलता निर्मलता का प्रतीक है। ज्ञान के विभिन्न विशेषणों को श्रुतदेवी के विभिन्न अंगो की उपमा दी गई है इसीलिए उनकी प्रतिमा

बनाने की प्राचीन परम्परा चली आ रही है। प्रतिष्ठा तिलक ग्रंथमें सरस्वती माता की एक बड़ी सुन्दर स्तुति है जो यहाँ दी जा रही है। यह स्तुति मुझे प्रारम्भ से ही अत्यन्त प्रिय है। इसे सभी ज्ञानेच्छु भव्य जीवों को कंठस्थ कर लेना चाहिए तथा सरस्वती प्रतिमा अथवा जिनवाणी के समक्ष प्रतिदिन पढ़ना चाहिए। जिससे अतिशय ज्ञान की वृद्धि होगी।

सरस्वती गोत्र

बारह अंगगिज्जां दंसणतिलया चरित्तवत्थहरा।
चोद्दसपुव्वाहरणा ठावे दव्वाय सुयदेवी (१)
आचारशिरसं सूत्रकृतवक्त्रां सुकंठिकाम्।
स्थानेन समवायांगव्याख्याप्रज्ञप्तिदोर्लताम् (२)

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला

वाग्देवता ज्ञातृकथोपासकाध्ययनस्तीनम्।
अंतकृद्दशसः त्राभिमनुत्तरदशांगतः (३)
सुनितंबां सुजघनां प्रश्नव्याकरणश्रुतात्।
विपाकसूत्रदृग्वादचरणां चरणांबराम् (४)
सम्यक्त्वतिलकां पूर्वचतुर्दशविभूषणाम्।
तावत्प्रकीर्णकोदीर्ण चारुपत्रांकुरश्रियम् (५)
आप्तदृष्टप्रवाहौघद्रव्यभावाधिदेवताम्।
परब्रह्मपथादृप्तं स्यादुक्तिं भुक्तिमुक्तिदाम् (६)
निर्मूलमोहतिभिरक्षणनैकदक्षं, न्यक्षेण सर्वजगदुज्जवलनैकताम्।
सोषेस्व चिन्मयमहो जिनवाणी नूनं, प्राचीमतो जयसि देवी तदल्पसूतिम्।
आभवादपि दुरासदमेव, श्रायसं सुखमनन्तमचिंत्यम्।
जायतेद्य सुलभं खलु पुंसां, त्वत्प्रसादत इहांब नमस्ते॥
चेतश्चमत्कारकरा जनानां महोदयाश्चाभ्युदयाः समस्ताः।
हस्ते कृताः शस्तजनैः प्रसादात् तवैव लोकाबं नमोस्तु तुभ्यमे॥
सकलयुवतिसृष्टेरंब ! चूड़ामणिस्त्वं, त्वमसि गुणसुपुष्टेर्धर्मसृष्टेश्च मूलम्।
त्वमसि च जिनवाणी ! स्वेष्टमुक्त्यंगमुख्या, तदिह तव पदाब्ज भूरि भक्त्या नमामः॥

सरस्वती गोत्र
(द्वादशांग जिनवाणी स्तुति)

अर्थ : श्रुतदेवी के बारह अंग है, सम्यग्दर्शन यह तिलक है, चारित्र उनका वस्त्र है, चौदह पूर्व उनके आभरण है ऐसी कल्पना करके श्रुतदेवी की स्थापना करनी चाहिए।

बारह अंगो में से प्रथम जो "आचाराँग" है, वह श्रुतदेवी सरस्वती देवी का मस्तक है, "सूत्रकृतांग" मुख है, "स्थानांग" कंठ है, "समवायांग" और "व्याख्याप्रज्ञप्ति" ये दोनों अंग उनकी दोनों भुजाये है,

"ज्ञातृकथांग" और "उपासकाध्ययनांग" ये दोनों अंग उस सरस्वती देवी के दो स्तर है, "अंतकृद्दशांग" यह नाभि है, "अनुत्तरदशांग" श्रुतदेवी का नितंब है, "प्रश्नव्याकरणांग" यह जघनभाग है, " विपाकसूत्रांग और दृष्टिवादांग" ये दोनों अंग उन सरस्वती के दोनों पैर है। "सम्यक्त्व" यह उनका तुलक है चौदहपूर्व ये अलंकार है और "प्रकीर्णक श्रुत" सुन्दर बेल सदृश है। ऐसी कल्पना करके यहाँ पर द्वादशांग जिनवाणी को सरस्वती देवी के रुप में लिया गया है।

श्री जिनेन्द्रदेव ने सर्वपदार्थ की संपूर्ण पर्यायो को देख लिया है, उन सर्व द्रव्य पर्यायों की यह श्रुतदेवता अधिष्ठात्री देवी है अर्थात् इनके आश्रय से पदार्थो की सर्व अवस्थाओं का ज्ञान होता है। परम ब्रह्म के मार्ग का अवलोकन करनेवाले लोगों के लिये यह स्याद्वाद के रहस्य को बतलाने वाली है तथा भव्यों के लिये भक्ति और मुक्ति को देनेवाली ऐसी यह सरस्वती माता है।

जो चिन्मय ज्योति संपूर्ण मोहरुपी अन्धकार को नष्ट करनेवाली है और सर्वजगत् को प्रकाशित करनेवाली है। हे जिनवाणी मातः। हे सरस्वती देवी ! ऐसी चिन्मय ज्योति को आप उत्पन्न करनेवाली हो इसलिये आपने अल्प प्रकाशधारक सूर्य को जन्म देनेवाली ऐसी पूर्व दिशा को जीत लिया है।

अनादि काल से संसार में दुर्लभ ऐसा अचिन्त्य और अनंत मोक्ष सुख है, आपके प्रसाद से वह मनुष्यों को प्राप्त हो जाता है इसलिये हे मातः मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

है मतिः। अन्तरंग को आश्चर्यचकित करनेवाले जो स्वार्गादि के जो समस्त अभ्युदय सब आपके प्रसाद से लोगों को प्राप्त हो जाते है इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

हे अम्बः! आप सम्पूर्ण स्त्रीयों की सृष्ट में चूड़ामणि हो। आपसे ही धर्म की और गुणो की उत्पति होती है। आप मुक्ति के लिये प्रमुख कारण हो, इसलिये मै अतीव भक्तिपूर्वक आपके चरण कमलों में नमस्कार करता हूँ।

वन्दना आज आपसे कई आगम के विषय ज्ञात हुए है। अब लेखनी को विराम देती हुई आपके श्री चरणों में वंदामि करती हूँ।

शंका पदमावती आदि देविया पूजनीय है या नही ?

समाधान

पदमावती आदि देवियों पाँच परमेष्ठी में गर्भित नही होती अतएव अरहंत आदि परमेष्ठी की तरह पूजनीय नहीं है साधर्मी है इसलिये वे आदरणीय है प्रतिष्ठा आदि पाठ में इनका अहवानन रक्षा हेतु किया जाता है।

पं. ज्ञानचन्द जैन मुख्यार व्यक्तिगत और कृतित्वग्रन्थ से पेज ६६२

भगवान पार्श्वनाथ तीर्थकर के यक्ष यक्षणी धरणेन्द्र पद्मावती

जैनधर्म प्राचीन इतिहास पृष्ठ ३४२.३४३

भगवान पार्श्नात :- यक्ष दक्षणी

शासन देवों और देवियों की उपलब्ध मूर्तियों में पद्मावती देवी की मूर्तियों की सख्या सर्वाधिक है। यह भी विसेष उल्लेखनीय है कि पदमावती की मूर्तियों में सबसे अधिक वैविध्य मिलता है। संभवतः इसका कारण यही रहा है कि पदमावती की बहुमान्यता के कारण कलाकारों ने कल्पना से काम लिया है। शास्त्रानुसार दिगम्बर परम्परा में धरणेन्द्र और पद्मावती का रुप इस प्रकार मिलता है।

धरणेन्द्र का रुप

ऊर्ध्वद्विहस्तधृतवालुकिरुद्भटाधः सव्यान्यपाणिकणिपाशवरप्रणन्ता ।
श्रीनागराजककुंद धरणोडभ्रनीलः कूर्मश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम् ॥

अर्थ : नागराज के चिन्हवाला भगवान पार्श्वनाथ का शासनदेव धरणेन्द्र नामक यक्ष है । वह आकाश के वर्णवाला कछुए की सवारीवाला, मुकुट में सर्प के चिन्ह वाला और चार भुजाओं वाला है । ऊपरी दोनों हाथों में सर्प तथा नीचे के बांये हाथ में नाग पारा तथा दायाँ हाथ वरदान मुद्रामें है । पद्मावती देवी का रुप इस प्रकार बताया है ।

देवी पदमावती नामाना रक्तवर्णा चतुर्भुजा ।
पदमासनाङकुंश धत्ते स्वक्षसूत्रं च पङकजप्र ॥
अथवा षड्भुजादेवी चतुर्विंशति सदभुजाः ।
पाशासिकुन्तवालेन्दु गदामुसलसंयुतम् ॥
भुजाषट्क समाख्यातं चतुर्विशतिरुच्यतं ॥
शङ्खासिचक्रवालेन्दु पदमोत्पल शरासनम् ॥
शक्ति पाशाङ्कुसं घण्टां वाणं मुसलखेटकम् ।
त्रिशूलं परशुं कुन्तं बज्रमालां फलं गदाम् ॥
पत्रं च पल्लवं धत्ते वरदा धर्मवत्सला ।

अर्थ : पार्श्वनाथ तीर्थकर की शासनदेवी पदमावती देवी है । वह लाल वर्ण वाली, कमल के आसन वाली और भुजाओं में अंकुश, माला और वरदान गदा और भुसल धारण करती है । तथा चौबीस हाथों में ढाल, शंख, तलवार, चक्र, बालचन्द्र, सफद कमल, लालकमल, धनुष, शक्ति, पास, अंकुश घण्टा, वणा, मूसल, त्रिशूल, फरशा, भाला, वज्र, माला, फल, गदा, पत्र, पत्र गुच्छक और वरदान मुद्रा होती है ।

आशाधर प्रतिष्ठा पाठ के अनुसार पदमावती कुककुट सर्प की सवारी करनेवाली है तथा कमल के आसन पर बैठती है । उसके सिर के ऊपर सर्प के तीन फणों वाला चिन्ह होता है ।
पदमावती कल्प में चार भुजाओं मे पाश, फल वरदान और अंकुश होते हैं ।

श्वेताम्बर ग्रंथ निर्वाणकलिका, आचार दिनकर आदि के अनुसार पार्श्वनाथ तीर्थकर के यक्ष का नाम पार्श्व है । वह हाथी के मुख वाला, सिर के ऊपर सर्प फण, कृष्ण वर्ण वाला ओर चार भुजा वाला है । उसके दोनों दायें हाथों में विजौरा और साप होता है । (आचार्य दिनकर में गदा) तथा बाये हाथों में नेवला और सर्प धारण करता है । श्वेताम्बर ग्रन्थो मे उसकी सवारी कुक्कुट सर्प बताई है ।

इसी प्रकार पार्श्वनाथ की यक्षी का नाम पदमावती है । वह सुवर्ण वर्ण वाली, कुक्कुट सर्प की सवारी और चार भुजाओं वाली है । उसके दांये हाथों मे कमल और पाश हैं तथा बांये हाथो में फल और अंकुश होते हैं । आचार्य दिनकर के अनुसार बांये हाथो में पाश और कमल होते हैं ।

दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रन्थों में पद्मावती की जो उपयुक्त स्वरुप बतलाया है, उसके अनुरुप पदमावती देवी की कुछ मूर्तिया अवश्य मिलती है, किन्तु परम्परा से हटकर भी अनेक मूतियाँ उपलब्द्ध होती है । कुछ मूतियाँ अष्टभुजी, बारहभुजी और षोडशभुर्जा भी मिलती है । प्रायः पद्मावती

की मूर्तियों के सिर के ऊपर फणावलियुक्त पार्श्वनात मूर्ति विराजमान होती है और जो पदमावती मर्ति की पहचान हो जाती है। किन्तु कुछ ऐसी भी मूर्तिया मिलती हैं जिनकी एक गोद में बालक और दूसरी ओर उगली पकड़े एक बालक खड़ा है। बालकों को देखकर यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि ऐसी मूर्ति अम्बिका देवी की होनी चाहिये। किन्तु सिर पर सर्प फण होने के कारण ऐसी मूर्ति पदमावती देवी की मानी जाती है। ऐसी अदभूत मूर्तियाँ देवगढ में मिलती है। इसका एकमात्र कारण कलाकारों की स्वायन्त्र पियता ही कही जा सकती है वे बंधे हुए ढरे से बंधे नहीं रह सके ओर उन्होंने अपनी कल्पना की उड़ान से पदमावती देवी को नये नये रुप दिये, नये याम दिये और नया आकार प्रदान किया। जो व्यक्ति शास्त्रों में उल्लिखित रुप के अनुकूल पदमावती देवी की अनेक मूर्तियों को देखकर सन्देह और भ्रम में पड जाते है, उन्हें इस तथ्य को ह्रदयंगम करना चाहिये कि कलाकार कोई बन्धन स्वीकार नही करता, वह स्वतन्त्र होता है, स्वातन्त्र प्रिय होता है। इसीलिये कलाकारों की नित नवीन कल्पनाओं मेंसे पदमावती देवी के नानाविध रुप उभर कर आये।

भगवान महावीर के यक्ष यक्षिणी

जैन धर्म का प्राचीन इतिहास

भगवान महावीर के यक्ष यक्षिणी५ भगवान महावीर के सेवक यक्ष का नाम मीतर्ग है और सेविका यक्षिणी का नाम सिद्वायगी अथवा सिद्धायिका है।

प्रतिष्ठा पाठों मे इन यक्ष यक्षिणी का स्वरुप इस प्रकार बताया है।

मातंग यक्ष

मुदगप्रभो मूर्द्धनि धर्मचक्र, ब्रत्फलं वामकरेडथ यच्छन्।
वरं करिस्थो हरिकेतुभक्तो, मातडङ्गतु तुष्टिमिष्टया ॥

वास्तुसार, २४

अर्थात् मातंग यक्ष नीला वर्णवाला, सिर पर धर्मचक्र धारण करनेवाला, वाये हाथ में बिजौरा फल धारण करनेवाला और दांया हाथ वरदान मुद्रा में, गज की सवारी करनेवाला और भगवान की धर्मध्वला की रक्षा करने वाला है।

सिद्धायिका देवी

सिद्धायिकां सप्तकरोच्छिताङ्ग जिनाश्रयां पुस्तकदानहस्ताम्।
श्रितां सुभद्रासनमत्र यज्ञे, हेमद्युतिं सिहगति यजोडहम् ॥

वास्तुसार, २४

अर्थात् सात हाथ ऊंचे महावीर स्वामी की शासनदेवी सुद्धायिका नामक देवी है। वह सुवर्ण वर्णवाली, भद्रासन से बैठी हुई सिंह की सवारी करनेवाली और दो भुजावाली है। उसके बाये हाथ में पुस्तक और दायां हाथ वरदान मुद्रा में है।

यद्यपि यहाँ सिद्धायिका देवी को दो भुजावाली बताया है, किन्तु शिल्पकार ने शास्त्रों के इस बन्धन को कब स्वीकार किया है। यद्यपि, चक्रेश्वरी, अम्बिका और पदमानती की अपेक्षा सिद्धायिका की मूर्तियाँ अल्पसंख्या में मिलती है, किन्तु जो मिलती है, उनमें सर्वत्र यह देवी द्विभुजी नही मिलती, वह बहुभुजी भी मिलती है। खण्डगिरि में तो यह षोडशभुजी भी मिली है। शास्त्रों में इन शासन देवताओं का जो रुप निर्दिष्ट किया है,

उसे केवल प्रतीकात्मक ही स्वीकार किया जाना उचित होगा, किन्तु मूर्तिकारों ने शास्त्रीय विधानों की परिधि आगे बढकर और सास्त्रीय बन्धनो से अपने आपको मुक्त करके अपनी इच्छानुसार इनकी मूर्तियाँ निर्मित की है । इस बात को हमें सदा स्मरण रखना चाहिये ।

गुजरात में रचित कतिपय दिगम्बर जैन ग्रन्थों में हूमड़ों का उल्लेख

पन्द्रह शताब्दियों से भी अधिक समय से गुजरात और राजस्थान जैन धर्म के केन्द्र रहे हैं। यहां जैनों मे सबसे अधिक बस्ती श्वेताम्बरों की है। समस्त श्वेताम्बर आगम ईशु की पांचवी शताब्दी में सौराष्ट्र के वलभीपुर में एक साथ लिपिबद्ध किया गया था। आगमों की बहुतेरी टीकाएँ इसी प्रदेश में लिखी गई है। इतना ही नहीं लेकिन संस्कृत,प्राकृत,अपभ्रंश एवं प्राचीन गुजराती राजस्थानी के ललित तथा शास्त्रीय वाङ्मय के सभी ग्रंथो के निरूपक जैन श्वेताम्बर साहित्य का जितना विकास गत प्रायः एक हजार वर्षो में इस प्रदेश में हुआ उतना भारत में ओर कही भी नही हुआ है। यद्यपि आज गुजरात में दिगम्बर जैनों की जनसंख्या प्रमाण में अल्प हैं, तथापि एक समय में उनकी संख्या बहुत रही होगी। अभी तो उनकी साहित्य प्रवृत्ति के थोड़े ही अवशेष बचे हुए है, इतने प्राचीन एवं विरल है कि गुजरात के समग्र जैन साहित्य के इतिहास की घष्टि से वे अति महत्त्वपूर्ण हैं।

आचार्य जिनसेनकृत "हरिवंशपुराण" तथा आचार्य हरिषेणकृत "बृहत्कथाकोश" ये दो संस्कृत ग्रंथ दिगम्बर साहित्य की प्राचीनतम उपलब्ध रचनाओं में से है। ये दोनों कृतियां "वर्धमानपुर" अर्थात् सौराष्ट्र में आये हुए वढ़वाण में लिखी गई हैं हरिवंशपुराण की रचना शक सं. ७०५ (वि.सं.८३९ ई.सन् ७८३) में हुई और "वृहत्कथाकोश " की रचना वि.सं ९८९ अर्थात शक सं. ८५३ (ई.सन् ९३१.३२) में ज्योतिशास्त्र की घष्टि से जब खर नामक प्रवर्तमान था, तब हुई । जिनसेन ने रचनावर्ष शक संवत् में बताया है और हरिषेण ने विक्रम एवं शक दोनों में।

दिगम्बर सम्प्रदाय के उपलब्ध कथासाहित्य में कालानुक्रम की घष्टि से "हरिवंशपुराण" तृतीय ग्रन्थ है, इस हकीकत से उसके महत्व का खयाल सहज ही आएगा ; उससे पूर्व के दो ग्रन्थ है, आचार्य रविषेण का "पद्मचिरत्र और जटा सिंहनंदि का "वरांगचरित्र" । इन दोनों का उल्लेख "हरिवंशपुराण " के पहले सर्ग में ही किया गया है।

"हरिवंशपुराण" बारह हजार श्लोक प्रमाण का ६६ सर्गो में विभाजित वृहद् ग्रन्थ है। बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ जिस वंश मे उत्पन्न हुये थे उस वंश का आर्थत् हरिवंश का वृत्तान्त इसका वर्ण्य विषय है। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति मे जिनसेन ने कहा है कि सौरों के अधिमण्डल अर्थात् सौराष्ट्र पर जब जयवहराह नामक राजा का शासन था, तब कल्याण से जिसकी विपुल श्री वर्धमान होती है ऐसे वर्धमान नगर में पार्श्वनाथ मन्दिरयुक्त नन्नराजवसति में इस ग्रन्थ की रचना हुई। प्रशस्ति में और भी कथन है कि दोस्तटिका नामक स्थान में तीर्थंकर शान्तिनाथ के मन्दिर में प्रजा ने इस ग्रन्थ का पूजन किया। इस दोस्तटिका के स्थान के बारे में अभी कोई निर्णय नहीं किया जा सकता, फिर भी वह बढ़वाण का समीपवर्ती होगा यह तो निश्चित है,ई.सन् वढवाण के राजा जयवराह के बारे में विशेष माहिती इस प्रशस्ति में से प्राप्त नहीं होती है ।तथापि कन्नौज के प्रतिहार राजा महीपाल का शक सं० ८३६ (ई.सन् ९१४) का जो एक ताम्रपत्र सौराष्ट्र के डाला गांव में से मिला है उससे ज्ञात होता है कि उन दिनों वढबाण में चाप वंश के राजा गुजरात मे रचित कतिपय दिगम्बर जैन ग्रन्थ ११७ धरणिवराह का शासन था और वह प्रतिहारों का सामन्त था। वढवाण के राज्यकर्ताओं के इन वराहान्त

नामों से एक स्वाभाविक अनुमान किया जा सकता है कि हरिवंशपुराण की प्रशस्ति में जिसका उल्लेख है वह राजा जयवराह उपर्युक्त धरणिवराह का चार पांच पीढ़ी पूर्व का पूर्वज होगा। यह तो स्पष्ट है कि ये राजवी चाप अर्थात् चावडा वंश के थे। तदुपरान्त हरिवंश कार जिनसेन ने अपनी रचना गिरनार पर की। सिंहवाहनी शासनदेवी का जो उल्लेख किया है इससे ज्ञात होता है कि ईशु के आठवें शतक तक के पुराने काल मे गिरनार पर नेमिनाथ की शासनदेवी अम्बिका का मन्दिर विद्यमान था।

हरिषेण के बृहत्कथाकोश की रचना इस हरिवंशपुराण से डेढ़ शतक के बाद हुई । साढ़े बारह हजार श्लौकप्रमाण के इस ग्रन्थ में विविध विषयक १५७ जैन धर्म कथाएं दी गई है। उसके कर्ता ने अपना परिचय मौनि भट्टारक के शिष्य के रूप में दिया है। वह कहता है कि जैन मन्दिरों से संकीर्ण चन्द्र जैसी शुभ्र क्रान्ति से युक्त हर्म्यो से सभर और सुवर्णसमृद्ध जनों से व्याप्त वर्धमानपुर में इस कृति की रचना की गई थी। उन दिनों वहाँ इन्द्रतुल्य विनायकपाल नामक राजा का शासन चल रहा था। यह विनायकपाल भी कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार वंश का ही राजा था। विद्वानों के मत से विनायकहाल, क्षितिपाल, हेरम्बपाल आदि नाम इस वंश के सुप्रसिद्ध सम्राट महीपाल के ही हैं (देखिये कन्हैयालाल मुन्शी : ग्लोरी इट बोझ गुर्जर देश ग्रन्थ ३,पृ०१०५ तथा १०८,९)। बृहत्कथाकोश के अन्त में उसके रचना समय के बारे में कर्ता ने जो तफसीलें दी हैं उनसे यह खयाल आता है कि ज्योतिष की गणना के अनुसार यह ग्रन्थ ५वीं अक्टूबर, ९३१ से १३वीं मार्च, ९३२ के दरम्यान किसी समय लिखा गया है (देखिये, बृहत्कथाकोश की डॉ. उपाध्ये की प्रस्तावना, पृ०१२१) और इसमें राज्यकर्ता के तौर पर विनायकपास का उल्लेख किया गया है। दूसरी ओर राजा महीपाल का एक दानपत्र ई.सं.९३१ का प्राप्त हुआ है जिससे प्रतीत होता है कि विनायकपाल और महीपाल ये एक ही नृपति के दो नाम हैं।

जिनसेन एवं हरिषेण दोनों पुन्नाट संघ के साधु थे। हरिषेण ने अपने गुरू मौनि भट्टारक को "पुन्नाटसंधाम्बरसंनिवासी" कह कर वर्णित किये हैं और जिनसेन ने स्वगुरू कीर्त्तिषेण के गुरूबन्धु अमितसेन को "पवित्रपुन्नाटगणाग्रणीर्गणी" के रूप में आलिखित किये है; अर्थात् पुन्नाटसंघ दिगम्बर जैन साधुओं का एक समुदाय था। पुन्नाट देश के नांव से वह पुन्नाट कहलाया । खुद हरिषेण ने ही दो कथाओं में जो निर्देश किया है उसके अनुसार पुन्नाट देश दक्षिणापथ में स्थित था।

अनेन सह सङ्घेडपि समस्तो गुरूवाक्यतः ।
दक्षिणापथदेशस्थपुन्नाड विषयं ययौ ॥

(कथा १३१, श्लोक ४०)

१. वनराज चावडा ने ई० स० ७४६ में अणहिलवाड पाटण बसाया। उसके पूर्व प्राचीन गुर्जर देश में चावडाओं के कम से कम तीन राज्य थे श्रीमाल में, वढवाणा में और पंचासार में। ई०स० ६२८ में भिल्लमाल अथवा श्रीमाल में "ब्राहास्फुर्टासद्धान्त" नामक ज्योतिष के ग्रन्थ के रचयिता आचार्य ब्रहागुप्त कहते है कि चापवंश के तिलकरूप व्याघ्रमुख राजा जब वहाँ राज्य करता था तब यह ग्रन्थ उन्होंने लिखा। वढवाण के चापवंश का निर्देश उपर किया गया हैः वनराज का पिता जयशिखरी और उसके पूर्वज पंचासर के शासक थे।

पुन्नाटविषये रम्ये दक्षिणापथगोचरे ।
तलाटपीपुराभिख्यं बभूव परमंपुरम् ।

(कथा १४५,श्लोक ९)

दक्षिणापथ में भी कर्णाटक का एक भाग था। अद्यपर्यन्त इसके बारे में जो बहस हुई है, (देखिये "इंडियन कल्चर", ग्रन्थ ३, पृ० ३०३.१ पर ए०बी० सालेटोर का "एन्शेयन्ट किंगडम ओफ पुन्नाट", (नामक लेख), तथा कारणे अभिनन्दन ग्रन्थ में एम. जी पाई का रलर्स औक पुन्न्ट नामक लेख उसके अनुसार कावेरी और कपिनी नदियों के नीमवके बीच का प्रदेश जिसका मुख्य शहर कीर्तिपुर (अथवा किट्टीर) था। वही प्राचीन पुन्नाट प्रदेश हैं। यह स्पष्ट ही है कि "पुन्नाट संघ" का नाम इस प्रदेश के नाम पर से ही रचना रखा गया है। कर्णाटक दिगम्बर जैनों का केन्द्रस्थान था और आज भी है, लेकिन वहां के प्राचीन साहित्य में या लेखों में कहीं भी पुन्नाट संघ का उल्लेख नहीं मिलता। कभी कभी किट्टुर संघ का उल्लेख प्राप्त होता है जिसका नाम पुन्नाट प्रदेश के पाटनगर किट्टूर पर से रखा गया है और इसी से शायद पुन्नाट संघ विवक्षित हो सकता है। किन्तु यह तो निश्चित है कि विक्रम के नववें शतक के पूर्व ही कर्णाटक अन्तर्गत पुन्नाट का एक दिगम्बर साधु समुदाय सौराष्ट्र में आकर विशेषतः वढवाण के नजदीक के प्रदेश में स्थिर हुआ था और अपने मूलस्थान के नाम से पुन्नाट संघ नाम से प्रख्यात हुआ था। बृहत्कथाकोश की अनेक कथाओं में दक्षिणापथ के नगरों का जो उल्लेख मिलता है वह भी इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य हैं। मध्यकालीन गुजरात गुजरात का जैन साहित्य विशेषतः प्रबन्ध साहित्य यह स्पष्टतया दिखलाता है कि उस समय में गुजरात में इसके अलावा दूसरे भी दिगम्बर साधु समुदाय थे तथा दिगम्बर और श्वेतमाबरों के बीच अनेक विषयों में तीव्र स्पर्धा प्रवर्तमान थी। राजा सिद्धराज जयसिंह (ई.सं.१०९४.११४३) के दरबार में श्वेताम्बर आचार्य वादी देवसूरी और दिगम्बर आचार्य कुमुदचन्द्र के बीच जो प्रसिद्ध विवाह हुआ जिसमें आखिर कुमुदचन्द्र की पराजय हुई उसका निरूपण यशचन्द्ररचित समकालीन संस्कृत नाटक मुद्रितकुमुदचन्द्रप्रकरण में किया गया है तथा इस घटना का चित्रण आचार्य जिनविजयजी के द्वारा प्रकाशित चन्द्र समकालीन चित्रों में भी मिलता है।

कर्णाटकविनिर्गत दिगम्बर साधु समुदाय सौराष्ट्र में स्थित हुआ यह हकीकत गुजरात एवं कर्णाटक के सांस्कारिक सम्पर्क की घ्ष्टि से महत्वपूर्ण है। यह समग्र विषय एक अलग अध्ययन का पात्र है। यह तो अब निश्चित हुआ है कि उन दिनों वढवाण पश्चिम भारत के दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का एक महाकेन्द्र था। दिगम्बर साहित्य के दो सबसे प्रसिद्ध प्राचीन ग्रंथक्रमानुसार ठीक आठवीं और दशवीं शताब्दी में वढवाण में ही लिखे गये, तथा इसी नगर में रचित श्वेताम्बर साहित्य के प्रथम उपल्बध ग्रन्थ जालिहरगच्छ के आचार्य देवसूरिकृत प्राकृत पद्मप्रभचरित का रचनावर्ष सं०. १२५४ (इ.सं.११९८) हैं।

गुजरात की भूमि में ही हुए, इसके बाद के समय के, दो दिगम्बर कवियों के बारे में अब मै कुछ कहूँगा। ये दो कही हैं जसकीर्ति या यशःकीर्ति और अमरकीर्ति, जिन दोनों की कृतियाँ अपभ्रंश भाषा में लिखी हुई मिली है। यशःकीर्ति की दो अपभ्रंश रचनाएँ विदित हुई है। इनमें एक पाण्डवपुराण है, जिसमें जैन महाभारत की कथा अपभ्रंश पद्य में दी गई हैं। यह कृति वि.सं०. ११७९ (ई.सं.११२३) गुजरातमें रचित कतिपय दिगम्बर जैन ग्रंथ में विल्हसुत हेमराज नामक श्रावक की विनती से नवगांवपुर में लिखी गई। इस नवगांवपुर का स्थान निश्चित रूप से स्थापित किया नहीं जा सकता। यशःकीर्ति गुणकीर्ति के शिष्य थे। तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की जीवनी का आलेखन करनेवाली उनकी दूसरी अपभ्रंश कृति है "चदप्पहचरिउ"। इसकी सं०१५७१ में लिखी हुई १५० पत्र की एक पाण्डुलिपि मेरे मित्र पं० अमृतलाल मोहनलाल ने मुझे दी थी। चंदप्पहचरिउ का गन्थाय २३०८ श्लोंकों का है। उसमें कर्ता ने जो उल्लेख किया है उसके अनुसार हुंबड,जाति के कुमारसिंह के पुत्र सिद्धपाल

की विनती से गुर्जर देश में उम्मत्त गाँव में उसकी रचना हुई। उम्मत्त गांव उत्तरगुजरात में स्थित वडनगर के समीप का उमता गांव होगा। "पाण्डपुराण " की रचना जिस स्थान में हुई उस नवगांवपुर का भी गुजरात में होना असम्भव नहीं है, तथापि इसके लिये स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला है। मेरे पास की पाण्डुलिपि में से "चंदप्पहचरिउ" के आदि अन्त में से ऐतिहासिक घ्ट्या महत्वपूर्ण भाग यहां रखता हूं।

आदि

हुंबडकुलनहयलि पुष्कयंत बहुदेउ कुमरसिंहु वि महत ।
तह सुउ एिम्मलगुणविसालु सुप्रसिद्ध पभणइ सिद्धपालु ।
जसकिर्ति विवह फरी तुहुं पसाउ मह पूरइ पाइअकव्वभाउ ।
तं णिमुणिवि सो भासेइ मंदु पंगलु तोडेसइ केम चंदु ।

अन्त

गुज्जरदेसह उम्मत्तगामु तहिं छड्डासुउ हुउ दोएणामु ।
सिद्धउ तहो एंदणु भव्वबन्धु जिएधम्म भारि जं दिण्णु खधु ।
तसु सुउ जिड्डउ बहुदेउ भव्वु जि धम्मकज्जि विव कलिउ दव्वु ।
तहो लहु जायउ सिरिकुमरसिंहु कलिकालरिदहु हणणसिंहु ।
तसु सुउ संजायउ सिद्धपालु जिएपुज्जदाणगुणगणरसालु ।
तहो उवरोह इह कियउ गंथु हउण मुणभि किंपि वि सत्थगंथु।
धत्ता । जा चंददिवायर सव्व वि सायर जा कुलपव्वय भूवलउ ।
ता यहु पयट्टउ हियइं चहुट्टइ (उ) सरसइदेविहिं मुहतिलउ ।

इय सिरिचंदप्पहचरिए महाकइजसकिर्तिविरइए महाभव्वसिद्धपाल सवणभूसए सिरिचंदप्पह सामिणिव्वाणगसणणाम एयारहमो संधी समत्तो ॥

इस पाण्डुलिपि का हस्तलेख सौराष्ट्र के पूर्वतट पर के ऐतिहासिक नगर धोधा में हुआ था। उसकी पुष्पिका इस तरह है:

सं०१५७१ वर्षे आषाढ वदि १२ बुधे अद्ये इ धोधाद्रंगे श्री चंद्रप्रभचैत्यालये श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भ० देवेन्द्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० विद्यानदिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीमल्लिभूषणदेवास्तत्पट्टेलंकार गच्छनायक जिनाज्ञाप्रतिपालक छत्रीसगुणविराजमान बइतालीसदोषनिवारक औदार्यस्थैर्यगम्भीर्यादिगुणविराजमान भट्टारक श्री लक्ष्मीचंददेवोपदेशात् हुंबडज्ञातीय एकादशप्रतिमाधारक द्वादशविधतपश्वरणनिरत त्रिपंचास......... (पाण्डुलिपि का अन्तिम पत्र लापता होने से पुष्पिका की आखिरी चन्द पंक्तियां नहीं मिलती।)

इसके बाद का ग्रन्थ है अमरकीर्तिकृत "छकम्भुवएसो" अथवा "षट्कर्मोपदेश" । यह श्रावकों के धर्म का आलेखन करनेवाला अपभ्रंश काव्य है। इसकी रचना महीतट प्रदेश के गोद्रह (पंचमहाल जिले के गोधरा) मे सं०. १२७४ (ई.सं.१२१६) में हुई है। २५०० पंक्तियों के इस ग्रन्थ का सं.१५४४ में लिखा हुआ हस्तलेख अपभ्रंश और प्राचीन गुजराती के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्व. प्रो. केशवलाल हर्षदराय ध्रुव ने सर्वप्रथम प्राप्त किया था। तत्पश्चात प्रो.मधुसूदन मोदी ने उसका सम्पादन किया और गायकवाड्स्

हूमड इतिहास भाग २

ओरियेन्टल सिरीज में उसको प्रसिद्ध करने का आयोजन हो गया है। "छकम्मुवएसो" के कर्त्ता अमरकीर्ति दिगम्बर सम्प्रदाय के माथुर संघ के चन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। नागर कुल के गुणपाल एवं चच्चिणी के पुत्र अम्बाप्रसाद की प्रार्थना से इस काव्य की रचना हुई। कर्त्ता के अपने ही कथन के अनुसार अम्बाप्रसाद उनका छोटा भाई था। इससे विदित होता है कि अमरकीर्ति पूर्वाश्रम में नगर ब्राह्मण थे और बाद में उन्होंने दिगम्बर साधु की दीक्षा ली थी। उनका यह भी विधान है कि "छकम्मुवएसो" की रचना के समय गोद्रह में चौलुक्य वंश के कर्णराजा का शासन प्रवर्तमान था। गोद्रह के चौलुक्य राजाओं की शाखा अणहिलवाड पाटण के चौलुक्य राजवंश से भिन्न है, और अमरकीर्ति ने जिसका उल्लेख किया है वह कर्ण उससे करीब सवा सौ वर्ष पूर्व के गुजरात के चौलुक्य नृपति कर्णदेव (सिद्धराज जयसिंह के पिता कर्ण सोलंकी) से भिन्न है।

"छकम्मुवएसो " की प्रशस्ति में अमरकीर्ति ने अपने अन्य सात ग्रन्थों का उल्लेख किया हैं : "नेमिनाथचरित्र", "महावीरचरित्र", "यशोधरचरित्र", "धर्मचरित्र टिप्पण", "सुभाषितरत्ननिधि", "चूड़ामणी और ध्यानोपदेश" । तदुपरान्त यह कहता है कि लोगों के आनन्ददायक बहुतेरे संस्कृत प्राकृत काव्य भी उसने लिखे थे। परन्तु इनमें से एक कृति अभी मिलती नहीं है।

प्रमाण में प्राचीन काल में गुजरात में रचित दिगम्बर साहित्य की ये उपलब्ध रचनाएँ हैं। यदि ऐसी अन्य कुतियों की भी खोज की जाय तो गुजरात के दिगम्बर सम्प्रदाय के इतिहास पर एवं तद्द्वारा गुजरात के सांस्कृतिक इतिहास पर ठीक ठीक प्रकाश डाला जा सकेगा ।

व्रतके आद्य कर्तव्य

१ दिनमें एक बार शुद्ध भोजन करना एकाशन या प्रोषध कहलाता है। दो रात्रि तथा एक दिन (१२ पहर) कुछ न खाकर अनशन करना उपवास कहलाता है तथा उपवासके पहिले दिन तथा अगले दिन प्रोषध करना सो प्रोषधोपवास कहलाता है। जिनकी की अवधि क्रमसे ८.१२.१६ पहर की मानी गई है।

२. व्रतके दिनोंमें पाप कषाय तथा गृहारंभ त्याग कर मन वचनकी एकाग्रतासे पूजन भजन स्वाध्यायमें ही समय व्यतीत करना श्रेष्ठ है एवं शास्त्रोक्त मालासे या हाथसे ही सामायिक त्रिकाल विधि पूर्वक देना चाहिये तथाच जिस व्रतमें कोई निश्चित मन्त्रादि नहीं दिये गये हैं। वही पर "णमोकार मन्त्र" या "असिआउसा " इन मन्त्रोंकी माला देनी चाहिये, किन्तु उच्चारणकी शुद्धि विशेष अपेक्षणीय हैं।

३ व्रतोद्यापन यशाशक्ति आवश्यकीय है, असमर्थतामें व्रत द्विगुणित काल तक करनेका विधान है, किन्तु उद्यापनमें शक्ति न्हृव न हो क्योंकि लौकिक संपत्तिसे ममेदं भावको दूर करनेके हेतु ही व्रत किये जाते हैं।

४. व्रतका माहात्म्य अचिन्त्य है उसमें विशुद्ध भावनाओ को विशेष स्थान मिलता है, अतः व्रतके दिनोंमें सांसारिक वासनाओं का त्याग कर घ्ढ ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहिये ।

५. व्रतके दिनोंमें निम्न भोगोपभोग सामग्रियोंका यथाशक्ति त्याग ही अन्यथा मन वचन काय कुतकारितानुमतसे परिमाण तो आवश्यकीय है ही। भोजन,वाहन,शयन,तैजमर्दन, सचित फल फूल सेवन स्नान विशेष वस्त्राभूषण ताम्बूलादिक,रागोत्पादक गीत नृत्य नाटक सिनेमा आदि तथा कुसंगति।

६. व्रती पुरुषको श्रावकके सम्पूर्ण नियमोंका पालन करना आवश्यकीय हैः जैसे अष्ट मूलगुण, गृहस्थके दैनिक षट् कर्म, बाईस अभदय त्याग, सत्रह यम नियम, मैत्री प्रमोदादि चार भावना, जल गालन क्रिया विधि,

ब्रह्मचर्यकी दृढ़ता व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा एवं तत् सम्बन्धी पूरा ज्ञान इन सब बातोंका पालन करना जरूरी है क्योंकि यह बातें व्रतके प्रति दृढ़ता सद्भावना एवं निर्दोष परिपालन में विशेष सहायक हैं। व्रतमें होनेवाले अतीचारोंका भी पूरा पूरा ज्ञान, सूतक प्रमाण प्रायश्चित, कार्योत्सर्ग विधानादिका ज्ञान आवश्यकीय है।

७. द्रव्य क्षेत्र काल भावानुसार शास्त्रानुकूल विधिमें परिवर्तन भी किया जा सकता है।

निवेदक
बाबुलाल जैन "फणीश" शास्त्री **A. J. P. H.**
प्रधानाध्यापक, श्री दि०जैन विद्यालय
आनन्दपुर कालू (मारवाड़)

कुछ जैन व्रतोंकी सूची

१. अष्टाह्निका व्रत	२. षोडसकारण	३. दशलक्षण	४. रत्नत्रय
५. पुष्पांजलि	६ रविवार	७ मुष्टि विधान	८. संकट हरण
९. नित्यरसी	१०. ज्येष्ठ जिनवर	११. षट्रसी	१२.णमोकार पैतीसी
१३. समकित चौवीसी	१४. चौवीसी तीर्थंकर व्रत	१५. कर्मचूर	१६.भावना पच्चीसी
१७. लघु सिंह निष्क्रीडीत	१८. सप्तकुम्भ	१९ लब्धि विधान	२० वृहत्सिंह निष्क्रीडित
२१. लघु पल्य विधान व्रत	२२ वृहत् विधान	२३ दुख हरण	२४ त्रिगुणसार
२६ त्रेपन क्रिया	२७ नक्षत्रमाला	२८ भाद्रवनसिंह निष्क्रीडित	२९ बारहसौ चौतीसा
३० सर्वतोभद्र	३१ महासर्वतोभद्र	३२ जिनपूजापुरंदर	३३ लघुधर्मचक्र
३४ वृहद्धर्मचक्र	३५ वृहज्जिनगुणसंपत्ति	३६ मध्यम गुणसंपत्ति	३७ लघु गुणसंपत्ति
३८ शीलकल्याणक	३९ वृहत्सुखसंपत्ति	४० मध्यम संपत्ति	

आर्यिकाओं का धर्म एवं संस्कृति के विकास में योगदान

डॉ.कस्तूरचन्द कासलीवाल
एम० ए०, पी.एच० डी०, शास्त्री, जयपुर

भगवान् ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी तक सभी तीर्थंकरों के युग में आर्यिकाओं का साधु समाज में समादरणीय स्थान रहा हैं। भगवान् महावीर के संघ में मुनियों से आर्यिकाओं की संख्या अधिक थी। ये सर्वत्र विहार करती हुई धर्म एवं संस्कृति की अर्पूव सेवा करती रहती थीं। चन्दनबाला जैसी आर्यिका ने अपने जीवन से त्याग एवं तपस्या का आदर्श प्रस्तुत किया था। उनके पश्चात् देश में आर्यिकाओं की परम्परा में बराबर वृद्धि होती गयी और आचार्यों के संघो में रहते हुए उनके द्वारा जैन संस्कृति के विकास में बराबर योगदान मिलता रहा। लेकिन जिस प्रकार आचार्यो का इतिहास सुरक्षित रखा गया तथा आचार्य परम्परा का पट्टावलियों में उल्लेख होता रहा उस प्रकार आर्यिकाओं का कोई पृथक् इतिहास नही मिलता और न उनकी परम्परा को ही समाज द्वारा मान्यता प्राप्त हुई। इसका प्रमुख कारण उनका मुनि संघो में रहना था। वहाँ उनके व्यक्तिगत का विकास नही हो सकायही कारण है कि आर्यिकाओ का कोई व्यवस्थित इतिहास नही मिलता।

भट्टारक युग में भट्टारकों के संघ में मुनियों एवं ब्रह्मचारियों के समान आर्यिकायें भी वहीं रहतीं थीं तथा धर्म, संस्कृति एवं समाज के अभ्युत्थान में जितना योग हो सकता था उतना देती रहती थी। भट्टारक सकलकीर्ति नुराम में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि उनके संघ में महाव्रती, ब्रह्मचारी, आर्यिका, क्षुल्लिका आदि सभी थी। उक्त उल्लेख के अतिरिक्त, एक अन्य भट्टारक पट्टावली में भट्टारकों के संघ में निम्न प्रकार आर्यिकाओं की संख्या एवं उनके नाम आदि मिलते हैं।

१. भट्टारक विजयकीर्ति (१४वीं शताब्दी) के संघ में आर्यिकाओ की संख्या १५ थी।
२. भट्टारक रत्नकीर्ति के संघ में १५ आर्यिकायें थी। पट्टावली में उनके नाम निम्न प्रकार दिये है। आर्यिका बाई, माणीकश्री, बाई पमाई, बाई पुरी , बाई अमरी रंगो, डाही, कोहोति,वाल्ही,होरू, रूखमाई, अबाइ, नाकू, पुगी एवं चंपाई।
३. मंडलाचार्य यशकीर्ति के संघ में १३ आर्यिकाएँ रहती थी जिनमें बाइ हीरा,वसि,कान्हि,हर्षा, अदा,गागी,चंगी के नामों का उल्लेख किया गया है।

इसी तरह और भी भट्टारकों एवं मडलाचार्यो के संघ में रहनेवाली आर्यिकाओं के नाम गिनाये हैं जिनसे पता चलता है कि भट्टारक युग में ये साध्वियाँ आर्यिकाएँ एवं ब्रह्मचारिणियों के पद पर रहकर निवृत्ति मार्ग पर चलती थीं।

उक्त उल्लेखों के अतिरिक्त जैन ग्रंथ प्रशस्तियों में कुछ ऐसे भी पाठ मिले है जिनके अध्ययन से पता चलता है कि १६वीं एवं १७वी शताब्दी में आर्यिकाएँ स्वतन्त्र रूप से जो विहार करती थीं और आत्म साधना के अतिरिक्त ये जैन साध्वियाँ प्राचीन ग्रथों की प्रतिलिपियाँ करवाकर उनको साधुओं एवं साध्वियों की अध्ययन के लिये देती रहती थीं इनमें कुछ उल्लेख निम्न प्रकार हैं।

१. संवत् १५४३ आसोज सुदी ४ गुरूवार के दिन हिसारोपण कोट में साध्वी कमलश्री ने महाकवि पुष्पदन्त के आदिपुराण की प्रतिलिप करवाकर मन्दिरमें विराजमान किया था। कमलश्री ने यह कार्य अनेक व्रत विधान एवं तप आदि करने के पश्चात् किया।
२. संवत् १५९३ में आर्यिका विनयश्री एक विदुषी आर्यिका हुई थी। वह अप्रभ्रंश,संस्कृत आदि भाषाओं के ग्रंथों का खूब स्वाध्याय करतीं थी इसलिये पं० जयमित्रहल विरचित वर्द्धमान चरित की प्रतिलिपि

करवा कर धाना अजमेरा की पत्नी नेमी ने उसे भेंट स्वरूप प्रदान की थी।

इन्हीं आर्यिका विनयश्री को संवत् १५९५ के भाद्रपद शुक्ला १३ को सुरजिन अजमेरा की धर्मपत्नी सुनखती ने दशलक्षण व्रत के उद्यापन कर महाकवि सिंह के अपभ्रंश काव्य पज्जुण्णचरिउ की प्रतिलिप करवाकर भेंट कीं थी। उक्त दोनों प्रशस्तियों से ज्ञात होता है कि १९वीं शताब्दी में आर्यिकाएँ प्राकृत अपभ्रंश की भी अच्छी विदुषी होती थीं।

३ संवत् १६९१ भादवा सुदी ३ शुक्रवार का एक और उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार आर्यिका बाई करपा ने ब्रह्म कामराज विरचित जयकुमारपुराण की प्रतिलिप करवाकर स्वाध्याय के लिये उसे मन्दिर में विराजमान किया।

४. विद्वानों के पढ़ने के लिए भी ग्रन्थों की प्रतिलिप करवाकर उन्हें भेंट दिया करते थे। संवत् १६६८ भाद्रपद शुक्ला १२ रविवार का भी इसी प्रकार उल्लेख मिलता है जिसमें आर्यिका बाई हीरा ने सकलकीर्ति के वर्द्धमान पुराण की प्रतिलिपि करवाकर पं० सकलचन्द्र को पढ़ने के लिये प्रदान की थीं।

हूमड़ समाज की मान्यताओं में विभाजन

हूमड़ समाज प्रारम्भ से ही जैन धर्म का अनुआई रहा है । समय के प्रभाव में इसमें अनेक धार्मिक मान्यताओं का विभाजन होता रहा है । हमारा उद्देश्य किसी विशेष पंथ की टीका या विरोध करने का नही है परन्तु हूमड़ समाज की मूल मान्यताओ, परम्पराओ और समय २ पर परिवर्तन और वर्तमान परिस्थितिओ का विश्लेषण इतिहास में आवश्यक है इसी द्रष्टी बिन्दु को लक्ष्य करके यह अध्याय लिखा जा रहा है :-

इन सब मान्यताओ में सबसे महत्व और चर्चा का विषय है तेरापंथ और बीस पंथ हम इस विषय में निम्न इतिहासकारो और उनके प्रकाशित ग्रन्थो से इस विषयकी चर्चा करके यह नया पंथ कब, किस विशेष परिस्थितिओं में प्रारम्भ हुआ और हूमड़ समाज पर उसका क्या प्रभाव हुआ ये ग्रन्थ निम्न है ।

(१) Jainism in Rajasthan By Kailahehandr Jain प्रकाशक जैन सांस्कृति संघ सोलापुर

(२) खण्डेलवाल जैन समाज का बहद इतिहास ड्रा. कस्तूरचंद कासजीवास

(३) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ बलभद्र जैन भाग ४ भारतीय तीर्थ क्षेत्र कमिटि

(४) Through the Age of Jain Society

तेरह पंथ का उद्‌भव :-

भट्टारक नरेन्द्रकिर्ती का संवत १६९१ में पूर्ण प्रभूत्व होने परभी आगरा में जो आध्यात्म शैली थी और महाकविबनासीराय जिसके प्रमुख प्रचारक थे उनका प्रभाव राजस्थान में भी आने लगा था और प्रगटरुप में नही सही किन्तु छीपे रुप में भट्टारको की धार्मिक तानाशाही के विरुद्ध जनमानस बनने लगा था ।

इसके पश्चात आगरा में जो आध्यात्मियो का संगठन बना उसका प्रभाव राजस्थान पर भी पडा। प. पन्नालाल ने तेरहपंथ खण्डन नामक ग्रन्थ में लिखा है कि

दस दिक्‌पाल उथापि । गुरुचरणां नही लागै २।
केसर चरणा नही घरै ३, पुष्पापूजा फूनि त्यागै ४ ॥
दीपक अर्चा छांडि ५, आसिका छमाल न करही ७ ।
जिन न्हावणा ना करै ८, रात्रि पूजा परिहरही ९।
जिनशासन देव्यां तजी १०। रांध्यो अन्न चहौडे नही ११।
फल न चढावे हरित फुनि १२, वैठिर पूजाकरे नहीं १३,
ये तेरे उरधारि पंथ तेरै उर थापे ।
जिन शास्त्र सूत्र सिद्धांत महिला वचन उथप्पे ॥

संवत १७४९ में कामां वालोने सागानेर के भाईयों को एक चिट्ठी लिखी थी । इसमें कामा वालो ने लिखा है कि हमने इतनी बाते छोड़ दी है सो आप भी छोड देना - जिनचरणों में केसर लगाना, बैठकर पूजा करना, चैत्यालय भंडार रखना प्रभु को जलौट पर रख कर कलश ढोलना क्षेत्रपाल और नव ग्रहो की पूजा करना मन्दिर में खोलना और पंखे से हवा करना, प्रभु की माला लेना और मंदिर में भोजकों को आनेदेना भोजको द्वारा बाजे बजवाना रांधा हुआ अनाज चढाना थालोडी करना, मंदिर में जीमन करना, रात्रि को पूजन करना, रथयात्रा निकलाना, मन्दिर मे सोना आदि । आगे चलकर तेरहपंथी अपने आपको शुद्धाम्नायी कहने लगे । संवत १६११ में भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति का सांगानेर में भट्टारक गादी पर अभिषेक हुआ । ये बडे जबरदस्त भट्टारक थे

। बख्त रामशाङ ने अपने बुद्धि विलास में निम्न पद्य से की है।

नरेन्द्रकीर्ति नाम, पट इक सांगानेर में।
भये महागुण धाम, सोलहसे इक्यान में।

अद्यात्म विचारधारा जो पहले शैली के रुप में अपना स्थान बना रही थी अब एक पंथ के रुप में उभर कर सामने आयी और सबसे पहले उसने अपना नाम तेरहपंथ रखा।

बुद्धि व्लास में तेरहपंथ का उदय संवत १६८३ में माना है-

इनही गछ में नीकिस्यों नूतन तेरहपंथ।
सौरहसै तीयासिये सो सब जग जानंत ॥

इस प्राकार तेरहपंथ के उदट संवत १६८३ में हुआ महाकवि बनारसीदास के जीवन काल में ही अध्यात्म शैली ने एक पंथ का रुप धारण कर लिया और वही तेरहपंथ कहलाने लगा। अमरचन्द्र भांवसा ने अपनी संपूर्ण शक्ति तेरहपंथ के विस्तार में तथा भट्टारको के विरोध में लगा दी तेरहपंथ विचार धारा जो अब तक बहुत शिथिलता से आगे बढ रही थी अब तेजी से आगे बढने लगी अमरचन्द्रभांवसा तन, मन और धन से अपना संगठन मजबूत करने में लग गया।

तेरहपंथ जो पहले अध्यातम शैली के नाम से प्रसिद्ध था, आगरा में उसका सबसे अधिक प्रचार था लेकिन महाकवि बनारसीदास की मृत्यु के पश्चात् यह शैली राजस्थान की ओर बढने लगी और पहले कामा में तथा बाद में रागांनेर में आकर जम गयी। अब तो समाज के विद्वान भी दो वर्गो में विभाजित गये एक वर्ग भट्टारको की छत्रछाया में रहने लगा तो दूसरा वर्ग तेरहपंथ के गुणानुवाद गाने लगा। इस तरह समाज दो विचारधाराओं में बंट गया। और ढूंढाड प्रदेश दोनो विचारधाराओं का प्रमुख केन्द्र माना जाने लगा।

अध्यात्म शैली वाले तेरहपंथी कहलाने लगे भट्टारको का समाज पर पूर्ण प्रभुत्व था। भ. नरेन्द्रकीर्ति के पश्चात भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति (संवत १७२२-३३) भट्टारक जगत्कीर्ति (समवत १७३३-७९) भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति (१७७१-९२) तथा भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति (संवत १७९२-१८१४) हुये ओर उन्होंने समाज पर अपना एक छत्र प्रभुत्व बनाये रखने का पूर्ण प्रयास किया लेकिन कभी दबे हुये स्वर में और कभी उभरे स्वरों में उनका विरोध होने लगा। ओर धीरे-धीरे विरेधियों की संख्या बढने लगी और समर्थक धीरे धीरे घटने लगे। कभी पंचामृत अभिषेक को लेकर, कभी खडी एव बैठ कर पूजा करने को लेकर समाज मं अशान्ति मच जाती दीरे ढूंढाड प्रदेशमें तेरहपंथियो ने अपने अलग मन्दिर बनवा लिये। सभी मंदिरो का एकसा रुप रहा। जयपुर के अतिरिक्त आमेर, सागांनेर, निवाई सवाई माधेपुर, दौसा बसवा, मालपुरा आदि अनेक नगरों एवं गाँवों में तेरहपंथी मंदिर बनाये गये। गांवा में तेरहपंथी नाम से जैनो का एक वर्ग विशेष बन गया। स्वयं जयपुर में भी दो पंचायती मंदिर तेरहपंथियों के दो बीस पंथियो के नाम से विभाजन हो गया।

दोनें सम्प्रदायो की यह स्पर्श उभरकर जयपुरक सामाजिक संगठन में भी परि लाक्षित हुई। बीस पंथ सम्प्रदाय जयपुरके पटौदी मंदिर और चाकसु के मंदिर में अपने पंचायते स्थापित की तो तेरहपंथी सम्प्रदाय ने भी बड़ा मन्दिर और वाधीचन्द्र के मन्दिर में अपनी पंचायतो की स्थापना की।

From Jainisumm Rajsthan P.22 By Dr. Kailashehandr Jain

TERAPANTYI SECT :

The idolatrous sect to Terapanthis was founded by pt. Amara chandar Badajatiya, a resident of

Sanganer. it become repidly popular in Rajputana in the 17th century. Originally. It was knoen as vidhimarga but its oppnents nicknemed it as Terapan this just to ridicue it. TheTerapan this protested against the elaborate ritualism of the Bhattarakas. During the life time of Banarasidasa, the great scholar and refarmer of Agara, this sect gained great popularity the Terapan this do not recognize the superiar position of the Bhattarakas. The Terapan this of the Svetambortas the Digambaras D`iffer from each other. The farmer do not worship the imager while the later do, the digambara terapan this warship the images but not with the flowers fruits, sanciou and praksbala.

From : भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ बलभद्रजैन निम्न विवरण पेज १९-२०

(तीर्थभेत्र कमेटी प्रकाशन)

पूजन विधिके प्रसंगमें समाजमें कुछ मान्यता-भेद है। अष्टद्रव्योंके नामों के सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं है। केवल मतभेद है सचित और अचित (प्रासुक) सामग्रीके वारेमें। एक वर्गकी मान्यता है कि अष्ट द्रव्यों में जो नाम है, पूजनमें वे ही वस्तु चढ़नी चाहिए। इसके विपरीत दूसरी मान्यता है कि सचित वस्तुमें जीव होते है, उनकी हिंसाकी सम्भावनासे बचनेके लिए प्रासुक वसतुओंका ही व्यवहार उचित है।

मतभेदका दूसरा मुद्दा है भगवान पर केशर चर्चित करनेका। इसके पक्षमें तर्क यह दिया जाता है कि अष्टद्रव्योंमें दूसरा द्रव्य चन्दन या गन्ध है। उसका एक मात्र प्रयोजन है भगवानपर गन्ध विलेपन करना। दूसरा पक्ष इस बातको भगवान वीतराग प्रभुकी वीतरागताके विरुद्ध मानता है और गन्धलपको परिग्रह स्वीकार करता है।

पूजनके सम्बन्धमें तीसरा विवाद इस बातको लेकर है कि पूजन बैठकर किया जाये या खड़े होकर। चौथाविवादास्पद विषय है भगवानका पंचामृताभिषेक अर्थात् धृत, दूध, दही, इक्षुरस और जल। पाँचवाँ मान्यता भेद स्त्रियों द्वारा भगवानका प्रक्षाल।

(६) स्वयं में इन्द्र स्थापना कर जिस प्रंकार इन्द्रने सुमेरु पर्वत पर भगवान का अभिषेक किया था उसी प्राकार प्रतिदिन अभिषेक करना आदि। (भारत के दि. जैन तीर्थ, राजस्थान, गुजरात) महाराष्ट्र आदि में वर्तिमान में भी में इन्द्रकी स्थापना करके भगवान का अभिषेक किया जाता है।

इन मान्यता भेदोंके पक्ष विपक्षमें पड़े बिना हमारा विनम्र मत है कि भगवानका पूजन भगवानके प्रति अपनी विनम्र भक्तिका प्रदर्शन है। यह कषायको कृश करने, मनको अशुमसे रोककर शुभमें प्रवृत्त करने और आत्म-शान्ति प्राप्त करनेका साधन है। साधनको साधन मानें उसे साध्य न बना लें तो मान्यता भेदका प्रभाव कम हो जाता है। शास्त्रों को टटालें तो इस या उप पक्षका समयेन शास्त्रोंमें मिल जायेगा। जिस आचार्यने जिस पक्षको युक्तियुक्त समझा, उन्होने अपने ग्रन्थमें वैसा ही कथन कर दिया। उन्हें न किसी पक्षका आग्रह था और न किसी दूसरे पक्षके प्रति द्वेष-भाव।

हमें लगता है, अपने पक्षके प्रति दुराग्रह और दूसरे पक्षके प्रति आक्रोश और द्वेष-बुद्ध, यह कषाय में से उपजता है। इसमें सन्देह नही कि सचित फलों और नैवेद्य (मिष्टात्र आदि) का वर्णन तिलोयपण्णत्ति में नन्दीश्वर द्विपमें देवताओंके पूजन-प्रसंगमें मिलता है, अन्य शास्त्रोंमें भी मिलता है। किन्तु हमारी विनम्र मान्यतामें जब शुद्धाशुद्धि और हिंसा आदिका विशेष विवेक नहीं रहा, उस काल और क्षेत्रमें सुधारवादी प्रवृत्ति चली और इसपर बल दिया गया कि जो भी वस्तु भगवानके यां अर्पण की जाये, वह शुद्ध हो प्रासुक हो, सूखी हो, जिसमें हिंसाकी सम्भावनासे बचा जा सके। यही बस गन्ध-विलेपन और पंचामृताभिषेकके ,समाबन्धमें है।

पूजाकी विधि और उसका क्रमिक विकास

श्रावकके दैनिक आवश्यक कर्मोमें आचार्य कुन्दकुन्दने प्राभृतमें तथा वरांगचरित और हरिवंशपुराण में दान, पूजा, तप और शोल ये चार कर्म वतलाये है। भगवज्जिनसेनने इसको अविक व्यापक बनाकर पूजा, वार्ता, दान, स्वाध्याय, संयम और तपको श्रावकके आवश्यक कर्म बतलाये। सोमदेव और पद्मनन्दिने देवपूजा, गुरुपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षडालश्यक कर्म बतलाये।

इन सभी आचार्योने देव-पूजाको श्रावकका प्रथम आवश्यक कर्तव्य बताया है। परमात्मप्रकाश (१६८) में तो यहाँ तक कहा गया है कि "तूने न तो मुनिराजोंको दान ही किया, न जिन भगवान् की पूजा ही की, न पंच परमेष्ठीयों को नमस्कार किया, तब तुझे मोक्षका लाभ कैसे होगा ?" इस कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवानकी पूजा श्रावकको अवश्य करनी चाहिए। भगवानकी पूजा मोक्ष-प्राप्तिका एक उपाय है।

आदि-पुराण पर्व ३८ में पूजाके चार भेद बताये है - नित्यपूजा, चतुर्मुखपूजा, कल्पद्रुपूजा और अष्टाह्निकपूजा। अपने वरसे गन्ध, पुष्प, अक्षत ले जाकर जिनालयमें जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना सहार्चन अर्तात् नित्यमह (पूजा) कहलाता है। मन्दिर और मूर्तिका निर्माण करना, मुनियोंकी पूजा करना भी नित्यमह कहलाता है। मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा की गयी पूजा चतुर्मुख पूजा कहलाती है। चक्रवर्ती द्वारा की जानेवाली पूजा कल्पद्रम पूजा होती है। और अष्टाह्निकामें नन्दीश्वर द्वीपमें देवो द्वारा की जानेवाली पूजा अष्टाह्निक पूजा कहलाती है।

पूजा अष्टद्रव्यसे की जाती है जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल। इस प्रकारके उल्लेख प्रायः सभी आर्ष ग्रन्थों में मिलते है तिलोयपण्णत्ति (पंचम अधिकार, गाथा १०२ से १११) में नन्दीश्वर द्वीपमें अष्टाह्निका में देवों द्वारा भक्तिपूर्वक की जानेवाली पूजाका वर्णन है। उसमें अष्टद्रव्योका वर्णन आया है। धवला टीकामें भी ऐसा ही वर्णन है। आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण (पर्व १७, श्लोक २५२) में भरत द्वारा तथा पर्व २३, श्लोक १०६ में इन्द्रो द्वारा भगवानकी पूजाके प्रसंगमें अष्टद्रव्यों का वर्णन आया है।

Pry Vilas A. Sangava in his Book
Through the AGE of Jain Society

Revolts against Jaina Religious Authorities

Thirdly, it may be maintained that sects and sub-sects arise as a direct result of the revolts against the actions and policy of ruling priests or religious authoritis including the heads of the Church. Those who are at the helm of religious affairs are likely to swerve from their prescribed path and debase themseleves or they are likely to be too strict in maintaining and preserving the religious practices in a manner they think it proper, without taking into account the needs of the changing conditions. In both the cases natural indignation is bound to occur on the part of the thinking population and there should not be any surprise if this accumulated indignation and

discontent take a turn in formulating and orgainsing a separate sect. For example, Martin Luther revolted against the high-handed policy of Popes and Priests in Christian religion and founded the section of Prot estants in that religion. Generally the same thing happened in jaina religion also.

As a result of these factors the jaina religion whice was one and undivided upto the time of Tirthankara Mahavira and even upto the beginning of the Christian Ear got divided first in to the two major sects, viz, Digambara and Shvetambara, and later on into many sub-sect in each sect. This has given rise to a number of sections and sub-sections in Jainism and the By Vilas a Sangara

Sub Sects graduadly strangup on account of different intertnetation and the hontitto but on the canonical lexts from tiome to time and to revath or orthorition by of heohle apainst the estalelished religues athorities and the tradional religious Rited and Rituala.

The Big Sects dirided in

(1) Bishenthri

(2) Terahanthri

(3) Tranparithri or Samaiya that

It is heally very hertinant to that there two rule rats entinly apree on the bans Preechts heretainnir to trithkars, Serihtures & as ceties but Different in the meous of Wouship.

महाराष्ट्र का मूर्ति लेख

(१) श्री १००८ आदिनाथ दि. जैन मन्दिर

श्री १००८ आदिनाथ मन्दिर विक्रम संवत १८८५ इ.स. १८२९ मागसे सुद ५ मूलनायक प्रतिमा १००८ आदिनाथ भगवान काले पाषाण १ फीट की है ।

इस मंदिर में प.पू. श्री १०८ आचार्य शांतिसागरजी महाराज ने मंदिर प्रवेश जिल जिन जैन समाज को लागु न हो इसके लिये अन्नत्याग प्रतिज्ञा की गई ।

इसके प्रतिष्ठाकार श्री नारेजी है और इस मंदिर के सामने संगमरमर का मानस्तंभ है । प्रतिष्ठाकार-श्री तलकचंद देवचंद गांधी गंगाराम लक्ष्मीचंद दोशी, रामचंद राधवजी दोशी ने संवत् १९८९ इ.स. १९३३ जेठ वद ९ प्रतिष्ठा करायी है ।

(२) श्री १००८ चन्द्रप्रभू दि. जैन मन्दिर

(२) श्री १००८ चन्द्रप्रभु मंदिर के किल्ले के आकारका है । प्रतिष्ठा कराने वाले श्रीमान जयचंद्र मागड खाडेकर वि. संवत् १८०५ इ.स. १८३९ फागण वद ७ गुरुवार

इस मंदिर में ५ (पांच) बडे मंदिर और ३१ छोटे मंदिर है । संवत् २०११ में प. पू. श्री १०८ आचार्य, शांति सागरजी महाराज के उपदेश से मुंबई निवासी श्रीमान शिवलालमाणेकचंद्र कोठारी ने संगमरमर का मानस्तंभ निर्माण किया ।

इस मंदिर में प.पू १०८ शांति सागरजी महाराज के ईरक जयंति महोत्सव के समय (धवल ग्रंथ) को ताम्रपत्र में अंकित करके बिराजमान किया गया ऐवम् आचार्य धरसेन स्वामी की मूर्ति को स्थापित किया गया।

इसी मंदिर में संवत् १९६५ श्रीमान शीवलाल माणेकचंद कोठारीने चांदी का रथ निर्माण करके मंदिर को भेट किया गया ।

(३) श्री १००८ पाश्वनाथ दि. जैन मंदिर

इ.स. मंदिर को श्रेष्ठी श्री उगरचंद्र वेणीचंद्र शाह ने विक्रम संवत् १९१० में निर्माण कराया ।

(४) चंन्द्र प्रभु दि. जैन मंदिर

यह मंदिर विक्रम संवत् १९३० में प्रतिष्ठा की गई है ।

(५) श्री १००८ सहस्त्रफूट दि. जैन मंदिर

यह मंदिर विक्रम संवत् १९६० इ.स. १९०४ मागसर सुद ५ श्रीमान जीवन रहेणीचंद गांधी अगर नथ्थुराम जयचंद्र कडुं ने मंदिर निर्माण कराया गया ।

इ.स. मंदिर में १०८ आचार्य शांतिसागरजी के चरण पादुका विक्रम संवत् २०३० में प्रस्थापित किया गया।

अन्य त्यागी वर्ग उपस्थित रहने की संभावना है ।

(३) श्री १००८ आदिनाथ मंदिर फलटन के पास जो श्री १००८ पाश्वनाथ मंदिर फतर का है । उस मंदिर के दिवारपर एक शिलालेख अभि भी मौजूद है । वह शिलालेख निचे के अनुसार है । मंदिर की प्रतिष्ठा इटर के भट्टारक श्री सुरेनेद्रकीर्तिजी करकमलो द्वारा हुई थी ।

शिला लेख

संवत १९९५ माघ श्रु ९ गुरुवार मूलसंघे सरस्वती गच्छे बालात्करगणे कुंदकुदा आर्याव्ये भट्टारक श्री 'पद्मनंदि

देव' तटपट्टे । श्री सफल कीर्ति तत्पदे श्री गुणकिर्ति तत्पदे 'श्री वारिभूषण ' तत्पदे 'रामकीर्ति' तत्पदे 'पद्मनंदि' तत्पदे 'श्री देवकीर्ति'तत्पदे 'क्षेम कीर्ति' तत्पदे 'नरेन्द्रकीर्ति' तत्पदे 'विजयकीर्ति' तत्पदे 'नेमिचंद्र' तत्पदे 'चंद्रकीर्ति' तत्पदे 'रामकीर्ति' तत्पदे 'यशकीर्ति' तत्पदे भट्टारक श्री 'सुरेन्द्रकीर्ति' तत्रोपदेशात प्रतिष्ठितम् ।

उपरके शिलालेख में भट्टारक परंपरामें करीब २० बीस भट्टारक श्री की नामावली है । और ने ईडरमें परिले प्रमुख भट्टारक रहे है । उन्ही भेदी अमृतहस्ते प्रतिष्ठादि कार्य करते थे । फलटनसे इडर इतने दूर होते हुओ भी प्रवास के साधन विशेष रुपसे नही थे । पूज्य भट्टारक उस समय कैसा प्रवासकरते थे । इस बारेमें मेनामें बंढकर प्रवास करते थे कहीभी इल्कट्रीक ट्रेन नही मिलता । इतने टूट जाने आनेमें समय कितना लगता होगा । साथमें लावाजमा कितना होगा ? आहार की व्यवस्था कैसी होती था । ये सब पाश्नो का उत्तर मिलना कठीन है । कयु की कभी भी उल्लेख नही है । मेरा रन्यालसे पूज्य भट्टारक महाराजका प्रवास मेनामें बेठाकर ही होता होगा ।

दूसरी बात और भी विचारणीय है । हूमड़ समाज इटर से महाराष्ट्र में आये हूमड़ समाज को श्रद्धा स्थान तथा पूज्य गुजरात देशके भट्टारक (उसीसमय) ही रोते होगे और इसलिये इडर इतना दूर होते हुओ भी पूज्य भट्टारक स्वामिजी को निमंत्रित करते थे । वेसे तो महाराष्ट्र में कोल्हापूर नंदजी तेरदव बेल गांव और कनरिक में पूज्य भट्टारको का वास्तव्य था वे भी प्रतिष्ठादि कार्य करते होगे । लिखने का मतलब करिब १००/१५० वर्ष पहेले हूमड़ समाज इडर गादिके भट्टारको कोई आमंत्रित करते थे । अभी अभी ७५/१०० वर्ष में कोल्हापूर आदि पू. भट्टारक स्वामीजी को आमंत्रीत करते हैं ।

(६) श्री १००८ पद्मप्रभु दि. जैन मंदिर (मंगलवार पेठ)

इस मंदिर में श्रीमान् मियाचंद्र धनजी दोशी, केवलचंद मुलुकचंद भूताल ऐवम रायचंद्र भवन शाह ने प्रतिष्ठा कराकर मूर्ति बिराजमान की

(७) माणिक चन्द्र दि. जैन ग्रंथ माला ग्रन्था ४८

जैन शिलालेख संग्रह (भाग ८) सम्पादक डॉ. विद्याजी जोहरापुर प्रकाशन भारतीय ज्ञान पोथी काशी वी. नि. सं. २८९१. सेनगण

.नागमूर्ति ळेख (दि. जैन मन्दिर, लाडपुरा इतश्री नागपुर)

(१) पंच परमेष्ठी (धातु ५ इंच)

संवत १५१० वर्षे माह मासे शुक्ल पक्षे ५ रवौ श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कार गणे कुन्द कुन्दाचार्यान्वये मू. पद्मनन्दितत्पट्टे म. श्री सकलकीर्ति तत् शिष्य ब्र. बिनदास हूमड़ ज्ञातिय सा.तेज. मा मलाई सुत हस्विन्द मा. नागाई सुत गोविन्द मा. बजाई ।

(२) सुमतीनाथ (धातु ७ इं.)

ॐ नमः १५५२ वर्षे ज्येष्ठ वदि ७ शुक् श्री मूल संघे म. भुवनकीर्ति म. श्री ज्ञानभूषण गुरुपदेशात हुं. श्रे. पर्वत मा. दे सु. राजा मा. शलेद सुत चर्मसी प्रणमति श्री सुमतिनाथ प्रणमति ।

(१) गृह चैतालय श्री नेमासा पासुसा जोहरापुर इतकऐ नागपुर

(३) पंच परमेष्ठी (धातु ५ इंच)

स. १६०७ वर्षे वैशैख वदि ३ गुरु श्री मूलसंघे म. श्री शुभचन्द्र गुरुपदेशात् हूं सखेस्वाए गोत्र सा. जीना मा. माली सु. नादा मा. नागेदभा. जगा मा. ललितोद मा. गठ ऐत सर्वे नित्यं प्रणमति।

पार्शव प्रभु दि जैन बटा मन्दिर इतवाऐ नागपुर

(४) सम्यगदर्शन यंत्र (धातु ५ इंच)

सं १६२५ अषाठ सुदि ५ श्री मूलसंघे बडा श्री हंस बहत श्री राज थालोपदेशात्त हूमड़ सातौ सा. सामराज मा. लोदोई स. आसजी भा बाडाई

सिध्ध यंत्र (धातु ९ इंच)

सं. १७१३ वर्षे माध सुदि ११ गुरौ श्री मूलसंघे बझ श्री शांतिदास तत्पट्टे बडा श्री वादिराज गुरुपदेशात् हूंमड़ ज्ञातीय बाई लावाई सिद्ध यंत्र प्रणमंति। शुभं मूयात्त।

२अ. शातिनाथ (सफेद पा. ११ इंच)

शौ १५६१ फैलगुन सुदी २ गुरु श्री मूलसंघे पुष्प गच्छे सेनगणे..... हूंमड़......।

(१) श्री १००८ पदम प्रभु दिगंबर जैन मंदिर मंगलवार पेठ श्रीमान मियांचद श्री नजीभाई दोशी तथा फेनजचंद मुलुकचंद भूता तथा रामचंद्र भवानशाह उन्होने मूर्ति को बोली लेकर विक्रम संवत १९६९ इस ९६९३ में श्री ८ के दिन शुभ महूर्त पर विधी पूर्वक प्रतिष्ठा करके मूर्ति बिराजमान किया।

(२) श्री १००८ आदिनाथ मंदिरमें माडी उपर दि. जैन पाठशाला जो उपर श्री संघवी राजकुमार नेमचंद महेता उन्होने श्री १००८ समवसरन मंदिर निर्माण किया है। उसकी प्राण प्रतिष्ठा जून महिनेमें १०८ आचार्य रत्न श्री १०१ बाहुबली मुनि संघके नेतृत्व में होने वाली है। उसी समय श्री मुम्बई महानगरे कालबादेवी रोड स्थित त्री मंजली श्री १००८ पार्श्वनाथ दिगम्बर जिन प्रासाद में

तल मंजिल में विराजमान मूल नायक श्री १००८ पार्श्वनाथ भगवान की

अतिमनोज्ञ कृष्ण पाषाण की प्रतिमा कद ३३" ׀ ४२" पर अंकित लेख.

सरस्वती श्रीवीर निर्वाण संवत २४६० वि. सवत १९९० फागण सुदि.

तिथो १२ चन्द्रवासरे श्री दिगम्बर जैन धर्मान्नाये मूलसंघे नंदीतटगच्छे विद्यागणौ मूल संघे आचार्य श्री शांतिसागर उपदर्शन श्री हूमड़ ज्ञातियवृहत शाखायां पंकेश्वर गोत्रे संघपति श्रेष्टि श्री पुनमचन्द जी घासीलालजी जवेरी मार्या मोतीबाई तत पुत्र गेंदमलजी मार्या गुलाबबाई पुत्र डाड़म चन्दजी तत् मार्या फुलीबाई तत् पुत्र हंसमुखलाल पुत्र मोतीलाल पुत्र मोतीलाल मार्या हुलासबाई तत्पुत्र राजमल सन्नति कुमार

................तपोश्रीनाथाय :

प्रथम मंजिल मूलनायक श्री महावीर स्वामी

श्वेत पाषाण कद ४६" ׀ ६२"

श्री १००८ महावीरायः नमः स्वस्तिश्री वी. नि. संवत २४९४ विक्रमादे २०२४ जेष्ठ मासे कृष्ण पक्षे प्रतिप्रदायामं सोमवासरे मूल संघे सरस्वती गच्छे बलात्कार गणो श्री दिगम्बर जैना चार्य कुन्दाम्नाये चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शांतिसागर महामुनैः सदुपदेशात तच्छिष्य श्री १०८ नेमासागर महा मुनैः तत्वावधाने बम्बई न गया प्रताबगढ निवासी बम्बई नगर प्रवासी दिगम्बर जैन वीसा हूमड़ पंकेश्वर गौत्रीय संघ पति शेठ घासीलाल तत्सुपुत्रब्रे. जवेरी गेंदमल तद्भार्या ब्र. श्रीमती. गुलाबदेवी सुपुत्री बाल ब्र. कुमारी गुणमाला, लीला वत्यैश्च प्रतिष्ठाचार्य ब्र. सुरजमल. पंडित वर्धमानाभ्याच प्रतिष्ठाम् कारयित्वा स्थापित बिम्ब मिति प्रणमिति एते स्वति भद्रम भयात्

प्रथम मंजित बांयी और चन्दप्रभु भगवान श्वेत पाषाण कद ३९" ² ४९"

श्री १००८ चन्द्रप्रभवे नमः स्वस्तिश्री वि. नि. संवत २४९४ विक्रमाव्दे २०२४ जेषेठमास कृष्णा पक्षे प्रतिपदा,म् सोमवासरे मूल संघे सरस्वति गच्छे बलात्कारगणो श्री दिगंबर जैनाचार्य कुन्दान्माये चारित्र चक्रवर्ती आचर्य श्री १०८ शांतीसागर महामुनैः सदपदेसात तच्छिव्य श्री १०८ नेमिसागर महामुनैः तत्वावधा३ने बम्बई नगयी, प्रतापगढ निवासी नगर प्रवासी दि. जैन वीसा हूमड़ पंकेश्वर गोत्रीय संघ सेठ घासीलाल तत्पुत्र ब्र. जवेरी गेंदमल तद्चार्या ब्र श्रीमती गुलाबदेवी सुपुत्री बाल ब्रु. कुमारी गुँमाला, लिंलावतैश्च प्रतिष्ठाचार्य ब्र. सूरजमल पंडित वधर्दमानाम्याच प्रतिष्ठाम् कारािटत्वा स्तापित विम्बमिती प्रणमिति एते स्वस्तिभ्यद्रमा युयात्.

★ **प्रथम मंजिल दाहिती और श्री १००८ शान्तीनाथ भगवान श्वेत पाषाण. कद ३९" ² ४९"**

श्री १००८ शान्ती वाथायनमः स्वस्तिश्री वी. नि. सवंत २४९४ विक्रमाव्दे २०२४ जेष्ठ मासे कृष्ण पक्षे प्रतिपदायाम् सोमवासरे मूलसंघे सरस्वतिगच्छे बलात्कारगमे श्री दिगम्बर जैनाचार्य कुन्दाम्नाये चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शान्तीसागर महामुनैः सदुपदेशात् तच्छिष्य श्री १०८ नेमिसागर महामुनैः तत्वावद्याने बम्बई न गयी प्रतापगढ निवासी बम्बई नगर प्रवासी दि. जैन वीसा हूमड़ पंकेश्वर गोत्रीय संघ पति सेठ घासीलाल तत्पुत्र ब्रुजज गेंदमल तंदभार्या ब्र. श्रीमती गुलाबदेवी , सुपुत्री बाल ब्रं. कुमारी गुणमाला लालावंतैश्च प्रतिष्ठाचार्य ब्र. सूरजमल पंडित वर्धमानाभ्याच प्रतिष्टामें कारयित्वा स्तापित बिम्ब मिति प्रणमिती ऐते स्वस्ति चंदमा भुवात्.

प्रथम मंजिल पर जिनालय निर्माण काल वीर सवंत २४७१

श्वेत पाषाण की तीन भव्य मूर्तियों के अतिरिक्त दोन पंय घात् की मूर्तियां भी है।

(१) श्री १००८ आदिनाथ भगवान कद ९$^{1}/_{2}$" X १२"

(२) श्री १००८ अनन्तनाथ भगवान कद ८$^{1}/_{2}$" X ११"

श्री मुम्बई महानगरे कालबादेवी रोड स्थित.

श्री १००८ पार्श्वनाथ दिगम्बर जिन प्रासाद प्रथम मंजिल पर स्वर्णाक्षरित अंकित प्रशस्ति पद.

ॐ

★ श्री १००८ पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ★

प्रशस्ति

स्वाति श्री मूलसंघे सरस्वती गच्छे बलात्कार गणो कुन्दकुन्दा म्नाये परमपूज्य तपो निधी चारित्र चक्रवर्ती दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ शांतीसागर महामुनि के सदुपदेश से प्रतापगढ़ (राजस्थान) निवासी बम्बई प्रवासी दिगम्बर जैन बीसा हुमड़ जातिय पंकेश्वर गोत्रोत्पन्न सेठ पुनमचन्दजी तत्पुत्र संघपति सेठ घासी लालजी जौहरी व उनके पुत्र श्री गेंदमल जी दाड़िमचन्द्रजी एवं मादी लालजी ने इस जिनालयके निर्माण का संकल्प किया।

देव शास्त्र गुरु की सेवा में संलग्न इस परिवाने चरित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तीसागरजी महाराजको सम्मेदाचल की ससंघ वंदना कराने हेतू विक्रम संवत १९८४ मार्गशीर्ष कृष्णा १ के दिन दक्षिण में बाहुबली कुंभोज से एक विशाल यात्रा संघ निकाला उत्तरावर्तकी भूमिपर दिगम्बर साधु के विहार से जैन शासन की अतिशय प्रभावना करता हुआ यह संघ फाल्गुन शुक्ला ३ को सम्मेदाचल पहुँचा। संघ पति परिवार ने इस अनादि सिद्ध भूमि पर पंचमी से नवमी तक श्री मज्जिनेनद पंच कल्याण प्रतिष्ठा कराई और दशमी को बीसपंथी कोठी में स्वनिर्मित चैत्यालय में श्री आदिनाथ प्रभुका परम मनोज्ञ जिन बिम्ब स्थापित किया। सर्वथा विघ्न रहित सानन्द संपन्न इस एतिहासिक महोत्सव में लक्षाधिक नर-नारियों नो भाग लिया उसी समय भारत वर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अधिवेशन में चर्तुविद्य संघव्दारा सेठ घासीलालजी सहित उनके तीनों पुत्रो को "संघ भक्त शिरोमणी" उपाधी से अलंकृत करणे सम्मानित करते हुअे बीस पंथी व तेरा पंथी कोठी के मुख्य जिनालयों में उत्सवकका अभिलेख स्थापित किया गया।

जैनशासन के प्रति अति आस्थावान इस परिवारने बम्मोतर (प्रतापगट) में श्री शांतीनाथ जिनालय का जिर्णोधार करवाकर विक्रम सवंत १९९० में श्री पार्श्वनाथ की यह अतिशय मनोज्ञ प्रतिमा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पूर्वक स्थापित कराई और इसी सातिशय जिनालय के शिलान्यास कराया।

सेठ दाडिमचन्द जी का वि. सवंत २०१७ में निर्धन हो गया। सेठ मोती लालजी ने रत्नत्रय की आराधना हेतु विक्रम संवत २०२४ में दिगम्बरी दिक्षा ग्रहण की और श्री १०८ सुबुद्धि सागरजी नाम से प्रसिद्ध हु।

संघपति परिवार के जेष्ठ भाता सेठ गेंदमलजी का जन्म विक्रम संवत १९४६ भाद्रपद शुक्ला २ को हुआ था। उन्होने अपनी धर्म पत्नी श्रीमती.सौ.गुलाबबाई व सुपुत्री बाल ब्रह्मचारिणी कु. गुणमाला देवी के साथ इस मंदिर के प्रथम व द्वितिय मंजिल का निर्माण कराया व श्री महावीर स्वामी, श्री शांतीनाथ और श्री चन्द्रप्रभु की लिशाल प्रतिमाओं सहित स्पटिक रत्नमयी १३ तेरह मनोज्ञ जिन बिम्बों का निर्माण कराकी इस जिनालय में संहिता सुरि प्रतिष्ठाचार्य ब. सूरतमलजी व्दारा वि. सवंत २०२४ जेष्ठ कृष १ को प्रंचकल्याणक प्रतिष्ठा पूर्वक स्थापित किया व मंदिर के शिखर पर स्वर्ग कलश व ध्वजा रोहण संपन्न किया।

१२ बारह वर्ष तक संठगेंदमलजी ने मंदिर की भीतरी साजसज्जा और दूसरी मंजिल के गर्भगृहके लिये जिन बिम्बों के निर्माण में संलग्न अपने प्रसस्त राग को कृष करते हुअे चारित्र की और अग्रसर हुअे। विक्रम

संवत २०३० के कार्तिक शुक्ला ५ को ९५ वर्ष की वय में क्षुल्लक दिक्षा ग्रहण करके उन्होनें श्री १०५ गनेन्द्रसागर नाम पाया। अंत में वि. सवंत २०३८ की मार्गशीर्ष शुक्ला १४ को प्रातः काल मुनीसंघके सानिध्य में सर्वपरिग्रह का विमोचन करके दिगम्बर अवस्था में समाधीपूर्वक अपने नश्वर शरिर का परित्याग करके स्वर्गारोहण किया। सल्लेखना अवस्था में उनका नाम श्री १०८ समाधिसागर प्रसिद्ध हुआ । इस सिद्धकूट जिनालय में सभी दि. जैन धर्मावलंबी श्रावक बोस पंथी आम्नाय के अनुसार पंचामृत अभिषेक और केसर पुष्प नैवेद्य आदि से पूजन अनुष्ठान कर सकते है । वितराग प्रभुका यह आयतन दीर्घकालतक " धवला
मंगलगान " से गुंजित रहे ।

॥ शुभम् शूयात ॥

दितीय मंजिल
श्री क्षमवसरण मंदिर मुल नायक
रजत बांधकुटी अेवं ताम्रपत्रपर लिखित
जयधवला - महाग्रंथ

प्रथम मंजित बांयी और चन्द्रप्रभु भगवान श्वेत पाषाण कद ३९" X ८९"

श्री १००८ चन्द्रप्रभवै नमः स्वस्तिश्री वि.नि संवत २८९८ विक्रमाब्दे २०२५ जेष्ठमास कृष्णा पक्षे प्रतिपदायाम् सोमवासरे मूल संघे सरस्वति गच्छे बलात्कारगणो श्री दिगम्बर जैनाचार्य कुन्दान्माये चात्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ ज्ञाती सागर महामुनैः सद्पदेशात् तच्छिव्य श्री नेमिसागर महा मुनैः तत्वाधाने बम्बई नगयी प्रतापगढ निवासी बम्बई नगर प्रवासी दि. जैन वीसा हूमंड़ पंकेश्वर गोत्रीय संघ पति सेठ गासीलाल तत्पुत्र ब. जवेरी गेंदमल तद्चार्या
ब. श्रीमती. गुलाबदेवी सुपुत्री बाल. बु. कुमारी गुणमाला

लिलावतैश्च प्रतिष्ठाचार्य ब. सूरजमल पंडित वर्ध्दमानाम्याच प्रतिष्ठाम् कराचित्वा स्थापित बिम्बमिती प्रणमति एते स्वस्तिभ्वंद्मा भुयात्

गुजरात का मूर्तिलेख

संवत १७३४ वर्षे मूलसंधे सरस्वतिगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुंदकुंदाचार्या नाम्नाये भट्टारक सकलकीर्ति तत्पट्टे श्री पद्मनंदी तत्पट्टे भ. श्री देवेन्द्रकीर्ति तत्पटे भ. श्री क्षेमकीर्ति शुद्धाम्नाये वागड देशे शीतलवाडा नगरे हूमड ज्ञातीय लधसीरवाया कमलेश्वर गोत्रे दोशी श्री सूरदास तथा सूरमहतयोः पुत्र दोसी सांगीता सरताण हेतयोःपुत्री :.........(दि. जैन हाई.सफा ८००)

तारंगा सिद्धक्षेत्र गुजरात के तीर्थ के चाँदसूरज की डहेली के भीतर के शिलालेख संवत १६२५ वर्षे पौष वद ५ शुक्ले श्री मूलसंधे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे आचार्य कुंदकुंदाचार्या भट्टारक श्री शुभचंद्र तत्पटे भट्टारक श्री सुमतिकीर्ति गुरूपदेशात्.....हूंमड ज्ञातीय गांधी नरपतिभार्या .....(जैन मित्र २१ नवम्बर स. १७०७ मे हैं)
हूमड और हूम्बड शब्दोके शिलालेख
(पंत्रमेरु धातुकी बडा प्रतिमा)

सं. १५१३ वर्षे वैशाख सुदी १० बुधे मूलसंधे बलात्कार गणे सरस्वतीगच्छे भ.श्री प्रभाचंद देवाः तत्पट्टे श्री पद्मनंदि सत् शिष्य श्री देवेंद्रकीर्ति दीक्षितचार्या श्री विद्यानंदिगुरूपदेशात् गांधार वास्तव्य हूंबड ज्ञातीय समस्त श्री संयेन कदापिता मेरु शिखर कल्याण भूयात् (चंहावाडी मंदिर सूरत)

पंच परमेष्ठी धातुकी प्रतिमा

सं. १५१६ वर्षे वैशाख सुदी १० बुधे श्रीमूलसंधे आचार्य श्री विद्यानंदि गुरूपदेशात् हूंबड ज्ञातीय हो.(दोशी) डूंगर भा. सोनी देवलहेसुत दोशी पांखा चार्या वासु दिवी. का भार्या भटका तेनेहं थी जिन बिम्बं कादित्ता। (चंहावाडा मंदिर)

गोपीपुरा मंदरिके सुरत चोथी (सीपर का लेख)सं. १५१३ वर्षे वैशाख सुदी १० बु. आचार्य श्री देवेन्द्रकीर्ति शिष्य श्री विद्यानंदी देवोपदेशात् काष्ठासंधे हुम्मड वंशे श्रेष्ठी कानाबार्या बाद सुत साजण चार्या सुहवहे भ्राता सोसाभार्या रही भ्रातर सींधराज भार्या कमहि साजण भार्या यघन सुत सीधराज सुतवहा ये साजणे स्व श्रेयोय श्री बिंब कादापितम् । श्री धोधा वेला तट वास्तव्य श्री मूलसंधे संयम श्री श्रेयार्थम् ॥

(सेठ मानक चंहजीजीपन मु.४४)

लेखांक ३३३.शिलालेख

खस्तिश्री १४१४ वर्षे वैशाख सुदी १३ गुरौ मूलसंघे...... भ. श्रीपद्मनंदी तत्पट्टे श्रीशुभचंद भ. श्रीसकलकीर्ति उपदेशे द्यौव्याव (१) कृत्वा संघवै नरपाल........ समस्तश्रीसंघ दिगंबर श्री अर्बदाचले आगिह तीर्थ सीतांबरु प्रासाद दिगंबर पाछि दछाव्या श्रीआदिनाथ बडा दीकीजी श्रीनेमिनाथजी जिह श्रीसीतल हरबुधप्रसाद दिगंबर पाछिह पेहरी तिन बहणरी महापूज धज अवास करी संघवी गोव्यंद प्रशस्ति लिखाती.....।।।

(आबू जैनमित्र ३.२ १९२१)

लेखाक ३९४-चरण पादुका

स्वस्तिश्री संवत १८३२ शाके १६८७ प्रवर्तमाने शुभकारक कल्याण मासे कृष्णपक्षे ३ तृतीया धुलेव ऋषभदेवजीके निजमंदिर के पिछाडी के शिरमर बंध मंदिर के बडी प्रतिमापर का लेख सं. १७६४ चैत्रवदी ५ चारचंद श्रीमान् काष्ठासंधे नंहितट गच्छे विद्यागणे भट्टारक श्री राम सेनान्य एमदनुक्रमेण भट्टारक श्री जयकीर्ति ततनुक्रमेण भट्टारक श्रीसुमतिकीर्ति तत अनुक्रमेण हुंबड ज्ञातीय बुध गोत्र संधवी श्री पू. सामजीचार्या सिदुदहे धर्मोर्थे श्री शांतिनाथ कांषेय आचार्य श्री प्रतापकीर्ति रचहस्तेन प्रतिष्ठिता।

राजस्थान का मूर्तिलेख

बाँसवाडा राज्यातंरगस नौगामा ग्रामके मंदिरजीका शिलालेख "नुंनिमसिद्ध"। श्रीमंते सकलज्ञान सम्मान पदवी पुषे धर्मचक्र म .....नमः संसारमुषे ।।१।। जयतिजगहेधीशः शांतिनाथो यदियं स्मृतमपिहि.लीचुंषित पाद प्रश्न ।।२।। संवत १५७१ वर्षे कार्तिक वदि २ शनौ वाग्वर देशे राजाधिराज राजुल श्री उदयसिंह विजय राज्ये नूतनपुरे श्रीमूल संधे सरस्वतिगच्छे बलात्कार गणे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भ.श्री सकलकीर्ति स्त.भ.श्री भुवनकीर्ति भ.श्री ज्ञानभूषण स्त.भ. श्री विजयकीर्ति गुरूपदेशात् हुबंड ज्ञातीय खइरज गोत्रे कालुजा होसीचांपा। भा.चारु। सुतहो। जांईया ।भा.देस इति। सु.दो. नेमिदास भा. टबकू भा. दो. संतोषी। भा. सुवहे।भा.देवा। भा.देवलहे। सु. श्रीपाल।भा.सहिजल दे। भा.रामा. भा.रमाहे।भा. माका भा.रूडाभाणां लाडिका वीर हासा एतैः श्री शांतिनाथस्य प्रसादःकारियःसंप्रन्य पास्म रतिप्रतीत्यै वदन्ता विवाद्क्ताय मिथः प्रविष्ठा ः। यत्कायकांतौ कनकौ ज्वालायां सुराविरेजुरुत्त मुर्येतिशांति ।।१।। कल्पाणं विजयंभद्रं चिंतितंथ मनोरथाः श्री शांतिनाथः प्रसादेन सर्वेभीष्ठाभवतुं आदिनाथ प्रणाममामि "

गुजयत का मूर्तिलेख

पालिताणा (काठियावाड) पहाडके छोटे मंदिरका शिलालेख संवत १७३४ वर्षे मूलसंधे सरस्वतिगच्छे बलात्कारगणे श्री कुंदकुदचार्याम्नाये भट्टारक सकलकीर्ति तत्पट्टे श्री पद्मनन्दी तत्पटे श्री देवेन्द्रकीर्ति तत्पहे भ.

श्री क्षेमकीर्ति शुद्धाम्नाये बागड देश शीतल वाडा नगरे हूमड़ ज्ञातीय लंघसीरवाया कमलेश्वरगोत्रे दोशीश्री सूरहाश तथा सूरमहे तयोः पुत्र दोसी सांगीता सरताण देतयोः पुत्री :....... "(हि.जै.डा.स.८००)

तारंगा सिद्धक्षेत्र (गुजरात) तीर्थके चांह सूरजकी देहतीके चीतर का शिलालेख संवत १६२५ वर्षे पौष वदी ५ शुक्ले श्रीमूलसंधे सरस्वतीगच्छे बलात्कार गणे आचार्य कुंदकुंदचार्य भट्टारक श्री शुभचंद्र तत्पट्टे भट्टारक श्रीसुमतकीर्ति गुरूपदेशात् हूमड ज्ञातीय गांधी तदपतिभार्या ....."

शिलालेख देवगढ़ (देवलिया प्रतापगढ) मोटा मंदिरजी के स्वास्ति विक्रमसाहित्य ससयातीत सं. १७७४ वर्षे शाके १६३९ प्रवर्तमाने माह सुदी १३ रवि श्रीदेवगढ नगरे महाराजाधिराज महारावत श्री पृथ्वीसिंहजी विजयी राज्ये कंचर श्री पहाडसिंध विराजमाने श्री विराजमाने श्री मूलसंधे बलात्कार गणे श्री कुंद भ. श्री रत्नचंद्र त.भ.श्री हर्षचंद त.भ. श्री शुभचंद त. भ. श्री अमरचंद्र त. भ. श्री रत्नचंद्र गुरूपदेशात् श्रीमन् हूँबड ज्ञातीय मंत्रीश्वर गोत्रे संधवी वर्षावत भार्यानानी रूक्ष्मणी तयोः पुत्र सं. वर्द्धमान भ्राता चाणसाह इन्हर खेमजी सा. चंद्रमानजी गोविन्दजी वल्लुचजी, श्री मल्लिकानाथ प्रासाद प्रतिष्ठा महामहोत्सवैः सह करावितां।

पालिताना पहाडपर छोटे मु

राजस्थान का मूर्तिलेख

शुभस्थ तिथि शुक्रवासरे श्रीखड़्गदेशे धूलेवग्राम श्रीऋषभदेव चैत्यालये श्रीमूलसंधे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भ. श्रीसकलकीर्ति तत्पट्टे भुवनकीर्ति तदनुक्रमणे भ. श्रीक्षेमकीर्ति तत्पट्टे श्रीनरेंद्रकीर्ति तत्पट्टे भ. श्रीविजयकीर्ति तत्पट्टे भ. नेमिचंद तत्पट्टे भ. श्री १०८ श्रीचंद्रकीर्ति प्रतिष्ठिते......बाईजी श्रीसूजबाईके चतुरविंशाति जिनपादुका स्थापित शुभं.

(केशरियाजी,वीर २ पृ.४६०)

लेखांक ३९७- शिलालेख

देडारग देश मेवाडमे उदयापुर सुजान।
राज करे तिह राजवी भीमसिंह राजान।।
संवत १८६३ मे अषाड सुदी ३ तीज ।
गुरूवारे मुहूर्तज कर्ज्यो मली तरे पूजा कीध ।।
मूलसंध गछ सरस्वती बलात्करा गण धरबुडौ।
कुंदकुंद सूरिवर सदा सुमतिकीर्ति नमूं पाय ।
ज्ञानभूषण ते पाटे प्रगट विजयकीर्ति सूरि इश्य ।।
शुभचंद्र सूरिवर सदा सुमतिकीर्ति गुणकीर्ति गुरू।।
गुपातिलु वादिभूषण तस पाट रामकीर्ति पाट शोभतो।।
राख्यो धर्मन-ठाठ पद्मनंदि पाटे सुजस ।
देवेंद्रकीर्ति गुणधार खेमकीर्ति पर उज्जवलो ।।
नरेंद्रकीर्ति मनुहार विजयकीर्ति पट्टे गुरू ।
नेमिचंद भवतार चंद्रकीर्ति चंद्र समो।।
रामकीर्ति सुखकार यशःकीर्ति सूरिवर सिंह ।
उदयो पुन्य अंकुर करि प्रतिष्ठां दुर्ग तणी।।
जस व्याप्यो भरपूर बागडदेश सुहावनो।
सागलपुर वर ग्राम संघपति साहर लिया ।।

(केशरियाजी, वीर २ पृ. ४६१)

Mss. Material

On the left side there is the illustration of Vrisabh Teerthankar. Belov that there is an illustration of a monk in sitting pose with a rosery of beeds in his left hand and a bunch of peacock feathers in his right hand near the elbow. on the right side there are illustration of two female figures, each with four hands.A detailed study of these figures is necessary. They are pointed in five colours. i.e. red,white black,yellow and green. On the second page there is a similar illustration of the map of Loka having the images of two Teerthankaras in the upper corners and the monks in the lower corners.The MS. is written in black ink.The marginal lines are black. Red ink is used between the marginal black lines also.This red colour is used to spot numbers os versed and verse and colophons. Here and there is yellow paste to cover the unwanted letters.

This Ms. Contained interleaniar notes giving explainatary equivalents of difficult word. The Number of notes is pretty large. The conjuncts with is the first member the consonant is double. Generally Anuswar is written for Parasvarna.

ज्ञानवर्ण वस्य ....भवार्णव : ।।७।। ग्रंथाग्रं श्लोकसंख्या २७०० छ ।.छा। यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं भया। यदि शुद्धमशुंद्ध वा मम दीयो न दीयते ।।छ श्री सं. १४८५ वर्षे कार्तिक सुदि ११ सोमदिने।। निजपतापप्रभावपराकृत तरूणतरणिमण्डलान् । नयविनय विवेकसौराज्यरअतिाखण्डलानां। महाराजाधिराजश्रीमोकलदेव राज्यप्रवर्तमानानां। त्रिदिवपति पत्तनसमृद्धिस्पधिश्रीकान् । श्रीमतिदेवकुलवाटेक।। श्रीनेमिनाथचैत्यालये। श्रीमूलसंधे । सरस्वतीगच्छे । बलात्कारगणे। नन्दिसंधे । श्रीकुन्दाकुन्दा चार्यान्वये अनेकपट्टावलीविराजमाने। श्री शुभकीर्तिदेव पट्टान्वये धवलशधवलमहासिद्धान्तसुक कण्ठीकृतरायराजगुरूपोषित जिनमतश्री धर्मचन्द्रदेवा :।। तत्पट्टे । उपशममेरु चाल्यमाणेन समवरणेन सह विराजमानान् । भट्टारक श्रीरत्नकीर्तिदेवाः।। तत्पट्टे संस्थितवान्। महाराजाधिराजसुरत्राणमहमद साहि अनुरञ्जितचित्तान् । तत्पट्टराजावलीसंस्थित सुरत्राणपेरोजसाहि अनुरंजितचित्तान्। अनेक म्लेच्छसंस्तुरचरणकमलान्। षट्तर्कचक्रवर्तिर्निर्जितपरमतापाषण्डिनां कृतवोंपहारान्। भट्टारक श्रीप्रभावचन्ददेवान्। तत्पट्टे संस्थितवान्। अष्टव्याकरणीयरहस्य रंजितविद्वज्जनचित्तान् । भट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेवान्। तच्छिपाण्डि त्यकमलाकमलिनी कमलबन्धुन् निश्चयरत्नत्रयत्रिष्ठान् । मुनिश्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवान्। तद्दीक्षितपोघनउत्तमक्ष मारिदशलक्षणो धर्मोदगरप्रकट नलमर्थान् ।। मुनिश्रीविद्यानंददेवोपदेशात् हूंबडान्वये अनुव्रतादिद्वाशव्रतभारभरणोपेतः ।। निर्मल श्री जिनेन्द्र :चरणसरोजरजीराजहंसान् वात्सल्यदशविधवैयाव्रत करणैकतत्परान् । सा जेता तज्जायासग्क्त्व गुणगुणशालिनी साहू। तयोः पुत्र सकलशास्त्र विशारदान्। निजसौजन्येन श्रीकृतशत्रुमित्रान् । दानैकमहातले कल्पवृक्षान् । परोकारकरण परायणान् । अखिलमहीतलप्रसिद्धान् । साहुभोजा भार्या वसू। तयोः पुत्र धरणउ। भोजाभ्राता द्वितीय जिनचरणाराधनतदगतचितान् । देवापूजादिषट् तलप्रसिद्धान्। साहुभोजा भार्या वस् । एतेषां मध्ये साधुभोजा ज्ञानावर्णकर्मक्षायार्थे ज्ञानावर्णवग्रन्थं लिखापि दत्तं मुनिश्री विद्यानन्दिदेवयोग्यं ।। शुंभ भवतु।। दातृलेपकपाठयोः ।। ज्ञानवाशानदानेन निर्भयो ङभयदानतः । अन्नदानात् सुखी नित्यं निर्व्याधी भेषजा भवेत् ।। अपरस्मिन् भवे जीवो विभतिं सकलं श्रुतम् ।। मोक्षसौख्यवाप्नोति शास्त्रदानफला नरः ।। लिषित्वा लेषयित्वा वा साधुभ्यो दीयते श्रुतम् । व्याख्यायते तं तवा तेन शास्त्रदानं तदुच्यते ।। वर्धतां जिनशासनं । शुभ भवतु लेखपाठयो :। सं १४८५ वर्षे कार्तिक सुदी ११ सोमवासरे रूद्रपल्लीयुगले वाचनाचार्य श्रीनरचन्द्रशिष्यमिलितं । मुनिविद्यानंदलिषितं पठनार्थं । आचन्द्रार्क चिरं नन्द्यात् । ।।छा। श्रीदेवगुरुभ्य :।।

घोघाना त्रण मंदिरो ना मूर्ति लेखो.

१. दाडियानुं पुरानुं शिखरबंध मन्दिर

२. मूलनायक श्री आदिनाथ उंचाई इंच १५ लेख नहीं है चोथा काल की है।

३. पंच परमेष्ठीनी प्रतिमा धातुनी उचांइ ८ इंचनी है।

लेख- सं. १५३७ श्री मूलसंघे श्री विद्यानंदी गुरुपदेशात् श्रेष्ठ तेजा भार्या सुत श्रे. जुभा भार्या मल्हाई सुता मान् श्री आदिनाथ प्रणमति

४. चोवीसी धातुनी उचाइं १४ इचनी

लेख - संवत १६८० वर्षे वैशाख वदी ५ गुरु श्री मूलसंघे सरवति गच्छे बलात्कार गणे कुंदकुंदान्वये श्री प्रभचंद त.प.भ. वादीचंद्र त.प.भ. श्री महीचंद्रीपदेशात् हूंमड़ ज्ञातीय घोघा वा.सा. श्री पत्य भार्या समइदे तयोः शा श्री मेघराज भार्या अंगादे स.श्री ग्लेईया सु.मु. श्री वर्धमान भार्या सं. वनादे तयोः पुत्र सं. श्री. उवाजी सं. कोडमदे तयोः पुत्र सं. धर्मदास अंते मुनिसुव्रनाथ नित्यं प्रणमति.

५. पंच परमेष्ठी घातुना ६ इंचना

लेख - संवत १४७९ वर्षे माध मासे शुक्ल पक्षे हूमड़ ज्ञातीय दशरल कुखे बीच में पार्श्वनाथ है ।

६. चोवीसी धातुनी ८ इंचनी

लेख- संवत १४९० वर्षे वैशाख सुदी ९ शनौ श्री मूलसंघे नंदी संघे भ. श्री पद्मनंदी देवाः हूंमड़ वंशे श्री कान्हा भा. पुतली सुत लांबा भाः बोसु तयोः शांतिनाथम् बिबम् प्रतिष्ठितम्

७. रत्नत्रय धातुनी इंच ८ नी

लेख- संवत १५१३ वर्षे वैशाख सुदी १० बुधे श्री काष्टा संघे वागडगच्छे भ. श्री नरेन्द्रकीर्ति देयाः त.प.भ. श्री प्रतापकीर्ति देवाः उपदेशात् श्री घोधा वास्तव्य श्री हूमड़ ज्ञातीय संघवी हेमा भार्या बाई हेमादे भातृ वीका भार्या बाई वीकमदे सं. हेमा सुत वस्ता भार्या संपूरदे भातृ तेजा भार्या नाथा सं. वस्ता सुत श्री वाजा श्री रत्नत्रय बिबम् करापितम् नित्यं प्रणमति धर्म श्रेयार्थ श्री।

८. पंच परमेष्ठी धातुना इचं ९ ना

लेख सं. १५१८ वर्षे माद वदी ५ श्री मूलसंघे आ. श्री विद्यानंदी देवाः हूंड़ वंशे श्री सांतिनाथम् बिंबम कारापितम्

९. पंच परमेष्ठी धातुना इंच ७ इचं

लेख-सं १५१९ वर्, माध सुदी १३ काष्ठासंघे नंदीतटगच्छे विद्यागणे श्री सोम कीर्ति देवेन प्रतिष्ठितम् नारसिंह ज्ञातीय कमलेश्वर गोत्रे श्री शांतिनाथम् प्रणमति.

१०. पार्श्वनाथ धातुना ६ फेणना ९ इंचना

लेख - सं. १५१३ वर्षे वैशाख सुद १० श्री मूलसंघे सरस्वतिगच्छे श्री विद्यानंदी गुरुपदेशात् हूमड़ ज्ञातीय श्रे राजा वीरु सुत फरर्णातेनेदम् पार्श्वनाथ बिंबम् पगराप्य प्रणमति.

११. चोवीसी धातुनी १३ इंचनी

लेख - सं. १५१३ वरो वैसाख सुद १० बुधवारे श्री काष्टासंघे वागड गच्छे भ. श्री नरेन्द्रकीर्ति देवीः त.प.भ. श्री प्रतापकीर्ति देवादेशात् श्री चंदप्रभु चतुर्विंशति जिन पट्ट प्रतिष्ठितम् घोघा वास्तव्य श्री हूमड़ ज्ञातीय सं. भोपाये भा. बाई धनी सुत प्रतिष्ठितम्

१२. रत्नत्रय चौवीसी धातुनी १३ इंचनी

लेख - संवत १५२३ वर्षे वैसाख सुदी १३ गुरु श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कार गणे श्री कुंडकुंदाचार्यान्वये भ. श्री पद्मनंदी देवा त.प.भ. श्री देवेन्द्रकीर्ति आचार्य श्री विद्यानंदी देवा तेषामुपदेशात् हूंमड ज्ञातीय परी धरणा भा. नित्यं प्रणमति.

१३. रत्नत्रय धातुनी ९ इंचनी

लेख - सं. १५०४ वर्षे फागण सुदी ११ श्री मूलसंघे भ. श्री. विद्यानंदी देवतः दीक्षित आर्या सुजन श्री भट्टारक श्री भुवन कीर्ति देवेन प्रतिष्ठितम् श्री हूमड़ ज्ञातीय श्रे सरवण पुत्र पं तेजा नित्यं प्रणमति.

२. घोघाना गुजरात्रीना मंदिर नी प्रतिमाओना लेखो

१. सहस्त्रकूट चैत्यालेख धातुनुं ४० इंच उंचुं और चारे तरफ २८ इंच पहोकु १००८ प्रतिमानुं प्राचीन

लेख - आदि संवत्सरे साररिमत नृपति श्री विक्रमातीय राज्य संवत १५११ वर्षे श्री मूलसंघे नंदीसंघ सरस्वति गच्छे बलात्कार गणे श्री कुंदा कुंदाचार्यान्वये भ. श्री रत्नकीर्ति त.प.भ. श्री प्रभाचंद्र देवाः त.प.भ. श्री पदम नंदी देवाः त.प.भ. श्री देवेंदकीर्ति देवा त.प.भ. श्री विद्यानंदी देवा तदोपदेशात् श्रा मघो घोघा नगर वास्तव्य श्री हूंमड़ ज्ञातीय चतुर्विधि संघ समूदाचेन सहु सहस्त्रकूट बिबम् करापितं प्रतिष्ठापितम् शुभभृयात् समरस्त श्री संघ महत्ता महतां ब्रह्मचारी अजित प्रणमति नित्यम् संघपति भोज प्रतिष्ठापितम् सूत्र देवा घाटतम्व् इदम घोघा वास्तव्य श्री संघेन कारापितम्

२. भ. ऋषभ देव श्वेत पाषाण ३२ इंच उंचा पहोळाई २५ इंच

लेख - सं. १६७५ साल वैसाख वदी ५ गुरौ श्री मूलसंघे सरस्वति गच्छे बलात्कार गणे कुंदकुंदाचार्यान्वये भ. श्री वीरचंद देवा त.प.भ. श्री ज्ञान भूषण देवा त.प.भ. श्री प्रभाचंद्र देवा त.प.भ. श्री वादीचंद देवाः त.प.भ. श्री महीचंद्रोपदेसात्

७. चोवीष्टु दातुनं उचांई १३ इच नीचं बीच में इद्राणी है और चार तरफ इन्द्र आदि है।

लेख - सं. १६८९ श्री मूलसंघे सारवागच्छे बलात्कारगणे कुंदकुंदाचार्य भ.श्री. विद्यानंदी स्तध्न्यवये भ.श्री ज्ञान भूषण स्तत्पट्टे भट्टारक श्री प्रभाचंद्र तत्पट्टे भ. श्री वादिचंद्रास्तत्पट्टे भ. श्री मही चंद्रोपशात् हूमड़ ज्ञातीय जमाईसा प्रेमजी रामदास भ्राता जीदासता सहिया ते बदले पुत्री कोडाई हरबाईसा रतन पुत्रः नेमा भार्या नागलदे पुत्र प्रेमजी बेटी वीराबाई जीवी सपजी भागिनव गांगजी प्रममति तीर्थकर देवात्.

८. चोवाष्टुं धातुनुं उचाई १३ इंच नीचे बीच मां इद्राणी और चारे तरफ इंद्र प्रतिहार्य आदि है।

लेख - संवत १७९३ वर्षे वैशाख सुदी १२ बुध श्री मूलसंघे सरस्वतिगच्छे बलात्कार गणे कुंदकुंदाचार्यान्वये श्री वीर चंद्रास्तत्पट्टे भ. श्री ज्ञानभूषणस्तत्पट्टे भ. प्रभाचंद्र तत्पट्टे भ. वादीचंद्रतत्पट्टे विजय राज्ये भ. श्री महाचंद्रस्तेषामुपदेशात् रांनेर वास्तव्य हूमड़ ज्ञातीय सं.श्री धनजी भार्या श्री कोडमदे तयो पुत्रः सं श्री हीरा भा श्री हीरा भा. श्री माणक तयो बेटा सं. श्री जीवराज अेतेषांममध्ये सं. ह. केना कार्कि प्रतिष्ठा सं. वर्धसम् विमल संमधो सं. काबाई सुरतन संभानां नित्यं प्रणमति.

९. पंच परमेष्टी धातुना उचाई ७।। इंच नीचं बीच में चार करफ इंद्र इंद्राणी दो हाथी आदि चित्रो है।

लेख - सं १५१५ माध वदी ११ गुरु श्री मूलसंघे श्री कुंद कुंदाचार्यान्वये भ. श्री भुवनकीर्तिस्त उपदेशत् हूमड़ ज्ञातीय रामलसा रुदी सुत मंडला भा. सीमी सुत्र माका भा. जबकु सुत्र वर्धमान ऐवं नित्यं प्रणमति.

१७. पार्श्वनाथौनी धातुनी प्रतिमा उची ९ इंच सात फंणवाळी

लेख- वीर सं. २४८० विक्रम सं. २०११ वैशाख शुकल ३ बुधे वीसा हूमड़ ज्ञातीय देखबलाल शा. गुलाबचंद लालचंद्र पटवा रतलामवासी (हालसुरत) की बेटी स्व. सौ सविता गुलाबचंद एवं स्व. बेटा बाबु आदि परिपारितम् स्मरणार्थ प्रतापगढमें श्री सीमधर जिनालये भ. यशकीर्ति प्रतिष्ठितम्

१८. क्षेत्रपाल पाषाणना उंचा १ फीट चार हाथवाला सं. १९५६ में प्रतिष्ठित.

१९. सिद्धयंत्र (विनायकयंत्र) गोल तांबानुं ५।। इंच का वीर सं. २४६१ वैसाख सुद ३ इतवार सुरतनिवासी वीसा हूमड़ शा. इश्वरलाल करसनदास कापडियाना चि. धनसुखलाल की सादी प्रसंगे बनावी बेसाडीयुं.

२५. जिर्णोद्विार प्रतिष्ठा कर्योनो लेख आरस पर १२ १२ नी साइजमां श्री १।। श्री शांतिनाथना मंदिर नो जिर्णोद्वार वीसा हूंड़ गंगेश्वर गोत्री २।। वीजलाल शीतलदासना सुत जवेरचदना चरणजीवी चुनीलाल पोताना तीर्थ रुपनी यादगीरी कायम राखवा सारु कराया है । सं. १९५६ ने वैसाख सुद ३ ने बुधे (लेखो उतार्या ता. ३१.१०.५४)

श्री पुरानुं मंदिर (दाडियानुं मंदिर) खपाटिया चकला सुरतकी प्रतिमाओनो लेख संग्रह भोय नीचेनी चंद्रप्रभुनी वेदीनी प्रतिमा.

१. श्री चंद्रप्रभु मूलनायक सफेद आरस की उंची ३ फुट चिन्ह चंदमा.

लेख :- सं. १६७९ वर्षे शाक १५५३ श्री मूलसंघ नंदिसंघे सतस्वतिगच्छे बलात्कार गणे कुंदकुंदान्वये भट्टारकनी पद्मनंदि देवा तत्पट्टे भ. देवेन्द्रकीर्ति देवा स्त. भ. श्री विद्यानंदि देवा तत्पट्टे ब. श्री मल्लि भूषण स्त. भ. श्री लक्ष्मीचंद तत्प भ. श्री वीरचंदा तत्प भ. श्री ज्ञान भूषण त. भ. श्री प्रभाचंदा स्त. भ. श्री. वादिचंदा वादिचंद्रा त.भ. श्री महीचंगोपदेशात् हूमड़ ज्ञाति वीउल वास्तव्य मांतरगोत्र कुंवरजी भार्या संकोटमेद तयो पुत्र संघवी श्री धर्मदास भार्या संवलोदे पुत्री वेजबाई चंद्रप्रभु प्रणमति

२. बाये बाजुनां मूलनायक श्री शांतिनाथजी उचाई २।. सफेद पाषाण हरण चिन्ह.

लेख - संवत १६७९ वर्षे वैशाख वदी ५ गुरुवारे श्री मूलसंघे सस्वति गच्छे बलात्कारगणे कुंदकुंदाचार्यो भ. श्री. महीचंद्रोपशात् संघवी श्री धर्मदास श्री शांतिनाथम् प्रणमति

३. दायेबाजुनाम मूलनायक श्री वासुपूजयस्वामि सफेद पाषाण फुटरा चिन्ह भेंसानुं संवत १६७९ वर्षे वैशाख वदी ५. गुरौ श्री भारतिगच्छे श्री कुंदकुंदचार्यान्चये भ. श्री पद्मनदिदेवा तत्पट्टे भ. श्री. देवेन्द्रकीर्ति देवा तत्पट्टे भ. श्री विद्यानंदिदेवा तत्पट्टे भ. श्री मल्लिभूषण देवास्तपट्टे भ. श्री लक्ष्मीचंद्रदेवातत्पट्टे भ. श्री वीरचंद्रदेवा सूरत दि. जैन मूर्ति लेखन संग्रह ३५. यंत्र तांबानुं आठ कोठा नुं गोळ ५ इंचनुं सं. १५०७ वर्षे आचार्य श्री देवेन्द्रकीर्ति देवा तत् शिष्य श्री विद्यानंदी गुरुपदेसात् हूमड़ वंशे २।। अंइबा कारापितम् श्री मूलसंघे सपस्वति गच्छे ....

३६. सम्यग्दर्शन यंत्र तांबानुं गेळ ६ इंचनुं १७१३ वर्षे फागण वदी १ गुरुवार मूलसंघे भारती गच्छे बालात्कार गणे कुंदकुंदान्वये भ. वादीचंद्र भ. महिचंद्र उपदेशात् हूमंड़ र्तीय २।. इंद्रजी रामजी तस्य भार्या बा चांगा तयोः सुतो रुपजी मनजी नामानौ तेवांमध्ये बाइ चांगा यंत्रम् प्रणमति .

११४. पंचमेरु - २७ इंच चोमुखा धातुना चारे बाजु भगवाननी चिन्ह कोतरेला है ।

लेख - सं. १५१३ वर्षे वैशाख सुदी १०......श्री मूळसंघे बलात्कार गणे सरस्वतीगच्छे भ. श्री प्रभाचंद्र देवास तत्पट्टे श्री भ. पद्मनंदी तत्शिष्य श्री देवेन्द्रकर्ति दीक्षित आचार्य श्री .....विद्यानंदी गुरुपदेशात् गान्धार वास्तव्य हूमड़ ज्ञातिअे समस्त श्री संघे.....करापिम् मेरु शिखर कल्याण भुयात् (आ पंचमेरुमां घाणा ज बारीक चित्रकाम हैं।)

२४. पंच परमेष्ठी धातुना पार्श्वनाथ सहित नीचे चांदी या परवाळानुं मिनाकाम है। तेमज इन्द्र इन्द्राणी पद्मावती वाध आदि कोतरेला है। सं. १५१३ वर्षे वैशाख सुदी ३ श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे कुन्द कुन्दाचार्यान्वये भ. श्री पद्मनंदी तत्पट्टे भ. सकल कीर्ति देवा तत्पट्टे भ. श्री विमलेन्द्रकीर्ति क्षी पार्श्वनाथ बिंब प्रतिष्ठित हूमड़ ज्ञाति शा. श्रेष्ठी मेघा भार्या चांपु सुत विमल भार्या मडकु सुत देवा राजी भार्या पातल भाता नापुशा कुटुम्ब युक्ता निव्यं प्रणमति,

६९. धातुनी चोवीसी, ११/१/२ गोळ आकारे सं. १४९८ वर्षे वैसाख वदी २ वार सोमे मूलसंघे सरस्वति गच्छे कुंद कुंदाचार्योन्वये भ. श्री विद्यानंदी देवा त.प.भ. श्री देवेन्द्रकीर्ति देवा त.प. शिष्य श्री विद्या नंदी देवा तद्‌गुरुपद्‌शात् हूमड़ वंशे श्रेष्ठी हाथा भार्या वीजु तयोः पुत्र हिरा भार्या रत्नो श्रेष्ठी इपा भाता संपाय जाया पटु तयोः पुत्र पद्मा भार्या फालु लातृ दिदायथा गोरादे तृतीया भातृ नरदेव भार्या पुरजी पलीवम् मध्ये श्रेष्ठी पद्माभार्या कालुया भर्ता श्रेयार्थम् श्री अनंतनाथ चतुरविंशतिका करापितम्

७१. पंच परमेष्ठी ७" धातुना
सं. १६२२ वैशाख सुदी ३ सोमे श्री मूलसंघे भ. श्री सुमुतिकीर्ति तदुपदेसात् हूमड़ वद्यमान भार्या वनादे भ्राता विपा, भार्या शा. मनाभार्या भल्लादे सुत बीजलदे लघुभ्राता किका भार्या फोरमदे विदा सुत संघजी एवम् श्री शांतिनाथ पंचकल्याणक निव्यम् प्रणमत्ति

७२. धातुनी चोवीसी १२ इंच
सं. १५७५ वर्षे महा सुदी ६ गुरु श्री मूलसंघे सरस्वति गच्छे बलात्कार गणे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भ. श्री भुवनकीर्ति देवा त.प.भय. श्री ज्ञानभूषण देवा त.प.भ. श्री विजयकीर्ति गुरुपदेशात् हूमड़ ज्ञाति बुध गोत्रे शा शिव भार्या लालु सूत शा. मनोर भार्या सोनाई पुत्र वर्धमान और श्री सुमतिनाथम् नित्यं प्रणमति अहमीदावाद वास्तव्यम्

७३. सिद्धयंत्र - गोंळ धातुनुं ५।। इंच सं. १७०३ वैशाख सुदी बारस बुधे श्री मूलसंघे सरस्वतिगच्छे श्री बलात्कारगणे भ. श्री प्रभाचंद्र तत्पट्टे भ. वादीचंद्र भ. श्री महीचंद्रोपदेसात् हूमड़ ज्ञातिअे शाह श्री नानजी भार्या बाई श्री रुदी प्रणमति सिद्धम्

७४. सिद्धयंत्र गोळ धातुनुं ६ X ६ सं. १७०३ वैशाख सुदी १२ बुधे श्री मूलसंघे वागगच्छे भ. श्री प्रभाचंद्र भ. श्री वादीचंद तटपट्टे भ. श्री महीचन्द्रोपदंशात् हूमड़ प. श्री भाणजी भार्या हर्षादे पुत्र शा. रायमल पुत्र रामजी विजयकण प्रणमति सिद्ध.
सम्यकचारि६नुं यंत्र तांबानुं गोळ इंचनुं लेख सं. १७१३ वर्षे फाल्गुण वदी १ने गर३ श्री मूलसंघे भारती गच्छे बलात्कारगणे कुंदकुंदान्वये भ. श्री वादीचंद भ. श्री महीचन्द्रो पदेशात् हूमड़ शा. इन्द्रजी रामजी तस् भार्या बाई चांगा तयोः सुतक शा. रुपजी नमनजी नामा नउ ते सोम मध्ये बाई चांगा प्रणमति.

७६. सम्यकज्ञान यंत्र चांदीनुं - गोळ ७ इंच लेख - सं. १९८८ वैशाख सुद १० ना रोज श्री दिगम्बर जैन दशा हूमड़ ज्ञाति शेठ घेलाभाई मंछालालना स्मरणार्थे श्री जुना दहेरासरजी मां अर्पण कर्युं है श्री मूळसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्री सुरेन्द्रकीर्तिजी
७७. सम्यकदर्शन यंत्र - चांदीनुं ६ X ६ सं. १९८८ ना वैसाख सुद १० ने रोज श्री दि. जैन विसाहूमड़ ज्ञाति झवेरी शेठ नवलचंद्र हीराचंदना विधवा परशनबाईअे रत्नत्रय व्रतना स्मरणार्थ श्री जूना दहेरासर मां अर्पण कर्युं है।

सुरत दि. जैन मूर्ति लेखसंग्रह

७८. जलयात्रा विधान यंत्र चांदीनुं ८ X ६ इंचनुं असीयो परीजल मंडल सदश वरुम मंडल लेखनियम् इति प्रतिष्ठा मधे उकात प्रस्तित द्रव्यज विलोक नियं. आ यंत्र सुरत नि. दि. जैन दशा हूमड़ ज्ञाति बाई घनकोर ते शा. घेलाभाई मंछालालना विधवाना स्मरणार्थे श्री जूना मंदिर ना आदिनाथजीना मंदिर मद्ये मकुदुं है . सं. १९९३

७९. ऋषिमंडल यंत्र - चांदीनुं १२ X १२ गेळ दे. प्रे. (ह्रचंद्र प्रेमचंद्र) सुरत

८०. त्रिकोण यंत्र - तांबानुं ९ X ७ २० कोठानुं

८१. पद्मावतीनुं यंत्र - तांबानुं ५ X ६ नुं

८२. १७० नुं यंत्र - तांबानुं ५ X ५ नुं २० कोठानुं दरेक बाजु तथा चारे खूणेथी गणतां १७० आवे . नीचे लेख है । श्री यंत्र यंत्र धारकरण मनोवांच्छित पद्म - स्वाहाः (चंत्र लेवा लायक है)

८३. तांबानुं ह्रीं यंत्र - आठ कोठानुं गोळ ३ X ३ इंचनुं

८४. २० कोठानुं यंत्र- तांबानुं ३।। X २।।नुं

८५. आकाश मंडल यंत्र - गोळ ताबंनुं महा. हा बालुं १।। X १।।

८६. वायु मंडल यंत्र ताबानुं - गोळ स्वाय वालु

८७. ताबां यंत्र - गोळ, ह्री, गोळ (अंदरथी चोरस) ३ X ३नुं

८८. कांसानुं यंत्र - श्री स्वतिक ३ X ३ गोळ

८९. शिखरजीनो पाषाण और बेठक चांदीनी २ इंच

९० तांबानुं यंत्र - ३।। X ३।। कुंडली

९१. पार्श्वनाथ धातुना - ९ इंचना उंचाइ पांच फेण सहित ने आसपास डायेबाजु पार्श्वनाथ ६ इंचना ने बायेबाजु

गुजराती मंदिर (नवापुरा)ना मूर्तिलेखो.

१. श्री वासुपूजय धातुना मूलनायक उचाइ इंच १०
लेख - सं. १६७९ वर्षे फाल्गुण वदी १३ गुरौ श्री मूलसंघे सरस्वतिगच्छे बलात्कारगणे श्री कुंदा कुंदाचार्यान्वये श्री वादिसने गुरुपदेशात् तत्पट्टे भ. बुवनकीर्ति - नित्यम् प्रणमति

२. पद्मासन प्रतिमा कृष्ण पाषाण....उंची इंच ६।। केसरियाजी पाषाण लेख नहीं

३. पद्मासन प्रतिमा कृष्ण पाषाण उंची इंच ५।। लेख नहीं. केशिरया पाषाण

४. पद्मासन कृष्ण पाषाण ५।। इंचनी लेख नहीं . केसरिया काला पाषाण

५. रुषभदेव पद्मासन प्रतिमा सफेद पाषाणनी उंची इंच ७।। दसाहूमड़ शा. नेमचंद्र कस्तुरचंदस्य स्मरणार्थ भ. यशकीर्ति द्वारा पावागढमां प्रतिष्ठा करावी सुरत गुजराती मंदिरमां रखा.

१५. चौवीसी धातुनी उंची इंच ११
लेख - सं. १५१५ वर्षे वैशाख सुद १३ रवौ श्री मूलसंघे बलात्कारगमे सरस्वतिगच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भ. श्री पद्मनंदी त.प. आचार्य श्री देवेन्द्र कीर्ति तत्पट्टे श्री विद्यानंदी गुरुपदेशात् हूमड़ ज्ञातीय धर्मसी भार्या बा राजी सुत ढा. बेला भार्या पाश्व प्रणमति नित्यम्

१६. चौवीसी धातुनी उंची इंच १२।।
लेख - सं, १६६८ वर्षे वैशाख सुदी ५रवौ मूलसंघे बलात्कार गणे भारती गच्छे बलात्कारगमे भ. ज्ञानभूषण त.प.भ. श्री प्रभाचंद्र त.प.भ. महीचंद्रस्तदुपदेशात् हूमंड़ ज्ञातीय सं. ताता भा. माणकदे तयोः सुत सं. जीवाभा मोहलदे तथा सं. सूरजी सुत वीरजी भा. संजीवा नमति.

१७. चौवीसी धातुनी उंची इंच १२

लेख - १५१८ वर्षे माध सुदी ५ गुरौ श्री मूलसंघे सरस्वतिगच्छे बलात्कारगणे भ. श्री देवेन्द्रकीर्ति देवास्तय भ. आचार्य श्री विद्यानंदी देवातदगुरुपद्शात् श्री हूमड़ वंशे श्रेष्ठी देवराज भार्या सिरसई तयोः पुत्र नारपति श्री शांतिनाथ चतुर्विंशतिका काराप्या.

१३५. चोवीसी धातुनी उंची इंच १०

लेख - सं. १६११ वर्षे माध वदी ८ गुरौ श्री मूलसंघे सरस्वति गच्छे बलात्कारगणे श्री कुंदकुंदाचार्यन्वये श्री सकलकीर्ति देवा त.प.भ. श्री भुवनकीर्तिदेवा त.प.भ. श्री ज्ञानभूषणदेवा त.प.भ. श्री शुभचेद्र गुरुपदेशात् गंधार मंदिर गांधी काउआ थवादे स्तत् गोदूआ भा. गमादे ...आदिनाथ नित्यम् प्रणमति हुं गंगा गोत्रे शुभं भवतुं

१३६. रत्नत्रय चौवीसी धातुनी उंची इंच ११

लेखः- सं. १४९९ वर्षे वैशाख वदी ३ सोमे श्री मूलसंघे सरस्वतिगच्छे मुनीश्री देवेन्द्रकीर्ति त शिष्य श्री विद्यानंदी देवा श्री हूमड़ वीसा शा साखेता भार्या २ रुडी तयोः पुत्र सारानी भार्या गोरी कु. हगणी तयोः सुखनंदा राजा भातृ उपाणा भार्या खणपर वयेः पुत्रौ मल्ला मोधाराजा तग्नीरानी श्रेयासनाथ....

१३७. चौवीसी धातुनी उंची इंच ता।

लेख - सं. १४९० वर्षे वैशाख सुदी ९ शनौ श्री काष्टा संघे वागड़गच्छे भ. श्री धर्मकीर्ति त.प.भ. धर्मकीर्ति त.प.भ. श्री नरेन्द्रकीर्ति हूमड़ ज्ञातीय पंखीश्वर गोत्रे......कडुवा.......श्री शीतळनातम् प्रणमति

१३८. चरणपादुका धातुनी ८॥ X ६॥ नी

धातुना चोरस मूर्ति मोटा मूर्ति समूह जेमां वचमां पार्श्वनाथनी प्रतिमा है। और चार बाजु १८४ प्रतिमा है। और लंबाई १३/१/२ चोकाई १३ है। बहुज प्राचीन वनावट है लेख नहीं है।

अरहनाथनी प्राचीन प्रतिमा श्वेत पाषाण उंची १९

लेख - धसाई गवेल है। बहुज प्राचीन है।

७३. धातुना चोवीसी १२ इंच सं. १५४७ वर्षे थी गंधार मंदिरे भ. श्री विद्यानंदी उपदेशात् हूमड़ संघवी घावर संघवी सोमा संघनी वीरपाणी श्री जीन चोवीसी करापितम् श्री पूखा भार्या धर्मा सूत श्रेबे दाहदा मोहइमा प्रतिष्ठापितम् भ. श्री मल्लीभूषणेन प्रतिष्ठितम्

७४. चोवीसी धातुनी १० इंच १४९९ वर्षे वैशाख वदी २ सोमे श्री मूल संघे कुंदकुंदाचार्या भ. श्री पद्मनंदी शिष्य देवेन्द्रकीर्ति आचार्य श्री विद्यानंदी गुरुपदेशात् हूमड़ ज्ञाति थाः मांडण भार्या तहकुस्त..... जीनदास श्री आदिनाथ प्रतिमा करापितम्

७५. चोवीसी धातुनी १२ स्व. सं. १५४५ वर्षेवैशाख वदी १२ रवो श्री मूलसंघे भ. श्री देवेन्द्रकीर्ति भ. श्री विद्यानंदी पट्टे मल्लीभूषण गुरुपदेशात् मेवाडाज्ञाति श्रेष्ठी धनाभार्या बाई घनी सूत सेवला भार्या नाथी तथा आसी सूत योगीदास तेन.

७६. धातुनी चोवीसी १०" नवा गोल आकारे सं. १४९० वर्षे वैशाख सुदी ९ सोमे श्री मूलसंघे नंदीसंघे बलात्कार गणे कुंदकुंदाचार्यान्वये भ. श्री पद्मनंदी तत्पटे श्री शुभचेद्र तस्य भाता जगत्रय विद्वान मुनिश्री सकलकीर्ति उपदेशात् हूमड़ ज्ञातिठा. नरमद भार्या बलु तयो पुत्रः देपाल श्री..... श्री आदिनाथ प्रतिमा इंच कारात्रिता नित्यं प्रणमति.

७७. चोवीसी धातुनी १२" शाके १५६७ श्री मूलसंघे सेनगणे भ. सोमसेन उपदेशात् जैन जाति कलबादे संघवी बालरोटी संघवी गांजाई रामकाइ संघवी बोबसेन संघवी संताई ऋषभावि तीर्थकर चर्तुविशंति नित्यं प्रणमति

७८. धातुनी चोवीसी १२ सं. १५२५ वर्षे फाल्गुन सुदी ७ शनौ श्री मूलसंघे नंदीसंघे बलात्कार गणे सरस्वचतिगच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये श्री भ. विद्यानंदी ततपट्टे भ. श्री देवेन्द्रकीर्ति तत्पटे भ. श्री गुरुपदेशात् हूमड़ ज्ञाति शा. वजा भार्या दिकमदे सुत शा. देवा भार्या वांकलदे कर्म क्षयार्थम्

सुरतना चोपडाना दहेरना मूर्तिलेखो.

१. वासुपूज्यस्वामी मूलनायक भेसनुं चिन्ह सफेद पाषाण उंची इंच ११ लेख घसाई गयो छे . पण सं. १६३२ जेम तेम बचाय है .

२. सफेद पाषाण प्रतिमा उंची इंच ७॥ लेख घसाई गयो है।

३. चंद्रप्रभु सफेद पाषाण उंची इंच ८
लेख - सं. १५४८ लेख वधु घसाई गयी है ।

४. चोवीसी धातुनी उंची इंच १०॥ नीचे चित्रकाम है।
लेख सं. १५२९ वैशाख सुद ७ सोम श्री कुंकुंदाचार्यान्वये भ. श्री पद्मनंदी देवा तत्पटे भ. श्री देवेन्द्रकीर्तिदेवा तत्पट्टे आ श्री विद्यानंदादेवास्तेषामुपदशात् श्री मूलसंघे सरस्वतिगच्छे देइसा भा. लाडू तयोः पुत्र श्रेष्ठी इाई प्रीभा . देमती द्वि. भार्या सुमति अंते नित्यम् श्री संभवनाथ चतुविंशतिका प्रणमति.

५. चोवीसी धातुनी उंची इंच ११ नाचे देव-देवी पद्मावती चतुर संघ आदि चित्रकाम है ।
लेख - सं. १५२९ ना वर्षे वैशाख सुद ७ सोमवार श्री मूलसंघे सरस्वतिगच्छे भट्टारक श्री विद्यानंदी गुरुपदेशात् हूंमड़ ज्ञातीय ८१० गोपा भार्या राइस वयोः पुत्र वरभू तत्पुत्री लीलू भ्रा गोमद भार्या जीवी अंते श्री सुमतिनाथ चतुर्विशंतिका फारकापितम् प्रणमति
सूरत दि. जैन मूर्तिलेख संग्रह
यंत्रो

५३. तांबानुं यंत्र १२ X १२ गोळ, ऋषिमंडलनुं सं. १५९७ वर्षे वैशाख सुद १० गुरौ श्री मूलेसंघे भ. श्री ज्ञानभूषण भ. श्री विजयकीर्ति .....(भांगी गयो है) त.प.भ. श्री ब्र. उपदेशात् हूमड़ ज्ञानौ काकडेश्वर गोत्रे संघवी पद्मशी भार्या दरखु सुत संघवी ज्ञाति भार्या धर्मायो द्वितीय भार्या धर्मायी सुत संघवी भीमजी भार्या वारबाई नमति.

५४. यंत्र ताबानुं ६।. इंच गोल दशलक्षण यंत्र सं. १६८६ वर्षे पौष वद ११ बुधे श्री मूल संघे भ. प्रभाचंद्र भ. श्री वादिचन्द भ. श्री महीचन्द्रोपदेशात् संघवी जीवराज श्री महाव्रतारंभे प्रतिष्ठितम्

५५. यंत्र तांबानुं ८॥ इंच गोळ, ४८ कोठानुं यंत्र सं. १६३८ वर्षे माध मासे सातमी अष्टमी तिर्थे गुरुवारे श्री मूलसंघे सरस्वतिगच्छे बलात्कारगमे भ. श्री विद्यानंदि भ. श्री मल्लिभूषण भ. श्री लक्ष्मीचंद्र भ. श्री अभयचंद्र भ. श्री अभयनंदि भ. श्री रत्नकीर्ति गुरुपदेशात् हूमड़ ज्ञातीय शा सेधा भार्या सरादे तयोः सुत संघवी लाडका प्रणमति.

५६. यंत्र तांबानुं ऋषिमंडल यंत्र १०॥ इंच गोल संवत् १७१७ माध सुद ५ दिने सागवाडा नगरे श्री आदिनाथ चैत्यालये श्री मूलसंघे भ. श्री राजचंद्र त. प. श्री हर्षचन्द्रोपदेसात् हूमड़ ज्ञातीय फळिया शा कडया भार्या नानी तयो पुत्री बाई मंगी द्वितिय पुत्री जीवी अेतेषाम् ऋषिमंडल यंत्र नित्य प्रममति शुभम् भवतुं

५७. यंत्र तांबानुं ६।। इच गोल सिद्धचक्र यंत्र सं. १८१८वर्षे पौष वदी २......सिंहपुर ज्ञाति...शेष वंचानुं नही नित्य पद्मावती ६ इंचना चार हाथीवाला ते उपर त्रण फेणवाला नागसहित संयुक्त है और बीचमें दो सर्पना चिन्ह है ।

लेख :- सं. १५२२ वर्षे जयेष्ठ सुदी २ शुक्रे श्री मूलसंघे सरस्वतिगच्छे बलात्कार गणे कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्री वादीचंद्र तत्पटे भ. श्री महीचंद्र भ. श्री मेरुचंद्रोपदेशात् हूमड़ वीसा शा. नाथाभार्या नारंगदेतयोः पुत्री बाजीवा बाई मान जिन प्रणमति.

९७. चोवीसी धातुनी १२ इंच नीचे देवदेवी इन्द्र पद्मावती वाद आदि चत्रेला है ।

लेख - संवत १५४४ वर्षे वैशाख सुद ३ ने सोमे श्री मूलसंघे भ. श्री विद्यानंदी भ. श्री भुवनकीर्ति तटपट्टे भ. श्री ज्ञानभूषण गुरुपदेशात् हुं. वुं घना भा घर्मणि सु. व. समघरभार्या मानुं सु. वु. छराज वु. सर्त्रवीर और सहसवीर नासण, तट्ट पुत्रा शालां, काहनां भगीनी पुत्री ऐते प्रणमति.

९८. श्री पाश्वनात धातुना इच १३ नव फेण डब्बल नागनुं चिन्ह है । आसपास दो हाथी है ।

लेख - संवत १६७८ वर्षे जेष्ठ सुदी १० ने शुक्रे श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कार गमे कुंदकुंदाचार्यानुवाय भ. श्री शुभचंद्रदेवा तटरट्टे भ. श्री सुमतकीर्ति देवा तत्पट्टे भ. श्री गुणकीर्ति देवा तत्पटे भ. श्री वादिभूषण देवा तटपट्टे भ. श्री रामकीर्ति गुरुपदेशात तत् शिष्य ब्रह्म वर्धमान तेत् शिष्य नाग्रदा ज्ञातीय बहुद राखया पुणमीण गोत्रे शाह वीरा भार्या हीरा तयो सुत्र ब्र रामाप्य.

९४. आदिनाथ धातुनी प्रतिमा ४।। इंच आसपास वाध चीतरेला है ।

लेख - संवत १५९४ वर्षे फाल्गुण वदी १० खक श्री मूलसंगे भ. श्री लक्ष्मीचंद तत्पट्टे भ. श्री अभयचन्द्र उपदेशात् हूमड़ ज्ञातीय श्री गणपति भर्गगांदे सूसं. श्री वक्र चन्द्रावती पुत्री.....प्रणमति

८०. पार्श्वनाथ धातुना उंचाई १२ X ९फेण ९ना

लेख - सं. १५१३ वैशाख सुद १० बुध दिने मूलसंघे स. गच्छे श्री कुंद. आ श्री विद्यानंदी गुरुपदेशात् घोघा वेला तट वास्तव्य श्री हूमड वंशे गंगावी गोत्रे सादा भार्या सादा रुपी तत्पुत्र मंडन भार्या दहकते तयोः पुत्रः गांधी पटावा भार्या प्रेमलादे तयो सुतः मेघराज भार्या ललितादे द्वितीय मदीराजा..... सदा भार्या घर्मिणी चार बंदो प्रणमति.

८१. वासुपूज्य धातुना उंचाई इंच-१२ X

लेख - सं. १५२७ वर्षे वैशाख वदी १२ श्री मूलसंघे सरस्वतिगच्छे बलात्कार गणे श्री कुंभ. श्री पद्मानंदी तत्पटे देवेन्द्रकीर्ति तत्पट्टे भ. विद्यानंदी गुरुपदेशात् गंधार नगरे बाइ आर्जिका, कल्याणथी वचनश्री सागनश्री वासुपूज्य प्रतिमा करापित रोहिणी व्रत निमितम् नित्यं प्रणमत्ति.

४२. रत्नत्रय चोवीसी दातुनी उचाई इंच १३ X ९नी

लेख - सं १५१३ वैशाख सुद १० बुधवार....विद्यानंदी हूमड़ ज्ञातीय राजलदे तयो, पुत्र श्री.....घोघा वास्तव्य प्रणमति

४३. चोवीसी धातुनी उची इंच १२.

लेख - सं. १५१३ उपलोब्ध लेख हूमड़ ज्ञातीय शामल भार्या घनी घोघा शांतिनाथ प्रतिष्छितम

४४. रत्नत्रय प्रतिमा घातुनी उचाई १०।। X ७।।

लेख - सं. १४८९ वर्षे जयेष्ठ सुदी १४ मूलसंघे ब.गणे मुनीश्री सोमचंद्र देवाः सम्राट देवचंद्र सुत धघली माता भुवलोप तपोधर्म व्रत उजवल निमित्ते प्रणमतु नित्यम् राजा उसमांडलु स्थान सम्यकत्रय क्षेत्र .

३. अजितनाथनी प्रतिमा काला पाषाण उंचाई इंच २७ चोकाई २८ इंच चोथा कालनी प्राचीन लेख नही.
४. चंद्रप्रभुनी प्रतिमा सफेद पाषाण उंचाई इंच ३१ पहोलाई २५ इंच
लेख - नही प्राचीन चोथा कालनी चिन्ह नहीं.
५. पीला पाषाणनी बीस व्यवहरमाननी प्रतिमा उंची इंच १६ पहोलाई इंच १० लेख नहीं
६. पीला खंडित प्रतिमा पद्मासन लेख वंचातो नथी प्राचीन
७. पीला पाषाणनी पद्मासन प्रतिमा १० इंचनी बहुज प्राचीन लेख नही.
८. धातुनी चौवीसी १७ इंचनी
लेख - सं. १५३७ वर्षे वैशाख सुदी बुधे दिने श्री मूलसंघे बलात्कार गणे सरस्वतिगच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भ. श्री देवेन्द्रकीर्ति देवाः तत्पट्टे भ. श्री विद्यानंदी देवाः तदुपदेशात् श्रीमती हूमड़ वंशे....करापित्तम्
९. तीन चोवीसी धातुनी चोरस उंची इंच १५.
लेख - सं. १४९७ नी बहुज प्राचीन उत्तम बनावट है । लेख बहु बडा है ।
१०. धातुनी चोवीसी उंचाई इंच १३
लेख - सं. १५९८ वर्षे फाल्गुन मासे शुक्ल पक्षे ३ गुरौ श्री मूलसंघे हूमड़ ज्ञातीय (लेख बहु बडा है)
११. सफेद पाषाण कुंथुनाथनी प्रतिमा उंची इंच १० प्राचीन
लेख - सं. १५३४ श्रावण
२९. शत्रुभय निवारण यंत्र तांबानुं ५ X ५ चोरस
३०. तांबानुं यंत्र चोरस सिद्धचक्र
लेख - सं. १८९५ वर्षे कार्तिक सुदी १४ देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानंदी
३१. चोरस यंत्र तांबानु - लक्ष्मी प्राप्त यंत्र ३।। X ३।।
३२. तांबानुं यंत्र कानडी चोरस ४ इंचनुं
३३. तांबानुं यंत्र चोरस ३ X ३ अनंतव्रतयंत्र सं. १७६० भादरवा वदी १३.
३४. पद्मावती यंत्र ९ X ९ तांबानुं
वेदी परनोलेक दिगंबरी सं. १९७२ ना श्रावण सुद १३ शुक्रवारे श्री घोघावासी ठाकरसी नतुभाई तरफथी आरस बडाव्या.
चोपडाना दहेरानी - पहेला मालेनी वेदीमां
३५. चंद्रप्रभू मूलनायक सफेद पाषाण उंचाई २८ X २३.
लेख . नही अत्यन्त प्राचीन घणीज भव्य चोथाकाल का रुयाल है।
३६. शांतिनाथ - सफेद पाषाण उंची इंच २२ X २०
लेख - सं. १४९२ वर्षे वैशाख सुदी ५......घोघा हूमड़ ज्ञातीय.....
३७. धर्मनाथ प्रतिमा पीला पाषाणनी इंच ११ X १५नी
३८. नेमनाथ - कालो पाषाण चलकतो इंच १३ X १०नी
लेख - सं. १४४३ वर्षे वैशाख सुदी श्री मूलसंघे नरेन्द्र देवा....
३९. श्री ऋषभदेव सफेद पाषाण उंचाई इंच ११ X ७

हूमड़ समाज का सामाजिक सर्वे के अन्तरगत

अखिल भारतीय हूमड़ जैन महासंघ

के लिये

अखिल भारतीय हूमड़ इतिहास शोध समिति द्वारा आयोजित

अखिल भारतीय हूमड़ समाज जनगणना

सने १९९८-९९

हूमड़ समाज १९१४ से १९९९

कुल जनसंख्या १९१४-२०८३४			कुल जनसंख्या १९९९ - १४४२३१			
प्रांत	जनसंख्या	%	जनसंख्या	%	कुल	तफावत
महाराष्ट्र	९३०१	४४.४०	४४९४९	२१.२६		
गुजरात			२५०८८	१७.२९	४६.५५	+२.१६
राजस्थान	११४८५	५५.१३	४८९८४	३१.६०	३६.०६	-१९.०७
मालवा (म.प्र.)			६६६९	४.४६		
अन्य कुल	४८	००.४७	१८६४९	१७.३९	१७.३९	+१६.९२

सिहावलोकन - श्री सूरजमलजी बोबरा सम्पादक हूमड़ मित्र

संचालन आयोजन - संयोजक हीरालाल जैन सालगिया एवं इतिहास नगर समितिया

अ.मा. हूमड़ इतिहास शोध समिति

केन्दिय कार्यालय ऋषभ चौचालय १, सुदर्शन सोसायटी वि.-१,

नारणपुरा, अहमदाबाद-३८००१३.

अखिल भारतीय हूमड़ इतिहास शोवा समिति

हूमड़ समाज के निवास स्थान के शहरो/नगरो/गाँवों भी कुल संख्या विशलेषन

जनगणना १९९८-१९९९

प्रांत	विभाग	५०० से आविक	१०० से ५००	१०० से कम	कुल	%
महाराष्ट्र	पुना	४	७	२७	३८	
	सोलापुर	३	९	३८	५०	
	सतारा	-	१४	४३	५७	
	खानवेश	६	१७	३३	५६	
कुल		१३	४७	१४१	२०१	
राजस्थान	उदयपूर	८	१५	२२	४५	
	डूंगरपूर	१	१०	२०	३१	
	बाणवाडा	९	१६	१६	४१	
	चित्तोड	२	९	२५	३६	
		२०	५०	८३	१५३	
गुजरात	गुजरात	८	४७	९४	१४९	
मध्यप्रदेश	मध्यप्रदेश	२	८	२४	३४	
अन्य विदेश	-	-	-	५०	५०	
		४३	१५२	३९२	५८७	

आर्थिक सिंहावलोकन

माननीय श्री सूरजमलजी बोबरा

सम्पादक : 'हूमड़ मित्र' इंदौर

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकोंने कल्पनातीत परिवर्तन देखें है। आर्थिक सफलता के मूल आधार- उद्योग, व्यापार, व्यवसाय एवं नौकरी के स्वरूप में मूल अंतर आया है। इसको संक्षिप्त में स्पष्ट करने ला प्रयत्न करते हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् व पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारंभ होने पर उद्योंगो की परिभाषा बनाई गई। उसमें लघु उद्योग, मध्यम उद्योग और बड़े उद्योग ये दो दायरे मुख्य रूप से निश्चित किये गये। हूमड़ दृष्टि से देखें तो मुम्बई में प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स लि. (प्रीमियर पद्मिनी कार के निर्माता समूह-हीराचंद भाई) के अतिरिक्त कोई नाम ध्यान में नहीं आता है। मुझे पता नहीं प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स ने कितना हूमड़ दृष्टि से विचार किया, किन्तु मुम्बई में दक्षिणांचल के कुछ परिवारों को मैं जानता हूँ, जो प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स मैं नोकरी करते थे।

मध्यम उद्योगों में हम कु छ उद्योगों को पहचान सकते हैं-जिनमें बाम्बे ब्रश फेक्टरी (सैरया परिवार, बांसवाड़ा) का नाम ध्यान में आता है। इस क्रम में कई नये नाम जुड़ते हैं-घांसीलाल पूनमचंद परिवार द्वारा संचालित ओटोमोबाइल्स एन्सिलियरी उद्योग, श्री सतीष मेहता द्वारा संचालित मोडर्न मशीन टूल्स पर किसी भी विवरणिका में इनको अलग से पहचाना नहीं गया है। अत: समाज के लोगों के औद्योगिक रुझान को वास्तविक रू प में पहचानना कठिन है। सभी सदस्यों ने व्यापार लिखकर इस आर्थिक विश्लेषण को सीमित कर दिया है, जबकि हम कई परिवारें को जानते हैं, जो लधु एवं गृह उद्योगों में अपना भाग्य आजमा रहे हैं और जिन्हें अच्छी सफलता मिली है।

अखिल भारतीय हूमड़ जैन महासंघ द्वारा एकत्रित आँकड़े बताते है किं मुम्बई में करीब ५.२८ प्रतिशत हूमड़, अपने स्व-उद्योग को पल्लवित करने में लगे हैं। इसका आशय यह हुआ कि ४७८ हूमड़जन स्व उद्योगों का संचालन कर रहे हैं। यदि यह आँकड़े गंभीरता से एकत्रित हुए हैं, तो मुम्बई की टोटल जनसंख्या के अनुपात में हूमड़ समूह द्वारा उद्योगों के प्रति यह रुझान आश्वस्त करने वाला है। बहुत से परिवारोंने हीरों की कटाई के उद्योग से अपने को जोड़ा और व्यापार के साथ उसका विस्तार कर उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। यद्यपि आँकड़े स्पष्ट रू प से हमारे पास उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु कुछ संदर्भ हमारे पास हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि हीरों को निखारने व उनके निर्यात पर हूमड़ समूह की अच्छी पकड़ थी। धोधा बंदरगाह में हूमड़ समूह की यशोगाथा वहाँ का हूमड़ मंदिर, हूमड़ वाड़ और मार्ग आज भी सुना रहे है। एक संदर्भ और देना ठीक रहेगा कि वेणीचंदजी भाईजी १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हूमड़ के रू प में इंदौर उनके पास रत्नों की मूर्तियाँ थी और अग्नि के कारण उनके चैत्यालय की समाप्ति के पश्चात् उन मूर्तियाँ का शक्कर बाजार के मंदिरों में स्थानांतरित कर दी गई, जहाँ आज भी वे शोभायमान हैं।

अपेक्षाकृत रूप से प्रकाशित १९९६ विवरणोंका में उद्योगपति के रू प में ५२ परिवारों को पहचाना गया है

सौजन्य : सूर्यकान्तभाई भाईचन्दजी दोशी
५०२, दोशी पेलेस, २४ वालकेश्वर मुंबई - ४००००६
टे. नं. ३६४०४०२, ५६१५३७१

। अधिकांशतः इन्हें लघु व गृह उद्योगों के रूप में लिया जा सकता है। यदि इन उद्योगों के संचालकों पर ध्यान दें, तो हमें ज्ञात होगा कि उच्चशिक्षित नई पीढ़ी ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया है। इसे एक शुभ चिन्ह माना जा सकता है, जो पारिवारिक व सामाजिक समृद्धि के सूत्रधार हो सकते हैं। देखना यह है कि अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के इस दौर में यह उद्योग कितने भविष्योन्मुखी होते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के जानकार यह अच्छी तरह जानते हैं कि किसी भी देश की आर्थिक शक्ति उसकी उत्पादन क्षमता होती है। सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार के इस युग में कुछ दुविधा बढ़ रही है और नई पीढ़ी का आकर्षण इस क्षेत्र में बढ़ रहा है-पर यह कभी नहीं भूला जाना चाहिए कि किसी भी देश की मूल शक्ति उसके जनसमूह की सूचनाओं की वस्तुओं में बदल सकने की क्षमता होती है। पर यह भी स्पष्ट रूप से समझ लिया जाना चाहिए कि सूचनाओं के अभाव में वस्तुओं का निर्माण लंगड़ी प्रक्रिया का परिणाम होगी और पत्थर-युग में लौटने जैसी होगी। विपुल व श्रेष्ठ उत्पादन तभी संभव है, जब हम सूचनाओं से भरे हों और उनके एनालिसिस व वस्तुओं में उन्हें उतारने की क्षमता हममें हो। ये तीनों ही प्रक्रिया साथ-साथ चलना आवश्यक हैं। यह एक चैलेंज है, जिसे स्वीकार किये बिना प्रगति संभव नहीं है। इतिहास साक्षी है हूमड़ समूह ने सदैव समय से पूर्व अपने समक्ष उपस्थित सभी चेलेंजों को समझा है और उसे अपने विकास का मार्ग बनाया है। उठती हुई पीढ़ी को इस चेलेंज को समझना होगा और उसे अपनी अन्नति का मार्ग निर्धारक बनाना होगा।

उद्योगों की रचना करना और उनका संचालन करना कठिन होता जा रहा है। वस्तुओं की उपयोगिता में जो भिन्नता आई है और उसमें जो बहुआयामिता आई है उसने निर्माण प्रक्रिया को बहुत जटिल किया हैं। उसी अनुपात में उद्योगों के संचालन व उत्पादनों को लाभजनक रू प में विपणन करलेना उससे अधिक जटिल हो गया है। जनगणना के कोई आंकड़े सुचारू रूपसे ऐसे उद्योगों की जानकारी नहीं देते हैं। इस के संदर्भों को खोजने के लिए विवरणिकाओं में प्रकाशित विज्ञापनों पर भी नजर डाली, किंतु कोई उचित संदर्भ प्रास नहीं हुआ। अतः उद्योग आधारित समाज के किसी भविष्य की कल्पना करना कठिन है। पूना के आंकड़े तो स्व-उद्योग प्रेरित समाज की अपेक्षा स्थाई उच्च नौकरियों की ओर जाते हैं।

इस रू झान का संभवतः मुख्य कारण यह है कि गत ७ वर्षों से देश का उद्योग जगत अनिश्चितता का शिकार है और हूमड़ समूह के पास इतनी अर्जित आर्थिक क्षमता नहीं कि वह अपने आपको किसी कठिनाई में फंसा देने की हिम्मत करें। वैसे भी संपूर्ण हूमड़ समाज सुरक्षित खेल खेलने का आदी है और उद्योगों में अपेक्षाकृत अधिक साहस व खतरों को झेलने की आवश्यकता होती है।

सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार-तथा बड़े औद्योगिक संगठनों के उदय ने नौकरियों के आकर्षक अवसर पैदा किये है। हूमड़ समूह की नई पीढ़ी के इंजिनियरों व एम.बी.ए. के उपाधि प्राप्त युवकों को नौकरियों में अवसर प्राप्त हुए हैं। अगला दशक संभवतः इसी दिशा में अपना आकर्षण बनाये रखेगा। विदेशों में तो इस क्षेत्र के अवसर बहुत अधिक विस्तृत हुए हैं। आशा की जा सकती है, कि वैश्वीकरण के कारण भारत में भी आकर्षक अवसरों में वृद्धि हो सकेगी।

सौजन्य : सूर्यकान्तभाई भाईचन्दजी दोशी
५०२, दोशी पेलेस, २४ वालकेश्वर मुंबई - ४००००६
टे. नं. ३६४०४०२, ५६१५३७१

उभरती हुई पीढ़ी के कार्यकलापों के संकेत भी मिलने लगे हैं। पूना दिगंबर समाज, जिसमें हूमड़ लोगों का बहुमत है, ने बहुत ही आवश्यक आँकड़े जुटाये हैं। (संदर्भ दिगम्बर जैन समाज निर्देशिका (पुणे व परिसर) उनके निष्कर्ष निम्न प्रकार हैं -

(१) प्रत्येक पीढ़ी अधिकाधिक शिक्षित दिखाई देती है। सम्पूर्ण पुरुष संख्या में २ व स्त्री संख्या में सात निरक्षर हैं।

(२) डॉक्टर, इंजीनियर, सीए., वकील, प्रोफेसर आदि जिन्हें उच्चशिक्षित कहते हैं, पुरुषों में ३०.५ प्रतिशत व महिलाओं में १०.१० प्रतिशत है। डिग्रीधारी पुरुषों का प्रतिशत ३२.३ प्रतिशत व महिलाओं में २५.२ प्रतिशत है।

(३) साधारणत: ३५ वर्ष की आयु तक के उच्चशिक्षित कुटुम्बों पर विचार करें, तो पुरुषों का प्रतिशत व महिलाओं का प्रतिशत ३५ बैठता है।

(४) एस.एस.सी. तक शिक्षा लेने वाली महिलाओं का प्रतिशत १६ है।

(५) महाविद्यालयीन शिक्षण ले लेने वाली लड़कियों के आत्मविश्वास में वृद्धि हुई है और जिन परिवारों की स्त्रियों-लड़कियोंन एस.एस.सी. के बाद शिक्षण छोड दिया है, उनकी समृद्धि का ग्राफ अपेक्षाकृत निम्न है। यह एक महत्त्वपूर्ण संकेत है, इस बात का कि महिलाओं की उच्च शिक्षा समाज की समृद्धि के लिए आवश्यक है।

(६) हूमड़ जन व्यवसाय भी विभिन्न प्रकार का करते हैं और उद्योग में भी रत हैं, किन्तु उद्योगों की ठीक से जानकारी उपलब्ध नहीं है।

(७) पूना विवरणिका के संकलकों का सोचना है कि ३०-३५ वर्ष की आयु के बीच के पुरुषों में व्यापार-व्यवसाय की अपेक्षा स्थायी नौकरी की और आकर्षण अधिक है। पूना-महाराष्ट्र (दक्षिणांचल) के ग्रामीण अंतरंग क्षेत्रों जैसे-बारामती-अकलूज आदि स्थानों के नवशिक्षितों के आकर्षण का विशेष केंद्र है। मुम्बई की परिस्थितियों के कारण गत २० वर्ष से नई पीढ़ी का झुकाव पूना की और बढ़ा है। यही कारण है कि पूना में हूमड़ जनसंख्या का केंद्रीकरण बढ़ा है और यहाँ आर्थिक व शैक्षणिक शक्ति का विकास हो रहा है। एक बात पर और ध्यान दिया जाना चाहिए कि पूना में बढ़ रहे परिवारों के मूल परिवारों में खेती और व्यवसाय मूल स्थानों में फल-फूल रहा है, अत:इन क्षेत्रों की आर्थिक समृद्धि भविष्य में बहु आयामी होने की संभावना है।

आर्थिक विश्लेषण करते हुए हम कुछ व्यक्तियों को आधार बनाकर आर्थिक उपलब्धियों के पदचिन्ह निश्चित नहीं कर सकते-पर अपेक्षाकृत छोटे समूह में व्यक्ति की इकाई को कम महत्त्वपूर्ण मानना त्रुटि हो गये। कुछ उदाहरण लेकर इस विचार को विस्तार देने का प्रयास करते हैं -

(१) हूमड़ समूह को अधिक से अधिक अभी जनसंख्या का अनुमान १,५०,००० है। हूमड़ जैन महासंघ के

सौजन्य : सूर्यकान्तभाई भाईचन्दजी दोशी
५०२, दोशी पेलेस, २४ वालकेश्वर मुंबई - ४००००६
टे. नं. ३६४०४०२, ५६१५३७१

- आँकड़ों के अनुसार इसमें व्यक्ति आधारित विश्लेषण निम्न प्रकार है -

अ-डॉक्टर-११६४
ब-इंजीनियर-१०८०
स-सी.ए.-५६८
द-वकील-२८८
इ-स्वउद्योग-८६५
ई-उच्च नौकरी-३२२०
उ-स्वव्यवसाय-२१२१६
ऊ-अन्य नौकरी-१२७१
ए-खेती-२७४

आँकड़ों की इस तुलना को देने का आशय सिर्फ इतना है कि समस्त हूमड़ समाज की आर्थिक शक्ति का बहुत आधार व्यवसाय के साथ उच्च शिक्षित प्रोफेशनल्स हैं। हूमड़ समाज को यह कल्पना करनी चाहिए कि समस्त हूमड़ डॉक्टर मिलें, समस्त इंजीनियर मिलें, समस्त सी.ए. मिलें और भावी हूमड़ समाज को आकार देने की बात सोचें। हम यह नहीं कर पा रहे हैं - यह वैसा ही है जैसे हमारी तिजोरियों में अपार सम्पदा भरी हो और तिजोरी की चाबी कहीं रखकर हम भूल गये हों।

मूलतः देखें तो स्व-व्यवसाय हूमड़ समूह का प्रारंभ से आधार रहा है, उसकी समस्त अर्थ व्यवस्था-कपड़ा, अनाज, कपास, किराना के लिए व्यवसाय के आसपास जुड़ी थी। कुछ लोग किसानी लेन-देन व ब्याज-बट्टे का व्यवसाय भी करते थे। हूमड़ों की व्यावसायिक ईमानदारी की छाप थी। जिस काम को हूमड़ हाथ लगाते, उसे पूर्णता पर पहुँचाते। जब मूल स्थानों को छोड़कर हूमड़ जय-यात्रा पर निकले तो जहाँ भी नौकरी की, वहाँ ईमानदारी से अपना विशेष स्थान बनाया। व्यापार-व्यवसाय में भी अपने अध्यव्यवसाय व व्यावहारिक पकड़ से अपने आपको श्रेष्ठतम स्थान पर पहुँचाया। हीरों का व्यापार हो या शेयर का, कपड़े का व्यापार हो या कागज का-प्रथम पंक्ति में रहना यह हूमड़ का स्वभाव है।

जनसंख्या का प्रत्यावर्तन व उसका जनसमूह पर प्रभाव

मानव समूहों का प्रत्यावर्तन-एक स्थान से दूसरे स्थानों पर स्थानांतरित हो जाना इतिहास के विद्यार्थियों और समीक्षकों के लिए सदैव आकर्षण का विषय रहा है। सभ्यताओं के उसके मूल स्थान से परे हजारों मील दूर उसी प्रकार की सभ्यता के अवशेष मिलना इसी प्रत्यावर्तन का परिणाम लगता है। ऐसा लगता है विश्व भर में मानव समूह एक स्थान से दूसरे स्थानों पर जाते रहे हैं। इसके कई कारण हैं। जैसे-

(१) जीवन-यापन की अधिक अच्छी सुविधा की तलाश। अन्न वस्त्र और जल की सुविधा जीवन के लिए नितांत आवश्यक है और इनके बिना जीवन संभव नहीं। इसके भी कई प्रमाण मौजूद हैं कि प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण एक स्थान में जहाँ सब सुविधाएँ थी, वहाँ असुविधाएँ हावी हो गई और मानव समूह को स्थानांतरण करना पड़ा। बार-बार होने वाले अकालों, बार-बार की बाढ़ों, बार-बार के भूकम्पों और ज्वालामुखी के प्रकीपों के कारण बस्तियाँ उजाड़ हुई और दूर कहीं सुविधायुक्त स्थान में जाकर बसीं।

सौजन्य : सूर्यकान्तभाई भाईचन्दजी दोशी
५०२, दोशी पेलेस, २४ वालकेश्वर मुंबई - ४००००६
टे. नं. ३६४०४०२, ५६१५३७१

(२) बाह्य हमलों से सुरक्षा या आंतरिक सुरक्षा के अभाव के कारण भी कई मानव समूह को प्रत्यावर्तित होना पड़ा।

(३) धार्मिक कारणों से भी कई बार प्रचार-प्रसार या अन्य धर्मावलम्बियों के दबाव के कारण जन समूहों को प्रत्यावर्तित होना पड़ा।

(४) उच्च शिक्षा और अन्य आर्थिक सफलताओं के लिए कई जनसमूह प्रत्यावर्तित हुए।

(५) राजनैतिक कारणों से जैसे देशविभाजन या एकीकरण के कारण जनसमूहों को विस्थापित होना पड़ा।

हूमड़ समाज को भी प्रत्यावर्तन / स्थानांतरण के कई प्रकार से गुजरना पड़ा। इतिहास का पहला संकेत सुहयदेश (बंगाल क्षेत्र) के क्षत्रियों का गुजरात प्रदेश की और आने का है। ईडरखेड़ ब्रह्मा (रायदेश) में (हूम्माचार्य) द्वारा उद्बोधन कर ११००० क्षत्रियों को हूमड़ जैन के रूप में संबोधित किया गया। अब प्रश्न यह है कि सह्य प्रदेश से चले यह ११००० क्षत्रिय कौन थे ? और क्यों ये प्रत्यावर्ति हुए ? यह घटना ईसा की प्रथम शताब्दी की है और यह लाढ़ क्षत्रिय थे। आतारंग सूत्र से विदित होता है कि लाढ़ (अर्थात राढ़) में जिसमे वज्ज भूमि (वज्र भूमि) और सुब्भभूमि (सुह्य भूमि) सम्मिलित थी, भ्रमण करते समय महावीर के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया गया। सुब्भभूमि ही सुहय देश लगता है। अशोक के शासन काल में उसकी प्रेरणा से पुण्डावर्धन नगर में धार्मिक अवधारणाओं के कारण अठारह हजार आजीवकों की हत्या हुई। दिव्यावदान में वर्णित यह घटना संकेत करती है कि धार्मिक द्वंद्व का अस्तित्व था और उस काल में पश्चिम बंगाल में अकाल भी पड़ा। इसलिए यह संभव है कि लाढ़ क्षेत्र के क्षत्रियों का समूह वाग्वर प्रदेश गुजरात की और प्रस्थित हो गया। जहाँ नहपाण और उसके पश्चात गौतमीपुत्र सातकर्णी का राज्य था। यहाँ यह स्मरण रखा जा सकता है कि नहपाण ने आचार्य अर्हदबली से जैन दीक्षा ली थी। आशय यह कि गुजरात के इस क्षेत्र में जैन धर्मावलंबियों के लिए बेहतर स्थिति थी। ऐसी सब परिस्थिति ने लाढ़ क्षत्रियों को इस क्षेत्र में रहने के लिए प्रेरित किया हो। यही मूल जैन क्षत्रिय हूम्माचार्य द्वारा हूमड़ रूप में पहचाने गये हों। ईसा की प्रथम शताब्दियों में उत्तर भारत में राजकीय संघर्ष व विदेशी आक्रांताओं का दबाव जनसमूहों के यहाँ वहाँ विस्थापन का कारण हो सकते हैं। शक्तिवाहन (सातकर्णी) (ई.सन७४-१२०) और कनिष्क (१२०-१६२) के शासनकाल में व शकों के पठन के बीच यह विस्थापन हुआ और रायदेश में ईडर-खेडब्रह्मा (देवपुरीमे) जैन मंदिरों का निर्माण हुआ। धर्म की ध्वजा लहराई। यह एक घटना चक्र है, इससे हूमड़ इतिहास की कड़ियाँ जोड़ी जा सकती हैं, किन्तु कई प्रश्नचिन्ह फिर भी बने रहते हैं। हूम्माचार्य-हेमाचार्य को हम गुरु परम्परा में ठीक से पहचान नहीं पाये हैं। इतिहास की धाराएँ अनावृत्त होती रहती हैं और बदलते संदर्भो के लिए हमें सदैव तैयार रहना चाहिए।

ई.सन ५०० से निरंतर मुगलों के हमलों के कारण यह क्षेत्र ध्वंस का शिकार हुआ। मंदिरों और मूर्तियों के विनाश का तांडव होता रहा। ई. सन १०२७ में तो मोहम्मद गजनवी ने इस क्षेत्र के बावन जिनालय, धन लक्ष्मी का मंदिर तथा ब्रह्म मंदिर को संपूर्ण रूप से नष्ट कर दिया।

७वीं, ८वीं शती में हूमड़ श्रेष्ठियों का व्यापार भरुच-घोघा बंदरगाहों में उन्नति पर था, किन्तु मुसलमानों के

सौजन्य : सूर्यकान्तभाई भाईचन्दजी दोशी
५०२, दोशी पेलेस, २४ वालकेश्वर मुंबई - ४००००६
टे. नं. ३६४०४०२, ५६१५३७१

आक्रमण के कारण बहुत कुछ नष्ट हो गया। भीलों और मुसलमानों ने श्रेष्ठियों को लूट लिया। रायदेश अब हूमड़ समूह के लिए सुख-शांति से रहने की जगह नहीं रह गयी, अतः ई. सन७२० से ३५० हूमड़ परिवार सामूहिक रूप से गलियाकोट के अन्तगर्त सागवाड़ा क्षेत्र में प्रस्थित हो गये। अर्थूना के परमार राजाओं के प्रथम में हूमड़ समूह ने इस क्षेत्र को अपना निवास बना लिया। खेती-व्यवसाय व धर्मसाधना में रत यह समूह विस्तार पाता गया। इस क्षेत्र में निर्मित मंदिर इस बात के साक्षी हैं।

संवत ९०९ में देवसेनाचार्य ने हूमड़ समूह की जानकारी देते हुए बताया था कि वि.स. ७९३ में हूमड़ समूह का कुछ भाग बागड़ प्रवेश में काष्ठासंघी हो गया था। स्थान और परिस्थितियों के कारण और गुरुओं के प्रभाव से जनसमूह कभी मुक्त नहीं रह सका है और उसके आचार-बिचार, रीति-रिवाज पर उसका प्रभाव पड़ता है। भट्टारक परंपरा के प्रवर्तक आचार्य बसंत कीर्तिजी (वि.सं. १२६१-१२६६)ने हूमड़ समूह को अपने साथ जोड़ी जो आगे आने वाली ७ शताब्दी तक अनवरत बना रहा।

प्राचीन दिगंबर जैन मंदिरों और उनके अवशेषों और **दशाहूमड़ समाज की बस्तियों के आधार पर राजस्थान में हूमड़ो के प्रवेश के दो मार्ग रहे**-बागड़ एवं खड़क। एक शाखा खेड़ब्रह्मा से परशवाड़ा, आतर सुम्बा, विजय नगर (घोडापर) पाप-चीतरिया (सभी गुजरात में) होती हुई कनवई, माण्डवगढ़, साबसी, देवल, डुंगरपुर, डपरगांव (खडवा कछवासा के पास) साबला और बांसवाड़ा की और पहुंची। इसी शाखा का एक भाग बीच में विजयनगर या पोला से फलासिया, बिछावाड़ा, ओडा, झाडोल होता हुआ उदयपुर पहुँचा। दूसरा भाग विजयनगर से चटोल के रस्ते में खुणादरी एवं बावलवाड़ा गया। तीरसा बड़ा भाग कनवई से चतौड़ा (छाणी) जावली, भागीवाव, जवास, बाड़ीदरा, पवेडी, ऋषभदेव, पीपली, सरू, जावर, सजूम्बर होता हुआ बांसवाडा पहूँचा। दूसरी शाखा ईडर, भीतूडा, सांवलाजी, पीछकुंआ सागवाड़ा होती हुई बांसवाडा पहुँची। सी शाखा का एक भाग गढ़ी, बागीददोरा, कतिजरा, थामला होते हे दाहोद पहुंचा। बांसवाड़ा, सागवाड़ा, पारसोला, जवास से हूमड़ प्रतापगढ़ पहुंचे।

जवास, खुणादरी, जावली थाणा (पहाड़ा) चितौड़ा (वर्धमान नगर) पादेड़ी (पादरडी), कारछा, कनवई, बावडी, दरा, धोडी (माणुव), पीपली, माण्डवगढ़, महीड़ा, में पहले हूमड़ थे अब एक भी नहीं है। पर यहां कई स्थानों पर मंदिर हैं। अभी जो ग्राम बसे हुए उनकी जानकरी इतिहास मे हैं।

साभार - श्रीकड़क क्षेत्रीय दशाहूमड़ दिहम्बर जैन महासभा

मुख्यालय भाणदा (उदयपुर) राज. संदर्शिका (१५ मार्च १९९४)

यह प्रत्यावर्तन कितना कठिन रहा होगा और इस के बाद का जीवन भी कितना संघर्ष पूर्ण रहा होगा इसकी कल्पना उजड़ते गांवों, नये में बसने का बाध्यता के विवरणों से स्पष्ट है। यह हूमड़ समूह की जीवटता ही है जो समय से परास्त न होकर, आज भी प्रगति के पथ पर गतिमान है। हूमड़ ने इस कहावत को झूठलाया है कि लुढ़कता पत्थर कभी वजन नहीं गहण करता - हूमड़ समूह वह पाषाण है जो लुढ़ककर भी टूटा नहीं वरन उसने मूर्ति का रूप ग्रहण कर लिया है।

हूमड़ समूह के प्रत्यावर्तन की तीसरी कहानी संभवतः हूमड़ योग्यता का प्रमाण पत्र है। शिवाजी महाराज ने

सौजन्य : गड़िया सुरेशकुमार नवनीतलालजी
१९, दूसरी फणस वाडी, कृष्ण निवास, मुबई - ४००००२.

अपने शासनकाल में हूमड़ लोगों को दक्षिणांचल में बसने के लिए प्रश्रय दिया और ईडर क्षेत्र से बहुत बड़ा समूह फल्टन, अकलुज, बारामती, नातीपुत, शोलापुर, दहीगाँव, सतारा, कपड़ना, वडगाँव, पीपलगाँव, इस्लामाबाद, बारसी, पंढरपुर, राहुरी, अकसकोट में जा बसा। आज भी इनके वंशज इस क्षेत्र में करीब २५० गाँवों में बसे हुए हैं। इनके ७३०५ परिवार व ४२२०५ जनसंख्या की जानकारी हूमड़ जैन महासंघ के पास है। खेती व व्यावसायिक योग्यता का दोहन कर इस समूह ने अपना विशेष स्थान बनाया व समृद्धि अर्जित की।

करीब-करीब इसी काल में हूमड़ समूह का एक सामूहिक प्रत्यावर्तन सागवाड़ा क्षेत्र से देवगढ़ होते हुए प्रतापगढ़ की ओर हुआ। सन १६९८ में महाराज प्रतापसिंह ने डोड़रिया का खेड़ा नामक स्थान पर प्रतापगढ़ शहर बसाया और इसके विकास के लिए सागवाड़ा क्षेत्र में रहनेवाले हूमड़ समूह को राजकीय प्रश्रय देकर प्रतापगढ़ आमंत्रित किया। किवदंती के अनुसार प्रतापगढ़ के महारावलने प्रतापगढ़ राज्य का दिवान पद व कामदार पद तथा अन्य महत्त्वपूर्ण राजकीय पद हूमड़ समूह को स्वीकृत किये, जिस पर रियासतों के राजस्थान में सम्मिलित होने तक पालन किया गया। यहाँ भी हूमड़ समूह के अपनी अलग पहचान बनाई। संवत १८३२ में पुराने मंदिर का विस्तार हुआ। जिसमें १२वीं शताब्दी की प्राचीन प्रतिमाएं व समृद्ध शास्त्र भंडार हैं।

इसे संयोग ही माना जाएगा कि शिवाजी जैसे देश भक्त ने हूमड़ समूह की योग्यता को पहचान कर महाराष्ट्र राज्य के सुदृढ़ीकरण में उनका सहयोग लिया और उसी काल में नई पुनर्गठित देवगढ़-प्रतापगढ़ रियासत के विकास में हूमड़ समूह की योग्यता पहचानकर उनका सहयोग राजपूत शासकोंने लिया। हूमड़ समूहों की राष्ट्रीयता-शासकीय योग्यता के इन दो प्रमाणों को ऐतिहासिक दृष्टि से विस्तार किया जाना चाहिए ताकि हूमड़ समूह का आत्मविश्वास बढ़े। छोटे-मोटे प्रत्यावर्तन निरंतर होते रहें, किन्तु यह सामूहिक स्थानपरिवर्तन थे और इसी कारण इन स्थानों पर हूमड़ समूह का केंद्रीकरण हुआ। पुराने संदर्भों पर ध्यान दें, तो सन् १९२७ में वैद्य जवाहरलाल जी प्रतापगढ़ ने १८००० हूमड़ जनों को सागवाड़ा मंदिर संबंधी बागड़ क्षेत्रमें माना था। सन १९१४ की जनगणना के पश्चात् सन १९२७ का यह आँकड़ो तार्किक है। सन १९१४ में ९००० हूमड़ जनों को वागड़ क्षेत्र में पहचाना गया था, वह १९२७ में १८००० हो गया। पंचायतों के माध्यम से जनसंख्या के आँकड़े तो समाज के पास थे ही। जाति भोज होते ही रहते थे-रथयात्रा व पंचकल्याणक आदि होते ही रहते थे। सागवाड़ा पंचायत का प्रतापगढ़ पंचायत से संबंध निरंतर रहता था, अत: इन आँकड़ों के उचित आधार थे।

२०वी सदीने भारत में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। राजनैतिक रूप से स्वतंत्रता आंदोलन परवान चढ़ा। शिक्षा के अंग्रेजीकरण ने ज्ञान-विज्ञान के नये द्वार खोल दिये। नई वैज्ञानिक खोजोंने उद्योगों के द्वार खोल दिये। मनुष्य की आशाओं और आकांक्षाओं ने नये विस्तृत आयाम स्पर्श करना प्रारंभ कर दिया। समय के के प्रवाह को समझने वाले हूमड़ के सामने अब दो मुद्दे स्पष्ट थे -

(१) उच्च शिक्षा के बिना कोई भविष्य नहीं है।

(२) परंपरागत व्यवसायों से चिपके रहने में कोई लाभ नहीं है। घर-परिवार का मोह छोड़कर बढ़ते हुए शहरों में अपनी क्षमता आजमाना आवश्यक है।

सौजन्य : गड़िया सुरेशकुमार नवनीतलालजी
१९, दूसरी फणस वाडी, कृष्ण निवास, मुबई - ४००००२.

पुरुषार्थी हूमड़ समूह ने बिना देर, अपने सोच को लागू कर दिया और इसने हूमड़ समूह में एक नये प्रत्यावर्तन की नींव रखी। जहाँ भी हूमड़ समाज था, वहाँ के नौजवान अपनी ज्ञान व अर्थ की जय यात्रा पर अकेले निकल पड़े। माता-पिता का बोझिल मन था। पत्नी के आँसू थे। बच्चों का प्यार था, जो रह-रह कर मन को खिंचते थे, किन्तु जीवन का सत्य सामने खुला पड़ा था। परिवर्तनों से आँख मूँदकर अज्ञानी बने रहो या ज्ञान पाने के संघर्ष में कूद पडो, आधे पेट रहो या भरपूर भोजन के लिए उचित आर्थिक योग देने वाली नौकरियों के साथ जुट जाओ। भावी पीढ़ी को उचित आर्थिक आधार देने वाले बढ़ते हुए व्यवसायों, उद्योगों के साथ जुड़ जाओ। आँख मूँदकर अपने आपसे उलझना हूमड़ का स्वभाव नहीं और वह २०वीं सदी से लड़ने अपना स्थान निश्चित करने कूद पड़े। मुम्बई, इंदौर, उदयपुर, पूना, अहमदाबाद को मुख्यत: लक्ष्य कर यह यज्ञ प्रारंभ हुआ। इन बड़े शहरों में जीवन कितना कठिन था, यह उन लोगों से पूछो जो सन ३५ के आसपास मुम्बई पहुँचे। रहने को जगह नहीं - जीवन यापन के लिए व्यवसाय नहीं। घर की याद सताये और यहाँ घर नहीं। दुकानों पर, ओटलों पर एक-एक कमरे में छ:-छ: लोग रहकर सोकर मंदिरों में स्नानकर, आधा पेट भरकर समय की पूजा करते रहे। एक-दूसरे के सहारे जाने-अनजाने संपकों के रास्ते इस मार्ग पर बढ़ते रहे। वागड़-प्रतापगढ़-बारामती-अकलूज-पल्टन-ईडर के समीपवर्ती गाँवों से मुम्बई जाने वाले हूमड़ों ने यह दुख सहा है। घर-घर की एक ही कहानी है। आर्थिक निश्चितता होते ही पत्नियों-बच्चों को लाये और भले ही छोटे घर हों, किन्तु अपने नीड़ को संजोने का प्रयत्न प्रारंभ हुआ। बच्चों की पढ़ाई और अधिक सुखद जीवन को संजोने का प्रयत्न। शिक्षा व अध्यव्यवसाय के सहारे सफलता के नये क्षितिज छूना प्रारंभ कर दिया। तभी तो हम देखते है कि १९१४ में मुम्बई में ४०० हूमड़ों की जनसंख्या थी, वहाँ आज २७५० परिवार व ११२२३ लोग रह रहे हैं। यही स्थिति पूना में भी हूमड़ विस्थापन की है। सन १९१४ में पूना में कुछ हूमड़ जनसंख्या १२ थी, वहाँ आज पूना में ६१९ परिवार व ३१३९ लोग निवास कर रहे हैं और यह वृद्धि निरंतर जारी हैं। उदयपुर में हूमड़ जनसंख्या १९१४ में १७० थी, वहाँ आज उदयपुर में ४११ परिवार व २४२९ हूमड़ रह रहे हैं। अहमदाबाद में १९१४ में किसी हूमड़जन का अस्तित्व नहीं था, वहाँ आज ३३० परिवार और १८७५ लोग रह रहे हैं। इंदौर में १९१४ में हूमड़वास का कोई रिकोर्ड नहीं मिलता हैं, किन्तु १९७५ में यहाँ १८०३ हूमड़ रहते थे, वहाँ आज ५९० परिवार व ३४०० हूमड़ निवास करते हैं। उज्जैन में १९१४ में ११ हूमड़ रहते थे, वहाँ आज ८५ परिवार व ४९७ हूमड़ रहे हैं। भिन्न-भिन्न शहरों ने अपनी जीविका देने की क्षमता के आधार पर लोगों को आकर्षित किया। सूरत में सन १९१४ में १५० लोग वास करते थे, वहाँ आज २८८ परिवार और १९६३ हूमड़ निवास कर रहे हैं। बड़ोदरा (बड़ौदा) में १९१४ में किसी हूमड़ वास का संकेत नहीं, वहाँ आज ३९३ परिवार व २१९७ हूमड़ वास कर रहे हैं। शोलापुर १९१४ में ३०५ हूमड़ वास करते थे, वहाँ आज .... । दाहोद में १९१४ में जहाँ ५००लोग रहते थे, वहाँ आज २५२ परिवार व १७६२ हूमड़ वास कर रहे हैं। ईडर में सन १९१४ में जहाँ २०० हूमड़ रहते थे, वहाँ आज २०५ परिवार व १३८५ लोग रह रहे हैं। रतलाम में सन १९१४ में ४२ लोग रहते थे, वहाँ आज ६३ परिवार व ३७६ लोग रह रहे हैं। हैदराबाद में १९१४ में किसी जनसंख्या का संकेत नहीं, वहाँ अभई ६८ परिवार व ३५० लोग रहते हैं। जनसंख्या का विश्लेषण करें, तो कई हूमड़ वास के केंद्र क्षीण हुए हैं और कई जगह उनका वास विस्तृत हुआ है। किन्तु कुछ समान बातों पर हमारा ध्यान जाता हैं, जो हूमड़ चरित्र पर प्रकाश डालते हैं -

सौजन्य : श्री दि. जैन समाज (हूमड़)

मु. पोस्ट नौगांव जि. बासवाड़ा (राजस्थान)

(९) **हूमड़ मूलतः जैन हैं व जैनाचार के प्रति समर्पित हैं।** देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन, वृत-उपवास, गुरु भक्ति, त्याग, तपस्या हूमड़ स्वभाव का अविभाज्य अंग है। जहाँ भी हूमड़ों ने रहने का निर्णय लिया, वहाँ देवालय बनाये। धर्मशालाएँ बनाई, स्कूल बनाये। जिसका विवरण इतिहास के अन्य पृष्ठो पर देखिए - ईडर, सागवाड़ा, बांसवाड़ा, उदयपुर, चितौड़, आंतरी, प्रतापगढ़ अकलूज, बारामती, मुम्बई, देवगढ़, अहमदाबाद, गढ़ी, खमेरा, घाटेल, कुशलगढ़ सभी जगह देवालय बने।

इस प्रत्यावर्तन का एक स्वरूप यह भी रहा कि छोटे-मोटे ग्राम से लोक स्थानांतरित होकर पास के किसी बड़े शहर में स्थानांतरित हो गये। बारामती, वालचंदनगर, अकलुज, फल्टन, राजगीर, धुलिया, कुसुंबा, घाटेल, नौगामा, तलवाड़ा, बांसवाडा, बड़ोदिया, भूलूड़ा, औबंरी, दाहोद, हिम्मतनगर, ईडर, कोल्यारी, फलासिया, सलूम्बर, पारसोला, गिर्ता, अरथूना, बागीदौरा, घाटेल, नौगामा, तलवाड़ा, बांसवाड़ा, बडोदिया, भूलूड़ा, औबंरी, दाहोद, हिम्मतनगर, ईडर, विजयनगर, रतलाम आदि में जो हूमड़ वास बढ़ा है, वह इसी आधार को पुष्ट करता है। बंगाल से गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र में अपने कार्यकलापों को विस्तार देकर दिल्ली, बंगाल, बिहार, आंध्रप्रदेश में भी हूमड़ जनों ने अपना अस्तित्व बनाया हैं।

हमें पता नहीं कि सुहयदेश में लाढ़वासियों ने देवस्थान बनाये थे या नहीं, किन्तु इसके निश्चित प्रमाण हैं कि ईडर क्षेत्र में रहते हुए हूमड़जनों ने कई मंदिर बनाये, जो मूर्ति शिल्प व भव्यता में अद्वितीय हैं। ७ शताब्दी तक हूमड़जनों के कार्यकलापों का रायदेश प्रमुख केंद्र रहा। यह क्षेत्र वैदिक परंपराओं का भी गढ़ रहा। हरणाव नदी के तट पर भारत की अति प्राचीन जैन व वैदिक परंपराओं ने विकास किया। जौन परंपराओं पर वैदिक परंपराओं का प्रभाव हुआ। इसीलिए हम पाते हैं कि ब्राह्मण समाज (गोरजी) का प्रभाव हूमड़ रीति-रिवाजों पर पड़ा। हूमड़ गौत्रों में वैदिक शक्ति देवियों की मान्यता का समावेश इसी परिस्थिति का प्रमाण है। राजनैतिक दृष्टि से रायदेश के अन्तर्द्वन्द्वों, संघर्षो व निरंतर होने वाले अरबों, खलीफाओं के आक्रमण ने हूमड़जनों को प्रभावित किया। वे इसे भी आत्मसात् कर गए, किन्तु ईसा की ८वीं शताब्दी के प्रारंभ में प्रारंभ हुए मुगलों के हमलों ने जनमानस को हिला दिया। मंदिर नष्ट कर दिये गये और लोगों ने मूर्तियों को जंगल और जमीन में दबाकर अपनी धार्मिक धारणाओं को जीवित रखने का प्रयास किया। गुजरात का प्राचीन इतिहास इन धार्मिक हमलों से लहूलुहान है। आर्थिक और धार्मिक लूट ने हूमड़ समाज को वागड़ क्षेत्र में प्रस्थित होने के लिए बाध्य कर दिया। कितना कुछ रायदेश में पीछे छूट गया होगा, यह कहना कठिन है, किन्तु कुछ मूर्तियों को वे सहेजकर अपने साथ ले गये। खड़गदा में (क्षेत्रपाल में) स्थापित आदिनाथ की मूर्ति संभवतः इसी प्रकार बचाकर लाई गई हो। हूमड़ त्रास की यह व्यथा कथा विस्तार से कहने कि लिए संदर्भ सूत्र बहुत सीमित हैं, फिर भी इसकी कल्पना करके मन दहल जाता है। पर एक बात पर हमें पूर्णतः सहमत हो जाना चाहिए कि जैन-धर्म हूमड़ परंपरा का आधार था और उसे कोई हमला नहीं हिला पाया। जैनत्व की यह परंपरा संभवतः सुह्य प्रदेश से ही हूमड़ों के साथ आई थी और जैन आचार्य हूम्माचार्य ने इस समूह से शस्त्र त्याग कराकर इसे अहिंसक समाज के रूप में दृढ़कर दिया था। इस बात के निश्चित प्रमाण हैं कि महावीर की देशना के पश्चात् सुह्य देश में जैन धर्म का बहुत प्रचार था। मान्यताओं को आचार-विचार में पलट दिया था और इतिहासकार हूम्माचार्य को इस का प्रेरक मानते हैं।

सौजन्य : श्री दि. जैन समाज (हूमड़)

मु. पोस्ट नौगांव जि. बासवाड़ा (राजस्थान)

यही परंपरा हूमड़ों के साथ वागड़ क्षेत्र में गई। वि.सं. ७२३ में बावन जिनालय का वागड़ क्षेत्र में निर्माण प्रारंभ हुआ, जो निरंतर जारी रहा। समस्त वागड़ क्षेत्र में कई मंदिर निर्मित हुए, जो हूमड़ों के अर्थ सामर्थ्य व धार्मिक विश्वास के प्रतीक है। इस क्षेत्र के मंदिरों का वर्णन आपको इतिहास के अन्य पृष्ठों में मिलेगा। वागड़ क्षेत्र के हूमड़ जब देवगढ़ व प्रतापगढ़ प्रत्यावर्तित हुए, तो देवालय बनाने का यह क्रम गतिशील रहा। प्रतापगढ़ के देवालयों की संख्या और भव्यता बरबस इस और ध्यान आकृष्ट करती है कि वहाँ के हूमड़ कितने धर्मपरायण रहे होंगे।

गुजरात क्षेत्र से जब हूमड़ प्रत्यावर्तित होकर महाराष्ट्र क्षेत्र में पहुँचे तो वहाँ भी, उन्होंने मंदिरों का निर्माण कराया। फल्टन-अकलूज के विशाल मंदिर हूमड़ भावना के प्रतिबिम्ब है।

अहमदाबाद-मुम्बई में भी हूमड़जनों ने मंदिर बनाये। इंदौर में भी हूमड़ ने जैन चैत्यालय बनाया था, जो अग्नि से नष्ट हो गया। जिसकी मूर्तियाँ आज भी हूमड़ों की धर्म परायणता की गाथा गा रही हैं। इंदौर का ऐसा कोई धर्म.केंद्र नहीं-देवालय नहीं जिसमें हूमड़ों की सक्रीय भागीदारी न हो। गिरनार क्षेत्र में हूमड़ों द्वारा निर्मित जिनालय व धर्मशाला प्राचीन एवं महत्वपूर्ण हैं। भिन्न-भिन्न हूमड़ केंद्रों पर स्थापित संस्थाएँ भी परमार्थ भाव से प्रेरित हैं और अपनी मंद मुस्कान से कह रही हैं कि हूमड़ युगों-युगों से जैन था और है। विदेशों में बसे हूमड़ोंने अपनी जैन आस्था के द्वारा इसमें चार चाँद लगाये। हूमड़ समूह की विदेशों में धर्मपरायण व नैतिकता सर्व ज्ञात है। विदेशों में बसे हूमड़ परिवार भारत की अपनी मूल पैतृक संस्थाओं को जो मानवीय सेवा में लगी हैं, सदैव सहायता देने को तत्पर रहते हैं। इससे अधिक सार्थक जैन परम्पराओं के प्रति समर्पण का प्रमाण क्या हो सकता है।

धर्म के प्रति आदर से जीवन में बहुत-सी व्यवस्थाएँ बनी रहती हैं। विचार सकारात्मक होते हैं। धर्म केवल मंदिर जाना, छना पानी पीना, रात्रि भोजन न करना ही नहीं है, वह इस आस्था को व्यक्त करना है कि इसे मानने वाले मानवीय धारणाओं से भरपूर हैं। यह पिछड़ापन नहीं है। सबके अस्तित्व बनाये रखने के विश्वास का समानार्थी है धर्म। धर्म के व्यवहार में लगे विचारशील न मंदिर जाने वाले को अधर्मी न समझे। उसके ऊपर दयाभाव रखे। उसी प्रकार धर्म के व्यवहार में रत को दूसरा ढोंगी न कहे। धर्म और धार्मिक मान्यताओं को लेकर अधिकतम जैन समाज विवादों में फँसा हुआ है। इस विवाद ने जैनों की शक्ति को क्षीण किया है। अल्पमत का जैन समाज यदि विभक्त रहा तो आदिनाथ का संदेश मानव मात्र की सेवा के लिए घर-घर कौन पहुँचायेगा। हमारी अपनी अंतरात्मा कैसे शांति पायेगी। सकारात्मक सोच हूमड़ समाज का पूर्व में भी रहा है। प्रतापगढ़ में केंद्रीत हूमड़जन किसी भी मान्यता के हों, आपस में रोटी-बेटी के व्यवहार से गूँथे हुए है। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि हम अन्य धर्मावलिम्बयों के साथ तो रोटी-बेटी का व्यवहार कर लेते हैं, किन्तु व्यवहार में भिन्न जैनावलम्बी से अपना तालमेल नहीं बैठा पाते हैं। इतिहास के अन्य पृष्ठों में आपने १९वीं, २०वीं सदी में हुए हूमड़ परिवारों से आए दिगंबराचार्यों के संबंध में पढ़ा होगा या पढ़ेंगे। हूमड़ समाज के रत्नगर्भा होने के यह ज्वलंत प्रमाण है। साधुत्व निज शक्ति की अभिव्यक्ति है और उन्हें हूमड़रूप में अभिव्यक्ति करना, सामाजिक स्वार्थ है, किन्तु हम यह तो कह ही सकते हैं कि जैनत्व हूमड़ के अंतरंग में बसा हुआ है।

(२) **कार्य के प्रति समर्पण हूमड़** स्वभाव का हिस्सा है। संभवत: कठिनाईयों से जूझते-जूझते यह स्वभाव बन गया है। २ सहस्त्राब्दी यदि निरंतर प्रत्यावर्तन से प्रभावित हो, तो सक्रीयता और कार्य करना तो नितांत

सौजन्य : श्री दि. जैन समाज (हूमड़)
मु. पोस्ट नौगांव जि. बासवाड़ा (राजस्थान)

आवश्यक है, अन्यथा हूमड़ नाम का कोई प्राणी आज नजर नहीं आता। या तो वह आज धर्मांतरण का शिकार हो गया होता या हमलाकर समूहों में शामिल हो जाता। पर ऐसा नहीं हुआ- धर्म और कर्म का मर्म इस समूह को प्रारंभ से ही ज्ञात था। भारतीय समाज का यदि समाजशास्त्री सिंहावलोकन किया जाए, तो हूमड़ अपने आपमें अलग नजर आयेंगे। वे अपने धर्म और कर्म के मार्ग से कभी स्खलित नहीं हुए। ऐसा लगता है १८वीं, १९वीं शताब्दी में क्षेत्रीय क्रियाशीलता के अलावा विशेष हूमड़ योगदान को रेखांकित करना कठिन है, किन्तु बीसवीं सदी का हूमड़ समय के साथ जीने को तत्पर हो गया। स्वतंत्रता संग्राम में हूमड़जनों के लगाव को कई जगह पहचाना गया है। सामाजिक परिवर्तनों में हूमड़ों की सक्रीय भागीदारी सर्वज्ञात है। आर्थिक-विकास के युद्ध में हूमड़ ने, अपने आपको पूर्णतः जोड़ लिया, जिसके सद्परिणाम हैं कि आज हूमड़ अपने पैरों पर खड़ा है।

(३) ज्ञान के प्रति हूमड़ लगाव आज उसके परिचय का पर्यायवाची बन गया है। जनसंख्या के विश्लेषण पर यदि आप ध्यान देंगे, तो समाज के पास ११६४ डॉक्टर, १०८० इंजीनियर, ५६८ सी.ए., २८८ वकील, उच्च नौकरियों में पदस्थ ३२२०, स्व उद्योगों के स्वामी ८६५ है-यह तो आँकड़े हैं, जो उच्च शिक्षा के बिना संभव नहीं है। १५०००० की संख्या में ११६४+१०८०+५६८+२८८+३२२०+८६५-७१८५ लोग उच्चशिक्षित हैं, जिसमें उच्च शिक्षा में लगे विद्यार्थियों के आँकड़े नहीं है।

भारतीय समाज के आँकड़ों के ग्राफ से हूमड़ समाज का यह ग्राफ संख्यात्मक तथा गुणात्मक रूप से काफी ऊँचा है। केरल व तमिलनाडु जैसे उच्चशिक्षित प्रांतों के आँकड़ों से भी यह ग्राफ काफी ऊँचा है। अन्य समाजों के आँकड़े भी सामने हैं और हम अपने आपको बेहतर स्थिति में पाते हैं।

समाज के पास ७७१५८ बालक-बालिकाएँ हैं, जिनमें से ५० हजार बालक-बालिका तो ज्ञान मंदिरों में अपने का भविष्य के लिए तैयारी कर रहे हैं-जो वर्तमान रुझान को देखते हुए उच्च रूप से ही शिक्षित होंगे। आगे आने वाले समय में यह विश्वास किया जा सकता है कि ५० प्रतिशत हूमड़ उच्च शिक्षित होंगे और शेष बालक-बालिकाएँ नई शक्ति के रूप में उभरेंगे-जो कम्प्यूटर व इंटरनेट से जूड़े होंगे।

ऐसे विश्वास का कारण यह है कि व्यक्ति रूप से हूमड़ संस्थाएँ अपने इस सपने को साकार करने के लिए कटिबद्ध हैं।

(४) स्त्री शक्ति का सही दोहन भारतीय समाज के लिए बड़ी कठिनाई रहा है। निम्न शिक्षा दर, धार्मिक मान्यताओं के दोयम व्यवहार और सदियों के दाब के कारण भारत की ५० प्रतिशत शक्ति वह परिणाम नहीं दे पा रही हैं, जो उसने देना चाहिए। हूमड़ समाज ने गत ३०-४० वर्षों से इस समस्या को कुछ काबू में किया है। कन्याओं को शिक्षित करने में हूमड़ परिवारों ने काफी रुचि ली है। हूमड़ परिवार भी काफी नियंत्रित लगते हैं। ध्यान दीजिए (हूमड़ संघ द्वारा संकलित आँकड़ों के अनुसार)

अ.	कुल जनसंख्या	१४४२३१
	कुल परिवार	२५,०१५
	कुल पुरुष	३३,३०४
	कुल महिला	३३,४९९

सौजन्य : श्री मोतीलाल मगनलालजी मिन्डा
मिंडा फरनीचर सप्लायर्स, ४४, आशवानी बाजार, उदयपुर - ३१३००१

कुल बालक	३७,६९२
कुल बालिकाएँ	३९,४६६

परिवार का जनसंख्या प्रतिशत ५.७२ है। जो नियोजित परिवार के आँकड़ों के निकट है। हम दो हमारे दो के सिद्धांत के आधार पर हम दो के लिए बालक, बालिकाएँ अधिक है। कुछ गहराई से आँकड़ों में देखें तो कम शिक्षित वर्ग व ग्रामीण इलाकों में असंतुलित परिवारों के कारण यह समस्या है।

महिलाएँ इस क्षेत्र में जागृत हैं और आशा की जा सकती है कि संतुलित परिवार के माध्यम से व स्त्रियों के आर्थिक क्षेत्र में उतरने के कारण प्रति व्यक्ति आय का आँकड़ा ऊँचा उठेगा। नारी दमन के कई संदर्भ समाज में यत्र-तत्र मिलते रहते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इसका प्रतिशत थोड़ा अधिक है। इसका मुख्य कारण उच्च शिक्षा का महिलाओं में विस्तार ठीक से नहीं हुआ हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रहनेवाले परिवार अपनी लड़कियाँ शहरों में ही देना चाहते हैं और शहरी क्षेत्र की लड़कियाँ ग्रामों में ब्याह कर जाना नहीं चाहती। इस कठिनाई ने कई समस्याओं को जन्म दिया है - जैसे हूमड़ेतर परिवारों में विवाह संबंधो में वृद्धि व विवाह संबंधो में विच्छेद। यदि हम भारत के समाज की विवाह संस्था पर विचार करें, तो कमोबेश सभी समाजों में यह समस्या मौजूद है। मानवीय भावनाओं पर समाज के नियंत्रण की पकड़ से जुड़ी इन समस्याओं के लिए समाज को वैज्ञानिक रूप से विचार करना चाहिए। वस्तुनिष्ठ दृष्टि से जब तक विचार करने की हिम्मत हम नहीं जुटा पायेंगे, तब तक समाज की एकता बनायें रखना संभव नहीं है। भावनाओं के बहाव में बहे बिना, समय के प्रभावों को विश्लेषित कर इस समस्या को स्पर्श करना चाहिए।

(५) कई विरोधाभासी धाराओं के प्रभाव से गढ़ रहा है हूमड समाज। गत ५० वर्षो की आर्थिक उथल-पुथल शिक्षा के विस्तार, प्रत्यावर्तन व विश्वव्यापी भौतिक आकर्षणों ने प्रत्येक हूमड़ को झकझोर दिया है। हूमड़ मन पर भौतिक सुख सुविधाओं के आकर्षण प्रभाव डाल रहे हैं और यही उसे प्रतियोगिता की और खींच रहे हैं। इसी से समाज के प्रत्येक ईकाई की उन्नति जुड़ी है। यदि इस प्रतियोगिता से अलग हट जाए, तो समाज की समृद्धि संभव नही होगी। कोई ऐसा जीवन जीना नहीं चाहेगा, अत: उदार रूप से इसे स्वीकार करना होगा, किन्तु यदि सि प्रतियोगी जीवन पर विवेक जनित नियंत्रण न रखा गया तो कुछ दूरगामी दु:प्रभावो के संकेत मिलते हैं, जैसे.....

(१) वृद्धजनों की समस्या। संयुक्त परिवार की उपयोगिता के टूटने का भय।

(२) सामाजिक बंधनों में कमी। सामाजिक परंपराओं के प्रति उपेक्षा भाव।

(३) धर्म से रखलित होने का भय।

जनगणना के आँकड़े संभवत: इस समस्या पर उचित प्रकाश नहीं डालते हैं - किन्तु कुछ संकेत अवश्य उपलब्ध है। 'अधिक आयु' के समूह में वृद्धि हो रही है। पहले एक ही स्थान पर रहने व संयुक्त परिवार के प्रति सम्मान भाव के कारण अधिक आयु वर्ग के लोगों को आश्रय व देखभाल की कोई समस्या नहीं थी, किन्तु अब परिस्थितियाँ बदल गई हैं। परिवार का अपेक्षाकृत युवा वर्ग अपनी आर्थिक आयोजना में कहीं दूर रहता है व वृद्धजन अपने मूल स्थान पर। यह कठिनाई दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। स्व - व्यवसायी परिवारों में तो यह समस्या उतनी विकट नहीं है, किन्तु नौकरी में लगे परिवारों को इस कठिनाई का अधिक सामना करना पडता है। अधिक आयु के साथ परिवार की कड़ी में ४ पीढ़ी का समावेश होता है और तब समस्या अधिक गहरी हो जाती है। इस समस्या को

सौजन्य : श्री मोतीलाल मगनलालजी मिन्डा
मिंडा फरनीचर सप्लायर्स, ४४, आशवानी बाजार, उदयपुर - ३१३००१

वृद्ध और युवा वर्ग की उदार दृष्टि ही हल कर सकती है, एक दूसरे के प्रति विश्वास व प्रेम इस परिस्थिति को बदल सकते है और एक-दूसरे की उपस्थिति पारिवारिक सुख का कारण हो सकती है।

समाज यों तो कल्पना मात्र है, किन्तु मनुष्य एकाकी नहीं रह सकता। पुरुष को स्त्री चाहिए, स्त्री को पुरुष चाहिए - दम्पति को बच्चे चाहिए। यह सब ठीक से हो जाए इसके लिए समूह चाहिए। यह समूह ऐसा होता है, जो पहचान देता है। पुरुष के लिए स्त्री और स्त्री के लिए पुरुष जुटाता है। इस जुटाव को नियोजन चाहिए अन्यथा वह बर्बर यौन संगठन में बदल जाएगा। इस नियोजन की मनुष्य ने जब आवश्यकता समझी, तब परिवार व समाज की कल्पना साकार हुई। भगवान आदिनाथ ने यही समझ युग के प्रारंभ में मनुष्य समाज को दी और सभ्यता की नींव पड़ी। आदिनाथ की जीवन शैली का परिवार व समाज महत्वपूर्ण अंग है। 'आवश्यकता व पूर्णता' की तलाश में आदिनाथ ने परिवार एवं समाज का सोच दिया। इस सिद्धांत में पुरानी पीढ़ी की देखभाल व संरक्षण नई पीढ़ी द्वारा है, वही नई पीढ़ी की देखभाल व संरक्षण पुरानी पीढ़ी द्वारा है। इसमें प्रेम व स्वार्थ दोनों की पूर्ति छिपी है। फिर यह संघर्ष क्यों जन्म लेता है - यह एक लंबा विषय है और यहाँ इस पर यह विचार करना आवश्यक नहीं है। संक्षिप्त रूपमें दोनों ही पीढ़ियों की असहनशीलता इसका मुख्य कारण है। जीवन चक्र की चार व्यक्तिपरक धूरियाँ हैं - (१) व्यक्ति स्वयं (२) माता-पिता (३) पत्नी और (४) बच्चे। इसमें भूत-वर्तमान व भविष्य के सूत्र मौजूद है। कोई भी धूरी यदि ठीक व्यवहार न करे, तो जीवन चक्र असंतुलित हो जाएगा। जिस संतुष्टि के लिए हम जीवन रचते हैं, वह असंतोष और दुख का कारण हो जाएगा। इन चारों धूरियों पर तथा समाज द्वारा रचित मर्यादाओं के प्रति सम्मान रहे, तो जीवन बहुत सहज हो जाएगा। इस सम्मान भाव को यदि अंकुश माना जाए, तो उद्दंडता का जन्म होगा और जीवन ढोना मुश्किल हो जाएगा।

हूमड़ समाज के अधिसंख्य लोगों को इन चारों धूरियों को सही दिशा में चलाना आता है। व्यक्तिगत अहंकार के प्रकोप से कहीं कहीं इसमें गतिरोध आया है। सही सोच से इस गतिरोध को दूर किया जा सकता है। परिवार को वर्तमान परिस्थिति में परस्पर उपयोगी यूनिट में परिभाषित किया जाना चाहिए, ताकि संघर्षों के बीच व्यक्ति का एक यूनिट सुरक्षित महसूस कर सके। धर्म से रखलित होने से समाज बचे यह एक चेलेंज है। २००० वर्षों का कथित इतिहास तो धर्म की अपेक्षा से सम्हला रह गया है, किन्तु यदि प्रत्येक हूमड़ ने सजग जैन के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं कराई तो, आगामी सदी में हमें अस्तित्व व आस्था का क्राइसिस झेलना पड़ सकता है।

जनगणना की अंतर्कथा

(१) जनगणना हेतु २०,००० छपे हुए विवरण पत्र व पुन: मांग होने पर फोटो कापी कर विवरण पत्र भेजे गये। एक परिवार के लिए एक फार्म यह सिद्धांत अपनाया गया। यह प्रक्रिया १९९४ से प्रारंभ हुई।

(२) करीब १३०५७ विवरण पत्र भरकर प्राप्त हुए यह करीब करीब पूर्ण रूप से भरे हुए थे। कुछ विवरण पत्र अधूरे भी प्राप्त हुए।

(३) समस्त भारत से प्रकाशित २० विवरणिकायें (१९९२ से १९९८ के बीच प्रकाशित) तथा १० टाईप की गई विवरणियाँ रजिस्टर फार्म में प्राप्त हुई। इस में कुछ में १९९८ तक की सूचना संशोधित कर भी दी गई है।

सौजन्य : श्री शोभाग्यमलजी कियावत
अे-५२, आशियाना पेलेस वंध, गार्डन रोड, पूना.

(४) इन सब को आधार बनाकर २५०१५ परिवारों की सूचना महासंघ कार्यालय में उपलब्ध है। इन सूचनाओं कर उन्हें वैज्ञानिक विश्लेषण का आधार बनाना कठिन कार्य था क्योंकि सूचनायें सामाजिक कार्यकर्ताओं के उत्साह का परिणाम थी। उन्होंने बहुत परिश्रम किया और इस यज्ञ को पूर्ण करने में उनका ही सहयोग सर्वोपरि माना जाना चाहिए - फिर भी सूचनाओं की अपूर्णता - विश्लेषण को प्रभावित करती है। हूमड़ केन्द्र व प्रमुख सूचना सहयोगी का नाम पता हम इस विश्लेषणं के साथ प्रकाशित कर रहे हैं ताकि भविष्य में एक प्रमुख कडी के रूप में उन का सहयोग समाज ले सके। इन सब कार्यकर्ताओं के प्रति आभार प्रदर्शित करना प्रत्येक हूमड़ का कर्तव्य है।

(५) जन गणना का उद्देश्य समाज की कुल जनसंख्या, शैक्षणिक स्थिति, आर्थिक स्थिति तथा जिन स्थानों पर हूमड़ बसे हैं उसका इतिहास तथा धर्म प्रभावना का आकलन करना था। इस के आधार पर एक सामाजिक व आर्थिक विश्लेषण तैयार किया जाय, जो हूमड़ एकता का मार्ग प्रशस्त करे तथा नई सदी के लिए उन संकेतों को समाज के पास पहुंचाया जाय जिन पर भविष्य की व्यूह रचना तैयार होगी।

(६) जनगणना आंकड़ों का जंजाल होती है फिर भी इसे रोचक बनाने के लिये प्रतीक चित्रों का उपयोग किया गया है।

(७) १।-१॥ लाख की जनसंख्या वाला हूमड़ समाज किसी शहर वासी को एक मोहल्ले जैसा लग सकता है किंतु यह मोहल्ला नहीं देश है, एक गुलदस्ता है जिसमें विविध प्रकार के फूल है - जिनकी भिन्न भिन्न खुशबू है - जिनमें भिन्न भिन्न रहा है पर वे सब धर्मपरायण - कर्तव्य परायण - श्रमनिष्ठ भारतीय हैं जिन पर गौरव किया जा सकता है। समय की मार खाकर भी इस समूह ने अपने आप को जीवित रखा है - अपनी पहचान को रूपरंग दिया है। सदियों का इतिहास बता रहा है कि हूमड़ जैन परंपरा का वह ध्वज है जिसे न मुसलमान ध्वस्त कर सके और न चरित्र हीनता के लिए प्रसिद्ध २०वी सदी कुछ बिगाड़ पाई।

(८) १९७१ से ७४ के बीच हूमड़ समाज उज्जैन ने एक अखिल भारतीय विवरणिका के प्रकाशन की तैयारी की थी, किंतु बीच में रूक गई।

(९) सूचनाओं के आधार पर इतिहास - जनगणना-रीतिरिवाज-आर्थिक स्थिति व भविष्य के विकास की धारा सभी मिलकर किसी समूह का आधार बनता है। जनगणना अब एक विज्ञान हो गया है और इस के आधार पर विकास की योजनायें बनाई जाती हैं। अब जनगणना केवल स्त्रीपुरुषों, बच्चों की संख्या का नाम नहीं है उसमें आकलित व्यक्तियों, परिवारों की आर्थिक स्थिति, शिक्षा की स्थिति आदि सब का विवरण होता है। जनगणना एक खिड़की होती है, जिसमें झाँककर हम उन संकेतोंको ढूँढ सकते हैं जो उस समूह की सामाजिक, आर्थिक स्थिति को बना सकते है। सांख्यिकी के माहिर उन संकेतो को पढ़कर वर्तमान का स्वरूप और भविष्य की संभावनाओं को उजागर कर सकते हैं।

हूमड़ जैन समाज ने इस क्षेत्र में भी अपनी जागरूकता का परिचय दिया है। जब कई समाज इस तरफ आंख मूंदे बैठे थे तब हूमड़ समाजोंने अपने अपने क्षेत्र की जनगणना कर अपने क्षेत्र के अनुकूल रीति रिवाजों में परिमार्जन किया - सामाजिक सहयोग की प्रक्रिया को बढ़ाया। भूतकाल का आकलन किया और भविष्य के सपने संजोये।

(१०) अ. भा. जनगणना के आकलन के यह प्रयास सन १९१४ में सर्वप्रथम हुए। इस के पीछे सेठ माणिकचंदजी

सौजन्य : श्री शोभाग्यमलजी कियावत
अे-५२, आशियाना पेलेस बंध, गार्डन रोड, पूना.

और ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी का हाथ प्रमुख था। उस समय दसा और बीसा हूमड़ कुल जनसंख्या २०८३४ थी। इस गणना में केवल बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, राजपुताना और मालवा, गुजरात और बंबई अहाते के आंकड़े है। हूमड़ समूहों के वास्तविक केन्द्र भी इन्हीं प्रान्तों में हैं अतः इस जनगणना में बहुत त्रुटि की संभावना नहीं है (आधार हूमड़ समाज प्रगति के पथ पर हूमड़ समाज इन्दौर का प्रकाशन एक अनुमान के अनुसार) १९७४ मे इसे ५०,००० आंका गया। इस बीच क्षेत्रीय जनगणनाओं के प्रकाशन के संदर्भ तो हैं किंतु अखिल भारतीय किसी जनगणना के प्रकाशन की सूचना नहीं है। सन १९९६ में श्री हूमड़ युवा मंच, इन्दौर द्वारा श्री हूमड़ जैन समाज की अखिल भारतीय विवरणिका प्रकाशन किया गया। इस में ८३ केन्द्रों की सूचना संकलित है। कुल परिवार ७२०८ व कुल जन संख्या का आकलन ४०२५९ है। ऐसा लगता है कई केन्द्रों ने अपनी सूचना, जनगणना प्रकाशन केन्द्र को नहीं भेजी अतः उनका समावेश नहीं किया गया है। दक्षिणांचल के क्षेत्रीय प्रकाशनों को देखते हुए लगता है कि कई केन्द्रों की जनगणना इस विवरणिका को प्रकाशन हेतु प्राप्त नहीं हुई। १९९६ में भी यह अनुमान किया गया था कि यह जनसंख्या ९०,००० से १ लाख के आस पास होनी चाहिए। हूमड़ जैन महासंघने भी अखिल भारतीय जनगणना के प्रकाशन का कार्य अपने हाथों में लिया था। इसमें सन १९९९ के आंकड़े (जो इसी पुस्तक में विस्तृत रूप से प्रकाशित है) बताते है कि कुल परिवार २५०१५ और जनसंख्या १४४२३१ है। यहाँ यह स्मरण करना ठीक रहेगा कि हूमड़ समाज का उद्‌भव हम 'हेमाचार्य' से माने तो उस समय ११००० क्षत्रियों को हूमड़ रूप में संस्कारित किया गया था आज तथा कथित २००० वर्ष की यात्रा के पश्चात् यदि आज हम १५०००० ही हैं तो यह बहुत कम है ऐसा क्यों ? जन संख्या वृद्धि का अपना एक अनुपात होता है और उसमें परिवर्तन होता रहता है। हूमड़ जैन महासंघ ने बहुत से नये हूमड़ केन्द्रों को पहचाना है और समाज की धारा में उन्हें जोड़ा है इस जुड़ाव के कई दूरगामी परिणाम समाज हित में हो सकते हैं। इन के प्रति-स्नेह, सहिष्णुता तथा सामंजस्य का दृष्टिकोण अपना जाय तो एक संपन्न सामाजिक शक्ति का अविर्भाव हो सकता है। जनगणना के इन आंकड़ो पर मतभेद हो सकता है किंतु उसमें समाज की वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करने में कोई अड़चन नहीं। यह साधारणीकृत अनुमान है पर इससे सामाजिक सोच पर अवश्य प्रभाव पड़ता है।

(११) हूमड़ जैन महासंघ की अखिलभारतीय जनगणना के कार्य क्रम के प्रमुख संयोजक श्री हीरालाल की सालगिया, अहमदाबाद है। सूचनाओं को एकत्रित कर उन्हें वर्गीकृत करने का कार्य उन्होंने ही किया है। उन की वय को देखते हुए यह विशाल कार्य उन्होंने जिस उत्साह पूर्वक किया, वह अभिनंदनीय है। उनके कुछ विचारों से परिचित हों तो इस कार्य के स्वरूप पर प्रकाश पडेगा -

- जन गणना में अधिकाश गांवों / नगरों से घर घर फिर कर खूब परिश्रम से जिन विशेष व्यक्तियों / संस्थाओं ने फार्म भरकर भेजे हैं - उनके प्रति इतिहास समिति का कर्तव्य है कि उनके ग्राम/नगर व कार्यक्रम कर्ताओं के नाम इतिहास में अवश्य सम्मिलित किये जायें।
- मेरे पर खूब प्रेशर है कि इतिहास शीघ्र प्रकाशित हो - मेरा भी यह प्रयत्न है परन्तु मन में एक प्रश्न बार बार उठता है कि समाज की बडी धन राशि, सहयोग, सबका परिश्रम होने पर भी सामग्री समाज के लिए उपयोगी हो नहीं तो ग्रंथ कब का प्रकाशित हो जाता।

सौजन्य : श्री शोभाग्यमलजी कियावत
अे-५२, आशियाना पेलेस वंध, गार्डन रोड, पूना.

• मेरा यह मानता है कि इतिहास बारम्बार प्रकाशित नहीं होता है। ६५० पेज में १०-२० पेज बढ़कर यदि उपयोगी सामग्री प्रकाशित होती है तो उसका समावेश कर लेना चाहिए। इतिहास के पृष्ठों में इन सभी बातों का संतुलन करने का प्रयत्न किया है।

(१२) इतने विशाल पैमाने पर जनगणना का यह प्रथम प्रयास है जिसमें अधिकतम हूमड़ केन्द्रों को पहचाना गया है। उज्जैन और इन्दौर के प्रयासों ने जो भूमिका तैयार की - उसके सहारे १५०००० लोगों का यह परिवार खड़ा हुआ है। प्रत्येक प्रयास - आगे आने वाले प्रयास के लिए सहारा होगा और इस में लिए हम अपने दरवाजे खुले रखना चाहिए। आज जब कि सामाजिक संस्थाओं पर कई प्रकार के दबाव हैं - इसने जगहों पर बिखरे हूमड़ समाज का एक सूत्र में बांधना - निश्चयपूर्वक वंदनीय है।

(१३) इतिहास के पृष्ठों पर विद्वान लेखकों ने सामाजिक रीतिरिवाजों परंपराओं आदि पर काफी सूचनाएँ प्रेषित की हैं - और सामाजिक सिंहावलेक आपके समक्ष दी है, इसी कारण आर्थिक सिंहावलोकन की दृष्टि से जनगणना के संदर्भो पर केन्द्रित एक विषय वस्तु प्रस्तुत की गई है। सुधिजन सहानुभूति पूर्वक दृष्टि डालकर इसकी त्रुटियों पर प्रकाश डालें ताकि भविष्य में ऐसी त्रुटि पुनः न हो।

(१४) जनगणना के साथ अलग अलग केन्द्रों पर चलनेवाली सामाजिक व धार्मिक गतिविधियों मन्दिरों, धर्मशालाओं, तीर्थस्थानों के भी विवरण प्राप्त हुए हैं जिन्हें इतिहास में स्थान दिया गया है।

(१५) इतिहास प्रकाशन के व्यय की पूर्ति हेतु - व्यक्ति परिचय व पृष्ठों को प्रायोजित करने की पद्धति सशुल्क अपनाई गई है अत: ऐसी सब सूचनायें व्यक्तिगत है - इतिहास समिति द्वारा बनाई गई नहीं है।

भविष्य क संकेत

इतिहास पढ़ना-लिखनना, जनगणना का आकलन और उसका विश्लेषण एक प्रक्रिया है जिससे हमें भावी के कांटो और फूलों के संकेत मिलते हैं। इन से सत्वस होकर हम अपने सामुहिक चारित्र को समझ सकते हैं। सामाजिक छद्म (दो मूंहा पन) उजागर हो सकते हैं और सही क्या हो सकता हैं इसकी प्रेरणा मिल सकती हैं। इन संकेतों के आकलन में मेरा व्यक्तिगत सोच हावी हो सकता है - जिसने मुझे गड़बड़ा दिया ही कहीं भावनायें आहत हो गई हों या व्यवहार से मैं भटक गया हूँ तो सहृदय समाज मुझे क्षमा करें। पर मेरा विश्वास है कि कुछ सोच सामने आने से कई नई दिशायें खुल सकती है।

• भविष्य हमारे दिए कोई सहज सरल बगीचा नहीं है जिसने टहलते हुए गये और खुशी के फूल चुन लायें। भविष्य अधिक चुनौती पूर्ण और सोच को प्रभावित करनेवाला होगा। आर्थिक चुनौती केवल दाल रोटी तक सीमित नहीं रहेगी - उसमें विस्तृत पैमाने पर आवश्यकताओं के कारण आर्थिक दबाव आयेंगे। प्रत्येक हूमड़ को इन संसाधनों को जुटाने के लिए प्रयत्न करना होगा। संभवत: छोटे उद्योग, छोटे व्यवसाय के लिए कोई स्थान न रहे। समाज के अधिक भिन्न २ केन्द्रों पर बिखरे होने की संभावना है। इन सब को एक सामाजिक स्नेह के सूत्र में बांधे रखना आवश्यक होगा। यदि आज से इस प्रयत्न को न किया गया तो मोतियों की माला के टूट जाने के बाद फिर से उन मोतियों को गूंथना बहुत कठिन होगा।

सौजन्य : श्री शोभाग्यमलजी कियावत
अे-५२, आशियाना पेलेस वंध, गार्डन रोड, पूना.

• शिक्षा आने वाले वर्षों में बहुआयामी होगी। प्रतिस्पर्धा व मंहगाई के कारण, सूचनाओं की बहुलता व विविधता के कारण उचित व अनुचित का निर्धारण करना एक कठिन कार्य होगा। यदि समाज एक सूचना प्रणाली विकसीत कर सकें जिसमें छनी हुई सूचना समाज के विद्यार्थियों को मिले। वह भी व्यक्ति आधारित तो सही सहायता होगी। समाज किसी शिक्षण संस्थान के बारे में सोचे तो उसका मूल आधार यही होना चाहिए। एक केन्द्रित शिक्षण संस्थान बनजाये और मार्गदर्शक के रुप में अलग अेक केन्द्र काम करें।

• 'परिवार' संस्था को भविष्य में और आघात लग सकता है। वृद्धों की सहाय व बच्चों की सही परवरिश इस से सबसे अधिक प्रभावित होगी। स्त्रियों व पुरुषों दोनों के काम काजी होने पर बच्चों व वृद्धों की देखभाल की पद्धति विकसित की जाने चाहिए। परिवार की युनिट के लिए व्यवहारिक - स्नेहपूर्ण सोच जीवन का आधार बने, इसका सही प्रचार प्रसार होना चाहिए आनेवाले समय में परिवार को सम्भवतः आर्थिक कमी इतनी प्रभावित न करें जितनी परिवार अव्यवस्था व प्रेम की कमी प्रभावित करे। समाज की अपनी एक सूचना पद्धति, प्रेरणाओं को दोहराने बाकी पद्धति, परिवारों के बारे में जानकारी देनेवाली पद्धति होनी चाहिए। एक सशक्त निरंतर प्रचार माध्यम होना चाहिए। देश-विदेश में फैले समाज की यदि जानकारी नहीं तो मिले तो प्रेम व स्नेह की कल्पना की जा सकती है। यह गुड़ात बढना ही चाहिए।

• सामाजिक सरोकारों के बदलते हुए स्वरूपों पर खुले दिमाग से चिंतन होना चाहिए। क्या और किस प्रकार सामाजिक कार्य हों - सामाजिक संस्थाओं के रोल भी पारदर्शी होना चाहिए। किन्ही व्यक्तियों की आकांक्षाओं की अहंकारो की पूर्ति पर सामाजिक संस्थाओं का भविष्य नहीं टिका रहना चाहिए। संस्थायें अपने कायदों से चलती रहें और व्यक्ति उससे जुड़ते रहे।

• अभीतक पहचाने गये क्षेत्रों का एक दूसरे से गहन संपर्क हो इसके लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए उदाहरण के लिए इन्दौर हूमड़ समाज का स्नेह सम्मेलन हो रहा है तो - वागड, दक्षिण, गुजरात, बंबई आदि के प्रतिनिधि मंडलों को आमंत्रित किये जाय जिसमें केवल पदाधिकारी ही न हो वरन विशेष योग्यता वाले व्यक्तित्वों को भी बुलाया जाय। आपस का मिलना जुडना स्नेह और रिश्तों को विकसित करेगा। अधिक खर्चों से बचकर ऐसे संपर्कों को मजबूत किया जा सकता है।

• विदेशों में रहनेवाले हूमड़ परिवारों की समस्या का स्वरूप भी आगामी समय मे बदलेगा। जो परिवार २५ वर्ष या अधिक समय से विदेशों में रह रहे हैं उनकी आगामी पीढ़ी अब बढ रही है - वे किस प्रकार हूमड परंपरा से जूड़े रहेंगे इस पर विचार किया जाना चाहिए। अभी तक तो विदेशों में रह रहे परिवारों के बुजुर्ग - भारत में रह रहे थे अतः सम्पर्क था, किन्तु जब वे कडियाँ समाप्त हो जायेंगी तो आपसी जुडाव कैसे रहेगा ? यह ज्वलंत प्रश्न क्रमशः सामने आने लगा है। विदेशों में रहनेवाले हूमड़ परिवारों की अपनी कठिनाइयाँ हैं, उनकी अपनी जीवन शैली है, उस सब के परिप्रेक्ष्य मे मार्ग ढूँढा जाना चाहिए।

• अन्य भारतीय समाजों में भी इसी प्रकार की समस्यायें हैं - अतः जैनत्व के विस्तृत पैमाने पर सामाजिक सरकारों को देखना संभव है या नहीं ? आगामी समय में भी प्रत्यावर्तन की स्थिति बनी रहेगी अतः नये स्थानों के संपकों का ही सहारा ही व्यक्ति को रहेगा - अतः उसकी अनदेखी भी नहीं की जा सकती।

ये सब वे संकेत हैं जो हूमड़ इतिहास के पृष्ठों में डालते हुए वर्तमान समाज की जनगणना के माध्यम से हमारे सामने उभरते हैं। इनको हिम्मत के साथ सीने पर झेलना समय की मांग है, अन्यथा समय पीठ पर बार करेगा और हम देखते रह जायेंगे।

हूमड़ो की जणगणना (सन् १९१४)

सन् १९१४ में दानवीर माणकचंद जवेरी एवं सेठ पानाचंद जवेरी की अद्यक्षता में दिगम्बर जैन डायरेक्टरी तैयार की गई उसीमें १९१८ में हूमड़ समाज की हूमड़ो की जणगणना की गई। इस प्रकार की समस्त हूमड़ जाति की जणगणना अ. भा. हूमड़ जैन इतिहास शोध समिति द्वारा सन् १९९६-९८ में लगभग ८५ वर्षों बाद की गई। यहाँ १९१४ की जणगणना और वर्तमान का जनगणना का रसप्रद विश्लेषण प्रकाशित किया जा रहा है।

हूमड़ो की वस्ती

हूमड़ो की वस्ती अर्थात् मनुष्य संख्या दिगम्बर जैन डाइरेक्टरी छपी सन् १९१४ के अनुसार (देखो सफा १४२०) इस भांति है।

	बंगाल	मध्यप्रदेश	राजपूता मालवा	गुजरात	
बीसा हूमड़		-	८४६	१७१०+५०	२५५५+५०
दशा हूमड़	३	४५	१०६३९	१७३२+१५०	१८७९+१५०
कुल	३	४५	११४८५	९३०१२०	२०८३४

वीसा हूमड़ो की विंगत।

राजपूताना व मालवा में ८४६ नीचे भांति है (देखो डाइरेक्टरी सफा १३६१)

ग्राम	संख्या	गाम	संख्या	गाम	संख्या
उज्जैन	७	झालरापटन	९०	भींडर	९
उदयपुर	१३०	डुंगरपुर	४६	मंदसौर	३
कुरावड़	१२	धरियाबाद	१४	रतलाम	३३
खानपुर	६	धार	४	सलुंबर	४०
खेमरा	६५	धुलेव	४६	सागवाड़ा	२०
गलियाकोट	१२	परताबगढ़	२४८	सेलाना	७
जावद	३२	भानपुर	२२		
कुल	८४६				

गुजरात व बम्बईके आहातेमें १७०९ की विगत ।

(देखो सफा १३७९-१३८०) बीसा हूमड़

ग्राम	संख्या	गाम	संख्या	गाम	संख्या
आसु	७	कुंभागांव	७	घोडेगांव	५
इन्दापुर	२	कुरबानी	१३	चिंचोली	१३
ईडर	५०	कुरवली	८०	जिती	१४
उमरड़	२	केडगांव	६	टेमुरणी	४
अंतुरणें	६०	कोराले	११	तिखंडी	१२
कडियादरा	५०	खडाव	१८	दहीगांव	५४
करमाला	६४	खंडाली	८	देवरगणूर	१३
कबंल	१६	घाडग्याचीवाडी	१	नातेपुते	१११
नांदल	६	बिबी	४	लोणन्द	१५
नान्नज	२६	बुध	१	वाखरी	२२
निगडी	४	भोरगांव	२९	वाघेली	७
पलासमंडल	१३	भांबुर्डी	१६	विडणी	१०
पाडली	१	भड	४	विहाल	११
पिंपलाचीवाडी	५	भोडवांची वाडी	७	विजापुर	३२
पिंपोडे	१	म्हसवड	१००	वीट	११
पिंरलें	१	मगराचे लिंबगांव	२	वेलापुर	२४
पुरन्दावडे	२१	महीमानगढ़	३९	शिरसणें	६
पंढरपुर	६	माढे	२५	सांगवी	६
फडतरी	१	मालकांबी	७	सिद्धेश्वर करोली	४०
फलटण	१७५	मेडद	१८	सिपुरे	३
बम्बई	१५०	लवंग	१३	हातुरने	११
बारामती	१०	लासुणें	४०	हिंगणगांव	७
बिधवन	१३	लिम्बझागर	६		
				भीजान	१७०९

नोंट :- सूरतमें बीसा हूमड़की ५० की संख्या है यह डाइरेक्ट रीमें लिखनेका छूट गया है ।

सौजन्य :JAIN GEMS IMC
Importers Diamonds & Colour Stones
MENTOR OH MILWAKEG (U.S.A.)

विगत दसा हूमड़

बंगालआहाता-सम्मेदशिखरमें ३ (सफा १३७२) मध्यप्रदेश । सफा १३२२

बुरहानपुरा ३३, मूर्तिजापुर ७, सावरगांव ५ - भीजान ४६

राजपूताना मालवा (सफा १३५९)

ग्राम	संख्या	गाम	संख्या	गाम	संख्या
आंजनो	१६०	खोडन	२५	जुहावा	१२
आणोद	२७६	गढा	५०	जेठाना	८
आंतरी	३६	गढी	१५०	झाडोल	२०
आरोन	४९	गनोडा	४६	जाबुआ	३९
उदयपुर	४०	गलियाकोट	२००	ठाकरणा	४६
ओगना	८०	गांठेल	५००	डडूका	१५५
ओबरी	१०१	गामडा	३	डुंगरपुर	१५०
कचनारा	८	गावडी	१०५	ढालवाडा	६
कनेजरा	१५०	गुवाडी	१५	तलवाडा	३००
कुआं	५०	गोस्ना	४०	तेजपुर	७
कुलयारी	२२	गंगाधार	१	थांदला	८०
कुवाला	१६	घाटागांव	२०	थोबावाणा	१५
कोकापुर	२५	चीतरी	६०	दीवडा	१२
कोठडा	२३	छानी	२००	देवगढ़	२०
कोठरी	१०२	जवास	३०	देवल	१६
खमरा	१४०	जाडोल	७	धरियाबाद	२७०
खाकड	७८	जावद	११	धुलेव (रखबदेव)	४
खूंटा	३६	जावरा	५	नरवारी	१८६

सौजन्य :JAIN GEMS IMC
Importers Diamonds & Colour Stones
MENTOR OH MILWAKEG (U.S.A.)

दशा हूमड़ बम्बई आहता

ग्राम	संख्या	गाम	संख्या	गाम	संख्या
मंगलवंढे	१५	वड़गांव	३१	शिरसणें	२
मंदुप	६	वड़गांव (खरडे)	७	शिरसाले	६८
मुर्घोल	२	वडगांव (मदुप)	३	शिरसाव	१५
येवती	७	वडाले	३२	शिराल	११
रखीयाल	३०	वडासण	३६	शेटफल	८
कणमोडवाडी	४	वडूज	१५	श्शेटफल	२४
रणासण	४०	वदराड	३०	शेन्दरी	४०
राजाके	४	बरखेडा	३१	शेन्दूरणी	३६
रांदेल	१३	खड	५	शेरीचीवाडी	९
रानकुवा	१०	वाखरी	५	शेलगांव	४
रोंपाले	३	वागदरी	१८	सोलापुर	३००
लउल	४६	वाघोली	१०	सदानामुवाडा	३०
लच्छन	५	वागर	८	सडे	६
लाकरोडा	६५	वांदखेला	४	सांडावी	२२
लाखेवाडी	७	वालवड	२	सांगवी	४
लासुणें	४	वालूज	६	सादडवेल	९
लिंबगांव	२८	विडणी	२५	सापडे	१२
लिंब्लक	२३	विजपुर	३	सामोड़े	१२
लिंबु	७	विजापुर	१०	सायरा	५
लंगेर	११	वेलापुर	६	सासकल	३
लोणंद	४	सिंदवाड़ी	४	सीतवाड़	२५
		शिरबल	१२		
सुखडी	९	सोनासन	११५	हिराली	६
सेवगाँव	१४	सेरगाँव	६	हिक्ले	१४
सोनगाँन	४	हरिश्चर (पीपलगांव)	६६	होल	४
सोनागिरि	१२१	हातकलंगडा	१३		१३६२
सोनारी	५२	हांतूर	७	सूरत	१५०
निंबरगी	२६	पिंपोडे	६	मालेक	७०
निंबलग	२०	पुलुज	१३	भावनगर	५०
निर्गुडी	२	पूना	२	भूम	१६
नेकाडा	४०	पेणूर	१७	मुथार	४

सौजन्य :JAIN GEMS IMC
Importers Diamonds & Colour Stones
MENTOR OH MILWAKEG (U.S.A.)

दशा हूमड़ बम्बई आहता

ग्राम	संख्या	गाम	संख्या	गाम	संख्या
नेरी	२	पंढरपुर	८२	भोंसे	५
नंदुर	३	फलटण	२४८	भंडाद कवठे	१८
प्रांतिज	४५	बडोली	२०	म्हेसगांव	१९
पणदरे	३९	बम्बई	२५०	म्हेसगांव	६
परिले	२१	वलसंग	३४	मउ	६०
परड़ा	३०	बाकरोल	१००	मगरूल	३०
पलसदेव	३३	बार्सीटाउन	१००	मगरूल	३०
प्रांगी	३	बारामती	७७	मलवडी	२०
पापरी	९	बालीसणा	१०	मसले	४
पारोला	१२५	बावडे	२२	महूद	२०
पालदी	३	बावी	१०	माडल	३६
पालिम	२५	बिबि	४	मांडवी	३६
पिंगली	४०	बुध	१३	मालेगांव	१०
पिठेवाड़ी	१	बेबले	१८	मुरूम	२३
पिंपरज	६	बोराले	२०	मेंदरगी	५१
पिपरे	१	बोरी	१७	मोडनिंब	५३
पींपलनेर	३४	मडगांव	१३	मोहोल	५०
गिर्वी	२८	जेऊर	२	दारपाल	२४
गुंजोटी	२५	जेजले	३	दालवडी	४
गुणवड़े	१६	जेरूर	१२	दाहोद	५००
गुलंचे	८	टेंभुर्णी	८	दूधनी	३०
गुलबर्गा	४६	ठोंग्याची उपलाई	१२	देराले	२५
गोखली	१९	डोणजे	१२	देलवाड	२५
घोधा	४०	डोरलानी	५७	घमनार	४
घोटी	९	तडवेल	५	धाराशिव	३६
चड़चम	१९	तडरगांव	६४	धारीसणा	४०
चिकमण्णूर	१	तलदंगे	२	धूलिया	१०
चितरोड़ा	३०	तलोद	२५	न्हावी	२
चुंबली	३	तांदुलवाड़ी	२	ननानपुर	६५
चोपडे	१००	तांबे	६	नरखेड़	१

सौजन्य :JAIN GEMS IMC
Importers Diamonds & Colour Stones
MENTOR OH MILWAKEG (U.S.A.)

दशा हूमड़ बम्बई आहता

सफा १३७६-७७-७८-७९

ग्राम	संख्या	गाम	संख्या	गाम	संख्या
छाला	४०	तारापुर	१३	नखणे	८
जबलगी	१५	तुलशी	१	नरोने	८
जबले (सोलापुर)	१०	तेभाई	१६	नलदुर्ग	८
जबले (निजानुद्दीन)	६	दगड़	५	नागणपुर	९
जबले (अष्टी)	३६	दहींगांव	४१	नागणसूर	९
जबलगी	१७	दहीगांव	३	नातेपुते	७
जाबुली	२५	दहीटन	११	नांदगांव	१
जिगुर्डी	२	दहीवड़ी	११	नात्रज	१२
जिर्ती	३	दहेल	५	निंबगाम	८४
अम्मोड़ा	१२	उपाले	४	कुरोली	३
अमनगर	१२५	उमदी	११	कुसुंबा	११७
अक्कलकोट	६८	खोरान	२००	केम	२३
आक्लूज	८	कण्हेरगांव	२	कोथले	१
आगोती	७	करजगी	२१	कोराले	४
आनगर	१०	करमाले	२९	कोरगांव	१३
आप	१३	करियाली	६	कोल्हापुर	५
आलंद	११६	करोल	७०	कोलेगांव	१
आष्ठी	५३	कलमन	१२	खनीपुर	३०
आष्टें	३	कलस	७	खरडा	७१
आसु	५	कलंब	१०	खरेगांव	१५
इन्डी	५७	कव्हे	१४	खांडज	१६
इडर	१५०	किणी	८	खुंटे	१०
इन्दापुर	९	कुकेरी	२५	खेरोल	५
उज्जनी	४	कुंथलगीरी	६	खोटाना मुवाड़ा	३०
उजेड़िया	१३६	कुमारगांव	९	खंडाली	१३
उपलाई (घाकटी)	१४	कुमारी	३	गढोडा	२०
उपलाई (पोरली)	४	कुर्दुवाड़ी	३०	गणेगांव	१६
उपलवाटे	१४	कुस्त्ल	१२	गारोले	८०

सौजन्य :JAIN GEMS IMC
Importers Diamonds & Colour Stones
MENTOR OH MILWAKEG (U.S.A.)

राजपूताना मालवा दसा हूमड़

ग्राम	संख्या	गाम	संख्या	गाम	संख्या
नवागांव	१५०	बावलवाडा	८०	मोर	८
नादवेल	२५	बांसवाडा	७०	रतलाम	९
नेनोर	१९	बीसाबेडा	३६	राणापुर	९०
नोगाम	२००	बीसीबाडा	७०	रियावन	१४
प्रतापगढ़	११११	बोरी	१००	रीचा	१६
पचलासाखुर्द	१५	माउगढ	५८	रोयड़ा	३
परतापुर	३५०	भीलूडा	२००	समेजा	२०
परासिया	९५	भानदा	४०	सनावदा	३६
पाड़वा	२०	भीलूडा	२००	समेजा	२१
पाड़सोला	२८७	भूदर	७०	सलुंमर	१२५
पाडा	१६	मंदसौर	१०४	सलोदा	५६
पारोदा	१५०	मनासा	२२	सागवाडा	४५०
पीठ	७५	माडोव	४५	सालिमगढ	२८
बजवानी	८	भावता	६०	सावला	२६९
बड़ोदिया	१५०	सुगाना	९६	सिंगोली	३
बदराणा	२२	मुंबई	७	सिंधाना	१०
बरघा	१०	मेतवाला	५०	हनुजाउ	१२
बावनगजाजी	१	मोटा पचलासा	१५	भीनान	१०६३९

सौजन्य :**JAIN GEMS IMC**
Importers Diamonds & Colour Stones
MENTOR OH MILWAKEG (U.S.A.)

अ. भा. हूमड़ समाज जनगणना

पूना-बम्बई (महाराष्ट्र)

क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या	क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या
१.	वर्ताक पेठ	३०	१७९	२०.	बाडा	६	३०
२.	धनकवाडी	२	११	२१.	गढवा	१	४
	हवेली	५	३०	२२.	खपोली	१	४
३.	वान	१५	८१	२३.	सांगवी	११	५५
४.	वाल्दे (कटगाँव)	८	४३	२४.	डरोलवाडी	११	५४
५.	पदारे	२५	१२९	२५.	आसावाडी	१३	८५
६.	बारामती	१८७	१३४४	२६.	भवानानगर	९	५१
७.	वासुणी	६	४१	२७.	आपुर्णो	८	४३
८.	वालचंद नगर	१३१	६५५	२८.	रोलगाँव	८	४१
९.	निमगाँव	२१	२१०	२९.	नीमगाँव	३	१९
१०.	पणसदेव	१५	१०	३०.	उदापुर	७	३७
११.	इंदापुर	१४	८८	३१.	किंगवण	७	५१
१२.	नेरा	३७	१७१	३२.	को झोक बदुक	२३	९४
१३.	सासवर्ड	७	३९	३३.	मालेगाँव बुद्रक	२४	१०४
१४.	वडगांव	२९	१९७	३४.	पुना शहेर	६१९	३१३९
१५.	हंतुर्णे	७	३८	३५.	मुंबई	२७६०	११२३३
१७.	ककंठा	६	३७	३६.	भीवर्डी	६८	३६१
१८.	दहीगांव	८	४३	३७.	नागपूर	६	२४
१९.	कोराडे सोमेश्वर	१३	५४	३८.	सहाद	२	९

सौजन्य :JAIN GEMS IMC
Importers Diamonds & Colour Stones
MENTOR OH MILWAKEG (U.S.A.)

सोलापुर (महाराष्ट्र)

क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या	क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या
१.	सोलापुर	२५६	१८२१	२६.	शेद्री	३	१८
२.	बारी	२९	१४९	२७.	बारी	५	२७
३.	वैरान	१४	७६	२८.	उन्यलगीरी	५	२९
४.	भूमि	७	३९	२९.	गौडवीण	७	६१
५.	फलमाला	३४	२१४	३०.	महोल	६	३२
६.	अकलुज	१७३	१००५	३१.	खडी	८	४३
७.	परंडा	७	३९	३२.	सदाशिव नगर	७	३१
८.	पेढरपुर	२१५	११३२	३३.	माहलीनगर	७	३१
९.	माहाक	२९	१४२	३४.	खंडाली	११	५४
१०.	वैसुली	११	५१	३५.	बोरगाँव	३	१६
११.	माठलिव	२१	१४२	३६.	राहतनगर	१०	५१
१२.	वठरुध	७	२९	३७.	विजोला	१४	७२
१३.	नातेपुते	२९	१७१	३८.	यंशवतनगर	५	२९
१४.	मालीनगर	३	१३	३९.	रेकापुर	६	३२
१५.	श्रीपुर	२	११	४०.	पिलीव	४	१९
१६.	वाधोली	६	२८	४१.	तोडले वोडले	४	२१
१७.	जहूर	२४	१११	४२.	मालसिरस	३	१९
१८.	अक्कलकोट	१०	८७	४३.	इस्लामपुर	१३	७९
१९.	पेनूर	९	८०	४४.	वैरण	८	७९
२०.	दोल	७	४९	४५.	जैनवाडी	४	७९
२१.	पिपकनेर	१७	१११	४६.	वलसंघ	५	२९
२२.	कुकुवाडी	३१	१४९	४७.	वौभ	३	१९
२३.	टेभुर्णी	७	४९	४८.	मोडलिंब	४	२७
२४.	भाटा	७	४७	४९.	नासि	३	१७
२५.	बुहुवाडी	९	६९	५०.	करमाला	२५	१८६

सौजन्य :JAIN GEMS IMC
Importers Diamonds & Colour Stones
MENTOR OH MILWAKEG (U.S.A.)

सतारा (महाराष्ट्र)

क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या	क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या
१.	खुंटे	८	३४	३०.	दालवडा, फल्टन	१	५१
२.	सागवी	९	४३	३१.	बीबी फल्टण	९	५१
३.	म्हसवड	५४	३११	३२.	जारपवाडी	३	१६
४.	निमगाँव	१९	११७	३३.	खपोली खंटेत	३	१५
५.	विडणी	६	३१	३४.	बाखरी	३	१८
६.	नारगाँव	५	२७	३५.	वखारी	१२	६१
७.	विचुणी	३	१६	३६.	सांगवड	१४	८१
८.	लाणद	५१	२२८	३७.	तालाव		
९.	कडतरवाडी	४९	२०३	३८.	मानस्त	६	३१
१०.	महीमानगढ	८	४७	३९.	तरडगाँव	२९	१४१
११.	वर्हुल	१५	९०	४०.	दहीवडी	१५	१०३
१२.	वडाती	१३	५८	४१.	झिरपवाडी	२	९
१३.	खेराव	१२	७२	४२.	ढाणा	३	१४
१४.	जेव	५	२२	४३.	वाखरी	३	१२
१५.	सिद्धेश्वर करोती	९	५४	४४.	कपडणा	४८	२७१
१६.	काजल	३	१३	४५.	तरलगाँव	२२	८१
१७.	साखरवाडी	२०	९३	४६.	विर्चुणी	१	४
१८.	बीबी	४	२१	४७.	जंती	२	८
१९.	सुखडी	५	२७	४८.	कालग	१	४
२०.	जीति	४	२०	४९.	निंबलक	६	२४
२१.	दालवडी	२७	१४७	५०.	सुखडी	३	१२
२२.	मांडवखडक	३	१६	५१.	भरमातंग	२५	१८६
२३.	निबलक	८	४३	५२.	दहीगांव	६	२५
२४.	दहिवडी	१४१	९८७	५३.	खमयाती खरे	१०	६०
२५.	कुखली खटाल	१२	६०	५४.	भरवगांव	१	५
२६.	तरडगाँव	३३	१४७	५५.	लोणवा	३६	१४४
२७.	आसू	९	३९	५६.	महिमानगर	५	७५
२८.	फल्टन	२९१	१३११	५७.	नीगलक	५	२५
२९.	कापडगाँव	३	१८	५८.	खुरलीखराल	५	४०

सौजन्य :JAIN GEMS IMC
Importers Diamonds & Colour Stones
MENTOR OH MILWAKEG (U.S.A.)

घुलेगांव खानदेश (महाराष्ट्र)

क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या	क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या
१.	राजगीर	१३१	७१३	२९.	सुखडीट तौफल	३९	३४२
२.	धूलिया	२४९	१७११	३०.	वारवारि	२	९
३.	कुसुंबा	५४	४३२	३१.	दहीगाँव	३	१८
४.	सोनागीरी	६१	४६७	३२.	बुरानपुरा	८	४९
५.	बेटवाद शिदरखेडा	१८	१४४	३३.	वरखेडे	१३	७१
६.	कापडणा	४८	२७१	३४.	नरडाणा	३९	२१९
७.	चासील गाँव	५४	३०२	३५.	शेटुणी	१८	१४३
८.	चोपडा	१३	४६	३६.	चिचपाडा	३९	२१९
९.	जलगाँव	२१	११९	३७.	थरोला	७	३१
१०.	शोहणी	१३	६८	३८.	दहिवेल	२	११
११.	पिपलगाँव हरेश्वर	७१	५१९		अमलनेर	३	३९
१२.	औरंदाबाद	२१	१११	३९.	थारोला	७	३१
१३.	भुसावल	३	१९	४०.	खाँजवाला	१०	४३
१४.	नासिक	३०	१४९	४१.	दहिवेल	२	११
१५.	मालेगाँव	१७	९१	४२.	शिरपुर	२	९
१६.	पो. शहाद	४१	१५९	४३.	शिरसाले	८	४९
१७.	भिवडी	३१	१५४	४४.	बटावद	३८	३१९
१८.	दाहणु रोड	२२	१७९	४५.	पिपलगाँव (हरे)	३४	११३६
१९.	अमरावती	८७	४०२	४६.	सनगीर	३०	७११
२०.	खयोली	२	११	४७.	असीराज	७२	७११
२१.	कोल्टापुर	२	१३	४८.	रायपुर	२	११
२२.	नागपुर	२	१३	४९.	गुभढाजी	४	२१
२३.	नागवाडी	२	९	५०.	मैंदगी	३	१९
२४.	देवला	९	५१	५१.	वहाणपुर	४	३१
२५.	खेरवाडा	६	२७	५२.	पारोला	१३	७१
२६.	छाणी	७	४३	५३.	बेरावद	१३	९१
२७.	गढतोण	८	५१	५४.	चोपडा	१७	१३०
२८.	गढवा	११	६७	५५.	बेरावद	१२	८८
				५६.	खडीलवारा	१	५

सौजन्य :**JAIN GEMS IMC**
Importers Diamonds & Colour Stones
MENTOR OH MILWAKEG (U.S.A.)

उदयपुर (राजस्थान)

क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या	क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या
१.	बदशना	७२	५८९	२३.	झाडोल	३९	२१८
२.	भाणदा	१२	७०	२४.	गोगला	२१	१२९
३.	भूदर	२९	१९१	२५.	उदयपुर	४११	२४२९
४.	बिछवडा	२३	१८१	२६.	पारसोला	७०	४८०
५.	बणादवदागिव	८	४१	२७.	खमेरा	२५	१२७
६.	छाणी	७९	५४९	२८.	बोरिया	८	४५
७.	बावलवाडा	५९	४११	२९.	देवल	८२	२५८
८.	धरियावद	२९१	१८२४	३०.	ज्ञौधरी	५	२९
९.	झाडोल	८२	५११	३१.	करवाड़ा	४	१९
१०.	कांकरोली	३	१९	३२.	गिर्वा	२११	१३५८
११.	खेरवाडा	३१	१७९	३३.	नरवाली	९	४९
१२.	रवाखड	३२	२७१	३४.	गामड़ी	११	५४
१३.	खूँता	१२	६१	३५.	रीछा	८	३९
१४.	काल्यारी	११९	११०३	३६.	कोलियारी	३३	२०५
१५.	मंगवास	६	२९	३७.	बिचोवडा	८	४२
१६.	मुघट	३	१४	३८.	आयड	६	३३
१७.	नयागाँव	७२	४१३	३९.	चणवदा	७	४६
१८.	ओगणा	५४	३९२	४०.	कोटडा	६	३९
१९.	फलासिया	९४	६०१	४१.	सुणादरी	५	४४
२०.	ऋषभदेव	१९	१२१	४२.	मूगांणां	१४	५१
२१.	सलूम्बर	६२	४०१	४३.	वीसा हूमड़	१३	५५
२२.	भीलवाडा	२२	९५	४४.	आमनाद	११	४९
				४५.	कोलयारी	५६	३५६

सौजन्य : डॉ. धनपाल सालगिया
१०, कपिल पोली किलनिक्स, ७५, जयन्त अेपार्टमेन्ट, वरली, मुंबई,
पीन नं. ४०००२५ टे. नं. ४२२९१६२, ४२२६८७९

डूंगरपुर (राजस्थान)

क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या	क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या
१.	आंतरी	४१	३११	१७.	वरदी	१९	९१
२.	भीलूडा	७१	४१९	१८.	ठाकरडा	८	४३
३.	बीछीवाडा	२९	२७१	१९.	ओबरी	११	५६
४.	छोटादिवडा	३	१३	२०.	घाटका गाँव	७	४२
५.	चीतरी	४१	३१४	२१.	मालव	५	३२
६.	दीवडाबडा	९	४९	२२.	टामटिया	४	२९
७.	देवल	४६	३०९	२३.	कोकापुर	६	३४
८.	गामडी	६३	४१९	२४.	खडगदा	८	३९
९.	कुँपा	३४	१९१	२५.	साबला	३	१३
१०.	माणडव	११	७१	२६.	मुगेड	९	४५
११.	औबरी	६१	५०२	२७.	बडोदिया	११	६९
१२.	पाडवा	८	३९	२८.	पादरडीबडी	८	४०
१३.	पीठ	६१	३०१	२९.	जेठाणा	७	३९
१४.	सानला	३	८	३०.	गलिया कोट	५	३३
१५.	सरोदा	४३	३११	३१.	डूंगरपुर	१११	६१२
१६.	वादखेड	४	१५				

सौजन्य : डॉ. धनपाल सालगिया

१०, कपिल पोली किलनिक्स, ७५, जयन्त अेपार्टमेन्ट, वरली, मुंबई,

पीन नं. ४०००२५ टे. नं. ४२२९१६२, ४२२६८७९

बांसवाडा (राजस्थान)

क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या	क्रम	नगर/गाँव	परिवार	कुल संख्या
१.	आनंदपुरी	२९	१७९	२२.	गनोडा	१५	८९
२.	अरथूना	१२७	८४९	२३.	मेतवाला	१३	९१
३.	बागीदौरा	१९३	१२११	२४.	कोटडा बडा	१९	१११
४.		२४९	१९४२	२५.	बडोदिया	१११	६२९
५.	चन्दूजीका गठा	३६	३११	२६.	बोडीगाम	९	७०
६.	ददूका	७२	४१९	२७.	बजवाडा	११	१२
७.	गठी	६३	३१८	२८.	कुंवाला	८७	२११
८.	घाटोल	३८१	२११२	२९.	वरवाली	३१	३००
९.	श्रोलाना क्षेत्र	२८	२११	३०.	ओंगणा	९	७१
१०.	कालिजरा	८२	४९८	३१.	बोरी	११	७२
११.	खमेरा	४०	२०९	३२.	आनन्दपुरी	२३	१११
१२.	खोडन	१९	१०१	३३.	जौलाणा	३९	१८१
१३.	मोर	५	२६	३४.	कुशलगढ़	१५	८१
१४.	नखाली	१०२	५२२	३५.	गाजना	११	६१
१५.	नौगामा धनमल	१७९	११०९	३६.	ठाकराडा	९	४५
१६.	पालोदा	८०	६११	३७.	धारका गाँव	६	३९
१७.	वरतापुर	१०	९१	३८.	थान्दला	५	३१
१८.	सागवाडा	२६१	१३४०	३९.	पादडी बडी	४	१९
१९.	सेरडी बडी	१५	७२	४०.	तौछावा	१३६	६३४
२०.	तलवाडा	११९	६११	४१.	मरतपूर	४	२४
२१.	बांसवाडा	३१२	१४८२				

सौजन्य : डॉ. धनपाल सालगिया
१०, कपिल पोली किलनिक्स, ७५, जयन्त अेपार्टमेन्ट, वरली, मुंबई,
पीन नं. ४०००२५ टे. नं. ४२२९११६२, ४२२६८७९

कोटा

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
१	कोटा	९	५१
२	रावतभाटा	३	१७
३	रामगंजमंडी	१७	१४१

जालावाड (राजस्थान)

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
१	असनावर	५	३१
२	झालरापाटन	१४	७९
३	मैंभरी	४	१९

चितौडगढ़

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
१	चितौड	४	१९
२	चूपना	६	३१
३	घावडा	३	१९
४	कोटडी, व्याहा अरनोद	५	३१
५	निम्बादेडा	३	१३
६	जाबुआ	११	६९
७	इकापुर	८	४२
८	गढवा	६	३६
९	मंदसौर	४	१९
१०	नीनौर	७	३९
११	घोडाला	८	४३
१२	प्रतापगढ़	२८१	१९४४
१३	देलवाड़ा (रावला)	९	४१
१४	चौधरी (जवास)	३	१५
		३५८	२३६०

परचूरन

क्रम	नगर/गाँव	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
१	अजमेर	२९	३११
२	भवानीमण्डी	१९	८१
३	भीलवाडा	२९	१७३
४	गंगापुर सिटी	३	१९
५	उदयपुर	४	२९
६	जयपुर	३१	१८९
७	जोधपुर	२	११
८	करावाडा	३	१९
९	कुशलगढ़	३९	१९१
१०	पाली	२	११
११	चीतौड		
१२	देलवाडा	११	९१
१३	जलदा	१३	१०५
१४	ओवरी	६३	१०४
१५	पाली	१	८
१६	रावणा	६	२४

सौजन्य : डॉ. धनपाल सालगिया

१०, कपिल पोली किलनिक्स, ७५, जयन्त अेपार्टमेन्ट, वरली, मुंबई,

पीन नं. ४०००२५ टे. नं. ४२२९१६२, ४२२६८७९

गुजरात

क्रम	नगर/गाँव	कुल संख्या	परिवार
१.	आमोद	१०५	२०
२.	आणंद	१८	३
३.	अहमदाबाद	१८७५	३३०
४.	अंकलेश्वर	२२२	४२
५.	ओरण	२३०	४६
६.	आलुबा	२३३	४९
१.	बारडोली	२४	४
२.	भद्रेसर	१४१	१६
३.	भालोडा	८३	१२
४.	भारवाल	४५	९
५.	बोरसद	५०	८
६.	भरिच	३२	८
७.	बाकरोल	५५	१२
८.	बालीसणा	१०५	२१
९.	बामँवाड	३०६	५१
१०.	बेरणा	७९	१२
११.	भालक	१८०	३७
१२.	भावनगर	२६५	५३
१३.	भडली	१३	२
१४.	बगवाडा	१४	४
१५.	भायदी	१४	३
१६.	बाकरोल	५५	१२
१७.	भाणदा	६२	८
१८.	भूदर	१४४	१८
१.	चितौड	१२८	२१
२.	चोटासण	२८	३
३.	चोरीवाड	१७१	२४
४.	छाला	१७५	२७
५.	छाणी	४४४	६८
१.	दलानी मुवाडी	१५०	२७
२.	दरोला	१७२	२८
३.	देलवाडा	१४५	२३
४.	धनपाल	५२	९
५.	धारीसणा	६६	११
६.	दाता भललगढ़	३५	७
७.	डमाड	५०	१०
८.	धाणेधरडा	२०	४
९.	दाहोद	१७६२	२५२
१०.	देहगाम	३९	७
११.	दरोरा	६	२
१२.	दोलताबाद	५८	१३
१३.	दाहोल	१३	२
१४.	धुम्मस	१७	३
१५.	देवल	२५७	३६
१.	फतेहपुर	३२१	५३
१.	गोरल	२१४	२७
२.	गोधरा	२६	२७
३.	गांधीनगर	१३	४
४.	गोंडल	२८	६
५.	गठोडा	३८	१५
६.	गोरा	३२	१९

सौजन्य : डॉ. धनपाल सालगिया
१०, कपिल पोली किलनिक्स, ७५, जयन्त अेपार्टमेन्ट, वरली, मुंबई,
पीन नं. ४०००२५   टे. नं. ४२२९१६२, ४२२६८७९

गुजरात

क्रम	नगर/गाँव	कुल संख्या	परिवार
१.	हिंमतनगर	५६०	११२
२.	हुडोल	२०	४
१.	ईडर	१३८५	२०५
१.	जलुन्द्रा	११	१०
२.	ज़ंत्राल	७७	६५
३.	जंबुडी	५७	२२
४.	झीझंवा	३८	७
५.	जहेर	६	२
६.	जदर	३७	५
७.	झबुसर	४५	९
१.	करोल	१५६	३३
२.	कांकणोल	४४	४
३.	खानपुर	१०७	२०
४.	खाटाना मुवाड	२०	३
५.	कराड	२५	२
६.	कलोल	९६	९
७.	खेडा	२२	५
८.	खेडब्रह्मा	६	२
९.	कडीयादरा	१६७	२२
१०.	कोटडा	१०१	१७
११.	कुकडीया	७	१
१२.	करमसद	६६	११
१३.	कानीसा	३०	५
१४.	कपडवंज	४२	८
१५.	खंभात	६२	१४
१६.	खेरबाडा	१३५	२४
१७.	करावाडा	४	१
१.	लाकरोड	३०४	४९
२.	लीहोडा	६५	११
३.	लाभोई	७	१
१.	म्ऊ	२२६	३२
२.	मुनाई	१०१	१७
३.	मुडेटी	८८	१३
४.	मोरबी	५	१
५.	महादेवपुरा	५५	१
६.	महिपाल	८	१
७.	मधासणा	३७	७
८.	महादेवपुरा	१०	२
९.	महेसाणा	४७	१०
१०.	महिपाल	८	२
११.	मोदुका	३४	१६
१२.	मोडला	५५	११
१३.	मालावाड	१५	४
१४.	मैयरी	१२	२
१.	ननानपुर	२७०	४८
२.	नवा	१२६	२४
३.	नवानगर	४०	७
४.	निकोडा	४८	८
५.	नडीयाद	६३	१३
६.	नवसारी	१४	४
७.	नवावाल	७०	१४
८.	नयागाँव	३६७	५६

सौजन्य : श्री महेन्दकुमार मेहता

१००२, अेवरेस्ट चेम्बर, माउन्ट प्लेजेन्ट रोड, वालकेश्वर, मुम्बई.

पीन नं. ४०००06 फोन : ३६१६०४

गुजरात

क्रम	नगर/गाँव	कुल संख्या	परिवार
१.	पाशीना	१७५	२८
२.	प्रांतिज	७६	३६
३.	पल्लाचार	३८	६
४.	पाटनाकुवा	१२६	५६
५.	पेथापुर	१७३	२८
६.	पीज	१६	४
७.	पालनपुर	२६	३
८.	पिण्डवा	९	२
९.	पादरा	२१०	४२
१०.	पानवेल	४१	८
११.	पेटलाद	५४	११
१.	रमसणा	२९	६
२.	रामपुर	९	१
३.	रखियाल	२०९	४८
४.	रमोस	४२	५
५.	रासलोड	९	१
६.	ऋषभदेव	१०१	१५
१.	सदाना मुवाडा	२२५	३६
२.	सरडोई	५१	९
३.	सलाल गाम	९५	१२
४.	साणोदा	५२	१५
५.	सामंत्री	८०	१८
६.	सायरा	१२	३
७.	सीतवाडा	३२	१३
८.	सामणीया	५४	१२
९.	सोनासणा	२३१	६०
१०.	सावरकुंडला	१८	४
११.	सतरामपुर	२५	५
१२.	सोनगढ	४	१
१३.	सुरत	१९६३	२८८
१४.	शाडा	८०	१७
१.	दोरडा	२	१
२.	टाकादुवा	३०५	२५
३.	ताजपुर	१५	२
४.	तारापुर	१५	२
५.	तलोज गाम/स्टेशन	६१३	११३
६.	धांभालिया	८	२
७.	उधना	२२	४
८.	उदण	४२	४
९.	उजेडिया	३०४	५४
१.	वरप	१२	२
२.	वदराड	३	१
३.	व्हेरा	१२	१
४.	विसनगर	१९	३
५.	वापी	५१	९
६.	वदराड	२१३	४२
७.	वांसणा चौधरी	५१	११
८.	वाडासणा	१११	१९
९.	वडोदरा	२११७	३९३
१०.	वलसाड	४०	९०
११.	विजयनगर	८२८	१२६
१२.	विछीवाडा	१६६	२६
१३.	बखारी	२०	४

सौजन्य : श्री महेन्द्रकुमार मेहता
१००२, अेवरेस्ट चेम्बर, माउन्ट प्लेजेन्ट रोड, वालकेश्वर, मुम्बई.
पीन नं. ४००००६ फोन : ३६१६०४

मध्यप्रेदश

क्रम	जिल्ला	नगर/गाँव	जन संख्या	परिवार
१.	झाबुआ	आलीराज पुर	१	१
१.	झाबुआ	बामनिया	१५	१
२.	भिलाई	भिलाई	१६	४
३.	भोपाल	भोपाल	९२	२३
४.	बुरहानपुर	वुरहानपुर	१२०	१६
५.	मंदसौर	भानपुर	३०	६
६.	मंदसौर	खजूरिया सारंग	४	१
७.	मंदसौर	भाउगढ	११९	१३
८.	रायपुर	बैकुंठ	३	१
१.	देवास	देवास	८	२०
२.	धार	धार	४	१
१.	इन्दौर	इन्दौर	३१४९	५५६
१.	रतलाम	जावरा	५३	१२
२.	झाबुआ	झाबुआ	२६१	२६
३.	झाबुआ	जोबट	६	२
१.	खंडवा	खंडवा	२६	६
१.	मंदसौर	मनासा	२२१	४२
२.	मंदसौर	मंदसौर	७३५	१०९
३.	मंदसौर	भावता	४९	९
४.	सतना	मैहर	२१	६
१.	बिरलाग्राम	नागदा	३३	१०
२.	मंद्यसौर	नीमच	५३	८
१.	झाबुआ	रानापुर	१६८	२४
२.	जावरा	रानीगाँव	११	२
३.	रायपुर	रायपुर	१०	२
४.	रतलाम	रतलाम	३७६	६३
५.	रतलाम	रियावन	२२	५
१.	मंदसौर	शामगढ़	६	१
२.	सतना	सतना	११	२
३.	देवास	सोनकच्छ	४	१
४.	शाजापुर	शाजापुर	४	१
५.	सीहोर	शाजापुर	३	१
१.	थांदला	थांदला	२४७	५०
१.	उज्जैन	उज्जैन	४८७	८५

सौजन्य : श्री महेन्दकुमार मेहता

१००२, अेवरेस्ट चेम्बर, माउन्ट प्लेजेन्ट रोड, वालकेश्वर, मुम्बई.

पीन नं. ४००००६ फोन : ३६१६०४

आंध्रप्रदेश एवं अन्य प्रांत

		परिवार	जन संख्या
१.	आदिलाबाद	५	१७
२.	हैदराबाद	६५	३३४
३.	विशारवापट्टनम्	१	३
४.	दिल्ली	२१	८३
५.	डाल्टनगंज	१	८
६.	जमशेदपुर	८	३१
७.	गोवा	१	४
	आन्ध्र प्रदेश	७१	३५४
	हरियाणा	४	१५
१.	गुडगाँव	४	१५
	कर्नाटक	११	४७
१.	बेंगलोर	१	४
२.	बेलगाँव	१०	४३
	पश्चिम बंगाल	४	१८
१.	कलकत्ता	४	१८
२.	तमिनाडू	१	४
१.	मद्रास	१	४
	उत्तरप्रदेश	३	१२
१.	आगरा	१	४
२.	कानपुर	१	४
३.	लखनऊ	१	४

सौजन्य : श्री महेन्द्रकुमार मेहता
१००२, अेवरेस्ट चेम्बर, माउन्ट प्लेजेन्ट रोड, वालकेश्वर, मुम्बई.
पीन नं. ४००००६ फोन : ३६१६०४

हूमड़ समाज जनगणना सन् १९९८-१९९९
विश्लेषण

प्रांत	कुल परिवार	जन संख्या	अेवरेज कुटुम्ब व्यक्ति	कुटुम्ब विश्लेषण संख्या में				पुरुष	महिला	बालक	बालिका
				पुरुष	महिला	बालक	बालिका				
राजस्थान	७५७६	४५५७३ ३१.६०%	६.००	१०१७८	१२३०५	१२८३६	१.३४	१.३५	१.६२	१.६९	
महाराष्ट्र	७३०५	४२२०५ २९.२६%	५.७८	९७१२	९६३८	११३१८	११५३७	१.३३	१.३२	१.५५	१.५८
गुजरात	४५१६	२५०८८ १७.३९%	५.५५	५८७६	६१०३	६३७४	६७३५	१.३०	१.३५	१.४१	१.४९
मध्य प्रदेश	११२४	६४३० ४.४६%	५.७२	१४७३	१४८४	१७११	१७५४	१.३१	१.३९	१.५३	१.५६
अन्य विदेश आदि	४४९४	२४९३५ १७.२९%	५.५५	६०६५	६०२०	६२४६	६६०४	१.३५	१.३६	१.३९	१.४७
टोटल	२५०१५	१४४२३१	५.७२	३३३०४	३३४९९	३७६१२	३९४६६	१.३२६	१.३३६	१.५०	१.५५८

सौजन्य : श्री महेन्द्रकुमार मेहता

१००२, अेवरेस्ट चेम्बर, माउन्ट प्लेजेन्ट रोड, वालकेश्वर, मुम्बई.

पीन नं. ४००००६ फोन : ३६१६०४

हूमड़ समाज जनगणना १९९८-९९

अ.भा. स्तर पर हूमड़ सबसे ज्यादा वस्ती वाले १६ शहर/नगर उनकी जनसंख्या प्रतिसद क्रम आदि

क्रम	प्रांत क्रम	अ.भा. स्तर	प्रांत	शहर/नगर नाम	प्रांतकी कुल संख्या	शहर/ नगर की संख्या	प्रांत का %	अ.भा. का%	निष्कर्ष : महाराष्ट्र के २५% हूमड़ स्त्रफ बम्बई में निवास करते है।
१.	१	१	महाराष्ट्र	मुंबई (बम्बई)	४४९४९	११२३३	२४.१६	७.७७	महाराष्ट्र के कुल हूमड़ वस्तीमें छ शहरो में ५०% हूमड़
२.	२	३	महाराष्ट्र	पुना	४४९४९	३१३९	६.१७		
३.	३	१०	महाराष्ट्र	सोलापुर	४४९४९	१८२१	४.०५		
४.	४	१२	महाराष्ट्र	धूलिया	४४९४९	१७११	३.८०		
५.	५	१४	महाराष्ट्र	बारामती	४४९४९	१३४४	२.१७		
६.	६	१५	महाराष्ट्र	फल्टन	४४९४९	१३११	२.९१		
					टोटल	२०५५९	४५.६९	१४.१८	
७.	१	४	राजस्थान	उदयपूर	४८९८४	२४२९	४.१६		
८.	२	६	राजस्थान	घाटोल	४८९८४	२११२	४.३१		
९.	३	८	राजस्थान	प्रटापगढ़	४८९८४	१९४४	३.९७		
१०.	४	९	राजस्थान	धरियावद	४८९८४	१८२४	३.७२		
११.	५	१३	राजस्थान	बासवाडा	४८९८४	१४८२	३.०२		
१२.	६	१६	राजस्थान	बागीदौरा	४८९८४	१२११	२.४७		
					टोटल	११००२	२२.४६	७.६३	
१३.	१	५		बडौदा	२५०८८	२१९७	८.७९		गुजरात के ४ शहरो में हूमड़ोकी वस्ती का ३१ %
१४.	२	७		सूरत	२५०८८	१९६३	७.८६		
१५.	३	८		अहमदाबाद	२५०८८	१८७६	७.५०		
१६.	४	११		दाहोद	२५०८८	१७६२	७.०५		
					टोटल	७७१७	३१.९९	५.३८	
१७.	१	२	मध्यप्रदेश	इन्दौर	६६६९	३१४९	४७.२२	२.१७	मध्यप्रदेश में इन्दौर में कुल वस्तीका ४७%
			अन्य	-	१८५४१		-	१२.५१	
				टोटल	१४४२३१	४२५०७	-	२९.४७	

हूमड़ इतिहास भाग-२

हूमड़ समाज जणगणना १९९४ और वर्तमान १९९८-९९

१९९४ जैन डीरेक्टरी के अनुसार विभाग प्रदेश १९९८-१९९९

क्रम	प्रदेश	कुल संख्या	%	विभाग संख्या	%	कुल संख्या	देससे आने	कुल घर	%	तफावत
१.	राजस्थान	११४८५	५४.७०	९९९६	४७.५९	४५५७३	+३४११	४८९८४	३३.७८	-१३.८१
२.	मालवा (म.प्र.)			१४८९	७.११	६४३०	+२३९	६६६९	४.१२	-३.११
३.	महाराष्ट्र	९३०१	४४.२९	६०१२	२८.६२	४२२०५	२७४४	४४९४९	३०.९०	+२.२८
४.	गुजरात			३२८९	१८.५३	२५०८८	-	२५०८८	१७.८९	+२.३६
५.	अन्य	४८	१.०१	४८	१.०१	२४९३५	-६३९४	१८५४१	१२.५१	+११.५२
	कुल	२०८३४ २१०००	१००%	२०८३४	१००%	१४४२३१	-	१४४२३१	१००%	Nil

नोंट : (१) १९१४ की जणगणना से १९९८ की जणगणना ६.८६ गुना अधिक है ।

(२) राजस्थान से १३.८१% और म.प्र. से ३.११% कुल १६% जणगणनाने २.२८ महाराष्ट्र २.३६ गुजरात और ११.५२ अन्य प्रांतो, विदेशो में स्थातंर कीया ।

महाराष्ट्र

जिला	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
सतारा	९४८	५१६२
सोलापूर	९९९	५६२७
पूना	७१५	४८४३
धूले जलगाँव	१४२२	९२५१
पूनासीटी	६१९	३१३९
बम्बई सीटी	७११२	११२३३
अन्य	४९०	२९५०
	७३०५	४२२०५

अ. भा. हूमड़ समाज आर्थिक व्यवसायिक विशेलषण - १९९८-९९

	टेकनीकल+उद्योगपति	नौकरी	व्यापार	खेती	निवृत्त	कुल
महाराष्ट्र A	१५.३८	३३.२३	४७.०९	-	४.३०	१००
महाराष्ट्र B	९.०४	२०.६७	६५.३८	.८०	४.१	१००
राजस्थान B	९.१३	२७.९२	५७.२७	.७६	४.९५	१००
गुजरात B	१५.६४	४०.००	४०.०४	-	४.३२	१००
महाराष्ट्र C	२.६२	१९.१८	५६.४६	१७.६०	४.१४	१००
राजस्थान C	३.३६	२९.७२	५७.५७	४.६९	४.१६	१००
गुजरात C	७.१८	२३.४२	६३.९०	०.५०	४.८०	१००
महाराष्ट्र D	०.६०	१०.८५	४६.२५	३८.२०	४.१०	१००
राजस्थान D	१.२८	२७.५७	६०.६७	५.६८	४.८०	१००

A १०००० जन संख्या से अधिक

B १५००० थी १०००० के कम

C ३०० से १०००

D ३०० से कम

राजस्थान

जिला	कुटुम्ब संख्या	कुल संख्या
डुंगरपुर	७४९	४७५१
कोटा	२९	२०९
चितौड	३५८	२३६०
झालावड	२३	१२९
उदयपूर	२४१३	१४६१९
बाँसवाडा	३१२१	१८३६४
Misc	८८५	२४४१
	७५७६	४५५७३

हूमड़ समाज का तुलनात्मक विवरण

सन १९१४ - १९७१ से १९९८-९९

प्रांत	गाँव / नगर	१९१४	१९७१	१९९९	
		कुल संख्या	कुल संख्या	कुल संख्या	कुटुम्ब संख्या
महाराष्ट्र	बम्बई	४००	१९०३	११२२३	२७५०
Nil	पूना	Nil	Nil	३४३९	६११
	निम्बलंक	२०		४३	८
	नेरी	२		१७१	३७
	थरडा	३०		३९	७
	पलसदव	३३		९०	१५
	पीपलेनर	३४		१११	१७
	पिपलगाँव	३		११३६	३८
	पूना	२		३१३९	६११
	पेणूर	१७		८०	९
	वलसंग	३४		२९	५
	म्हेरागाँव	६		३११	५४
	मालेगाँव	१०		१०४	२४
	मेदरगी	५१		१९	३
	मोडनिंब	५३		२७	४
	लोणंद	४		२२८	५१
	वड़गाँव	३१		१९७	२९
	वडाले	३२		५८	१३
	वरखेडे	३१		७१	१३
	वारवरी	५		१२	३
	वाघोली	१६		३८	७
	शिरसाल	६८		४९	८
	शेन्दरी	४०		१८	३
	सांगवी	४		४३	९
	निती	१४		८	२
	दहां गाँव	५४		८३	८
	फलटन	१७५		१३११	२७१
	बीरामती	१०		१३८८	१८७
	विडली	१०		३१	६

प्रांत	गाँव / नगर	१९१४	१९७१	१९९९	
		कुल संख्या	कुल संख्या	कुल संख्या	कुटुम्ब संख्या
गुजरात	अहमदाबाद	**Nil**	५०	११७५	३९५
	सुरत	१५०	३१२	११६३	२८८
	बडौदा	**Nil**	-	२११७	३१३
	आंसु	७		३९	९
	इन्दापुर	२		८८	१४
	ईडर	२००		१३८५	२०५
	कडियादरा	५०		१६४	२२
	करमाला	६४		२१४	३४
	आलंद	११६		१८	३
	उजेडिया	१३५		३०४	५४
	खूंटे	१०		३८	८
	खेरोल	५		७२	१२
	खोटानामुवाडा	३०		२०	३
	खंडाली	१३		५४	११
	गढोडा	२०		४	१
	रखियाल	३०		२०९	४८
	भाकरोडा	६५		३०४	४९
	सदानामुवाडा	३०		२२५	३६
	सोनासण	११५		२३१	६०
मध्यप्रदेश	मंदसौर	१०४		७३५	१०९
	मनासा	२२		२२१	४२
	रतलाम	९		३७६	६३
	राणापुर	९०		१६८	२४
	इन्दौर	-		३१४९	५५६
	उज्जैन			४८७	८५

हूमड़ समाज का तुलनात्मक विवरण

सन १९१४ - १९७१ से १९९८-९९

प्रांत	गाँव / नगर	१९१४	१९७१	१९९९	
		कुल संख्या	कुल संख्या	कुल संख्या	कुटुम्ब संख्या
राजस्थान	आंजनो	१६०		७१	९
	उदयपुर	४०		२४२९	४११
	ओबरी	१०१		५६	११
	कुलयारी	२२		११०३	११९
	खमेरा	१४०		२०९	४०
	खाकड	७८		२७१	३२
	खूंटा	३६		६१	१२
	गढी	१५०		३९८	६३
	गनोडा	४५		७९	१५
	गलियाकोट	२००		३३	५
	गावडी	१०५		५४	११
	बेठाना	८		३९	७
	झाडोल	२०		५११	८२
	डडूका	१५५		४१९	७२
	तलवाडा	३००		५११	८२
	धरियाबाद	२७०		१८२४	२११
	नवागांव	१५०		४१३	७२
	नोगाम	२००		११०९	१७९
	प्रतापगढ	११११		१९४४	२८१
	परतापुर	३५०		९१	१०
	पाड़सोला	२८७		४८०	७०
	बडोदिया	१५०		६९	११
	बावलवाडा	८०		४११	५९
	बांसवाडा	७०		१४८३	३१२
	लीलूडा	२००		४१९	७१
	सागवाडा	८५०		१३४०	२०१
	सावला	२६९		१३	३
राजस्थान	घाटोल	१६९	१०९८	२११२	३८१
	बांगोदोरा	४००	६८८	१२११	१९३

प्रांत	गाँव / नगर	१९१४	१९७१	१९९९	
		कुल संख्या	कुल संख्या	कुल संख्या	कुटुम्ब संख्या
राजस्थान	घाटोल	१६९	१०१८	२११२	३८१
	बांगोदोरा	४००	६८८	१२११	१९३
	खमेरा	६५	१११	२०९	४०
	कुशलगढ	४२५	६१०	१७४	३४
	ओगणा	२७६	१११	७१	९
	गढी	१५०	११०	३९८	६३
	विछोवाडा	७०	१११	११०३	११९
	कोल्यारी	२२	१७०	११०३	११९
	मूगंणा	५०	२८७	५९	१४
	फलासिया	९५	३३४	६०१	९४
	बरदाना	७२	५०	५८९	७२
	डडूका	२६	९२	६१	१२
	नरवाली	१८६	३८८	४९	९
	अरथूंना	-	४०२	८४९	१२७
	पालोदा	१५०	३०१	६११	८०

बीसवीं सदी के हूमड़ संत

हूमड़ समाज प्रारम्भ से धार्मिक वृत्ति वाला, देवशास्त्र गुरु का भक्त, तीर्थों का जीर्णोद्धार का मुनियों, त्यागियों का सेवक एवं जिनवाणी के प्रचार प्रसार में जैन समाज को सक्रीय योगदान देता रहा है।

हूमड़ों के पूर्वज लाड क्षत्रिय पावागढ और गिरनार पर्वत से तपस्या कर कर्मो को क्षय करके निर्वाण को प्राप्त हुअे हैं।

विशेष परिस्थितियों में वि. संवत १०१ में हूमड़ों के पूर्वजों ने एक विशेष संगठन जिनका नाम हूमड़ रक्खा गया उसने मूलसंघ के विभाजन के कारण, नन्दिसंघ का सानिध्य स्वीकार किया और उन्होंने १२वी सदी तक आचार्यो और उनके त्यागी शिष्यों ने परम्परा को जारी रक्खा।

१३वीं सदी में वि. सन् १२६१ में विशेष परिस्थिति में आचार्य बसंतकीर्ति ने महारक सम्प्रदाय की स्थापना की। उनके शिष्य भ. शुभकिर्ती ने दिल्ली में गद्दी स्थापित की और वहाँ से इडर, सूरत आदि अनेक जगह जहाँ २ हूमड़ों का विशेष निवास था वहाँ वहाँ शाखा, लघुशाखा स्थापित करके हूमड़ समाज को पुन: जीवित किया। मुगलौ के द्वारा नष्ट किये सेकडों जिनालयो को पुन: जीर्णोद्धार करवाकर, जगह २ शास्त्र भंडारो की स्थापना करके हूमड़ो की धार्मिक, सामायिक, सांस्कृतिक परम्परा को जीवित रखा।

हूमड़ समाज को यदि महारको का सानिध्य प्राप्त नहीं होता तो उसकी कल्पना करना कठिन है।

जिसे विशेष परिस्थिति और हेतु से दिगम्बर आचार्य ने वस्यग्रहण करके और गृहास्थाचार्य का कर्तव्य निभाने महारक सप्रदाय को स्थापित किया था। समय जाते परिस्थिति बदलते, और धीरे महारको में शिथिलता आने लगी। परिणामत: वरुण महारकों की मान्यता कम होकर हूमड़ समाज में लुप्त हो गई।

परिणाम स्वरूप २०वीं सदी के प्रारम्भ में उत्तर भारत में दिगम्बर साधु का विहार लगभग बन्द सा हो गया था। दक्षिण भारत में भी २-४ दिगम्बर साधु विद्यमान रह गये थे।

ऐसे कठिन समय में, दक्षिण भारत के कर्नाटक के लोग गाँव में सन् १८७२ में वर्तमान युग के पर्वतक महान तपस्वी आचार्य शान्तिसागरजी ने जन्म लिया सन् १९१५ में क्षुल्लक दिक्षा और फिर मुनि दिक्षा।

इस श्रृखंला में हम हूमड़ समाज का जैन समाज को योगदान ही नहीं, परन्तु नेतृत्त्व दिया यह बताने जा रहे है।

उत्तर भारत में नग्न दि. साधुओं का विहार उत्तर भारत के अनेक प्रांतो, रियासतों में दिगम्बर साधुओं के विहार पर प्रतिबंध था और उनके दर्शन कठिन थे इसे लक्ष में रखकर हूमड़ भूषण, हूमड़ पुनमचंदजी पवासी बम्बई ने आचार्य संघ को उत्तर भारत में विहार करके सम्मेतशिखर की वङ्गदना कराने का बीडा उठाया और आर्थिक और सभी प्रकार की व्यवस्था का संकल्प करके कुभोग बाहुबली से संघ लेकर

सौजन्य : दि. जैन हूमड़ समाज
मु. पोस्ट नौगांव जि. बासवाडा
राजस्थान

सन् १९२७ में सम्मेतशिखर की बंदना हेतु उत्तर भारत में मुनिसंघ का विहार करवाया और उसके बाद १९३४ में प्रतापगढ में आचार्यश्री के सानिध्य में पंच कल्याणक प्रतिज्ञा करवाकर, भगवान पार्श्वनाथ की विशाण्लमूर्ति को भारत की उद्योग राजधानी बम्बई नगरी के मध्य, मुख्य बजार में विशाल जिनालय बनवाकर स्थापित की । इस प्रकार इस हूमड़ वीरने हूमड़ समाज को गौरव प्रदान किया।

साक्षात् वीर वाणी से आगम ग्रन्थों को युग युगान्तर सुरक्षित रखने में हूमड़ समाज का नेतृत्व और योगदान :-

आचार्य श्रीने अपने दीक्षा काल का अधिकांश समय दक्षिण महाराष्ट्र जहाँ लगभग १०० प्रतिसंघ हूमड़ निवास करते है बिहार किया उस समय हूमड़ों की दक्षिण भारत की राजधानी और दक्षिण भारत की काशी फल्टन नगरी और लोगंद, नीरा, बारामती, सोलापुर, कुंथलगिरी, विहार के समय आचार्यश्री को ज्ञान हुआ कि आगम ग्रन्थों में प्राचीनतम ग्रन्थ राग श्री धवल, महा धवल की मूल ताड प्रतियां मूडबद्री में जीर्ण हो रही हैं ऐसे साक्षात् वीर वाणी से सरबन्ध रखनेवाले आगम ग्रन्थों को युगांतर सुरक्षित रखना आवश्यक है ऐसा प्रस्ताव हुआ समाज के सामने रखने पर प. पू. चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्था का गठन सन् १९४३ किया गया।

आचार्य श्री के आदेशानुसार फल्टन हूमड़ समाज और संघपति घासीलालजी पूनमचंदजीने धवल, जयधवल, महाधवल के मूल प्रतियों का विद्वानों द्वारा संशोधन करवाकर, ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण करवाया ताम्रपत्र का आकार ८'' × १३''

कुल संख्या २६६३

कुल बजन ५० बंगाली मग

और पाँचसौ प्रतियाँ मुद्रित कराई जिनसे विद्वान लाभ ले सके। उपरोक्त ताम्रपत्रों के दो सेट बनाये। एक सेट चन्द्रप्रभू दि जैन मन्दिर में विशेष जिनवाणी भवन बनाकर स्थापित किया गया। दूसरा सेट सेठ घासीलालजी बम्बई मालकादेवी पार्श्वनाथ मन्दिर में विराजमान किया।

इस प्रकार जिनवाणी की रक्षा जीर्णोद्धार में हूमड़ समाज ने नेतृत्व लेकर गौरव प्राप्त किया। इसी समय फल्टन में आचार्य श्री की प्रेरणा से फल्टन में श्रुतभंडार और ग्रन्थ प्रकाशन समिति की रचना करके उसके अध्यक्ष तलकचंद वेणीचंद शहर वकील, और संपादक श्री मोतीचंद गौतमचंद कोटडिया को नियुक्त किया।

जैन संस्कृति, आयतन एवं धर्म की रक्षा में हूमड़ समाज का योगदान

सन् १९४८ में जैन धर्म की संस्कृति पर एक भयंकर संकट आया। पश्न था जैन मंदिरो में हरिजन प्रवेश इस संकट के सामने सन् १९४८ में १००८ आदिनाथ दि. जैन मन्दिर फल्टन में आचार्य श्री अन्तयाग

सौजन्य : दि. जैन हूमड़ समाज
मु. पोस्ट नौगाँव जि. बासवाडा
राजस्थान

की प्रतिज्ञा करके कोटिसंरव्यादिगण प्रारम्भ किया और इसी अनुसंधान में १९५२ में लोवद चतुर्मास के बाद आजन्म अन्त त्याग किया। उस समय बम्बई हाइकोर्ट में यह केस चल रहा था। अन्त में बम्बई हाइकोर्ट का जजमेन्ट हमारे पक्ष में आया उसके अनुसार :-

''जैन संस्कृति एक स्वतंत्र व भिन्न संस्कृति है तथा उसके आयतन मंदिर तीर्थ, जैन तीर्थ, जैनशास्त्र आदि जैन धर्मावलंबियों के भक्ति के आधार है ।''

इस प्रकार विशेष कर हूमड़ समाज के सहयोग से हमने हाइकोर्ट में सफलता प्राप्त की।

इस प्रकार बिसवीं सदी के प्रारम्भ से हूमड़ समाज ने आचार्य शान्तिसागरजी और आगे जाकर उनकी परम्परा के आचार्यों का सानिध्य प्राप्त किया। इस सदी के मध्य और अन्त भाग में दि. समाज में अनेक आचार्यों और संघों की स्थापना हुई जिसमें अनेक हूमड़ों के पुरुष और महिलाओं ने दीक्षा ग्रहण की।

खेद है कि हूमड़ समाज की धीमी संस्था या पत्र पत्रिकाओं ने हूमड़ों संतों का विवरण संग्रह करके प्रकाशित नहीं किया। हमें इसे एकत्रित करने में बहुत कठिनाई हुई। प. पू. आचार्य रमणसागरजी से श्री बाबूभाई गांधी इडरने कुछ विवरण प्राप्त किया एवं श्री आ. नन्दसाव जीवराज दोशी फल्टन से दक्षिण का कुछ विवरण प्राप्त हुआ। बाकी काफी पत्र व्यवहार से विवरण प्राप्त हो सका है। जो अधूरा है। समाज से निवेदन है कि इस विवरण में जिन त्यागियों के नाम रह गये हों अवश्य केन्द्रको सूचित करे, जिससे पूर्ति में उनका समावेश किया जा सके। हो सकता है नाम, गृहस्थनाम आदि में त्रुटी रही हो, उसके लिये खेद है।

सौजन्य : दि. जैन हूमड़ समाज
मु. पोस्ट नौगांव जि. बासवाडा
राजस्थान

१९-२० वीं सदी के प्रथम दिगंबराचार्य, परम श्रद्धेय, प्रातः स्मरणीय, शतेन्द्र नमस्करणीय, जगत् वंद्य, आध्यात्मिक ज्योतिर्धर, तपोमूर्ति, समाधिसाधक, चारित्र चक्रवर्ती, परम पूज्य - १०८ आचार्यश्री शांतिसागरजी महाराज

बीसवी सदी के प्रथम हूमड़ परमहंस दिगंबराचार्य बाल ब्र. प्रशांतमूर्ति धवलकीर्तिधारक जिनधर्म प्रभावक १०८ श्री शांतिसागरजी महाराज (छाणी)

- उत्तर भारत के एक महान आध्यात्मिक संत

ओजस्वी वक्ता, मृदु. कोमल स्वभावी, धर्मालंकार
परम-हंस दिगंबराचार्यश्री १०८
रयणसागरजी मुनिराज़

जिनके मंगल आशीर्वाद से एवं जिनके परम शीतल सांनिध्यमें दि. १८-८-१९९३ के शुभ दिन स्थापना हुई हूमड़ जैन इतिहास शोध समिति की ये हैं प. पू. धर्मदिवाकर, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, दिगंबर जैनाचार्य, श्री १०८ सुबाहुसागरजी महाराज

स्थल : श्री ऋषभदेवजी दि जैन जिनालय, विजयनगर (गुजरात) के प्रांगणमें

बा. ब्र. सम्यग्ज्ञान शिरोमणि, कुशल आगम वक्ता
विदुषी, गणिनी आर्यिकारत्न, श्री धर्मभूषण श्री १०५ ज्ञानमतिजी (पोशीना - ईडर - गुजरात)
गुजरात इतिहास शोध समिति के सदस्य एवं संयोजक पूज्य माताजी के साथ इतिहास थी चर्चा करते हुऐ ।

जम्बूद्वीप निर्माण की पावन प्रेरिका, तीर्थोद्धिरिका, ज्ञान प्रभाकर पूज्य गणिनी, आर्यिका शिरोमणी

जिनके मंगल आशीर्वाद से यह इतिहास ग्रन्थ की रचना हो सकी है सत सत बन्दन

बा. ब्र. वासल्य मूर्ति - प्रशांत मूर्ति
जिनके सानिध्य प्रेरणा और मार्गदर्शन से हूमड़ इतिहास का लेखन, संग्रह हो सका है ।
पूज्य आर्यिका चन्दनमलजी - हस्तीनापुर

शत शत नमन !
बीसवीं सदी के युग प्रवर्तक

चरित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागरजी (दक्षिण) जन्म : आषाढवदी छठ सन् १८७२ ई. पिता : भीमगौडा पाटिल, माता : सत्यवती, नाम : सातगौडा, स्थान : भोजगांव (तहसील चिकोडी, महाराष्ट्र)

क्षुल्लक दीक्षा : ४१ वर्ष की आयु में सन् १९१५ ई. मुनिश्री देवेन्द्र कीर्तिजी से क्षुल्लक दीक्षा ली। दीक्षा नाम : शान्ति सागर रखा गया। ब्रह्मचर्य व्रत उन्होंने १८ वर्ष की उम्र में ही ले लिया था।

मुनि दीक्षा : फाल्गुन शुल्क १४ सन् १९२० ई. में मुनि देवेन्द्र कीर्तिजी से दीक्षा ली।

आचार्य पद : आश्विन शुक्ल ११ सन् १९२४ ई. समडोली नामक गाम में श्री वीर सागर एवम् श्री नेमिसागरजी की निगृन्थ दीक्षा के समय उनको आचार्य पद से अलंकृत किया गया।

चरित्र चक्रवर्ती पद : सन् १९३७ ई. मे गजपंथा पंच कल्याणक के शुभावसर पर आपको चरित्र चक्रवर्ती पद से विभूषित किया गया।

जीवन क्रम : बचपन से दयालु प्रकृति मुनिभक्त थे। सन् १९२० से १९५५ ई. तक ३६ चातुर्मास किये और ३६ वर्ष के मुनि जीवन में २७ वर्ष ९ माह उपवास किये। समस्त उत्तर व दक्षिण में भमण किया। उनकी प्रेरणा से मूडबिद्री में जीर्णशीर्ण स्थिति में विराजित आगमग्रंथ ताम्रपत्रों पर लिखकर सुरक्षित किये गये। वे घोर उपसर्ग विजेता थे। कई बार उनके शरीर पर सांप लिपट गया पर वे ध्यानस्थ रहे। २२ अगस्त १९५५ ई. को आचार्य पढ़ वीर सागरजी महाराज को प्रदान किया। उन्होंने १८ मुनियों को जैन दीक्षा प्रदान की जिन्होंने दिगम्बरत्व की महिमा का देश भरमें प्रसार किया। यहां यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि आचार्य श्री की आगमोक्ता निर्दोष चर्या को देखकर उनके गुरु ने पुनः उनसे दीक्षा ली थी। इस युग में सच्चे मुनिमार्ग के वे मार्ग दर्शक थे।

सल्लेखना व देह त्याग : १४ अगस्त, रविवार सन् १९५५ को उन्होंने सल्लेखना ग्रहण की व १८ सितम्बर सन् १९५५ को प्रातः ७.५० पर नश्वर शरीर का त्याग कर दिया।

आचार्य श्री के महत्त्वपूर्ण कार्यों का स्मरण करते हुए श्री नीरज जैन ने कहा है, साधना के क्षेत्र में चरित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी आचार्य छाणी महाराज से हर पद पर वरिष्ठ थे। छाणी महाराज ने इनकी इस वरिष्ठता को सदा उदारता पूर्वक सन्मान दिया। दोनों आचार्यों में एक-दूसरे के लिए संत-सुलभ वात्सल्य और आदर का भाव था। वर्तमान युग में भारत में सर्वत्र दिगम्बर मुनियों का सद्भाव है उसका बहुत कुछ श्रेय आपको जाता है। इस युग में सच्चे मुनिमार्ग के वे मार्गदर्शक थे।

आचार्य श्री १०८ श्री शांति सागरजी महाराज (दक्षिण) तथा १०८ श्री शांति सागरजी महाराज (छाणी) दोनों में से एक ने दक्षिण भारत में तो दूसरे ने उत्तर भारत में मुनि परंपरा को वृद्धिगत किया।

युग प्रवर्तक आचार्य श्री के चरणों में सादर नमोऽस्तु। शत शत वंदन॥

शत शत नमन !

बीसवीं सदी के प्रथम हूमड़ आचार्य

प्रशान्तमूर्ति आचार्य श्री शांति सागरजी (छाणी)

जन्म : सन् १८८८ में छाणी (जिला- उदयपुर, राजस्थान) दशा हूमड़ जैन समाज में हुआ।

पिता : श्री भागचंद, माताता : श्रीमती माणकबाई, जन्म नाम : केवलदास।

ब्रह्मचर्य दीक्षा : सम्मेद शिखर में स्वर्ण भद्रकूट पर दीक्षा का निर्णय कर केशलोंच कर कपड़ों की मर्यादा लेकर, सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर दिया।

क्षुल्लक दीक्षा : सन् १९२२ गढी में विधान के समय भगवान आदिनाथ की प्रतिमा के समक्ष क्षुल्लक दीक्षा ले ली और केवलदास क्षुल्लक शान्ति सागर हो गये।

मुनि दीक्षा : सन् १९२३ में सागवाडा (राजस्थान) में चातुर्मास किया और वहीं भाद्रपद शुल्क १४ को मन्दिर में आदिनाथ भगवान के समक्ष दिगम्बर दीक्षा धारण कर निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि हो गये।

आचार्य पद : सन् १९२६ में गिरीडीह (बिहार) में चातुर्मास किया। गिरीडीह जैन समाज ने मुनि शान्तिसागरजी महाराज को आचार्य पद से अलंकृत किया।

ग्रंथ : मुलाराधना, श्री शान्तिसागर सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला, शान्ति सवैया शतक, आगम दर्पण।

समाधि : १७ मई १९४४ को मध्यान्ह १.१५ बजे णमोकार मन्त्र बोलते बोलते सागवाडा में आत्मोत्सर्ग किया।

उत्तरवर्ती परम्परा : आचार्य श्री के अनेक शिष्य हुए जिसमें आचार्य सूर्य सागर, मुनि ज्ञान सागर, आदि सागर, नेमिसागर तथा वीर सागर आदि प्रमुख हैं। इनकी उत्तरवर्ती परम्परा में कई आचार्य व मुनि है। जिन्होंने भारत में दिगम्बरत्व की ध्वजा फहराई।

मुनि धर्म की शुचिता, सहजता व संन्यासत्व के आचार्य श्री पर्यायवाची थे। बागड क्षेत्र की पुण्य सलिला भूमि में दशाहूमड़ परिवार में आपका जन्म हुआ। आपकी सभी दीक्षाएं गुरुके अभाव में, स्वप्रेरणा से स्वयं के निश्चय से प्रेरित हुई। ऐसे अंतदृष्टि के धनी साधक हूमड़ थे। यह हमारे लिए गौरव की बात है। साथ ही यह भी सिद्ध करता है कि हूमड़ के जैन आधार को किसी भी परिस्थिति में, विस्मृत नहीं किया जा सकता। हूमड़ जैन थे और हैं।

सादर नमोऽस्तु। शत शत अभिनंदन॥

बीसवी सदी के संत

स्व. मुस्लिम श्री १०८ विजयसागरजी
गृहाथनाम देवचंदभाई गांधी - इडर

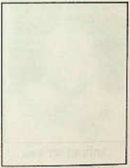

स्व. मुनिराजजी १०८
विजयसागरजी
ईडर

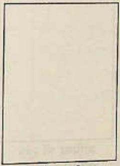

स्व. मुनिराजजी १०८
ऋषभसागरजी
ईडर

मुनिराजजी १०८
समाधिसागरजी
मुंबई

मुनिराजजी १०८
सुबुद्धिसागरजी
मुंबई

मुनिराजजी श्री उत्तमसागरजी
फल्टन

मुनिराज श्री १०८
पार्श्व सागरजी

हूमड़ इतिहास भाग-२

मुनिराज श्री १०८
सुधर्मसागरजी

मुनिराजी श्री १०८ वीरसागरजी
वीरचंद के गांधी
फल्टन

श्री १०८ सुकमल नन्दीनी
कालुलाल दोशी
उदयपूर

श्री २०५ रतनमतीजी
केशरबाई ए. गांधी
मुंबई

आर्यिका श्री २०५
ज्ञानमतीजी माताजी
श्री कंचनबेन एस. शाह - पोसिना

आर्यिका श्री २०५
विजयमतीजी माताजी
बी. पी. गांधी - विजयनगर

आर्यिका श्री २०५ चरित्रमती
माताजी
श्री सूरजबाई जी. जैन - डुंगरपुर

क्षु. श्री २०५ वैराग्यमतीजी
कुईवाडी

क्रम	त्यागियों के नाम	गृहस्थ के नाम	नगर-प्रांत
१.	स्व. मुनिराज श्री १०८ विजयसागरजी	श्री देवचंदभाई अेन. गाँधी	ईडर-गुजरात
२.	स्व. मुनिराज श्री १०८ ऋषिसागरजी	श्री चंदुभाई के. दोशी	ईडर-गुजरात
३.	समाधि सम्राट स्व. मुनिराजश्री १०८ पवित्रसागरजी	श्री रमणभाई ऐम. गाँधी	ईडर-गुजरात
४.	स्व. मुनिराजश्री १०८ सुपाश्वसागरजी	श्री कचराभाई पी. शाह	सामेरा
५.	मुनिराजश्री १०८ शीलसागरजी	श्री पानाचंद अेन. शाह	गोरल
६.	मुनिश्री १०८ कुंथुसागरजी	श्री कचरालाल अेच. शाह	कडिवादरा
७.	मुनिश्री १०८ सर्वज्ञसागरजी	श्री जीवराजभाई	टाकाटूका कडिदाव
८.	स्व. मुनिश्री १०८ संयमसागरजी	श्री मणिलाल वी. गाँधी	सरड़ोई
९.	स्व. मुनिश्री १०८ समर्पणसागरजी	श्री अमृतलाल जे. शाह	उजेडिया-तलोद
१०.	स्व. मुनिश्री १०८ चित्तसागरजी	श्री कपिलभाई टी. कोटडिया	हिंमतनगर
११.	मुनिश्री १०८ रविनंदीजी	श्री सूर्यकान्तभाई वी. कोटडिया	अहमदाबाद
१२.	मुनिश्री १०८ कीर्तिधरनंदीजी	श्री मनहरलाल अेम. शाह	भावनगर
१३.	स्व. मुनिश्री १०८ पद्मसागरजी	श्री गगनलालजी गाँधी	सुरत
१४.	मुनिश्री १०८ सुदर्शनसागरजी		नरवाली
१५.	मुनिश्री १०८ हेमंतसागरजी	श्री अमरतलालजी के. जैन	डूंगरपुर
१६.	मुनिश्री १०८ समाधिसागरजी	श्री गेंदमलजी जी.	मुंबई
१७.	मुनिश्री १०८ सुबुद्धिसागरजी	श्री मोतीलालजी जी.	मुंबई
१८.	मुनिश्री १०८ अवेदनंदीजी		धरणगाँव
	(शिष्य श्री अमोधकीर्तिजी)		सोनागिरि
१९.	मुनिश्री १०८ अक्षुण्णकीर्तिजी		मूरोड़
२०.	मुनिश्री हितसागरजी		थानला
२१.	बा. ब्र. मुनिश्री १०८ पुण्यसागरजी		मूगेड़
२२.	मुनिश्री १०८ सारस्वतसागरजी		उदयपुर
२३.	मुनिश्री १०८ संभवसागरजी		लासुरणी-पूना
२४.	मुनिश्री १०८ अमोघसागरजी	श्री अजितकुमारजी एस. जैन	कुसुंबा जि. धूलिया
२५.	मुनिश्री १०८ मयंकसागरजी		
२६.	मुनिराजश्री १०८ श्रुतसागरजी		

हूमड़ इतिहास भाग-२

क्रम	त्यागियों के नाम	गृहस्थ के नाम	नगर-प्रांत
२७.	स्व. मुनिश्री १०८ पाश्वसागरजी (शिष्यश्री १०८ आचार्य सुमतिसागरजी)		
२८.	मुनिश्री १०८ सुमतिसागरजी		
२९.	मुनिश्री १०८ उत्तमसागरजी		फल्टन
३०.	मुनिश्री १०८	हुकमचंदजी अरर्थूना दोशी	बांसवाडा
३१.	स्व. मुनिश्री १०८	माणकलालजी	बांसवाडा
३२.	स्व. मुनिश्री १०८ मेघसागरजी	धूमजीभाई शेठ	चित्तरी
३३.	स्व. मुनिश्री १०८	श्री भगवानलालजी तिवारी	बांसवाडा
३४.	मुनिश्री १०८ वीरसागरजी	श्री वीरचंद के. गाँधी	फल्टन-सतारा
३५.	मुनिश्री १०८ अतिबलजी	श्री पवनलाल मलुकचंद दोशी	फल्टन
३६.	मुनिश्री १०८ वीरसागरजी	डॉ. चंद्रकांत जी. दोशी	अकलूज
३७.	मुनिश्री १०८ चंद्रसागरजी		
३८.	मुनिश्री १०८ सल्लेखनासे	श्री जीवराज डी. शहा	फोडशिरस
३९.	मुनिश्री १०८ चंद्रसागरजी		वालरे
४०.	मुनिश्री १०८ वर्धमानसागरजी		कोंडशिरस
४१.	मुनिश्री १०८ विनयसागरजी		घाटोल

आदि कार्यों के नाम चालु करना है।

क्रम	आर्यिकायों के नाम	गृहस्थ के नाम	नगर-प्रांत
१.	बा. ब्र. गणिनी आर्यिका रत्न श्री १०५ ज्ञानमतिजी	श्री कंचनबहन एस. शाह	पोशीना
२.	आर्यिका रत्न श्री १०५ विजयमतिजी	श्री बी. पी. गाँधी	विजयनगर
३.	आर्यिका श्री १०५ विजयप्रभाजी	जोलीबहन डी. दोशी	ईडर
४.	आर्यिका श्री १०५ सुआधमतिजी	धर्मिष्ठाबहन बी. कोटडिया	
५.	आर्यिका श्री १०५ संजयश्रीजी	लीलाबहन बी. कोटडिया	प्रांतिज
६.	आर्यिका श्री १०५ प्रशांतमतिजी	पंकजबहन पी. शाह	भावनगर
७.	आर्यिका श्री १०५ वर्धितमतिजी	श्री भावनाबहन पी. शाह	भावनगर
८.	आर्यिका श्री १०५ सुनदामतिजी	श्री रमिलाबहन शाह	विजयनगर
९.	स्व. आर्यिका श्री १०५ यशमतिजी	श्री सोनादेवीजी जी. गाँधी	सुरत
१०.	आर्यिका श्री १०५ सुवैभवमतिजी	श्री हंसाबहन	दाहोद
११.	आर्यिका श्री १०५ वात्सल्यमतिजी		सलूम्बर
१२.	आर्यिका श्री १०५ अवेदमतिजी		
१३.	आर्यिका श्री १०५ सम्यकश्री		पिपलगाँव
१४.	आर्यिका श्री १०५ प्रेरणामतिजी		थानलाम
१५.	आर्यिका श्री १०५ शीतलमतिजी		
१६.	आर्यिका श्री १०५ पूर्णमतिजी	श्री वीणाबहन ए. जैन	डूंगरपुर
१७.	आर्यिका श्री १०५ चारित्रमतिजी	श्री सूरजबाई जी. जैन	डूंगरपुर
१८.	आर्यिका श्री १०५ दयामतिजी	श्री फूतीबाई एक. घडिया	डूंगरपुर
१९.	आर्यिका श्री १०५ अमृतमतिजी (आचार्य रत्नशांतिसागरजी की बहन)	श्री	
२०.	आर्यिका श्री १०५ रत्नमती	श्री स. केशरबाई जे. गाँधी	बम्बई
२१.	आर्यिका श्री १०५ लक्ष्मीमती		साबला
२२.	आर्यिका श्री १०५		विजयनगर
२३.	आर्यिका श्री १०५ विजयमतिजी		डूंगरपुर
२४.	आर्यिका श्री १०५ चरित्रमतिजी	श्री सूरजबाई	डूंगरपुर
२५.	आर्यिका श्री १०५ दयामतिजी	श्री फूलीबाई	
२६.	आर्यिका श्री सर्वज्ञमतिजी	श्री कु. शहानीरा	
२७.	आर्यिका श्री १०५ सुप्रभा (रोषक) दुदुमती सुपार्श्वमतीसंघ माताजी		
२८.	आर्यिका श्री १०५ चदमतिजी (बाल्हे) श्री शांतिनगर संघ		
२९.	आर्यिका श्री १०५ सुप्रभा अम्मा. पू. इंडूमती अम्मा संघ		

क्रम	क्षुल्लिका के नाम	गृहस्थ के नाम	नगर-प्रांत
१.	क्षु. १०५ सुबुद्धिमतीजी	श्री मथुराबाई के. गाँधी	
२.	क्षु. १०५ सुमती		
३.	क्षु. १०५ श्रद्धामती	श्री रतनबाई चंदुलाल मेहता	फल्टन
४.			
५.	क्षु. १०५ सुज्ञानमती	श्री चंदकला चंदुलाल गाँधी	फल्टन
६.			
७.	क्षु. १०५ जिनमती	श्रीमती चतुरबाई छगनलाल शहा	तरडगाँव
८.			
९.	क्षु. १०५ सुमतिमती	श्री सिताबाई हीराचंद दोशी	अकलूज
१०.	क्षु. १०५ भद्रमती	श्री सो. सोनूबाई छगनलाल गाँधी	तासुर्णे
११.	क्षु. १०५ विजयश्री	सौ. सुवर्णलता	म्हसवड
१२.	क्षु. १०५ जिनमती अम्मा	कु. शीप्रभ लालचंद दोशी	म्हसवड
१३.	क्षु. १०५ श्रेयांसमती	श्री केशरबाई खेमचंद गाँधी	नाते पुते
१४.	क्षु. १०५ जिनमती		फल्टन
१५.	क्षु. १०५ अनंतमति		सोलापुर
१६.	क्षु. १०५ चंद्रमती		
१७.	क्षु. १०५ श्रद्धामती		नातेपुर
१८.	क्षु. १०५ आदिमती		फल्टन
१९.	क्षु. १०५ वैराग्यमती		फुर्डवाडी
२०.	क्षु. १०५ सिद्धमती		खेडा
२१.	क्षु. १०५ जयश्री अम्मा		कुर्डवाडी
२२.	क्षु. १०५ जिनमती माताजी		अकलूज
२३.	क्षु. १०५ किर्तीमती		धुले
२४.	क्षु. १०५ जिनमती	श्री कंकुबाई बालचंद हिराचंद दोशी	
२५.	क्षु. १०५ नेभमति सुरतकर (पू. विसलसागर संघ)		
२६.	क्षु. १०५ कमलमती माताजी पू. विमलसागर संघ		
१.	क्षु. १०५ सुमतीसागरजी		फल्टन
२.	क्षु. श्री १०५ सुभद्रसागरजी	श्री सीमंधर देवचंद गाँधी	फल्टन
३.	क्षु. श्री १०५ अनंतकिर्ती	श्री माणेकलाल जीवराज गाँधी	अललूज
४.	क्षु. श्री. १०५ दयानाथ	श्री जीवराज	
५.	क्षु. श्री. १०५ आदिसागरजी		भिलोडा
६.	क्षु. श्री. १०५ राजमलजी		सोलापुर
७.	क्षु. श्री. १०५ दयानंद	श्री चंदकला चंदुलाल गाँधी	फल्टन
८.			

जिन्हें पाकर धन्य हो उठी / हो गयी धरा भारतवर्षकी

(स्व. दानवीर माणिकचंदजी)

बाबूलाल चूनीलाल गांधी, ईडर (गुजरात)
बी.ए. (ओनर्स), एम.ए., बी.एड्., एंस.टी.सी.
विनीत, साहित्य सुधाकर, एम.जे.पी.एच्

यहाँ पर प्रस्तुत है एक आदर्श रेखाचित्र, बीसवीं शताब्दी के श्रावक रत्न, सच्चे देव शास्त्र गुरु के अनन्यतम उपासक, वीर भामाशाह, हूमड़ शिरोमणि, स्व. माणिकचंदजीका।

कतिपय शब्दोंमें आपका पारिवारिक परिचय

आपके नानाजी थे जैनधर्म के दृढ़ श्रद्धानी स्व. गुमानजी शाह भींडर (राजस्थान) के। वि.सं. १८४० सन् १७८३ में आप अपनी धर्मपत्नी के साथ अफीम बिक्रीके प्रसिद्ध केन्द्र सुरत (गुजरात) में पधारे एवं अफीमका व्यापार करने लगे।

यहाँ पर आपके दो पुत्र रत्न हुए, जिनमें प्रथम पुत्र थे तीव्र बुद्धि के धारक एवं अदम्य उत्साही श्री हीराचंदजी। आपकी हीराचंदजीकी सहधर्मचारिणी थीं जिनधर्मभक्ता, दयालु, आदर्श सन्नारी बिजलीबाई।

जन्म / बाल्यावस्थाके सात्त्विक प्रसंग / व्यापारके क्षेत्रमें कीर्तिध्वजका लहराना।

संवत् १९०८ में मोक्ष रूपी लक्ष्मी के पूजनके दिन प्रातः कालके समयमें आप दोनों को पुत्र रत्नकी प्राप्ति हुई जिसे पाकर आप दोनों की खुशीका कोई ठिकाना नहीं रह पाया। पुत्र का शुभ नाम रखा गया माणिकचंद।

भौतिक माणिकका मूल्य तो आँका जा सकता है, लेकिन इस माणिकचंदमें छिपे हुए महामानव माणिकचंदके मूल्यको आँका हीं नहीं जा सकेगा। ऐसा उस समय किसीने सोचा होगा ?

दिन जाते देर नहीं लगती। उम्र छहकी। आप जिनालयमें जाकर देरतक बैठे रहते और जो कोई शास्त्रजी पढ़ते उसे सुनते ही रहते।

आठ वर्ष की उम्र में आप अभिषेक करने लग गये। जिन प्रतिमाजीयोंका। बारह वर्षकी उम्रमें आप अपने पिताजी एवं ९ वर्षीय आपके भाई नवलचंदजी के साथ संवत् १९२० के प्रारंभ में ही बम्बई पधारे। आपकी अधिक रूचि थी हिसाब-किताबमें। कुछ वर्षोंके बाद, आपने शेठ साहब हेमचंद प्रेमचंदजीके वहाँ मुनीमजीके रूप में अपने कार्यका श्री गणेश किया।

भाग्यने करवटको बदला। आपके बडे भाई पानाचंदजी एवं आप मोती पोरनेके / पिरोनेके कार्यको सीखने में जुट गये। जिस काममें आपके दिल लग जाता उसमें तल्लीन एकाग्र हो जाना बाये हाथका खेल था आप दोनों के लिए। आप दोनों का मोती पिरोने का कार्य इतना सफाईदार रहता था कि चारों ओर इस कार्यकी

सौजन्य : कल्याणकुमार थावरचन्द शाह
आंध्र एक्सप्रेस सर्विस प्रा. ली., ३५, भांगवाडी शोपींग सेन्टर, आरकेड, कालबादेवी,
मुम्बई - ४००००२ फोन : २०५३१२१

वजह से, आप दोनों भाइयों पर प्रशंसाके पुष्प बिखरे जाने लगे। व्यापारियों की दृष्टिमें आप माने जाते थे ईमानदार, सत्यवादी और विश्वासपात्र।

संवत् १९२४ में आपके पास इतनी दौलत हो गयी कि आप दोनोंने मोती पुरानेके कार्यको छोड़ा। संवत् १९२५ में जवाहरात का व्यापार शुरू किया गया। बीसा हूमड़ दि. जैनियोंमें सबसे पहले आप थे जिन्होंने जौहरी कार्यका श्री गणेश किया।

संवत् १९२७ में माणिकचंद पानाचंद फर्मको खोला गया। सच्चाई और विश्वासपात्रके कारण, फर्मने अपना प्रभाव डाला व्यापारियों पर। चारों ओर एक ही बात होती थी शेठ पानाचंद माल खरीदने में अति चतुर हैं, तो माणिकचंद माल बेचनेमें।

वे दोनों पुण्यात्मा जिस सौदेमें हाथ डालते उनकी पांचों उँगलियाँ घी में ही होती। संवत् १९३० तक तो आपके यहाँ श्री लक्ष्मीका अच्छा वास हो गया। बम्बई एवं विदेशोंमें थोक माल बिकने लगा। लक्ष्मीका वृद्धि के साथ ही साथ विनय, नम्रता और सादगी बढ़ने लगी। अभिमानका कोई नामोनिशान तक नहीं। ऊपरोक्त गुणों के कारण, एवं फर्म के मालकी सुंदरता, सफाई एवं छाँटके कारण धर्म कार्यमें चार-चांद लग गये।

शास्त्र स्वाध्यायकी ओर

संवत् १९२३ में पन्द्रह सालकी उम्र से जिनवाणी मर्मज्ञ एक मारवाडीजीके संपर्कमें आने पर उनके संकेत से आपकी पैनी दृष्टि, शास्त्र स्वाध्यायकी ओर झुकी। गुजराती सात्त्विक पुस्तकों एवं समाचारपत्रों के पढ़नेके भी आप बड़े शौकीन थे।

मांगलिक प्रवेश नये जीवनमें

उम्र २२ की। माणिकचंदजीकी शादी हुई गुणवान एवं चतुर कन्या चतुरमतिजी के साथ।

(आपका तीन पुत्रियाँ थीं (१) फूलकुंवर (२) मगनमति ओर (३) तारामति। ये तीनों ही जीवित रहीं जब कि एक पुत्री ने परलोकगमन किया। आपके तीन पुत्र भी हुए, लेकिन होनहारको कौन रोक सकता है - ये छोटी छोटी अवस्थाओं में परलोक सिधार गये।)

संवत् १९५७ में चतुरमतिजीके स्वर्गवास हो जाने के बाद इच्छा न होते हुए भी आपने फलटनके बीसा हूमड़ हरिचंद दोदुकी पुत्री नवीबाई के साथ शादी की, जिससे पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई - नाम रखा गया था, जीवनचंद।

परोपकाराय सतां विभूतय।

बम्बई में व्यापारादि कार्योंके लिए आनेवालों के कामकाजमें सहायता देना

नाम : श्री कल्याणकुमार थावरचन्दजी शाह
सौजन्य : श्री दीपक के. शाह
आंध्र एक्सप्रेस सर्विस प्रा. ली., ३५, भांगवाडी शोपींग सेन्टर, आरकेड, कालबादेवी,
मुम्बई - ४००००२ फोन : (ओ) २०५३१२१

आजीविका के लिए आने वालोंको आजीविकामें जोड देना : उनके लिए ठहरनेकी एवं भोजनकी व्यवस्था करना।

जैनबिद्री-मूड़बिद्रीकी यात्राके वक्त सबको आराम पहुँचाने के बाद ही आराम करना।

भ. गोमटेश पर्वतपर चढ़नेके लिए, सीढियों के निर्माण कार्यमें योगदान देना इत्यादि कार्य हुए आपके परोपकारसे।

परम आगम भक्त / धवलादि ग्रंथोंके उद्धारका विचार

मूड़बिदि स्थित धवलद्री प्राचीन ताड़पत्रों पर आलेखित ग्रंथोंकी प्रतिलिपियाँ आप चाहते थे और उस कार्यको बल भी मिला। आपके कहनेसे श्री पन्नालालजी बाकलीवालने भ. पार्श्वनाथजी दि. जिनालय ईडरके ग्रंथ-भंडारकी सूचि बनाकर तैयार की और कई संस्कृत ग्रंथ आपके पास भेजे।

नमन आपके लिए - आगम भक्त के लिए, आगम रक्षक के लिए।

जैनधर्म के प्रचार प्रसारमें आपका यशस्वी योगदान

दानवीर माणिकचंद दि. जैन परीक्षालय के द्वारा,

जैनमित्र एवं दि. जैन के प्रकाशन द्वारा,

माँ जिनवाणी की पुस्तकें वितरित करके, सुरतमें अध्यापन कार्यके द्वारा,

जिनवाणी के ग्रंथ मुद्रित करवा कर इत्यादिसे आपने यशस्वी योगदान दिया जैनधर्मके प्रचार-प्रसारमें।

करुणासिंधु

सन् १८८७ में महारानी क्विन विकटोरिया जुबिली के दिन गौवध न हो इसके लिए, प्रयत्न करनेवालों में आपका प्रयास भी सराहनीय रहा था। नमन करुणासिंधु को।

स्त्री शिक्षाके बारेमें आपसे उठाये गये कदम

स्त्रियों के हृदय विदारक दृश्य देखकर आपने दृढ़ प्रतिज्ञा की, स्त्रीशिक्षाके बारेमें ठोस कदम उठानेकी। आपने अपने सपने को साकार किया बम्बईमें श्राविकाश्रमकी स्थापनासे।

जनक छात्रालयों के

बम्बई में शेठ हीराचंद गुमानजी जैन बोर्डिंग स्कूल खोला गया। इसके अंतर्गत एक स्कालरशिप फंड भी था और आज भी है : नाम है शेठ हीराचंद गुमानजी जैन स्कालरशिप फंड।

जबलपुर, आग्रा, रतलाम, सोलापुर, अहमदाबाद इत्यादि स्थलोंपर आपके इशारेसे ही छात्रालय खुले।

नाम : श्री कल्याणकुमार थावरचन्दजी शाह

सौजन्य : श्री के. टी. शाह
आंध्र एक्सप्रेस सर्विस प्रा. ली., ३५, भांगवाडी शोपींग सेन्टर, आरकेड, कालबादेवी, मुम्बई - ४००००२

हूमड़ इतिहास भाग-२

प्रेरणास्त्रोत विद्यालयोंके

आपकी ही प्रेरणा से - हीराचंद गुमानजी जैन बोर्डिंग स्कूलमें संस्कृत जैन विद्यालय खोला गया। - काशीकी स्याद्वाद पाठशालाके लिए आपने अपनी ओरसे प्रशस्त दान दिया।

दाहोद, उदयपुर, सुरतादिकी पाठशालाओंमें आपका यशस्वी योगदान रहा।

सुविद्यायुक्त धर्मशालाओंके लिए आपका योगदान

हीराबाग बम्बई की धर्मशालाके लिए - पालीताना दि. जैन धर्मशाला के लिए।

तीर्थ भक्त

पालीतानामें नये मंदिरका निर्माण करवाया प्रतिष्ठा भी। - देलवाड़ेके जिनालयोंका जीर्णोद्धार करवाया एवं सुचारु व्यवस्थाओं को भी करवाया। - क्या शिखरजी क्या चंपापुरी - मंदारगिरि - इत्यादि के जीर्णोद्धारमें आपने जो प्रशंसनीय कार्य किये हैं : वे कैसे भूलाये जा सकते हैं ?

समाज हितैषी

कई स्थलोंपर ज्ञातियोंमें तड पडे हुए थे, कन्याविक्रय होते थे, तो बाललग्न भी, रिवाज थे रोने पीटने के, उन्हें मिटाने के लिए आकाश पाताल एककर आपने ऊँचे स्तरकी सफलता प्राप्त की।

दि. जैन डिरेक्टरीके आलोकमें

जातियोंकी संख्यादि का ठीक ठीक पता लगाकार आपने दि. जैन डिरेक्टरीको प्रकाशित करवाया।

अहिंसाके दृढ़ प्रहरी

बम्बईमें एक पवित्र जैन औषधालय खुलवाया। माँसाहार रोकनेके लिए ऐसी पुस्तकें बँटवाई, जिनमें मांसाहार का निषेध हो।

परिग्रह परिमाण व्रतकी भीष्म प्रतिज्ञा

आपके पूर्ण घृणा थी अन्यायसे धन प्राप्तिकी, असत्य बोलने पर, कुशील आचरण पर। रत्नाकर पैलेसके चैत्यालयमें आपने भीष्म प्रतिज्ञा की परिग्रह परिमाणकी। भीष्म प्रतिज्ञा : मेरे भागका अमुक धन दूकानमें हो जायगा तब में अपना संबंध उससे छोडकर धर्म व जाति की सेवामें लीन हो जाऊँगा। जवाहरात के कामसे पेन्शन ले लूँगा।

वचनके पक्के आपने भीष्म प्रतिज्ञाका अक्षरश: पालन किया।

उच्च स्थानों पर नियुक्ति आपकी

संवत् १९४९ मे. दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीके महामंत्री चुने गये। मार्च १९, १९०६ में बम्बई शहरके लिए शांतिके न्यायाधीश (जे.पी.) के रूपमें सरकारकी ओरसे नियुक्त हुए।

नाम : जम्बूकुमार चन्दनलाल दोशी
सौजन्य : ७, कमल राजी, उदयपुर, राजस्थान
पीन - ३१३००१